ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-82

अप्रैल-जून 2024

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION (DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-82

अप्रैल-जून 2024

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु "मानविकी और सामाजिक विज्ञान" की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध लेख, तकनीकी निबंध, शब्द संग्रह, शब्दावली-चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखक के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रमाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो ताकि विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें ।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़े।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/ वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकता अनुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य है।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट लगा लिफाफा साथ ना भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए प्रोत्साहन के तौर पर आयोग के नियमानुसार मानदेय दिया जाएगा। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

संपादक, ज्ञान गरिमा सिंधु,
वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली- 110066.

11. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/ पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों / संस्थाओ के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

वेबसाइट: http://www.cstt.education.gov.in कॉपीराइट @ 2024 प्रकाशक: वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली – 110066	बिक्री हेतु पत्र व्यवहार का पता: प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड 7, रामकृष्ण पुरम नई दिल्ली - 110066 टेलीफोन: 011- 20867172	बिक्री स्थान: प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, सिविल लाइंस, दिल्ली- 1100054 फेक्स : 011 - 26105211/246

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से...

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी, उच्चतर शिक्षा एवं मानविकी आदि से संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली का समुचित प्रयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने हेतु `ज्ञान गरिमा सिंधु 'पत्रिका का प्रकाशन करता आया है। आयोग द्वारा समय-समय पर इस पत्रिका के कुछ विषय-केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया जाता रहा है। इसी श्रृंखला में पत्रिका के अंक – 82 (अप्रैल-जून, 2024) को अपने सुधी पाठकों एवं लेखकों को उपलब्ध कराते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक बहुविषयक प्रकृति का है। इस अंक में शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, पर्यावरण एवं प्रदूषण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, महिला शिक्षा, किशोरों की समस्याएं, भारतीय ज्ञान परंपरा तथा अन्य विविध विषयों से संबंधित उल्लेखनीय लेखों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस अंक में कौटिलीय अर्थशास्त्र में विद्यमान राजा के गुण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भारतीयता, प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना, ए. आई. और समावेशी कक्षाएं, पर्यावरणीय विधिशास्त्र, कला समन्वित शिक्षा, वैदिक सूर्योपासना एवं आरोग्य, राष्ट्र के भविष्य को बदलने के लिए विजन इंडिया @ 2047 आदि विशिष्ट ज्ञानपरक लेखों को चयनित किया गया है। प्राचीन भारतीय वाद विधि, लेखांकन में अनुभवात्मक अधिगम का समावेश, सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के निहितार्थ, भारत विभाजन और विभीषिका, वैश्विक दक्षिण, बिहार की राजनीति में गठबंधन प्रयोग, किशोरों की आक्रामकता पर नैतिक अलगाव का प्रभाव आदि से संबंधित लेख भी उल्लेखनीय हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ न केवल संस्था-विशेष के ज्ञान एवं वैशिष्ट्य का परिचायक होती हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण नीति-निर्माण, अनुसंधानों तथा शोध-कार्यों का एक समेकित व जनोपयोगी सार्थक मंच भी प्रस्तुत करती हैं।`ज्ञान गरिमा सिंधु 'का उद्देश्य मूलतः हिंदी में मानविकी व सामाजिक विज्ञान विषयक लेखन को प्रचारित-प्रसारित करना है, जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय है। देश भर से विभिन्न विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले विभिन्न मनीषियों के विविध-विषयक सारगर्भित आलेख प्रस्तुत अंक में संकलित हैं।

यह महत्वपूर्ण अंक आपको समर्पित करते हुए मैं देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थानों के अध्यापकों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली के अधिकाधिक प्रयोग के माध्यम से इसे सर्वजन-सुलभ बनाने में अपना सार्थक योगदान दें । साथ ही मैं विद्वानों, शोधार्थियों, अन्य लेखकों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस पत्रिका के लिए आलेख लिखें। आयोग की शब्दावलियाँ https://shabd.education.gov.in/ पर खोज प्रक्रिया में उपलब्ध हैं। जहाँ से आयोग द्वारा निर्मित आधिकारिक शब्दावली को प्राप्त कर के आलेख लिखे जा सकते हैं।

प्राप्त आलेखों को सम्पादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ.शाहजाद अहमद अंसारी ने बड़े मनोयोग से निभाया है। मैं इस पत्रिका के परामर्श एवं संपादन-समिति के प्रत्येक विशेषज्ञ तथा संपादक डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हुए इस अंक के लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों एवं सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. धनंजय सिंह
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय

`ज्ञान गरिमा सिंधु ’का 82 वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह अंक बहुविषयक प्रकृति का होने के कारण वैविध्यपूर्ण लेखों को समाहित करने वाला एक विशिष्ट अंक है। सामाजिक विज्ञान, कला और मानविकी से संबंधित प्रमुख लेखों को इस अंक में स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत अंक में भारतीय खाद्य कानून और नियमन, सामाजिक लोकतंत्र के साधन के रुप में भारतीय संविधान, भारतीय राजनीति एवं सनातन चिंतन, गाँधी और अस्पृश्यता उन्मूलन, भारतेन्दु युग एवं काशी में लोकजागरण का प्रसार, रूस में लोकतंत्र, काम का अधिकार और भारतीय संविधान, कक्षा में सकारात्मक मनोविज्ञान की भूमिका, वैश्वीकरण का हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाओं पर प्रभाव, कठोपनिषद में मन की संकल्पना सहित अन्य विविध विषयों से संबंधित उल्लेखनीय लेखों को सम्मिलित किया गया है। ये सभी लेख विशेष रूप से पठनीय हैं।

अध्यक्ष महोदय के निर्देशानुसार एवं उनके द्वारा ‘ज्ञान गरिमा सिन्धु ’के इस अंक हेतु प्राप्त आलेखों के मूल्यांकन, संयोजन एवं सम्पादन का अवसर मिला। यद्यपि अत्यल्प समय में इसके मूल्यांकन व सम्पादन का कार्य वास्तव में कठिन था, तथापि नित्य-प्रति के प्रयासों और विशेषज्ञ-समिति के सहयोग से आलेखों का मूल्यांकन, सम्पादन एवं प्रूफ-शोधन प्रारंभ हुआ। प्राप्त कुल सौ से अधिक आलेखों में से सम्पादित एवं चयनित कर इस अंक हेतु बावन आलेखों को स्थान दिया गया है, जिसे क्रमवार प्रस्तुत किया गया है ताकि विषय की समेकित समझ बन सके।

मैं सभी लेखकों एवं परामर्श- संपादन समिति के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन व प्रोत्साहन से यह कार्य नियत समय पर निष्पादित हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक पाठकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा। विद्वत समाज और सुधी पाठकों के सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी
सहायक निदेशक (विषय),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

परामर्श मंडल

प्रो. रजनीश शुक्ल अध्यक्ष

पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो. नागेश्वर राव सदस्य

निदेशक, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला-171005

प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी सदस्य

कुलपति, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रो.राजेश्वरी पंढरीपांडे सदस्य

सेवानिवृत्त प्रो.अरबाना इलिनोइस विश्वविद्यालय शैम्पेन, यूएसए

प्रो. धनंजय कुमार सिंह सदस्य

सदस्य सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली -110067

प्रो. सच्चिदानंद मिश्र सदस्य

सदस्य-सचिव, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली - 110 062

प्रो (डॉ.) रवि प्रकाश टेकचंदानी सदस्य

निदेशक, राष्ट्रीय सिंधी भाषा प्रचार परिषद, दिल्ली – 110066

डॉ. मिथिलेश मिश्र सदस्य

निदेशक,दक्षिण एशियाई भाषा समन्वयक
अरबाना - केंपेन इलिनोइस विश्वविद्यालय
अरबाना, आईएल 6180

प्रो. अनिल जोशी सदस्य

अध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संसथान, आगरा

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रधान संपादक
प्रोफेसर धनंजय सिंह
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी,
सहायक निदेशक (विषय)

संपादन समिति

प्रो. पवन कुमार शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

प्रो. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्राचार्य, देशबंधु महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार झा
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. शांतेष कुमार सिंह
अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, संगठन और कूटनीति अध्ययन केंद्र,
अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी
शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुमन कुमार
राजधानी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. अनिल कुमार सिंह
आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शाईस्ता (प्रूफ़ शोधन)
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) के युग में भारतीयता: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और विकसित भारत-2047 से जुड़ी समझ के सन्दर्भ में	पंकज अरोड़ा मनीष	1-13
2.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका: हेलेन लेप्चा के विशेष संदर्भ में	शान्तेष कुमार सिंह राधा	14-23
3.	कौटिलीय अर्थशास्त्र में विद्यमान राजा के गुण: विद्या परम्परा के विशेष सन्दर्भ में	पवन कुमार शर्मा	24-39
4.	महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और महिला सशक्तिकरण: एक विश्लेषण	प्रवीण कुमार झा विनायक राय	40-48
5.	भारत में खाद्य कानून और नियमन: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन	संगीता	49-59
6.	दिल्ली में वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य: एक विश्लेषण	रश्मि सिंह	60-69
7.	विधानसभा चुनाव 2023: एक विश्लेषण	शम्भु नाथ दुबे	70-77
8.	प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों में विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास में मिश्रित शिक्षा के प्रभाव पर विश्लेषणात्मक अध्ययन	कैलाश प्रकाश चन्दोला प्रवीण कुमार तिवारी	78-94
9.	सामाजिक लोकतंत्र के साधन के रूप में भारतीय संविधान	बालूदान बारहठ	95-98
10.	प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना: कक्षा शिक्षण और व्यावसायिक कौशल के मध्य अंतराल को पूर्ण करती एक अभिनव योजना	जितेंद्र सिंह गोयल जयदेव सिंह	99-104
11.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए .आई.) और समावेशी कक्षाएं: शिक्षा में बदलाव	चेतना अरोड़ा सुभाष चन्द्र	105 -121
12.	पर्यावरणीय विधिशास्त्र: मुद्दे एवं चुनौतियाँ	अभय प्रसाद सिंह सोनम कृष्ण मुरारी	122-133
13.	गांधी और अस्पृश्यता उन्मूलन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	आशुतोष शरण सुनील महावर	134-143

14.	भारतीय राजनीति एवं सनातन चिंतन	आद्या शक्ति राय	144-153
15.	बी.एड. पाठ्यक्रम के शिक्षणशास्त्र में कला एवं खेल के समावेश:उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ में	कीर्ति प्रजापति विमल कुमार	154-163
16.	भाषा-परिवर्तन के कारण	राजेश चन्द आदर्श	164-170
17.	बिहार में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर समावेशी शिक्षा की स्थिति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डी.एन.सिंह नीरज रंजन सिंह	171-178
18.	भारतीय दर्शन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सारतत्व	गौरव रंजन	179-183
19.	सार्वजनिक स्वास्थ्य और शहरी स्वास्थ्य नीतियाँ: सतत् शहरी कल्याण के निर्माण में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका	शाईस्ता नावेद जमाल	184-195
20.	भारत के विस्तारित पड़ोस का परिदृश्य: 2014 के बाद मध्य एशिया के साथ भारत के संबंधों का विश्लेषण	प्रमोद कुमार	196-204
21.	कला-समन्वित शिक्षा में आत्म-पहचान की अनिवार्यता	सुस्मिता लख्यानी शिवम लूथरा	205-211
22.	दिल्ली विधानसभा चुनाव में महिलाओं की भागीदारी: एक अवलोकन	रंजनी बहादुर	212-220
23.	वैदिक सूर्योपासना एवं आरोग्य	ममता त्रिपाठी	221-232
24.	मोरक्को में अमाज़ीग़ जातीय पहचान का पुनर्निर्माण	जीशान आज़ाद	233-237
25.	भारतेन्दु युग एवं काशी में लोकजागरण का प्रसार	अभिषेक कुमार यादव	238-244
26.	बुनियादी शिक्षा और शैक्षणिक गणित के शिक्षण के लिए एथनोमैथमेटिक्स साहित्य की समीक्षा	पंकज शर्मा सुनील कुमार	245-254
27.	स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में प्रासंगिकता	पिन्कल चौधरी जिज्ञासा चौधरी	255-260
28.	विद्यालयी स्तर की शिक्षण-अधिगम पारिस्थितिकी में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के निहितार्थ	सुमित गंगवार शुभम कुमार पति	261-273
29.	काम का अधिकार और भारतीय संविधान	स्वाति सुचारिता नंदा राकेश कुमार मीणा	274-284

30.	परिसीमन एवं प्रतिनिधित्व: उत्तराखण्ड राज्य के संदर्भ में एक विशेष अध्ययन	मयंक प्रसाद देवेंद्र सिंह एम.एम. सेमवाल	285-297
31.	भारत विभाजन और विभीषिका: आलोचनात्मक विश्लेषण	गणेश मल्होत्रा	298-309
32.	रूस में लोकतंत्र: एक समालोचना	सुरेश कुमार	310-317
33.	छत्रपति शिवाजी महाराज के 'स्वराज' और 'सुराज' की 21 वीं सदी में प्रासंगिकता	रवि रमेशचंद्र शुक्ल	318-332
34.	नई शिक्षा नीति में गाँधी जी का प्रभाव	अनिल कुमार सिंह	333-340
35.	राष्ट्र के भविष्य को बदलने के लिए विजन इंडिया @ 2047 वर्तमान स्थिति, चुनौतियाँ एवं सुझाव	गौरव कुमार शर्मा	341-349
36.	प्राचीन भारतीय वाद विधि : न्याय-वैशेषिक दर्शन में वर्णित कथा तथा चरकसंहिता में वर्णित सम्भाषा विधि के आलोक में	तुषार गांधी मोहित कुमार पांडेय ज्योति आशीष कुमार	350-359
37.	लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक अधिगम का समावेश: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में एक नई दृष्टि	संगम अंजलि शौकीन	360-369
38.	भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रदूषित कर रहे शिकारी एवं प्रपंची शोध-पत्रिकाओं के उद्भव के कारणों का अध्ययन	अखिलेश कुमार कृष्ण कान्त त्रिपाठी	370-378
39.	राजस्थान के जनजातीय समुदाय एवं उनकी विशिष्ट संस्कृति	सरोज कुमार	379-389
40.	वैश्विक दक्षिण: भारत के विकास में गुणात्मक परिवर्तन का अध्ययन	मो. जमशैद आलम सद्दाम हुसैन	390-399
41.	शासन-व्यवस्था और न्यायिक दक्षता: अप्रचलित कानूनों की समीक्षा, निरस्तीकरण और नवीनीकरण	मनीष कर्मवार सुनेहा शर्मा	400-409
42.	बिहार की राजनीति में गठबंधन प्रयोग: सत्ता समीकरणों का समीक्षात्मक विश्लेषण	नरेन्द्र कुमार आर्य	410-420
43.	कक्षा में सकारात्मक मनोविज्ञान की भूमिका	पारुल जुल्का हरप्रीत कौर जस	421-427

44.	मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा की राह में अवरोध: लखनऊ का मात्रात्मक विश्लेषण	शोमाइला वारसी अबिदा बानो	428-434
45.	मॉरीशस में प्रचलित हिंदू परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन	राहुल कुमार भारती श्रीप्रिया पाण्डेय	435-443
46.	किशोरों की आक्रामकता पर नैतिक अलगाव का प्रभाव	इंदु	444-452
47.	सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पाउडर का निर्माण एवं मूल्य संवर्धन द्वारा कम लागत वाले परम्परागत खाद्य पदार्थों का विकास एवं मानकीकरण	आंचल सिंह	453-461
48.	वैश्वीकरण का हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर प्रभाव: स्थानीय से वैश्विक परिप्रेक्ष्य तक की यात्रा	नूरुल होदा एमडी ओबैदुल ओला कल्याणी प्रधान	462-473
49.	कठोपनिषद में मन की संकल्पना की शैक्षिक विवेचना	मनु गंगवार प्रवीण कुमार तिवारी	474-480
50.	भारतीय ज्ञान परंपरा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: उन्नयन, संवर्धन तथा रोजगार सर्जन के विशेष सन्दर्भ में	अजिता सिंह तिवारी	481-491
51.	वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में आरक्षण नीति का उद्भव: एक समग्र विश्लेषण	श्वेता रजनी रंजन सिंह	492-500
52.	भारत में अल्पसंख्यकों के अधिकार: एक संवैधानिक परिप्रेक्ष्य	शशि भूषण सिंह मोहम्मद वसीम अहमद	501-508

1

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) के युग में भारतीयता: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और विकसित भारत-2047 से जुड़ी समझ के सन्दर्भ में

डॉ. पंकज अरोड़ा

आचार्य, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

डॉ. मनीष

स्वतंत्र शोधकर्ता

आज की डिजिटल दुनिया में तकनीकी नवाचारों ने शिक्षा और समाज के हर क्षेत्र को गहराई से प्रभावित किया है। भारत में, इस परिवर्तनकारी प्रक्रिया को राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 और विकसित भारत-2047 की अवधारणाओं के माध्यम से दिशा देने का प्रयास किया जा रहा है। एनईपी 2020 भारत की शैक्षिक यात्रा का एक मील का पत्थर है, जो प्रारंभिक बाल्यावस्था से लेकर उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण तक पूरे शिक्षा तंत्र को नए सिरे से परिभाषित करता है। इसका उद्देश्य केवल औपचारिक शिक्षा प्रदान करना नहीं है, बल्कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए छात्रों को तैयार करना, भारतीय मूल्यों को संरक्षित करना, और आत्मनिर्भर भारत की नींव रखना है।

इसी तरह, विकसित भारत-2047 का दृष्टिकोण स्वतंत्रता के 100 वर्ष पूरे होने तक भारत को एक पूर्ण विकसित और अग्रणी राष्ट्र बनाने का है। यह सामाजिक-आर्थिक समृद्धि को बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी, नवाचार, और डिजिटल क्रांति का उपयोग करने की कल्पना करता है। विशेष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) (ए.आई.) जैसे तकनीकी साधन इस दृष्टि को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, और प्रशासन में ए.आई. के अनुप्रयोगों ने इसके लाभों को स्पष्ट किया है, लेकिन यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि यह प्रौद्योगिकी भारतीय संदर्भ में प्रभावी और न्यायसंगत हो।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी और विविधता पूर्ण समाज में ए.आई. के प्रभाव को समझना और इसे लागू करना चुनौतीपूर्ण कार्य है। भारतीयता का विचार—जो भारत की विविध संस्कृतियों, परंपराओं, सामाजिक मूल्यों और सामुदायिक जीवन के सार को व्यक्त करता है—इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। भारतीय समाज की संरचना, जिसमें विभिन्न भाषाएँ, धर्म, परंपराएँ और क्षेत्रीय विविधताएँ सम्मिलित हैं, ए.आई. जैसे पश्चिमी-केंद्रित तकनीकी उपकरणों के साथ सहज सामंजस्य स्थापित करने में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

ए.आई. और भारतीयता के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि ए.आई. एल्गोरिदम केवल वैश्विक डेटा सेट और पश्चिमी परिप्रेक्ष्य पर आधारित होते हैं, तो वे भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं और जरूरतों को अनदेखा कर सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में, ए.आई. आधारित प्रणाली में भारतीय

भाषाओं और सांस्कृतिक संदर्भों का समावेश सुनिश्चित करना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि शिक्षक, छात्र, और अभिभावक ए.आई. के लाभों और सीमाओं के बारे में पूरी तरह से जागरूक हों।
इस संदर्भ में, प्रश्न उठता है कि कैसे ए.आई. का प्रभावी और न्यायसंगत उपयोग किया जा सकता है, ताकि यह एनईपी 2020 के उद्देश्यों और विकसित भारत-2047 की परिकल्पना को साकार करने में सहायक हो। यह उन सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक चुनौतियों को रेखांकित करता है, जो इस तकनीक को अपनाने के साथ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अलावा, यह लेख इस बात पर भी जोर देता है कि यदि ए.आई. को भारतीयता के विचार और भारतीय संदर्भों में सावधानीपूर्वक नहीं समझा और लागू किया गया, तो यह हमारी शिक्षा प्रणाली और सांस्कृतिक पहचान को कमजोर कर सकता है।

समस्या और समाधान के इन पहलुओं को समझते हुए, यह आवश्यक हो जाता है कि हम प्रौद्योगिकी को केवल उपयोगिता के उपकरण के रूप में नहीं देखें, बल्कि इसे एक ऐसे माध्यम के रूप में विकसित करें, जो हमारे मूल्यों, संवेदनाओं, और राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप हो। ए.आई. का सफल उपयोग तभी संभव है जब इसे भारतीय संदर्भ में न केवल तकनीकी बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी विकसित किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारत में शिक्षा प्रणाली को बदलने के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह नीति शिक्षा तक समान पहुँच, रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच और समग्र विकास को बढ़ावा देने पर केंद्रित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मुख्य लक्ष्य नीचे दिए गए हैं:

सार्वभौमिक शिक्षा, समानता और प्रारंभिक शिक्षा

- **शिक्षा में सार्वभौमिक पहुँच और समानता:** यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक बच्चे को प्रीस्कूल से लेकर उच्च शिक्षा तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच हो, जिसमें समावेशिता पर ध्यान दिया जाए। शिक्षा तक पहुँच में सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को समाप्त करना, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य वंचित समूह) के लिए। लैंगिक अंतर को दूर करना और नामांकन दरों में वृद्धि करना, विशेष रूप से लड़कियों के लिए।
- **प्रारंभिक देखभाल और शिक्षा:** संज्ञानात्मक और भावनात्मक विकास के लिए प्रारंभिक शिक्षा के महत्व को पहचानते हुए 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) को सार्वभौमिक बनाना। औपचारिक स्कूली शिक्षा संरचना में प्रीस्कूल शिक्षा को एकीकृत करना।
- **आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर जोर**: यह सुनिश्चित करना कि सभी विद्यार्थी कक्षा 3 तक आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता (पढ़ना, लिखना और बुनियादी गणितीय कौशल) हासिल कर लें। आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन शुरू करना।

शिक्षा प्रणाली और शिक्षकों का सुधार

- **पाठ्यक्रम और शैक्षणिक सुधार**: रटकर याद करने की आदत से हटकर अधिक लचीले, बहु-विषयक और कौशल-आधारित दृष्टिकोण की ओर बढ़ना। आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता, समस्या-समाधान और अनुभवात्मक सीखने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए पाठ्यक्रम में बदलाव करना। डिजिटल साक्षरता, वैज्ञानिक स्वभाव, संचार और सहयोग जैसे 21वीं सदी के कौशल को शामिल करना।
- **शिक्षक प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास**: व्यावसायिक विकास, शिक्षक प्रशिक्षण और सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित करके शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार करना। शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक मानकों (एनपीएसटी) की स्थापना करना।
- **समग्र, बहु-विषयक शिक्षा**: कला, विज्ञान, खेल और व्यावसायिक अध्ययन में समग्र और बहु-विषयक शिक्षा को बढ़ावा देकर अच्छी तरह से विकसित व्यक्तियों का विकास करना। मिडिल स्कूल से शुरू होने वाली व्यावसायिक शिक्षा का एकीकरण करना।

उच्च शिक्षा, प्रौद्योगिकी और सांस्कृतिक संरक्षण

- **उच्च शिक्षा सुधार**: उच्च शिक्षा को बढ़ावा देना जो लचीली, बहु-विषयक, अनुसंधान और नवाचार पर केंद्रित हो। अधिक स्वायत्तता और जवाबदेही के साथ बहु-विषयक विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों (HEI) की स्थापना करना। विभिन्न विषयों में उच्च-गुणवत्ता वाले अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (NRF) का निर्माण करना।
- **प्रौद्योगिकी का समावेश**: शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी को एकीकृत करना। ऑनलाइन और डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म को अपनाना, विशेष तौर पर ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों में, शिक्षा में नवाचार और प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (NETF) बनाना।
- **भारतीय भाषाओं, कलाओं और संस्कृति को बढ़ावा देना**: शिक्षा प्रणाली के भीतर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, भाषाओं और परंपराओं को संरक्षित और बढ़ावा देना। स्कूली शिक्षा के शुरुआती चरणों में मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा को प्रोत्साहित करना। संस्कृत और अन्य शास्त्रीय भाषाओं पर विशेष ध्यान देते हुए भारतीय कला, संस्कृति और भाषाओं को बढ़ावा देना। क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन और उपयोग को बढ़ावा देने के लिए भाषा संस्थानों की स्थापना करना।
- **व्यावसायिक शिक्षा:** राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा में लाने का विशेष प्रावधान है। कक्षा 6 से इसकी शुरुआत छात्रों को व्यावसायिक कौशल से परिचित कराने और रोजगार के लिए तैयार करने के उद्देश्य से की गई है। इस नीति के तहत, छात्रों को उनके क्षेत्र की आवश्यकताओं और संसाधनों के आधार पर कौशल-आधारित प्रशिक्षण मिलेगा, जिसमें कृषि, हस्तशिल्प, और कोडिंग जैसे

क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाएगी। यह पहल आत्मनिर्भर भारत और इंडस्ट्री 4.0 के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए युवाओं को सशक्त बनाने का प्रयास है।

- **मूल्यांकन सुधार:** शिक्षा में सुधार के लिए एनईपी 2020 व्यापक, सतत, और मानदंड-आधारित मूल्यांकन प्रणाली का प्रस्ताव देती है। वर्तमान रट्टा-आधारित प्रणाली को बदलने के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र-परख की स्थापना की जाएगी। परख का उद्देश्य परीक्षा प्रक्रिया को पारदर्शी और समग्र बनाना होगा, जिसमें छात्रों के विश्लेषणात्मक और व्यावहारिक कौशल पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। इस प्रक्रिया में प्रोजेक्ट वर्क, पोर्टफोलियो और डिजिटल टूल्स का उपयोग छात्रों की वास्तविक क्षमताओं का आकलन करने के लिए किया जाएगा। यह कदम शिक्षा को केवल प्रमाणपत्र प्रदान करने से आगे ले जाकर जीवन कौशल विकसित करने का माध्यम बनाएगा।
- **संस्थागत पुनर्गठन:** शैक्षणिक संस्थानों में बेहतर प्रशासन और नियामक तंत्र सुनिश्चित करना। संबद्धता प्रणाली को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करना और कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को अधिक स्वायत्तता देना। उच्च शिक्षा (चिकित्सा और कानूनी शिक्षा को छोड़कर) के लिए एकल नियामक की स्थापना करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक महत्वाकांक्षी, दूरदर्शी सुधार है जिसका उद्देश्य भारत की शिक्षा प्रणाली को बदलना है। यह एक अधिक न्यायसंगत, समावेशी और बहु-विषयक शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र बनाने का प्रयास करता है जो विद्यार्थियों को 21वीं सदी के कौशल के साथ सशक्त बनाता है और साथ ही भारतीय भाषाओं, संस्कृति और मूल्यों को बढ़ावा देता है। प्रौद्योगिकी एकीकरण, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षक सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, इस नीति का लक्ष्य भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति के रूप में स्थापित करना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को एक परिवर्तनकारी नीति के रूप में स्थापित किया गया है जो आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और अनुभवात्मक शिक्षा को बढ़ावा देती है। यह शिक्षा को लोकतांत्रिक बनाने के लिए ए.आई. और अन्य उभरती प्रौद्योगिकियों के उपयोग की कल्पना करता है, विशेष रूप से डिजिटल मंचों और व्यक्तिगत शिक्षण वातावरण के माध्यम से। शिक्षा में ए.आई. को एकीकृत करके, एनईपी का उद्देश्य छात्रों को भविष्य के कार्यबल के लिए तैयार करना और भारत को अनुसंधान और नवाचार के लिए एक वैश्विक केंद्र बनने में सक्षम बनाना है।

विकसित भारत 2047 की अवधारणा

यह भारत के विकास के लिए एक दृष्टिकोण है, जो 2047 में देश की स्वतंत्रता के 100वें वर्ष के साथ जुड़ा है। इसमें 2047 तक भारत को एक विकसित, आत्मनिर्भर और समावेशी राष्ट्र के रूप में विकसित करने के लिए सामाजिक-आर्थिक, तकनीकी और सांस्कृतिक क्षेत्रों में कई लक्ष्य शामिल हैं।वर्तमान में भारत विश्व की पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, और हमारी औसत वार्षिक विकास दर लगभग 6.5% है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, लेकिन विकसित भारत बनने के लिए हमें आने वाले वर्षों में आर्थिक स्थिरता और निरंतरता बनाए रखते हुए 7-

8% की वार्षिक विकास दर हासिल करनी होगी। इसके लिए दीर्घकालिक दृष्टिकोण, मजबूत नीतियाँ, और क्रियान्वयन में पारदर्शिता आवश्यक है।

विकसित भारत केवल आर्थिक समृद्धि का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह समाज के हर वर्ग को समान अवसर और अधिकार प्रदान करने वाला एक समावेशी मॉडल है। यह मॉडल सामाजिक न्याय, समानता और अवसरों की उपलब्धता पर आधारित है, जैसा कि हमारे संविधान के प्रस्तावना में उल्लिखित "न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व" के मूल्यों में परिलक्षित होता है। इसका लक्ष्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहाँ हर नागरिक को शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार के समान अवसर मिले।

विकसित भारत 2047 का सपना तभी साकार हो सकता है जब समाज में समावेशिता और समानता हो। हाशिए पर रहने वाले समुदायों, महिलाओं, और बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करने के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 ने समावेशी शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है, जिससे सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित हो सके।

यह भारत में एक ऐसे समाज का निर्माण करने की दिशा में कदम बढ़ा रहा है, जहाँ लैंगिक समानता, सामाजिक समरसता, और हर वर्ग को अपनी क्षमता का अधिकतम उपयोग करने का अवसर मिले। सामाजिक न्याय के साथ-साथ गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता, और स्वच्छता जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना भी आवश्यक है।

विकसित भारत के दृष्टिकोण से जुड़े मुख्य लक्ष्य नीचे दिए गए हैं:

- **आर्थिक विकास और वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता:** सतत और समावेशी उच्च आर्थिक विकास हासिल करना, जिससे भारत दुनिया की सबसे बड़ी और सबसे प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बन जाए। निकट भविष्य में और 2047 तक भारत को एक 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था में बदलना। व्यापार और वाणिज्य में भारत को वैश्विक नेता के रूप में स्थापित करने के लिए विनिर्माण, सेवाओं और निर्यात को बढ़ावा देना। आयात पर निर्भरता कम करने और रक्षा, इलेक्ट्रॉनिक्स और फार्मास्यूटिकल्स जैसे क्षेत्रों में घरेलू क्षमताओं का निर्माण करने के लिए आत्मनिर्भर भारत (आत्मनिर्भर भारत) पहल के माध्यम से नवाचार को बढ़ावा देना।
- **तकनीकी उन्नति और डिजिटल नेतृत्व:** कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) (AI), मशीन लर्निंग, ब्लॉकचेन और क्वांटम कंप्यूटिंग जैसी उभरती हुई तकनीकों में आगे बढ़कर भारत को प्रौद्योगिकी और नवाचार के लिए एक वैश्विक केंद्र के रूप में स्थापित करना। डिजिटल बुनियादी ढांचे, डिजिटल भुगतान और ई-गवर्नेंस में तेजी लाकर डिजिटल अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना। आईटी, जैव प्रौद्योगिकी, फिनटेक और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे प्रौद्योगिकी-संचालित उद्योगों पर ध्यान केंद्रित करके एक स्टार्ट-अप पारिस्थितिकी तंत्र का पोषण

करना। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कृषि और स्मार्ट शहरों जैसे क्षेत्रों में योगदान देकर भारत को AI में वैश्विक स्तर पर श्रेष्ठ बनाना।

- **सतत विकास और जलवायु:** पर्यावरणीय स्थिरता प्राप्त करके, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करके और जलवायु परिवर्तन को संबोधित करके सतत विकास सुनिश्चित करना। अंतर्राष्ट्रीय जलवायु लक्ष्यों के साथ संरेखित करते हुए 2070 तक शुद्ध-शून्य कार्बन उत्सर्जन प्राप्त करना। नवीकरणीय ऊर्जा, विशेष रूप से सौर ऊर्जा को बढ़ावा देना और हरित प्रौद्योगिकियों के उपयोग का विस्तार करना। विनिर्माण और बुनियादी ढांचे के विकास में पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं के माध्यम से परिपत्र अर्थव्यवस्था मॉडल और पारिस्थितिक पदचिह्न को कम करने पर ध्यान केंद्रित करना। खाद्य सुरक्षा और टिकाऊ खेती सुनिश्चित करने के लिए जलवायु-लचीली कृषि और जल प्रबंधन प्रणालियों का विकास करना।
- **बुनियादी ढांचे का विकास और शहरीकरण**: भारत की बढ़ती आबादी का समर्थन करने और सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करते हुए शहरीकरण को बढ़ाने के लिए विश्व स्तरीय बुनियादी ढांचे का निर्माण करना। स्मार्ट शहरों, हाई-स्पीड रेल और आधुनिक परिवहन प्रणालियों में निवेश करना। ग्रामीण बुनियादी ढांचे को बढ़ाना, जिसमें बेहतर कनेक्टिविटी, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा सेवाएँ शामिल हैं, ताकि ग्रामीण-शहरी विभाजन को कम किया जा सके। किफायती आवास परियोजनाओं का कार्यान्वयन, शहरी शासन में सुधार और कुशल शहरी नियोजन के साथ रहने योग्य शहरों का निर्माण करना।
- **सामाजिक समावेशन और समानता:** आर्थिक वर्गों, जातियों, लिंगों और क्षेत्रों में कम असमानताओं के साथ एक अधिक समतापूर्ण समाज प्राप्त करना। गरीबी उन्मूलन और हाशिए पर पड़े समुदायों का उत्थान, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और अवसरों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना। लैंगिक समानता को बढ़ावा देना, विशेष रूप से कार्यबल, नेतृत्व की भूमिकाओं और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना। पिछड़े क्षेत्रों और पूर्वोत्तर भारत के विकास में निवेश करके क्षेत्रीय असमानताओं को पाटना।
- **मानव पूंजी विकास:** शिक्षा, नवाचार और अनुसंधान पर ज़ोर देते हुए भविष्य के लिए तैयार कुशल कार्यबल विकसित करना। समग्र, लचीली और बहु-विषयक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 का पूर्ण कार्यान्वयन। विशेष रूप से STEM क्षेत्रों (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित) में नवाचार को बढ़ावा देने के लिए उच्च शिक्षा और अनुसंधान संस्थानों में निवेश करना। AI-संचालित अर्थव्यवस्था की माँगों के लिए कार्यबल को तैयार करने और उभरते क्षेत्रों में रोज़गार को बढ़ावा देने के लिए पुनर्कौशल और कौशल विकास कार्यक्रम।
- **स्वास्थ्य और कल्याण**: एक मज़बूत और समावेशी स्वास्थ्य सेवा प्रणाली बनाएँ जो सभी नागरिकों के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा पहुँच सुनिश्चित करे। प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों को मज़बूत करना और सार्वजनिक स्वास्थ्य अवसंरचना का विस्तार करना। निवारक स्वास्थ्य सेवा में निवेश करना, मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देना और पोषण और स्वच्छता चुनौतियों का समाधान करना। आयुर्वेद जैसी स्वदेशी

स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों के विकास को बढ़ावा देना, साथ ही चिकित्सा अनुसंधान और आधुनिक स्वास्थ्य सेवा में प्रगति को बढ़ावा देना।

- **आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय सुरक्षा:** रक्षा, ऊर्जा और रणनीतिक प्रौद्योगिकियों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, जिससे भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा और संप्रभुता सुनिश्चित हो सके। मेक इन इंडिया पहल के तहत रक्षा विनिर्माण को बढ़ावा देना, हथियारों और सैन्य प्रौद्योगिकी के स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा देना। उभरते डिजिटल खतरों से बचाव के लिए साइबर सुरक्षा और डेटा गोपनीयता में निवेश करना। क्षेत्रीय और वैश्विक शक्ति के रूप में भारत की भूमिका को मजबूत करना, वैश्विक स्तर पर कूटनीतिक और रणनीतिक साझेदारी को बढ़ाना।
- **सांस्कृतिक संरक्षण और संवर्धन:** भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देना, साथ ही इसे संस्कृति, पर्यटन और सॉफ्ट पावर में वैश्विक नेता के रूप में स्थापित करना। भारतीय भाषाओं, कलाओं, परंपराओं और शिल्प का संरक्षण करना। वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति, मूल्यों और परंपराओं को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक कूटनीति का विस्तार करना। भारत के ऐतिहासिक स्थलों, आध्यात्मिक विरासत और प्राकृतिक सुंदरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए पर्यटन को बढ़ावा देना।
- **कृषि और ग्रामीण विकास:** टिकाऊ प्रथाओं और पद्धतियों को सुनिश्चित करते हुए कृषि का आधुनिकीकरण करना और किसानों की आजीविका में सुधार करना। बेहतर बाजार पहुंच, मूल्य निर्धारण सुधार और प्रौद्योगिकी संचालित खेती के माध्यम से किसानों की आय बढ़ाना। अधिक कृषि उत्पादकता और स्थिरता के लिए सटीक खेती, उपयुक्त सिंचाई प्रणाली और जैविक खेती को बढ़ावा देना। ग्रामीण उद्यमिता और कृषि-औद्योगिक विकास जैसी पहलों के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं का विकास करना।

विकसित भारत 2047 भारत के भविष्य के लिए एक समग्र और महत्वाकांक्षी मार्ग प्रस्तुत करता है, जो आर्थिक समृद्धि, तकनीकी नेतृत्व, सतत विकास और सामाजिक समानता पर केंद्रित है। यह विजन भारत के विविध सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को समाहित करता है, जिसका लक्ष्य समावेशी विकास है जो समाज के हर वर्ग का उत्थान करता है। विकसित भारत का लक्ष्य है कि वर्ष 2047 तक भारत एक आत्मनिर्भर, आर्थिक रूप से मजबूत और तकनीकी रूप से उन्नत राष्ट्र हो।

ए.आई. को इस दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण स्तंभ माना जाता है क्योंकि इसमें शासन और स्वास्थ्य सेवा से लेकर कृषि और शिक्षा तक के अनुप्रयोग शामिल हैं। हालाँकि, इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारतीयता से संबंधित महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है - सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक विशिष्टताएँ जो भारत की राष्ट्रीय पहचान को परिभाषित करती हैं।

भारतीयता के सन्दर्भ में ए. आई. से जुड़ी विभिन्न चुनौतियाँ

आज के डिजिटल युग में, जहाँ तकनीकी विकास और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पैठ बना ली है, वहीं भारतीय समाज और संस्कृति के संदर्भ में ए.आई. के उपयोग से जुड़ी कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ सामने आई हैं। भारतीयता, जो हमारे सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, बहुभाषावाद, और सामाजिक संरचनाओं से गहरी जुड़ी हुई है, ए.आई. के उपयोग में भी अपनी पहचान और उद्देश्य को बनाए रखने की चुनौती पेश करती है। भारत में विभिन्न जातीय, धार्मिक और भाषाई समूहों की विविधता को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक है कि ए.आई. के समाधान और तकनीकी प्लेटफ़ॉर्म भारतीय समाज के लिए उपयुक्त और संवेदनशील हों। ए.आई. का प्रसार, विशेष रूप से शिक्षा और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में, यदि सावधानीपूर्वक नहीं किया गया, तो यह हमारी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक एकता और न्याय के सिद्धांतों के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है।

ए.आई. का उपयोग भारतीय समाज के समावेशी और समानता के मूल्यों के साथ संतुलन बनाए रखने में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि ए.आई. केवल एक सामान्य वैश्विक दृष्टिकोण से विकसित होता है, तो यह भारतीय भाषाओं, पारंपरिक ज्ञान, और सांस्कृतिक संदर्भों को नकार सकता है। भारतीयता का एक महत्वपूर्ण पहलू है हमारी बहुभाषिकता, जिसमें हर राज्य और क्षेत्र की अपनी विशिष्ट भाषाएँ और बोलियाँ हैं। यदि ए.आई. इन भाषाओं और सांस्कृतिक विविधताओं को नजरअंदाज करता है, तो यह समाज के बड़े हिस्से को बाहर कर सकता है, जिससे डिजिटल विभाजन और असमानता बढ़ सकती है। इसके अलावा, ए.आई. की तकनीकें और निर्णय-निर्माण प्रक्रिया आमतौर पर पश्चिमी दृष्टिकोण पर आधारित होती हैं, जो भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ मेल नहीं खातीं।

इसके अलावा, ए.आई. के बढ़ते प्रभाव के साथ, यह सवाल भी उठता है कि क्या यह हमारी शिक्षा, कार्यकुशलता और समाजिक न्याय की अवधारणाओं के अनुरूप है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का उद्देश्य भारत में शिक्षा प्रणाली में समावेशिता, समानता, और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना है। अगर ए.आई. के माध्यम से शिक्षा और रोजगार के अवसरों का डिजिटलीकरण इस दृष्टिकोण से भिन्न होता है, तो इससे सामाजिक न्याय की अवधारणा को खतरा हो सकता है। ए.आई. का उपयोग भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ और सामाजिक असमानताओं को समझे बिना किया गया, तो यह न केवल डिजिटल समाज में असमानता को बढ़ावा दे सकता है, बल्कि यह भारत की बहुलतावादी सामाजिक संरचना के लिए भी खतरे का कारण बन सकता है। ऐसे में, ए.आई. को भारतीयता के संदर्भ में संवेदनशीलता, विविधता और समानता के सिद्धांतों के साथ मेलजोल करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि हम एक समावेशी, प्रौद्योगिकियों से सशक्त भारत की ओर बढ़ सकें।

भाषाई विविधता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता कार्यान्वयन

एनईपी 2020 के तहत भारतीय शिक्षा में ए.आई. को लागू करने में मूलभूत चुनौतियों में से एक देश की भाषाई विविधता है। भारत में सैकड़ों भाषाओं का उपयोग किया जाता है, जिसमें से संविधान में 22 आधिकारिक तौर पर

मान्यता प्राप्त भाषाएँ हैं। यह शिक्षा नीति शिक्षा में बहुभाषावाद को बढ़ावा देती है, विशेष रूप से प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। इस संदर्भ में, ए.आई. का कार्यान्वयन भारतीय समाज की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता को समाहित करने में एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करता है।

ए.आई., विशेष रूप से प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) के क्षेत्र में, अंग्रेजी जैसी भाषाओं में उल्लेखनीय प्रगति दिखाई देती है, लेकिन भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से कम संसाधन वाली भाषाओं में इसका अनुप्रयोग अभी भी अविकसित है। हालांकि, इस समस्या का समाधान भी धीरे-धीरे सामने आ रहा है। उदाहरण स्वरूप, गूगल का प्रोजेक्ट रिलेट और हालिया NLP विकास जैसे हिंदी, तमिल और बंगाली जैसी भारतीय भाषाओं में यह दिखाते हैं कि ए.आई. मॉडल भाषाई विविधता के अनुरूप अनुकूलित हो सकते हैं। इसके अलावा, भारत में अनुवादिनी जैसे नवाचार भी उल्लेखनीय हैं, जो भारतीय भाषाओं में टेक्स्ट और संवाद का सटीक अनुवाद प्रदान करने के लिए ए.आई. का उपयोग कर रहे हैं। इन तकनीकों के माध्यम से, भारतीय भाषाओं में आवाज़ पहचान, अनुवाद और संवाद में प्रगति हो रही है। फिर भी, भाषाई विविधता को समायोजित करने के लिए ए.आई. की व्यवस्था को और अधिक स्थानीयकृत किया जाना चाहिए, ताकि यह भारतीय समाज की विभिन्न भाषाओं और बोलियों के साथ बेहतर तालमेल बैठा सके।

यदि भारतीय भाषाओं में ए.आई. क्षमताओं को विकसित करने के लिए ठोस प्रयास नहीं किए जाते, तो एक जोखिम है कि डिजिटल विभाजन गहरा हो जाएगा, भाषाई असमानताओं को मजबूत करेगा और सांस्कृतिक पहचान को कमजोर करेगा। यह केवल भारत के डिजिटल भविष्य के लिए चुनौती नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज में समावेशिता और समानता की भावना को भी प्रभावित कर सकता है। इसलिए, भारतीय भाषाओं में ए.आई. के विकास के लिए निरंतर और समर्पित प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि ए.आई. तकनीकें समग्र रूप से समावेशी और सशक्त बन सकें।

देशज/स्वदेशी ज्ञान प्रणालियाँ और कृत्रिम बुद्धिमत्ता

भारत की स्वदेशी ज्ञान प्रणालियाँ, जैसे आयुर्वेद, वैदिक गणित, योग, और लोक ज्ञान, न केवल हमारे सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा हैं, बल्कि हमारे समाज में जीवन के हर पहलू को समझने और बेहतर बनाने के लिए अनमोल धरोहर भी हैं। इन प्रणालियों में प्रकृति, शरीर, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक न्याय के बारे में गहरे और व्यापक विचार हैं, जो पश्चिमी ज्ञान परंपराओं से अलग हैं। हालांकि, वैश्विक ए.आई. प्रणालियाँ और तकनीकी उपकरण बड़े पैमाने पर पश्चिमी वैज्ञानिक पद्धतियों और ज्ञान मॉडल पर आधारित हैं, और दुर्भाग्यवश स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को इनसे बाहर रखा गया है। यह दृष्टिकोण भारतीय संदर्भ में ए.आई. के कार्यान्वयन में एक गंभीर चुनौती उत्पन्न करता है, क्योंकि अगर इन पारंपरिक प्रणालियों का समावेश नहीं किया जाता है, तो ए.आई. संचालित शैक्षिक उपकरण और प्लेटफ़ॉर्म भारत की सांस्कृतिक और वैचारिक विविधता को नजरअंदाज कर सकते

हैं। इसका परिणाम यह हो सकता है कि छात्रों को केवल पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओं से परिचित कराया जाए, जो हमारी सभ्यता की गहरी और समृद्ध धरोहर से जुड़ा नहीं है।

इसके बावजूद, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 (NEP 2020) और विकसित भारत 2047 के लक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि भारत को वैश्विक स्तर पर एक शक्तिशाली, आत्मनिर्भर और समावेशी राष्ट्र के रूप में खड़ा करने के लिए हमें अपनी स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को पुनः सम्मान देना और उन्हें समाहित करना आवश्यक है। यही कारण है कि ए.आई. और डिजिटल प्रौद्योगिकी का सही उपयोग करते हुए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ, जो हमारी सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा हैं, शिक्षा के क्षेत्र में एकीकृत की जाएं। उदाहरण स्वरूप, आयुर्वेद के शास्त्र, योग की सिद्धांतें, और वेदों में निहित गणितीय सिद्धांतों को ए.आई. मॉडल में शामिल किया जा सकता है ताकि शिक्षा के एक पारंपरिक, समृद्ध और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया जा सके।

हालाँकि, ए.आई. द्वारा स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को सम्मान देने और एकीकृत करने की प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ सामने आती हैं। सबसे पहली चुनौती यह है कि हम ऐसी ए.आई. प्रणाली (एल्गोरिदम) विकसित करें जो पारंपरिक भारतीय ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। यह एल्गोरिदम न केवल स्वदेशी ज्ञान को शामिल करेगा, बल्कि उसे उस रूप में प्रस्तुत करेगा जो छात्रों को नए और प्रभावी तरीके से सीखने की सुविधा प्रदान करे। इसके साथ ही यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण है कि ए.आई. आधारित शैक्षिक उपकरणों के माध्यम से हम अपनी सांस्कृतिक पहचान को खो न दें, बल्कि उसे बढ़ावा दें। अगर यह संतुलन सही तरीके से स्थापित किया जाता है, तो ए.आई. न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि करेगा, बल्कि यह हमारे सांस्कृतिक और वैचारिक धरोहर को भी मजबूती से प्रस्तुत करेगा। इसके लिए हमें ए.आई. के विकास में भारतीय संदर्भ और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता देनी होगी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हम वैश्विक डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग अपनी जड़ों के साथ जोड़ते हुए करें।

डिजिटल विभाजन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता तक पहुँच

डिजिटल डिवाइड भारत में एआई-संचालित विकास के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा बना हुआ है। जबकि एनईपी 2020 ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म पर जोर देता है, इंटरनेट और तकनीक तक पहुंच अत्यधिक असमान है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 79वें दौर (जुलाई 2022-जून 2023) के अनुसार, 15-24 वर्ष के ग्रामीण युवाओं में से केवल 82.1% इंटरनेट का उपयोग करने में सक्षम हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ा 91.8% है। यह अंतर इंगित करता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 18% युवा इंटरनेट का उपयोग नहीं कर पाते, जिससे एआई-संबंधित शैक्षिक संसाधनों तक उनकी पहुंच सीमित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, 15-24 वर्ष के ग्रामीण युवाओं में से 74.9% संदेशों को संलग्न फ़ाइलों के साथ भेजने में सक्षम हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह प्रतिशत 87.3% है। यह दर्शाता है कि डिजिटल कौशल में भी ग्रामीण और शहरी युवाओं के बीच अंतर है, जो एआई-आधारित शिक्षा और सेवाओं के प्रभावी उपयोग में बाधा बन सकता है।

डिजिटल विभाजन का यह परिदृश्य सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार को बढ़ावा देता है, विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं जैसे हाशिए के समुदायों के लिए। यदि डिजिटल असमानता को दूर करने के लिए लक्षित हस्तक्षेप नहीं किए गए, तो विकसित भारत के तहत समावेशी विकास को बढ़ावा देने में एआई की क्षमता सीमित रह सकती है, और मौजूदा असमानताएँ और गहरी हो सकती हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता

भारत में एआई प्रणालियों का विकास और परिनियोजन महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्न उठाता है, विशेषकर उन मूल्यों और नैतिक ढाँचों के संदर्भ में जो इन प्रौद्योगिकियों का आधार बनते हैं। वर्तमान में, एआई नैतिकता पर अधिकांश विमर्श पश्चिमी व्यक्तिवाद से प्रभावित है, जो गोपनीयता, स्वायत्तता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर देता है। हालाँकि, भारतीय समाज सामुदायिक मूल्यों, सामाजिक सद्भाव और सामूहिकता को प्राथमिकता देता है। इस परिप्रेक्ष्य में, नैतिक मानकों का पालन करते हुए इन सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मान करने वाली एआई प्रणालियों का डिज़ाइन एक विशिष्ट चुनौती प्रस्तुत करता है।

भारत में, जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर गहरे सामाजिक भेदभाव मौजूद हैं, जो एआई एल्गोरिदम के प्रशिक्षण डेटा में पूर्वाग्रह के रूप में परिलक्षित हो सकते हैं। इससे शासन, भर्ती या शिक्षा में उपयोग की जाने वाली एआई प्रणालियाँ इन पूर्वाग्रहों को कायम रख सकती हैं, यहाँ तक कि उन्हें और बढ़ा सकती हैं, यदि उन्हें समावेशी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील बनाने के लिए सावधानीपूर्वक डिज़ाइन नहीं किया जाता।

इन चुनौतियों को संबोधित करने के लिए, नीति आयोग ने 2021 में "Principles for Responsible AI" शीर्षक से एक दस्तावेज़ जारी किया, जिसमें निष्पक्षता, जवाबदेही और समावेशिता पर बल दिया गया है। इन सिद्धांतों को एआई प्रणालियों में शामिल करने से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि वे भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के साथ संरेखित हों।

वर्तमान में, भारत में एआई के लिए एक व्यापक विनियामक ढाँचे का अभाव है, जो यह सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है कि एआई प्रौद्योगिकियाँ देश के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों और विकास लक्ष्यों के साथ संरेखित हों। उचित विनियमन के बिना, यह जोखिम है कि एआई प्रौद्योगिकियों का उपयोग उन तरीकों से किया जा सकता है जो गोपनीयता, सुरक्षा और सामाजिक समानता को कमजोर करते हैं। उदाहरण के लिए, निगरानी में एआई का उपयोग (जैसे चेहरे की पहचान प्रणाली) नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन कर सकता है, विशेषकर मजबूत डेटा गोपनीयता कानूनों की अनुपस्थिति में।

इसलिए, एक ऐसा शासन ढाँचा स्थापित करना जो नैतिक सुरक्षा उपायों के साथ नवाचार को संतुलित करे, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और विकसित भारत के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण होगा। इस ढाँचे को भारत की अनूठी सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं पर विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एआई तकनीकों का उपयोग असमानता और भेदभाव को बढ़ाने के बजाय समावेश और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए किया जाए।

भारत में शिक्षा का भविष्य और भारतीयता:

भारतीय शिक्षा प्रणाली में "भारतीयता" का तात्पर्य आध्यात्मिकता, सामाजिक न्याय, विविधता में एकता और "वसुधैव कुटुम्बकम्" (विश्व एक परिवार है) जैसे मूल्यों पर केंद्रित शिक्षा से है। अरोड़ा (2021) के अनुसार, "भारत माता" की आध्यात्मिक अवधारणा से जुड़े व्यक्ति धर्म, जाति या भाषा के आधार पर विभाजनकारी ताकतों का विरोध करेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में "भारतीयता" को बढ़ावा देना एक केंद्रीय विषय है, जो भारतीय ज्ञान, परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों और भाषाओं के महत्व पर जोर देती है। समकालीन संदर्भ में, लोकतांत्रिक सिद्धांतों को भी शिक्षा में शामिल किया गया है, जो भारतीय संविधान में उल्लिखित विविधता, मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों पर जोर देते हैं। अरोड़ा (2021) यह भी बताते हैं कि छात्रों के बीच लोकतांत्रिक संस्कृति की समझ को बढ़ावा देना और राजनीतिक लाभ के लिए लोकतांत्रिक संस्थानों को कमजोर करने वाली ताकतों की पहचान करना महत्वपूर्ण है।

भविष्य में, भारतीय शिक्षा प्रणाली 21वीं सदी के कौशल, जैसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजिटल साक्षरता और रचनात्मकता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित करेगी, जिससे उभरती वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए कार्यबल तैयार होगा। "भारतीयता" के विचार में बहुलवादी पहचान को पोषित करना शामिल है, जहाँ धर्म, भाषा और संस्कृति में विविधता का सम्मान किया जाता है, जिससे सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा मिलता है। लचीली, बहु-विषयक शिक्षा प्रणाली नवाचार, उद्यमशीलता और भविष्य के लिए तैयार कार्यबल के विकास को प्रोत्साहित करेगी। सार्वभौमिक पहुँच के लिए प्रतिबद्धता, विशेष रूप से हाशिए के समुदायों के लिए, सुनिश्चित करेगी कि भारत का शैक्षिक विकास समावेशी और न्यायसंगत हो, जो सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक अंतर को पाट सके।

भारतीय भाषाओं, कलाओं और परंपराओं पर जोर देते हुए, आधुनिक प्रगति को एकीकृत करते हुए, भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने की गहरी प्रतिबद्धता महत्वपूर्ण है। शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) जैसी उभरती हुई तकनीकों का उपयोग स्मार्ट, अधिक कुशल शिक्षण वातावरण बनाएगा, शहरी-ग्रामीण विभाजन को पाटेगा और डिजिटल शिक्षण को बढ़ावा देगा। "भारतीयता" आत्मनिर्भर भारत के विज़न से जुड़ी हुई है, जहाँ भारत आत्मनिर्भर बनता है और वैश्विक मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तकनीकी और सांस्कृतिक नेतृत्व में योगदान देता है।

संक्षेप में, 2047 तक, भारत की शिक्षा प्रणाली आधुनिकता को परंपरा के साथ मिलाकर एक ज्ञान-आधारित, आत्मनिर्भर समाज का निर्माण करेगी, जो वैश्विक स्तर पर उत्कृष्टता प्राप्त करते हुए अपने सांस्कृतिक सार को बनाए रखेगी, तकनीकी नवाचार, समावेशिता और राष्ट्रीय पहचान की मजबूत भावना द्वारा परिभाषित भविष्य को आकार देगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और विकसित भारत के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) का एकीकरण अपार अवसर और गहन चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करता है। जबकि ए.आई. में शिक्षा, शासन और अर्थव्यवस्था को बदलने की क्षमता है, लेकिन इसकी तैनाती को भारत के विविध सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने के साथ सावधानीपूर्वक जोड़ा जाना चाहिए - जिसे "भारतीयता" कहा जा सकता है। भाषाई विविधता, स्वदेशी ज्ञान प्रणाली, आर्थिक असमानता और नैतिक एआई शासन से संबंधित चुनौतियों का

समाधान यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक होगा कि एआई समावेशी और सांस्कृतिक रूप से प्रतिध्वनित विकास के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करे। ए.आई. प्रौद्योगिकियों के डिजाइन और उनके उपयोग में भारतीयता के सिद्धांतों को अपनाकर, भारत न केवल राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 और विकसित भारत के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है, बल्कि दुनिया के लिए नैतिक, समावेशी ए.आई. का एक मॉडल भी पेश कर सकता है।

विकसित भारत 2047 विजन, जब शिक्षा और "भारतीयता" के लेंस के माध्यम से देखा जाता है, तो भविष्य के भारत के लिए मंच तैयार करता है जो वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी और अपनी सांस्कृतिक विरासत में गहराई से निहित है। शिक्षा इस भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के लक्ष्यों के साथ संरेखित होती है और समग्र विकास, आलोचनात्मक सोच और तकनीकी दक्षता को बढ़ावा देती है।

संदर्भ सूची

1. अरोड़ा, पंकज. एवं पाण्डेय, रामानंद (2023). भारत और शिक्षा का भारतीयकरण. अरोड़ा, पी. एवं उषा शर्मा (सम्पा.) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: रचनात्मक सुधारों की ओर में प्रकाशित, शिप्रा पब्लिकेशनस, दिल्ली.
2. Centre for Policy Research. (2023). India's Path to 2047: Challenges and Opportunities. CPR Policy Brief No. 123.
3. Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
4. National Development Council. (2022). India Vision 2047: A Strategy for a Developed India. Government of India.
5. National Sample Survey Office(2024). Comprehensive Annual Modular Survey, 2022-23. NSS 79th Round. Ministry of Statistics and Programme Implementation. Government of India.
6. NITI Aayog. (2022). Responsible AI for All: Adopting the Framework – A use case approach on Facial Recognition Technology. Government of India.
7. Vivekananda, S. (1997). *Complete Works of Swami Vivekananda*. Advaita Ashrama.

2

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका: हेलेन लेप्चा के विशेष संदर्भ में

डॉ. शान्तेष कुमार सिंह

आचार्य, सीआईपीओडी और डायरेक्टर एचआरएसपी, स्कूल ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. राधा

रिसर्च असिस्टेंट, सीआईपीओडी, स्कूल ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय, नई दिल्ली

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन स्वतंत्रता के लिए एक ऐतिहासिक अभियान था, जिसने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को समाप्त करने के लिए विविध विश्वासों, रणनीतियों और नेताओं को एकजुट किया। 17वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के विस्तार के साथ शुरू हुआ ब्रिटिश प्रभुत्व, 19वीं शताब्दी के मध्य तक सैन्य जीत और क्षेत्रीय अधिग्रहण के माध्यम से चरम पर था। 1857 के विद्रोह को दबा दिया गया, लेकिन इसने ब्रिटिश नीतियों के प्रति व्यापक आक्रोश को उजागर किया और एक व्यापक राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए मंच तैयार किया। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई एन सी) ने शुरू में संवैधानिक साधनों के माध्यम से मध्यम सुधारों को आगे बढ़ाया। दादाभाई नौरोजी जैसे शुरुआती नेताओं ने ब्रिटिश शासन के तहत आर्थिक शोषण को उजागर किया, विशेष रूप से ड्रेन थ्योरी के माध्यम से। हालाँकि, सीमित प्रगति के साथ बढ़ती निराशा ने अधिक मुखर राष्ट्रवाद को जन्म दिया, जिसका समर्थन बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चंद्र पाल जैसे नेताओं ने किया (चंद्रा, 2019)।

1915 में महात्मा गांधी के प्रवेश ने आंदोलन में क्रांति ला दी, चंपारण सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन और नमक मार्च जैसे अभियानों के माध्यम से अहिंसा और जन आंदोलन पर जोर दिया। इसके साथ ही, भगत सिंह के (एच एस आर ए) और सुभाष चंद्र बोस के (आई एन ए) जैसे क्रांतिकारी समूहों ने सशस्त्र प्रतिरोध किया। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन एक निर्णायक चरण था, जिसने ब्रिटिश शासन की अस्थिर प्रकृति को प्रदर्शित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, स्वतंत्रता की तीव्र मांग, सांप्रदायिक हिंसा और विद्रोह के साथ, 1947 में ब्रिटेन को नियंत्रण छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। हालाँकि, यह जीत भारत और पाकिस्तान के दुखद विभाजन के साथ आई, जिससे महत्वपूर्ण प्रवास और संघर्ष हुआ। यह आंदोलन लचीलेपन और स्वशासन की खोज का एक प्रमाण है (अहीर, 2017)।

पूर्वोत्तर भारतीय जनजातियों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसमें पुरुषों और महिलाओं दोनों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण और दमनकारी सामंती व्यवस्था का विरोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1857 के सिपाही विद्रोह से पहले भी, संथाल, कोल और मुंडा विद्रोह जैसे आदिवासी विद्रोहों ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ़ शुरुआती अवज्ञा का प्रदर्शन किया। महिलाएँ इन आंदोलनों में समान रूप से शामिल थीं, अपने

 ISSN: 2321-0443

पुरुष समकक्षों के साथ-साथ कठिनाइयों को झेल रही थीं (चंद्रा, 2000)। आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों में, सिक्किम की हेलेन लेप्चा आदिवासी समुदाय और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए अपने आजीवन समर्पण के लिए जानी जाती हैं। स्वतंत्रता संग्राम में सिक्किम की संभवतः एकमात्र प्रतिभागी के रूप में पहचानी जाने वाली, उनके योगदान को तब तक काफी हद तक अनदेखा किया गया जब तक कि बंगाल गोरखा परिषद द्वारा हाल ही में किए गए शोध ने उनकी कहानी को प्रकाश में नहीं लाया। हेलेन लेप्चा की विरासत भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में आदिवासी महिलाओं की महत्वपूर्ण लेकिन अक्सर अनदेखी की गई भूमिका का उदाहरण है।

पृष्ठभूमि: भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

> *" महिलाओं को कमज़ोर कहना अपमान है, यह पुरुषों द्वारा महिलाओं के साथ अन्याय है। अगर ताकत का मतलब नैतिक शक्ति है, तो महिला पुरुषों से कहीं ज़्यादा श्रेष्ठ है। क्या उसमें ज़्यादा अंतर्ज्ञान नहीं है, क्या वह ज़्यादा आत्म-बलिदान नहीं करती... क्या उसमें सहनशक्ति की ज़्यादा शक्ति नहीं है, क्या उसमें ज़्यादा साहस नहीं है? उसके बिना पुरुष नहीं हो सकता। अगर अहिंसा हमारे अस्तित्व का नियम है, तो भविष्य महिलाओं के हाथ में है। मैंने इस विचार को सालों तक पाला है।"* (महात्मा गांधी)

क्रांतिकारी आंदोलनों में महिला नेताओं के शुरुआती योगदान के विभिन्न उदाहरण हैं जैसे: मुक्ति संग्राम में महिलाओं की भूमिका ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ प्रतिरोध के शुरुआती वर्षों में शुरू हुई। महिला नेतृत्व के शुरुआती उदाहरणों में से एक झांसी की रानी लक्ष्मी बाई थीं। 1857 के विद्रोह के दौरान प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में, लक्ष्मी बाई ने अपने राज्य को बनाए रखने के लिए ब्रिटिश सेना के खिलाफ वीरतापूर्वक लड़ाई लड़ी। उनकी बहादुरी ने महिलाओं की एक पीढ़ी को औपनिवेशिक उत्पीड़न से लड़ने और अपने अधिकारों और सम्मान के लिए हथियार उठाने के लिए प्रेरित किया। बंगाल में एक अन्य महिला नेता, मातंगिनी हज़ारा भारत छोड़ो आंदोलन में एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में उभरीं। 73 वर्ष की आयु में, हज़ारा ने तामलुक में एक पुलिस स्टेशन पर कब्जा करने के लिए प्रदर्शनकारियों की परेड का नेतृत्व किया। ब्रिटिश सेना द्वारा गोली मारे जाने के बावजूद, वह बेहोश होने तक "*वंदे मातरम*" चिल्लाते हुए मार्च करती रहीं। उनकी हिम्मत और शहादत ने उन्हें प्रतिरोध का प्रतीक बना दिया और लाखों लोगों को लड़ाई में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी तरह, एक और क्रांतिकारी शख्सियत कल्पना दत्ता और प्रीतिलता वद्देदार चटगाँव क्रांतिकारी पार्टी की सदस्य थीं। सूर्य सेन के साथ, उन्होंने 1930 के चटगाँव शस्त्रागार छापे में भाग लिया, जो बंगाल में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने का एक साहसी प्रयास था। पकड़े जाने और आजीवन कारावास की सजा सुनाए जाने के बाद, दत्ता ने अपनी रिहाई के बाद अपनी राजनीतिक भागीदारी फिर से शुरू की, और भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन में एक प्रमुख आवाज़ बन गईं (भट्टाचार्य और सचदेव, 2021)।

वर्ष 1917 को भारतीय महिलाओं के विकास के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा गया। कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष श्रीमती एनी बेसेंट थीं। एनी बेसेंट के अध्यक्ष काल में महिलाओं के लिए समान मताधिकार का आह्वान करने वाला एक प्रस्ताव पारित किया गया था। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने महिलाओं के एक प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया, जो भारत के सचिव श्री मोंटेग्यू और वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड से मिलने गए थे। माउंट-फोर्ड सुधार योजना के तहत, ब्रिटिश सरकार ने महिलाओं को उनकी सामाजिक अक्षमता के कारण संसद में

मतदान करने से वंचित कर दिया; हालाँकि, उन्होंने प्रांतीय विधान परिषद को इस विषय पर विचार करने का अधिकार दिया, यदि वे ऐसा करना चाहें। महिला होम रूल लीग, भारतीय महिला विश्वविद्यालय, महिला भारतीय संघ और महिला सेवा सभा ने इसके खिलाफ़ एक मजबूत विरोध दर्ज करने के लिए एक साथ मिलकर काम किया और अपने अभियान को आगे बढ़ाया। परिणामस्वरूप, राज्य विधान परिषदों को इस मामले को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा (वोहरा, 1962)।

महिला नेताओं ने गांधीवादी अहिंसक आंदोलनों जैसे असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1915 में दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के बाद, गांधी जी भारत लौट आए और स्वशासन और असहयोग आंदोलन की वकालत करने लगे। अहिंसक आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं में सरला देवी, मुथुलक्ष्मी रेड्डी, सुशीला नायर, राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी और अरुणा आसफ अली शामिल थीं। नेहरू महिलाओं, विजया लक्ष्मी पंडित, स्वरूप रानी और कमला नेहरू, साथ ही महात्मा गांधी की पत्नी कस्तूरबा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। लाहौर में, आंदोलन का नेतृत्व लाडो रानी जुत्शी और उनकी बेटियों मनमोहिनी, श्यामा और जनक ने किया था। सविनय अवज्ञा और 1930 के दांडी नमक मार्च में, आज़ादी की ओर अपना मार्च शुरू करने के लिए, महिलाओं ने नमक और जंगलों से संबंधित नियमों की अवहेलना की, स्कूलों, विश्वविद्यालयों, विधायी निकायों और क्लबों पर धरना दिया और "*प्रभात फेरी*" निकाली। गांधीजी ने विशेष रूप से सरोजिनी नायडू को मई 1930 में धरसाना साल्ट वर्क्स पर हमले का नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया। कमला देवी ने नमक का उत्पादन किया, बैठकों में भाषण दिया, शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना दिया और पूरे संघर्ष के दौरान और भी बहुत कुछ किया। उस समय, महिला राष्ट्रीय संघ, नारी सत्याग्रह समिति और महिला पिकेटिंग बोर्ड प्रभावशाली थे (सिंह, 2014)।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के लिए, अंग्रेजों के विरोध में अपनाए गए प्रस्ताव में विशेष रूप से महिलाओं को "*भारतीय स्वतंत्रता के अनुशासित सैनिकों* " के रूप में उल्लेख किया गया था, जिनकी लड़ाई को जारी रखने के लिए आवश्यकता थी। उषा मेहता नामक एक समर्पित देशभक्त ने स्वतंत्रता-युद्ध के "*मंत्र"* को फैलाने के लिए एक रेडियो ट्रांसमीटर "*द वॉयस ऑफ फ्रीडम" की स्थापना* की। आम जनता को प्रदर्शनों और गिरफ्तारियों, युवा राष्ट्रवादियों की कार्रवाइयों और भारत छोड़ो आंदोलन के लिए गांधी की प्रसिद्ध "*करो या मरो* " चेतावनी के बारे में बताया गया। अपनी कैद तक, उषा मेहता और उनके भाई ने अपने प्रसारण प्रयासों को जारी रखा (पाल, एनडी)।

कस्तूरबा के निर्देशन में, दंडी बहन, दही बहन, भक्ति बाई, मिठू बेन, मणिबेन, शिवा बाई पाटिल, नंदू बेन, नर्मदा बेन भट्ट और अन्य द्वारा मध्य प्रांत और गुजरात में सत्याग्रह का आयोजन किया जा रहा था। सरला देवी ताराभाई स्वयंसेवकों के समन्वय में व्यस्त थीं। उनकी बेटी मृदुला ताराभाई ने भी धन से सहायता आंदोलन में की। आबिदा बानू बेगम, जिन्हें बाई अम्मन के नाम से भी जाना जाता है, मुस्लिम महिलाओं में से एक थीं जो अली भाइयों की माँ थीं। उन्होंने खादी के बारे में जागरूकता बढ़ाने और हिंदू-मुस्लिम सद्भाव को बढ़ावा देने के लिए मध्य प्रांतों की यात्रा की। दक्षिण भारत की महिला नेता, जैसे मुत्तु लक्ष्मी रेड्डी और लीलाबाई संग्राम, जो पहले केवल सामाजिक कार्यों में शामिल थीं, बहिष्कार आंदोलन में भाग लेकर मुक्ति संग्राम में शामिल हो गईं (पाल, एनडी.)।

बंबई में महिलाओं ने प्रिंस ऑफ वेल्स की उपस्थिति और उनके लिए विनम्र अभिवादन के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए कई सार्वजनिक बैठकें कीं। ब्रिटिश सरकार ने 8 नवंबर, 1927 को एक अखिल ब्रिटिश आयोग, साइमन कमीशन का गठन किया। कांग्रेस द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें कहा गया कि इसका हर जगह विरोध किया जाना चाहिए। महिलाएँ भी इसमें शामिल रहीं। विरोध प्रदर्शनों में हंसा मेहता ने प्रमुख भूमिका निभाई। साइमन कमीशन के विरोध का एक बड़ा हिस्सा एनी बेसेंट का था। उन्होंने मालाबार में एक सार्वजनिक सभा के संगठन की देखरेख की, जिसमें कई महिलाओं ने भाग लिया। उनका कहना था कि साइमन कमीशन की स्थापना से भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार को नकार दिया गया था। पंजाब में लाडो रानी, जुत्शी, राधा देवी, पार्वती देवी, राजकुमारी अमृत कौर, आत्मा देवी, करतार कौर, और अन्य लोगों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। अनुसूया बाई ने मध्य प्रांत का नेतृत्व किया, जबकि स्वरूप रजनी नेहरू, बेगम अब्दुल कादिर और सुनीति देवी ने उत्तर प्रदेश का नेतृत्व किया। 1928 में गुजरात और मध्य प्रांत में, कुसुम बेन, अमीना गुलाम रसूल, डंडा बेन, गंगा बेन, शिवाभाई पटेल, मणि बेन वल्लभभाई पटेल, मधुमती और अन्य ने कर-मुक्त आंदोलन में सहयोग किया। (भट्टाचार्य और सचदेव, 2021) । महिलाओं के प्रयासों के कारण ही यह अभियान सफल हुआ।

हेलेन लेप्चा उर्फ सावित्री देवी: सिक्किम की अकेली योद्धा

राष्ट्रवादी आंदोलन में पहाड़ी लोग पूरी तरह से उदासीन नहीं थे। असहयोग आंदोलन के दौरान, दार्जिलिंग पहाड़ियों ने एक प्रमुख भूमिका निभाई और यह पहली बार था कि पहाड़ी लोगों ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। हेलेन लेप्चा को सिक्किम की एकमात्र योद्धा के रूप में भी जाना जाता है, जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ 10,000 आदिवासियों के लिए लड़ाई लड़ी, वे सिक्किम के दार्जिलिंग हिल्स की लेप्चा जनजाति से थीं। हालाँकि उनका जन्म सिक्किम में हुआ था, लेकिन उन्होंने अपना अधिकांश जीवन पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग में बिताया। सिक्किम ने उन्हें "*डॉटर ऑफ़ द साइल*" अर्थात "*मिट्टी की बेटी*" का नाम दिया है और उन्हें उनके मातृभूमि के लोग प्यार से याद करते हैं। गांधीजी ने उन्हें सावित्री देवी नाम दिया (हिमालग्रुप, 2010) । जब महात्मा गांधी ने 1917 में चरखा आंदोलन शुरू किया, तो इसने तेज़ी से गति पकड़ी। गांधीजी के अनुयायियों के एक समूह ने चरखा आंदोलन को बढ़ावा देने के लिए कर्सियांग की यात्रा की, और तभी युवा हेलेन लेप्चा उनके भाषण से बहुत प्रभावित हुईं। इसे हेलेन लेप्चा के जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा जा सकता है। 1918 में वे कलकत्ता चली गईं और पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर की पोती द्वारा संचालित चरखा स्कूल में दाखिला लिया। उनके प्रशिक्षकों ने उनकी लगन और युवा ऊर्जा के कारण उन्हें बिहार के मुजफ्फरपुर में राष्ट्रीय स्तर की खादी और चरखा प्रदर्शनी में कलकत्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना, जहाँ उन्होंने जल्द ही चरखा बुनने में महारत हासिल कर ली। इसे उनके जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण मोड़ माना जा सकता है। 1921-1922 में असहयोग आंदोलन में उनकी भागीदारी को कम करके आंकना या अनदेखा करना असंभव है। हेलेन लेप्चा महात्मा गांधी की सबसे प्रिय अनुयायियों में से एक थीं। सावित्री देवी ने एक दशक से भी अधिक समय तक दार्जिलिंग हिल्स में स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया (नारायणी, 2023)।

हेलेन लेप्चा के प्रमुख योगदान और गतिविधियाँ

- **असहयोग आंदोलन के दौरान:**

उस समय, असहयोग आंदोलन दार्जिलिंग के सभी चाय बागानों में फैल चुका था। अंग्रेज बागान श्रमिकों के विभिन्न सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को हल करने में विफल रहे, जिसके कारण उन्हें प्रदर्शनों में शामिल होना पड़ा। इसके अलावा, दार्जिलिंग में कांग्रेस पार्टी के कार्यालय की स्थापना ने पहाड़ी क्षेत्र के स्थानीय निवासियों में काफी उत्साह पैदा किया। गांधीजी के एक उत्साही शिष्य दल बहादुर गिरि के नेतृत्व में बड़ी संख्या में लोग कांग्रेस पार्टी के पीछे एकजुट हुए। शुरुआती प्रतिभागियों में भगतबीर लामा, हेलेन लेप्चा, पुतली देवी और जंगबीर सपकोटा शामिल थे (रॉय, 2012)। यह क्षेत्र पहले स्वदेशी आंदोलन के आदर्शों से प्रभावित था, जिसने विदेशी उत्पादों के बहिष्कार और खादी, या हाथ से बुने हुए वस्त्र, और चरखा, या कताई के पहियों के उपयोग को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया।

इस अवधि के दौरान हेलेन कई प्रसिद्ध महिला नेताओं से प्रभावित थीं, जिनमें एनी बेसेंट, अरुणा आसफ अली, सरला देवी, मैडम भीकाजी कामा, कस्तूरबा गांधी, कमला नेहरू और सरोजिनी नायडू शामिल थीं। हेलेन ने 1920 के दशक के मध्य में अकालग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया और बिहार बाढ़ पीड़ितों की मदद के लिए अपना सब कुछ झोंक दिया। उन्होंने इस अवधि के दौरान कांग्रेस कार्यकर्ता सफी दंड के घर पर गांधीजी से पहली बार मिलीं। गांधीजी ने संभवतः उन्हें गुजरात के साबरमती आश्रम में आमंत्रित किया था। सावित्री देवी गांधीजी की समर्पित शिष्या बन गईं। उन्होंने झरिया कोयला क्षेत्र, धनबाद, बनिकपुर, दानापुर, पटना और मुजफ्फरपुर के साथ-साथ उत्तर प्रदेश और बिहार में कांग्रेस मजदूर संघ की गतिविधियों में व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होंने 1921 में झरिया कोयला क्षेत्र के लगभग दस हज़ार खदान मजदूरों के एक समूह को संगठित किया, ताकि वे मज़दूरों के शोषण और स्थानीय मज़दूरों, जो मुख्य रूप से आदिवासी थे, के प्रतिस्थापन के खिलाफ़ मार्च करें। बंगाल और बिहार के ग्रामीण निवासियों के बीच उनकी बढ़ती लोकप्रियता के परिणामस्वरूप उनके खिलाफ़ वारंट जारी किया गया था (राय, 2014)। उसके बाद, वह कुर्सेओंग लौट आईं और कांग्रेस कमेटी के साथ अपनी नौकरी जारी रखी।

इस आंदोलन में गोरखाओं (आमतौर पर नेपाली और नेपाल और पूर्वोत्तर भारत की सीमा पर रहने वाली अन्य जातीय आबादी) की एक बड़ी संख्या शामिल हुई। सावित्री देवी कुर्सेओंग और सिलीगुड़ी में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आग्रह करने के लिए घर-घर गईं। उन्होंने कई जगहों पर रैलियां निकालीं और विदेशी वस्तुओं को आग के हवाले कर दिया। क्षेत्र में कर्फ्यू लगा दिया गया था, लेकिन उन्होंने प्रदर्शन जारी रखा। सावित्री देवी और 12 अन्य लोगों को पुलिस ने हिरासत में लिया और तीन महीने के लिए दार्जिलिंग जेल में सलाखों के पीछे डाल दिया। अगले दिन सबसे ज़्यादा प्रसार वाले बंगाली अख़बारों में से एक अमृता बाज़ार पत्रिका ने दावा किया कि सावित्री देवी और कई कांग्रेस कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया है। रिहा होने के बाद, उन्हें लगातार निगरानी में रखा गया और तीन साल तक वे कुर्सेओंग शहर से बाहर नहीं निकल पाईं। क्षेत्र के लोग उन्हें अपना नेता मानते थे और उन्हें लोकप्रिय रूप से हेलेन दीदी कहते थे (सिन्हा, 2006)।

- **सुभाष चंद्र बोस के जर्मनी पलायन में सहायता की:**

हेलेन लेप्चा, विभिन्न राष्ट्रवादी हलकों के साथ अपने व्यापक संबंधों और उद्देश्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ-साथ, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सबसे प्रमुख नायकों में से एक, सुभाष चंद्र बोस की जर्मनी पलायन के महत्वपूर्ण चरण के दौरान आश्रय, संसाधन और रसद सहायता प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए

जानी जाती हैं। 1939 में, सुभाष चंद्र बोस को पूना से दार्जिलिंग हिल्स ले जाया गया, जहाँ वे जेल में थे और बहुत बुरी हालत में थे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कुर्सेओंग में उनके बड़े भाई शरत चंद्र के भवन में नजरबंद कर दिया। उन्हें जो कुछ रियायतें मिलीं, उनमें बोस समुदाय के आगंतुकों और क्षेत्र के राष्ट्रीय दिग्गजों से मिल सकते थे, जिनमें सावित्री देवी (हेलेन लेप्चा), पुतली देवी, जंगबीर सपकोटा, गागा शेरिंग और प्रतिमन सिंह लामा शामिल थे। डायरेक्टरी ऑफ़ इंडियन वीमेन टुडे (1976) में दर्ज है कि सावित्री देवी ने सुभाष चंद्र बोस को कुर्सेओंग की जेल से और काबुल के रास्ते जर्मनी भागने में मदद की थी। जब सुभाष चंद्र बोस को गिद्दापहाड़ में घर में नजरबंद रखा गया, तो सावित्री देवी ने अपने पति ईशान अहमद की बेकरी से भेजी गई रोटी के अंदर दबे पत्रों के माध्यम से उनसे संपर्क किया। कुर्सेओंग थाने के पुलिस अधिकारी मनोर हुसैन और खड़गबहादुर बिष्ट ने बोस को कुर्सेओंग से कलकत्ता और वहाँ से काबुल होते हुए जर्मनी जाने में मदद की। यह ज्ञात नहीं है कि सुभाष चंद्र बोस ने कभी अपने उद्देश्यों का खुलासा किया या नहीं, लेकिन जब वे अचानक गायब हो गए, तो क्षेत्र के कई राष्ट्रवादी नेताओं को उन्हें भागने में मदद करने के संदेह में कैद कर लिया गया। बाद में सबूतों के अभाव में राष्ट्रवादी नेताओं को रिहा कर दिया गया (राय, 2014)।

- **वन कानून विरोधी आंदोलन:**

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हेलेन लेप्चा के सबसे उल्लेखनीय योगदानों में से एक पूर्वोत्तर क्षेत्र में वन-विरोधी कानून आंदोलन में उनका नेतृत्व था। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्राधिकरण ने वन नियमों की एक श्रृंखला अपनाई जिसने वन संसाधनों का उपयोग करने के लिए आदिवासी जनजातियों के पारंपरिक अधिकारों को गंभीर रूप से कम कर दिया। इन नियमों का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के लाभ के लिए क्षेत्र के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से लकड़ी का दोहन करना था, जिसका स्वदेशी जनजातियों की आजीविका पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। लेप्चा, कई अन्य आदिवासी लोगों की तरह, अपने जीविका के लिए पेड़ों पर बहुत अधिक निर्भर थे। वन नियमों ने न केवल महत्वपूर्ण संसाधनों तक उनकी पहुँच में बाधा डाली बल्कि उनकी पारंपरिक जीवन शैली को भी प्रभावित किया। अंग्रेजों ने इन प्रतिबंधों को तोड़ने वाले किसी भी व्यक्ति पर भारी जुर्माना और सजा लागू की, जिससे मूल जनजातियों की दुर्दशा बहुत बढ़ गई।

हेलेन लेप्चा इन दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ लड़ाई में एक उल्लेखनीय नेता के रूप में उभरीं। औपनिवेशिक उत्पीड़न के सामने एकता की आवश्यकता को पहचानते हुए, उन्होंने अपने गाँव की महिलाओं को अंग्रेजों के खिलाफ़ खड़े होने के लिए संगठित किया। उनके नेतृत्व में, लेप्चा महिलाओं ने रैलियाँ निकालीं, वन कानूनों की अवहेलना की और औपनिवेशिक प्राधिकरण द्वारा लगाए गए जुर्माने का भुगतान करने से इनकार कर दिया। अवज्ञा के इन कृत्यों का अंग्रेजों द्वारा हिंसक प्रतिशोध के साथ स्वागत किया गया, लेकिन हेलेन लेप्चा और उनके अनुयायी अडिग रहे। वन कानून विरोधी आंदोलन में उनका नेतृत्व इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि कैसे स्वदेशी महिलाओं ने ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रथाओं का विरोध करने में प्रमुख भूमिका निभाई। जबकि मुक्ति आंदोलन के कई पुरुष नेता अंग्रेजों के साथ सीधे संघर्ष में लगे हुए थे, हेलेन लेप्चा जैसी महिलाओं ने जमीनी स्तर पर पहल की, जिसने स्वदेशी भूमि और संसाधनों पर औपनिवेशिक सरकार के एकाधिकार को चुनौती दी गई (राय, 2014)।

- **हेलेन लेप्चा सिक्किम राज्य कांग्रेस की संस्थापक सदस्य के रूप में:**

20वीं सदी के मध्य में हेलेन लेप्चा सिक्किम राज्य कांग्रेस की संस्थापक और प्रमुख सदस्य थीं और सिक्किम को भारत में एकीकृत करने के उद्देश्य से राजनीतिक आंदोलन में उनका प्रमुख योगदान था। सिक्किम के राजनीतिक माहौल में उनके योगदान और भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनके समर्पण ने उन्हें क्षेत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण चरित्र बना दिया, भले ही वह अन्य स्वतंत्रता सेनानियों की तरह राष्ट्रीय स्तर पर उतनी प्रसिद्ध नहीं हैं। सिक्किम राज्य में, सिक्किम राज्य कांग्रेस (एस एस सी) एक राजनीतिक दल था जो विलय का समर्थन करता था। 1947 में स्थापित, इसने सिक्किम के भारत में विलय को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई एन सी) के साथ मिलकर काम किया। नेपाल राज्य कांग्रेस पार्टी और भूटान राज्य कांग्रेस पार्टी दो और दल थे जिनकी स्थापना आई एन सी ने अपने निकटवर्ती विदेशों में भारत के हितों को आगे बढ़ाने के लिए की थी (राय, 2021)।

7 दिसंबर, 1947 को स्थानीय संगठनों प्रजा सुधारक समाज, प्रजा सम्मेलन और प्रजा मंडल ने सिक्किम राज्य कांग्रेस बनाने के लिए एकजुट होने का फैसला किया। पार्टी के संस्थापक सदस्यों में ताशी शेरिंग, गोबरधन प्रधान, डीबी तिवारी, सीडी राय, डीएस लेप्चा, सोनम शेरिंग, एलडी काजी, रॉय चौधरी और हेलेन लेप्चा शामिल थें। उस समय सिक्किम अंग्रेजों का संरक्षित राज्य था और भारत की स्वतंत्रता के बाद, सिक्किम की राजनीतिक स्थिति को लेकर कुछ बहस हुई। सिक्किम के लोगों के नागरिक अधिकार, भूमि सुधार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व उन चिंताओं में से थे जिन्हें एस एस सी ने हल करने का लक्ष्य रखा था। बड़े भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रभाव और लोगों की अपने अधिकारों के बारे में बढ़ती समझ ने सिक्किम के लोकतंत्रीकरण अभियान को आगे बढ़ाया (सिन्हा, 2005)।

हेलेन लेप्चा अपनी बहादुरी और दृढ़ता के कारण पुरुषों के वर्चस्व वाले राजनीतिक माहौल में एक उल्लेखनीय महिला नेता थीं। उन्होंने सामाजिक न्याय, भूमि अधिकार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसी समस्याओं को संबोधित करने वाली कई जमीनी पहलों में भाग लिया। सिक्किम में भूटिया और नेपाली आबादी जैसे अन्य जातीय समूहों के साथ साझेदारी बनाने के उनके प्रयास, अधिक न्यायसंगत और लोकतांत्रिक समाज के लिए संघर्ष में 'लेप्चा समुदाय' तक ही सीमित नहीं थे। एस एस सी में हेलेन लेप्चा की भागीदारी सिक्किम के भारत के साथ एकीकरण के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास के अनुरूप भी थी। कुछ सिक्किमी गुटों ने राजशाही और राज्य की अपनी पहचान को जारी रखने का समर्थन किया, जबकि हेलेन लेप्चा के नेतृत्व वाली एस एस सी ने भारत के साथ मजबूत संबंधों की वकालत की। उन्हें लगा कि अगर सिक्किमी नागरिक भारतीय संघ में एकीकृत हो जाते हैं तो उनके पास लोकतंत्र, प्रगति और उनके नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए अधिक अवसर होंगे।

1975 में राजशाही को उखाड़ फेंकने और सिक्किम के भारतीय संघ का 22वाँ राज्य बनने के बाद, सिक्किम राज्य कांग्रेस के प्रयासों के परिणामस्वरूप अंततः सिक्किम का भारत में विलय हो गया। हालाँकि, इस आंदोलन में हेलेन

लेप्चा के योगदान को अक्सर अधिक प्रसिद्ध हस्तियों ने पीछे छोड़ दिया, लेकिन न्याय और लोकतंत्र के लिए उनकी प्रतिबद्धता अभी भी स्पष्ट है।

- **कुर्सियांग नगर पालिका की पहली महिला आयुक्त:**

1936 में, सावित्री देवी कुर्सेओंग नगरपालिका की पहली महिला आयुक्त चुनी गईं। स्वतंत्रता के बाद, उन्होंने अपने घर पर वंचित और अनाथ बच्चों की सहायता करते हुए अपना मानवीय कार्य जारी रखा। 1958 में एक सम्मान समारोह में, पश्चिम बंगाल सरकार के आदिवासी कल्याण विभाग ने स्वतंत्रता आंदोलन में उनके योगदान को मान्यता दी। 1972 में, उन्हें भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता योद्धा पुरस्कार 'ताम्रपत्र' से सम्मानित किया गया। उन्हें दार्जिलिंग जिले के स्वतंत्रता सेनानी पुरस्कार समिति (भारत सरकार द्वारा बनाई गई सलाहकार संस्था) का अध्यक्ष भी बनाया गया, अन्य सदस्य भूटिया बस्ती के गागा शेरिंग और सिलीगुड़ी के शॉ मंगल पांडे थे। इन दोनों व्यक्तियों के मन में हेलेन के प्रति गहरा सम्मान था (तामलोंग, 2010)।

- **सशक्त जनजातीय समुदाय और महिलाएँ**

हेलेन लेप्चा ने मुक्ति आंदोलन के दौरान सिक्किम और पड़ोसी क्षेत्रों में स्वदेशी समूहों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने समुदाय को संगठित करने और व्यापक राष्ट्रवादी अभियान की चेतना को बढ़ावा देने की आवश्यकता को स्वीकार किया। उन्होंने दूर-दूर के समुदायों का दौरा किया, मुक्ति आंदोलन के उद्देश्यों के बारे में ज्ञान दिया और उन्हें ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने महिलाओं को संगठित करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया, जिन्हें कभी-कभी राजनीतिक गतिविधियों में हाशिए पर रखा जाता था, लेकिन अपने समुदायों का समर्थन करने और अपनी सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

हेलेन लेप्चा ने स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं को शामिल करने के लिए पारंपरिक लैंगिक मानदंडों को चुनौती दी और राजनीतिक भागीदारी में महिलाओं की भागीदारी के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने बैठकों, जुलूसों और प्रदर्शनों का आयोजन किया, जिसके दौरान स्वदेशी समूहों की महिलाओं ने अपनी चिंताओं को व्यक्त किया और अपनी मांगों को जाहिर किया। आंदोलन में महिलाओं को शामिल करने के हेलेन के प्रयासों ने न केवल उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष को मजबूत किया, बल्कि अपने समुदायों के भीतर महिलाओं को भी प्रोत्साहित किया, उन्हें अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने और अपने अधिकारों की मांग करने के लिए एक मंच प्रदान किया (तामलोंग, 2010)।

यदि वह अधिक महत्वाकांक्षी होती, तो वह राजनीतिक या सार्वजनिक जीवन में एक अच्छा पद प्राप्त कर सकती थी, लेकिन एक विशिष्ट लेप्चा की तरह, उन्होंने 18 अगस्त 1980 को अपनी अंतिम सांस लेने तक राजनीति और सत्ता से दूर एक साधारण गांधीवादी जीवन जीने का विकल्प चुना।

हाल के वर्षों में, हेलेन लेप्चा जैसे आदिवासी नेताओं के भारतीय मुक्ति आंदोलन में योगदान की सराहना बढ़ रही है। विद्वानों, कार्यकर्ताओं और सामुदायिक नेताओं ने इन गुमनाम नायकों की कहानियों को उजागर करना और

उनका इतिहास लिखना शुरू कर दिया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके योगदान को भुलाया न जाए। हेलेन लेप्चा की विरासत भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में जीवित है, जहाँ उन्हें एक ऐसे नेता के रूप में माना जाता है, जिन्होंने अपने लोगों के अधिकारों और उनकी संस्कृति के संरक्षण के लिए अभियान चलाया। उनके कार्यों ने कार्यकर्ताओं और नेताओं की एक नई पीढ़ी को प्रेरित किया जो भारत में स्वदेशी जनजातियों के अधिकारों के लिए लड़ना जारी रखते हैं। उनकी उपलब्धियों की मान्यता केवल ऐतिहासिक निष्पक्षता का मामला नहीं है; यह भारत की स्वतंत्रता की कहानी में कई आवाज़ों और दृष्टिकोणों को शामिल करने के महत्व की भी याद दिलाती है। हेलेन लेप्चा की कहानी स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी समुदायों की भूमिका की एक शक्तिशाली याद दिलाती है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ उनकी लड़ाई सिर्फ़ राजनीतिक स्वतंत्रता के बारे में नहीं थी, बल्कि शोषण और विनाश से अपनी ज़मीन, संसाधनों और संस्कृति को बचाने के बारे में भी थी।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हेलेन लेप्चा की भागीदारी स्वतंत्रता के युद्ध में आदिवासी महिलाओं के योगदान को पहचानने की ज़रूरत को रेखांकित करती है। वन-विरोधी कानून आंदोलन में उनका नेतृत्व, लेप्चा संस्कृति को संरक्षित करने के प्रयास और दमन का सामना करने की उनकी दृढ़ता उन्हें भारत के मुक्ति संग्राम के इतिहास में एक प्रमुख पात्र बनाती है। उनकी कहानी स्वदेशी महिलाओं की दृढ़ता और संकल्प का स्मारक है, जिन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विरोध करने और अपने समुदायों के अधिकारों के लिए लड़ने में एक प्रमुख भूमिका निभाई। जैसा कि भारत स्वतंत्रता की अपनी यात्रा पर चिंतन करना जारी रखता है, हेलेन लेप्चा जैसे नेताओं की कहानियों को बड़ी कहानी में एकीकृत करना महत्वपूर्ण है। उनका योगदान हमें याद दिलाता है कि स्वतंत्रता संग्राम सिर्फ़ राजनीतिक स्वतंत्रता के बारे में नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण और उत्पीड़ित आबादी के अधिकारों के बारे में भी था। हेलेन लेप्चा और अन्य आदिवासी नेताओं की स्मृति को पहचान कर, हम यह सुनिश्चित करते हैं कि भारत की स्वतंत्रता का इतिहास समावेशी, विविधतापूर्ण और उन सभी का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी।

* यह लेख भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद दिल्ली द्वारा अनुदानित शोध परियोजना पर आधारित है।

संदर्भ सूची

1. अहीर, आर. (2017). *ए ब्रीफ हिस्ट्ररी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया*. स्पेक्ट्रम बुक्स (पी) लिमिटेड.
2. भट्टाचार्य, एस., एन्ड सचदेव, बी. के. (2021). इमपैटफुल रोल ऑफ़ वुमन फॉर फ्रीडम स्ट्रगल इन इंडिया एंड थेइर कंट्रीब्यूशन. *वर्ल्ड जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च एंड रिव्यूज*, 12(3), 124–130.
    a. https://doi.org/10.30574/wjarr.2021.12.3.0994
3. चंद्रा, बी. (2019). *हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इंडिया*. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
4. चंद्रा, बी. (2000). *इंडियास स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस: 1857-1947*. पेंगुइन इंडिया.
5. पाल, डी. आर. (एनडी.). रोल ऑफ़ वीमेन इन इंडियास फ्रीडम स्ट्रगल (1905 - 1927). *अनुध्यान, एक अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका (AIJSS)*.

https://rnlkwc.ac.in/pdf/anudhyan/volume4/Role-of-Women-in-Indian-Freedom-Struggle-1905%E2%80%931927-Dr-Rina-Pal.pdf

6. तामलोंग, डी.टी. (2010). सम लेपचा हीरोस. मायल लियांग और लेप्चा.
    a. http://aachulay.blogspot.in/ 2010/07/mayel-lyang-lepchas-about-sikkim-and.html
7. वोहरा, ए.आर. (1962). नारी विद्रोह के भारतीय मंच, दिल्ली. पृ. 79.

8. सिंह, एम. (2014). रोल ऑफ़ वीमेन इन इंडियास फ्रीडम स्ट्रगल. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च,* 1(2), लेख 2.
9. रॉय, बी. (2012). *गोरखा और गोरखालैंड*. परबोती रॉय फाउंडेशन, दार्जिलिंग. पृ. 295.
10. राय, बी. (2014). एक्टिव रोल ऑफ़ वुमन ऑफ़ थे दार्जिलिंग हिल्स इन द फ्रीडम स्ट्रगल ऑफ़ इंडिया. *सेंट्रल इंडिया जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल एंड आर्कियोलॉजिकल रिसर्च,* खंड III, संख्या 11, पृ. 123.
11. सिन्हा, जी. (2006). द *रोल ऑफ़ गोरखास इन द मेकिंग ऑफ़ मॉडर्न इंडिया*. भारतीय गोरखा परिषद. नई दिल्ली. पृ. 27

12. सिन्हा, ए.सी. (2005) सिक्किम. यहां उपलब्ध: https://www.ide.go.jp/library/English/Publish/Reports/Jrp/pdf/133_10.pdf

13. हिमालग्रुप. (2010, 7 अगस्त). हिस्टोरिक अवेकनिंग: बी जी पी टू रेमेम्बेर हेलेन लेप्चा, द लोन क्रूसेडर फ्रॉम सिक्किम। न्यूज़ फॉर दोआर्स और सिक्किम. https://himalnews.wordpress.com/2010/08/07/historical-awakening-bgp-to-remember-helen-lepcha-the-lone-crusader-from-sikkim/

14. नारायणी, ए. (2023, 14 अगस्त). रानी रश्मोनी टू हेलेन लेप्चा - वुमन रेवोलुशनरीस वर फाइटिंग इंडियन सोसाइटी एंड द ब्रिटिश. द *प्रिंट*. https://theprint.in/opinion/rani-rashmoni-to-helen-lepcha-women-revolutionaries-were-fighting- Indian-society-the-british/1713640/

3

कौटिलीय अर्थशास्त्र में विद्यमान राजा के गुण: विद्या परम्परा के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. पवन कुमार शर्मा
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ – 250004

लौकिक साहित्य में कौटिलीय अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि यह ग्रन्थ तो राजशास्त्र का है तथापि इसका नाम अर्थशास्त्र है। इस भेद को स्पष्ट करते हुए स्वयं कौटिल्य ने लिखा है कि मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।[1] यूँ तो कौटिल्य को यथार्थवादी चिंतक माना जाता है, समझौतावाद के प्रमाण भी उनके लेखन में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं किन्तु धर्म की छाप भी उनके साहित्य में दुर्लक्ष्य नहीं हुई है। वे न केवल यथार्थवादी हैं बल्कि आदर्शवाद भी उनके लेखन में बहुतायत में उपलब्ध है। भारत का हित, एकता और अखंडता के वे हितपोषक हैं और उसी अनुरूप उन्होंने सभी क्रिया-कलाप सम्पादित किये हैं। उनके विचारों में समन्वय के तत्त्व भी विद्यमान हैं। राष्ट्र के लिए वे कुछ भी कर गुजरने को तत्पर दिखते हैं। अपने इन्हीं सब सिद्धांतों की प्रतिष्ठापना के लिए उन्होंने राजा के दार्शनिक पक्ष को सुदृढ़ करने के लिए जो विद्या परम्परा प्रस्तुत की है वह इस बात की द्योतक है। उनके इस पक्ष पर प्रायः अध्येताओं का ध्यान नहीं गया है, उनके इसी पक्ष को शैक्षणिक जगत के सम्मुख प्रस्तुत करना इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है।

जैसा कि हमें विदित ही है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र को लोक के सम्मुख पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने का कार्यक्रम मैसूर के विद्वान श्री शाम शास्त्री जी ने 1905/1909 में किया था।[2] किन्तु उसके पूर्व भी उनका यह ग्रन्थ भारतीय जनमानस के अंतस में सुरक्षित था और उसका उपयोग, उल्लेख यथास्थान होता रहता था, इस बात के अनेक प्रमाण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं।[3] इसमें कुल 15 अधिकरण यानि भाग, 150 प्रकरण और 180 अध्याय सम्मिलित हैं।[4] यों तो यह ग्रन्थ गद्य में लिखा गया है फिर भी जितनी मात्राओं/अक्षरों का इसमें उपयोग हुआ है, यदि इसको अनुष्टुप छन्द में परिवर्तित कर दिया जाए तो उनकी संख्या 6 हजार श्लोक होगी।[5] एक अनुष्टुप छन्द में कुल 32 मात्राएँ होती हैं। अतएव इसमें कुल 1,92,000 मत्राएँ हैं। इस प्रकार से यह एक बड़ा और गूढ़ ग्रन्थ है। इसमें राज्य और उससे संबंधित अनेक उपायों पर सूत्र रूप में और कहीं-कहीं पर विस्तार से भी प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर हम इनके विद्या विषयक विचारों की राजा के दार्शनिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में क्या भूमिका रही है, को ही उजागर करेंगे।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अपने पूर्ववर्ती अनेक विद्वानों का उल्लेख किया है उनमें से कुछ व्यक्ति विशेष हैं और कुछ संस्था या विचार विशेष हैं, इन्हें हम आज-कल *स्कूल ऑफ थॉट* भी कहते हैं। कौटिल्य ने अपने विद्या सम्बन्धी विचारों का उल्लेख प्रथम अधिकारण के प्रकरण एक के अध्याय एक से तीन और दूसरे प्रकरण के अध्याय चार से छः तक किया है। संस्कृत वांग्मय में विद्या से अभिप्राय उस परम्परा से है जो कि लोक और परलोक दोनों का हित साधन करती हो।[6] वे लिखते हैं कि मनु सम्प्रदाय के अनुयायियों ने त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को विद्या माना

है।[7] बृहस्पति के अनुयायियों ने वार्ता और दण्डनीति को[8] तथा शुक्राचार्य के अनुयायियों ने केवल दण्डनीति[9] को ही विद्या की श्रेणी में रखा है किन्तु वे अपने पूर्ववर्ती तीनों ही विद्वानों के मतों से भिन्न मत रखते हुए विद्या की श्रेणी में आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति को सम्मिलित करते हैं।[10] वे लिखते हैं कि मनु के अनुयायियों का मत है कि त्रयी, वार्ता और दण्डनीति में, बृहस्पति के अनुयायी वार्ता और दण्डनीति में और शुक्र के अनुयायी केवल दण्डनीति में ही समस्त विद्याओं का समावेश मानते हैं।[11] अब यहाँ पर यह विचारणीय हो जाता है कि मनु जोकि सृष्टि के आदि पुरुष हैं और वे कई हुए हैं, ने आन्वीक्षकी को छोड़कर शेष तीनों को विद्या परंपरा में सम्मिलित कर लिया हो बृहस्पति वार्ता और दण्डनीति को ही विद्या परंपरा का भाग मानते हैं और शुक्र केवल दण्डनीति को ही विद्या मानते हैं। यहाँ यह विषय ध्यान रखने का है कि शुक्र और बृहस्पति दोनों को कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रणयन के पूर्व नमस्कार किया है,[12] यानि कि वे इन दोनों को ही अर्थशास्त्र की परम्परा में प्राचीन अर्थशास्त्री मानते हैं। इसलिए हो सकता है कि उनके समय तक अन्य विषय विद्या परंपरा में सम्मिलित ही न हुए हों, क्योंकि विद्या परम्परा के विकास में जिन 32 विद्याओं[13] का उल्लेख मिलता है वे बाद के क्रम में आकर प्राप्त हुई हों। प्रारम्भ में तो यह संख्या कम ही थी और शुक्र केवल दण्डनीति को ही सब विद्याओं का आधार मानते हैं। हो सकता है ऐसा मानना दृष्टिकोण के भेद के कारण हो क्योंकि परम्परा में शुक्र को दैत्यों का गुरु माना गया है और उनके लिए तो शक्ति ही सभी का पर्याय थी। इसलिए उन्होंने दण्डनीति जोकि शक्ति के प्रगटन का माध्यम थी, को ही समस्त विद्या मान लिया हो। जो भी हो, किन्तु कौटिल्य ने यही क्रम दिया है। दूसरा, उपर्युक्त तीनों विचार परम्पराओं के समय तक आन्वीक्षकी का प्रचलन ही न हुआ हो (व्यवस्थित रूप में, जिस प्रकार से कौटिल्य ने आन्वीक्षकी में योग सांख्य और लोकायत को सम्मिलित किया है) इसलिए उनमें से किसी ने भी उसका उल्लेख नहीं किया है क्योंकि ये इन तीनों के ही बहुत बाद के चिंतक हैं और तब तक दर्शन शास्त्र बहुत विकसित हो चुका था तथा कौटिल्य ने राजाओं के व्यक्तित्व में उसके अभाव का प्रत्यक्ष अनुभव किया था, के कारण उसको भी विद्या परम्परा में सम्मिलित किया होगा. यदि ऐसा न होता तो राजा को समदर्शी दार्शनिक स्वरूप में विकसित होना असंभव था अस्तु।

अब हम यह देखने का प्रयास करते हैं कि आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के अंतर्गत किन विषयों का अध्ययन राजा के द्वारा किया जाता था। आन्वीक्षकी के अंतर्गत सांख्य, योग और लोकायत, त्रयी में धर्म और अधर्म, वार्ता में अर्थ और अनर्थ तथा दंडनीति में शासन और सुशासन को सम्मिलित किया गया है।[14] अध्ययन की सुगमता के दृष्टिकोण से हम तीनों विचार परम्पराओं के क्रम को विपरीत करके प्रस्तुत करते हैं। यथा शुक्र, बृहस्पति और फिर मनु कौटिल्य अपने पुराने अनुक्रम में रहेंगे।

- **शुक्र**

ये दण्डनीति के पक्षधर हैं,[15] दण्डनीति के अंतर्गत शासन और सुशासन का अध्ययन किया जाता था। दण्डनीति से अभिप्राय शासन संचालन कि कला से है। शुक्र नीति के अध्ययन से यह विषय सुगमता से ध्यान में आ जाता है कि कौटिल्य जिस दंड के सम्यक प्रयोग कि बात कह रहे है वस्तुतः वह है क्या? शुक्र लिखते हैं कि सुशासन से अभिप्राय उस शासन व्यवस्था से है जिसमें राज्य के सप्तांगों का एवं मंत्रिपरीषद की भूमिका का स्पष्ट विभाजन हो। जहाँ पर कोष के संचय के नियम स्पष्ट किए गए हों। बल का प्रयोग कल्याण के लिए होता हो न कि भय के लिए। जिस व्यवस्था में राज्य कि सीमाओं का विभाजन जल, थल और नभ के रूप में स्पष्टतः हो। राज्य के तत्व के रूप में वर्णों की भूमिका भी प्रभावकारी हो, समाज की आधी संख्या के रूप में महिलाओं की उपस्थिति और उनकी भूमिका

समाज के संवर्धन की हो। राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, पदच्युति, स्थानांतरण, पदमुक्ति एवं अन्य उन्मुक्तियों से संबंधित नियम स्पष्ट रूप से हों। प्रशासनिक गतिविधियों का संचालन सुगम और पारदर्शी हो और कुशासन इसके विपरीत आचरण से है। इसलिए शुक्र कहते हैं कि राजा को केवल दण्डनीति की ही विद्या का ज्ञान होना चाहिए यदि राजा इसके अनुरूप ही आचरण करता रहेगा तो निश्चय ही उसका राज्य वृद्धिगत होगा इसमें कोई संशय नहीं है।[16]

- **बृहस्पति**

बृहस्पति ने वार्ता और दण्डनीति को विद्या की श्रेणी में माना है।[17] वार्ता में कृषि, गौपालन और व्यापार सम्मिलित है। राजा को चाहिए कि ये सभी कार्यक्रम धर्मानुप्राणित हों यदि राजा यह करने में असफल रहता है तो वह पाप का भागी बनता है। बृहस्पति के समय तक व्यवस्थाओं का निर्धारण होना प्रारम्भ हो गया था इसलिए राज्य के कोष संग्रह में वार्ता की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वार्ता के दृष्टिकोण से बृहस्पति वर्ण व्यवस्था के पक्षधर थे। इसलिए राजा के लिए यह अनिवार्य था कि वह वर्ण व्यवस्था का अनुपालन सुनिश्चित करवाएँ और इन सब के लिए आवश्यक था कि वह दंडनीति में पारंगत हों । दंडनीति से अभिप्राय आंतरिक और बाह्य दोनों से था। आंतरिक में सुशासन के सूत्रों का अनुपालन करवाना और बाह्य में शत्रु पक्ष को सैन्य बल और कूटनय के माध्यम से भयभीत करके रखना जिससे सीमाओं पर शांति की स्थापना स्थायी भाव से रह सके। सुशासन में राजकोष की सुरक्षा और उसके माध्यम से लोक कल्याण पर अत्यधिक बल दिया है क्योंकि कोष के अभाव में लोककल्याण के कार्यक्रम प्रभावित हो सकते हैं। न्याय व्यवस्था भी एक महत्वपूर्ण घटक है। बृहस्पति आनुपातिक दंड प्रणाली के पक्षधर हैं और यह व्यवस्था वर्ण के आधार पर संचालित होंगी, किन्तु इसमें उन्होंने किसी को भी न्याय से परे नहीं माना है।[18] यह ठीक है कि उन्होंने ब्राह्मण को मृत्यु दंड और शूद्र को अर्थ दंड से मुक्त रखा है। और यह स्वाभाविक ही है क्योंकि ब्राह्मण के ज्ञान के महत्त्व के कारण उसे मृत्यु दंड से मुक्ति और शूद्र को अर्थाभाव के कारण अर्थ दंड से मुक्ति दी गई होगी। दंड स्वरुप ब्राह्मण के हाथ काटकर देश निकाले का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार और भी अनेक प्रकार के दण्डों से राजा सुशासन की स्थापना करने के प्रयत्न करें।[19] इस प्रकार से हम देखते हैं कि ये दो विद्या बृहस्पति का मुख्य आधार हैं और इसके बल पर ही वे राज्य संचालन का पक्ष लेते हैं। फिर भी इसमें कुछ भेद दृष्टिगोचर होता है और इस भेद को मनु अपनी विद्या परम्परा में समेटने का प्रयास करते हुए प्रतीत होते हैं।

- **मनु**

मनु तीन प्रकार की विद्या की बात करते हैं जोकि त्रयी, वार्ता और दण्डनीति हैं।[20] त्रयी में मनु धर्म-अधर्म को सम्मिलित करते हैं, जिनका आधार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद है इन तीनों के समन्वित रूप का नाम ही त्रयी रखा गया है।[21] अथर्वेद और इतिहास को वेद की श्रेणी में रखा गया है।[22] इनको पढ़ने के पूर्व राजा को वेदांग का अध्ययन करना होता है। वेदांग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष आते हैं।[23] इनके सम्यक ज्ञान के आभाव में त्रयी का अध्ययन असंभव है और यदि राजा को यह सब नहीं आता है तो वह कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को साकार नहीं कर सकता और न ही इनके अभाव में धर्म-अधर्म में भेद कर सकता है। यहाँ पर धर्म से अभिप्राय वे 'धृति, क्षमा,दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निगृह, धीर, विद्या, सत्यम, अक्रोध के रूप में व्यक्त करते हैं ।[24] यहां धर्म पूजा पद्धति न होकर धारण करने का विषय है जोकि अपने ही गुणों या लक्षणों के माध्यम से जाना जाता है। पहला गुण या लक्षण वे धैर्य बताते हैं कि मनुष्य को धैर्य शाली होना चाहिए यदि वह धैर्यवान है तो क्षमाशील भी होगा ही यह गारंटी है। धर्म के लक्षण तो दस हैं किन्तु ये दो-दो के जोड़े में हैं और इस प्रकार से ये कुल पांच जोड़े

बनते हैं। पहला वाला गुण बाद वाले की गारंटी देता है। यह धर्म की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। दूसरा, दम यानि विकार का हेतु उपस्थित होने पर भी मन का नियमन करना, जब ऐसा होगा तब ही मन की कामनाओं का दमन होगा, इच्छाओं का दमन होगा, तभी दूसरे कि वस्तुओं के प्रति विरक्ति का भाव पैदा होगा, शौच यानी शरीर की बाह्य और आंतरिक शुचिता से ही मन का नियमन होकर इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है इसलिए इन्द्रियों का वशीकरण मन की शुचिता का विषय है। चौथा जोड़ा बुद्धि का और विद्या का है बुद्धि से विवेक की जाग्रति होती है और विद्या से लोक और परलोक के सुधार के क्रिया कलापों का संपादन होता है और सम्पूर्ण सृष्टि में समत्व की स्थापना होती है। इस भाव से सभी में ईश्वर की प्रतीति से किसी के भी प्रति दुराचरण नहीं होता। और, पांचवाँ जोड़ा सत्य और अक्रोध का है। पूर्व के चारों जोड़ों के सम्यक व्यवहार से व्यक्ति सत्याचरण करने लगता है और इससे उसको क्रोध नहीं होता। इस प्रकार धर्मनुरागी होने से राजा समदर्शी हो जाता है जिससे लोक कल्याण उसकी प्राथमिकता बन जाती हैं । इसका विपरीत आचरण अधर्म है।

- **वार्ता**

वार्ता के अंतर्गत अर्थ और अनर्थ सम्बन्धी विषयों का समावेश किया गया है, अर्थ से अभिप्राय लौकिक जगत को साधने के साधन और इसके आधार पर परलोक कि यात्रा की सुनिश्चितता है। अर्थ की व्युत्पत्ति पृथ्वी से होती है। पृथ्वी का सर्व प्रकार का अध्ययन इसके अंतर्गत आता है। पृथ्वी से ही समस्त प्रकार कि धन्य-धान्यदि सम्पदा प्राप्त होती है।[25] पृथ्वी के माध्यम से सर्वदूर सम्बन्धों की स्थापना और उनका सम्यक निर्वहन होता है। अतएव, राजा को इन सभी विषयों का सम्यक ज्ञान होना अनिवार्य है।[26] कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य[27] के व्यावहारिक ज्ञान से वह राज्य को समृद्ध कर सकता है और संबंधित वर्ण को भी अभिप्रेरित करके राज्य के लिए सहयोगी बना सकता है।

- **त्रयी**

त्रयी के अंतर्गत साम, ऋग और यजु को सम्मिलित किया गया है[28] इसमें वर्णाश्रम व्यवस्था का सम्यक अनुपालन सम्बन्धी जो नियम हैं, राजा उनका व्यवस्थित रूप से अध्ययन करे और लोक में आचरण करवाए और इनका उल्लंघन करने वाले को यथोचित दंड दे, के विषय पर प्रकाश डाला गया है ।[29] त्रयी के माध्यम से धर्मानुरागी समाज को सुदृढ़ करे । यह विद्या धर्म और अधर्म के विषय में सम्यक रूप से ज्ञान प्रदान करने वाली विद्या है। मनु आंवीक्षकी को पृथक से अध्ययन करने की मनाही करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि त्रयी में सांख्य, योग और लोकायत का अध्ययन भी सम्मिलित है। अतएव राजा को इसी का अध्ययन पूर्णरूप से करना चाहिए।[30]

- **दण्डनीति**

दंडनीति से अभिप्राय शासन संचालन कि उस शक्ति से है जोकि राजा में सन्नीहित होती है। राजा का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह यथोचित व्यवहार से दंडनीति का उपयोग करते हुए सुशासन कि स्थापना करे और इसके आधार पर आंतरिक और बाह्य सुरक्षा सुनिश्चित करे । इन सब के लिए योग्य मन्त्रियों और सहयोगियों को नियुक्त करे । इसके लिए वह सात-आठ मन्त्रियों की नियुक्ति करे[31] और मन्त्रियों के सहयोग के लिए सुयोग्य और निष्ठावान अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति करे।[32] राज्य की अन्य गतिविधियों पर दृष्टिकोण रखने के लिए वह गुप्तचरों का सहयोग ले।[33] सुशासन कि स्थापना के लिए शासन व्यवस्था को विकेंद्रित कर दे, किन्तु सर्वप्रकार से दृष्टि स्वयं ही रखे।[34] मनु इसके लिए राज्य को पुर और ग्राम दो भागों में बांटते हैं। पुरों के निवासियों को पौर और ग्रामों के निवासियों को जनपद की श्रेणी में रखने की बात करते हैं। ग्राम की संरचना को एक ग्राम, दस ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम, एक हजार ग्राम में बांटा गया है।[35] इनके प्रमुखों को क्रमशः ग्रामिक, दशग्रामिक, विंशती, शती और सहस्राधिप

कहा गया है। पुर या नगर प्रमुख को सर्वार्थचिंतक ऐसा कहा गया है। दंड कि महत्ता इतनी बताई है कि जब राज्य सोता है तब दंड जागता है और दंड से परे कोई नहीं है, राजा भी नहीं। इस प्रकार मनु दण्डनीति की सम्यक व्यवस्था करते हैं।[36]

- **कौटिल्य**

कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के साहित्य का अध्ययन किया और यह पाया कि विद्या के विषय में न तो शुक्र के विचार पूर्ण हैं क्योंकि वे दण्डनीति को ही शासन का आधार मानते हैं और सभी विद्याओं को उसमें समाविष्ट करते हैं।[37] इसी प्रकार से वे बृहस्पति को भी इस दृष्टिकोण से अमान्य करते हैं कि विद्या तो दो ही होती हैं, एक वार्ता और दूसरी दण्डनीति और इन्हीं में ही सभी विद्या समाहित हो जाती हैं । वे मानते हैं कि वार्ता, अर्थ-अनर्थ और दण्डनीति सुशासन-कुशासन का विस्तार से विवेचना करती है[38] और अंत में मनु जैसे ब्रह्माण्डीय चिंतक के भी विद्या संबंधी चिंतन से वे अपनी असम्मति व्यक्त करते हुए यह लिखते हैं कि वार्ता, त्रयी और दण्डनीति, आन्वीक्षकी के आभाव में अपूर्ण हैं।[39] सभी का अपना-अपना महत्व है और त्रयी में आन्वीक्षकी की उपलब्धता संभव नहीं है, क्योंकि, दोनों के अपने अलग-अलग दृष्टिकोण हैं । कौटिल्य का यही निरपेक्ष दृष्टिकोण उन्हें अपने पूर्ववर्ती चिंतकों, जिनका कि उल्लेख उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में किया है, से पृथक करते हुए परम्परागत चिंतकों के साथ-साथ यथार्थता के साथ जोड़ता प्रतीत होता है। इतना ही नहीं यही दृष्टिकोण उनके विषय में यह संभ्रम भी निर्माण करता है कि वे निरे भौतिकवादी हैं और उनका धर्म और नैतिकता से कोई संबंध नहीं है। वे साध्य और साधन में न तो भेद करते हैं और न ही साध्य की प्राप्ति में किसी भी साधन को अपनाने से हिचकते हैं, जबकि ऐसा है नहीं। उनके अर्थशास्त्र को समग्रता में पढ़ने से और विशेषकर विद्या संबंधी उनके प्रारम्भ के ही अधिकरण के प्रकरण एक और दो के अध्याय छः के विवेचन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वे भी सनातनी चिंतन प्रवाह को लेकर ही अपने अर्थशास्त्र का प्रणयन कर रहे हैं और उसमें जो शोध अंतराल है की ही पूर्ति कर रहे हैं। इसीलिए वे चारों विद्याओं को स्वीकृति प्रदान करते हैं और धर्म को उनकी यथार्थता के केंद्र में रखते हैं।[40]

- **आंवीक्षकी**

इसके अंतर्गत वे सांख्य, योग और लोकायत को मान्य करते हैं और सभी विद्याओं को तर्क की कसौटी पर कसने वाली मानते हुए सभी विद्याओं की आश्रय स्थली घोषित करते हैं।[41] अब हम इस को समझने के लिए कि वे आंवीक्षकी पर इतना अधिक बल क्यों देते हैं, के लिए इसके अंतर्गत अध्ययन किए जाने वाले विषय सांख्य, योग और लोकायत का पृथक-पृथक किन्तु संक्षेप में वर्णन करते हैं, जिससे इसके महत्व से परिचित हो सकें क्योंकि भारतीय दर्शन परम्परा में दर्शनों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से 9 दर्शनों को मान्य किया गया है जिनमें से छः आस्तिक और तीन नास्तिक माने गए हैं।[42] माधवाचार्य ने इनको बढाकर सोलह कर दिया है।[43] आस्तिक दर्शन की श्रेणी में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा या मीमांसा और उत्तर मीमांसा या वेदांत आते हैं[44] तथा नास्तिक की श्रेणी में जैन, बौद्ध और लोकायत को माना गया है।[45] इनके आस्तिक और नास्तिक विभाजन के संबंध में यह मान्यता है कि जो वेद की प्रमाणिकता में विश्वास करता है को आस्तिक तथा जो वेद को प्रमाण नहीं मानता है को नास्तिक कहा जाता है। आस्तिक और नास्तिक का एक और अभिप्राय है, इसमें ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखने वालों को आस्तिक माना गया है और ईश्वर के अस्तित्व को अमान्य करने वालों को नास्तिक माना गया है। विद्वानों का मानना है कि आस्तिक नास्तिक का अभिप्राय वेद को मानने और न मानने वालों के भेद के कारण है

क्योंकि आस्तिक दर्शनों की श्रेणी में सम्मिलित सांख्य और मीमांसा अनिश्वरवादी दर्शन हैं फिर भी ये आस्तिक दर्शन की श्रेणी में हैं क्योंकि ये वेद विश्वासी हैं। इसके अतिरिक्त आस्तिक और नास्तिक के भेद का एक और तर्क है, जिसमें आस्तिक उसे कहा जाता है जोकि परलोक यानि स्वर्ग या नर्क में विश्वास करते हैं और नास्तिक वे हैं जोकि परलोक यानी स्वर्ग-नरक का खंडन करते हैं। किन्तु, आस्तिक-नास्तिक के संबंध में यह तर्क मजबूती से नहीं टिक पाता है क्योंकि जैन और बौद्ध दर्शन नास्तिक की श्रेणी में हैं, जबकि वे परलोक के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। इस अर्थ में तो बस लोकायत ही है जोकि नास्तिक की श्रेणी में आता है किन्तु आस्तिक नास्तिक का संबंध मात्र वेदों को मानने और न मानने से ही है, शेष दोनों तर्क कोई विशेष महत्व नहीं रखते हैं क्योंकि उनमे थोड़ा-थोड़ा भेद है।

- **सांख्य**

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि इसके प्रणेता कपिलमुनि थे, परम्परागत रूप से यह दर्शन बहुत पुराना है क्योंकि इसके प्रणेता का संबंध मनु के काल से जुड़ता है।[46] यह सूत्र रूप में लिखा गया है जोकि छः अध्यायों में विभक्त है जिनमें कुल 537 श्लोक हैं । वैसे सांख्य के ज्ञान को विस्तृत रूप में वेदों से लेकर परवर्ती साहित्य तक में देखा जा सकता है । भारत के नास्तिक दर्शनों में जैन और बौद्ध तथा पाश्चात्य में पाइथागोरस भी सांख्य से प्रभावित माने जाते हैं।[47] सांख्य की महत्ता को इस उक्ति से सुगमता से समझा जा सकता हैं जिसमें सांख्य के समान कोई ज्ञान नहीं और योग के सामान कोई बल नहीं से की गई है। **नास्ति सांख्यसमम ज्ञानम, नास्ति योगसमम बलम[48] एक अन्य स्थान पर इसके गुण वैशिष्टय को दृष्टिगत रखते हुए इसके विषय में कहा गया है पंचविंशति तत्त्वग्यो यत्र कुत्राश्रमे वसन, जटी मुंडी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशय।[49]** यानि, पच्चीस तत्वों का ज्ञान करवाने वाला जो सांख्य शास्त्र है उसे जानने वाला चाहे जिस आश्रम में हो, चाहे वह जटा वाला हो, चाहे वह जिस वेश में हो, सांख्य के ज्ञान के प्रभाव से वह अवश्य मुक्त हो जाता है। श्रीमदभगवदगीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने ऐसा ही माना है, इससे भी इसकी महत्ता और पुरातनता स्वतः ही सिद्ध होती है।[50] सांख्य शब्द कि व्युत्पत्ति के विषय में भी भिन्न भिन्न मत हैं।

एक:- सांख्य शब्द की व्युत्पत्ति सं और ख्या के संयोग से हुई है इसमें सं का अर्थ सम्यक है और ख्या का अर्थ है ज्ञान इस प्रकार सांख्य का वास्तविक अर्थ हुआ सम्यक ज्ञान। यहाँ पर सम्यक ज्ञान का अभिप्राय पुरुष और प्रकृति के मध्य के भेद के ज्ञान से है। यह ज्ञान सम्यकता के अभाव में असंभव है। पुरुष और प्रकृति के परस्पर संबंधों का इसमें अध्ययन किया गया है इसलिए इसे सांख्य कहा जाता है।[51]

दूसरा:- कुछ विद्वानों का मानना है कि सांख्य का अभिप्राय संख्या से है. सांख्य दर्शन में तत्वों की संख्या के निरुपण के कारण इसे सांख्य कहा गया है।[52] इसमें तत्वों की संख्या पच्चीस बताई गई है। ये संख्या इस प्रकार है।

- प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन (इन्हें अंतःकरण चतुष्ट्य भी कहा जाता है।)
- पांच ज्ञानेंद्रियां आँख, नाक, कान, जीभ, और त्वचा कही गई हैं।
- पांच कर्मेन्द्रियां - मुख, हाथ, पैर, मल द्वार और जनन इन्द्रियाँ।
- पांच तन्मात्राएँ जोकि महाभूतों के गुण कहे गए है वे इस प्रकार हैं - शब्द, स्पर्श, रूप, स्वाद, और गंध।
-पांच महाभूत यथा आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और – जल

ये संख्या पुरुष सहित कुल पच्चीस होती है। जोकि सांख्य की विषय वस्तु है[53] और

तीसरा :- कुछ विद्वान सांख्य के प्रणेता का नाम ही शंख होने के कारण इसे सांख्य कहा जाना मान्य करते हैं किन्तु यह भ्रमकारी है क्योंकि इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।[57]
सांख्य की विषयवस्तु के आधार पर कुछ लोग इसे अनिश्वरवादी मानते हैं क्योंकि उसमे ईश्वरासिद्ध ऐसा कहा गया है यानि ईश्वर असिद्ध है। किन्तु, ईश्वराभावात ईश्वर का अभाव है नहीं कहा गया है अर्थात ईश्वर असिद्ध है किन्तु नहीं है यह अभी पूर्णतया सिद्ध नहीं हुआ है।[55] योग अनुसन्धानिक दृष्टिकोण से इसी अंतर को स्पष्ट करता है और ईश्वर को 26 वें तत्व के रूप में मान्य करता है। ईश्वर की असिद्धि कभी भी अभाव नहीं होती, योग में इसी को सिद्ध किया गया है और इसी कारण सांख्य और योग को युति के रूप में मान्य किया गया है।[56]

- **योग**

यों तो योग संबंधी ज्ञान वेदों में बहुतायत में उपलब्ध है और इसकी व्याख्या हिरण्यगर्भ सूक्त, श्रीमदभगवदगीता, योगवाशिष्ठ एवं याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में की गई है। किन्तु, इसका व्यवस्थित रूप पतंजलि के योगसूत्र में देखने को मिलता है। वे अपने पूर्ववर्तियों की भांति ही जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष को मानते हैं और इसके लिए विवेक पूर्ण ज्ञान के साथ-साथ योगाभ्यास पर भी बल देते हैं। योग दर्शन भी सांख्य की ही भांति द्वैतवादी है। यह भी सांख्य के समान तत्वों में विश्वास करता है और सांख्य के बताए गए पच्चीस तत्वों में एक तत्व ईश्वर को और जोड़ देता है।[57] इसी आधार पर योग सेईश्वर सांख्य और सांख्य को निरिश्वर सांख्य कहा जाता है।[58] इसमें भी सांख्य की ही भांति तीन प्रकार के दुखों का निरुपण किया गया है। यथा एक, आध्यात्मिक दुख, दो आधीभौतिक दुख और तीन, आधीदैविक दुख।[59] मोक्ष से अभिप्राय इन तीनों प्रकार के दुखों से मुक्ति है।[60] इसके लिए कुछ साधन सुझाए गए हैं जिन्हें कि योग के अष्टांग साधन के रूप में बताया गया है।

एक - यम: ये पांच हैं जोकि इस प्रकार हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिगृह ।[61]
दो - नियम: सदाचारण ही नियम माना गया है और इसके भी पांच प्रकार हैं। शौच, संतोष, तपस, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।[62]
यम और नियम में बहुत ही सूक्ष्म अंतर है. यम निषेधात्मक सद्गुन हैं जबकि नियम भावात्मक सद्गुन हैं।
तीन - आसन: शरीर को विशेष मुद्रा में अवस्थित करना आसन कहलाता है। इसमें तन और मन दोनों का स्थिर रहना महत्वपूर्ण है। इसका अभ्यास गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए।[63]
चार -प्राणायाम: श्वांस प्रक्रिया को नियंत्रित करके उसमें एक क्रम लाना प्राणायाम कहलाता है। श्वांस के चलते रहने से मन चलायमान रहता है और श्वांस वायु के स्थगित होने से चित्त में स्थिरता आती है। यह स्थिरता ही शरीर और मन सुदृढ़ करती है। समाधि में यह सर्वाधिक सहायक होती है। इसके तीन भेद हैं।[64]
क- पूरक: श्वास को निश्चित गति से शरीर के अंदर खींचना।।[65]
ख- कुम्भक: निश्चित समय तक अंदर रोकना और धीरे धीरे इस अभ्यास को बढ़ाना।।[66]
ग- रेचक: और फिर निश्चित गति से स्वांस को बाहर छोड़ना।[67]
पांच - प्रत्याहार: इन्द्रियों को बाह्य विषय से हटाकर अंतस्थ करना। यद्यपि यह एक कठिन प्रक्रिया है किन्तु अभ्यास से यह सध जाती है।[68]
छः -धारणा यानि चित्त को अभिष्ट विषय पर लगाना. यह आंतरिक अभ्यास का प्रथम सोपान है. इसमें चित्त किसी एक विषय पर केंद्रित हो जाता है. वह विषय बाह्य या आंतरिक दोनों ही हो सकता है। इस अवस्था की प्राप्ति से साधक ध्यान की योग्यता अर्जित कर लेता है।[69]

सात -ध्यान: इसका अर्थ है कि अभीष्ट विषय पर निरंतर अनुशीलन। इसके माध्यम से विषय का ज्ञान क्रमशः पहले आंशिक और बाद में सम्पूर्णता में होता है।[70]

आठ -समाधि: इस अवस्था में ध्येय विषय की ही चेतना रहती है। ध्यान की स्थिति में वस्तु की ध्यान क्रिया और आत्मा की चेतना रहती है किन्तु इस अवस्था में चेतना लुप्त हो जाती है। यही अवस्था चित्तवृति निरोध की कही गई है।[71]

अष्टांग में धारणा, ध्यान और समाधि का संबंध साक्षात् योग से है और प्रथम पांच यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार सहयोगी हैं। इनको बहिरंग और उनको आंतरिक साधन कहा गया है।

अष्टांग के माध्यम से चित्त का विकार नष्ट जो जाता है और आत्मा स्वयं के यथार्थ स्वरूप को पहचानने लगती है। आत्मा को प्रकृति, देह, मन, इन्द्रियों से भिन्न होने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जिसकी परिणति मोक्ष प्राप्ति से होती है।

लोकायत:

यह एक अत्यंत प्राचीन दर्शन है और इसे चार्वाक के रूप में भी जाना जाता है। इसकी प्राचीनता का अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि इसका संकेत जैन, बौद्ध साहित्य सहित पुराणों में भी मिलता है।[72] दूसरा प्रमाण इसकी प्राचीनता का यह है कि इसका खंडन सभी दर्शनों ने किया है।[73] अस्तु, इसकी उत्पत्ति और नामकरण को लेकर भी कई मत प्रचलित हैं. एक, चार्वाक शब्द की व्युत्पत्ति चर्व धातु से हुई है. जिसका अर्थ है चबाना और इसका मूल मंत्र है खाओ पीओ और मस्त रहो। इस करण यह चार्वाक दर्शन कहलाया।[74]

दो, चार्वाक शब्द दो शब्दों का समन्वय है, चारु और वाक। चारु का अर्थ है मीठा तथा वाक का अर्थ है वचन यानि मीठे वचन बोलने वाला। सुख और आनंद के कारण यह मधुर प्रतीत होता है इसलिए चार्वाक कहलाया तीन, चार्वाक एक व्यक्ति विशेष का नाम था जोकि जड़वाद का समर्थक था उसने इसी जड़वाद को समाज के सम्मुख रखा और उसके अनुयायी चार्वाक कहलाए। इनके तीन मुख्य लक्ष्य थे।[75]

1. खाने पीने वाला।
2. सुख और आनंदवाला।
3. भौतिकवादी जो दिखता है वही जगत है अन्य कुछ नहीं।

महाभारत आदि ग्रंथों में देव गुरु बृहस्पति को जड़वादी विचारों का प्रवर्तक माना गया है। ऐसा वर्णन है कि देवताओं को राक्षस वर्ग सताता था, जिससे वे पीड़ित रहते थे। भोगों से राक्षसों को ग्रस्त करने हेतु बृहस्पति ने यह दर्शन उनके मध्य लोकप्रिय कर दिया जिससे भोगों में पढ़कर वे स्वतः ही नष्ट हो जाएं। यही दर्शन लोकायत नाम से विख्यात हुआ।[79]

यह तीन अंगों में विभक्त किया गया है।[80]

1, प्रमाण विज्ञान (Epistemology)
2, तत्व विज्ञान (Metaphysics)
3, नीति विज्ञान (Ethics)

त्रयी:

कौटिल्य का मत है कि राजा को इस विद्या में भी निष्णात होना चाहिए। इसके अंतर्गत वे साम, यजु और ऋग, को सम्मिलित करते हैं। यघपि यह क्रम ऋग, यजु और साम है फिर भी उन्होंने इसे विपरीत क्रम में दिया है। यह अनुसंधान का विषय है। इन तीनों को वेद माना है और अथर्ववेद और पुराणों को भी उन्होंने वेद की श्रेणी में रखा है। वेदों के अध्ययन के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, और ज्योतिष जिनको कि वेदांग कहा जाता है, को आधार माना है। इन सबके भी अनेक प्रकार हैं, पहले राजा उनसे परिचित हो और फिर उनके आधार पर वेदों का अध्ययन करे। इनका विस्तृत परिचय अग्रवत है।[81]

शिक्षा

शिक्षा का अर्थ होता है वह विद्या जोकि स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का बोध या उपदेश दे।[79] इनमें शिष्टीय, याज्ञवल्क्यीय, नारदीय, पाणिनीय आदि प्रमुख हैं। इनमें कैसे पढ़ा जाए और शिक्षकों तथा वर्ण, मात्रा आदि के गुण दोषों के विषय में बताया गया है। ये हैं तो बहुत किन्तु 33 विद्वानों के शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध है।[80]

कल्प

इनके अंतर्गत सूत्र ग्रंथ आते हैं। इनमें श्रौत सूत्र, गृह सूत्र, धर्म सूत्र और शुल्व सूत्र को सम्मिलित किया गया है। इनमें क्रमश यज्ञादि, 16 संस्कारादि, वर्णाश्रमों तथा राजा के कर्तव्यादि तथा वेदी के निर्माण आदि से सम्बान्धित ज्ञान संकलित है।[81] इनका वर्गीकरण भी वेदों की शाखाओं के अनुसार पृथक-पृथक है।

व्याकरण

इसमें अक्षर, वर्ण, स्वर व्यंजन, सन्धि, समास, वाक्य संयोजन, शब्द शक्तियाँ आदि के विषय में विस्तार से वर्णन है. इनके अभाव में साहित्य का अध्ययन असम्भव है।[82]

निरुक्त

शब्द आदि कि व्युत्पत्ति का यह आधारभूत ग्रन्थ है तथा शब्दों के अनुक्रमात्मक अर्थो की प्राप्ति इसके अध्ययन के अभाव में नहीं की जा सकती।[82]

छंद

वेदों का प्रणयन मंत्रो में हुआ है. मंत्रों के कई प्रकार होते हैं और उनका विभाजन छंद के आधार पर ही होता है उनका निर्धारण मात्रा आदि के क्रम में किया जाता है जोकि इसके अभाव में नहीं हो सकता।[84]

ज्योतिष

अंतरिक्ष विज्ञान के अध्ययन के लिए यह बहुत ही अनिवार्य है। इसके ज्ञान के अभाव में गृह आदि की दशा को नहीं समझा जा सकता है। सृष्टि की रचना और उसके विकास तथा उनके प्रभाव आदि की समझ बनाने के लिए इसका अध्ययन महत्वपूर्ण है।[85]

इस प्रकार से इनके ज्ञान को अर्जित नहीं किया तो वेदों का अध्ययन असंभव है और यदि कर भी लिया तो अर्थ का अनर्थ होगा यह सुनिश्चित है। वृत्रासुर का उदाहरण जगविख्यात है। इसीलिए इनको वेदांग कहा गया है। वेदांग के अभाव में धर्म-अधर्म, अर्थ-अनर्थ की व्यापकता और गूढता को समझना असम्भव है। इसलिए त्रयी का महत्व बहुत अधिक है।

कल्पों के माध्यम से वर्णों के धर्मों को और उनके अन्य क्रियाकलापों को सुगमता से समझा जा सकता है। यथा चार वर्णों और उनके क्रियाकलाप यथा, ब्राह्मण के लिए अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-याजन और दान लेना तथा दान देना है। क्षत्रिय के लिए पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना। शस्त्रबल से अपना जीवन निर्वाह करना और प्राणियों की रक्षा करना है। यहाँ पर यह विषय ध्यान देने योग्य है की सर्व प्राणियों में समत्व या सर्वभूत हितेरतः की प्रतीति का दायित्व क्षत्रिय का है। ब्रह्माविद्या में पारंगत जोकि छांदोग्य उपनिषद कहता है वह क्षत्रिय की ही थी,[86] इसलिए सभी प्राणियों की रक्षा का दायित्व भी इसी का था। वैश्य का धर्म है कि वह पढ़े, यज्ञ करे, दान दे, कृषि कार्य, पशुपालन करे और व्यापार करे। शूद्र के लिए तीनो वर्णो की सेवा करे, कृषि, पशुपालन तथा व्यापार करे। इसके अतिरिक्त वह कलाओं से संबंधित क्रिया कलाप भी करे यथा शिल्पकारी, गायन वादन, नृत्य आदि।[87]

अब आश्रम संबंधित विषयों का निरूपण करते हैं। गृहस्थ का मुख्य कार्य है सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील होना और पंच महायज्ञों का सम्पादन करना।

1. **ब्रह्माचर्याश्रम:-**

   ब्रह्माचारी का मुख्य कर्तव्य है की वह स्वाध्याय करे, अग्निहोत्र रचे, नित्य स्नान करे, भिक्षाटन करे, जीवन पर्यन्त गुरु के समीप रहे, गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र या अपने किसी शाखाध्यायी के समीप रहे।

2. **गृहस्थ आश्रम :-**

   इस आश्रम में सभी अपनी-अपनी परंपराओं (यानि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार विहित कार्यों का) पालन करें। गोत्रों को बचाकर विवाह करें, समयानुसार ऋणत्रयी से मुक्त होने के उपाय करें, पंच महायज्ञों का यथाशक्ति पालन करें। क्योंकि गृहस्थाश्रम ही शेष अन्य आश्रमों का अवलम्बन होता है।

3. **वानप्रस्थाश्रम:-**

   यह तीसरा आश्रम है और यह गृहस्थ और सन्यास आश्रमों के मध्य की कड़ी है। यह गृहस्थियों को सिखाता रहता है और स्वयं सन्यास आश्रम की परम्परा से सीखता रहता है। इसके मुख्य कर्तव्य हैं कि यह ब्रह्मचर्य का पालन करे, भूमि पर शयन करे, जटा मृग धारण करे, अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करे, देव, पितृ, एवं अभ्यागतों की सेवा, पूजा-अर्चना करे, और वन में रहकर कंद, मूल, और फलों पर जीवन यापन करे।

4. **सन्यास आश्रम:-**

   इसके मुख्य कर्तव्य हैं कि वह सांसारिक कार्य को न करे, निष्किंचन बना रहे, एकाकी रहे, प्राण रक्षा मात्र के लिए स्वल्पाहर करे, समाज में न रहे, जंगल में रहे किन्तु विचरणशील अवस्था में तथा मन, वचन, और कर्म से बाह्य और आंतरिक स्वच्छ रहे।[88]

अब वे राजा के लिए यह निर्देशित करते हैं कि उपर्युक्त प्रकार से समाज में जीवन का संचालन हो और सभी प्राणी सर्व प्रकार से अपने जीवन का परम् लक्ष्य अर्थात मोक्ष को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहें। यह सब सम्भव हो सकेगा वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करने से। इसलिए राजा यह सुनिश्चित करे कि समाज की वर्णाश्रम धर्म में प्रवृति बनी रहे । इसलिए वर्ण और आश्रम के लोग अपने-अपने धर्मों का पालन करते हुए किसी भी प्रकार की हिंसा न करें (दैहिक, वाचिक और कार्मिक) सत्याचरण करें, किसी से ईर्ष्या न करें, दयावान और क्षमाशील बने रहें। वे लिखते हैं कि वर्णाश्रम धर्म के आचरण से मोक्ष और अभाव से वर्ण संकरता बढ़ती है जिससे लोक नष्ट हो जाता है।[89] भगवान श्रीकृष्ण ने भी श्रीमदभगवदगीता में यही उपदेश दिया है।[90] सामाजिक न्याय का आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य

भी यही है, भगवान बुद्ध की भी ऐसी ही सम्मति थी।[91] इसलिए राजा वर्णाश्रम धर्म का पालन सुनिश्चित कर लोक और परलोक में सुखी हो। इस प्रकार त्रयी धर्म में प्रवृत रहने वाला राजा सदैव यशस्वी होता है।

वार्ता

भगवान श्रीकृष्ण ने चतुर्वर्णी सृष्टि का आधार गुण और उनके अनुरूप कर्मों को बताया है।[92] अपने कर्मों के आधार पर ही मनुष्य लोक और परलोक में यश का भागी बनता है। वार्ता के अंतर्गत कृषि, से अभिप्राय पृथ्वी से प्राप्त होने वाले सभी संसाधनों से है, पशुपालन (सभी प्रकार के पशु), व्यापार से अभिप्राय भी सभी प्रकार का वह व्यवहार जिससे अर्थोत्पादान होता हो, से है, इस विद्या को उन्होंने सर्व प्रकार की समृद्धि का कारक माना है। जहाँ यह विद्या समाज के कल्याण का हेतु है वहीं यह राज्य के संरक्षण और संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है। कोष का संवर्धन का आधार यही है। कोष के बल पर ही सेना के द्वारा राजा पक्ष और विपक्ष को वश में रख पाता है इसलिए राजा न केवल स्वयं वार्ता संबंधी विद्या में पारंगत हो बल्कि अपने सहयोगियों को भी इसमें सिद्ध करे क्योंकि सभी प्रकार की समृद्धि इसी से प्राप्त होती है और प्रजा में सुख और शांति का मुख्य कारक भी यही होती है।[93]

दण्डनीति

दण्डनीति को कौटिल्य बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं और इसी को सभी विद्याओं का आधार मानते हैं। दंड से अभिप्राय राजा की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति से है। यानि, वह नीति जोकि राज्य का व्यवस्थित संचालन करे। वे इसे इतना प्रभावी मानते हैं कि इसी को अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति का, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा का, रक्षित वस्तुओं की वृद्धि और लोक प्रशासन के सुव्यवस्थित संचालन का हेतु बताते हैं। इसलिए राजा सदैव ही इसके पालन में उद्धत रहे। आगे वे पुरातन आचार्यों के माध्यम से इसकी कड़ाई से सम्मति प्रकट करते हुए इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं कि सुशासन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं जिससे सभी को सहज वश में किया जा सके। अतएव राजा को सदैव इसका सम्यक व्यवहार करना चाहिए क्योंकि, यदि इसकी सम्यकता का ध्यान न रखा गया तो समाज के सभी वर्गो में अशांति फैल सकती है जोकि राजा और राज्य दोनों की स्थिरता के लिए हानिकारक हो सकती है। इसलिए राजा को इसके प्रभाव और अभाव दोनों से सावधान रहना चाहिए। प्रभाव में अशांति और अभाव में मत्स्य न्याय की अवस्था का निर्माण हो सकता है। अतएव राजा को तदानुरूप आचरण करना चाहिए। वे कहते हैं कि दण्डनीति के बल पर कमजोर राजा भी बलवान हो जाता है। इसलिए दंडनीति सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि जो राजा उचित प्रकार से दंडनीति का व्यवहार करता है वही सही अर्थो में योगक्षेम का साधक होता है। क्योंकि दंडनीति सर्वविद्या प्रधान होती है और इसका सम्यक व्यवहार अन्य विद्याओं के अभाव में सर्वथा असंभव है।[94]

परम्परा में विद्या विनय का आधार होती है।[95] कौटिल्य इसको राजा के व्यवहार में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं उन्होंने इसके दो प्रकार बताए हैं एक, कृत्रिम या नैमित्तीक यानि जो किसी कार्य विशेष की पूर्ती के लिए व्यवहृत किया जाए और दूसरा स्वाभाविक अर्थात जो व्यक्ति के स्वाभाव का परिचायक हो। वे दूसरे वाले को महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति सुपात्र होता है और विद्या इसी प्रकार के व्यक्तियों में परिवर्तन कर सकती है, कुपात्र या कृत्रिम विनय वालों में नहीं। इसके कारण की मीमांसा करते हुए वे आगे लिखते हैं कि विद्या उन्हीं को योग्य बनाती है जोकि शुश्रुषा, श्रवण, धारण, विज्ञान, उहापौह यानि तर्क वितर्क में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते हैं।[96] वे यहाँ पर राजा के अनेक प्रकार के गुणों को संक्षिप्त करके उल्लेख करते हैं किन्तु आवश्यकता अनुसार उनके

विशद निहितार्थ को दृष्टिगत रखते हैं और यथायोग्य उसके उपयोग की अपेक्षा रखते हैं। राजा के लिए यह अनिवार्य है कि वह विद्या के निष्णात आचार्यों से ही प्रत्येक विद्या गृहण करे।[97] वे सभी स्थानों पर विद्या शब्द का प्रयोग कर रहे हैं तो स्पष्ट है कि इसका अभिप्राय विद्या और अविद्या दोनों से है जो कि लोक और परलोक दोनों की साधक है ।[98] भारतीय चिंतन परम्परा में प्राणी के लिए यह अतिआवश्यक है कि वह अपने लोक-परलोक दोनों का हित साधे । राजा के लिए तो यह और भी बाध्यकारी हो जाता क्योंकि सभी प्रजाजन उसी का अनुसरण करते हैं। इसीलिए राजा को काल का निर्धारक कहा गया है। राजा को सदाचारी आचार्यों के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान के लिए विभिन्न विभागों के प्रमुखों से भी उनके अनुभवों का लाभ लेकर लोक कल्याणकारी नीतियों का व्यवहार करना चाहिए। सभी संस्कारों का यथोचित पालन करते हुए वह 16 वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचार्य का पालन करके गृहस्थ धर्म में प्रवृत हो क्योंकि भारत में यह आश्रम सभी आश्रमों की आधारशीला या धुरी है। गृहस्थ धर्म में प्रवृत होने के बाद वह सदैव श्रेष्ठजनों जोकि विद्यावंत हों, के साथ रहे क्योंकि समस्त वैनम्र उन्हीं की संगति से आता है।[100] तैत्तिरीय उपनिषद[101] आदि भी ऐसा ही संकेत करते हैं और महाभारत, रामायण में भी इसी प्रकार के निर्देश हैं। इसके बाद राजा के क्रियाकलापों के संचालन के लिए वे कालक्रम का निर्धारण करते हैं, जोकि कुछ इस प्रकार है। दिन का प्रथम प्रहर राजा हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र-शस्त्र, दूसरा प्रहर इतिहास सुनने में लगाए, इतिहास में कौटिल्य पुराण, इतिवृत, आख्यायिका, उदाहरण यानि मीमांसा, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र को सम्मिलित करते हैं[102] जबकि शुक्र इतिहास और पुराण में भेद करते हैं[103] कौटिल्य का अर्थशास्त्र शुक्र के परवर्ती काल की रचना है और बौद्ध लेखनशैली के प्रभाव से प्रभावित है इसलिए उन्होंने दोनों को एक ही श्रेणी में रख लिया है, नहीं तो दोनों में भेद है। उपनिषद भी इस भेद को स्पष्ट करते हैं।[104] अस्तु । यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि कौटिल्य इन सब के ज्ञान को विद्या की श्रेणी में रखकर अध्ययन करने का आग्रह करते हैं जोकि स्वयं में सनातन परम्परा को आगे बढ़ाता है। बाकि शेष समय जो दिन रात का बचता है में वे नए ज्ञान के सृजन और उपलब्ध ज्ञान के मनन चिंतन में व्ययतीत करने कि व्यवस्था देते हैं । शास्त्र श्रवण की परम्परा के निर्वहन की भी बात को प्रमुखता से रखते हैं क्योंकि ऐसा करने से वह ज्ञान आचरण में उतर जाता है और यह बुद्धि को भी वृद्धिगत करने में सहायक होता है। ऐसा करने से योगशास्त्रों में रूचि बढ़ती है और योग आत्मा परमात्मा के संबंधों को सुदृढ़ करके आत्मबल को बढ़ाता है। यही विद्या का सुपरिणाम है। वे लिखते हैं कि उपर्युक्त गुणों से विभूषित जो राजा प्राणियों के हित साधन में रत रहता है और प्रजा को भी इसी प्रकार का जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है वह चिरकाल तक पृथ्वी का भोग करता है।[105] श्रीमदभगवदगीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने यही कहा है कौटिल्य भी अपने पूर्ववर्तियों का अनुसरण करते हैं ।

राजा को विद्यावंत क्यों होना चाहिए के विषय का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं कि विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है। और इन्द्रियजयी राजा ही यशस्वी होता है। हितोपदेश और मानवधर्म शास्त्र में इन्द्रियजय कि महत्ता का बहुत वर्णन किया गया है। श्रीमदभगवदगीता ने भी इस पर विस्तार से प्रकार डाला है। इन्द्रियजय के विषय में वे यह भी लिखते हैं की शास्त्र सम्मत कर्तव्यों के निर्वहन को ही इन्द्रियजय कहा गया है।[106] अतएव, राजा को शास्त्र सम्मत आचरण ही करना चाहिए जिन्होंने शास्त्र विपरीत आचरण किया ऐसे राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त हुए, का भी उन्होंने उल्लेख किया है। ऐसे राजाओं की श्रेणी में उन्होंने भोजवंशीय दाण्डाक्य, विदेह के राजा कराल, जन्मेजय, भृगुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ, इला पुत्र पुरुरवा, सौबीर देश के राजा अजबिंदु, पुल्स्त्यवंशी रावण, दुर्योधन, डान्मोदभव जोकि नर नारायण से युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ, हैहयराज अर्जुन जोकि परशुराम के द्वारा मारा गया, वातापी असुर अगस्त्य ऋषि के प्रवंचना से और यादवसंघ द्वैपायन ऋषि के साथ कपटपूर्ण आचरण से मृत्यु

को प्राप्त हुए। राजा का सबसे बड़ा शत्रु षडविकार हैं जो इन पर विजयी होता है वह परशुराम, अंबरीश और नाभाग सदृश जितेन्द्रिय राजाओं की भांति चिरकाल तक धरती पर शासन करता है।[107]

इस प्रकार कौटिल्य एक ऐसे राजा का निरूपण करतें हैं जोकि न केवल शास्त्र सम्मत आचरण में प्रवीण है अपितु उस आचरण के द्वारा सभी प्राणियों में समत्व भाव भी रखता है। कौटिल्य का राजा धर्माचरण करता हुआ भी अन्य मत-पन्थ, सम्प्रदायों को भी समान धर्मी भाव के अनुरूप व्यवहार करता है। इसका यह व्यवहार आधुनिक काल के *सेकुलरवाद* का आदर्श है। वह अपने आचरण से न केवल स्वयं की मुक्ति के उपायों को साधता है बल्कि प्रजा को भी इस दृष्टिकोण से उद्यत करता हैं। क्योंकि, सनातन जीवन पद्वति का मुख्य आधार मुक्ति है और इसकी प्राप्ति जीव-जगत और ईश्वर की समझ के अभाव में असंभव है। कौटिलीय राजदर्शन में सर्वत्र सम्यकता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अतिवाद को वे सदैव अमान्य करते हैं क्योंकि यह कभी भी मुक्ति का साधक नहीं हो सकता। कौटिल्य ने इसीलिए अपने पूर्ववर्ती विचार परंपराओं के संस्थापक मनु, बृहस्पति और शुक्र के विद्या सम्बन्धी विचारों से असम्मति प्रदर्शित करते हुए उसमें आन्वीक्षकी को भी शामिल करके विद्या के चार स्तम्भ आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति स्थापित किए हैं। उनका स्पष्ट मत था कि राजा इन चारों के सम्यक ज्ञान के आधार पर ही इस रत्नगर्भा पृथ्वी का नेतृत्व कर सकता है और यदि इन चारों को नही साधा गया तो जैसे अतीत में अनेक राजा नाश को प्राप्त हुए वैसे ही इनका राजा भी प्राप्त होगा। इस प्रकार कौटिल्य का राजा अपने जीवन को उतारकर लोक कल्याण करने में सक्षम हो सकता हैं। कौटिल्य लोक कल्याण के लिए राजा का दार्शनिक होना अनिवार्य मानते हैं और उसी का निरूपण उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में लिया है जिस राजा में ये गुण होते हैं वही दर्शनिक और प्रजारंजक हो सकता है। राजा का प्रजारंजक होना ही इनके राजा का प्रमुख अभीष्ट है; तभी तो वे लिखते हैं।

प्रजा सुखे सुखं राज्ञेः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हित।। 109

यानि, प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि इसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के संपादन करने में हैं। कौटिल्य का राजा इसी अनुरूप आचरण करता है और उसके इस आचरण में विद्या परंपरा मे महती भूमिका है।

संदर्भ सूची

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, टीकाकार वाचस्पती गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, (15वां अधिकरण, 180वें प्रकरण के प्रथम अध्याय की प्रथम सूक्ति) पुनमुर्द्रित संस्करण 2013,पृ० 765
2. तदैव- पृ० 68
3. तदैव- पृ० 72-73
4. तदैव, अधिकरण विभाजन, पृ० 7
5. तदैव
6. ईशोपनिषद 11वाँ मन्त्र
7. कौटिलीय अर्थशास्त्र, तदैव- पृ० अधिकरण 1, प्रकरण 1, अध्याय 1 (पृ०8)

8. तदैव
9. तदैव
10. तदैव पृ०
11. तदैव पृ० 8-9
12. तदैव पृ० 1
13. शुक्रनीति सार, टीकाकार जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुभारती प्रकाश 0, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2009. पृ० 521
14. कौटिलीय अर्थशास्त्र, तदैव पृ० 8-9
15. तदैव पृ० 8
16. तदैव पृ० 12-13
17. तदैव पृ० 8
18. राघवेन्द्र वाजपेयी, वार्हस्पत्य राज्य व्यवस्था चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1966, पृ० 12-13
19. कृष्ण कुमार, प्राचीन भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2010, पृ० 111-112
20. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 1/1/2, पृ० 10
21. तदैव
22. तदैव
23. तदैव
24. मनुस्मृति 6/92
25. कौटिलीय अर्थशास्त्र, तदैव- पृ० 765
26. तदैव
27. तदैव पृ० 12
28. तदैव पृ० 10
29. तदैव पृ० 11
30. तदैव पृ० 8
31. मनुस्मृति- 7/54
32. तदैव 9/259
33. तदैव 7/64
34. तदैव-7/110-112
35. तदैव 114-115
36. तदैव- 7/14-31
37. कौटिलीय अर्थशास्त्र- पृ० 8
38. तदैव
39. तदैव
40. तदैव पृ० 8-9
41. तदैव

42. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली, (19वाँ संस्करण) 2023
43. माधवाचार्ण प्रणीत और उमाशंकर शर्मा ऋषि व्याख्यायित, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
44. प्रो० हरेन्द्र सिन्हा, तदैव पृ० 7-8
45. तदैव पृ० 4-7
46. श्रीमदभगवदगीता- 10/26
47. सरविलियम जोन्स समग्र, खण्ड 4 अगम प्रकाशन, दिल्ली वर्ष 1977 पृ० 211-12
48. महाभारत, शान्तिपर्व 316/2
49. षड़दर्शन समुच्चय, व्याख्याकार आचार्य रूद्र प्रकाश दर्शन केसरी, चौखम्बा कृष्ण दास अकादमी वाराणसी 2020 पृ० 109
50. श्रीमदभगवदगीता, द्वितीय अध्याय (संख्या योग)
51. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा तदैव पृ० 229
52. तदैव
53. तदैव पृ० 251
54. तदैव पृ० 229
55. तदैव पृ० 271
56. तदैव पृ० 270-71
57. तदैव पृ० 270
58. तदैव
59. तदैव
60. तदैव
61. पातंजलयोग दर्शनम्, साधन पाद, 29-30वाँ सूत्र
62. तदैव 32 वाँ सूत्र
63. तदैव 46 वाँ सूत्र
64. तदैव 48-49 वाँ सूत्र
65. तदैव 50 वाँ सूत्र
66. तदैव
67. तदैव
68. तदैव 54 वाँ सूत्र
69. तदैव 53 वाँ सूत्र तथा विभूति विश्तिपाद पाद का प्रथम सूत्र
70. तदैव द्वितीय सूत्र
71. तदैव, तृतीय सूत्र
72. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, तदैव पृ० 79
73. तदैव
74. तदैव
75. तदैव
76. तदैव पृ० 80

77. तदैव पृ० 81
78. कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ० 10
79. बल्देव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2010, पृ० 85
80. तदैव पृ० 304
81. तदैव पृ० 307-08
82. पारसनाथ द्विवेदी, वैदिक साहित्य का इतिहास चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ० 281
83. तदैव पृ० 184-85
84. तदैव पृ० 187
85. तदैव
86. तदैव पृ० 173
87. छान्दोग्य उपनिषद-तृतीय खण्ड 7वाँ मन्त्र
88. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० 10
89. कौटिलीय अर्थशास्त्र तदैव पृ० 10-11
90. तदैव पृ०
91. श्रीमदभागवदगीता- 1/40-44
92. बल्देव उपाध्याय, भारतीय धर्म और दर्शन, तदैव पृ० 210-11
93. श्रीमदभागवदगीता- 4/13
94. कौटिलीय अर्थशास्त्र तदैव पृ० 12
95. तदैव पृ० 12-13
96. हितोपदेश-प्रथम प्रकरण का 6वाँ मन्त्र
97. कौटिलीय अर्थशास्त्र, तदैव पृ० 14
98. तदैव 15
99. ईशोपनिषद 11वाँ मन्त्र
100. महाभारत शातिपर्व
101. कौटिलीय अर्थशास्त्र तदैव 15
102. कौटिलीय उपनिषद, शिक्षा वल्ली, एकादस अनुवाद 1-4 मन्त्र
103. कौटिलीय अर्थशास्त्र तदैव 15
104. शुक्रनीति सार 4/52‘53
105. छान्दोग्य उपनिषद-सप्तम अध्याय, प्रथ मखण्ड 2 मन्त्र
106. कौटिलीय अर्थशास्त्र-तदैव, पृ०15
107. तदैव पृ० 16
108. तदैव पृ० 17
109. तदैव 1/14/18/3 पृ० 64

4

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और महिला सशक्तिकरण: एक विश्लेषण

डॉ. प्रवीण कुमार झा
आचार्य, शहीद भगत सिंह कॉलेजदिल्ली विश्विद्यालय
विनायक राय
स्वतंत्र शोधकर्ता

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना 2 फरवरी, 2006 को शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य काम के अधिकार के तहत ग्रामीण आबादी के लगभग 2/3 हिस्से को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना था, जिसमें महिलाओं की भागीदारी और रोजगार के लिए विशेष प्रावधान किया गया था। योजना में यह अनिवार्य किया गया है कि रोजगार के मामले में महिलाओं को इस तरह प्राथमिकता दी जाएगी कि कम से कम एक तिहाई लाभार्थी महिलाएं हों। उनकी भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए, योजना में 'पुरुषों के साथ महिलाओं की मजदूरी समानता, महिलाओं के लिए मजदूरी दरों की अलग अनुसूची का प्रावधान, क्रेच की सुविधाएं, बच्चों के लिए काम के किनारे शेड और बाल देखभाल सेवाओं का प्रावधान किया गया है। उन्हें काम करने में और अधिक सुविधा प्रदान करने के लिए, योजना लाभार्थियों के निवास के पास काम प्रदान करती है।' यह योजना महिलाओं की भागीदारी की व्यावहारिक और रणनीतिक जरूरतों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस शोध कार्य का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन और खाद्य सुरक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण पर मनरेगा के प्रभाव को समझना है।'[1]

2011 की जनगणना के अनुसार, देश की लगभग 68.8 प्रतिशत आबादी 6.41 लाख गांवों में रहती है जो अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। 2011 की जनगणना के अनुसार:

तालिका 1		
लिंग-वार ग्रामीण जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		
कुल ग्रामीण जनसंख्या	कुल ग्रामीण पुरुष जनसंख्या	कुल ग्रामीण महिला जनसंख्या
83.37 crore	42.78 crore	40.60 crore

Source: India Census: Population, https://www.ceicdata.com/en/india/

[1] Government of India, **'Participation of Women under Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme',** Ministry of Rural Development. https://rural.gov.in/en/press-release/, checked on November 25th, 2024.

 ISSN: 2321-0443

स्वतंत्रता के बाद से भारत सरकार ने ग्रामीण लोगों को लाभकारी रोजगार प्रदान करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम अपनाए हैं। इसमें विभिन्न योजनाओं के तहत उन्हें रोजगार प्रदान करने से संबंधित योजनाएं शामिल हैं; या ग्रामीण अकुशल लोगों के कौशल संवर्धन द्वारा ताकि उन्हें बेहतर रोजगार के अवसर मिल सकें और उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। ऐसे कार्यक्रमों में शामिल हैं: राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1980 में), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (1983 में), जवाहर रोजगार योजना (1989 में एनआरईपी और आरएलईजीपी के विलय के बाद) रोजगार आश्वासन योजना (1993 में), आदि, लेकिन इनका लाभ ज्यादातर पुरुष आबादी को मिला है, जो ज्यादातर शहरी क्षेत्रों में चले गए हैं। ग्रामीण महिलाओं को रोजगार देने और उन्हें लाभ पहुंचाने की तत्काल आवश्यकता थी ताकि वे अपने परिवार के लिए भोजन कमा सकें। इस संबंध में नरेगा एक स्वागत योग्य योजना था। इस योजना को 2005 में लागू किया गया था। इसने ग्रामीण गरीबों, खासकर ग्रामीण महिलाओं को काम करने का वैध अधिकार दिलाया है। इस योजना का नाम बदलकर 2009 में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एमएनआरईजीएस) कर दिया गया।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के स्पष्ट उद्देश्य से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम को तीन चरणों में लागू किया गया। पहला चरण 2 फरवरी, 2006 को शुरू हुआ, जब योजना 200 ग्रामीण जिलों में शुरू की गई। योजना का दूसरा चरण वर्ष 2007-08 में था, जब इसे अतिरिक्त 130 जिलों में शुरू किया गया। तीसरा चरण 1 अप्रैल 2008 से शुरू हुआ, जब योजना अन्य जिलों में शुरू की गई। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 की प्रस्तावना में अधिनियम का लक्ष्य स्पष्ट रूप से इस प्रकार बताया गया है कि: "प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक परिवार को कम से कम सौ दिन का गारंटीकृत मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराकर देश के ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाने के लिए प्रावधान करना, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने के लिए स्वेच्छा से तैयार हों और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए प्रावधान करना।"[2]

यह अधिनियम महिलाओं को उनकी पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कुछ स्पष्ट अधिकार प्रदान करता है।

(क) पुरुष और महिला दोनों श्रमिकों को समान वेतन दिया जाएगा और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा।

(ख) ग्राम सभा समिति के सदस्यों का चुनाव करेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि इसमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिलाओं का प्रतिनिधित्व हो।

(ग) कार्य का समय ऐसा होना चाहिए कि लोगों के लिए इसमें भाग लेना सुविधाजनक हो – यह आर ई जी एस (ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना) श्रमिकों, महिलाओं और हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए सुविधाजनक हो।

[2] Government of India, The Mahatma Gandhi National rural Employment Guarantee Act, 2005, https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/6930/1/

(घ) कार्यस्थल पर शिशुगृह की आवश्यकता तथा परिवारों के लिए कार्य को सुविधाजनक बनाने का उल्लेख किया गया है।

(व) एकल व्यक्ति को "परिवार" के रूप में मान्यता देकर, अधिनियम विधवाओं तथा अन्य एकल महिलाओं के लिए इस कार्य तक पहुँच को संभव बनाता है।

तालिका 2	
पिछले दशक में मनरेगा कार्य में महिलाओं की भागीदारी (प्रतिशत में)	
2012-2013	51.3
2013-2014	52.82
2014-2015	54.88
2015-2016	55.26
2016-2017	56.16
2017-2018	53.53
2018-2019	54.59
2019-2020	54.78
2020-2021	53.19
2021-2022	54.82
2022-2023	57.47
2023-2024	58.88

Source: Government of India, 'Participation of Women under Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme', Ministry of Rural Development. https://rural.gov.in/en/press-release/, checked on November 25th, 2024.

ऊपर दी गई तालिका 2 से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस योजना के तहत काम चाहने वाली महिलाओं की संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि हुई है। 2013 से ग्रामीण नौकरी योजना में महिलाओं की भागीदारी में 6.06 प्रतिशत अंकों की वृद्धि हुई है - 2013-14 में 52.82 प्रतिशत से 2023-24 में 58.88 प्रतिशत। साथ ही महामारी की अवधि के दौर एमएनआरईजीएस के तहत काम की मांग में तेज वृद्धि हुई जो कि रिवर्स माइग्रेशन के कारण 2019-2020 में 265 करोड़ की तुलना में 2020-21 में 389 करोड़ व्यक्ति दिवस और 2021-22 में 363 करोड़ थी। महामारी की अवधि के दौरान इस योजना का लाभ उठाने वाली महिलाओं का प्रतिशत लगभग 53-54 प्रतिशत था। वर्ष 2023-2024 में, 3 अप्रैल तक 310 करोड़ व्यक्ति दिवस (कुछ राज्यों द्वारा दिए गए अतिरिक्त व्यक्ति दिवसों सहित) सृजित किए गए हैं, जिनमें से 182.97 करोड़ व्यक्ति दिवस (58.8 प्रतिशत) - महिलाओं के थे। मंत्रालय के आंकड़ों से पता चलता है कि 2022-23 में, इस योजना का लाभ उठाने वाले 57.47 प्रतिशत श्रमिक महिलाएं थीं। एमएनआरईजीएस के तहत महिलाओं की भागीदारी में यह क्रमिक वृद्धि कई कारणों से देखी जा सकती है जैसे कुछ

राज्य महिला श्रमिकों को प्रोत्साहन दे रहे हैं, 'महिला साथियों' की नियुक्ति का प्रावधान (जो एमएनआरईजीएस स्थलों पर काम की निगरानी करती हैं और श्रमिकों की उपस्थिति दर्ज करती हैं), ग्रामीण नौकरियों में महिला स्वयं सहायता समूहों (एस एच जी) की भागीदारी आदि।

नीचे दी गई तालिका 3 में अधिकतम महिला भागीदारी वाले 8 राज्यों के प्रतिशत आंकड़े दर्शाए गए हैं:

तालिका 3

हाल के वर्षों में एमएनआरईजीएस में महिलाओं की भागीदारी के अधिकतम प्रतिशत वाले 8 राज्य

राज्य	**2018-19**	**2019-20**	**2020-21**	**2021-22**	**2022-23**
अखिल भारतीय	**54.60**	**54.79**	**53.20**	**54.82**	**57.43**
केरल	90.41	89.80	90.49	89.61	89.82
पुडुचेरी	87.64	86.79	86.82	87.59	87.48
तमिलनाडु	85.40	86.30	85.37	85.70	86.41
गोवा	70.67	75.59	76.55	78.40	78.40
राजस्थान	66.07	67.33	65.68	66.68	68.17
हिमाचल प्रदेश	63.26	62.75	61.05	62.53	64.77
तेलंगाना	62.80	61.50	58.06	59.18	61.53
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	63.59	59.43	54.66	54.10	58.97

Source: Government of India, 'Participation of Women under Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme', Ministry of Rural Development. https://rural.gov.in/en/press-release/, checked on November 25th, 2024.

मनरेगा और महिला सशक्तीकरण:

कई अध्ययनों का दावा है कि मनरेगा में भागीदारी से महिलाएँ सशक्त हो रही हैं। यह परिवर्तन उनकी क्षमता विकास के कारण हो रहा है, जो कृषि और मनरेगा मजदूरी, सामाजिक लेखा परीक्षा, बैंकिंग पहुँच और सामूहिक बातचीत के बीच उनकी बढ़ती मजदूरी सौदेबाजी शक्ति के कारण हुआ है। योजना के तहत महिलाओं की बढ़ती भागीदारी और आय में वृद्धि के साथ, उनका सशक्तिकरण घर और समाज में भी देखा जा रहा है। उनकी क्षमता निर्माण के अलावा, मनरेगा कृषि मजदूरी को बढ़ाने में भी मदद कर रहा है और ग्रामीण गरीबों, खासकर दलितों और महिलाओं के लिए आय का एक वैकल्पिक स्रोत प्रदान करता है। साथ में, ये प्रभाव ग्रामीण मजदूरों की सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ाते हैं। चूंकि महिलाओं की कृषि मजदूरी राज्य द्वारा निर्धारित मनरेगा मजदूरी के करीब है, इसलिए उनकी यह मजदूरी है (पुरुषों की कृषि मजदूरी महिलाओं से अधिक है) मनरेगा मजदूरी के बढ़ते स्तरों से बढ़ जाती है और जैसे-जैसे महिलाओं की कृषि मजदूरी बढ़ती है, ग्रामीण लिंग मजदूरी-अंतर कम होने लगता है, भले ही महिलाओं की मजदूरी पुरुषों की तुलना में कम बनी हुई है। महिलाओं के लिए, यह सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि उनकी सौदेबाज़ी की

शक्ति में सुधार हुआ है, बल्कि यह भी है कि अब उनके पास कृषि कार्य और मनरेगा कार्य के बीच चुनाव करने का विकल्प है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बड़े भूस्वामी इन परिवर्तनों के बारे में शिकायत करते हैं, क्योंकि वे स्थानीय कृषि श्रम बल पर उनके कड़े नियंत्रण को चुनौती देते हैं। लेकिन श्रमिकों के लिए ये महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी प्रभाव हैं।

महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए कई राज्य एमएनआरईजीएस के तहत महिला श्रमिकों के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन दे रहे हैं। उदाहरण के लिए, केरल ने एक समर्पित कल्याण कोष स्थापित किया है जो 60 वर्ष से अधिक आयु की महिला श्रमिकों को काम के दौरान किसी भी चोट के खिलाफ बीमा और वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इसी तरह उत्तर प्रदेश में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए गांवों में महिला साथियों की नियुक्ति की जा रही है। इसके अलावा बिहार में, राज्य सरकार ने प्रशासन को स्पष्ट संदेश दिया था कि अधिकारियों के प्रदर्शन का मूल्यांकन कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी के आधार पर किया जाएगा। केरल में कुडुम्बश्री जैसे स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के बीच कार्य संस्कृति को बढ़ावा देने से भी चमत्कार हुआ है। इन राज्यों में इसका प्रभाव नीचे दी गई तालिका 4 से देखा जा सकता है:

तालिका 4

केरल, उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी

राज्य	**2018-19**	**2019-20**	**2020-21**	**2021-22**	**2022-23**
केरल	90.41	89.80	90.49	89.61	89.82
उत्तर प्रदेश	35.28	34.28	33.57	37.25	37.75
बिहार	51.74	55.83	54.63	53.19	56.35

Source: Government of India, 'Participation of Women under Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme', Ministry of Rural Development. https://rural.gov.in/en/press-release/, checked on November 25th, 2024.

महिला सशक्तीकरण-समस्याएँ और समाधान:

श्रमिकों को भुगतान में देरी का सामना करना पड़ता है और यह महिला श्रमिकों को योजना में भाग लेने के लिए हतोत्साहित करता है। अधिनियम की एक बड़ी कमी यह है कि कार्य स्थल पर उचित क्रेच सुविधाओं की अनुपलब्धता है, जबकि अधिनियम में यह प्रावधान शामिल है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि महिलाएँ एमएनआरईजीएस कार्यस्थल पर काम करते समय अपने बच्चों के बारे में चिंतित रहती हैं, यहाँ तक कि कुछ महिलाएँ उचित बाल देखभाल सुविधाओं की अनुपलब्धता के कारण एमएनआरईजीएस की नौकरी की सुविधाएँ स्वीकार नहीं करती हैं। यह एक गंभीर समस्या है जिस पर तुरंत ध्यान देने और सुधार की आवश्यकता है। अधिकांश अध्ययनों से पता चलता है कि कार्य की प्रकृति भी महिला श्रमिकों के लिए सहायक नहीं है। ग्रामीण संपर्क और स्थानीय जल निकायों के जीर्णोद्धार से संबंधित अधिकांश चयनित परियोजनाओं में शारीरिक बल के प्रयोग की आवश्यकता वाले भू-कार्य में महिला श्रमिकों की तुलना में पुरुष श्रमिकों को प्राथमिकता दी गई। ग्राम पंचायत के

लिए यह आवश्यक है कि वे मनरेगा के तहत ऐसे कार्यों की पहचान करें और उन्हें अपनाएं जिन्हें महिलाएं आसानी से पूरा कर सकें।

कई राज्यों में कार्यक्रम की प्रक्रिया और अधिकारों के बारे में जागरूकता की कमी के कारण महिलाओं की भागीदारी कम है। इसके लिए आवश्यक है कि ग्राम पंचायत सरकार की ऐसी योजनाओं और ऐसी योजनाओं के तहत किए गए कार्यों के बारे में सार्वजनिक बैठकें आयोजित करें। इससे महिलाओं में जागरूकता पैदा करने और उनकी भागीदारी बढ़ाने में मदद मिल सकती है। सुरक्षित पेयजल, विश्राम स्थल और प्राथमिक चिकित्सा के प्रावधान के लिए एमएनआरईजीएस निधि आवंटित की गई है। लेकिन अधिकांश अध्ययनों में बताया गया है कि पेयजल सुविधा को छोड़कर अन्य सभी सुविधाएं आम तौर पर अनुपस्थित हैं।

मनरेगा की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि यह किस प्रकार की योजनाओं को प्राथमिकता देता है। उत्पादक संपत्तियों के निर्माण में सामाजिक, लैंगिक असमानता पर ध्यान न देना मजदूरी रोजगार कार्यक्रम की सीमित सफलता का एक प्रमुख कारण रहा है। पुरुषों की तुलना में, महिलाओं के बीच अकुशल, सहायक श्रमिकों का अनुपात एमएनआरईजीएस के तहत बहुत बड़ा है। खराब स्वास्थ्य और साक्षरता के साथ-साथ घर के काम और देखभाल की प्रमुख जिम्मेदारी को देखते हुए, महिलाओं के पास केवल उपलब्ध काम का सहारा है। इससे सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह गुणवत्तापूर्ण काम का बुद्धिमानी से चयन करे और लोगों को उस काम में नियोजित करे जो उन्हें भविष्य के रोजगार के अवसरों के लिए कुछ प्रशिक्षण दे सके। एमएनआरईजीएस योजना का कार्यान्वयन ब्लॉक विकास कार्यालयों, ग्राम पंचायत आदि पर निर्भर करता है, जो योजना के बारे में जागरूकता फैलाते हैं और श्रमिकों तक इसके लाभों की पहुँच बनाते हैं। पंचायती संस्थाओं को बहुत कम स्वायत्तता और भूमिका प्रदान की जाती है, जिसके परिणामस्वरूप योजना का अप्रभावी कार्यान्वयन होता है। साथ ही, ग्राम सभा की भूमिका केवल सामाजिक लेखा परीक्षा तक ही सीमित रह गई है। अब सार्वजनिक बैठकों और उसमें पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी के माध्यम से लोगों में जागरूकता पैदा करना आवश्यक हो गया है। लेकिन ज्यादातर ये लोग उचित तरीके का पालन नहीं करते हैं और जॉब कार्ड बनाने, असमान मजदूरी वितरण, महिला श्रमिकों के साथ अनुचित व्यवहार में भ्रष्टाचार की गतिविधियाँ करते हैं। इसके लिए प्रणाली में पारदर्शिता लाना आवश्यक है, जिसे डिजिटल पंजीकरण और कार्यों के आवंटन का प्रावधान करके प्राप्त किया जा सकता है।

महिलाओं के काम, गतिशीलता और भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के अंतर-घरेलू आवंटन के आसपास व्यक्तिगत घरेलू कारक जैसे देखभाल के स्तर, जिम्मेदारियाँ और घर में वयस्क महिलाओं की संख्या और निर्णय लेने में बुजुर्ग/पति की भूमिका समाज में महिलाओं की सामाजिक गतिशीलता को कठोर बनाती है। घर में बच्चों की संख्या और उम्र भी योजना के तहत महिलाओं द्वारा पंजीकरण को प्रभावित करती है। महिलाओं को अक्सर काम पर जाने में कठिनाई होती है क्योंकि उन्हें घर में बच्चों की देखभाल करनी होती है। इस समस्या के समाधान के लिए, एमएनआरईजीएस ने बच्चों के लिए क्रेच जैसी कार्यस्थल सुविधाओं का प्रावधान किया है। अब इसका (क्रेच) सफल क्रियान्वयन आवश्यक है। लिंग मानदंड और रूढ़िवादिता महिलाओं की गतिशीलता और निर्णय लेने की शक्ति को सीमित करती है और उन्हें घरेलू कामों के पितृसत्तात्मक नियंत्रण तक सीमित रखती है। इसके अलावा,

महिलाओं के पास अक्सर बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की देखभाल और घरेलू कामों सहित महत्वपूर्ण घरेलू जिम्मेदारियाँ होती हैं, जिससे उन्हें अन्य कामों के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है (इस घटना को विश्व बैंक द्वारा समय गरीबी कहा जाता है)। ग्लोबल हंगर इंडेक्स (जीएचआई) 2023 के अनुसार, 15-24 वर्ष की आयु की 58% भारतीय महिलाएं एनीमिया से पीड़ित हैं, जिससे मनरेगा के तहत श्रम-गहन कार्य करने में उनकी क्षमता बाधित होती है।

नियमित सामाजिक अंकेक्षण प्रथाओं से भ्रष्टाचार को कम करने में मदद मिल सकती है। इस तरह के भ्रष्ट आचरण से निपटने के लिए,एमएनआरईजीएस में बहुत सारे अंतर्निहित तंत्र हैं, लेकिन अध्ययनों से पता चलता है कि प्रभारी अधिकारी विभिन्न तरीकों से उनका शोषण कर सकते हैं। सामाजिक अंकेक्षण का प्रावधान करके इसे रोका जा सकता है। इस संबंध में यह आवश्यक है कि योजना के तहत किए गए कार्य का सामाजिक अंकेक्षण हो। इसके लिए सप्ताह के एक निश्चित दिन पर सामाजिक अंकेक्षण किया जा सकता है, जब ग्रामीण एकत्र हो सकते हैं। योजना के तहत किए गए कार्य के प्रकार, कार्य में लगे दिनों की संख्या और योजना के तहत किए गए कार्यों पर हुए व्यय का निर्धारण और जाँच की जा सकती है। यह भ्रष्टाचार को कम करने में एक लंबा रास्ता तय करेगा।

एमएनआरईजीएस का उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के लिए स्थायी आजीविका का निर्माण करना है। इसका मुख्य चिंता गरीब लोगों को अकुशल 100 दिन का शारीरिक काम उपलब्ध कराने पर था। अब समय आ गया है कि कार्यबल को कुशल काम की ओर स्थानांतरित किया जाए। इससे उनकी आय में भी स्थायी रूप से वृद्धि होगी। उनकी आय के अलावा, इससे ग्रामीण क्षेत्रों को बेहतर योजना बनाने में मदद मिलेगी और इस प्रकार राज्य का विकास सुनिश्चित होगा। इस दिशा में सरकार ने पहले ही **'उन्नति' परियोजना**' शुरू कर दी है। इसका उद्देश्य एमएनआरईजीएस के तहत कार्यरत श्रमिकों का कौशल विकास करना है, जिससे उन्हें कम वेतन वाली अकुशल नौकरियों के बजाय स्थायी नौकरी मिल सके। इससे उनकी एमएनआरईजीएस पर निर्भरता समाप्त करने में भी मदद मिलेगी।

इस संबंध में मनरेगा के तहत कुछ विकासात्मक गतिविधियाँ जैसे सड़क बनाना, हस्तशिल्प वस्तुओं का केंद्र बनाना आदि शामिल हैं, जो स्थायी रोजगार के अवसर पैदा करने के अलावा क्षेत्र के विकास में मदद कर सकती हैं। साथ ही, मनरेगा को सरकार के अन्य कार्यक्रमों जैसे स्वच्छ भारत, आत्मनिर्भर भारत आदि से जोड़ा जा सकता है। इस संबंध में, ग्रामीण श्रमिकों का कौशल विकास आवश्यक हो जाता है और इसमें 'उन्नति' (केंद्र सरकार द्वारा घोषित कौशल विकास के लिए एक नई योजना) महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने और उनकी निरंतर भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए योजनाओं और योजना से जुड़े लाभों के बारे में जागरूकता पैदा करना आवश्यक है। सरकार के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय की कमी अक्सर देखी जाती है। इससे लोगों और सरकारी कर्मचारियों दोनों में भ्रम की स्थिति पैदा होती है। इस समस्या को हल करने की तत्काल आवश्यकता है। ग्रामीण गरीब मजदूरों को दिए जाने वाले भुगतान में विसंगतियों की पहचान करना और उनका समाधान करना आवश्यक है। राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में एमएनआरईजीएस के तहत किए जाने वाले कार्यों के संबंध में उचित योजना बनाई जाए। साथ ही इन परियोजनाओं

की नियमित निगरानी की जानी चाहिए और ग्रामीण क्षेत्रों के नियोजित विकास को सुनिश्चित करने के लिए खर्चों का लेखा-जोखा किया जाना चाहिए। स्थानीय अधिकारियों को कार्य की योजना बनाने और उसे लागू करने के लिए आवश्यक संसाधन और अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता है।

आमतौर पर महिलाओं के पास अपने श्रम के अलावा कोई अन्य उत्पादक संपत्ति नहीं होती। अक्सर उनके पास घर भी नहीं होता, जिसमें वे पशुपालन कर सकें या अपनी दैनिक खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दुकान खोल सकें। मनरेगा जैसी योजनाओं का महिलाओं के रोजगार पैटर्न पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। महिलाओं को व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों रूप से लाभ हुआ है। महिलाओं को व्यक्तिगत रूप से लाभ हुआ है क्योंकि वे स्वतंत्र रूप से कमाने, अपनी जरूरतों के लिए कुछ पैसे खर्च करने, परिवार के खर्च में योगदान करने आदि में सक्षम हैं। समुदाय के रूप में महिलाओं को मिलने वाले लाभ को ग्राम सभा की बैठकों में उनकी बढ़ती उपस्थिति और भागीदारी, बातचीत की बढ़ती क्षमता आदि से समझा जा सकता है। लेकिन पूरे देश में इसके खराब क्रियान्वयन (जैसे कि बाल देखभाल सुविधा की कमी, कार्यस्थल पर सुविधा और ठेकेदारों की अवैध उपस्थिति) ने इस अधिनियम की लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ा दिया है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए कुछ पहल और बदलाव किए जाने चाहिए।

अंत में हम बस इतना ही कहेंगे कि खराब क्रियान्वयन के कारण मूल्यवान लाभों को पटरी से नहीं उतारना चाहिए। किसी भी योजना की सफलता उन लोगों पर निर्भर करती है जो वास्तव में इसके कार्यान्वयन में शामिल हैं और उन लोगों पर जो लक्ष्य को पूरा करने के लिए नियोजित हैं। इसलिए सफलता का श्रेय और लाभ नियोक्ता और नियोजित दोनों को जाता है। इससे यह भी ज़रूरी हो जाता है कि ब्लॉक स्तर पर सरकारी अधिकारियों के प्रभाव की जाँच और नियंत्रण किया जाए और अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एमएनआरईजीएस को लागू करने का ध्यान रखा जाए।

संदर्भ सूची

1. Centre notifies revised MGNREGA wage rate, https://economictimes.indiatimes.com/
2. Critical Evaluation of MGNREGA: Standing Committee Report Summary, https://prsindia.org/
3. Desai, Sonalde, 'Do Public works programs increase women's economic empowerment? Evidence from rural India', India Human Development Survey, https://ihds.umd.edu/system/files/2020-03/, October 2018.
4. Government of India, Economic Survey of India 2022-2023, www.indiabudget.gov.in

5. Government of India, India Census: Population, https://www.ceicdata.com/en/india/
6. Government of India, '**Participation of Women under Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme',** Ministry of Rural Development. https://rural.gov.in/en/press-release/, checked on November 25th, 2024.
7. Government of India, The Mahatma Gandhi National rural Employment Guarantee Act, 2005, https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/6930/1/
8. HP RDD Annual Reports 2017, 2018, 2019 and 2020.
9. https://nreganarep.nic.in/
10. https://www.indiacode.nic.in/
11. Katoch, Sonali, Amit Guleria, Pradeep Singh, Impact assessment of MGNREGA on Employment Generation, Labour Supply in Agriculture Sector and Migration, https://www.researchgate.net/
12. Mahatma Gandhi Rural Employment Guarantee Act 2005, https://nrega.nic.in/
13. mgnrega.nic.in
14. Narayanan, Sudha, The Continuing Relevance of MGNREGA, https://www.theindiaforum.in/
15. National Rural Employment Guarantee Act 2005, http://www.commonlii.org/
16. Number of families seeking work under एमएनआरईजीएस continues to fall post-pandemic, figures reveal, https://indianexpress.com/, May 2, 2023
17. Ranjan, R., Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act: A Critical Appraisal of its performance since its inception, https://www.iimidr.ac.in/
18. Study to Assess the Impact of एमएनआरईजीएस, https://rural.nic.in/

5

भारत में खाद्य कानून और नियमन: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

संगीता
आचार्य, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र की प्रगति वहाँ रहने वाले नागरिकों के अच्छे स्वास्थ्य में निहित है और लोगों का स्वास्थ्य उनको मिलने वाले भोजन और खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।. 'खेत से लेकर खाद्य प्रसंस्करण' और 'उत्पादन से लेकर उपभोग' तक, खाद्य कई चरणों से होकर गुजरते हैं। खाद्य उत्पादों में सभी खनिज पोषक तत्वों को बचाने, मिलावट और संदूषण को रोकने के लिए खाद्य उत्पादों का उचित प्रसंस्करण और पैकेजिंग आवश्यक है। इससे न केवल राष्ट्र की क्षमता निर्माण में मदद मिलेगी, बल्कि व्यक्तियों को स्वस्थ रखकर उनकी शारीरिक क्षमता में भी सुधार होगा। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता राष्ट्र के किसी सख्त कानून द्वारा नियंत्रित हो तथा खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता पर नियंत्रण रखने के लिए कोई नियामक एजेंसी हो, जो इसके लिए कुछ सख्त मानक निर्धारित करे तथा समय-समय पर बदलते परिवेश के अनुरूप नियमों में संशोधन करे।इस लेख का उद्देश्य लोगों के जीवन और स्वास्थ्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारत के संविधान द्वारा निर्धारित मानदंडों को समझना तथा खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम (एफएसएस अधिनियम), 2006 के प्रावधानों को समझना तथा अधिनियम को लागू करने के लिए एफएसएसएआई द्वारा किए गए प्रयासों पर चर्चा करना है।

सर्वोच्च न्यायालय ने 22 अक्टूबर, 2013 को के.एस. राधाकृष्णन, दीपक मिश्रा की पीठ द्वारा '**सेंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट ... बनाम भारत संघ एवं अन्य'**[1] के मामले में अपना फैसला सुनाते हुए कहा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार में स्वस्थ भोजन का अधिकार भी शामिल है और जनता को किसी भी हानिकारक या मिलावटी खाद्य पदार्थ की आपूर्ति जीवन के मौलिक अधिकार के लिए संभावित खतरा पैदा करती है। 'अनुच्छेद 21 को संविधान के अनुच्छेद 47 के साथ पढ़ने पर राज्य और उसके प्राधिकारियों पर मानव जीवन और स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए उचित स्तर हासिल करने का प्राथमिक कर्तव्य होता है।'[2] इस फैसले ने इस अधिकार की स्थिति को भारत के नागरिकों को गारंटीकृत मौलिक अधिकार के स्तर तक बढ़ा दिया। भारतीय संविधान के अलावा, संयुक्त राष्ट्र ने भी 1985 में अपनाए गए उपभोक्ता संरक्षण पर अपने दिशानिर्देशों के तहत इसे एक आवश्यक उपभोक्ता अधिकार के रूप में उद्धृत किया है।

---

[1] https://indiankanoon.org/doc/164698616/.

[2] Sushila, Legal Framework Regulating Food Safety: A Critical Appraisal, http://clap.nls.ac.in/wp-content/uploads/2021/01/.

'उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में राज्य की भूमिका को उजागर करने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय 1966 के अनुच्छेद 12 का भी उल्लेख किया।'[3]

भारत में खाद्य कानून और विनियमन

खाद्य पदार्थों के वैज्ञानिक मानक कानून निर्धारित करने और उनके उत्पादन, भंडारण, वितरण और बिक्री को विश्लेषित करके उन्हें लागू करने के लिए खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954 को इसी उद्देश्य से जोड़ा गया था। इस अधिनियम को छह अन्य विधानों का समर्थन प्राप्त था, जिनमें शामिल हैं:

- फल उत्पाद आदेश, 1955,
- मांस खाद्य उत्पाद आदेश, 1973,
- वनस्पति तेल उत्पाद (नियंत्रण) आदेश, 1947,
- खाद्य तेल पैकेजिंग (विनियमन) आदेश, 1998,
- विलायक निकाला हुआ तेल, तेल रहित भोजन और खाद्य आटा (नियंत्रण) अधिनियम, 1967,
- दूध और दूध उत्पाद आदेश, 1992

वर्ष 2006 में खाद्य गुणवत्ता को नियंत्रित करने वाला एक नया अधिनियम अर्थात खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम (एफ ए एस एस) लागू हुआ। इसने खाद्य सुरक्षा से संबंधित पुराने नियमों और कानूनों को समेकित किया तथा अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार भारत के खाद्य विनियमनों को सुसंगत बनाने के लिए कुछ आवश्यक मानदंड निर्धारित किए। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:[4]

(क) बहु-स्तरीय और बहु-विभागीय नियंत्रण से एकीकृत कमांड लाइन की ओर बढ़ना;

(ख) नवीन/आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थ, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जैसे रणनीतिक मुद्दों पर एकीकृत प्रतिक्रिया;

(ग) खाद्य उत्पादों के विनिर्माण के लिए लाइसेंसिंग, जो वर्तमान में विभिन्न अधिनियमों और आदेशों के तहत केंद्रीय एजेंसियों द्वारा प्रदान की जाती है, खाद्य सुरक्षा आयुक्त और उनके अधिकारी को विकेंद्रीकृत कर दी जाएगी;

(घ) खाद्य सुरक्षा और मानकों, विनियमों और प्रवर्तन से संबंधित सभी मामलों के लिए एकल संदर्भ बिंदु;

(ङ) खाद्य सुरक्षा प्रबंधन प्रणालियों के माध्यम से केवल नियामक व्यवस्था से स्व-अनुपालन की ओर बदलाव;

---

[3] Ibid.
[4] THE FOOD SAFETY AND STANDARDS ACT, 2006, https://indiacode.nic.in/bitstream/.

(च) खाद्य व्यवसाय संचालकों पर यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी कि प्रसंस्कृत, निर्मित, आयातित या वितरित खाद्य घरेलू खाद्य कानूनों के अनुपालन में है; और,

(छ) अपराध की गंभीरता के आधार पर श्रेणीबद्ध दंड तय करने का प्रावधान और तदनुसार, छोटे अपराधों के लिए नागरिक दंड और गंभीर उल्लंघनों के लिए सजा।

इस अधिनियम के द्वारा भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफ ए एस एस आई) को एक विनियामक निकाय के रूप में स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य प्रसंस्करण, भंडारण और वितरण सहित सभी स्तरों पर खाद्य पदार्थों के लिए विज्ञान आधारित मानकों को विनियमित, पर्यवेक्षण और विकसित करना है, ताकि मानव उपभोग के लिए सुरक्षित भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके। भारत सरकार ने 5 अगस्त, 2011 को इसके लिए नियम अधिसूचित किए। एफ ए एस एस आई द्वारा निर्धारित प्रमुख विनियम इस प्रकार हैं:

I. **खाद्य सुरक्षा और मानक (पैकेजिंग और लेबलिंग) विनियम, 2011:** इसमें उत्पादों की पैकेजिंग और लेबलिंग के लिए वैधानिक और विनियामक आवश्यकताएं निर्धारित की गई हैं। पैकेजिंग और लेबलिंग विनियम, एफ ए एस एस आई के तहत निर्धारित खाद्य उत्पादों की लेबलिंग के लिए सामान्य आवश्यकताएं प्रदान करते हैं और इन्हें निम्नानुसार बताया गया है[5]:

- इन विनियमों के अंतर्गत लेबल पर निर्दिष्ट किए जाने वाले घोषणा के विवरण अंग्रेजी या हिंदी (देवनागरी लिपि में) में होंगे। इस संबंध में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इसमें निहित कोई भी बात इस विनियमन के अंतर्गत अपेक्षित भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के उपयोग को नहीं रोकेगी;
- पूर्व-पैकेज्ड खाद्य पदार्थ को किसी भी लेबल पर या किसी भी तरीके से वर्णित या प्रस्तुत नहीं किया जाएगा जो गलत, भ्रामक या धोखाधड़ी वाला हो या किसी भी तरह से उत्पाद के चरित्र के बारे में गलत धारणा प्रदान करने की संभावना हो;
- पूर्व-पैकेज्ड खाद्य पदार्थों में लेबल इस तरह से लगाया जाएगा कि वे कंटेनर से अलग न हों;
- लेबल पर सामग्री स्पष्ट, प्रमुख, अमिट और खरीद और उपयोग की सामान्य स्थितियों के तहत उपभोक्ता द्वारा आसानी से पठनीय होनी चाहिए;
- जहां कंटेनर को रैपर द्वारा कवर किया जाता है, रैपर पर आवश्यक जानकारी होनी चाहिए या कंटेनर पर लेबल बाहरी रैपर के माध्यम से आसानी से पठनीय होना चाहिए और इसके द्वारा अस्पष्ट नहीं होना।

इनके अलावा, प्रत्येक पैकेज्ड खाद्य पदार्थ के लेबल पर कुछ निश्चित जानकारी भी होनी चाहिए। ये हैं: खाद्य पदार्थ का नाम; सामग्री की सूची; पोषण संबंधी जानकारी; यह घोषणा कि यह शाकाहारी है या मांसाहारी; खाद्य योजकों के बारे में घोषणा; निर्माता का नाम और पूरा पता; शुद्ध मात्रा; लॉट/कोड/बैच

[5] Vaish, Vinay and Urmi Chudgar, India: Laws Governing The Food Industry In India – Revisited, 13 June 2013, https://www.mondaq.com/india/food-and-drugs-law/244880/laws-governing-the-food-industry-in-india--revisited

पहचान; विनिर्माण या पैकिंग की तिथि; सर्वोत्तम उपयोग की तिथि और उपयोग की तिथि; आयातित खाद्य पदार्थ के लिए मूल देश; और उपयोग के लिए निर्देश।[6]

II. **अधिसूचना, विज्ञापन या किसी अन्य तरीके से उत्पाद के बारे में ग्राहकों को संदेश देने वाली कंपनियों के बारे में विनियम:** हालाँकि इस बारे में कोई स्पष्ट नियम नहीं है, लेकिन एफ ए एस एस की धारा 2 (1) ने 'विज्ञापन' शब्द को परिभाषित किया है और ऐसा करते हुए यह स्पष्ट रूप से इसे उत्पाद के बारे में सामान्य और विशेष जानकारी देकर जनता को सूचित करने के साधन के रूप में वर्गीकृत करता है। धारा 24 के तहत एफएसएसए कंपनियों को उत्पाद के मानक, गुणवत्ता या ग्रेड-संरचना; उत्पाद की उपयोगिता; या उत्पाद की गारंटी के बारे में गलत बयान देकर किसी भी खाद्य उत्पाद की बिक्री, उपयोग और खपत को बढ़ावा देने वाले भ्रामक विज्ञापन बनाने से रोकता है।

III. **खाद्य सुरक्षा और मानक (खाद्य व्यवसाय का लाइसेंस और पंजीकरण) विनियम, 2011:** इस विनियमन को 'लाइसेंस और पंजीकरण विनियम' के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि यह खाद्य व्यवसाय कंपनी या संचालन के लाइसेंस और पंजीकरण के बारे में बात करता है। लाइसेंस और पंजीकरण विनियमन 2.1 के तहत इन परिचालनों को लाइसेंस और पंजीकरण विनियमन के नियमों और शर्तों के अनुसार पंजीकृत या लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक है और सुरक्षा, स्वच्छता और स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के संबंध में सहमत नियमों और शर्तों का पालन करना होगा। यह मूल रूप से इसलिए जोड़ा गया है क्योंकि मानव पोषण के क्षेत्र में, सुरक्षित, स्वच्छ, पौष्टिक भोजन देश के उपभोक्ता के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए अपरिहार्य है। इसे सुनिश्चित करने के लिए उन्हें उपभोक्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए भोजन की गुणवत्ता में स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति अत्यधिक सावधानी बरतनी होगी।[7]

IV. **दंड:** इस संबंध में नियमों का पालन न करने का अर्थ है 2.00 लाख रुपये तक का जुर्माना लगाया जाना। इसके अलावा धारा 63 में कहा गया है कि - 'यदि कोई व्यक्ति या खाद्य व्यवसाय संचालक (एफ ए एस एस की धारा 31 की उपधारा (2) के तहत लाइसेंस से छूट प्राप्त व्यक्तियों को छोड़कर) स्वयं या उसकी ओर से किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसे लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक है, बिना लाइसेंस के किसी खाद्य पदार्थ का निर्माण, बिक्री, भंडारण या वितरण या आयात करता है, तो उसे छह महीने तक की कैद और 5 लाख रुपये तक के जुर्माने से दंडित किया जा सकता है।[8]

खाद्य मिलावट से संबंधित मामले (2017-2020)							
खाद्य मिलावट से संबंधित मामले (2017-2018)							
सबसे अधिक मामले दर्ज करने	विश्लेषित नमूनों की संख्या	गैर-अनुरूप पाए गए नमूनों	शुरू किए गए मामलों की संख्या		दोषसिद्धियों/दंडों की संख्या		
			आपराधिक	सिविल	दोषसिद्धि	जिन मामलों में	जुर्माने की राशि रुपये में

6 Ibid.
7 Ibid.
8 Ibid.

वाले तीन राज्य		की संख्या				जुर्माना लगाया गया उनकी संख्या	
Gujarat	9576	713	27	481	382	382	2,59,82,503
Punjab	11057	3053	40	1022	22	568	46,23,650
Uttar Pradesh	19063	8375	102	7232	3237	4219	12,91,85,500
All India	**99,353**	**24,262**	**1,506**	**13,615**	**5,198**	**7,627**	**26,35,41,067**
खाद्य मिलावट से संबंधित मामले (2018-2019)							
सबसे अधिक मामले दर्ज करने वाले तीन राज्य	विश्लेषित नमूनों की संख्या	गैर-अनुरूप पाए गए नमूनों की संख्या	शुरू किए गए मामलों की संख्या		दोषसिद्धियों/दंडों की संख्या		
			आपराधिक	सिविल	दोषसिद्धि	जिन मामलों में जुर्माना लगाया गया उनकी संख्या	जुर्माने की राशि रुपये में
Gujarat	9884	822	22	353	22	237	19589004
Punjab	11920	3961	45	1840	3	1762	15703200
Uttar Pradesh	22583	11817	451	8524	73	5526	158981003
All India	**1,06,459**	**30415**	**2813**	**18550**	**701**	**12734**	**32,57,78,087**
खाद्य मिलावट से संबंधित मामले (2019-2020)							
			सिविल मामले		आपराधिक मामले		

सबसे अधिक मामले दर्ज करने वाले तीन राज्य	विश्लेषित नमूनों की संख्या	गैर-अनुरूप पाए गए नमूनों की संख्या	शुरू किए गए मामलों की संख्या	निर्णय लिए गए मामलों की संख्या	जुर्माने की राशि (Rs.)	शुरू किए गए मामलों की संख्या	निर्णय लिए गए मामलों की संख्या	जुर्माने की राशि (Rs.)
Gujarat	13160	984	579	368	28695500	16	27	966005
Madhya Pradesh	15717	2575	2083	1598	88103000	131	17	1134000
Uttar Pradesh	21193	12568	14575	8881	335465100	1787	133	1877800
All India	118775	29192	27412	16881	577739054	4681	821	1610730

Source: Government Of India Ministry Of Health And Family Welfare Department Of Health And Family Welfare, https://sansad.in/getFile/loksabhaquestions/annex/175/AU2901.pdf?source=pqals

भारत में खाद्य पदार्थों में मिलावट के कुछ प्रसिद्ध मामले:

- 2006 में मदर डेयरी दूध में मिलावट का मामला: इस मामले में, 3 जून 2006 को दिल्ली के होटल शांगरी-ला में खाद्य निरीक्षक द्वारा छापा मारा गया था, जिसके दौरान यह पाया गया था कि इसका प्रबंधक कम वसा वाली क्रीम सहित विभिन्न खाद्य पदार्थों का कारोबार कर रहा था। निरीक्षक ने खाद्य पदार्थ का नमूना एकत्र किया। परीक्षण के बाद, सार्वजनिक विश्लेषक ने पाया कि नमूना मिलावटी था क्योंकि दूध की वसा न्यूनतम निर्धारित मानक 25 प्रतिशत से कम पाई गई थी। अभियोजन पक्ष ने मदर डेयरी के उप प्रबंधक डॉ कल्लोल कुमार प्रमाणिक और फेडरेशन दोनों के खिलाफ और होटल शांगरी-ला के प्रबंधक गिरीश शर्मा, होटल के मूल समूह होटल एक्सेलसियर और आनंद एंटरप्राइजेज की अंजलि आनंद और हर्ष आनंद के खिलाफ कथित रूप से उक्त मिलावटी वस्तु के उत्पादन और बिक्री के कारोबार में शामिल होने का मामला दर्ज किया था।[9]

  दिल्ली की एक अदालत ने मिलावटी कम वसा वाली क्रीम की आपूर्ति करने के लिए प्रमाणिक को छह महीने की जेल की सजा सुनाई है। इसके अलावा, उन पर 10,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया गया है। अदालत ने गुजरात कॉर्पोरेशन मिल्क फेडरेशन लिमिटेड पर 1.00 लाख रुपये का जुर्माना लगाया है। जिसने मिलावटी उत्पाद को अन्य उद्यमों को आपूर्ति किया था, जिसके माध्यम से यह होटल तक पहुंचा।[10]

[9] 'Mother Dairy's Deputy Manager jailed in food adulteration case, May 20, 2014'. http://www.news18.com/news/india.
[10] Ibid.

अपना फैसला सुनाते हुए अदालत ने कहा कि अपराध 'गंभीर प्रकृति का' है और 'खाद्य पदार्थों में मिलावट जन स्वास्थ्य के लिए खतरा है' तथा 'खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम' का मूल उद्देश्य खाद्य पदार्थों में शुद्धता सुनिश्चित करना और नागरिकों के स्वास्थ्य की सुरक्षा करना है।[11] 2015 में पुनः आगरा के निकट एक गांव से लिए गए दूध के नमूनों में डिटर्जेंट पाया गया।[12] इससे पता चलता है कि हमें प्राथमिक स्तर से ही खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता की जांच करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया विकसित करने की आवश्यकता है, ताकि खाद्य बाजार में दूषित उत्पाद के प्रवेश की संभावना को समाप्त किया जा सके।

- मैगी मामला, 2015: अप्रैल 2015 में, एफ ए एस एस आई ने उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में मैगी निर्माण इकाई का औचक निरीक्षण किया। नमूने एकत्र किए गए और एफ ए एस एस आई प्रयोगशालाओं में उनका परीक्षण किया गया और रिपोर्ट आश्चर्यजनक थी। नमूनों में सीसा और मोनोसोडियम ग्लूटामेट (एम एस जी) की मात्रा स्वीकार्य स्तर से अधिक थी। इन पदार्थों का उपभोग-योग्य उत्पादों में उपयोग प्रतिबंधित है। उत्पादक कंपनी यानी नेस्ले इंडिया लिमिटेड ने निष्कर्षों के खिलाफ अपील की और कहा कि एम एस जी प्राकृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम था और नमूने का दोबारा निरीक्षण करने का अनुरोध किया। इसके बाद कोलकाता में सरकार द्वारा अधिकृत प्रयोगशाला में नमूनों की दोबारा जांच की गई जहां निष्कर्षों में कोई अंतर नहीं पाया गया। इसके परिणामस्वरूप कई राज्यों में मैगी की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 9 जून, 2015 को, एफ ए एस एस आई ने 5 महीने के लिए मैगी नूडल्स की बिक्री पर देश भर में प्रतिबंध लगा दिया। मैगी के तत्कालीन ब्रांड एंबेसडर अमिताभ बच्चन, प्रीति जिंटा और माधुरी दीक्षित पर ब्रांड का प्रचार करने के लिए आरोप लगाया गया था और उनके खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज किया गया था।[13]

- **कैडबरी मामला, 2003:** अक्टूबर 2003 में, दिवाली से ठीक एक महीने पहले, मुंबई में ग्राहकों ने कैडबरी डेयरी मिल्क चॉकलेट में कीड़े मिलने की शिकायत की। महाराष्ट्र खाद्य एवं औषधि प्रशासन ने कैडबरी के पुणे प्लांट में निर्मित चॉकलेट स्टॉक को तुरंत जब्त कर लिया। बचाव में, कैडबरी ने एक बयान जारी किया कि निर्माण चरण में संक्रमण संभव नहीं था और खुदरा विक्रेताओं के पास खराब भंडारण कीड़े के मामले की सबसे संभावित वजह थी। लेकिन इसका मतलब था कि यह पैकिंग का मामला था - पैकेजिंग में दोष जो स्वीकार्य नहीं था। नकारात्मक प्रचार की गर्मी ने त्योहार के समय कैडबरी की बिक्री को 30 प्रतिशत तक कम कर दिया, जबकि त्योहार के दौरान इसकी बिक्री में 15 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। जनवरी 2004 में कैडबरी ने डेयरी मिल्क की पैकेजिंग को नया रूप देने वाली मशीनरी को आयात करने के लिए 15

[11] Ibid.
[12] 'Mother Dairy moves swiftly to check 'detergent damage' https://economictimes.indiatimes.com/ industry/cons-products/ food/mother-dairy-moves-swiftly-to- check-detergentdamage /article show/47713689.cms?utm source=contentofinterest &utm _medium=text&utm_campaign=cppst
[13] 'Maggi Case Study: The 2015 Maggi crisis', April 28, 2020, https://casereads.com

करोड़ रुपये (150 मिलियन रुपये) तक का निवेश किया। मेटैलिक पॉली-फ्लो 10-15 प्रतिशत महंगा था, लेकिन कैडबरी ने पैक की कीमत नहीं बढ़ाई।[14]

- **अमेरिका में एफ डी ए द्वारा हल्दीराम पर प्रतिबंध:** 2015 में, अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफ डी ए) की वेबसाइट ने खाद्य उत्पादों के आयात को अस्वीकृत बताया और इस सूची में नागपुर स्थित प्रमुख भारतीय स्नैक्स और मिठाई निर्माता हल्दीराम द्वारा बनाए गए अधिकांश स्नैक्स शामिल थे। प्रत्येक अस्वीकृत हल्दीराम उत्पाद के लिए आरोप विवरण में लिखा है: "यह लेख धारा 801(ए)(3) के अनुसार प्रवेश से इनकार के अधीन है, क्योंकि यह मिलावटी प्रतीत होता है क्योंकि इसमें कीटनाशक रसायन होता है, जो धारा 402(ए)(2)(बी) का उल्लंघन है।" वॉल स्ट्रीट जर्नल की एक रिपोर्ट के अनुसार, 2015 में अमेरिका में परीक्षण किए गए और फिर बिक्री से रोक दिए गए सभी स्नैक उत्पादों में से आधे से अधिक भारत से थे। [15]

वितरित प्रश्नावली के उत्तर में लोगों की प्रतिक्रिया:

विभिन्न आयु वर्ग के 200 लोगों को प्रश्नावली वितरित की गई, जिसके माध्यम से उनसे खाद्य सुरक्षा और मानकों से संबंधित नियमों के बारे में उनकी जागरूकता के बारे में पूछा गया। अवलोकन पर निम्नानुसार चर्चा की गई:

एफएसएसएआई के बारे में जागरूकता: 40 प्रतिशत लोग एफएसएसएआई के बारे में जानते थे और वे उत्पाद खरीदने से पहले उसमें इसके प्रमाणीकरण की जांच करते हैं। 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ऐसे किसी कानून के अस्तित्व के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी।.

खाद्य संदूषण के मामलों के बारे में: ये मामले बहुत लोकप्रिय थे और इनका उत्पादों की बिक्री पर तत्काल प्रभाव पड़ा। अधिकांश ग्राहकों ने बाजार में उपलब्ध अन्य उत्पादों जैसे अमूल दूध, अमूल चॉकलेट, यिप्पी या टॉप रेमन नूडल्स और बिकानो नमकीन को अपना लिया। अब फिर से ये उत्पाद बाजार में अपनी जगह बना रहे हैं। 200 लोगों में से 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस मामले के बारे में पता था, इनमें से 15 प्रतिशत ने इन उत्पादों को फिर कभी न खरीदने का फैसला किया है, लेकिन 35 प्रतिशत ने इन्हें खरीदना शुरू कर दिया है, लेकिन कभी-कभार ही। 20 प्रतिशत लोगों को इस मामले के बारे में पता नहीं था, लेकिन जब उन्हें बताया गया, तो उन्होंने गंभीरता से उत्पाद न खरीदने का फैसला किया। इसका उद्देश्य उत्पाद की बिक्री को प्रभावित करना नहीं था, बल्कि लोगों को ऐसे मामलों के बारे में जागरूक करना था, ताकि वे खाद्य उत्पाद के संदूषण से संबंधित किसी भी समस्या के सामने आने पर एफ ए एस एस आई से संपर्क कर सकें। यह देखा गया है कि कानून के बारे में जागरूकता इसके कार्यान्वयन को प्रभावी और उपयोगी बनाने का पहला कदम है। अपने जवाब में, उत्तरदाताओं ने कुछ बिंदुओं पर सहमति व्यक्त की। ये हैं:

---

[14] Vaid, Molshree, 'How Cadbury's won the battle of worms', https://www.rediff.com/money/2006/dec/ 24cad.htm

[15] India-made food products face USFDA heat, Haldiram's top list of rejected items, http://www.firstpost.com/world /india-made-food-products-face-usfda-heat-haldirams-top-list-of-rejected-items-2297850.html

क) कंपनी स्तर पर गुणवत्ता निरीक्षक द्वारा उत्पाद की नियमित जांच से ही खाद्य उत्पाद के उत्पादन और संदूषण पर निगरानी रखने में मदद मिल सकती है। इसके लिए एफ ए एस एस आई को कुछ सख्त उपाय अपनाने की जरूरत है और कंपनियों के लिए ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति अनिवार्य करनी चाहिए या एफ ए एस एस आई खाद्य उत्पादक कंपनियों के उत्पादन केंद्रों में अपने प्रशिक्षित निरीक्षकों को तैनात कर सकता है।

ख) ऐसे कानूनों के बारे में लोगों में जागरूकता आवश्यक है और इसलिए इन्हें स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

आलोचनात्मक विश्लेषण

इस प्रकार खाद्य गुणवत्ता और उपभोक्ता सुरक्षा एफ ए एस एस आई की प्रमुख जिम्मेदारी है और इसे सुनिश्चित करने के लिए इसके पास आवश्यक शक्ति और क्षमता होनी चाहिए ताकि वर्तमान वैश्विक युग में आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए निगरानी रखी जा सके और एक मजबूत दृष्टिकोण लागू किया जा सके। अपनी स्थापना के बाद से एफ ए एस एस आई ने सराहनीय कार्य किया है, लेकिन समस्या अभी भी मौजूद है और हमें अभी भी FSS अधिनियम के मजबूत प्रवर्तन के लिए नियामक ढांचे को मजबूत करने के लिए विभिन्न उपायों को अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए यह आवश्यक है:

सबसे पहले, मिलावटी खाद्य पदार्थों के उपभोग से जुड़ी समस्याओं के बारे में जागरूकता और सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार हमारे पास उपलब्ध समाधान तथा लोगों तक उपचार की आसान पहुँच ही लोगों का समर्थन पाने और लोगों द्वारा लोगों के कल्याण के लिए बनाए गए नियमों को लागू करने का एकमात्र तरीका है। इसके लिए जनसंचार माध्यमों, नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से लोगों को शिक्षित/सूचित करके और सुरक्षित तथा स्वस्थ भोजन के उपभोग के नियमों और महत्व के बारे में स्कूली पाठ्यक्रम में एक अध्याय जोड़कर एफ ए एस एस आई की क्षमता निर्माण पहलों का निर्माण करना आवश्यक है।

खाद्य या खानपान व्यवसाय में प्रवेश करने से पहले लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य शर्त होनी चाहिए। हालांकि, अधिकांश स्ट्रीट फूड विक्रेताओं के पास संचालन के लिए कोई निश्चित दुकान नहीं है और उनके पास शायद ही कोई दुकान हो। यहां तक कि अधिकांश ईटरी दुकानें भी लाइसेंस प्राप्त करने की परवाह नहीं करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में, नगर पालिकाओं या पंचायतों जैसी स्थानीय संस्थाओं का सहयोग लिया जा सकता है और उन्हें ऐसे संचालकों पर निगरानी रखने और उनके खाद्य पदार्थों का नियमित निरीक्षण करके उनके खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता पर भी नज़र रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए। एफ ए एस एस आई को उन्हें मार्गदर्शन नोट और परामर्श के लिए एक तंत्र भी प्रदान करना चाहिए ताकि कानून के अनुपालन से संबंधित ऐसे दुकान संचालकों की शंकाओं, यदि कोई हो, का समाधान किया जा सके। विनियमों के कार्यान्वयनकर्ताओं से प्रतिक्रियात्मक के बजाय सक्रिय दृष्टिकोण की अपेक्षा की जाती है।

वर्तमान में सभी नियम खाद्य प्रसंस्करणकर्ताओं के कंधों पर खाद्य गुणवत्ता और उपभोक्ता सुरक्षा सुनिश्चित करने का भार डालते हैं। हालांकि, यह देखा गया है कि कई हानिकारक घटक और संदूषक प्राथमिक उत्पादन के समय खाद्य प्रणाली में प्रवेश करते हैं। ये खाद्य उत्पादक कानून के दायरे से बाहर हैं। किसान/मछुआरे या मत्स्य पालन, पशुधन सहित खेती के संचालन की भूमिका पर नियंत्रण जोड़ने के लिए नियमों को संशोधित करने की आवश्यकता है। यह एफ ए एस एस आई के सामने एक बड़ी चुनौती है क्योंकि जब तक कच्चा माल अच्छी गुणवत्ता का नहीं होगा, तब तक अंतिम उत्पाद की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित नहीं की जा सकती है।

एफ ए एस एस आई को ई-कॉमर्स या ऑनलाइन माध्यमों से होने वाले लेन-देन की जांच के लिए अपने कानूनों को अपग्रेड करने की आवश्यकता है। इसके लिए उपभोक्ताओं के बीच खाद्य गुणवत्ता के मुद्दों और उपभोग से पहले इसकी जांच के बारे में जागरूकता पैदा करने और उपभोक्ताओं के साथ खाद्य गुणवत्ता की जिम्मेदारी साझा करने की आवश्यकता है।

इन सभी के लिए, एफ ए एस एस आई को उपभोक्ताओं को शिक्षित करने, उनकी शिकायतों को एकत्र करने और बिना देरी के उनकी चिंताओं का जवाब देने के लिए डिजिटल मीडिया का उपयोग करना चाहिए।

सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक पहुँच न केवल भारत के लोगों का मूल अधिकार है, बल्कि लोगों के लिए स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करना कल्याणकारी राज्य का कर्तव्य भी है। सक्षम लोग ही सक्षम राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकार राज्य पर अपने नागरिकों के कल्याण के लिए एक मजबूत खाद्य सुरक्षा तंत्र स्थापित करने की जिम्मेदारी आती है। लेकिन बार-बार राज्य इस पर ध्यान देने में विफल रहा है। इसका परिणाम बिना लाइसेंस के खाने-पीने की दुकानों का अस्तित्व है, खाद्य पदार्थों में मिलावट के कारण खराब स्वास्थ्य की स्थिति है, जो अक्सर सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए खतरा बन जाती है। मौजूदा एफ ए एस एस अधिनियम मानव उपभोग के लिए सुरक्षित और पौष्टिक भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए खाद्य पदार्थों के निर्माण, भंडारण, वितरण, बिक्री और आयात से संबंधित नियम प्रदान करता है। अब लोगों/उपभोक्ताओं का यह कर्तव्य है कि वे इसे समझें और अधिनियम के मानदंडों का पालन करते हुए सुरक्षित भोजन का ही सेवन करें। इसके अलावा उन्हें अन्य लोगों की सुरक्षा के लिए अपने ज्ञान में होने वाली खाद्य पदार्थों में मिलावट की रिपोर्ट करने में भी पहल करनी चाहिए। एफएसएसएआई से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह वर्षों से प्राप्त अनुभव और लोगों द्वारा दिए गए सुझावों और सिफारिशों के आलोक में मौजूदा कानूनों की फिर से समीक्षा करे।

संदर्भ सूची

1. Food Safety and Standards Act 2006, Statement of Objects and Reasons, https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/7800/1/200634_food_safety_and_standards_act%2C_2006.pdf

2. एफ ए एस एस आई , Manual for Food Safety Officers (2017), file:///C:/Users/Sangeeta/Downloads/Food_Safety_Officer_Manual_08_11_2017.pdf
3. Source: Government Of India Ministry Of Health And Family Welfare Department Of Health And Family Welfare, https://sansad.in/getFile/loksabhaquestions/annex/175/AU2901.pdf?source=pqals
4. https://indiankanoon.org/doc/164698616/.
5. India-made food products face USFDA heat, Haldiram's top list of rejected items,
6. http://www.firstpost.com/world/india-made-food-products-face-usfda-heat-haldirams-top-list-of-rejected-items-2297850.html
7. 'Maggi Case Study: The 2015 Maggi crisis', April 28, 2020, https://casereads.com
8. 'Mother Dairy's Deputy Manager jailed in food adulteration case, May 20, 2014'. http://www.news18.com/ news/india.
9. 'Mother Dairy moves swiftly to check 'detergent damage' https://economictimes.indiatimes.com/ industry/cons-products/ food/mother-dairy-moves-swiftly-to-check-detergentdamage/articleshow/47713689.cms ?utm source=contentofinterest &utm _medium=text&utm_campaign=cppst
10. Report of the Comptroller and Auditor General of India on Performance Audit of Implementation of Food Safety and Standards Act, 2006 [Report No. 37 of 2017], https://cag.gov.in/uploads/download_audit_report/2017/Report_No.37_of_2017
11. Sushila, Legal Framework Regulating Food Safety: A Critical Appraisal, http://clap.nls.ac.in/wp-content/uploads/2021/01/.
12. THE FOOD SAFETY AND STANDARDS ACT, 2006, https://indiacode.nic.in/bitstream/.
13. Vaid, Molshree, 'How Cadbury's won the battle of worms', https://www.rediff.com/money/2006 /dec/ 24cad.htm
14. Vaish, Vinay and Urmi Chudgar, India: Laws Governing The Food Industry In India – Revisited, 13 June 2013, https://www.mondaq.com/india/food-and-drugs-law/244880/laws-governing-the-food-industry-in-india--revisited

6

दिल्ली में वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य: एक विश्लेषण

रश्मि सिंह
सहायक आचार्य, प्राणी विज्ञान विभाग, डी.वी. कॉलेज, उरई

स्वच्छ वायु एक स्वस्थ जीवन के लिए एक बुनियादी आवश्यकता है, लेकिन वायु प्रदूषण एक वैश्विक आपातकाल बन गया है, जहां उच्च जनसंख्या घनत्व के कारण शहर अधिक संवेदनशील हो गए हैं। एशियाई महानगर पहले से भी अधिक प्रदूषित हो गए हैं और उन्होंने वैश्विक ध्यान आकर्षित किया है (आई पी सी सी , 2000)। भारतीय महानगर दिल्ली की वायु गुणवत्ता सर्दियों के महीनों के आगमन के साथ प्रिंट और मीडिया में सुर्खियां बटोरती है (इंडिया टूडै, 2022)। वायु प्रदूषण दुनिया भर के कई विकासशील शहरों के लिए एक बढ़ती चिंता का विषय बन गया है। दिल्ली अक्सर वैश्विक स्तर पर सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में शीर्ष पर होती है (Tiwari et al., 2012)। पिछले कई वर्षों में, विशेष रूप से मानसून के बाद और सर्दियों के मौसम में, दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में वायु प्रदूषण की घटनाओं में तेजी से वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण परिवहन, औद्योगिक ऊर्जा उत्पादन, निर्माण गतिविधियों जैसी स्थानीय उत्सर्जन स्रोतों की बढ़ती संख्या के साथ-साथ भारत की राष्ट्रीय राजधानी के आस-पास के क्षेत्रों में मौसमी फसल अवशेष (पराली) जलाना है। इसने बड़ी आबादी के स्वास्थ्य पर गंभीर खतरा पैदा कर दिया है।

पिछले कुछ वर्षों में, मानसून के बाद के समय में दिल्ली-एनसीआर और उसके आसपास के क्षेत्रों में पी एम 2.5 सांद्रता में वृद्धि देखी गई है। इसे स्थानीय उत्सर्जन स्रोतों के अलावा भारत के उत्तर-पश्चिमी राज्यों में खुले फसल-अवशेष जलाने से जोड़ा गया है। भारत में, कृषि प्रबंधन के लिए आग का उपयोग आम है, जैसे कि धान की खेती के अवशेषों को हटाना। ये आग मुख्य रूप से मानसून के बाद (अक्टूबर-नवंबर) फसलों के अगले चक्र की तैयारी के लिए पराली जलाने के कारण होती हैं।

भारत, जो दुनिया में सबसे बड़ा अनाज निर्यातक है, में चावल उत्पादन और उपज में तीव्र वृद्धि ने पंजाब और हरियाणा जैसे दो उत्तर-पश्चिमी राज्यों में फसल अपशिष्ट की समस्या को और बढ़ा दिया है, जो प्रति वर्ष 27 मिलियन टन से अधिक धान की पराली उत्पन्न करते हैं। अनुमान है कि पंजाब में प्रति वर्ष लगभग 46 मिलियन टन अनाज फसल अवशेष उत्पन्न होता है, जिसमें से लगभग 21 मिलियन टन सालाना जलाया जाता है (सर्दियों में लगभग 7-8 मिलियन टन)। हरियाणा में, प्रति वर्ष कुल 25.73 मिलियन टन अनाज फसल अवशेष उत्पन्न होता है, जिसमें से 9.18 मिलियन टन जलाया जाता है।

फसल अवशेष जलाने की गतिविधियां और प्रतिकूल मौसम की स्थिति, जैसे कि सतह के पास तापमान का उलटा होना, स्थिर सीमावर्ती परत के साथ मिलकर ठंडी और प्रदूषित हवा को सतह के पास फंसा देती हैं। इससे धुंध की

स्थिति बनती है। प्रदूषकों के लिए अधिक समय तक रहने और वायुमंडलीय उलट के कारण कम फैलाव के कारण, धुआं निचले वातावरण में जमा हो जाता है, जिससे निवासियों के स्वास्थ्य को गंभीर खतरा होता है।

कई अध्ययनों में पाया गया है कि दिल्ली में मानसून के बाद के मौसम में पी एम 2.5 सांद्रता का औसत 120 $\mu g/m^3$ से अधिक होता है। दीपावली के समय सांद्रता 900 $\mu g/m^3$ तक भी पहुंच सकती है। गैर-स्थानीय अग्नि उत्सर्जन इन सांद्रताओं को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पिछले अध्ययनों से पता चला है कि पराली जलाने से दिल्ली में सर्दियों के मौसम के दौरान पी एम 2.5 सांद्रता में लगभग 20% का योगदान होता है। उत्तर-पश्चिमी भारत में कृषि जलाने की प्रथाओं का दिल्ली-एनसीआर और भारत के उत्तरी हिस्से के परिवेशीय प्रदूषण स्तर पर महत्व को ध्यान में रखते हुए, इस अध्ययन में, हमने वर्ष 2021-2023 के मानसून के बाद के मौसम में पंजाब और हरियाणा में हुई आग की घटनाओं से दिल्ली-एनसीआर में होने वाले प्रदूषण पर प्रकाशित शोध पत्रों का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

दिल्ली की भोगोलिक स्थिती:

दिल्ली पूर्व में समृद्ध, वर्षा से सिंचित इंडो-गैंगेटिक मैदान (आई जी पी) और दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान के अर्ध-शुष्क क्षेत्र के बीच स्थित है। यह विश्व के सबसे सघन आबादी वाले और प्रदूषित शहरी वातावरणों में से एक है, जिसकी जनसंख्या घनत्व 11,297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एन सी टी) दिल्ली का प्रशासनिक क्षेत्र हरियाणा और उत्तराखंड के बीच स्थित है। शहर को तीन खंडों में विभाजित किया गया है: बाढ़ क्षेत्र, रिज क्षेत्र, और ऊपरी गंगा मैदान। जलवायु कोपेन वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार मॉनसून-प्रभावित आर्द्र उपोष्णकटिबंधीय और गर्म अर्ध-शुष्क जलवायु से वर्गीकृत किया गया है। दिल्ली चार प्रमुख ऋतुओं का अनुभव करता है:

1. प्री-मॉनसून (मार्च से मई)
2. मॉनसून (जून से सितंबर)
3. पोस्ट-मॉनसून (अक्टूबर और नवंबर)
4. सर्दी (दिसंबर से फरवरी)

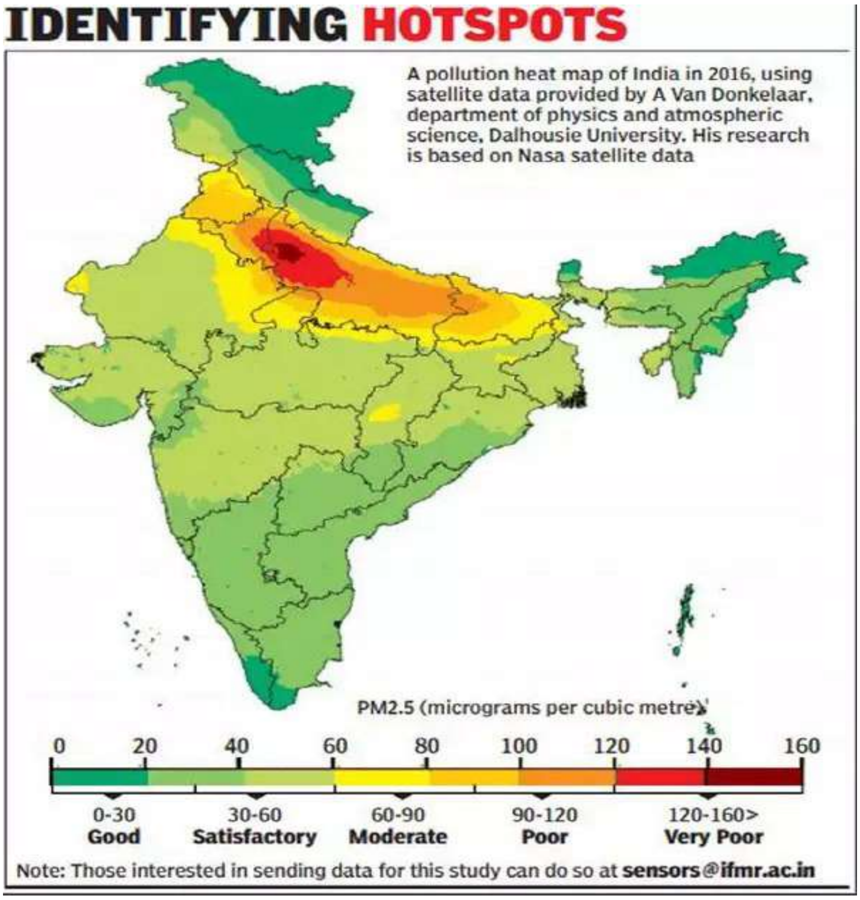

चित्र:1. दिल्ली-एनसीआर का मैप (प्रदूषण ग्रस्त क्षेत्र को दर्शाते हुए)

इस क्षेत्र में तापमान सर्दियों में 4–10 °C से लेकर गर्मियों में 42–48 °C तक भिन्न होता है। मानसून के दौरान मंद दक्षिण-पूर्व की हवाएँ चलती हैं, जबकि शेष वर्ष उत्तर-पश्चिमी हवाएँ बहती हैं। दिल्ली की स्थलाकृति

सीमित वायु परिसंचरण और वायु प्रदूषण के निम्न फैलाव में योगदान करती है, जिससे यह शहरी और क्षेत्रीय प्रदूषण का एक हॉटस्पॉट बन गया है (Nirwan et al., 2024)। क्षेत्र में गैसीय वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं:

- थर्मल पावर प्लांट्स का उत्सर्जन।
- परिवहन साधनों से प्रदूषण।
- ईंट भट्ठों जैसी छोटे पैमाने की औद्योगिक गतिविधियाँ।
- घरेलू खाना पकाने का धुआँ।
- मौसमी कृषि अपशिष्ट जलाना।

ये कारक मिलकर दिल्ली की वायु गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं।

दिल्ली में वर्तमान प्रदूषण स्तर

दिल्ली में प्रदूषण से संबंधित समस्या 2024 में भी बेहद गंभीर बनी हुई है। वायु गुणवत्ता के मामले में, दिल्ली विश्व की सबसे प्रदूषित राजधानियों में से एक है। साल 2024 के मध्य तक, दिल्ली ने देश के तीसरे सबसे प्रदूषित शहर का दर्जा प्राप्त किया, जिसमें पी एम 2.5 का स्तर नवंबर के महीने में औसत 255 $\mu g/m^3$ तक पहुंच गया। यह वायु गुणवत्ता मानकों से कई गुना अधिक है और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। दिल्ली की वायु प्रदूषण की समस्या का मुख्य कारण वाहनों से निकलने वाला धुआं है, जो पी एम 2.5 उत्सर्जन का लगभग 40% योगदान देता है। दिल्ली का वायु गुणवत्ता सूचकांक (ए क्यू आई) सर्दियों के महीनों में खतरनाक स्तर तक पहुंच जाता है, और कई बार यह विश्व स्वास्थ संगठन द्वारा तय सुरक्षित सीमा से 20 गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक उत्सर्जन, पड़ोसी राज्यों में पराली जलाने, और कोयला आधारित बिजली संयंत्रों की गड़बड़ियां निर्माण गतिविधियां, और ठोस अपशिष्ट का जलाना भी प्रदूषण में योगदान देता है। जलवायु परिवर्तन के कारण बदले हुए मौसम पैटर्न ने भी इस समस्या को बढ़ा दिया है, जिसमें गर्मियों के चरम तापमान और वनों में आग का खतरा शामिल है, जो प्रदूषण को और अधिक बढ़ाते हैं। राजधानी में 2019 में वायु प्रदूषण ने भारत में सोलह लाख सत्तर हजार मौतों का कारण बना, जिनमें से 54,000 मौतें दिल्ली में हुई। यह समस्या हर साल अक्टूबर से जनवरी तक गंभीर रूप ले लेती है, जब ठंडी हवाएं और धुंध प्रदूषकों को हवा में फंसा देती हैं। इससे स्कूल बंद करना, स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ना, और आर्थिक नुकसान होता है।

जल प्रदूषण के मामले में, यमुना नदी अत्यधिक प्रदूषित है। सीवेज और औद्योगिक कचरे का इसमें लगातार प्रवाह इसे देश की सबसे प्रदूषित नदियों में से एक बनाता है। इसी तरह, भूमि प्रदूषण भी अनियंत्रित ठोस कचरे और खतरनाक कचरे के कारण गंभीर बना हुआ है।

सारणी : प्रदूषण के कारण

क्र. सं.	कारण	कारक	प्रदूषक
1.	वाहन उत्सर्जन	पेट्रोल और डीजल चालित वाहनों	नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड और पार्टिकुलेट मैटर
2.	औद्योगिक उत्सर्जन	कोयला आधारित उद्योग	धुआं (कार्बन मोनो ऑक्साइड), पार्टिकुलेट मैटर
3.	पराली जलाना	फसलों की पराली	धुआं (कार्बन मोनो ऑक्साइड), पार्टिकुलेट मैटर
4.	निर्माण कार्य	धूल प्रदूषण	पार्टिकुलेट मैटर

प्रदूषण के प्रभाव

स्वास्थ्य पर प्रभाव: दिल्ली में प्रदूषण के कारण श्वसन रोग, हृदय रोग, और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियां तेजी से बढ़ रही हैं। 2019 में, वायु प्रदूषण के कारण दिल्ली में 54,000 से अधिक मौतें हुई।

1. श्वसन रोग: दिल्ली की वायु में पी एम 2.5 और पी एम 10 के उच्च स्तर के कारण अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, और क्रॉनिक ऑब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज (सी ओ पी डी) जैसी बीमारियों के मामले तेजी से बढ़ते हैं। प्रदूषण के चरम समय में अस्पतालों में रोगियों की संख्या बढ़ जाती है।
2. हृदय रोग: वायु प्रदूषण से दिल का दौरा और स्ट्रोक का खतरा बढ़ता है, खासकर बच्चों और बुजुर्गों में।
3. आयु में कमी: शोध बताते हैं कि दिल्ली के प्रदूषण के लंबे समय तक संपर्क में रहने से औसत जीवन प्रत्याशा 10 साल तक घट सकती है।
4. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव: प्रदूषण से तनाव, थकान, और चिंता व अवसाद जैसी न्यूरोलॉजिकल समस्याएं भी सामने आ रही हैं।

आर्थिक नुकसान: प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य सेवाओं पर बढ़ते खर्च और श्रम उत्पादकता में कमी से दिल्ली की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान हो रहा है।

1. स्वास्थ्य खर्च: प्रदूषण-जनित बीमारियों के कारण चिकित्सा खर्च बढ़ रहे हैं, जिससे परिवारों और सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली पर बोझ बढ़ रहा है।
2. कार्यबल उत्पादकता में कमी: खराब वायु गुणवत्ता के कारण कार्यालयों में अनुपस्थिति और कम उत्पादकता सीधे जी पी डी वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं।
3. पर्यटन में गिरावट: प्रदूषण के कारण दिल्ली की पर्यटन स्थल के रूप में प्रतिष्ठा कम हो रही है, जिससे पर्यटन क्षेत्र में राजस्व की हानि हो रही है।
4. कृषि पर प्रभाव: ग्राउंड-लेवल ओजोन जैसे प्रदूषक फसलों को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे आस-पास के क्षेत्रों में कृषि उत्पादन कम हो जाता है।

सामाजिक और पर्यावरणीय परिणाम

1. सामाजिक असमानता: निम्न-आय वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि उनके पास स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुंच होती है और वे एयर प्यूरीफायर जैसी सुरक्षात्मक सुविधाएं नहीं खरीद सकते।
2. बच्चों पर प्रभाव: प्रदूषण बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित करता है, जिसके दीर्घकालिक सामाजिक परिणाम होते हैं।
3. पर्यावरणीय क्षरण: यमुना नदी और दिल्ली के आसपास की हरियाली प्रदूषकों से गंभीर रूप से प्रभावित हो रही है, जिससे जैव विविधता को खतरा है। प्रदूषण के कारण जैव विविधता पर बुरा असर पड़ रहा है। यमुना नदी में ऑक्सीजन स्तर खतरनाक रूप से कम है, जिससे जलीय जीवन खतरे में है।
4. जलवायु परिवर्तन: दिल्ली का प्रदूषण ग्लोबल वॉर्मिंग में योगदान करता है और शहरी इलाकों में तापमान बढ़ने की समस्या को बढ़ाता है।

तत्काल कार्यवाई की आवश्यकता:

इन परिणामों से स्पष्ट है कि प्रदूषण के मूल कारणों को संबोधित करने के लिए व्यापक नीतियों की आवश्यकता है, जिससे स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके, आर्थिक नुकसान कम किया जा सके, और पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके।

सारणी 2:भारत के अन्य मेट्रोसिटीज से दिल्ली एनसीआर का तुलनात्मक अध्ययन (सी पी सी बी, 2023)**:**

पैरामीटर	दिल्ली-एनसीआर	मुंबई	कोलकाता	चेन्नई	बेंगलुरु
प्रमुख प्रदूषक	पी एम 2.5, पी एम 10, NOx, SO2, O3	पी एम 2.5, पी एम 10, NOx, CO	पी एम 2.5, पी एम 10, CO, NOx	पी एम 10, SO2, NOx	पी एम 10, पी एम 2.5, Nox
वार्षिक पी एम 2.5 औसत (μg/m³)	100–110 μg/m³ (काफी अधिक)	40–50 μg/m³ (मध्यम)	50–60 μg/m³ (मध्यम)	30–40 μg/m³ (कम)	25–35 μg/m³ (निम्न)
वायु गुणवत्ता (ए क्यू आई)	गंभीर (>400 सर्दियों में)	मध्यम-खराब (100-200)	मध्यम (150-250)	संतोषजनक-मध्यम (<100)	अच्छा-संतोषजनक (<80)
प्रमुख स्रोत	पराली जलाना, वाहन, औद्योगिक कचरा	वाहन उत्सर्जन, समुद्री गतिविधियाँ	वाहन और निर्माण गतिविधियाँ	समुद्री हवाएँ, वाहन	आईटी और वाहन क्षेत्र
सर्दियों में प्रदूषण स्तर	बहुत अधिक	मध्यम	उच्च	कम	बहुत कम
सरकारी प्रयास	ग्रेडेड रिस्पांस प्लान (GRAP), CAQM	मेट्रो विस्तार, हरित वाहन	बसों के लिए हरित ईंधन	हरित पहल	ई-वाहन नीति
जनसंख्या घनत्व	11,297 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी	20,634 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी	24,252 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी	26,902 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी	4,381 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी
मौसमी प्रभाव	सर्दियों में गंभीर	मानसून के दौरान बेहतर	मानसून के दौरान बेहतर	पूरे साल संतुलित	पूरे साल संतुलित

सरकार की नीतियों का मूल्यांकन :

वर्तमान नीतियां :

सरकार की कई योजनाएं जैसे स्मॉग टावर्स, पानी के छिड़काव, और सुप्रीम कोर्ट का ग्रेडेड रिस्पांस एक्शन प्लान (जी आर ए पी) लागू किए गए हैं, लेकिन ये अधिकतर तात्कालिक राहत प्रदान करने तक सीमित रहते हैं। कोयला संयंत्रों में सल्फर डाइऑक्साइड नियंत्रण उपकरण लगाने में भी देरी हो रही है, जिससे स्थिति और खराब हो रही है।

प्रदूषण में सुधार के लिए नयी नीतियों का प्रस्ताव :

वर्तमान स्थिति में दीर्घकालिक नीतियों की आवश्यकता है, जैसे:

- सार्वजनिक परिवहन का विस्तार और साइकिलिंग को प्रोत्साहन देना।
- कोयला आधारित ऊर्जा स्रोतों की जगह स्वच्छ ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना।
- प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों पर सख्त नियम लागू करना।
- स्थायी शहरी योजनाओं को बढ़ावा देना और हरित क्षेत्रों का विस्तार करना।

अन्य देशों से प्रेरणा लेते हुए, दिल्ली को भी टिकाऊ नीतियां अपनाने की आवश्यकता है, जैसे बार्सिलोना के सुपरब्लॉक मॉडल और लंदन का अल्ट्रा लो इमिशन जोन, जो गाड़ियों पर निर्भरता कम करने में सफल रहे हैं। इन पहलुओं को लागू करने से ही दिल्ली प्रदूषण से निपट सकती है और एक बेहतर भविष्य की ओर कदम बढ़ा सकती है।

मौजूदा सरकारी नीतियां और उनकी विफलता:

सरकार ने कई योजनाएं लागू की हैं, लेकिन वे लंबे समय तक प्रभावी नहीं रही हैं:

1. ग्रेडेड रिस्पांस एक्शन प्लान (जी आर ए पी): यह योजना केवल आपातकालीन स्थितियों के लिए है और दीर्घकालिक समाधान प्रदान करने में विफल रही है।
2. बीएस-वीआई उत्सर्जन मानक: जबकि यह एक सकारात्मक कदम है, इसके प्रभाव अभी भी सीमित हैं क्योंकि पुराने वाहन अभी भी सड़कों पर हैं।
3. स्मॉग टावर्स: इनका प्रभाव बहुत ही सीमित क्षेत्र में होता है और यह एक व्यापक समाधान नहीं है।
4. पराली जलाने का समाधान: केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच समन्वय की कमी के कारण पराली जलाने की समस्या का समाधान नहीं हो सका है।

नई नीतियों का प्रस्ताव:

1. नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग: जीवाश्म ईंधन के उपयोग को चरणबद्ध तरीके से समाप्त कर, सौर और पवन ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना।
2. पब्लिक ट्रांसपोर्ट का विकास: किफायती और इलेक्ट्रिक पब्लिक ट्रांसपोर्ट को बढ़ावा देना, जिससे वाहनों की संख्या घटाई जा सके।
3. कचरा प्रबंधन: ठोस और खतरनाक कचरे के प्रभावी प्रबंधन के लिए आधुनिक तकनीक का उपयोग।
4. रियल-टाइम डेटा मॉनिटरिंग: प्रदूषण स्तर की दैनिक निगरानी और जागरूकता अभियान चलाना।
5. कानूनी सख्ती: प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों और व्यक्तियों पर कठोर दंड लगाना।
6. सार्वजनिक परिवहन का विस्तार: मेट्रो नेटवर्क का विस्तार और साइकिलिंग को बढ़ावा देना।
7. शहरी हरित क्षेत्र: शहर में अधिक से अधिक हरित क्षेत्रों का विकास करना।
8. स्मार्ट तकनीक: सेंसर आधारित निगरानी प्रणाली और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग करना।
9. वैश्विक उदाहरणों से प्रेरणा**:** लंदन और बार्सिलोना जैसे शहरों के मॉडल को अपनाना।

परिणाम और चर्चा :

दिल्ली-एनसीआर क्षेत्र (पराली जलाना) में महीन कणीय पदार्थ (पी एम) के बढ़े हुए स्तर और इसके जुड़े स्वास्थ्य प्रभाव समाज और नीति निर्माताओं के लिए मुख्य चिंता के कारणों में से एक हैं। वायुमंडलीय द्वितीयक एरोसोल को पी एम का एक बड़ा हिस्सा माना गया है (Mishra et al., 2023)। इसके हानिकारक प्रभाव और जटिल निर्माण प्रक्रिया को देखते हुए, वर्तमान लेख इसके निर्माण तंत्र, दिल्ली क्षेत्र में समग्र वायुमंडलीय एरोसोल भार में इसके योगदान, और अन्य संबंधित कारकों के आधार पर वर्गीकरण की समालोचना पर केंद्रित है। द्वितीयक एरोसोल का निर्माण मुख्य रूप से अग्रदूत प्रदूषकों की प्रचुरता और आर्द्रता, तापमान, और सौर विकिरण में भिन्नताओं से नियंत्रित होता है। यह विशेष रूप से मानसून के बाद और सर्दियों के मौसम में स्पष्ट होता है, जब NOx, SOx, NH3, VOCs, HCl आदि जैसे प्रदूषकों का उत्सर्जन अधिक होता है, जो अनुकूल मौसम विज्ञान के साथ मिलकर कण निर्माण की दर को बढ़ावा देता है (Nair et al., 2023) । विभिन्न अनुसंधानों की समीक्षा से पता चलता है कि द्वितीयक अकार्बनिक एरोसोल (secondary inorganic aerosols) जैसे सल्फेट, नाइट्रेट, और अमोनियम, सर्दियों, गर्मी, मानसून और मानसून के बाद के मौसमों में पी एम 10 के 24%, 15%, 21%, और 23% में योगदान करते हैं, जबकि पी एम 2.5 में यह अधिक पाया गया है, जो क्रमशः 29%, 22%, 27%, और 28% है। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि दिल्ली जैसे महानगरों में द्वितीयक एरोसोल निर्माण और इसके योगदान की व्यापक समझ की आवश्यकता है। इससे नीति निर्माता शहर-विशिष्ट अग्रदूत कारकों को नियंत्रित करने के लिए नीतियां तय कर सकते हैं और वायुमंडलीय द्वितीयक एरोसोल

सांद्रता को कम कर सकते हैं। सीमापार प्रदूषक परिवहन को दिल्ली, भारत की राजधानी, में मौसमी वायु गुणवत्ता में गिरावट के प्रमुख कारणों में से एक माना जाता है। 2019–2022 के दौरान, NO2 (7.14–9.63%) और SO2 (4.04–7.42%) के उच्चतम मानक विचलन ने दिल्ली की प्रदूषण स्थिति में मौसम विज्ञान की भूमिका को रेखांकित किया। इसके विपरीत, मानसून के बाद का मौसम CO (कार्बन मोनोक्साइड) के लिए सबसे अधिक प्रदूषक अतिक्रमण दिनों (4.52–8.00%) को दर्शाता है, जो पंजाब में पराली जलाने की घटनाओं (68,902 आग/वर्ष) के कारण है (Govardhan, Gaurav et al., 2021, Sahu et al., 2023)।

दिल्ली में प्रदूषण की समस्या न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व के लिए एक चेतावनी है। इसे हल करने के लिए एक दीर्घकालिक, समन्वित, और सतत नीति की आवश्यकता है। सरकार, उद्योग, और आम जनता को मिलकर प्रयास करना होगा। यदि तुरंत कदम नहीं उठाए गए, तो दिल्ली का भविष्य खतरे में होगा। भारतीय सरकार की मौजूदा नीतियां, जैसे कि नेशनल क्लीन एयर प्रोग्राम, अभी तक इस संकट को प्रभावी ढंग से हल करने में सफल नहीं हुई हैं। एन सी ए पी के लक्ष्य, जैसे कि पी एम 2.5 में 20-30% की कमी लाना, धीमी प्रगति के कारण अधूरे हैं। साथ ही, वाहनों के लिए वैकल्पिक ईंधन, सार्वजनिक परिवहन को बेहतर बनाना, और प्रदूषण नियंत्रण के लिए सख्त नियम लागू करना अभी भी अपर्याप्त साबित हो रहे हैं। इन नीतियों को अपनाकर न केवल दिल्ली बल्कि पूरे भारत में पर्यावरणीय समस्याओं से निपटा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. Anjali S Nair, Priyanka Singh, Kirti Soni, Kuldeep Meena, Rina Sharma, Sway of aerosol on Atmospheric Boundary Layer influencing air pollution of Delhi, Urban Climate, Volume 49, 2023, 101478,
2. Central Pollution Control Board (CPCB), Regularly monitors and publishes air quality data under the National Air Quality Monitoring Programme (NAMP). Visit CPCB Air Quality Index for detailed data.https://doi.org/10.1007/s11270-022-06047-0.
3. For example, the National Clean Air Programme (NCAP) was launched by the Ministry of Environment, Forest and Climate Change in 2019; the Graded Response Action Plan (GRAP) was implemented in Delhi-NCR in 2017; the Comprehensive Action Plan was notified by the Government of India in 2018, etc. 9: 6. 2023.
4. Govardhan, G. Ambulkar R., Kulkarni, S. Vishnoi, A. Yadav, P., Abida, B. Choudhury, Khare M., Ghude S.D. Stubble-burning activities in north-western India in 2021: Contribution to air pollution in Delhi, Heliyon, 9:6, e16939.

5. India Today: Air quality worsens in Delhi with onset of winter, "severe" in Noida, https://www.indiatoday.in/india/story/air-quality-worsens-delhi-onset-of-winter-severe-category-noida- 2303441-2022-11-30, last access: 30 November 2022.
6. IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change): Special Report on Emissions Scenarios, ISBN 0-521-80081, https://www.ipcc.ch/report/emissions-scenarios/ (last access: 27 April 2021), 2000.
7. Joshi, B., & Swarnakar, P. (2022). How fair is our air? The injustice of procedure, distribution, and recognition within the discourse of air pollution in Delhi, India. *Environmental Sociology*, *9*(2), 176–189.
8. Lancet रिपोर्ट, 2019
9. Mishra, M., Gulia, S., Shukla, N. *et al.* Review of Secondary Aerosol Formation and Its Contribution in Air Pollution Load of Delhi NCR. *Water Air Soil Pollut* **234**, 47 (2023).
10. Nirwan, N., Siddiqui, A., Kannemadugu, H. *et al.* Determining hotspots of gaseous criteria air pollutants in Delhi airshed and its association with stubble burning. Sci. Rep. 14: 986 (2024).
11. S. Tiwari et al. (2013) Diurnal and seasonal variations of black carbon and पी एम 2.5 over New Delhi, India: Influence of meteorology, Atmos. Res.
12. Sahu, S. K., Mangaraj, P., and Beig, G.: 2023, Decadal growth in emission load of major air pollutants in Delhi, Earth Syst. Sci. Data, 15:7, 3183–3202,
13. Stubble-burning activities in north-western India in 2021: Contribution to air pollution in Delhi, Nirwan, N., Siddiqui, A., Kannemadugu, H. *et al.* Determining hotspots of gaseous criteria air pollutants in Delhi airshed and its association with stubble burning. *Sci Rep* 14, 986 (2024). https://doi.org/10.1038/s41598-023-51140-
14. WHO, https://www.who.int/health-topics/air-pollution#tab=tab_2.
15. World Health Organization. (2016). Ambient air pollution: a global assessment of exposure and burden of disease. World Health Organization.

7

विधानसभा चुनाव 2023: एक विश्लेषण

डॉ. शम्भु नाथ दुबे
सह-आचार्य, ए.आर.एस.डी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

मई 2023 में कर्नाटक चुनाव में बीजेपी को मिली करारी हार के बाद, 2023 में चार राज्यों (छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और तेलंगाना) में हाल के विधानसभा चुनाव के नतीजे में तीन राज्यों में उल्लेखनीय जीत के साथ बीजेपी ने न केवल अपनी स्थिति क्षेत्रीय राजनीति में मजबूत की है बल्कि 2024 में आगामी लोकसभा चुनाव के लिए भी मंच तैयार कर दिया है। इस नतीजे ने लोगों की पसंद के साथ-साथ देश में मौजूदा राजनीतिक रुझान को भी स्पष्ट रूप से दर्शाया है। पार्टी ने न केवल एक राज्य (मध्य प्रदेश) में अपनी स्थिति बरकरार रखी है, बल्कि दो और राज्यों (छत्तीसगढ़ और राजस्थान) में भी बड़ी जीत दर्ज की है, जहां कांग्रेस पार्टी सत्ता में थी।

अब तक, राजनीतिक दलों की स्थिति इस प्रकार बताई गई है:

प्रमुख राजनीतिक दल	नके द्वारा शासित राज्यों की संख्या	उनके द्वारा शासित राज्यों की संख्या
भाजपा	12	उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हरयाणा, गोवा, गुजरात, असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर त्रिपुरा, राजस्थान, मध्य प्रदेश एंड छत्तीसगढ़
भाजपा सत्तारूढ़ गठबंधन का हिस्सा है	4	महाराष्ट्र, मेघालय, सिक्किम एंड नागालैण्ड
कांग्रेस पार्टी	3	हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक और तेलंगाना
सत्तारूढ़ गठबंधन के हिस्से के रूप में कांग्रेस पार्टी	2	बिहार और झारखंड
आप आदमी पार्टी	2	दिल्ली और पंजाब

राजनीतिक रुझान के इस एकतरफ़ा झुकाव के पीछे के कारणों को समझने के लिए एक सर्वेक्षण किया गया:

- लोगों की इस आम पसंद के पीछे कारण
- राज्य में नवगठित सरकार से उनकी उम्मीदें.

लोगों द्वारा व्यक्त की गई राय का राज्यवार विश्लेषण किया गया है और नीचे के अनुभागों में चर्चा की गई है।

मध्य प्रदेश में विधानसभा चुनाव 2023 के नतीजे

राजनीतिक दल	जीती गई सीटों की संख्या
बी जे पी	163
कांग्रेस पार्टी	66
भारत आदिवासी पार्टी	1
कुल	230

Source: https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S12.htm

मध्य प्रदेश में बीजेपी की इस प्रचंड जीत के कारण:

• शिव राज सिंह चौहान की सरकार द्वारा शुरू की गई महिला कल्याण योजनाएं: इस संबंध में मध्य प्रदेश में महिलाओं के कल्याण और उत्थान के लिए राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई कुछ योजनाओं ने भाजपा को राज्य में महिलाओं द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली 48% आबादी के बीच प्राथमिक पसंद बनने में मदद की है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण योजनाएँ हैं:

'लाडली बहना योजना' को 'गेम-चेंजर' माना गया है। मार्च 2023 में शुरू की गई, रुपये के मासिक वजीफे की गारंटी की यह योजना। 23-60 वर्ष की आयु की घरेलू महिलाओं को 1,000 रुपये, जिनकी वार्षिक आय रुपये से कम है। 2.5 लाख. बाद में वजीफे की राशि बढ़ाकर 500 रुपये कर दी गई। 1,250 और न्यूनतम आयु घटाकर 21 वर्ष कर दी गई। इस योजना से राज्य की 1.2 करोड़ से अधिक महिलाओं को लाभ हुआ है। 13,000 करोड़. इससे चौहान सरकार महिलाओं के बीच बहुत लोकप्रिय हो गई, जो मतदाताओं में 48 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती थीं।

सरकारी नौकरियों में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत सीटों का आरक्षण।

• आदिवासी और दलित कल्याण योजनाएं: पीएम नरेंद्र मोदी ने खुद आदिवासी बहुल इलाकों का दौरा किया और रुपये की घोषणा की। विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) के लिए 24,000 करोड़ रुपये का विकास मिशन। रानी दुर्गावती जैसे आदिवासी प्रतीकों की जयंती मनाना और आदिवासी प्रतीकों के नाम पर रेलवे स्टेशनों और विश्वविद्यालयों का नाम बदलना उन्हें विशेष महसूस कराता है। इसके अलावा सिंचाई कार्य के लिए जल कनेक्शन जैसी कुछ महत्वपूर्ण विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी लोगों को सीधे लाभ हुआ।

इन विकासात्मक कार्यक्रमों के अलावा, सरकार ने आदिवासी समुदायों को पेसा अधिनियम के बारे में जागरूक करने के भी प्रयास किए। जाति जनगणना के नाम पर आदिवासी वोट हासिल करने या तेंदू पत्ता बैग की कीमत बढ़ाकर रुपये करने की कांग्रेस पार्टी की कोशिश। 4,000 उन्हें खुश करने में विफल रहे।

• प्रभावी चुनाव रणनीति: पार्टी के टिकटों की घोषणा के बाद, मोदी ने बूथ कार्यकर्ताओं को प्रचार कर्तव्य आवंटित करके और उन्हें चुनाव में पार्टी की जीत के लिए काम करने में उनकी भूमिका के महत्व का एहसास कराकर "मेरा बूथ

सबसे मजबूत" अभियान शुरू किया। इसके अलावा, मोदी के नाम और चौहान के करिश्मे ने पार्टी को चुनाव में भारी जीत दर्ज करने में मदद की।

• अन्य कारण: कुछ अन्य कारक जैसे अगस्त महीने में ही पार्टी टिकटों की घोषणा (जिससे उम्मीदवार और पार्टी कार्यकर्ताओं को स्थानीय स्तर पर लोगों के साथ संबंध बनाने के लिए पर्याप्त समय मिल गया। सामूहिक नेतृत्व और चुनाव प्रबंधन ने भाजपा की मदद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एमपी में चुनाव जीतें.

राजस्थान में विधानसभा चुनाव 2023 के नतीजे

राजनीतिक दल	**जीती गई सीटों की संख्या**
बी जे पी	115
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	69
बहुजन समाज पार्टी	2
अन्य	13

Source: https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S12.htm

राजस्थान में बीजेपी की इस प्रचंड जीत की वजहें

महिलाओं के लिए कल्याण कार्यक्रम: भाजपा द्वारा अपने शासित राज्य में अपनाई गई कल्याणकारी योजनाएं और महिलाओं को दिए गए लाभ जिससे उनका जीवन आसान हो गया (जैसे उज्वला योजना के तहत गैस कनेक्शन प्रदान करना, शौचालय बनाना, घर पर पीने के पानी की आपूर्ति प्रदान करना, ग्रामीण घरों के लिए प्रावधान) , आदि) ने केंद्र में सत्तारूढ़ दल के रूप में पार्टी को राज्य की महिला मतदाताओं के बीच पसंदीदा बना दिया।

सरकार बदलने का नियमित पैटर्न: पिछले 15 वर्षों के चुनाव परिणाम निम्नानुसार बताए गए हैं कि हर 5 साल में लोग अलग-अलग राजनीतिक दल को वोट देते हैं।

- 2003 के चुनाव में वसुंधरा राजे ने अशोक गहलोत की जगह ली
- 2008 के चुनाव में अशोक गहलोत ने वसुंधरा राजे की जगह ली
- 2013 के चुनाव में वसुंधरा राजे ने अशोक गहलोत की जगह ली
- 2018 चुनाव में अशोक गहलोत ने वसुंधरा राजे की जगह ली
- 2023 के चुनाव में बीजेपी (सीएम का नाम अभी घोषित नहीं हुआ है लेकिन बीजेपी की ओर से बीजेपी से चुनाव लड़ीं वसुंधरा राजे) ने अशोक गहलोत की जगह ले ली

ऐसे में जब विधानसभा चुनाव नजदीक आया तो बीजेपी लोगों की चहेती बन गई.

कांग्रेस पार्टी में आंतरिक समस्या: कांग्रेस पार्टी के भीतर सीएम की सीट को लेकर अशोक गहलोत और सचिन पायलट के बीच विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा और इससे पार्टी पर मतदाताओं का विश्वास कम हो गया।

पार्टी में मौजूदा गुटबाजी पायलट के पार्टी से अलग होने की नाकाम कोशिश के दौरान या पार्टी की नियुक्तियों या टिकट वितरण में बार-बार देखी गई। अपनी आंतरिक समस्याओं से छुपी पार्टी जमीनी स्तर पर विशेषकर गुर्जरों के साथ सामाजिक गठबंधन विकसित करने में विफल रही, जिसके परिणामस्वरूप पार्टी को राज्य चुनाव में हार मिली।

प्रचलित भ्रष्टाचार: कांग्रेस पार्टी के खिलाफ लगाए गए गंभीर भ्रष्टाचार के आरोपों ने पार्टी में लोगों का विश्वास कम कर दिया। दूसरी ओर, पार्टी की विकासात्मक योजनाओं, मौजूदा भ्रष्टाचार के खिलाफ अभियान और पार्टी द्वारा अपनाए गए कल्याणकारी उपायों के कारण मतदाताओं ने मोदी पर उच्च विश्वास विकसित किया।

छत्तीसगढ़ में विधानसभा चुनाव 2023 के नतीजे

राजनीतिक दल	जीती गई सीटों की संख्या
बीजेपी	54
इंडियन नेशनल कांग्रेस	35
गोंडवाना गणतंत्र पार्टी (गसप	1
कुल	90

Source: https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S12.htm

छत्तीसगढ़ में बीजेपी की इस प्रचंड जीत के कारण:

• **महतारी वंदन योजना:** इस नीति की घोषणा नवंबर 2023 में भाजपा द्वारा की गई थी और यह घोषणा की गई थी कि यदि पार्टी सत्ता में आती है तो इस योजना के तहत राज्य की प्रत्येक विवाहित महिला को रुपये की वित्तीय सहायता मिलेगी। 12,000. इस नीति को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया गया और 10 दिनों के भीतर छत्तीसगढ़ में 53 लाख विवाहित महिलाओं द्वारा यह आवेदन भरा गया। हालाँकि कांग्रेस पार्टी भी इसी तरह की 'छत्तीसगढ़ गृह लक्ष्मी योजना' लेकर आई थी, लेकिन चूंकि इस योजना की घोषणा दीपावली के दिन की गई थी, जिसके अगले दिन कोई समाचार पत्र नहीं छपता था, इसलिए लोगों को इस योजना के बारे में जागरूक नहीं किया जा सका।

• **आदिवासी कल्याण योजना-** भाजपा कार्यकर्ताओं ने आदिवासी इलाकों के अंदरूनी इलाकों का दौरा कर उनसे संवाद विकसित किया और उनकी समस्याओं को समझा। यह महत्वपूर्ण था क्योंकि 2018 के चुनाव में इन आदिवासी लोगों ने कांग्रेस पार्टी को वोट दिया था। उन्होंने पाया कि तेंदू पत्ता संग्राहकों को बोनस बहुत ज्यादा मिलने लगा है और वे इससे खुश नहीं हैं। तेंदू श्रमिकों के लिए जूते-चप्पल आदि उपहारों के साथ बोनस की यह योजना राज्य में रमन सिंह सरकार द्वारा शुरू की गई थी। बीजेपी ने इन आदिवासी लोगों को आश्वासन दिया कि एक बार पार्टी सत्ता में आएगी तो ये योजनाएं बहाल कर दी जाएंगी.

• **किसान**: उनके लिए बीजेपी ने एमएसपी में रुपये की बढ़ोतरी की पेशकश की। 100 रुपये की राशि. धान के लिए 3100 रु.

• **लोकप्रिय चेहरे का अभाव**: राज्य चुनाव में बीजेपी के लिए फायदे की बात यह रही कि पार्टी के सभी कार्यकर्ताओं ने बिना किसी गुटबाजी के एक साथ अपनी पूरी ऊर्जा लगा दी.

तेलंगाना में विधानसभा चुनाव 2023 के परिणाम

राजनीतिक दल	जीती गई सीटों की संख्या
इंडियन नेशनल कांग्रेस	64
भारत राष्ट्र समिति	39
बीजेपी	8
ऐमिम	7
सीपीआई	1
कुल	119

Source: https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S12.htm

तेलंगाना में कांग्रेस पार्टी की इस प्रचंड जीत के कारण

- राज्य में सत्तारूढ़ बीआरएस सरकार के प्रति मतदाताओं के मन में व्याप्त असंतोष ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।इन सबसे कांग्रेस पार्टी को तेलंगाना में लोगों का वोट और समर्थन हासिल करने में मदद मिली।
- कांग्रेस तेलंगाना घोषणापत्र द्वारा दी गई कुछ गारंटी: पार्टी द्वारा दी गई कुछ महत्वपूर्ण गारंटी थीं जो राज्य में 'गेम चेंजर' साबित हुईं। ये हैं:
- कांग्रेस पार्टी के घोषणापत्र में नकद हस्तांतरण, मुफ्त बिजली, पेंशन योजनाएं, सब्सिडी वाले रसोई गैस सिलेंडर और 'गारंटी के साथ मतदाताओं के व्यापक आधार को भूमि' के बारे में आश्वासन दिया गया।
- पार्टी ने घोषणा की कि अगर वह सत्ता में आती है तो वह रुपये में रसोई गैस सिलेंडर प्रदान करेगी। 500, 200 यूनिट मुफ्त बिजली और 500 रुपये पेंशन का प्रावधान होगा. बुजुर्गों को 4,000 प्रति माह।
- महिलाओं को लाभ: राज्य में महिलाओं के लिए मुफ्त बस यात्रा, रुपये की वित्तीय सहायता का आश्वासन दिया गया। महालक्ष्मी योजना के तहत हर महीने 2,500 रु.
- किसानों को लाभ का आश्वासन: रायथु भरोसा गारंटी ने किसानों को कृषि समृद्धि का वादा किया। किसान निवेश सहायता योजना के तहत एक प्रावधान है जिसमें रुपये की वित्तीय सहायता का आश्वासन दिया गया है। किसानों और किरायेदार किसानों को भी सालाना 15,000 रु. रुपये की वित्तीय सहायता. खेतिहर मजदूरों के लिए 12,000 रुपये और धान की फसल उगाने वाले किसानों के लिए 500 रुपये का बोनस
- इंदिरा अम्मा इंदु योजना के तहत घोषणा पत्र में जमीन और रुपये की वित्तीय सहायता का आश्वासन दिया गया। राज्य में बेघर लोगों को 5 लाख रु.
- शिक्षा हेतु राज्य बजट का 15 प्रतिशत आवंटन।

- युवा विकासम योजना की घोषणा की गई जिसके तहत रु. विद्या भरोसा कार्ड के माध्यम से छात्रों की शिक्षा के लिए 5 लाख रुपये आवंटित किए जाएंगे।
- पिछड़ी जातियों के लिए लाभ की घोषणा: पार्टी ने पिछड़ी जाति के लोगों के लिए जाति-जनगणना और जनसंख्या-आधारित आरक्षण और उनके लिए अलग उप-योजना का आश्वासन दिया। पार्टी ने रुपये की सीधी सहायता का भी आश्वासन दिया। भेड़ पालन के लिए यादवों और कुरुमाओं को 2 लाख रु.
- धरणी पोर्टल के स्थान पर नया पोर्टल लाना जिससे भूमि मालिकों को सरकार द्वारा वितरित भूमि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।
- रुपये की वित्तीय सहायता. प्रत्येक ऑटो चालक के खाते में प्रति वर्ष 12,000।
- कालेश्वरम परियोजना के निर्माण में भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश द्वारा जांच।
- मुख्यमंत्री द्वारा दैनिक आधार पर कैंप कार्यालय में जनता की शिकायतों को संबोधित करने के लिए 'प्रजा दरबार' का पुनरुद्धार।
- रुपये की वित्तीय सहायता का आश्वासन. एम.फिल और पीएचडी कार्यक्रम पूरा करने वाले सिख, ईसाई, मुस्लिम और अन्य अल्पसंख्यक समुदाय के युवाओं को अब्दुल कलाम तौफा-ए-तालीम योजना के तहत 5 लाख रुपये दिए जाएंगे।
- विशेष रूप से खाड़ी श्रमिकों के लिए एक कल्याण बोर्ड स्थापित करने का आश्वासन। साथ ही उन्होंने पांच लाख रुपये मुआवजा देने का भी आश्वासन दिया. खाड़ी में मरने वाले ऐसे श्रमिकों के परिवारों को 5 लाख।
- विकलांगों के लिए 5,016 रुपये मासिक पेंशन। 50 वर्ष से अधिक पुराने लोक कलाकारों के लिए 3,016रु.

सत्ता में इस बदलाव के कारण का आकलन:

चार में से तीन राज्यों में बीजेपी की जीत और वहां भी जब दो राज्यों में गैर-बीजेपी सरकार थी और चौथे राज्य यानी तेलंगाना में भी भारत राष्ट्र समिति से कांग्रेस पार्टी की सरकार बदल गई थी. इससे स्पष्ट पता चलता है कि-

- अब लोग सरकार के कामकाज के बारे में अधिक जागरूक हैं,
- चुनाव के समय नेताओं ने जो आश्वासन दिया था
- पार्टी घोषणापत्र में बताए गए और गारंटीकृत महत्वपूर्ण बिंदु
- सरकार/पार्टी द्वारा शुरू/वादा किए गए कल्याणकारी कार्यक्रम।

हम कह सकते हैं कि इन राज्यों में चुनाव परिणाम निम्नलिखित कारणों से काफी प्रभावित हुए हैं:

• **मजबूत नेतृत्व:-** भाजपा, अपने चुनाव अभियान में, बहुत स्पष्ट थी कि उसके पास राज्य इकाइयों में निर्भर रहने के लिए कोई लोकप्रिय करिश्माई व्यक्तित्व नहीं है और इसलिए वह 'पार्टी के चेहरे के रूप में पीएम नरेंद्र मोदी' के साथ

आगे बढ़ी। हर जगह प्रचार इस नारे के साथ किया गया- 'डबल इंजन की सरकार'- एक केंद्र में और दूसरा राज्य में। इससे भी बढ़कर बात यह है कि हाल के वर्षों में मोदी का व्यक्तित्व 'उभरते वैश्विक नेता' के रूप में उभरा है जिस पर दुनिया भरोसा कर रही है। दुनिया भर के लोगों से मिल रहे प्यार और सम्मान ने भारत को वैश्विक परिदृश्य में अपना स्थान ऊंचा करने में मदद की है। वह ऐसे व्यक्ति हैं जिन पर विकास कार्यक्रमों, विदेशी निवेश, महिलाओं और दलित वर्ग के कल्याण के लिए भरोसा किया जा सकता है। इन विशेषताओं ने पार्टी को 'जाति रेखाओं से ऊपर उठकर' लोगों का समर्थन हासिल करने में मदद की।

• **महिला मतदाता:-** महिलाएं देश की कुल आबादी का लगभग पचास प्रतिशत प्रतिनिधित्व करती हैं और विभिन्न सरकारों द्वारा उनके कल्याण को हमेशा नजरअंदाज किया गया है। भाजपा ने अपने कामकाज से दिखाया है कि महिलाओं का कल्याण उनके लिए महत्व रखता है। सरकार की कल्याणकारी योजनाएं जैसे 'प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना' जिसके द्वारा गरीबी रेखा से नीचे की महिलाओं को एलपीजी सिलेंडर कनेक्शन दिया गया, 'स्वच्छ भारत योजना' जिसके तहत ग्रामीण घरों में शौचालय बनाए गए, महिला उद्यमियों की सुविधा के लिए 'महिला ई-हाट' अपने उत्पादों, एस टी ई पी (महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम का समर्थन) और कई अन्य का प्रदर्शन करें। इन योजनाओं ने महिलाओं को यह बताने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है कि अगर यह पार्टी सत्ता में आई तो और भी योजनाएं लाएगी जिससे महिलाओं को सीधे लाभ मिलेगा। महिला आरक्षण विधेयक 2023 (128वां संविधान संशोधन विधेयक) या नारी शक्ति वंदन अधिनियम को संसद से मंजूरी मिलने ने भी महिला मतदाताओं का दिल जीतने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने महिला मतदाताओं को स्पष्ट संदेश दिया कि भाजपा न केवल उनके कल्याण के बारे में चिंतित है, बल्कि उनके सशक्तिकरण के बारे में भी उतनी ही चिंतित है।

• **पार्टी की संगठनात्मक ताकत:-** चुनाव की तारीख से बहुत पहले पार्टी टिकटों की घोषणा से स्थानीय स्तर पर पार्टी कैडर को वास्तविक परीक्षण-समय से बहुत पहले स्थानीय स्तर पर लोगों के साथ संचार में प्रवेश करने में मदद मिली। इससे पार्टी कैडर को स्थानीय स्तर पर लोगों की चिंता को समझने में मदद मिली। इन सबसे पार्टी को सीधे मतदाताओं के साथ घनिष्ठ संबंध विकसित करने में मदद मिली। साथ ही पार्टी ने पार्टी और सरकार के बीच 'संवाद-समन्वय' बनाने का भी प्रयास किया. उन्होंने "मेरा बूथ सबसे मजबूत" जैसे नारे से अपने कैडर को प्रेरित रखा। पार्टी और सरकार के इस संयुक्त प्रयास से भाजपा को कांग्रेस जैसी अन्य पार्टियों के टिकट घोषित होने से काफी पहले ही निचले स्तर पर मजबूत आधार बनाने में मदद मिली।

• **संदेश:-** प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण, गृह मंत्री अमित शाह और विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर के सभी संबोधनों में हम पाते हैं कि वे विकास, राष्ट्र-प्रथम नीति, हमारी संस्कृति और परंपरा के बारे में बात कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में, इन्हें हर मंच से लोकप्रिय बनाया गया है, चाहे वह जी-20 शिखर सम्मेलन हो या कोविड के समय में वंदे भारत मिशन हो या यूक्रेन युद्ध के दौरान ऑपरेशन गंगा हो या कोई अन्य स्थिति हो। हमने पाया है कि भारत के लोगों की सुरक्षा, सुरक्षा और कल्याण सबसे महत्वपूर्ण है। आज लोग इस पार्टी पर भरोसा करते हैं और उनका मानना है कि वे इस पार्टी पर भरोसा कर सकते हैं और जब वे भाजपा को वोट दे रहे हैं, तो वे वास्तव में 'विकास, प्रगति और कल्याण' को चुन रहे हैं।

अंत में, हम पीएम नरेंद्र मोदी से एक उद्धरण ले सकते हैं। उसने कहा:

चुनावी सफलता "ईमानदारी, पारदर्शिता और सुशासन" की जीत को दर्शाती है, यह दावा करते हुए कि 'सबका साथ, सबका विकास' का मार्गदर्शक सिद्धांत विजयी हुआ है।

उसने कहा:

“भारत एक वैश्विक आर्थिक शक्ति बन गया है। इन विधानसभा चुनाव परिणामों से देश में सकारात्मकता आई है। यह विकसित भारत की नींव को मजबूत करेगा।”

संदर्भ सूची

1. Assembly election result 2023visualised in 10 charts, https://timesofindia.indiatimes.com/elections/news, December 3, 2023.
2. Bannerjee, Tirtho, ‘Nine Crucial State Elections in 2023. What’s at stake’, https://www.indiatoday.in/news-analysis/story, India Today, December 28, 2022.
3. Decode Politics, https://indianexpress.com/article/political-pulse/, December 8, 2023.
4. Palshikar, Suhas, The BJP’s sweep: Modi is the mascot, party is the culture, https://indianexpress.com/article/opinion/columns, December 5, 2023.
5. https://www.livemint.com/
6. https://results.eci.gov.in/AcResultGenDecNew2023/partywiseresult-S29.htm
7. https://www.thehindubusinessline.com/
8. Kumar, Sanjay, Elections in India: An Overview, Routledge, Newyork, 2022.
9. Quraishi, S. Y., India’s Experiment with Democracy. Harper Collins India, October 2023.
10. Quraishi, S. Y., The Great March of Democracy, Penguin, 2018.
11. Singh, Ujjwal Kumar and Anupama Singh, Election Commission of India, Oxford University Press, October 2019.
12. Tripathi, Vikas and Tarun Gogoi, ‘Indigenising Election Studies in India’, https://www.epw.in/journal/2023/24/book-reviews/, Economic & Political weekly, June 17, 2023.

8

प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों में विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास में मिश्रित शिक्षा के प्रभाव पर विश्लेषणात्मक अध्ययन

कैलाश प्रकाश चन्दोला

शोध अध्येता, शिक्षा विभाग/आई०ए०एस०ई०, एम०जे०पी०आर०यू०, बरेली, उ.प्र.

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी

आचार्य, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शिक्षा व्यक्तियों और समाजों के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसमें विज्ञान शिक्षा विशेष रूप से आलोचनात्मक सोच और समस्या-समाधान कौशल विकसित करने में महत्वपूर्ण है (राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद, 1996)। प्रारंभिक स्तर पर विज्ञान की शिक्षा बाद में शैक्षणिक सफलता की नींव रखती है और दुनिया के बारे में जिज्ञासा को प्रोत्साहित करती है, तथा छात्रों के संज्ञानात्मक विकास के लिए मौलिक कौशल को बढ़ावा देती है (अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ साइंस, 1993)।

विज्ञान प्रक्रिया कौशल से तात्पर्य उन क्षमताओं से है जो छात्र वैज्ञानिक घटनाओं के बारे में अवलोकन, परिकल्पना, प्रयोग, डेटा का विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने के लिए विकसित करते हैं (काहले और शेरिन, 2004)। ये कौशल न केवल वैज्ञानिक विषय-वस्तु को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि जांच-आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं, जो वैज्ञानिक साक्षरता विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है (ब्लूम, 1956)। प्रारंभिक स्तर पर, इन कौशलों के विकास पर ध्यान केंद्रित करने से यह सुनिश्चित होता है कि विद्यार्थी बाद की कक्षाओं में अधिक जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं से जुड़ने के लिए अच्छी तरह तैयार हों।

मिश्रित शिक्षा, जो पारंपरिक आमने-सामने की शिक्षा को ऑनलाइन शिक्षण अनुभवों के साथ जोड़ती है, ने पिछले दशक में शिक्षा के क्षेत्र में काफी ध्यान आकर्षित किया है (गैरीसन एवं कनुका, 2004)। इस दृष्टिकोण को व्यक्तिगत, लचीले शिक्षण वातावरण की पेशकश करके छात्र संलग्नता और सीखने के परिणामों को बढ़ाने के साधन के रूप में देखा जाता है (हॉर्न और स्टेकर, 2014)। व्यक्तिगत शिक्षण विधियों के साथ डिजिटल उपकरणों के एकीकरण से छात्रों को संसाधनों और इंटरैक्टिव अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुंच प्रदान की जा सकती है, जिससे विज्ञान अवधारणाओं और प्रक्रिया कौशल की उनकी समझ में सुधार हो सकता है (मीन्स एवं अन्य, 2013)।

1.2 समस्या कथन

यद्यपि उच्च शिक्षा और माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षा पर काफी शोध हुआ है (एलन और सीमैन, 2013), लेकिन प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों पर इसका प्रभाव, विशेष रूप से विज्ञान प्रक्रिया कौशल के संवर्धन के संबंध में, अभी भी कम समझा गया है। इस विषय पर सीमित शोध से यह समझने में अंतर का पता चलता है कि मिश्रित शिक्षा किस प्रकार युवा छात्रों की वैज्ञानिक जांच में संलग्न होने और आवश्यक प्रक्रिया कौशल विकसित

करने की क्षमताओं को प्रभावित करती है (गैरीसन एवं वॉन, 2008)। इसलिए, इस अध्ययन का उद्देश्य प्राथमिक स्तर पर विज्ञान प्रक्रिया कौशल पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण करके इस अंतर को दूर करना है।

1.3 उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करना है:

1. प्राथमिक छात्रों में विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव का आकलन करना।
2. विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने में पारंपरिक शिक्षण विधियों और मिश्रित शिक्षण वातावरण की प्रभावशीलता की तुलना करना।

1.4 शोध प्रश्न

अध्ययन में निम्नलिखित शोध प्रश्नों पर विचार किया जाएगा:

1. मिश्रित शिक्षा प्रारम्भिक कक्षा के विद्यार्थियों के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास को कैसे प्रभावित करती है?
2. विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने में पारंपरिक शिक्षण विधियों बनाम मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोण की प्रभावशीलता में क्या अंतर हैं?

1.5 अध्ययन का महत्व

इस अध्ययन के निष्कर्ष शिक्षा प्रणाली के विभिन्न हितधारकों के लिए महत्वपूर्ण हैं। शिक्षकों को यह समझने से लाभ हो सकता है कि किस प्रकार मिश्रित शिक्षा को उनके शिक्षण अभ्यासों में एकीकृत किया जा सकता है, जिससे उनके विद्यार्थियों में विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास में बेहतर सहायता मिल सके। पाठ्यचर्या विकासकर्ता को इस बात की जानकारी मिल सकती है कि विज्ञान पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम को किस प्रकार डिजाइन किया जाए, जिसमें विद्यार्थियों के सीखने को अनुकूलित करने के लिए डिजिटल और पारंपरिक दोनों संसाधनों को शामिल किया जाए। शैक्षिक नीति निर्माता राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर विज्ञान शिक्षा के परिणामों को बेहतर बनाने के लिए प्रारंभिक शिक्षा में मिश्रित शिक्षण रणनीतियों को अपनाने को बढ़ावा देने के लिए परिणामों का उपयोग कर सकते हैं (हॉर्न और स्टेकर, 2014)।

1.6 शोध पत्र की संरचना

इस लेख का आयोजन निम्न रूप में किया गया है:

परिचय – यह अध्याय अध्ययन की पृष्ठभूमि, शोध समस्या, उद्देश्यों और महत्व को रेखांकित करता है, और पेपर की संरचना का अवलोकन प्रदान करता है।

साहित्य समीक्षा – विज्ञान प्रक्रिया कौशल पर मौजूदा साहित्य की समीक्षा, शिक्षा में मिश्रित शिक्षा की भूमिका, और प्रासंगिक अध्ययन जो विज्ञान शिक्षा पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव की जांच करते हैं।

कार्यप्रणाली – अनुसंधान डिजाइन, नमूना, डेटा संग्रह विधियों और डेटा विश्लेषण तकनीकों का विस्तृत विवरण।

परिणाम और चर्चा – अध्ययन के निष्कर्षों की प्रस्तुति और व्याख्या, जिसमें मिश्रित और पारंपरिक शिक्षण वातावरण के बीच तुलना शामिल है।

निष्कर्ष – प्रमुख निष्कर्षों का सारांश, शैक्षिक निहितार्थ, अध्ययन की सीमाएँ और भविष्य के अनुसंधान के लिए सुझाव।

2. साहित्य समीक्षा

2.1 प्रारंभिक शिक्षा में विज्ञान प्रक्रिया कौशल

विज्ञान प्रक्रिया कौशल वहमौलिक योग्यताएं हैं जिन्हें विद्यार्थी वैज्ञानिक पद्धति से जुड़ने और प्राकृतिक दुनिया को समझने के लिए विकसित करते हैं। इन कौशलों में अवलोकन, वर्गीकरण, मापन, भविष्यवाणी और प्रयोग शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (काहले और शेरिन, 2004)। अवलोकन में इंद्रियों के माध्यम से डेटा एकत्र करना शामिल है, जबकि वर्गीकरण सामान्य विशेषताओं के आधार पर वस्तुओं को समूहीकृत करने की क्षमता है (ब्लूम, 1956)। मापन, प्रेक्षणों को परिमाणित करने की क्षमता है, और पूर्वानुमान, मौजूदा ज्ञान के आधार पर किसी निश्चित स्थिति में क्या घटित होगा, इसकी परिकल्पना करने से संबंधित है। ये कौशल मिलकर वैज्ञानिक अन्वेषण की रीढ़ बनते हैं, तथा विद्यार्थियों को घटनाओं की व्यवस्थित जांच करने और ज्ञान का निर्माण करने में मदद करते हैं।

प्रारंभिक स्तर पर विज्ञान प्रक्रिया कौशल का विकास महत्वपूर्ण है क्योंकि यह छात्रों के लिए बाद में अधिक जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझने की नींव रखता है। ये कौशल आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान, तथा ज्ञान को वास्तविक दुनिया के संदर्भों में लागू करने की क्षमता को बढ़ावा देते हैं, जो सभी छात्रों के संज्ञानात्मक और शैक्षणिक विकास के लिए आवश्यक हैं (अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ साइंस, 1993)। इसके अलावा, अनुसंधान से पता चला है कि इन कौशलों का प्रारंभिक विकास विज्ञान के प्रति छात्रों के दृष्टिकोण को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है और वैज्ञानिक विषय-वस्तु से जुड़ने के लिए उनकी प्रेरणा को बढ़ा सकता है (टोबियास और डफी, 2009)। इसलिए, यह आवश्यक है कि प्रारंभिक शिक्षा प्रणालियाँ छात्रों को सहायक और प्रेरक वातावरण में इन कौशलों को विकसित करने और अभ्यास करने के अवसर प्रदान करें।

2.2 मिश्रित शिक्षा: एक अवलोकन

मिश्रित शिक्षण एक अनुदेशात्मक दृष्टिकोण है जो पारंपरिक आमने-सामने शिक्षण को ऑनलाइन शिक्षण घटकों के साथ जोड़ता है, जिससे एक लचीला शिक्षण वातावरण बनता है जो विविध शिक्षण शैलियों और आवश्यकताओं को पूरा करता है (गैरीसन और कनुका, 2004)। मिश्रित शिक्षा के प्रमुख घटकों में डिजिटल सामग्री, जैसे वीडियो, ऑनलाइन प्रश्नोत्तरी और इंटरैक्टिव सिमुलेशन को व्यक्तिगत निर्देश के साथ एकीकृत करना शामिल है, जिससे छात्रों को अपनी गति से सामग्री तक पहुंचने और सहयोगात्मक गतिविधियों में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके (हॉर्न और स्टेकर, 2014)। ऑनलाइन और ऑफलाइन शिक्षण वातावरण का यह सम्मिश्रण एक अधिक वैयक्तिकृत शैक्षिक अनुभव की अनुमति देता है, जहां छात्र अपनी सीखने की प्रक्रिया पर नियंत्रण रख सकते हैं, जिससे विषय-वस्तु में बेहतर सहभागिता और अवधारण होता है (मीन्स एट अल., 2013)।

मिश्रित शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह आमने-सामने और ऑनलाइन दोनों तरह के शिक्षण के लाभों का लाभ उठाकर समृद्ध और विविधतापूर्ण शिक्षण अनुभव प्रदान करने की क्षमता रखती है। उदाहरण के लिए, आमने-सामने की शिक्षा छात्रों और शिक्षकों के बीच सीधे संपर्क को सुगम बना सकती है, जिससे एक सहायक शिक्षण

समुदाय को बढ़ावा मिलता है, जबकि ऑनलाइन शिक्षा विभिन्न संसाधनों तक पहुंच प्रदान कर सकती है, जिससे छात्र अपनी गति से सीख सकते हैं और आवश्यकतानुसार अवधारणाओं पर पुनर्विचार कर सकते हैं (गैरीसन एवं वॉन, 2008)। हालाँकि, मिश्रित शिक्षा के साथ चुनौतियाँ भी आती हैं, जैसे कि पर्याप्त तकनीकी अवसंरचना की आवश्यकता, शिक्षक प्रशिक्षण, और सभी छात्रों के लिए डिजिटल संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना (एलन और सीमैन, 2013)।

2.3 मिश्रित शिक्षा और विज्ञान प्रक्रिया कौशल पर पूर्व अध्ययन

कई अध्ययनों ने विज्ञान शिक्षा पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव का पता लगाया है, विशेष रूप से विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने की इसकी क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया है। लिम (2013) द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि मिश्रित शिक्षण वातावरण, जिसमें ऑनलाइन मॉड्यूल को प्रयोगशाला कार्य के साथ जोड़ा गया, से छात्रों की प्रयोग करने और डेटा का विश्लेषण करने की क्षमता में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। डिजिटल उपकरणों के एकीकरण से छात्रों को अधिक इंटरैक्टिव और व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव प्राप्त करने में मदद मिली, जिससे वैज्ञानिक अवधारणाओं की गहरी समझ विकसित हुई और उनके विज्ञान प्रक्रिया कौशल में सुधार हुआ। इसी प्रकार, साधन-आधारित अध्ययनों से पता चला है कि प्रौद्योगिकी-समर्थित शिक्षण वातावरण छात्रों को अमूर्त वैज्ञानिक घटनाओं की कल्पना करने में सक्षम बनाता है, जिससे परिणामों का अवलोकन, मापन और भविष्यवाणी करने की उनकी क्षमता में वृद्धि होती है (बोस्टर एट अल., 2007)।

इसके अलावा, के और नैक (2008) द्वारा किए गए शोध ने प्राथमिक स्तर पर विज्ञान प्रक्रिया कौशल विकसित करने में मिश्रित शिक्षा की प्रभावशीलता की जांच की। उन्होंने पाया कि जिन छात्रों ने मिश्रित शिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया, उनमें समस्या-समाधान की बेहतर क्षमताएं प्रदर्शित हुईं तथा विज्ञान में उनकी रुचि उन छात्रों की तुलना में अधिक थी, जिन्होंने केवल पारंपरिक शिक्षण का अनुभव किया था। इससे पता चलता है कि मिश्रित शिक्षा, वैज्ञानिक विषय-वस्तु के साथ छात्रों की सहभागिता बढ़ाने तथा जांच-आधारित शिक्षा के लिए आवश्यक कौशल को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

तुलनात्मक अध्ययनों से पारंपरिक और आधुनिक शिक्षण विधियों के बीच अंतर पर भी प्रकाश पड़ा है। जॉनसन एट अल द्वारा एक अध्ययन। (2014) ने विज्ञान शिक्षा में पारंपरिक शिक्षण विधियों के साथ मिश्रित शिक्षा की तुलना करते हुए पाया कि मिश्रित शिक्षा समूह के छात्रों ने आलोचनात्मक सोच और वैज्ञानिक जांच कौशल के मामले में अपने साथियों से बेहतर प्रदर्शन किया। अध्ययन में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि सिमुलेशन और इंटरैक्टिव ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे डिजिटल संसाधनों के उपयोग से छात्रों को अधिक प्रामाणिक वैज्ञानिक अभ्यासों में संलग्न होने के अवसर मिले, जैसे परिकल्पनाएं बनाना और आभासी वातावरण में उनका परीक्षण करना। इन निष्कर्षों से पता चलता है कि मिश्रित शिक्षा में न केवल विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने की क्षमता है, बल्कि प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण का एक अधिक आकर्षक और प्रभावी तरीका भी उपलब्ध कराने की क्षमता है।

निष्कर्ष रूप में, साहित्य सुझाव देता है कि मिश्रित शिक्षा प्राथमिक छात्रों के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने के लिए एक आशाजनक दृष्टिकोण प्रदान करती है। पारंपरिक और ऑनलाइन दोनों शिक्षण विधियों की शक्तियों को मिलाकर, मिश्रित शिक्षण अधिक आकर्षक और व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव बना सकता है जो वैज्ञानिक जांच और

आलोचनात्मक सोच कौशल को बढ़ावा देता है (हॉर्न और स्टेकर, 2014; गैरिसन और वॉन, 2008)। हालांकि, यह पता लगाने के लिए कि विभिन्न मिश्रित शिक्षण मॉडलों को विशिष्ट विज्ञान प्रक्रिया कौशल में सुधार करने के लिए कैसे अनुकूलित किया जा सकता है, तथा छात्रों की वैज्ञानिक साक्षरता पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव को निर्धारित करने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

3 शोध की रूपरेखा

3.1 शोध प्रारूप

यह अध्ययन मिश्रित-पद्धति दृष्टिकोण को अपनाएगा, जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के डेटा संग्रहण और विश्लेषण तकनीकों का संयोजन किया जाएगा। इस डिजाइन को चुनने का तर्क यह है कि यह प्राथमिक छात्रों के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव की व्यापक जांच की अनुमति देता है। विज्ञान प्रक्रिया कौशल के पूर्व और पश्चात मूल्यांकन के माध्यम से मात्रात्मक डेटा एकत्र किया जाएगा, जिससे कौशल विकास का वस्तुनिष्ठ मापन संभव हो सकेगा। सर्वेक्षणों और साक्षात्कारों के माध्यम से गुणात्मक डेटा एकत्र किया जाएगा, जिससे छात्रों और शिक्षकों के मिश्रित शिक्षण के अनुभवों के बारे में गहन जानकारी प्राप्त होगी, जिसे केवल मानकीकृत परीक्षणों के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह दृष्टिकोण, मिश्रित शिक्षा के मापन योग्य प्रभावों और इसकी प्रभावशीलता के संबंध में प्रतिभागियों की व्यक्तिपरक धारणाओं, दोनों का अन्वेषण करने के अध्ययन के उद्देश्य के अनुरूप है (क्रेसवेल, 2014)।

3.2 न्यायदर्श और प्रतिभागी

यह अध्ययन प्रारम्भिक विद्यालय के विद्यार्थियों, विशेषकर कक्षा 6 से 8 (आयु 12-15) के विद्यार्थियों पर केंद्रित होगा। विविधतापूर्ण और प्रतिनिधि नमूना सुनिश्चित करने के लिए प्रतिभागियों को ग्रामीण क्षेत्र के प्राइवेट स्कूलों से चुना जाएगा, क्योंकि ग्रामीण स्कूलों में शहरी विद्यालयों की तुलना में तकनीकी संसाधनों तक कम पहुंच होती है (मॉरिसन, 2017)। न्यायदर्श आकार में दो समूह शामिल होंगे: एक प्रायोगिक समूह, जो मिश्रित शिक्षण का अनुभव करेगा, और एक नियंत्रण समूह, जो पारंपरिक आमने-सामने शिक्षण जारी रखेगा। प्रत्येक समूह में लगभग 30-40 छात्र शामिल होंगे।

उपयोग की जाने वाली न्यायदर्श तकनीक यादृच्छिक न्यायदर्श होगी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रतिभागी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा पूर्वाग्रहों को न्यूनतम किया जा सके। यादृच्छिक न्यायदर्श तकनीक से भौगोलिक स्थान के भीतर विभिन्न कक्षाओं और स्कूलों से छात्रों का चयन करने में मदद मिलेगी, जिससे निष्कर्षों की सामान्यता बढ़ेगी (रॉबिन्सन, 2008)।

3.3 आंकड़ा संग्रह उपकरण

अध्ययन में निम्नलिखित आंकड़ा संग्रह उपकरणों का उपयोग किया जाएगा:

1. विज्ञान प्रक्रिया कौशल का पूर्व और पश्चात मूल्यांकन:

o छात्रों के विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास को मापने के लिए हस्तक्षेप से पहले और बाद में मानकीकृत परीक्षण और प्रश्नोत्तरी आयोजित की जाएंगी। इन मूल्यांकनों में अवलोकन, वर्गीकरण, मापन और भविष्यवाणी जैसे कौशलों पर प्रश्न शामिल होंगे।

o मूल्यांकन में व्यावहारिक गतिविधियों को शामिल किया जाएगा, जहां छात्र सरल विज्ञान प्रयोग करेंगे और अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट देंगे, विज्ञान प्रक्रिया कौशल के अपने अनुप्रयोग का प्रदर्शन करेंगे (पोपम, 2013)।

2. सर्वेक्षण और साक्षात्कार:

o मिश्रित शिक्षा के बारे में उनकी धारणाओं और अनुभवों पर डेटा एकत्र करने के लिए छात्रों और शिक्षकों को सर्वेक्षण वितरित किए जाएंगे। सर्वेक्षण में मिश्रित शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण और विज्ञान सीखने पर इसके प्रभाव को मापने के लिए लिकर्ट-स्केल आइटम शामिल होंगे।

o छात्रों और शिक्षकों के एक उपसमूह के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कार आयोजित किए जाएंगे ताकि उनके अनुभवों के बारे में गहन जानकारी प्राप्त की जा सके और मिश्रित शिक्षण हस्तक्षेप के दौरान उनके सामने आई चुनौतियों या लाभों का पता लगाया जा सके। साक्षात्कारों से खुले अंत वाले उत्तर मिलेंगे जो गुणात्मक डेटा प्रदान करेंगे (पैटन, 2002)।

3.4 प्रक्रिया

अध्ययन निम्नलिखित चरणों में आयोजित किया जाएगा:

चरण 1: पूर्व-मूल्यांकन:

o हस्तक्षेप से पहले, प्रायोगिक और नियंत्रण दोनों समूहों को विज्ञान प्रक्रिया कौशल के पूर्व-मूल्यांकन से गुजरना होगा। इसमें प्रमुख विज्ञान कौशलों को कवर करने वाला एक मानकीकृत परीक्षण शामिल होगा, साथ ही छात्रों की डेटा को देखने, वर्गीकृत करने और मापने की क्षमता का आकलन करने के लिए एक व्यावहारिक प्रयोग भी शामिल होगा।

o इसके अतिरिक्त, दोनों समूहों को सर्वेक्षण कराया जाएगा ताकि विज्ञान के प्रति उनके दृष्टिकोण और मिश्रित शिक्षा (यदि कोई हो) के साथ उनके पिछले अनुभवों पर आधारभूत डेटा एकत्र किया जा सके।

चरण 2: मिश्रित शिक्षण तकनीकों का कार्यान्वयन:

o प्रायोगिक समूह को मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोण के माध्यम से निर्देश प्राप्त होगा। इसमें निम्नलिखित शामिल होंगे:

- विज्ञान अवधारणाओं को प्रस्तुत करने और सुदृढ़ करने के लिए इंटरैक्टिव सिमुलेशन, वीडियो और क्विज़ सहित ऑनलाइन शिक्षण मॉड्यूल।
- व्यक्तिगत कक्षा सत्र जहां छात्र ऑनलाइन सीखी गई अवधारणाओं को लागू करने के लिए व्यावहारिक विज्ञान प्रयोगों, चर्चाओं और सहयोगात्मक गतिविधियों में शामिल होंगे।

o नियंत्रण समूह ऑनलाइन संसाधनों के उपयोग के बिना मानक पाठ्यक्रम का पालन करते हुए पारंपरिक, आमने-सामने शिक्षण जारी रखेगा।

o हस्तक्षेप के दौरान, दोनों समूह प्रगति पर नज़र रखने के लिए प्रश्नोत्तरी और अनौपचारिक परीक्षणों के माध्यम से अपनी समझ का नियमित मूल्यांकन करेंगे (गैरीसन और वॉन, 2008)।

चरण 3: मूल्यांकन के बाद:

o हस्तक्षेप के बाद, दोनों समूह पश्च-मूल्यांकन करेंगे, जो विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास को मापने के लिए पूर्व-मूल्यांकन के समान होगा।

o दोनों समूहों के छात्र और शिक्षक शिक्षण वातावरण के बारे में अपने अनुभवों और धारणाओं पर विचार करने के लिए अनुवर्ती सर्वेक्षण और साक्षात्कार पूरा करेंगे।

3.5 आंकड़ो का विश्लेषण

आंकड़ो का विश्लेषण के चरण:

1. मात्रात्मक डेटा:

o प्रयोगात्मक और नियंत्रण समूहों के पूर्व और पश्चात मूल्यांकन अंकों का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी (माध्य, मानक विचलन) का उपयोग करके किया जाएगा ताकि हस्तक्षेप से पहले और बाद में दोनों समूहों में प्रदर्शन के स्तर को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सके।

o युग्मित टी-परीक्षण या एनोवा का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाएगा कि प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण) और नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण) के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर हैं या नहीं (फील्ड, 2013)।

2. गुणात्मक डेटा:

o सर्वेक्षण और साक्षात्कार के उत्तरों को विषयगत विश्लेषण का उपयोग करके लिपिबद्ध और कोडित किया जाएगा, ताकि मिश्रित शिक्षण की प्रभावशीलता और छात्रों और शिक्षकों के अनुभवों से संबंधित प्रमुख विषयों की पहचान की जा सके। विषयों को डेटा से उभरने वाले पैटर्न के आधार पर तैयार किया जाएगा, जैसे कि छात्र संलग्नता, मिश्रित शिक्षण की प्रभावशीलता की धारणाएं, और कार्यान्वयन के दौरान आने वाली चुनौतियां (ब्रौन और क्लार्क, 2006)।

o गुणात्मक विश्लेषण के परिणाम मात्रात्मक निष्कर्षों के पूरक होंगे, तथा मिश्रित शिक्षा के प्रभाव की अधिक व्यापक समझ प्रदान करेंगे।

3. परिणामों की तुलना:

o विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने में मिश्रित शिक्षा की प्रभावशीलता का आकलन करने के लिए प्रयोगात्मक और नियंत्रण समूहों के बीच मूल्यांकन के बाद के परिणामों की तुलना की जाएगी।

सर्वेक्षणों और साक्षात्कारों से प्राप्त निष्कर्षों की तुलना विभिन्न समूहों के बीच की जाएगी, ताकि सीखने के अनुभव की धारणाओं और विज्ञान कौशल विकास पर इसके प्रभाव में किसी महत्वपूर्ण अंतर की पहचान की जा सके।

तालिका 1: विज्ञान प्रक्रिया कौशल के पूर्व और पश्चात मूल्यांकन अंक

समूह	छात्र आईडी	पूर्व-मूल्यांकन अंक	पश्च मूल्यांकन अंक	अंको में परिवर्तन
छात्र प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण)	1	55	75	+20
	2	60	78	+18
	3	50	70	+20
	4	52	74	+22

	5	58	80	+22
	6	65	85	+20
नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण)	7	60	68	+8
	8	62	70	+8
	9	58	64	+6
	10	55	62	+7
	11	63	71	+8
	12	57	67	+10

तालिका 1 का स्पष्टीकरण

• समूह: यह कॉलम यह दर्शाता है कि छात्र प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण) से संबंधित है या नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण) से।

• छात्र आईडी: डेटासेट में गुमनामी और पहचान के प्रयोजन के लिए प्रत्येक छात्र को एक विशिष्ट आईडी दी जाती है।

• पूर्व-मूल्यांकन स्कोर: यह वह स्कोर है जो प्रत्येक छात्र ने मिश्रित या पारंपरिक शिक्षण हस्तक्षेप से पहले विज्ञान प्रक्रिया कौशल मूल्यांकन पर हासिल किया था। अंक 0 से 100 तक होते हैं, तथा उच्च अंक विज्ञान प्रक्रिया कौशल की बेहतर प्रारंभिक समझ का संकेत देते हैं।

• मूल्यांकन-पश्चात स्कोर: यह स्कोर हस्तक्षेप (मिश्रित या पारंपरिक शिक्षण) को पूरा करने के बाद उसी मूल्यांकन पर प्रत्येक छात्र के प्रदर्शन को दर्शाता है। पुनः, अंक 0 से 100 तक होते हैं।

• स्कोर में परिवर्तन: यह कॉलम प्रत्येक छात्र के लिए मूल्यांकन के बाद के स्कोर और मूल्यांकन से पहले के स्कोर के बीच के अंतर को दर्शाता है। सकारात्मक संख्या विज्ञान प्रक्रिया कौशल में सुधार को दर्शाती है, जबकि छोटा परिवर्तन कम सुधार को दर्शाता है।

तालिका 2: मिश्रित शिक्षा के बारे में छात्रों की धारणाओं पर सर्वेक्षण के परिणाम

समूह	छात्र आईडी	मिश्रित शिक्षण के साथ जुड़ाव	ऑनलाइन शिक्षण संसाधनों की उपयोगिता	समग्र शिक्षण अनुभव
छात्र प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण)	1	उच्च	बहुत उपयोगी	सकारात्मक
	2	मध्यम	उपयोगी	सकारात्मक
	3	उच्च	बहुत उपयोगी	सकारात्मक
	4	उच्च	उपयोगी	सकारात्मक
	5	उच्च	बहुत उपयोगी	सकारात्मक

	6	मध्यम	उपयोगी	सकारात्मक
नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण)	7	कम	उपयोगी नहीं	तटस्थ
	8	मध्यम	उपयोगी नहीं	तटस्थ
	9	कम	उपयोगी नहीं	नकारात्मक
	10	कम	उपयोगी नहीं	तटस्थ
	11	मध्यम	उपयोगी नहीं	तटस्थ
	12	कम	उपयोगी नहीं	नकारात्मक

तालिका 2 का स्पष्टीकरण

• समूह: समूह पदनाम तालिका 1 के समान ही रहता है: प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण) और नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण)।

• छात्र आईडी: प्रत्येक छात्र के पास सर्वेक्षण डेटा के लिए एक अद्वितीय पहचानकर्ता होता है।

• मिश्रित शिक्षण के साथ सहभागिता: यह मापता है कि छात्र मिश्रित शिक्षण पद्धति के साथ कितने सहभागी थे, जिसमें "कम", "मध्यम" और "उच्च" जैसे विकल्प शामिल हैं। सहभागिता व्यक्तिपरक है और इसका संबंध इस बात से है कि विद्यार्थी मिश्रित शिक्षण वातावरण के ऑनलाइन और व्यक्तिगत दोनों घटकों में कितनी सक्रियता से भाग लेते हैं।

• ऑनलाइन शिक्षण संसाधनों की उपयोगिता: यह कॉलम ऑनलाइन शिक्षण घटकों (जैसे वीडियो, क्विज़ और सिमुलेशन) के बारे में छात्रों की धारणाओं को दर्शाता है। जवाब "उपयोगी नहीं" से लेकर "बहुत उपयोगी" तक हो सकते हैं, जो ऑनलाइन सामग्री की प्रभावशीलता पर छात्रों के दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

• समग्र शिक्षण अनुभव: यह छात्रों को उनके शिक्षण अनुभव की सामान्य धारणा प्रदान करता है, जिसे "सकारात्मक", "तटस्थ" या "नकारात्मक" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह दर्शाता है कि विद्यार्थी समग्र रूप से सीखने की प्रक्रिया के बारे में कैसा महसूस करते हैं, जिसमें ऑनलाइन और पारंपरिक दोनों पहलू शामिल हैं।

आकड़ों की व्याख्या

1. पूर्व और पश्च मूल्यांकन परिणाम:

o प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण) में पर्याप्त सुधार दिखाई देता है, जिसमें छात्रों ने अपने विज्ञान प्रक्रिया कौशल में 18 से 22 अंकों की वृद्धि प्रदर्शित की। इससे पता चलता है कि मिश्रित शिक्षण उनके विज्ञान प्रक्रिया कौशल को बढ़ाने में प्रभावी था।

o नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षण) में 6 से 10 अंकों के परिवर्तन के साथ अधिक मामूली सुधार दिखाई देता है। यह दर्शाता है कि जबकि पारंपरिक तरीकों से भी कौशल में सुधार हुआ, वे मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोण जितने प्रभावी नहीं थे।

2. सर्वेक्षण परिणाम:

o प्रायोगिक समूह के छात्र आम तौर पर मिश्रित शिक्षण के साथ उच्च जुड़ाव की रिपोर्ट करते हैं, ऑनलाइन संसाधनों को बहुत उपयोगी पाते हैं और समग्र शिक्षण अनुभव सकारात्मक पाते हैं। यह मिश्रित शिक्षण वातावरण के साथ उच्च संतुष्टि को दर्शाता है।

o नियंत्रण समूह के छात्र पारंपरिक तरीकों के साथ कम जुड़ाव की रिपोर्ट करते हैं और शिक्षण अनुभव को कम संतोषजनक पाते हैं। उन्होंने ऑनलाइन संसाधनों को उपयोगी नहीं माना, और उनका समग्र अनुभव तटस्थ से नकारात्मक था।

पंक्ति आरेख 1 - प्रायोगिक समूह (मिश्रित शिक्षण) के लिए पूर्व-परीक्षण बनाम पश्चात-परीक्षण विज्ञान प्रक्रिया कौशल अंक दिखाता है।

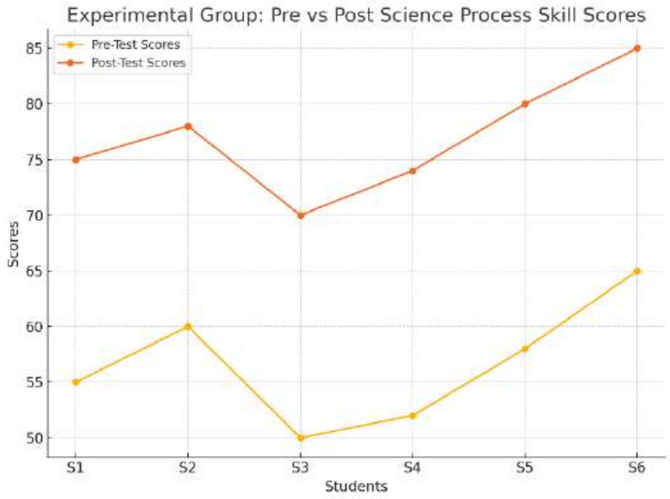

पंक्ति आरेख 2 – नियंत्रण समूह (पारंपरिक शिक्षा) के लिए पूर्व परीक्षण और पश्च परीक्षण अंकों की तुलना।

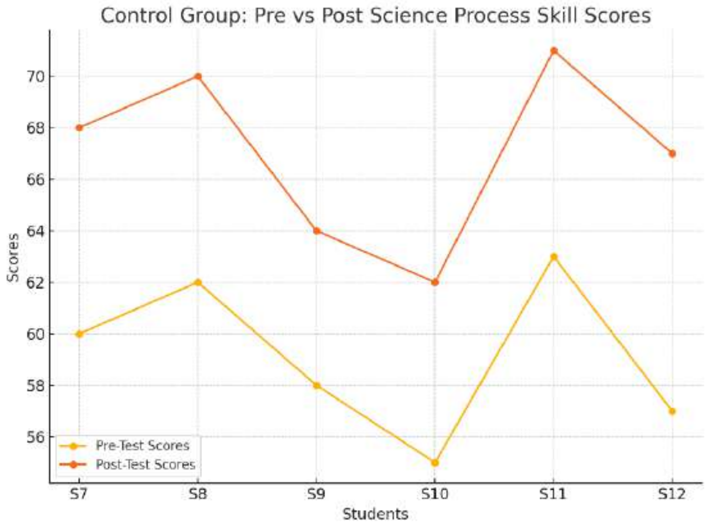

स्तम्भ आरेख 1 - प्रयोगात्मक और नियंत्रण समूहों के बीच अंकों में औसत सुधार की तुलना।

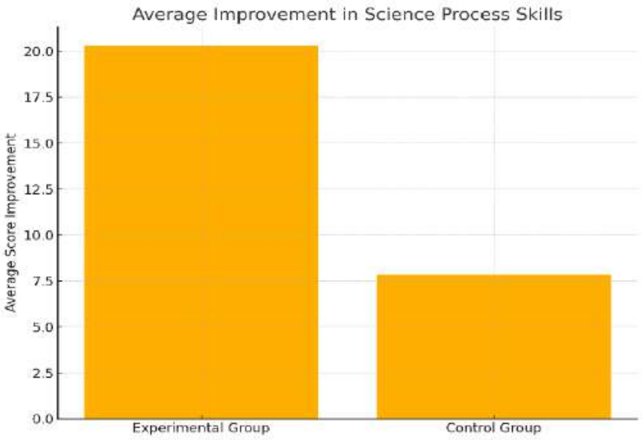

स्तम्भ आरेख 2 - दोनों समूहों में छात्र सहभागिता स्तर (न्यून, मध्यम, उच्च) प्रदर्शित करता है।

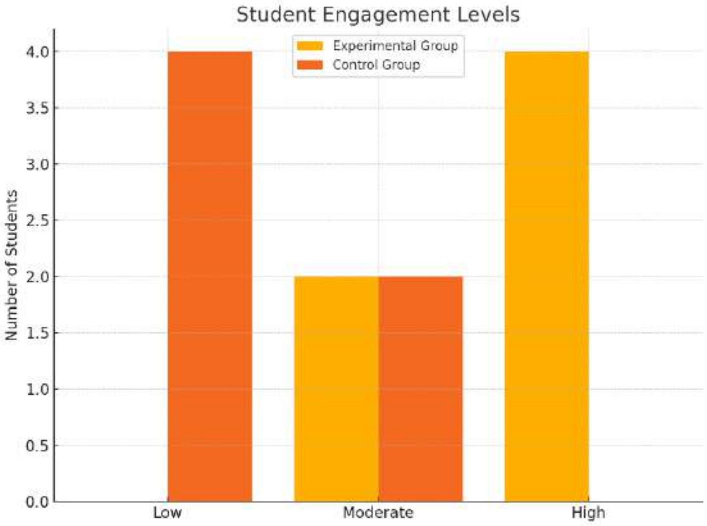

स्तम्भ आरेख 3 - दोनों समूहों के छात्रों द्वारा बताए गए समग्र शिक्षण अनुभव (नकारात्मक, तटस्थ, सकारात्मक) को दर्शाता है।

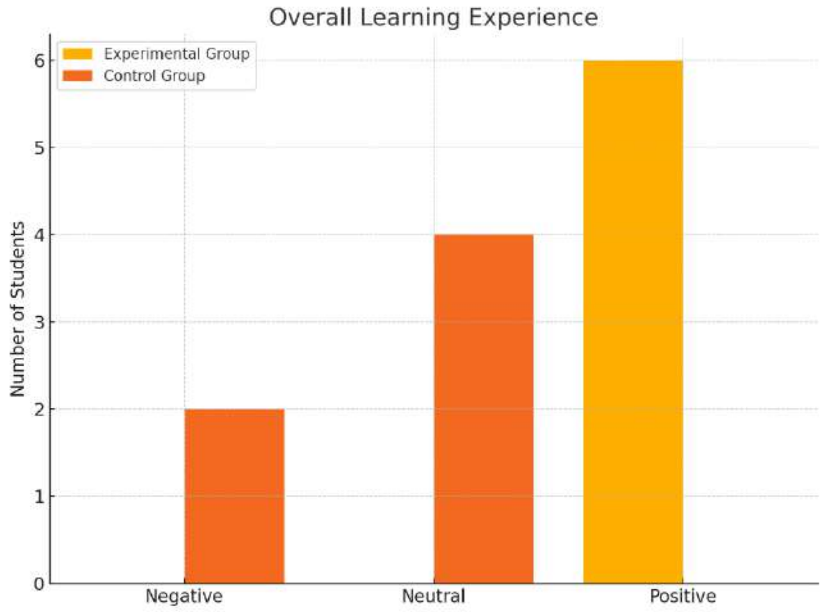

4. परिणाम और निष्कर्ष

4.1 विज्ञान प्रक्रिया कौशल विकास का विश्लेषण

पूर्व और पश्चात मूल्यांकन के परिणाम मिश्रित शिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने वाले छात्रों के विज्ञान प्रक्रिया कौशल में उल्लेखनीय सुधार दर्शाते हैं। प्रायोगिक समूह में, छात्रों के औसत अंक पूर्व-परीक्षण में 56.67 से बढ़कर पश्चात परीक्षण में 77 हो गए, जो 20.33 अंकों का औसत सुधार दर्शाता है। सभी छात्रों में यह लगातार ऊपर की ओर रुझान बताता है कि मिश्रित शिक्षण वातावरण ने अवलोकन, वर्गीकरण, माप और भविष्यवाणी जैसे मुख्य कौशल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इंटरैक्टिव डिजिटल उपकरणों और निर्देशित कक्षा सत्रों के एकीकरण ने छात्रों को आभासी और वास्तविक दुनिया के परिदृश्यों में सैद्धांतिक ज्ञान को लागू करने के अवसर प्रदान किए, जिससे वैज्ञानिक अवधारणाओं की समझ और अवधारण दोनों में वृद्धि हुई (मीन्स एट अल., 2013)।

इसके विपरीत, नियंत्रण समूह, जिसने पारंपरिक आमने-सामने निर्देश जारी रखा, ने केवल अपेक्षाकृत न्यून सुधार दिखाया। उनका औसत प्री-टेस्ट स्कोर 59.17 था, जो पोस्ट-टेस्ट में बढ़कर 67 हो गया - केवल 7.83 अंकों का औसत लाभ। जबकि यह कुछ प्रगति को इंगित करता है लेकिन अंतर प्रयोगात्मक समूह की तरह स्पष्ट नहीं था। परिणामों में असमानता समृद्ध, आकर्षक और छात्र-केंद्रित सीखने के अनुभव प्रदान करने में मिश्रित शिक्षा की भूमिका को उजागर करती है जो वैज्ञानिक जांच और समस्या-समाधान को बढ़ावा देती है (गैरीसन और कनुका, 2004)।

4.2 पारंपरिक और मिश्रित शिक्षण विधियों की तुलना

दोनों समूहों की सांख्यिकीय तुलना ने विज्ञान प्रक्रिया कौशल के सुधार में एक महत्वपूर्ण अंतर प्रकट किया। प्रायोगिक समूह के पूर्व और पश्चात परीक्षण स्कोर पर लागू एक युग्मित टी-परीक्षण ने पुष्टि की कि वृद्धि सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण थी, जब $p < 0.05$ था। प्रायोगिक समूह ने 20.33 का औसत स्कोर अंतर दिखाया, जबकि नियंत्रण समूह का औसत अंतर केवल 7.83 था। सीखने के परिणामों में यह उल्लेखनीय भिन्नता मिश्रित सीखने की बहुमुखी प्रकृति के कारण हो सकती है, जो ऑनलाइन और आमने-सामने दोनों शिक्षण विधियों की शक्तियों को जोड़ती है।

परिणाम पहले के अध्ययनों के निष्कर्षों का समर्थन करते हैं जो विज्ञान शिक्षा में मिश्रित सीखने के उपयोग का भी समर्थन करते हैं। उदाहरण के लिए, के और नैक (2008) ने प्रदर्शित किया कि मिश्रित विज्ञान सीखने के वातावरण में शामिल होने वाले छात्रों ने पारंपरिक कक्षाओं की तुलना में वैज्ञानिक तर्क और प्रक्रिया कौशल के उच्च स्तर दिखाए। इसी तरह, लिम (2013) ने इस बात पर जोर दिया कि मिश्रित शिक्षण वातावरण छात्रों की स्वायत्तता और अन्तरक्रियाशीलता को बढ़ाता है, जिससे वैज्ञानिक सिद्धांतों की गहन भागीदारी और समझ विकसित होती है। ये निष्कर्ष वर्तमान अध्ययन के परिणामों के अनुरूप हैं, जो इस तर्क को पुष्ट करते हैं कि मिश्रित शिक्षण प्राथमिक छात्रों के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल विकसित करने के लिए एक अधिक प्रभावी शैक्षणिक रणनीति है।

4.3 निष्कर्षों की चर्चा

इस अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि मिश्रित शिक्षण न केवल अकादमिक परिणामों को बढ़ाने में प्रभावी है, बल्कि आवश्यक प्रक्रिया कौशल को भी बढ़ावा देता है जो वैज्ञानिक साक्षरता के लिए महत्वपूर्ण हैं। मिश्रित शिक्षण समूह के छात्र अपने स्वयं के सीखने में अधिक सक्रिय रूप से शामिल थे, क्योंकि उनके पास विभिन्न प्रकार के मल्टीमीडिया संसाधनों और इंटरैक्टिव सिमुलेशन तक पहुँच थी जो कक्षा में किए गए हाथों से किए गए प्रयोगों के पूरक थे। यह गैरीसन और वॉन (2008) की टिप्पणियों के अनुरूप है, जिन्होंने नोट किया कि मिश्रित शिक्षण चिंतनशील और सहयोगी शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देता है जो कौशल विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इसके अलावा, छात्र सर्वेक्षण डेटा ने मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोण के साथ उच्च स्तर की सहभागिता और संतुष्टि का संकेत दिया। प्रायोगिक समूह के अधिकांश छात्रों ने अपने सीखने के अनुभव को सकारात्मक बताया और ऑनलाइन संसाधनों को बहुत उपयोगी बताया। इसके विपरीत, नियंत्रण समूह के छात्रों ने कम सहभागिता के स्तर की सूचना दी और अपने सीखने के अनुभव को तटस्थ या नकारात्मक बताया। ये गुणात्मक अंतर्दृष्टि मात्रात्मक परिणामों का समर्थन करती हैं, एक उत्तेजक और सहायक शैक्षिक वातावरण बनाने में मिश्रित शिक्षण के अतिरिक्त मूल्य पर जोर देती हैं (हॉर्न और स्टेकर, 2014)।

संक्षेप में, यह अध्ययन उन बढ़ते प्रमाणों में से एक है जो सुझाव देते हैं कि मिश्रित शिक्षा प्रारम्भिक विज्ञान शिक्षा के संदर्भ में पारंपरिक शिक्षा के लिए एक बेहतर विकल्प प्रदान करती है। छात्रों की अधिक सहभागिता, स्वायत्तता और बातचीत को सुविधाजनक बनाकर, मिश्रित शिक्षा छात्रों की वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझने और लागू करने की क्षमता में उल्लेखनीय रूप से सुधार करती है, जिससे उनके विज्ञान प्रक्रिया कौशल में वृद्धि होती है (एलन और सीमैन, 2013; बोस्टर एट अल., 2007)। इन निष्कर्षों का विज्ञान शिक्षा को आधुनिक बनाने और छात्रों को 21वीं सदी के लिए आवश्यक कौशल से परिपूर्ण करने की कोशिश कर रहे शिक्षकों और नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं।

5. चर्चा

5.1 प्रारंभिक शिक्षा के लिए निहितार्थ

इस अध्ययन के परिणाम प्रारंभिक विज्ञान शिक्षा में मिश्रित शिक्षा की परिवर्तनकारी क्षमता को रेखांकित करते हैं। पारंपरिक निर्देश के साथ डिजिटल उपकरणों का एकीकरण एक गतिशील, संवादात्मक और छात्र-केंद्रित शिक्षण

वातावरण प्रदान करता है जो विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास का समर्थन करता है। मिश्रित शिक्षण छात्रों को मल्टीमीडिया संसाधनों और संवादात्मक सिमुलेशन के माध्यम से जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं पर फिर से विचार करने में सक्षम बनाता है, जो उनकी समझ को सुदृढ़ करता है और स्व-गति सीखने को प्रोत्साहित करता है (मीन्स एट अल., 2013)। यह प्राथमिक शिक्षा में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ विभिन्न संज्ञानात्मक क्षमताओं को विविध शिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभेदित निर्देश की आवश्यकता होती है।

शिक्षकों के लिए, मिश्रित शिक्षण ऐसे पाठों को डिज़ाइन करने की लचीलापन प्रदान करता है जो डिजिटल और आमने-सामने के निर्देश दोनों की शक्तियों को मिलाते हैं। शिक्षक सैद्धांतिक अवधारणाओं को पेश करने और प्रयोगों, सहयोगी चर्चाओं और प्रारंभिक आकलन के लिए कक्षा के समय का उपयोग करने के लिए ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण न केवल छात्र जुड़ाव को बढ़ाता है बल्कि शिक्षकों को प्रगति की अधिक प्रभावी ढंग से निगरानी करने और व्यक्तिगत सहायता प्रदान करने की अनुमति देता है (गैरीसन और वॉन, 2008)। इसके अतिरिक्त, शिक्षकों को संसाधनों और अनुदेशात्मक उपकरणों की व्यापक श्रृंखला तक पहुँच से लाभ होता है जो पाठ योजना और अनुदेशात्मक वितरण में सुधार कर सकते हैं। मिश्रित शिक्षण सक्रिय शिक्षण की संस्कृति को भी बढ़ावा देता है जहाँ छात्र अब ज्ञान के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं रह जाते हैं बल्कि अपनी शैक्षिक यात्रा में भागीदार बन जाते हैं। पूछताछ-आधारित शिक्षण और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देकर, यह 21वीं सदी की ज्ञान अर्थव्यवस्था में सफलता के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण कौशल बनाने में मदद करता है (हॉर्न और स्टेकर, 2014)। इस प्रकार, प्राथमिक विज्ञान कक्षाओं में मिश्रित शिक्षण का एकीकरण केवल एक संवर्द्धन नहीं है - यह शैक्षिक प्रथाओं को आधुनिक बनाने और सीखने के परिणामों में सुधार करने की दिशा में एक आवश्यक कदम है।

5.2 अनुशंसाएँ

इस अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर, शिक्षकों और पाठ्यचर्या विकासकर्ताओं के लिए कई अनुशंसाएँ की जा सकती हैं। सबसे पहले, शिक्षकों को एक मॉड्यूलर मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोण अपनाने पर विचार करना चाहिए, जहाँ विशिष्ट विज्ञान विषयों को आकर्षक डिजिटल सामग्री - जैसे सिमुलेशन, एनिमेशन और आभासी प्रयोगों - के माध्यम से पेश किया जाता है, उसके बाद हाथों-हाथ गतिविधियों के माध्यम से कक्षा में आवेदन किया जाता है। यह मॉडल न केवल सामग्री ज्ञान बल्कि उच्च-क्रम की सोच और प्रक्रिया कौशल (लिम, 2013) को बेहतर बनाने में भी प्रभावी पाया गया है।

दूसरा, प्रभावी मिश्रित शिक्षण कार्यान्वयन में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए व्यावसायिक विकास कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। कई शिक्षकों में अपनी कक्षाओं में प्रभावी रूप से प्रौद्योगिकी को शामिल करने के लिए आवश्यक कौशल या आत्मविश्वास की कमी होती है (एलन और सीमैन, 2013)। प्रशिक्षण में शिक्षण प्रबंधन प्रणालियों, डिजिटल मूल्यांकन उपकरणों और आभासी वातावरण में छात्र जुड़ाव बनाए रखने की रणनीतियों से परिचित होना शामिल होना चाहिए।

तीसरा, स्कूलों को प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच सुनिश्चित करनी चाहिए। मिश्रित शिक्षा के सफल होने के लिए, छात्रों के पास स्कूल और घर दोनों जगह डिजिटल डिवाइस और इंटरनेट कनेक्टिविटी तक विश्वसनीय पहुँच होनी चाहिए। यह विशेष रूप से कम संसाधन वाले या ग्रामीण क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, जहाँ प्रौद्योगिकी अंतराल मिश्रित दृष्टिकोणों के

कार्यान्वयन में बाधा बन सकते हैं (मॉरिसन, 2017)। आगे के शोध के संदर्भ में, भविष्य के अध्ययनों को विज्ञान और अन्य विषय क्षेत्रों में छात्र उपलब्धि पर मिश्रित शिक्षा के दीर्घकालिक प्रभाव की जांच करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, शोध यह पता लगा सकता है कि मिश्रित शिक्षा के कौन से घटक - जैसे कि गेमिफिकेशन, फ़्लिप्ड क्लासरूम मॉडल या रीयल-टाइम फ़ीडबैक - विज्ञान प्रक्रिया कौशल विकसित करने में सबसे प्रभावी हैं। बड़ी, अधिक विविध आबादी और अनुदैर्ध्य डिज़ाइनों से जुड़े अध्ययन निष्कर्षों को मान्य करने और विभिन्न शैक्षिक संदर्भों में उनकी प्रयोज्यता का विस्तार करने में मदद करेंगे। निष्कर्ष में, प्राथमिक विज्ञान कक्षाओं में मिश्रित शिक्षा को अपनाने से छात्र सीखने और जुड़ाव को बढ़ाने के लिए पर्याप्त लाभ मिलते हैं। हालाँकि, इसकी सफलता विचारशील कार्यान्वयन, शिक्षक की तैयारी और प्रणालीगत समर्थन पर निर्भर करती है। चल रहे अनुसंधान और नीति समर्थन के साथ, मिश्रित शिक्षा 21वीं सदी में नवीन और प्रभावी विज्ञान शिक्षा की आधारशिला बन सकती है (गैरीसन और कनुका, 2004; के और नैक, 2008)।

6.1 मुख्य निष्कर्षों का सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य प्राथमिक छात्रों के बीच विज्ञान प्रक्रिया कौशल के विकास पर मिश्रित शिक्षा के प्रभाव की जांच करना था। निष्कर्षों से पता चलता है कि मिश्रित शिक्षण वातावरण में भाग लेने वाले छात्रों ने पारंपरिक शिक्षण प्राविधि की तुलना में अपने विज्ञान प्रक्रिया कौशल में काफी अधिक सुधार दिखाया। विशेष रूप से, प्रायोगिक समूह ने मूल्यांकन के बाद के स्कोर में उल्लेखनीय वृद्धि प्रदर्शित की, जो दर्शाता है कि मिश्रित दृष्टिकोण अवलोकन, वर्गीकरण, माप और भविष्यवाणी जैसे कौशल को बढ़ाने में प्रभावी था। मिश्रित शिक्षण समूह के छात्रों ने अपने सीखने के अनुभव के साथ जुड़ाव और संतुष्टि के उच्च स्तर की भी सूचना दी, जो वैज्ञानिक अवधारणाओं की गहरी समझ और अनुप्रयोग का समर्थन करने के लिए प्रौद्योगिकी-संवर्धित निर्देश की क्षमता को रेखांकित करता है (मीन्स एट अल।, 2013; गैरीसन और वॉन, 2008)।

6.2 अध्ययन का योगदान

यह शोध प्राथमिक विज्ञान शिक्षा में मिश्रित शिक्षण के उपयोग का समर्थन करने वाले साहित्य के बढ़ते क्षेत्र में योगदान देता है। यह अनुभवजन्य साक्ष्य प्रदान करता है कि मिश्रित शिक्षण युवा शिक्षार्थियों में पूछताछ-आधारित शिक्षण और वैज्ञानिक तर्क को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली अनुदेशात्मक रणनीति के रूप में काम कर सकता है। यह प्रदर्शित करके कि मिश्रित वातावरण विज्ञान प्रक्रिया कौशल में मापनीय सुधार लाता है, अध्ययन सार्थक शिक्षण अनुभवों को बढ़ावा देने के साधन के रूप में व्यावहारिक कक्षा गतिविधियों के साथ डिजिटल उपकरणों के एकीकरण का समर्थन करता है (के और नैक, 2008)। इसके अलावा, अध्ययन शिक्षकों, पाठ्यक्रम डिजाइनरों और नीति निर्माताओं के लिए व्यावहारिक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि कैसे विज्ञान में अनुदेशात्मक परिणामों और छात्र जुड़ाव को बढ़ाने के लिए मिश्रित शिक्षण की संरचना और कार्यान्वयन किया जाए।

6.3 सीमाएँ और भविष्य के शोध

अपने आशाजनक निष्कर्षों के बावजूद, अध्ययन में कई सीमाएँ हैं। सबसे पहले, नमूना आकार अपेक्षाकृत छोटा और भौगोलिक रूप से सीमित था, जो परिणामों की सामान्यता को प्रभावित कर सकता है। निष्कर्षों को मान्य करने के लिए

भविष्य के अध्ययनों में विभिन्न क्षेत्रों और स्कूल प्रकारों में बड़ी और अधिक विविध आबादी शामिल होनी चाहिए। दूसरा, हस्तक्षेप की अवधि अपेक्षाकृत कम थी। विज्ञान प्रक्रिया कौशल और समग्र शैक्षणिक उपलब्धि पर मिश्रित शिक्षण के दीर्घकालिक प्रभाव का आकलन करने के लिए दीर्घकालिक अध्ययनों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन छात्रों की धारणाओं के लिए स्वयं-रिपोर्ट किए गए डेटा पर निर्भर था, जो व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से प्रभावित हो सकते हैं। भविष्य के शोध में निष्कर्षों को त्रिकोणीय बनाने के लिए अवलोकन संबंधी डेटा और शिक्षक प्रतिक्रिया को शामिल किया जाना चाहिए। आगे की खोज के लिए एक और क्षेत्र मिश्रित शिक्षा के विशिष्ट घटक हैं जो सबसे अधिक प्रभावी हैं - जैसे सिमुलेशन, गेमिफिकेशन, या फ़्लिप्ड क्लासरूम रणनीतियाँ - ताकि शिक्षक अधिकतम प्रभाव के लिए हस्तक्षेप कर सकें (लिम, 2013; हॉर्न और स्टेकर, 2014)। निष्कर्ष में, यह अध्ययन प्राथमिक छात्रों के बीच महत्वपूर्ण विज्ञान कौशल विकसित करने में मिश्रित शिक्षा की प्रभावशीलता पर प्रकाश डालता है और प्रौद्योगिकी एकीकरण के माध्यम से विज्ञान शिक्षा में निरंतर नवाचार के लिए आधार तैयार करता है। वर्तमान सीमाओं को संबोधित करके और शोध प्रयासों का विस्तार करके, शिक्षक अधिक न्यायसंगत, आकर्षक और कौशल-उन्मुख विज्ञान कक्षाओं का निर्माण करने के लिए मिश्रित शिक्षण प्रथाओं को परिष्कृत कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. Allen, I. E., & Seaman, J. (2013). *Grade Change: Tracking Online Education in the United States*. Babson Survey Research Group.
2. American Association for the Advancement of Science. (1993). *Benchmarks for Science Literacy: Project 2061*. Oxford University Press.
3. Bloom, B. S. (1956). *Taxonomy of Educational Objectives: The Classification of Educational Goals*. Handbook I: Cognitive Domain. David McKay.
4. Boster, F. J., Meyer, J. M., Roberto, A. J., Lindsey, L. L., Smith, R. M., & Inge, C. C. (2007). The impact of video streaming on mathematics and science achievement. *Communication Education*, 56(2), 134–144.
5. Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in psychology. *Qualitative Research in Psychology*, 3(2), 77–101.
6. Cavas, B. (2011). Factors affecting the motivation of Turkish primary students for science learning. *Science Education International*, 22(1), 31–42.
7. Creswell, J. W. (2014). *Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches* (4th ed.). Sage Publications.
8. Dori, Y. J., & Belcher, J. (2005). How does technology-enabled active learning affect undergraduate students' understanding of electromagnetism concepts? *Journal of the Learning Sciences*, 14(2), 243–279.

9. Field, A. (2013). *Discovering Statistics Using IBM SPSS Statistics* (4th ed.). Sage.
10. Garrison, D. R., & Kanuka, H. (2004). Blended learning: Uncovering its transformative potential in higher education. *The Internet and Higher Education*, 7(2), 95–105.
11. Garrison, D. R., & Vaughan, N. D. (2008). *Blended Learning in Higher Education: Framework, Principles, and Guidelines*. John Wiley & Sons.
12. Horn, M. B., & Staker, H. (2014). *Blended: Using Disruptive Innovation to Improve Schools*. Jossey-Bass.
13. Johnson, L., Adams Becker, S., Estrada, V., & Freeman, A. (2014). *The NMC Horizon Report: 2014 K-12 Edition*. The New Media Consortium.
14. Kahle, J. B., & Sherin, M. G. (2004). Science process skills: Historical perspectives and modern approaches. In J. Novak (Ed.), *The Role of Science Process Skills in Science Education* (pp. 105–120). Springer.
15. Kay, R. H., & Knaack, L. (2008). Evaluating learning, quality, and engagement in learning objects: The Learning Object Evaluation Scale for Students (LOES-S). *Educational Technology Research and Development*, 56(5-6), 575–584.
16. Lim, C. P. (2013). Blended learning: Theoretical perspectives and practical implementations. *International Journal of Instructional Media*, 40(3), 233–248.
17. Means, B., Toyama, Y., Murphy, R., Bakia, M., & Jones, K. (2013). *Evaluation of Evidence-Based Practices in Online Learning: A Meta-Analysis and Review of Online Learning Studies*. U.S. Department of Education.
18. Morrison, D. (2017). Barriers to technology integration in rural schools. *International Journal of Education and Development using ICT*, 13(3), 102–115.
19. Patton, M. Q. (2002). *Qualitative Research and Evaluation Methods* (3rd ed.). Sage.
20. Tobias, S., & Duffy, T. M. (2009). *Constructivist Instruction: Success or Failure?* Routledge.

9

सामाजिक लोकतंत्र के साधन के रूप में भारतीय संविधान

डॉ बालूदान बारहठ
सहायक आचार्य, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

''एक चीज जो हमें करनी चाहिए, वह है कि मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र पर संतोष न करना। हमे हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक उसे सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का अर्थ क्या है? वह एक ऐसी जीवन पद्धति है जो स्वतत्रंता समानता और बधुंत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार करती है।''

-डॉ. बी.आर. अंबेडकर

संविधान कोई जड़ वस्तु नहीं होकर किसी राष्ट्र की आंकाक्षाओ का दर्पण होता है। विशेषकर भारत जैसे विशाल एवं विविधता वाले राष्ट्र में संविधान की भूमिका केवल राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं अपितु नागरिकों के सामाजिक व आर्थिक रूपातंरण की भी थी। भारत के संविधान निर्माता इस बात से सचेत थे कि नागरिको की सामाजिक-आर्थिक आंकाक्षाओ की पूति ही संविधान के संरक्षण की सबसे प्रभावी गारण्टी है। दार्शनिक रूप से उदार चिंतन के होते हुए भी विशेष काल परिस्थिति में भारतीय समाज अनेक स्तर पर स्तरीकृत हो गया था। चूंकि कोई भी लोकतांत्रिक व्यवस्था शून्य में अपना अस्तित्व नहीं रख सकती। लोकतंत्रकार राजनीतिक, सामाजिक, संस्कृति से घनिष्ठ संबंध होता है। जब तक सामाजिक व्यवस्था लोकतांत्रिक नहीं होगी तब तक सत्ता अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था लोकतांत्रिक नहीं हो सकती थी। अतः भारतीय संविधान में प्राथामिक एवं महत्वपूर्ण रूप से समाज के इस स्तरीकरण को सम्बोधित किया तथा सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करने का गंभीर प्रयास किया। लोकतंत्र की सफलता व स्थायित्व भी इस बात पर निर्भर था कि संविधान किस तरह से भारतीय समाज को लोकतांत्रिक करने में सफल होता है। भारतीय संविधान को प्रतिस्थापित हुए 75 वर्ष से अधिक का समय हो चुका है, ऐसे में यह प्रासंगिक होगा कि सामाजिक लोकतंत्र के एक साधन के रूप में संविधान की यात्रा का मूल्यांकन किया जाये।

वास्तव में संविधान एक ऐसा जीवंत दस्तावेज होता है जो राष्ट्रीय आकांक्षाओ को प्रत्यक्षत प्रकट करता है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में जहां 800 वर्षो से अधिक की पराधीनता रही हो, जिसका दुनिया के सबसे भीषणतम तरीके से शोषण हुआ हो, जिसे औपनिवेशिक सत्ता ने स्वशासन के योग्य ही नहीं समझा हो, वहां पर लोकतंत्र की स्थापना विश्व के लिए आश्चर्य तो था ही सेलिंग हेरिसन जैसे विद्वानों के लिए यह सुनिश्चित असफलता का उदाहरण भी बनने वाला था। भारतीय लोकतंत्र के प्रति आशंका की सबसे बडी वजह थी यहां की सामाजिक और आर्थिक असमानता। लेकिन 75 वर्षों की संविधान की यात्रा ने यह स्पष्ट किया कि इसने न केवल राजनीतिक लोकतंत्र अपितु सामाजिक लोकतंत्र को भी स्थापित करने का कार्य किया है। संविधान की प्रस्तावना जिसे इसका सार या दार्शनिक आधार भी कहते है में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय की स्थापना को संविधान के उद्देश्य के रूप में शामिल किया गया।

साथ ही अवसर और प्रतिष्ठा की समता बढ़ाने के प्रयास को भी प्रस्तावना का अंग बनाया गया। ऐसे देश में जहां सामाजिक स्तर पर भेदभाव, ऊँच नीच व अस्पृश्यता व्यापक रही हो, उस देश के संविधान की प्रस्तावना के यह शब्द एक सामाजिक क्रांति के समान थे। वास्तव में फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता समानता व बंधुत्व के नारे के उपरांत भारतीय संविधान की यह घोषणा विश्व के सभी वंचित समुदाय के लिए प्रकाश स्तंभ थी।

भारतीय संविधान के भाग-3 जिसमें मौलिक अधिकारो का समावेश है तथा भाग-4 जिसमें नीति-निदेशक तत्व समाहित है, ने एक तरह से प्रस्तावना में लिए गए संकल्प की पूर्ति के साधन के रूप में कार्य किया। मौलिक अधिकारों के तहत केवल ''विधि के समक्ष समता'' को ही शामिल नहीं कर ''विधियो के समान सरंक्षण'' को भी शामिल किया गया ताकि राज्य सकारात्मक भेदभाव द्वारा समाज के वंचित वर्ग के कल्याण के कार्य कर सके। भारतीय समाज में जाति, धर्म वंश, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर नागरिकों के मध्य वर्षो तक विभेंद रहे। इस कारण से भारतीय समाज सामाजिक रूप से स्तरीकृत हो गया था। यह स्थिति न केवल सामाजिक समरसता के लिए अपितु राष्ट्रीय एकात्मकता के लिए भी गंभीर चुनौती थी। समानता के अधिकार के तहत संविधान ने इन सभी कृत्रिम आधारो पर किए जाने वाले भेदभावो का अंत कर दिया है। भारत में लंबे समय तक उच्च पद कुछ वर्गो तक ही सीमित रहे। वास्तविक लोकतंत्र के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं थी अतः समानता के अधिकार के तहत अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन में अवसर की समानता प्रदान कर सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना को सशक्त किया गया। अवसर की यह समानता केवल औपचारिक ही नहीं रहकर धरातल पर इसका क्रियान्वयन भी हो, इसके ठोस प्रावधान भी संविधान में किए गए है। अनुच्छेद 15 व अनुच्छेद 16 के माध्यम से राजकीय सेवाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के साथ महिलाओं व पिछड़े वर्गो के लिए स्थानो के आरक्षण की व्यवस्था की गई। वास्तव में आरक्षण के यह प्रावधान सामाजिक न्याय व सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में विश्व में सबसे बड़े प्रयोग थे जिसके सार्थक परिणाम आज परिलक्षित है। यही नहीं समाज के स्वरूप में सामंती अवशेषो की समाप्ति व समरस समाज की स्थापना के उद्देश्य की पूर्ति संविधान का अनुच्छेद 18 सभी तरह की उपाधियों का अंत करके करता है। इसी तरह अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित कर छुआछुत जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त किया गया।

इसी भांति बच्चो व महिलाओं के लिए स्वतंत्रता के अधिकार के तहत अनुच्छेद 23 व अनुच्छेद 24 में विशेष प्रावधान किए गए। भारतीय लोकतंत्र बहुमत पर आधारित तो है लेकिन बहुसंख्यकवाद पर नहीं। भारत न धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ और न ही भाषायी अल्पसंख्यको के साथ विषमतापूर्वक व्यवहार को स्वीकार करता है। इसलिए स्वतंत्रता के अधिकार के तहत ही अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 30 तक भाषायी व धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए अनेक प्रावधन किए गए।

मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त संविधान नीति निदेशक तत्वो के माध्यम से भी लोक कल्याण व सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र को स्थापित करने का प्रयास करता है। इस भाग के तहत विशेषतः समाज के कमजोर वर्गो-महिलाओं, असहाया, वृद्धा, बालको, श्रमिको आदि की उन्नति के बारे में राज्य के कर्तव्यों का समावेश है। साथ ही राज्य का यह कर्तव्य भी निर्धारित किया है कि वह बीमारी, वृद्धावस्था अथवा असहाय स्थिति में सहायता करेगा। राज्य से यह भी अपेक्षित है कि वह व्यसन मुक्ति तथा नागरिको के जीवन स्तर को उच्च करने हेतु आवश्यक कदम भी

उठायेगा। देखा जाये तो नीति निदेशक तत्वो की पूरी अवधारणा ही सामाजिक आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना हेतु ही सम्मिलित की गई थी। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी अनेक अवसरो पर व्यक्तिगत अधिकारों के ऊपर निदेशक तत्वो को वरीयता प्रदान कर सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा को पुष्ट किया है।

आधुनिक लोकतांत्रिक देशो में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता लंबे संघर्ष के पश्चात् ही संभव हो पायी थी। लेकिन इस मामले में भारतीय संविधान ने आरंभ से ही बिना किसी भेदभाव के पूर्णतया लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रक्रिया को स्वीकार किया। ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन सीमित मतदान के प्रावधान थे जिसमें शिक्षा, आय, भूमि, सपंति आदि के माध्यम से मत का अधिकार प्राप्त होता था। भारतीय संविधान ने इस सभी वर्जनाओ को तोड़ते हुए न केवल सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार को स्वीकार किया अपितु ''एक व्यक्ति एक मत'' के सिद्धान्त को स्वीकार कर राजनीतिक समानता को भी स्थापित किया। महिला मताधिकार के साथ ही साथ उन्हे निर्वाचित होने का अधिकार प्रदान करना भी भारतीय लोकतंत्र की ऐतिहासिक उपलब्धि थी। 73वे व 74वे संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय स्वशासन में आरक्षण के प्रावधान लागू होने के उपरांत आज देश में 40 लाख से अधिक महिलाएं निर्वाचित जनप्रतिनिधि है। इस तरह संसाधनो व भूमिकाओं पर सभी नागरिकों की समान पहूंच स्थापित करने में भारतीय संविधान सफल रहा है। आधुनिक लोकतंत्र की बुनियादी आवश्यकताओ स्वतंत्रता, समानता व बधुत्व से कही आगे भारतीय संविधान सह अस्तित्व व सर्वसमावेशिता पर बल देकर सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना कर रहा है।

संविधान सभा में अंतिम दिन बोलते हुए डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने कहा था कि ''26 जनवरी 1950 से हम विरोधाभासो भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे है। राजनीतिक जीवन में तो हमारे पास समानता होगी लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी।'' आज देखा जा सकता है कि संविधान जितना राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करता है उससे कही अधिक सामाजिक लोकतंत्र को समर्पित है। संविधान के माध्यम से हमने प्रतिनिधियात्मक व्यवस्था के साथ-साथ लोकसेवा का लोकतंत्रीकरण कर अंबेडकर के विरोधाभास को भी समाप्त कर लिया है।

सारांश

इस तरह संविधान के 75 वर्ष की यात्रा पर प्रकाश डाले तो हम पाते है कि इतनी क्षेत्रीय, सामाजिक, भाषाई और धार्मिक विविधता के कारण तनाव होना स्वाभाविक है। कभी-कभी यह तनाव संघर्ष का रूप भी ले लेते है लेकिन एक सुदृढ़ संवैधानिक ढांचे के कारण जिसमें समयबद्ध व निष्पक्ष निर्वाचन, संविधान के प्रति प्रतिबद्ध नौकरशाही, न्यायिक समीक्षा की व्यापक शक्तियों सहित स्वतंत्र न्यायपालिका तथा राज्य की सुरक्षा के साथ नागरिको की स्वतंत्रता की गारण्टी के कारण यह संघर्ष स्थानीय व क्षणभंगुर ही होते है। भारत की विकास यात्रा ने उन लोगों को गलत सिद्ध किया जिन्होने भविष्यवाणी की थी कि भारत आर्थिक विकास के निम्न स्तर, असमानता के उच्च स्तर और सामाजिक विविधता के कारण एक नहीं रह पाएगा। लेकिन भारत ने ''कही एक जगह अन्याय हर जगह न्याय के लिए खतरा है'' की भावना के साथ सर्वसमावेशी मॉडल से सफलता प्राप्त की है। इस सफल यात्रा के आरंभ में एक समाजशास्त्री ने भारत को ''आधुनिक दुनिया का एक धर्मनिरपेक्ष चमत्कार और अन्य विकासशील देशों के लिए मॉडल कहा था।'' वास्तव में भारत आज भी उन देशो के लिए आशा की किरण है जो बुनियादी मानवीय मूल्यों के साथ आजादी को संजोए रखना चाहते है।

संदर्भ सूची

1 सिंह, उदयमान (2023) भारतीय समाज एवं सामाजिक न्याय, दिल्ली- यूनिक पब्लिशर्स इंडिया लि.

2 आस्टिन, ग्रेनविल (2019) भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

3 दीपक, जे.साईं.(2021) इंडिया अर्थात भारत, नई दिल्ली, ब्लूनसवरी प्रकाशन।

4 पाण्डे, जयनारायण (1982), भारत का संविधान, इलाहाबाद, सेंट्रल लॉ एजेंसी।

5 भारतीय संविधान, (2019) नई दिल्ली, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार।

6 Nariman Fail S. (2023), You Must Know your Constitution –, New Delhi, Hay House, Publisher, India.

7 Chandra, Naveen Kumar (2015) Ambedkar on Law Constitution and Social Justice, Delhi, Oak Bridge Publication

8 Raju, C. B. (2022) Social Justice and The Constitution of India, New Delhi, Serials Publications.

9 Sathe, S. P. (2023) Liberty, Equality and Justice, eBook, EA/1191, AD/629.

10 Chandra, Naveen Kumar (2022) Social Justice, New Delhi, Oak Bridge Publication.

10

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना: कक्षा शिक्षण और व्यावसायिक कौशल के मध्य अंतराल को पूर्ण करती एक अभिनव योजना

डॉ. जितेंद्र सिंह गोयल
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
जयदेव सिंह
शिक्षा विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में शिक्षा और उद्योग के बीच का अंतर एक महत्वपूर्ण समस्या है, जो युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों में बाधक बनता है। शैक्षिक संस्थान मुख्य रूप से छात्रों को सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करते हैं, जबकि कार्यस्थल में सफल होने के लिए व्यावसायिक कौशल, तकनीकी दक्षता और व्यावहारिक अनुभव की आवश्यकता होती है। यह अंतर अकादमिक शिक्षा और वास्तविक कार्य अनुभव के बीच एक खाई उत्पन्न करता है, जिससे स्नातकों को रोजगार प्राप्त करने में मुश्किल होती है। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में एक सशक्त औद्योगिक दृष्टिकोण और पेशेवर कौशल का अभाव होता है, जो कार्यस्थल की वास्तविकताओं को पूरी तरह से समझने के लिए आवश्यक है। परिणामस्वरूप, कई स्नातक उचित कौशल की कमी के कारण उचित रोजगार प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते। इस खाई को भरने के लिए प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना (PMIY) एक क्रांतिकारी कदम साबित हो सकती है। यह योजना विशेष रूप से युवाओं को सरकारी परियोजनाओं और कार्यक्रमों में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करती है, जिससे वे कार्यस्थल के लिए आवश्यक कौशल और दक्षताओं से लैस हो सकते हैं। यह शोध इस बात का विश्लेषण करेगा कि क्या प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना वास्तव में अकादमिक शिक्षा और उद्योगों के बीच के अंतर को भरने में सहायक होगी।

इतिहासिक पृष्ठभूमि: भारतीय ज्ञान परंपराओं के संदर्भ में;

भारत का शैक्षिक इतिहास अपनी प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में निहित है। नालंदा, तक्षशिला और वैदिक शिक्षा प्रणाली ने एक ऐसे ज्ञान के स्वरूप का निर्माण किया जो केवल सैद्धांतिक शिक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि व्यावहारिक कौशल और जीवन मूल्यों का समन्वय भी करता था। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना इसी ऐतिहासिक परंपरा को पुनर्जीवित करने का एक आधुनिक प्रयास है, जहां शिक्षा को व्यावसायिक कौशल और वास्तविक जीवन की आवश्यकताओं से जोड़ा जा रहा है। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में दक्षता विकसित करना था। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थियों को विविध कौशल (जैसे कृषि, शिल्पकला, युद्ध-कला, ज्योतिष और चिकित्सा) सिखाए जाते थे।विद्यार्थी केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रहते थे, बल्कि अपने गुरु के सान्निध्य में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करते थे।

तक्षशिला (600 ईसा पूर्व) विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय माना जाता है, जहां देश-विदेश से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। यहाँ विधि, चिकित्सा, सैन्य विज्ञान, कला और वास्तुकला में प्रशिक्षण दिया जाता था। विद्यार्थियों को उनके चुने हुए क्षेत्र में गहन व्यावसायिक कौशल विकसित करने पर ध्यान दिया जाता था। विद्यार्थी अध्ययन के साथ-साथ अपने कौशल को वास्तविक जीवन के परिप्रेक्ष्य में लागू करना सीखते थे।

नालंदा (5वीं शताब्दी) भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। यह संस्थान न केवल शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था, बल्कि यहाँ कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण पर भी जोर दिया जाता था। छात्रों को विज्ञान, गणित, चिकित्सा, और प्रशासन में प्रशिक्षित किया जाता था। नालंदा ने अंतर्राष्ट्रीय छात्रों को आकर्षित किया और ज्ञान तथा कौशल के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना और प्राचीन परंपराओं का पुनर्जागरण:

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना इन ऐतिहासिक परंपराओं का आधुनिक संस्करण है।

- यह योजना शिक्षा और कौशल विकास के बीच की खाई को पाटने के लिए तक्षशिला और नालंदा जैसे प्राचीन केंद्रों के दृष्टिकोण को अपनाती है।
- व्यावसायिक कौशल पर ध्यान केंद्रित करके, यह योजना आज के विद्यार्थियों को रोजगार-उन्मुख शिक्षा प्रदान करती है।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली की "अनुभव आधारित शिक्षा" की अवधारणा को लागू करते हुए, यह योजना छात्रों को उनके चुने हुए क्षेत्रों में वास्तविक अनुभव प्राप्त करने का अवसर देती है।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का महत्व:-

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना युवाओं को सरकारी संस्थाओं के साथ जुड़ने का अवसर प्रदान करती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य है छात्रों को व्यावहारिक अनुभव और कौशल विकसित करने का मौका देना, जिससे वे अपने शैक्षिक ज्ञान को वास्तविक दुनिया के परिप्रेक्ष्य में लागू कर सकें। यह योजना उन छात्रों के लिए एक बेहतरीन अवसर प्रदान करती है, जो उद्योग में नौकरी पाने के लिए सक्षम बनने की चाहत रखते हैं, लेकिन जो केवल सैद्धांतिक शिक्षा पर निर्भर होते हैं। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना के अंतर्गत, युवाओं को सरकारी योजनाओं और परियोजनाओं में इंटर्नशिप करने का अवसर मिलता है, जो उन्हें नीति निर्माण, प्रशासनिक कार्यों, और अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में समझने का मौका देता है।

यह योजना छात्रों को न केवल सरकारी कामकाजी माहौल में व्यावहारिक अनुभव प्रदान करती है, बल्कि उन्हें नेतृत्व, टीम वर्क, और समस्या सुलझाने के कौशल भी सिखाती है। इन कौशलों का विकास करने से वे कार्यस्थल पर सफलता प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके अलावा, प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना युवाओं को रोजगार के अवसरों से जोड़ने में भी मदद करती है, क्योंकि यह उन्हें अपने कौशल को प्रदर्शित करने और नेटवर्क बनाने का मौका देती है।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का उद्देश्य:-

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का उद्देश्य इस अंतर को पाटने का है। इसके तहत, छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का मौका मिलता है, जो उन्हें उद्योगों के लिए तैयार करता है। इस योजना के माध्यम से छात्रों को न केवल अपने शैक्षिक ज्ञान को लागू करने का मौका मिलता है, बल्कि उन्हें औद्योगिक कार्यों, सरकारी योजनाओं, और परियोजनाओं में भागीदारी करने का भी अवसर मिलता है। इसके माध्यम से, वे नेतृत्व, टीमवर्क, समस्या समाधान, और अन्य महत्वपूर्ण कौशल विकसित कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, यह योजना युवाओं को विभिन्न सरकारी विभागों और मंत्रालयों में कार्य करने का अवसर प्रदान करती है, जिससे वे देश की योजनाओं और नीतियों को समझने में सक्षम होते हैं। यह उन्हें बेहतर नीति निर्माता और सामाजिक कार्यकर्ता बनने के लिए तैयार करता है।

उद्देश्य	विवरण
अकादमिक और औद्योगिक अंतर को पाटना	छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्रदान करना और उन्हें उद्योगों के लिए तैयार करना।
शैक्षिक ज्ञान का उपयोग	शैक्षिक ज्ञान को व्यावहारिक कार्यों में लागू करने का अवसर। औद्योगिक कार्यों और सरकारी योजनाओं में भागीदारी।
महत्वपूर्ण कौशल का विकास	नेतृत्व, टीमवर्क, समस्या समाधान और अन्य महत्वपूर्ण कौशल विकसित करना।
सरकारी विभागों और मंत्रालयों में अवसर	युवाओं को सरकारी विभागों और मंत्रालयों में कार्य करने का अवसर और देश की योजनाओं को समझने में मदद।
बेहतर नीति निर्माता और सामाजिक कार्यकर्ता बनाना	युवाओं को नीति निर्माण और सामाजिक योगदान के लिए तैयार करना।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना के लाभ:-

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना छात्रों को रोजगार योग्य कौशल, जैसे डेटा विश्लेषण, रिपोर्ट लेखन और प्रोजेक्ट प्रबंधन, सिखाकर उन्हें कार्यस्थल पर प्रभावी ढंग से काम करने में सक्षम बनाती है। इसके अलावा, यह योजना छात्रों को सरकारी परियोजनाओं और योजनाओं में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर देती है, जो उन्हें उद्योगों में काम करने के लिए तैयार करता है। इंटर्नशिप के दौरान छात्रों को विभिन्न सरकारी विभागों में काम करने का मौका मिलता है, जिससे वे पेशेवर नेटवर्किंग कर सकते हैं, जो भविष्य में रोजगार के अवसरों को बढ़ा सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप, छात्रों की नौकरी पाने की संभावना भी बढ़ जाती है, क्योंकि वे अपने कौशल और अनुभव को वास्तविक कार्यस्थलों पर लागू कर सकते हैं।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना की चुनौतियाँ:-

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना की सफलता में कई महत्वपूर्ण पहलुओं का योगदान होता है। सबसे पहले, चयन प्रक्रिया की निष्पक्षता और पारदर्शिता आवश्यक है, क्योंकि यदि चयन में कोई पक्षपाती दृष्टिकोण या पारदर्शिता की कमी हो, तो योजना का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इसके अलावा, इंटर्नशिप के दौरान छात्रों को दिए गए कार्यों की गुणवत्ता और प्रासंगिकता भी महत्वपूर्ण है; अप्रासंगिक कार्यों से छात्र कोई मूल्यवान अनुभव प्राप्त नहीं कर पाते। संसाधन और वित्तीय बाधाएँ भी योजना के प्रभावी क्रियान्वयन में एक बड़ी चुनौती बन सकती हैं, क्योंकि यदि इंटर्नशिप कार्यक्रम के लिए आवश्यक संसाधन और बजट उपलब्ध नहीं हैं, तो योजना का क्रियान्वयन कठिन हो सकता है। अंत में, सरकारी कार्यालयों और विभागों में कार्यस्थल में बदलावों और नए विचारों को लागू करने में प्रतिरोध होता है, जो इंटर्नों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है और योजना की प्रभावशीलता पर असर डाल सकता है।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का भविष्य में प्रभाव:-

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना (PMIS) भारतीय युवाओं के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करती है, जो उन्हें सरकारी परियोजनाओं में व्यावहारिक अनुभव और आवश्यक कौशल प्राप्त करने का अवसर देती है। इस योजना का उद्देश्य शिक्षा और उद्योग के बीच की खाई को पाटना है, क्योंकि भारत में अकादमिक शिक्षा अक्सर सैद्धांतिक ज्ञान पर केंद्रित होती है, जबकि उद्योगों में व्यावसायिक कौशल, टीमवर्क, समय प्रबंधन और समस्याओं को सुलझाने की क्षमता की अधिक मांग होती है। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना इसी अंतर को दूर करने का प्रयास करती है, जिससे युवा कार्यबल को रोजगार के लिए बेहतर तरीके से तैयार किया जा सके। भारत में बेरोजगारी दर में पिछले कुछ वर्षों में गिरावट देखी गई है, जो 2022-23 में 3.2% थी। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना जैसे पहल भारत में युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस योजना का असर केवल रोजगार तक सीमित नहीं है; यह योजना युवाओं को आत्मनिर्भर बनने के अवसर भी देती है। जब उन्हें अपने कौशल का प्रदर्शन करने का मौका मिलता है, तो उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अपनी पेशेवर यात्रा को सफलता की दिशा में आगे बढ़ा सकते हैं।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह युवाओं को प्रशासन और नीति निर्माण में भागीदारी का अवसर प्रदान करती है। इससे न केवल उनकी क्षमता में वृद्धि होती है, बल्कि वे समाज के लिए अधिक प्रभावी निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। इसके अलावा, यह योजना युवाओं को सरकारी योजनाओं और सार्वजनिक प्रशासन में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर देती है, जिससे वे देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

NEP 2020 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "शिक्षा प्रणाली को रोजगार के लिए बेहतर अवसर सृजित करने के लिए कौशल-आधारित बनाएंगे" और "प्राकृतिक कौशल और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देने के लिए हर छात्र को व्यावसायिक और कार्यकुशल शिक्षा प्रदान की जाएगी।" प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना व्यावसायिक और कौशल विकास को प्राथमिकता देती है, जो छात्रों को सरकारी परियोजनाओं और योजनाओं में व्यावहारिक अनुभव देने के साथ-साथ उन्हें उद्योग-आधारित कौशल भी सिखाती है। इससे विद्यार्थी न केवल अपना ज्ञान बढ़ाते हैं, बल्कि कार्यस्थल के लिए भी तैयार होते हैं। इसके अलावा, NEP 2020 में शैक्षिक संस्थानों और उद्योगों के बीच सशक्त

साझेदारी स्थापित करने का भी विचार किया गया है। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना इस पहल को प्रोत्साहित करती है, क्योंकि इसमें विद्यार्थी सरकारी विभागों और संस्थाओं के साथ काम करते हैं, जो उन्हें सरकारी परियोजनाओं के संचालन, नीति निर्माण और प्रशासन की वास्तविक स्थिति से परिचित कराते हैं। इस प्रकार, प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना NEP 2020 की कौशल आधारित शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण के दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है, और भारतीय शिक्षा प्रणाली को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए आवश्यक कदम साबित हो सकती है।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना, भारत के 'विकसित भारत' और 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' के दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है। 2024-25 के केंद्रीय बजट में युवाओं के लिए रोजगार, कौशल और अन्य अवसरों को बढ़ावा देने के लिए 5 योजनाओं का ऐलान किया गया है, जिसका उद्देश्य 4.1 करोड़ युवाओं को लाभ पहुँचाना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकार रोजगार सृजन और कौशल विकास को प्राथमिकता दे रही है, और प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस योजना के तहत, युवाओं को रोजगार के लिए जरूरी कौशल सिखाने के साथ-साथ, उन्हें सरकारी योजनाओं और परियोजनाओं में काम करने का अवसर मिलता है, जो उन्हें अपने करियर के शुरुआती चरण में ही कामकाजी दुनिया के लिए तैयार करता है।

यदि प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना का कार्यान्वयन सही ढंग से किया जाए, तो यह योजना भारत के युवाओं के लिए एक निर्णायक परिवर्तन का कारण बन सकती है। इसके माध्यम से, न केवल युवाओं को रोजगार के बेहतर अवसर मिलेंगे, बल्कि वे सरकारी और निजी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी बढ़ा सकेंगे। इस प्रकार, प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना न केवल युवाओं के लिए, बल्कि भारत के समग्र विकास के लिए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण साबित हो सकती है।

प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना (PMIS) भारत में अकादमिक शिक्षा और उद्योग के बीच के अंतर को कम करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य युवाओं को व्यावसायिक कौशल, कार्य अनुभव और सरकारी योजनाओं में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान करना है, जिससे वे रोजगार योग्य बन सकें और राष्ट्रीय विकास में योगदान कर सकें। योजना के तहत, छात्रों को सरकारी परियोजनाओं में शामिल किया जाता है, जिससे वे न केवल शैक्षिक ज्ञान प्राप्त करते हैं, बल्कि उन्हें वास्तविक कार्यानुभव भी मिलता है। इससे उनकी तकनीकी और व्यावसायिक कौशल में वृद्धि होती है, जो उन्हें नौकरी के अवसरों के लिए तैयार करता है।

इसके अतिरिक्त, यह योजना रोजगार की संभावना बढ़ाती है क्योंकि इंटर्नशिप के दौरान प्राप्त अनुभव सरकारी क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। हालांकि, योजना के कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ हैं, जैसे चयन प्रक्रिया की पारदर्शिता की कमी और संसाधनों की बाधाएँ। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए सुधार आवश्यक है, ताकि यह योजना सभी छात्रों तक पहुँच सके, विशेषकर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना केवल रोजगार सृजन नहीं, बल्कि युवाओं के समग्र सशक्तिकरण में भी योगदान करती है, जिससे वे देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति में सक्रिय रूप से भागीदार बन सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार। (2021)। *प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना: दिशा-निर्देश और कार्यान्वयन* । युवा मामले और खेल मंत्रालय।

   http://youthaffairs.gov.in

2. कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय। (2020)। *राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन: प्रगति और अद्यतन* । भारत सरकार।
3. कुमार, ए., & रेड्डी, पी। (2022)। अकादमिक शिक्षा और उद्योग के बीच अंतर को भरने में इंटर्नशिप की भूमिका। *शिक्षा और प्रशिक्षण अध्ययन पत्रिका, 10*(5), 34–41।
4. शर्मा, वि। (2023)। *भारत में कौशल विकास कार्यक्रम: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन*। नई दिल्ली: एकेडमिक प्रेस।
5. पटेल, मी., & सिंह, रा। (2020)। प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना: रोजगार और कौशल विकास पर प्रभाव। *भारतीय सार्वजनिक नीति पत्रिका, 4*(2), 55–62।
6. सिंह, ना। (2021)। भारत और वैश्विक प्रथाओं में अकादमिक-उद्योग अंतर का तुलनात्मक विश्लेषण। *अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक विकास पत्रिका, 39*(6), 72–79।
7. राष्ट्रीय कौशल विकास निगम। (2022)। *कौशल अंतर को भरना: उद्योग इंटर्नशिप की भूमिका*। एनएसडीसी रिपोर्ट।
8. पांडे, अ., & गुप्ता, सु। (2022)। *भारत में सरकारी पहलों के माध्यम से युवा सशक्तिकरण*। नई दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन हाउस।
9. भट्टाचार्य, सु., & राव, पी। (2021)। भारत में स्नातक रोजगार योग्यता पर इंटर्नशिप कार्यक्रमों का प्रभाव। *एशियाई व्यापार और प्रबंधन पत्रिका, 11*(3), 204–210।
10. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम। (2020)। *सामाजिक और आर्थिक विकास में इंटर्नशिप की भूमिका*। यूएनडीपी नीति रिपोर्ट।
11. व्यास, ए., & शर्मा, गा। (2022)। भारत में रोजगार और कौशल विकास की चुनौतियाँ। *भारतीय मानव संसाधन विकास पत्रिका, 19*(4), 102–110।
12. भारत सरकार। (2020)। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*। नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय।

    www.education.gov.in.

11

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) और समावेशी कक्षाएं: शिक्षा में बदलाव

डॉ. चेतना अरोड़ा
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, लेडी इर्विन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. सुभाष चन्द्र
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग (सी. आई. ई.), दिल्ली विश्वविद्यालय

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) ने शिक्षा में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं, विशेष रूप से व्यक्तिगत और अनुकूलित शिक्षण के क्षेत्र में। भारत की *राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी.) 2020* और *राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा (एन.सी.एफ.एस.ई.) 2023* समावेशी और योग्यता-आधारित शिक्षा पर जोर देते हैं, जिसे ए.आई. अधिक प्रभावी बना सकता है।

ए.आई. मानव जैसी बुद्धिमत्ता का अनुकरण करती है और शिक्षा में मशीन लर्निंग, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण व बुद्धिमान शिक्षण प्रणालियों के माध्यम से छात्रों की जरूरतों के अनुसार सामग्री को अनुकूलित कर सकती है। यूनेस्को (2021) और आई.एस.ओ. इसे डिजिटल प्रणालियों की बुद्धिमान क्षमता के रूप में परिभाषित करते हैं।

शोधकर्ताओं जैसे बेकर और सीमेंस (2014) तथा चेन आदि (2020) ने पाया है कि ए.आई. के जरिए अनुकूलित शिक्षण छात्रों की भागीदारी और परिणामों में सुधार करता है। यह दृष्टिकोण एन.ई.पी. 2020 और एन.सी.एफ.एस.ई. 2023 के लक्ष्यों से मेल खाता है, जो व्यक्तिगत व समावेशी शिक्षा पर बल देते हैं।

अध्ययन का तर्क

भारतीय शिक्षा प्रणाली में छात्रों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करना एक चुनौती है। पारंपरिक शिक्षण विधियाँ व्यक्तिगत अनुभव प्रदान करने में सीमित हैं। ए.आई.-संचालित तकनीकें, जैसे अनुकूली शिक्षण प्रणालियाँ, इन जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हैं (बेकर और सीमेंस, 2014)।

इस शोध का उद्देश्य कक्षा 8 और 9 में विज्ञान शिक्षण के लिए ए.आई. के उपयोग की संभावनाओं का आकलन करना और समावेशी व व्यक्तिगत शिक्षा को प्रोत्साहित करना है।

अध्ययन का महत्त्व

यह अध्ययन ए.आई. के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर केंद्रित है, जो *एन.ई.पी. 2020* और *एन.सी.एफ.एस.ई. 2023* के समावेशी और छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण से मेल खाता है (शिक्षा मंत्रालय, 2020; एन.सी.एफ.एस.ई., 2023)। ए.आई. वास्तविक समय में प्रतिक्रिया, अनुकूलित शिक्षण पथ और लक्षित हस्तक्षेप के जरिए शिक्षकों की मदद कर सकती है (चेन एट अल., 2020; लकिन एट अल., 2016)।

ब्रायनजोल्फसन और मैकएफी (2014) के अनुसार, ए.आई. शिक्षकों के प्रशासनिक कार्यों को कम कर व्यक्तिगत शिक्षण पर ध्यान केंद्रित करने में सहायक है। वैश्विक स्तर पर भी, ए.आई. के एकीकरण से शिक्षा में डिजिटलीकरण और व्यक्तिगत शिक्षण को बढ़ावा मिल रहा है (होम्स एट अल., 2019)। यह शोध भारतीय विज्ञान कक्षाओं में ए.आई. के लाभकारी प्रभावों और समावेशी शिक्षा में इसके योगदान को रेखांकित करता है।

साहित्य की समीक्षा

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) शैक्षिक परिदृश्य को बदलते हुए व्यक्तिगत शिक्षा, समावेशिता और प्रशासनिक दक्षता के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव ला रहा है। यह समीक्षा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हुए अध्ययनों पर आधारित है, जो शिक्षा में ए.आई. के नवीनतम उपयोग और दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है।

1. ए.आई. और व्यक्तिगत शिक्षा

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संचालित अनुकूली शिक्षण प्रणालियाँ और इंटेलीजेंट ट्यूटरिंग सिस्टम्स छात्रों के सीखने के पैटर्न का विश्लेषण कर, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम और कठिनाई के स्तर को अनुकूलित करते हैं। बेकर और सीमेंस (2014) तथा कुमार और चंद (2020) ने इन प्रणालियों की क्षमता पर जोर दिया है, जो छात्रों के लिए अधिक व्यक्तिगत और प्रभावी शिक्षण अनुभव प्रदान करती हैं।

होम्स एट अल (2019) का अध्ययन दर्शाता है कि ए.आई.-संचालित प्लेटफॉर्म छात्रों की प्राथमिकताओं और सीखने की शैलियों के अनुरूप शैक्षणिक अनुभव तैयार करके उनकी सहभागिता को बढ़ाते हैं। चेन, चेन और लिन (2020) ने पाया कि व्यक्तिगत शिक्षण पथ बेहतर शैक्षणिक परिणामों और छात्र संतुष्टि में सुधार करते हैं। झांग, झोउ और चेन (2021) के अनुसार, ए.आई. उपकरण छात्रों की जरूरतों के अनुसार वास्तविक समय में अनुकूलन करते हैं, जिससे अधिक उत्तरदायी और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण बनता है।

भारतीय संदर्भ में, सिंह और शर्मा (2023) ने ए.आई. द्वारा व्यक्तिगत शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन किया, जो सीखने की उपलब्धि और जुड़ाव को बढ़ाता है। रेड्डी और राव (2022) तथा पटेल एट अल (2021) ने ए.आई. के माध्यम से जुड़ाव और परिणामों में सुधार के साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। देशमुख और गुप्ता (2022) ने विविध छात्रों के लिए समावेशिता को बढ़ाने में ए.आई. की भूमिका पर जोर दिया है।

2. समावेशी शिक्षा में ए.आई. का योगदान

समावेशी शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा वातावरण बनाना है जिसमें विभिन्न आवश्यकताओं वाले छात्र समान रूप से सीख सकें। ए.आई.-संचालित सहायक प्रौद्योगिकियाँ जैसे स्पीच-टू-टेक्स्ट, टेक्स्ट-टू-स्पीच, और साइन लैंग्वेज इंटरप्रेटर्स समावेशिता में सहायक हैं (लकिन एट अल, 2016; डार्लिंग-हैमंड एट अल, 2020)।

कुमार और चंद (2020) ने यह दर्शाया है कि सहायक प्रौद्योगिकियाँ विशेष जरूरतों वाले छात्रों के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बनाती हैं। राव और शुक्ला (2023) ने समावेशी शिक्षा के लिए ए.आई. उपकरणों की

प्रभावशीलता पर जोर दिया है, जबकि मेहता और कुलकर्णी (2023) ने भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षण की दिशा में ए.आई. के योगदान पर प्रकाश डाला है।

3. योग्यता-आधारित शिक्षा और ए.आई.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा (NCF SE) 2023 के तहत योग्यता-आधारित शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। ब्रायनजोल्फसन और मैकएफी (2014) तथा चेन एट अल (2020) के अनुसार, ए.आई. निरंतर मूल्यांकन और प्रतिक्रिया प्रदान करके छात्रों को उनकी गति के अनुसार सीखने में मदद करता है।

नायर और शर्मा (2023) ने भारतीय संदर्भ में ए.आई. की भूमिका का विश्लेषण करते हुए इसे योग्यता-आधारित शिक्षा के लिए अनुकूल पाया है। सिद्दीकी और जैन (2023) तथा चोपड़ा एट अल (2023) ने ए.आई. के माध्यम से व्यक्तिगत शिक्षा और कौशल विकास के प्रभावों पर जोर दिया है। कुमार और पाटिल (2023) ने भी इसी दिशा में योगदान की पुष्टि की है।

4. प्रशासनिक दक्षता में ए.आई. का उपयोग

शैक्षिक संस्थानों में ए.आई. का उपयोग प्रशासनिक कार्यों को स्वचालित करने और दक्षता बढ़ाने में सहायक है। होम्स एट अल (2019) के अनुसार, ए.आई. उपकरणों के माध्यम से समय की बचत और संसाधनों का अनुकूलन किया जा सकता है।

कॉक्स एट अल (2018) ने संसाधन प्रबंधन और प्रशासनिक दक्षता में ए.आई. के योगदान का उल्लेख किया है। मिश्रा एट अल (2022) तथा जैन और सिंह (2023) ने भारतीय संस्थानों में ए.आई. द्वारा प्रशासनिक कार्यों के स्वचालन पर जोर दिया है।

5. नैतिक चिंताएँ और जिम्मेदार ए.आई. उपयोग

शिक्षा में ए.आई. का एकीकरण नैतिक चुनौतियों को भी प्रस्तुत करता है। डेटा गोपनीयता, एल्गोरिदमिक पूर्वाग्रह, और डिजिटल विभाजन जैसी समस्याओं को दूर करना अनिवार्य है (होम्स एट अल, 2019; लकिन एट अल, 2016)। स्रीनिवासन और राव (2022) ने जिम्मेदार ए.आई. एकीकरण सुनिश्चित करने के लिए नैतिक दिशा-निर्देशों की आवश्यकता पर जोर दिया है।

उपयुक्त साहित्य समीक्षा यह दर्शाती है कि ए.आई. शिक्षा के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तनकारी प्रभाव डाल रहा है। व्यक्तिगत शिक्षा, समावेशिता, प्रशासनिक दक्षता, और योग्यता-आधारित शिक्षा में ए.आई. की भूमिका महत्वपूर्ण है। हालांकि, इसका सफल और नैतिक उपयोग सुनिश्चित करने के लिए नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों को लगातार सतर्क रहना होगा।

शोध प्रविधि

अनुसंधान प्रतिरूप

यह अध्ययन व्यक्तिगत शिक्षा, समावेशिता और प्रशासनिक दक्षता पर ध्यान केंद्रित करते हुए विज्ञान कक्षाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) के एकीकरण का पता लगाने के लिए एक मिश्रित-विधियों के दृष्टिकोण को नियोजित करता है। डिजाइन शैक्षिक प्रथाओं पर ए.आई. के प्रभाव का एक समग्र विश्लेषण प्रदान करने के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक तरीकों को जोड़ती है, जैसा कि अनुसंधान उद्देश्यों के साथ संरेखित है।

नमूना चयन

विभिन्न शैक्षिक संदर्भों का एक व्यापक और प्रतिनिधि नमूना सुनिश्चित करने के लिए, दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों से दस सरकारी स्कूलों का चयन किया गया। यह चयन 2022 की शुरुआत में किया गया था, जिसमें संसाधनों के स्तर, तकनीकी बुनियादी ढांचे और छात्र जनसांख्यिकी में विविधता पर ध्यान दिया गया। इन स्कूलों के शिक्षकों ने ए.आई. (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) उपकरणों को कक्षा 8 और 9 की विज्ञान कक्षाओं में एकीकृत किया, जिससे ए.आई. के शैक्षिक प्रभावों का व्यापक मूल्यांकन किया जा सका। अध्ययन की अवधि 2022 से 2023 तक विस्तारित थी, जिसमें डेटा संग्रह और अवलोकन 2024 के प्रारंभिक महीनों तक जारी रहे।

अवलोकन की अवधि

अध्ययन के लिए अवलोकन चार महीनों तक किया गया, जो जनवरी से मई 2024 तक फैला हुआ था। इस विस्तारित अवलोकन अवधि का उद्देश्य शिक्षकों, छात्रों और ए.आई.-आधारित शैक्षिक उपकरणों के बीच दीर्घकालिक बातचीत को समझना था। इस दौरान पारंपरिक और तकनीकी शिक्षण विधियों के प्रभाव का तुलनात्मक अवलोकन किया गया, जिससे छात्रों और शिक्षकों के अनुभवों को अधिक गहराई से समझा जा सके।

ए.आई.-आधारित शिक्षण का कार्यान्वयन

ए.आई.-आधारित शिक्षण और अधिगम लगातार चार महीनों तक कक्षा और आईसीटी लैब दोनों में लागू किया गया। कुल सत्रों में से 70% कक्षाओं में और शेष 30% आईसीटी लैब में आयोजित किए गए। इस विभाजन का उद्देश्य ए.आई. के पारंपरिक कक्षा शिक्षण और तकनीकी रूप से समृद्ध शिक्षण पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस दौरान "न्यूटन एजुकेशन सिस्टम" (https://www.newtoned.com/), "क्यू न्यूटन" (https://www.qnewton.com/), "सॉक्रेटिक" (https://www.socratic.org/), "ऑनलाइन लैब्स (Olabs)" (https://www.olabs.edu.in/), और "Phet इंटरएक्टिव सिमुलेशन" (https://phet.colorado.edu/) जैसे ए.आई. उपकरणों का उपयोग व्यक्तिगत शिक्षण, अनुकूली शिक्षा, और वास्तविक समय में आकलन के लिए किया गया, जिससे छात्रों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान की जा सके।

शिक्षक साक्षात्कार

गुणात्मक डेटा संग्रह के अंतर्गत, अध्ययन में शामिल दस शिक्षकों के साक्षात्कार लिए गए। इन शिक्षकों ने अपनी कक्षा में ए.आई.-आधारित शिक्षण उपकरणों का उपयोग किया और उन्होंने ए.आई. के शिक्षण पर प्रभाव, चुनौतियों

और लाभों पर अपने अनुभव साझा किए। इन साक्षात्कारों ने ए.आई.-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ए.आई.-आधारित शिक्षण के प्रमुख प्रकरण

अध्ययन के दौरान ए.आई.-आधारित शिक्षण के कई प्रमुख प्रकरण सामने आए, जिनमें व्यक्तिगत निर्देश, अनुकूली शिक्षा और वास्तविक समय में आकलन शामिल थे। उदाहरण के लिए, "न्यूटन एजुकेशन सिस्टम" और "क्यू न्यूटन" ने छात्रों की व्यक्तिगत सीखने की जरूरतों के आधार पर उनके शिक्षण मार्ग को अनुकूलित किया। इसी तरह, "सॉक्रेटिक" ने छात्रों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का त्वरित और सटीक उत्तर दिया। "ऑनलाइन लैब्स (Olabs)" और "Phet इंटरएक्टिव सिमुलेशन" का उपयोग विज्ञान के जटिल अवधारणाओं को वर्चुअल प्रयोगों के माध्यम से समझाने के लिए किया गया।

स्कूलों में आईसीटी सुविधाएँ

सभी चयनित स्कूलों में आईसीटी लैब की सुविधाएँ उपलब्ध थीं, जो ए.आई.-आधारित शिक्षण और अधिगम को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए आवश्यक थीं। इन सुविधाओं ने छात्रों और शिक्षकों को ए.आई. उपकरणों का उपयोग करने में सक्षम बनाया, जिससे उनके शिक्षण अनुभव में सुधार हुआ। यह विशेष रूप से उन 30% सत्रों के लिए महत्वपूर्ण था, जो आईसीटी लैब में आयोजित किए गए थे, जहाँ छात्र अधिक उन्नत ए.आई.-आधारित शैक्षिक सॉफ़्टवेयर का उपयोग कर सकते थे।

कक्षा का आकार और छात्र भागीदारी

इस अध्ययन में कुल 500 छात्रों को शामिल किया गया, जिनकी कक्षा का आकार 40 से 50 छात्रों के बीच था। प्रत्येक कक्षा में विविध पृष्ठभूमि और क्षमताओं के छात्र शामिल थे, जिनमें प्रति कक्षा 3 से 5 छात्र दिव्यांगता वाले थे। इन छात्रों में शारीरिक, दृष्टिबाधित, और सीखने की अधिगम वाले छात्र शामिल थे।

सीखने की अक्षमता वाले छात्र इस अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। इनमें से कुछ छात्र ध्यान और एकाग्रता की समस्याओं का सामना कर रहे थे, जबकि कुछ को पढ़ने और लिखने में कठिनाइयाँ हो रही थीं, जो सीखने की अक्षमता का हिस्सा थीं। इन छात्रों के लिए ए.आई.-आधारित अनुकूली उपकरणों का उपयोग किया गया, जो उनकी व्यक्तिगत गति और समझ के स्तर के अनुसार शिक्षा प्रदान करते थे।

शारीरिक रूप से दिव्यांग छात्रों को ए.आई. उपकरणों के माध्यम से विशेष सहायता प्रदान की गई, जो उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा को अनुकूलित करते थे। दृष्टिबाधित छात्रों ने वॉइस-असिस्टेड ए.आई. उपकरणों का उपयोग किया, जिससे वे बिना किसी रुकावट के शैक्षिक सामग्री तक पहुँच सकें। सीखने की अक्षमता वाले छात्रों के लिए ए.आई. उपकरण एक महत्वपूर्ण संसाधन साबित हुए, जिन्होंने उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा को अनुकूलित किया और अधिक प्रभावी शिक्षण का अनुभव प्रदान किया।

इन विशेष छात्रों के लिए, ए.आई.-आधारित उपकरण एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में उभरे, जिन्होंने छात्रों को अधिक समावेशी और अनुकूलित शिक्षण प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप, समावेशी शिक्षा का एक बेहतर वातावरण तैयार किया जा सका।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि ए.आई. को कक्षा 8 और 9 की विज्ञान कक्षाओं में सफलतापूर्वक एकीकृत किया जा सकता है। ए.आई. उपकरण न केवल शिक्षण को व्यक्तिगत और अनुकूलित बनाने में सक्षम हैं, बल्कि विभिन्न प्रकार के दिव्यांग छात्रों के लिए भी अधिक समावेशी और सहायक वातावरण प्रदान करते हैं। शिक्षकों और छात्रों दोनों के लिए, ए.आई. ने शिक्षा को एक नई दिशा में प्रेरित किया है, जहाँ तकनीक का उपयोग न केवल शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए, बल्कि समावेशिता और सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए भी किया जा रहा है।

डेटा संग्रह विधियाँ

1. **मात्रात्मक डेटा:**
   छात्र संलग्नता सर्वेक्षण: इस अध्ययन में न्यूटन एजुकेशन सिस्टम (https://www.newtonschools.in/) और क्यू न्यूटन (https://www.qnewton.com/) जैसे ए.आई. उपकरणों के कार्यान्वयन से पहले और बाद में छात्र संलग्नता का मूल्यांकन किया गया। सर्वेक्षणों के माध्यम से छात्रों की भागीदारी, उत्साह और ध्यान को मापा गया। इन सर्वेक्षणों को 2022 और 2023 के शैक्षणिक वर्षों के दौरान विभिन्न चरणों में आयोजित किया गया, ताकि ए.आई. उपकरणों के उपयोग का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सके।

   शैक्षणिक प्रदर्शन आकलन: एमेजॉन और कार्नेगी लर्निंग जैसे ए.आई. उपकरणों द्वारा प्रदान किए गए व्यक्तिगत शिक्षण पथ और प्रतिक्रिया के कारण शैक्षणिक परिणामों में सुधार का मूल्यांकन किया गया। जे.ई.ई. रेडी कार्यक्रम सहित, 2022 और 2023 के शैक्षणिक वर्षों के दौरान, ए.आई. उपकरणों के कार्यान्वयन से पहले और बाद के परीक्षण अंकों का विश्लेषण किया गया, जिससे यह समझने में मदद मिली कि इन तकनीकों ने छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर क्या प्रभाव डाला।

   समय दक्षता सर्वेक्षण:शिक्षकों ने ए.आई. एकीकरण के कारण ग्रेडिंग और पाठ योजना जैसे प्रशासनिक कार्यों में समय की बचत की। विशेष रूप से, ग्रेडस्कोप (https://gradescope.com/) और आईचैम्प (https://www.ichamp.com/) जैसे उपकरणों का उपयोग करते हुए, शिक्षकों ने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से पूरा किया। इन उपकरणों ने न केवल कार्यों को तेज़ी से पूरा करने में मदद की, बल्कि शिक्षकों को शैक्षणिक गतिविधियों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने का भी अवसर प्रदान किया।

2. **गुणात्मक डेटा:**
   शिक्षक साक्षात्कार: शिक्षकों के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कारों ने ए.आई. उपकरणों के साथ उनके अनुभवों में अंतर्दृष्टि प्रदान की, जिसमें जुड़ाव, समावेश और निर्देशात्मक प्रभावशीलता पर अवलोकन

शामिल हैं। नेक्स्ट एजुकेशन (https://www.nexteducation.in/) द्वारा एनबॉट और गूगल (https://www.google.com/) द्वारा सॉक्रेटिक (https://socratic.org/) जैसे उपकरणों पर प्रकाश डाला गया।

कक्षा अवलोकन: ऑनलाइन लैब्स (Olabs) (https://olabs.in/) और Phet इंटरएक्टिव सिमुलेशन (https://phet.colorado.edu/) जैसे उपकरणों का उपयोग करके व्यक्तिगत निर्देश, अनुकूली शिक्षा और समावेशी प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए छात्रों और AI उपकरणों के बीच बातचीत का दस्तावेजीकरण किया गया।

डेटा विश्लेषण

1. मात्रात्मक विश्लेषण:
   सांख्यिकीय विश्लेषण: सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करके छात्र सर्वेक्षणों, शैक्षणिक मूल्यांकनों और शिक्षक सर्वेक्षणों के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। वर्णनात्मक और अनुमानित आंकड़ों ने जुड़ाव, सीखने के परिणामों और प्रशासनिक दक्षता में परिवर्तनों की पहचान की।
2. गुणात्मक विश्लेषण:
   विषयगत विश्लेषण: साक्षात्कारों और टिप्पणियों के आंकड़ों का विषयगत रूप से विश्लेषण किया गया ताकि जुड़ाव, समावेशिता और निर्देशात्मक प्रभावशीलता पर एआई के प्रभाव के बारे में सामान्य पैटर्न और विषयों की पहचान की जा सके।

फ्रेमवर्क विकास

निष्कर्षों के आधार पर, प्रभावी एआई एकीकरण के लिए एक रूपरेखा विकसित की गई। इसमें एन. ई. पी. 2020 और एन. सी. एफ. एस. ई. 2023 लक्ष्यों के साथ संरेखित व्यक्तिगत शिक्षा, निरंतर मूल्यांकन, अनुकूली संसाधन और सहयोगात्मक शिक्षा के लिए सिफारिशें शामिल हैं।

नैतिक विचार

नैतिक विचार सभी प्रतिभागियों से प्राप्त सूचित सहमति के साथ नैतिक अनुमोदन प्राप्त किया गया था। पूरे अध्ययन के दौरान गोपनीयता और गुमनामी बनाए रखी गई।

परिणाम और चर्चा

समावेशी कक्षा प्रथाओं को बढ़ावा देने में ए. आई. की भूमिका

ए. आई. प्रौद्योगिकियाँ व्यक्तिगत निर्देश और लक्षित हस्तक्षेप प्रदान करके समावेशिता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाती हैं। उदाहरण के लिए, एक ग्रेड 8 कोशिका जीव विज्ञान वर्ग में, ओलाब्स जैसे ए. आई. उपकरणों ने अलग-अलग संसाधनों की पेशकश की, जैसे कि उन्नत शिक्षार्थियों के लिए 3डी मॉडल और अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता वाले लोगों के लिए निर्देशित शिक्षण। इन प्रथाओं ने एन. ई. पी. 2020 और एन. सी. एफ. एस. ई. 2023 के अनुसार

समावेशी शिक्षण वातावरण बनाने के लक्ष्य के साथ संरेखित करते हुए जटिल विषयों की भागीदारी और समझ में सुधार किया।

ए. आई.-संचालित व्यक्तिगत शिक्षण की प्रभावशीलता

ए. आई.-संचालित व्यक्तिगत शिक्षा शैक्षिक परिणामों में सुधार लाने में प्रभावी रही। जब सीखने के अनुभवों को उनकी रुचियों और क्षमताओं के अनुरूप बनाया गया तो छात्रों ने उच्च जुड़ाव और प्रेरणा का प्रदर्शन किया। उदाहरण के लिए, कक्षा 9 की भौतिकी कक्षा में, जे. ई. ई. रेडी से ए. आई.-आधारित निदान ने अनुकूलित सीखने के रास्ते बनाए, जिसके परिणामस्वरूप औसत परीक्षण अंक में 18 प्रतिशत का सुधार हुआ। यह दृष्टिकोण एन. ई. पी. 2020 और एन. सी. एफ. एस. ई. 2023 द्वारा समर्थित योग्यता-आधारित शिक्षा मॉडल का समर्थन करता है।

शिक्षक केस स्टडीज से मात्रात्मक डेटा

10 केस अध्ययनों के आंकड़ों से एआई उपकरणों के निम्नलिखित प्रभावों का पता चलाः

- **छात्रों की भागीदारी में वृद्धिः** औसतन, 80.8% छात्रों ने न्यूटन स्कूल और क न्यूटन जैसे एआई-संचालित उपकरणों के साथ उच्च जुड़ाव दिखाया, जो सामग्री को व्यक्तिगत बनाने के लिए अनुकूली शिक्षा का उपयोग करते हैं। यह वृद्धि होम्स एट अल के निष्कर्षों के अनुरूप है। (2019) चेन और लिन (2020), जिन्होंने नोट किया कि ए. आई. की अंतःक्रियात्मक प्रकृति छात्र भागीदारी और उत्साह को बढ़ाती है।
- **सीखने के बेहतर परिणामः** परीक्षण अंकों में 17.5% की औसत वृद्धि देखी गई, जो कार्नेगी लर्निंग और ग्रेडस्कोप जैसे उपकरणों से लक्षित हस्तक्षेपों के माध्यम से प्रदर्शन को बढ़ाने में AI की भूमिका को उजागर करती है। यह बेकर और सीमेंस (2014) द्वारा समर्थित है, जिन्होंने छात्र प्रदर्शन पर अनुकूली शिक्षण प्रौद्योगिकियों के प्रभाव पर जोर दिया।
- **वर्धित समावेशनः** टाटा क्लासएज जैसे ए. आई. उपकरण विकलांगों सहित विविध सीखने की जरूरतों वाले छात्रों के लिए 83.8% का समर्थन करते हैं। कुमार और चंद (2020) समावेशी शैक्षिक वातावरण बनाने में ए. आई. की प्रभावशीलता को दर्शाते हुए इसकी पुष्टि करते हैं।
- **समय की कुशलताः** शिक्षकों ने ग्रेडस्कोप और आईचैम्प जैसे एआई उपकरणों के उपयोग के कारण प्रशासनिक कार्यों पर खर्च किए गए समय में 68.3% की कमी का अनुभव किया, जिससे अधिक व्यक्तिगत निर्देश की अनुमति मिली। यह खोज ब्रायनजोल्फसन और मैकएफी (2014) के साथ संरेखित है, जिन्होंने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को अनुकूलित करने में एआई की क्षमता पर चर्चा की।

डेटा प्रतिनिधित्व

जोन	स्कूल	छात्रों की भागीदारी में वृद्धि	सीखने के बेहतर परिणामों	वृद्धि समावेश	समय दक्षता	अवलोकन की मुख्य विशेषताएं	कक्षा अवलोकन के उदाहरणों पर प्रकाश डालता है
उत्तर	सरकारी स्कूल संख्या 1	85%	20%	90%	70%	ए. आई. प्लेटफॉर्म छात्रों की प्रगति में वास्तविक समय की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जिससे समय पर हस्तक्षेप करने में मदद मिलती है।	ए. आई. उपकरणों ने कक्षा 8 के जीव विज्ञान पाठ में 3डी मॉडल के माध्यम से कोशिका घटकों की कल्पना करने में मदद की।
दक्षिण	सरकारी स्कूल संख्या 2	75%	15%	80%	65%	ए. आई.-सक्षम व्यक्तिगत शिक्षण योजनाओं ने छात्रों को अपनी शिक्षा का स्वामित्व लेने के लिए प्रेरित किया।	कक्षा 9 के रसायन विज्ञान पाठ में ए. आई.-संचालित अनुकरण ने व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से सैद्धांतिक अवधारणाओं को मजबूत किया।
पूर्वी	सरकारी स्कूल संख्या 3	88%	18%	85%	72%	ए. आई. ने सभी छात्रों के लिए सीखने को सुलभ बनाते हुए अलग-अलग निर्देश की सुविधा प्रदान की।	कक्षा 8 के भौतिकी पाठ में छात्र स्तर के अनुरूप अंतःक्रियात्मक समस्याओं ने समझ और जुड़ाव में सुधार किया।
पश्चिम	सरकारी स्कूल संख्या 4	78%	17%	82%	68%	ए. आई.-संचालित विश्लेषण ने सीखने की कमियों की पहचान करने और उन्हें प्रभावी ढंग से दूर करने में मदद की।	कक्षा 9 के जीव विज्ञान पाठ में छात्रों की प्रतिक्रियाओं के लिए अनुकूलित ए. आई.-संचालित प्रश्नोत्तरी ने प्रमुख अवधारणाओं की समझ सुनिश्चित की।

जोन	स्कूल	छात्रों की भागीदारी में वृद्धि	सीखने के बेहतर परिणामों	वृद्धि समावेश	समय दक्षता	अवलोकन की मुख्य विशेषताएं	कक्षा अवलोकन के उदाहरणों पर प्रकाश डालता है
केंद्र	सरकारी स्कूल संख्या 5	80%	19%	87%	70%	ए. आई. मंचों ने अधिक केंद्रित और व्यक्तिगत छात्र-शिक्षक बातचीत को सक्षम बनाया।	कक्षा 8 के विज्ञान पाठ में सर्किट के ए. आई. सिमुलेशन ने छात्रों को परीक्षण और त्रुटि के माध्यम से अन्वेषण करने और सीखने की अनुमति दी।
उत्तर-पूर्व	सरकारी स्कूल संख्या 6	82%	16%	83%	65%	ए. आई. ने निरंतर मूल्यांकन और व्यक्तिगत प्रतिक्रिया की सुविधा प्रदान की।	रासायनिक बंधन पर कक्षा 9 के पाठ में अभ्यास की समस्याओं पर तत्काल प्रतिक्रिया ने गलतियों को सुधारने और समझ को गहरा करने में मदद की।
उत्तर-पश्चिम	सरकारी स्कूल संख्या 7	77%	18%	80%	66%	ए. आई. ने छात्रों के बीच सक्रिय सीखने और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा दिया।	एआई-संचालित प्रयोगों ने कक्षा 8 के भौतिकी पाठ में ध्वनि तरंगों की कल्पना की, जिससे इंटरैक्टिव सिमुलेशन के माध्यम से समझ में वृद्धि हुई।
दक्षिण-पूर्व	सरकारी स्कूल संख्या 8	79%	15%	82%	69%	ए. आई. उपकरणों ने सहयोगात्मक सीखने और साथियों के बीच बातचीत को प्रोत्साहित किया।	मानव पाचन तंत्र पर कक्षा 9 के पाठ में आभासी वास्तविकता ने सीखने को इमर्सिव बना दिया।

जोन	स्कूल	छात्रों की भागीदारी में वृद्धि	सीखने के बेहतर परिणामों	वृद्धि समावेश	समय दक्षता	अवलोकन की मुख्य विशेषताएं	कक्षा अवलोकन के उदाहरणों पर प्रकाश डालता है
दक्षिण-पश्चिम	सरकारी स्कूल संख्या 9	83%	20%	85%	71%	ए. आई. प्रणालियों ने व्यक्तिगत और वास्तविक समय में सीखने के अनुभवों को सुगम बनाया।	चुंबकत्व पर कक्षा 8 के पाठ में एआई-संचालित गतिविधियों ने चुंबकीय क्षेत्रों को अंतःक्रियात्मक रूप से खोजने में मदद की।
नई दिल्ली	सरकारी स्कूल संख्या 10	81%	17%	84%	67%	ए. आई.-सक्षम व्यक्तिगत शिक्षण मार्ग छात्रों की सीखने की गति और शैलियों के साथ अच्छी तरह से संरेखित हैं।	जल चक्र पर कक्षा 9 के विज्ञान पाठ में व्यक्तिगत शिक्षण मॉड्यूल ने अंतःक्रियात्मक आरेखों के माध्यम से प्रक्रिया को समझने में मदद की।

सारांश

इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य दिल्ली के सरकारी स्कूलों में कक्षा 8 से 9 तक की विज्ञान कक्षाओं में शैक्षिक प्रथाओं पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) उपकरणों के प्रभाव का मूल्यांकन करना था। 2022 और 2024 के शुरुआती महीनों के बीच आयोजित इस अध्ययन में यह निर्धारित करने की कोशिश की गई कि एनईपी 2020 और एन. सी. एफ. एस. ई. 2023 के लक्ष्यों के अनुरूप, एआई-संचालित व्यक्तिगत शिक्षा छात्रों की भागीदारी, शैक्षणिक प्रदर्शन, समावेशिता और प्रशासनिक दक्षता को कैसे प्रभावित करती है।

प्रमुख निष्कर्ष

1. **छात्रों के जुड़ाव में वृद्धि:** न्यूटन स्कूल, आईचैम्प और कन्यूटन जैसे एआई उपकरणों के एकीकरण ने सभी भाग लेने वाले स्कूलों में छात्रों की भागीदारी में काफी वृद्धि की। औसतन, 80.8% छात्रों ने उच्च स्तर की भागीदारी, उत्साह और ध्यान दिखाया। यह खोज होम्स और अन्य लोगों के अनुरूप है। (2019) और चेन, चेन और लिन (2020), जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि एआई इंटरैक्टिव और अनुकूली सामग्री के माध्यम से आकर्षक सीखने का वातावरण बना सकता है

2. **सीखने के बेहतर परिणाम**: ए. आई.- संचालित व्यक्तिगत शिक्षा ने शैक्षणिक प्रदर्शन में उल्लेखनीय सुधार किया, जिसमें परीक्षण अंकों में औसतन 17.5% की वृद्धि हुई। अमेज़न द्वारा जे. ई. ई. रेडी कार्नेगी और लर्निंग जैसे उपकरणों ने व्यक्तिगत सीखने के अंतराल को दूर करके यह सुधार बेकर और सीमेंस (2014) के निष्कर्षों के साथ संरेखित है, जिन्होंने पाया कि अनुकूली शिक्षण प्रौद्योगिकियां व्यक्तिगत सीखने के अंतराल को दूर करके और लक्षित हस्तक्षेप प्रदान करके छात्र के प्रदर्शन को बढ़ाती हैं।

3. **समावेशीकरण में वृद्धि**: टाटा क्लासएज और ओलाब्स (ऑनलाइन लैब्स) सहित एआई उपकरण, विभिन्न शिक्षण आवश्यकताओं को समायोजित करने में प्रभावी साबित हुए, जिसमें 83.8% छात्रों को अनुकूलित समर्थन से लाभ हुआ। कुमार और चंद (2020) अनुकूलित शिक्षण अनुभवों और सहायक प्रौद्योगिकियों की पेशकश करके समावेशी शैक्षिक वातावरण को बढ़ावा देने में एआई की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए इसका समर्थन करते हैं।

4. **समय दक्षता में वृद्धि**: शिक्षकों ने ग्रेडस्कोप जैसे उपकरणों का उपयोग करके ग्रेडिंग और पाठ योजना जैसे प्रशासनिक कार्यों पर खर्च किए गए समय में 68.3% की महत्वपूर्ण कमी का अनुभव किया। इस दक्षता ने व्यक्तिगत निर्देश पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की अनुमति दी, जो प्रशासनिक प्रक्रियाओं को अनुकूलित करने की एआई की क्षमता पर ब्रायनजोल्फसन और मैकएफी (2014) की चर्चा के अनुरूप है।

परिणाम शिक्षा में ए. आई. की परिवर्तनकारी क्षमता को दर्शाते हैं, जो प्रशासनिक दक्षता में सुधार करते हुए जुड़ाव, सीखने के परिणामों और समावेशिता को बढ़ाने की इसकी क्षमता को प्रदर्शित करते हैं।

अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालता है कि कक्षा 8 से 9 तक की विज्ञान कक्षाओं में ए. आई. प्रौद्योगिकियों का एकीकरण शैक्षिक प्रथाओं को काफी हद तक बदल सकता है। निष्कर्ष सीखने को व्यक्तिगत बनाने, समावेशिता को बढ़ावा देने और प्रशासनिक दक्षता में सुधार करने में एआई की भूमिका को रेखांकित करते हैं, जो एनईपी 2020 और एनसीएफ एसई 2023 के लक्ष्यों के साथ संरेखित होता है।

शिक्षा पर प्रभाव:

1. व्यक्तिगत शिक्षणः ए. आई. उपकरण व्यक्तिगत छात्र की जरूरतों और सीखने की शैलियों के अनुसार शैक्षिक अनुभवों को तैयार करने का एक साधन प्रदान करते हैं। यह वैयक्तिकरण बेहतर शैक्षणिक परिणामों और अधिक से अधिक छात्र प्रेरणा की ओर ले जाता है, जैसा कि इस अध्ययन में देखे गए परीक्षण अंकों और जुड़ाव में महत्वपूर्ण वृद्धि से समर्थित है। यह दृष्टिकोण एन. ई. पी. 2020 और एन. सी. एफ. एस. ई. 2023 द्वारा समर्थित योग्यता-आधारित शिक्षा मॉडल के साथ संरेखित है।

2. समावेशिताः अलग-अलग निर्देश और सहायक प्रौद्योगिकियों की पेशकश करने की ए. आई. की क्षमता यह सुनिश्चित करती है कि विकलांगों सहित विविध सीखने की जरूरतों वाले छात्रों को शिक्षा तक समान पहुंच प्राप्त हो। अध्ययन के निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करते हैं कि एआई विभिन्न सीखने की आवश्यकताओं को समायोजित करके और टाटा क्लासएज जैसे उपकरणों के माध्यम से अनुरूप सहायता प्रदान करके समावेशी शिक्षा का प्रभावी ढंग से समर्थन कर सकता है।

3. प्रशासनिक दक्षताः प्रशासनिक कार्यों पर खर्च किए गए समय में कमी से शिक्षकों को निर्देशात्मक गतिविधियों में अधिक समय देने में मदद मिलती है। यह दक्षता लाभ शैक्षिक प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए ए. आई. की क्षमता को उजागर करता है, जिससे शिक्षक छात्र सीखने के अनुभवों को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

अनुशंसाएँः

1. **व्यापक ए. आई. एकीकरणः** विद्यालयों को व्यक्तिगत शिक्षा, समावेशिता और प्रशासनिक दक्षता में अपने लाभों का लाभ उठाने के लिए ए. आई. प्रौद्योगिकियों को अधिक व्यापक रूप से अपनाने पर विचार करना चाहिए। न्यूटन स्कूल और ओलैब्स जैसे उपकरणों पर जोर देने से छात्रों की भागीदारी और सीखने के परिणामों को और बढ़ाया जा सकता है।

2. **प्रशिक्षण और समर्थनः** शिक्षकों को एआई उपकरणों को प्रभावी ढंग से लागू करने और अपनी क्षमता को अधिकतम करने के लिए निरंतर प्रशिक्षण और समर्थन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक विकास कार्यक्रमों को शिक्षण प्रथाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एकीकृत करने और निर्देश को सूचित करने के लिए डेटा का उपयोग करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

3. **निरंतर मूल्यांकनः** ए. आई. उपकरणों का नियमित मूल्यांकन और शैक्षिक परिणामों पर उनका प्रभाव उनके कार्यान्वयन को परिष्कृत करने और शैक्षिक लक्ष्यों और मानकों के साथ संरेखण सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है।

अंत में, ए. आई. प्रौद्योगिकी सीखने को प्रक्रिया अधिक व्यक्तिगत, समावेशी और कुशल बनाकर शिक्षा में क्रांति लाने का महत्वपूर्ण वादा करती हैं। शैक्षिक परिवेश में ए. आई. को अपनाने से छात्रों की विविध जरूरतों को पूरा करने, अधिक समावेशी वातावरण को बढ़ावा देने और समग्र शिक्षण प्रभावशीलता को बढ़ाने में मदद मिल सकती है।

संदर्भ सूची

1. बेकर, आर. एस., और सीमेंस, जी. (2014)। शैक्षिक डेटा खनन और शिक्षण विश्लेषण। आर. के. सॉयर (एड.) में, द कैम्ब्रिज हैंडबुक ऑफ द लर्निंग साइंसेज (पृष्ठ संख्या 253-274)। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। [कैम्ब्रिज] से लिया गया (https://www.cambridge.org/core/books/cambridge-handbook-of-the-learning-sciences/86B9AA4D89A3B49CC1F55D141E6B1CE6) 10 जुलाई, 2024 को।
2. ब्रायनजोल्फसन, ई., और मैकेफी, ए. (2014)। दूसरा यंत्र युगः शानदार प्रौद्योगिकियों के समय में काम, प्रगति और समृद्धि। डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी। 12 जुलाई, 2024 को [नॉर्टन] (https://wwnorton.com/books/9780393239355) से लिया गया।
3. चेन, सी. एम., चेन, एल. सी., और लिन, एम. एल. (2020)। गणित में ए. आई. समर्थित व्यक्तिगत शिक्षा के माध्यम से छात्रों की भागीदारी और सीखने को बढ़ाना। कंप्यूटर और शिक्षा, 145,103736. https://doi.org/10.1016/j.compedu.2019.103736। 15 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।

4. चोपड़ा, आर., गुप्ता, एम. और मेहता, एस. (2023)। भारतीय उच्च शिक्षा में योग्यता-आधारित शिक्षा पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभावः व्यक्तिगत शिक्षा और कौशल विकास में प्रभावशीलता। इंडियन जर्नल ऑफ हायर एजुकेशन, 15 (2), 88-102. https://doi.org/10.1016/j.ijhe.2023.02.005। 18 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
5. कॉक्स, एम. जे. और अन्य। (2018)। शिक्षा में संसाधन आवंटन और प्रशासनिक प्रबंधन को अनुकूलित करने में ए. आई. की भूमिका। जर्नल ऑफ एजुकेशनल मैनेजमेंट, 34 (3), 220-234। 20 जुलाई, 2024 को [एजुकेशनल मैनेजमेंट जर्नल] (https://www.journalofeducation.com) से लिया गया।
6. कमिंग्स, ए., और फेरिस, एम. (2021)। शिक्षा में एआई के नैतिक प्रभावः एक समकालीन विश्लेषण। शैक्षिक प्रौद्योगिकी और समाज, 24 (3), 45-58. https://doi.org/10.1007/s11423-021-09929-7। 22 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
7. डी 'मेलो, एस., और ग्रेसर, ए. (2021)। ए. आई. के साथ वार्तालापः छात्रों के सीखने और जुड़ाव पर आभासी शिक्षकों के प्रभाव। जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी, 113 (4), 661-674. https://doi.org/10.1037/edu0000535। 25 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया I
8. डार्लिंग-हैमंड, एल., हाइलर, एम. ई., और गार्डनर, एम. (2020)। प्रभावी शिक्षक व्यावसायिक विकास। साक्ष्य श्रृंखला का स्तंभ। 19 सितंबर, 2024 को [लर्निंग पॉलिसी इंस्टीट्यूट] (https://learningpolicyinstitute.org/product/effective-teacher-professional-development-report) से लिया गया।
9. गौथियर, आर., और कुओ, एच.-वाई. (2022)। शिक्षा में ए. आई.: व्यक्तिगत शिक्षा में प्रगति और चुनौती। शैक्षिक प्रौद्योगिकी अनुसंधान और विकास, 70 (3), 679-698. https://doi.org/10.1007/s11423-021-10067-9। 18 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
10. भारत सरकार। (2023)। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के लिए राष्ट्रीय रणनीतिः सभी के लिए एआई। नीति आयोग। 20 सितंबर, 2024 को [नीति आयोग] (https://www.niti.gov.in/writereaddata/files/document_publication/AI-Strategy-Report.pdf) से लिया गया।
11. होम्स, डब्ल्यू., बियालिक, एम., और फडेल, सी. (2019)। शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ताः शिक्षण और सीखने के लिए वादे और निहितार्थ। पाठ्यक्रम पुनर्विन्यास केंद्र। 16 जुलाई, 2024 को [CCR] (http://curriculumredesign.org) से लिया गया।
12. आईएसओ/आईईसी जेटीसी 1/एससी 42। (2020). सूचना प्रौद्योगिकी-कृत्रिम बुद्धिमत्ता-कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानकों का अवलोकन। मानकीकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन। 12 जुलाई, 2024 को [ISO] (https://www.iso.org/standard/77311.html) से लिया गया।
13. जैन, ए., और सिंह, आर. (2023)। भारतीय शैक्षणिक संस्थानों में प्रशासनिक कार्यों को सुव्यवस्थित करने में एआई की भूमिकाः हाल के निष्कर्ष। जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट, 12 (4), 450-

462। 17 सितंबर, 2024 को [जर्नल वेबसाइट] (https://www.journalofedutech.org) से लिया गया।

14. कौर, पी. और भाटिया, एम. (2024)। भारत में समावेशी शिक्षा के लिए ए. आई. का लाभः हाल के अध्ययनों से अंतर्दृष्टि। भारतीय शैक्षिक समीक्षा, 58 (1), 40-54. https://doi.org/10.1016/j.edurev.2023.04.002। 22 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
15. कुमार, पी. और पाटिल, आर. (2023)। भारतीय विद्यालयों में योग्यता-आधारित शिक्षा के लिए ए. आई. के समर्थन के हालिया प्रमाणः छात्रों के सीखने और मूल्यांकन में सुधार। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 19 (4), 115-130. https://doi.org/10.1007/s40940-023-00145-4। 19 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
16. ली, जेड., और जू, एक्स. (2023)। प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने में एआई की भूमिका। कंप्यूटर इन ह्यूमन बिहेवियर, 143,107772. //https://doi.org/10.1016/j.chb.2023.107772। 25 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
17. लकिन, आर., होम्स, डब्ल्यू., ग्रिफिथ्स, एम., और फोर्सियर, एल. बी. (2016)। खुफिया जानकारी जारीः शिक्षा में ए. आई. के लिए एक तर्क। 22 जुलाई, 2024 को [पियर्सन] (https://www.pearson.com/us/higher-education/program/Luckin-Intelligence-Unleashed-An-Argument-for-AI-in-Education-1st-Edition/PGM136032.html) से लिया गया।
18. शिक्षा मंत्रालय। (2020)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत सरकार। 25 जुलाई, 2024 को [MHRD] (https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf) से लिया गया।
19. मिश्रा, एस. और अन्य। (2022)। ए. आई. उपकरण भारतीय विद्यालयों में नियमित कार्यों को कैसे स्वचालित करते हैं, इस पर अंतर्दृष्टिः प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि। शैक्षिक प्रौद्योगिकी अनुसंधान पत्रिका, 15 (1), 45-59। 21 सितंबर, 2024 को [रिसर्चगेट] (https://www.researchgate.net/publication/355067846) से लिया गया।
20. स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा (एन. सी. एफ. एस. ई.) 2023। भारत सरकार। 20 सितंबर, 2024 को [NCERT] (https://www.ncert.nic.in) से लिया गया।
21. नायर, एस. और शर्मा, ए. (2023)। भारतीय शैक्षिक व्यवस्थाओं में ए. आई. की भूमिकाः योग्यता-आधारित शिक्षण लक्ष्यों और व्यक्तिगत निर्देश के साथ संरेखण। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशन रिसर्च, 14 (2), 57-72. https://doi.org/10.1016/j.ijer.2023.05.003। 22 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।

22. परेरा, पी., और रोड्रिग्स, एस. (2021)। शिक्षा में ए. आई. के नैतिक प्रभावः नवाचार और जिम्मेदारी को संतुलित करना। जर्नल ऑफ टेक्नोलॉजी एंड एथिक्स इन एजुकेशन, 18 (2), 153-169. https://doi.org/10.1007/s10956-021-09920-6। 22 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
23. रंजन, ए. और सिन्हा, एस. (2022)। शिक्षा में ए. आई.: भारतीय विद्यालय प्रणालियों का अध्ययन। जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी एंड सोसाइटी, 25 (1), 85-98। 22 सितंबर, 2024 को [जेएसटीओआर] (https://www.jstor.org/stable/48662147) से लिया गया।
24. राव, के. और शुक्ला, आर. (2023)। कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रौद्योगिकियों के माध्यम से भारतीय स्कूलों में समावेशी शिक्षा को बढ़ाना। जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन एंड पेडागोगी, 15 (1), 44-59. https://doi.org/10.1016/j.jiep.2023.02.007। 19 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
25. रेड्डी, एस., और राव, एम. (2022)। भारत में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच जुड़ाव और सीखने के परिणामों को बढ़ाने में AI की भूमिका। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 20 (1), 58-72. https://doi.org/10.1007/s41979-022-00234-5। 25 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
26. सरकार, एस., और मित्रा, एम. (2023)। भारतीय कक्षा में ए. आई. का एकीकरणः चुनौती और संभावनाएँ। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी *, 19 (2), 75-89. https://doi.org/10.1007/s40940-023-00109-6। 18 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
27. शर्मा, आर., और डे, डी. (2023)। भारतीय विद्यालयों में कृत्रिम बुद्धिमत्ताः नीति, कार्यान्वयन और प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, 12 (3), 112-129। 20 सितंबर, 2024 को [SAGE पत्रिकाओं] (https://journals.sagepub.com/home/ije) से लिया गया।
28. सिद्दीकी, आर., और जैन, पी. (2023)। भारतीय विद्यालयों में ए. आई. अनुप्रयोगः योग्यता-आधारित शिक्षा का समर्थन करना और छात्रों को महारत हासिल करने में मदद करना। जर्नल ऑफ एजुकेशनल इनोवेशन, 9 (1), 29-45. https://doi.org/10.1016/j.joi.2023.03.004। 21 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
29. सिंह, ए. और कुमार, आर. (2022)। ए. आई.-संचालित व्यक्तिगत शिक्षाः एक भारतीय दृष्टिकोण। शैक्षिक समीक्षा, 74 (4), 431-448. https://doi.org/10.1080/00131911.2021.1940668। 23 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
30. सिंह, आर. और शर्मा, वी. (2023)। भारतीय विद्यालयों में व्यक्तिगत शिक्षा पर ए. आई. का प्रभावः संलग्नता और शैक्षणिक उपलब्धि। भारतीय शैक्षिक समीक्षा, 59 (2), 15-32. https://doi.org/10.1016/j.edurev.2023.07.003। 22 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
31. श्रीनिवासन, आर., और राव, ए. (2022)। भारतीय शिक्षा में ए. आई. एकीकरण की नैतिक चुनौतीः मजबूत मानकों के लिए सिफारिशें। जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन रिसर्च, 14 (1), 77-89। 19 सितंबर, 2024 को [रिसर्चगेट] (https://www.researchgate.net/publication/360123456) से लिया गया।

32. वर्मा, एस., और रेड्डी, के. (2023)। भारतीय शैक्षिक परिवेश में ए. आई. के नैतिक विचारः एक व्यापक समीक्षा। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशन टेक्नोलॉजी, 21 (1), 5-18। 22 सितंबर, 2024 को [जर्नल ऑफ एजुकेशन] (https://www.journalofeducation.com) से लिया गया।
33. यादव, पी., और गुप्ता, आर. (2022)। भारत में शिक्षण प्रथाओं पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभावः एक व्यवस्थित समीक्षा। शैक्षिक प्रौद्योगिकी अनुसंधान और विकास, 70 (1), 145-161. https://doi.org/10.1007/s11423-021-09928-8। 24 जुलाई, 2024 को प्राप्त किया गया।
34. झाओ, एक्स., और वांग, टी. (2023)। शिक्षा में ए. आई. के भविष्य के रुझानः संभावनाएं और चुनौती। कंप्यूटर और शिक्षा, 173,104227. https://doi.org/10.1016/j.compedu.2021.104227। 20 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।
35. झेंग, एच., और ली, वाई. (2023)। शिक्षा में ए. आई.-संवर्धित मूल्यांकन विधियाँः वर्तमान प्रथाएँ और भविष्य की दिशाएँ। जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी, 115 (3), 558-573. https://doi.org/10.1037/edu0000552। 22 सितंबर, 2024 को प्राप्त किया गया।

12

पर्यावरणीय विधिशास्त्र: मुद्दे एवं चुनौतियाँ

अभय प्रसाद सिंह
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,पीजीडीएवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. सोनम
सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग, शहीद भगत सिंह सांध्य महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. कृष्ण मुरारी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

समकालीन नीति विमर्श में पर्यावरण संरक्षण के मुद्दे ने राजनीति और शासन विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय शासन के विमर्श ने प्रधानता हासिल कर ली है। इसमें राज्य नीतियों और शासन के बारे में प्रश्न शामिल हैं जिसके केंद्र में संसाधन उपयोग के तौर-तरीके और इन सबका हमारे पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका विधिगत समाधान ढूँढना है। पर्यावरण का तात्पर्य प्रकृति के भौतिक पहलुओं, पारिस्थितिकी तंत्र और हमारे चारों ओर मौजूद जीवित और निर्जीव घटकों की पूरी श्रृंखला से है। प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव का प्रभाव कई कारकों पर निर्भर करता है: प्रकृति के प्रति सांस्कृतिक दृष्टिकोण; सामाजिक और आर्थिक संगठनों के तरीके; और उस प्रकार की राजनीतिक प्रक्रिया जो या तो पर्यावरण की रक्षा कर सकती है या उसे नुकसान पहुँचा सकती है (डॉयल, मैकएचेर्न और मैकग्रेगर, 2016:16)।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि हाल ही में पर्यावरण के प्रति चिंता नीति प्रक्रिया एवं विधिशास्त्रीय विमर्श एवं निर्वाचन में प्रतिध्वनित हो रही है। लेकिन असली चुनौती समस्या के मूल कारणों को दूर करने के लिए सर्वसम्मति से एक ठोस रूपरेखा तैयार करने की है। इसके लिए सभी देशों को पिछली भूलों को कम करने का बोझ साझा करने के लिए नैतिक और राजनीतिक जिम्मेदारी के कुछ पारस्परिक रूप से सहमत सिद्धांतों के अनुसार मिलकर काम करना होगा। औद्योगिकीकरण के उपरांत प्रयुक्त विकास प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण के बीच के संबंध की समझ विकसित करना महत्वपूर्ण है जिसने अभूतपूर्व आर्थिक प्रगति सुनिश्चित किया था लेकिन कालांतर में अपूरणीय पर्यावरणीय क्षति पहुंचाकर आने वाले समय के लिए मानव-पर्यावरण सम्बन्ध की प्रकृति में अकल्पनीय बदलाव ला दिया है।

पर्यावरण और विकास: एक सैद्धांतिक विमर्श

आर्थिक संवृद्धि एवं संपन्नता को सभ्यताओं के द्वारा विकास का पर्याय माना जाता रहा है और असीमित आर्थिक विकास मात्र मानो मानव जाति का उद्देश्य बन गया है जिसने बदले में इस पूरे ग्रह को अस्थिर बना दिया है (बहुगुणा, 1995: 221)। विकास में अधिकांश समकालीन सोच की जड़ें ज्ञानोदय युग में हैं, जिसे तर्क का युग माना जाता है, जिसने प्रगति, विकास और सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाओं को आकार दिया (पावर, 2014: 98)। आधुनिकीकरण सिद्धांत में आर्थिक संवृद्धि के चरणों का सैधांतिक सूत्रीकरण डब्ल्यू.डब्ल्यू रोस्टो (1960) जैसे लोगों द्वारा की गई। रोस्टो ने दावा किया कि प्रत्येक समाज आर्थिक विकास के पाँच चरणों से गुज़रेगा जैसा कि

विकसित औद्योगिक देश गुज़रे थे। यह यूरोकेंद्रित सिद्धांत गहन मशीनीकरण और बड़े पैमाने पर उत्पादन पर जोर देते हैं। इस सिद्धांत में विकास को औद्योगीकरण, आर्थिक प्रगति और प्रचुरता के रूप में समझा जाता है।

पिछली सदी में हमने औद्योगिक विकास के इस प्रतिमान का विस्तार पश्चिम से लेकर दुनिया के सभी हिस्सों तक देखा है। औपनिवेशिक विरासतों ने उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में विकास प्रथाओं को आकार दिया। उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद ये नव स्वतंत्र देश विकसित राष्ट्रों के साथ बराबरी करने की बेताब कोशिश कर रहे थे। इसके लिए, वे सरकारें अक्सर स्वास्थ्य, आवास, औद्योगिक विकास, बिजली और बुनियादी ढांचे के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर राज्य-नियंत्रित विकास परियोजनाओं को आगे बढ़ाती थीं। हालाँकि इन समाजों में विकास के लिए ये उपक्रम आवश्यक थे, लेकिन यह सब पर्यावरण की कीमत पर हुआ। विकास के इस ढाँचे ने शहरी ग्रामीण अभिजात वर्ग के हितों को साधने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप के माध्यम से संसाधनों की तीव्र मात्रा को निवेशित किया (गाडगिल और गुहा, 2000: 172)। यहां पूंजीवादी विकास के साथ अंतर्निहित समस्या यह है कि उसे लगातार नए उत्पादों के लिए उपभोक्ता मांग पैदा करके लाभ कमाने की आवश्यकता होती है, भले ही इसका मतलब पारिस्थितिकी तंत्र को उस बिंदु तक विस्तारित करना है जहां यह विकास या अपनी वहन क्षमता की भौतिक सीमाओं को पार कर जाता है (हैनिगन, 1995: 20)।

हालाँकि, अधिकांश समाजों में शुरू से ही विकास के पश्चिमी प्रतिमान के ख़िलाफ़ सवाल उठते रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारत में गांधी और उनके अनुयायियों ने ग्राम गणराज्यों के कृषि समाज पर आधारित विकास का संधारणीय प्रतिमान पेश किया। चूँकि यह प्रतिमान शहरों के लिए अपेक्षित अधिशेष उत्पन्न नहीं कर सका, इसलिए इसे आदिम, अल्पविकसित और अवैज्ञानिक करार दिया गया और इसे विकास के औद्योगिक प्रतिमान के पक्ष में खारिज कर दिया गया। विकास को केवल आर्थिक शब्दावली में परिभाषित करने की प्रवृत्ति अत्यधिक समस्याग्रस्त रही है। यह इस प्रक्रिया को संपूर्णता में पकड़ने में विफल रहता है। विकास के औद्योगिक प्रतिमान प्रतिमान ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और विलुप्ति को अत्यधिक तीव्र कर दिया है।

20वीं सदी में, अधिशेष कृषि उत्पादन के लिए रासायनिक गहन कृषि, व्यापक खनन और जुनूनी औद्योगीकरण ने प्रकृति के चक्र को बाधित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरता कम हो गई है, कई जैव रूपों का सफाया हो गया है, पृथ्वी की महत्वपूर्ण समर्थन प्रणालियों को नष्ट कर दिया है, सार्वजनिक स्वास्थ्य को कमजोर कर दिया है और गरीबों की आजीविका को नष्ट कर दिया है, यह सब विकास के नाम पर किया गया है (देब, 2009: 7)। लेकिन दुनिया प्रकृति को पहले ही हो चुकी अपरिवर्तनीय पर्यावरण क्षति और इस बदले हुए भौतिक वातावरण से उत्पन्न होने वाली नई बाधाओं के कारण काफी देर से जगी है। ऐसे दृष्टिकोणों की सीमाओं को महसूस करते हुए सतत विकास की अवधारणा को 20वीं सदी के उत्तरार्ध में लोकप्रिय बनाया गया।

संधारणीय विकास के लिए पर्यावरण-अनुकूल तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है जो प्राकृतिक संसाधनों को बिना सोचे-समझे बर्बाद नहीं करेंगे। इसने मानव जाति को भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों को बचाने के उनके कर्तव्य की याद दिलायी। पारिस्थितिकवाद, हरित उपभोक्तावाद और ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों के उपयोग पर जोर दिया गया। सतत विकास को ब्रंटलैंड आयोग 1987 द्वारा परिभाषित किया गया था, 'ऐसा विकास जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है' (ब्रंटलैंड कमीशन रिपोर्ट, 1987)।

आधुनिक विकास और पर्यावरणीय त्रासदी

सत्रहवीं शताब्दी के बाद से आधुनिकता और आधुनिक विज्ञान के आगमन के साथ मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य बिगड़ गया है। पूंजीवादी विकास आधुनिक विज्ञान पर आधारित है जो प्रकृति को महज संसाधन स्रोत के रूप में देखता है। इस अर्थ में हम देखते हैं कि जिस तरह से विज्ञान का प्राकृतिक संसाधनों के नियंत्रण एवं दोहन के लिए प्रयोग किया गया है, उसने पर्यावरण के लिए बड़ी त्रासदी पैदा की है। इस नई शुरुआत ने मानव जाति की प्रगति और कल्याण की धारणा को नया अर्थ प्रदान किया। नए या आधुनिक विज्ञान को ज्ञानोदय की विरासत के रूप में देखा गया और इसलिए इसने मुक्ति की वही भाषा बोली जिससे अज्ञानी और सांसारिक दुनिया को वास्तव में मुक्त दुनिया में बदल दिया गया। तकनीकी प्रगति ने बढ़ती आबादी को सहारा देने के लिए कम भूमि से अधिक भोजन, चारा, फाइबर का उत्पादन करके बुनियादी समस्याओं को हल करने की नई संभावनाएं खोल दी हैं (स्वामीनाथन, 1995: 99)। हालाँकि, यह व्यापक धारणा कि आधुनिक विज्ञान बिल्कुल सुधारात्मक है, संदिग्ध हो सकता है। विज्ञान की महत्ता की उपेक्षा करने या उसकी प्रासंगिकता कम करने के किसी भी इरादे के बिना, कोई यह देख सकता है कि नए विज्ञान द्वारा कई दूरगामी पर्यावरणीय परिवर्तन लाए गए हैं। गौरतलब है कि इस तरह की सभी पहल शक्तिशाली वर्गों के भारी व्यावसायिक हित से जुड़ी हैं और इनका गरीबों और वंचितों से कोई लेना-देना नहीं है। अब तक, विज्ञान और प्रगति के इतिहास की मदद से हम जानते हैं कि विकास विज्ञान के ऐतिहासिक प्रक्षेपवक्र में जानबूझकर चूक हुए हैं, खासकर जिस तरह से इसका प्रयोग किया गया है। किसी को भी मजबूत व्यावसायिक हितों से जुड़ी सत्ता की राजनीति के स्पष्ट खेल को देखना दिलचस्प लगता है, जिसने आधुनिक विज्ञान के विकास के ऐतिहासिक विवरण में चूक को निर्धारित किया।

वैज्ञानिक क्रांति, पूंजीवादी विकास एवं पर्यावरण

वैज्ञानिक क्रांति का पूंजीवादी बाजारों को बनाने और नियंत्रित करने तथा नए क्षेत्रों में उनके विस्तार की इच्छा में गहरा संबंध रहा है। इस प्रक्रिया में यह पूंजीवादी संरचना और बाजार अर्थव्यवस्था के साथ अपने अटूट संबंधों को उजागर करता है। एक प्रणाली के रूप में, पूंजीवाद अस्थिर हो सकता है स्वार्थी निगमों की प्रवृत्ति के कारण वनों की कटाई, प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याएं पैदा होती हैं। विज्ञान बल का उपकरण इतना अशुद्ध हो गया है कि प्रत्यक्षवादियों द्वारा बताई गई पवित्रता की अवधारणा का वास्तव में कोई मतलब नहीं रह जाता है (कॉनर, 1994: 139)। पूंजीवादी और समाजवादी दोनों संदर्भों में विकास परियोजनाओं ने स्थानीय समुदायों की परंपराओं में निहित वैकल्पिक ज्ञान प्रणालियों को अमान्य करते हुए प्रौद्योगविद् की शक्ति को बढ़ाया है, जिससे वे मताधिकार से वंचित हो गए हैं (डोनेला, 1972)।

यह देखना दिलचस्प है कि विज्ञान और आधुनिकता के बारे में ऐसे सार्वभौमिक प्रस्तावों को किस तरह से खारिज कर दिया गया है और छोड़ दिया गया है। राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में, उत्तर आधुनिकतावाद 1980 के दशक से एक मजबूत पर्यावरण-विकास नीति प्रारूप के रूप में उभरा है। इस सैधांतिक परिपेक्ष्य ने प्राकृतिक विज्ञान की निष्पक्षता, सार्वभौमिक प्रतिमान निर्माण परियोजनाओं और विचारहीन एकरूपता को खारिज कर दिया। इसके विपरीत इसने अनुभवों और अस्तित्व की बहुलता और स्थानीयकृत निष्कर्षों का समर्थन किया जो इसमें शामिल लोगों के जीवन के संदर्भ को समझ सकें।

भारत में उपनिवेशवादी विकास का पर्यावरणीय परिणाम

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उदारता में निर्विवाद विश्वास और यह विश्वास कि वे विकास की ओर ले जाते हैं, ने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विमर्श को बढ़ावा दिया है। विकासशील समाजों में पर्यावरण की कई समकालीन समस्याएँ वास्तव में उपनिवेशवादियों की असंवेदनशील और शोषणकारी नीतियों में निहित हैं। वास्तव में, औपनिवेशिक विजय और नियंत्रण को अधिकांश पर्यावरण इतिहासकारों जैसे कि रामचन्द्र गुहा, माधव गाडगिल और अन्य द्वारा एक पारिस्थितिक विभाजक के रूप में देखा जाता है, क्योंकि इससे उपनिवेशों में पर्यावरण में अभूतपूर्व व्यवधान उत्पन्न हुआ है।

अब यह व्यापक रूप से माना जाता है कि ब्रिटिश मेट्रोपोल ने कच्चे माल, संसाधनों, वस्तुओं, फसलों और खनिजों (कुमार, दामोदरन, और डिसूजा, 2011) के लिए भारी भूख के साथ, प्राकृतिक दुनिया पर ऐतिहासिक रूप से अभूतपूर्व मांग को प्रेरित, उत्तेजित और उत्पन्न किया। वे अपने आर्थिक हितों के विस्तार के लिए संसाधनों के असीमित भंडार पर नियंत्रण करते थे। अधिकांश औपनिवेशिक नीतियों के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर दोहन हुआ। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप में जंगलों का बड़े पैमाने पर विनाश हुआ जब उन्होंने अंग्रेजी ओक की अपनी आपूर्ति समाप्त होने के बाद अपने जहाज निर्माण के लिए भारतीय सागवान का सहारा लिया। ब्रिटेन ने अपने नये अधिग्रहीत उपनिवेशों के जंगलों को उजाड़कर वन संसाधन के उत्पाद की अपनी सारी आवश्यकता पूरी की।

ऐसी नीतियों ने न केवल क्षेत्र के अच्छे पारिस्थितिक संतुलन को तबाह कर दिया बल्कि उन्होंने शिकारी-संग्रहकर्ता समुदायों के जीवन पर भी प्रतिकूलता ला दी जो सामूहिक रूप से इन परिवर्तनों का विरोध करने के लिए सक्षम नहीं थे। ब्रिटिश राज की वन प्रबंधन नीतियों ने कच्चे माल के पारंपरिक स्रोत तक पहुंच को भी प्रतिबंधित कर दिया। इससे भारत में कारीगर उद्योग के विभिन्न रूपों का भी पतन हुआ। सौभाग्य से अब, नई पर्यावरणीय विमर्श इन प्रक्रियाओं के पारिस्थितिक निहितार्थों को उजागर कर रही हैं। आधुनिकतावाद ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विचार को दुनिया की मौलिक लाभकारी शक्ति के रूप में भी स्थापित किया। इसने यह विश्वास स्थापित किया कि पश्चिमी तकनीक हर किसी की समस्याओं का समाधान है। उन्होंने संसाधन आपूर्ति की समस्याओं को हल्के में लिया और सोचा कि अधिक प्रौद्योगिकी की आपूर्ति करके पर्यावरणीय समस्याओं से निपटा जा सकता है। इस तरह के विचार प्रबुद्ध सोच में मौलिक विश्वास से आते हैं, जो राजनीतिक दार्शनिकों और सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा साझा किए गए हैं, जो समझ यूरोप केंद्रित ढांचे में निहित हैं, जिन्होंने समाज को जानने, जीने और व्यवस्थित करने के वैकल्पिक तरीकों को कभी स्वीकार नहीं किया।

भारत में पर्यावरण पर संवैधानिक प्रावधान और नीतियां

पर्यावरण के प्रति चिंता भारत में एक महत्वपूर्ण विषय है और यह काफी हद तक अंतरराष्ट्रीय संधियों और प्रोटोकॉल का परिणाम है, जिस पर भारत एक हस्ताक्षरकर्ता है। ब्रिटिश शासन के तहत राज्य द्वारा पारित अधिकांश कानून वन कानून थे। यह मूल रूप से भारत के विशाल संसाधनों के दोहन पर ब्रिटिश शासन की प्राथमिकता के अनुरूप था। 1970 के दशक से पहले राज्य में विकास संबंधी चिंताएं हावी थीं और पर्यावरणीय गिरावट की समस्या पीछे चली

गई थी। 1972 में, स्टॉकहोम में पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन ने इस बात पर प्रकाश डाला कि पर्यावरण का अस्तित्व मानव जाति के अस्तित्व के लिए एक आवश्यकता है। इसने भारत में पर्यावरण कानून में आधुनिक विकास की शुरुआत को चिह्नित किया।

एक संघीय देश के रूप में, भारत का संविधान केंद्र और राज्यों के बीच विधायी और प्रशासनिक दक्षताओं को विभाजित करता है। इस विभाजन को संविधान की अनुसूची VII में तीन अलग-अलग सूचियों में विभाजित किया गया है, जिसमें केंद्र सरकार के पास कानून की "अवशिष्ट" शक्तियां हैं जो उसे राज्य (सूची II) या समवर्ती सूची (सूची III) में स्पष्ट रूप से शामिल नहीं किए गए किसी भी विषय पर कानून बनाने की अनुमति देती है (अनुच्छेद 248)।

भारतीय संविधान मुख्य रूप से केंद्र-राज्य संबंधों पर आधारित है। 1992 तक, संविधान के भाग IV में अनुच्छेद 40 को छोड़कर, इसमें शायद ही स्थानीय सरकार के बारे में बात की गई थी। यह अनुच्छेद निर्देश देता है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हों। स्थानीय सरकार और ग्राम प्रशासन राज्य सूची का एक विषय है। इसलिए, राज्यों को ही स्थानीय सरकारें स्थापित करनी हैं। 1992 में, 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों द्वारा ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों को संविधान में जोड़ा गया। जबकि ग्यारहवीं अनुसूची राज्य विधानमंडल और पंचायत के बीच शक्तियों का वितरण करती है; बारहवीं अनुसूची राज्य विधानमंडल और नगर पालिका के बीच शक्तियों का वितरण करती है। दोनों अनुसूचियों में पर्यावरण विषय शामिल हैं।

संविधान में स्थानीय स्वशासन से संबंधित प्रावधान यह गारंटी देता है कि ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियां केवल पंचायतों और नगर पालिकाओं के लिए सुझाए गए पर्यावरणीय कार्यों को संपादित करेगा। राज्य इनमें से सभी या कुछ सूचीबद्ध कार्यों को पंचायतों और नगर पालिकाओं को सौंपने के लिए बाध्य नहीं हैं। हालाँकि, स्थानीय सरकारें सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, कचरा संग्रहण और सीवेज जैसे कुछ पर्यावरणीय कार्य करती हैं।

भारत में प्रदूषण के प्रबंधन और रोकथाम को कई कानून नियंत्रित करते हैं। भारत में "प्रदूषण" एक ऐसा विषय है जो ऊपर उल्लिखित किसी भी संवैधानिक सूची में स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होता है, हालांकि "सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता" और "जल" दोनों को राज्य विषयों के रूप में सूची II में वर्णित किया गया है। हालाँकि, रचनात्मक रूप से विधायी प्रक्रिया पर काम करके, केंद्र सरकार ने 1970 और 1980 के दशक में वायु और जल प्रदूषण दोनों पर राष्ट्रीय कानून का मसौदा तैयार किया।

जल प्रदूषण के मामले में, संघीय सरकार ने एक संवैधानिक प्रावधान का उपयोग किया जो उसे राज्य के विषय पर कानून बनाने की अनुमति देता था जब कम से कम दो राज्य ऐसे कानून का अनुरोध करते थे एक तथ्य यह है कि जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 इसका उल्लेख करता है। जल अधिनियम ने जल प्रदूषण को भी परिभाषित किया और प्रत्येक राज्य में सहायक राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (एसपीसीबी) के साथ एक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) की स्थापना की।

वायु प्रदूषण के मामले में, केंद्र सरकार ने एक अलग संवैधानिक प्रावधान का उपयोग किया - एक जो उसे अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए कोई भी कानून पारित करने की विधायी क्षमता देता है, भले ही ऐसे कानून का विषय अन्यथा विधायी दक्षताओं के विभाजन का उल्लंघन करता हो। वायु (प्रदूषण और प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम, 1981 इस प्रकार बताता है कि इसे स्टॉकहोम सम्मेलन के तहत भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को आगे बढ़ाने के लिए पारित किया गया था। वायु अधिनियम जल अधिनियम के तहत स्थापित सीपीसीबी को राज्य सरकारों के परामर्श से वायु गुणवत्ता मानकों को निर्धारित करने का अधिकार देता है और राज्य और केंद्रीय बोर्डों को वायु प्रदूषण को रोकने, नियंत्रित करने और कम करने का अधिकार देता है। आमतौर पर, सीपीसीबी केंद्र सरकार के सीधे अधिकार के अधीन है और एसपीसीबी को संबंधित राज्य सरकारों के साथ-साथ सीपीसीबी दोनों के निर्देशों के अनुसार कार्य करना चाहिए।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में तीसरा महत्वपूर्ण कानून, जिसे केंद्र सरकार ने वायु अधिनियम के रूप में एक तर्क का उपयोग करके पारित किया था - यानी 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में लिए गए निर्णयों को लागू करना। ईपीए मुख्य रूप से एक रूपरेखा कानून है जो केंद्र सरकार को पर्यावरण की रक्षा और प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नियमों का मसौदा तैयार करने की व्यापक शक्तियाँ देता है। ईपीए में वैधानिक समितियों की स्थापना के लिए सक्षम प्रावधान भी शामिल हैं जो तकनीकी विशेषज्ञता और विशेष सलाह प्रदान कर सकते हैं। ऐसी समितियाँ मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं क्योंकि अदालतें अक्सर सलाह के लिए और अदालतों के आदेशों के कार्यान्वयन की देखरेख और निगरानी के लिए उन पर भरोसा करती हैं। उदाहरण के लिए, सीएनजी मामले के संदर्भ में, केंद्र सरकार ने ईपीए, पर्यावरण प्रदूषण (रोकथाम और नियंत्रण) प्राधिकरण के तहत एक समिति की स्थापना की जिसमें सभी प्रमुख हितधारकों का प्रतिनिधित्व था। प्राधिकरण की संरचना और विशेषज्ञता उच्चतम न्यायालय को मामले में तथ्य जाँच समिति के रूप में उस पर भरोसा करने के लिए प्रेरित करेगी (रोसेंक्रांज़ एवं जैक्सन, 2003: 223-244)।

इन परिस्थितियों में न्यायपालिका की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। शोध विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि न्यायिक भूमिकाएँ उन मुद्दों में महत्वपूर्ण हो सकती हैं जहाँ समाधान में महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक परिणाम शामिल है (टेट, 1993: 311-338)। यह भारत में विशेष रूप से सच है जहां न्यायपालिका के आदेश की व्यापक वैधता है - जिन राजनीतिक दलों पर एक अलोकप्रिय अदालत के आदेश को लागू करने का आरोप लगाया गया है, वे सीधे इसके लिए अदालतों के निर्णयों का हवाला देकर अपने निर्णयन की जिम्मेदारी से बच सकते हैं।

भारत में पर्यावरण न्यायशास्त्र का प्रक्षेप पथ

भारत में उच्चतर न्यायपालिका ने अपनी सक्रियता के माध्यम से संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को मजबूत करने में सक्रिय योगदान दिया है। इसके अलावा 42 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1972 को अधिनियमित करने के पीछे सुविधा एजेंट के रूप में भी काम किया है। इस संशोधन ने कुछ पर्यावरणीय कर्तव्यों को पेश किया है: नागरिकों का हिस्सा (अनुच्छेद 51ए(जी)) और राज्य का (अनुच्छेद 48ए)।

संवैधानिक योजना के तहत अनुच्छेद 51(ए)(जी) और 48ए की कानूनी स्थिति प्रकृति में सक्षम है और कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है हालांकि, ऐसे प्रावधानों को अक्सर भारतीय अदालतों द्वारा कानूनी रूप से बाध्यकारी के रूप

में व्याख्या किया गया है। इसके अलावा, इन प्रावधानों का उपयोग अदालतों द्वारा अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के हिस्से के रूप में पर्यावरण के कानूनी रूप से बाध्यकारी मौलिक अधिकार को उचित ठहराने और विकसित करने के लिए किया गया है। एस्बेस्टस इंडस्ट्रीज मामले में उच्चतम न्यायालय ने बड़े पैमाने पर कई अंतरराष्ट्रीय कानूनों का हवाला दिया जैसे आईएलओ एस्बेस्टस कन्वेंशन, 1986, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948, और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का सम्मेलन, 1966 (उपभोक्ता शिक्षा एवं अनुसंधान केंद्र एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1995) 3 एससीसी 42)। इस मामले में अदालत ने एस्बेस्टस उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों के व्यावसायिक स्वास्थ्य खतरों से संबंधित मुद्दों पर विचार किया। अदालत ने माना कि ऐसे श्रमिकों के स्वास्थ्य का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है और अधिकारियों को विस्तृत निर्देश जारी किए। कलकत्ता वेटलैंड केस में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कहा कि भारत वेटलैंड पर रामसर कन्वेंशन, 1971 का पक्षकार होने के नाते वेटलैंड्स के संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए बाध्य है (पीपल यूनाइटेड फॉर बेटर लिविंग इन कलकत्ता बनाम ईस्ट कोलकाता वेटलैंड्स मैनेजमेंट अथॉरिटी, एआईआर 1993 सीएएल 215)।

वर्तमान में भारत में अधिकांश पर्यावरणीय न्यायिक निर्णय संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत दिए गए हैं। अनुच्छेद 32 के तहत निर्देश जारी करने कीउच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ और अनुच्छेद 226 के तहत आदेश जारी करने की उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ पर्यावरणीय न्यायशास्त्र में बहुत महत्वपूर्ण रही हैं। न्यायालयों ने इन शक्तियों का उपयोग अतीत की दुर्भावनाओं/खामियों को दूर करने और पर्यावरण पर तत्काल और भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की जाँच करने के लिए किया है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए उच्चतर न्यायालयों द्वारा एक बेहतर प्रणाली विकसित करने के लिए कुछ सिद्धांतों का प्रतिपादन एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। भोपाल गैस त्रासदी मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के तहत निर्देश या आदेश जारी करने की शक्ति के दायरे को समझाते हुए खतरनाक और स्वाभाविक रूप से खतरनाक उद्योगों से होने वाले नुकसान के लिए 'पूर्ण दायित्व का सिद्धांत' तैयार किया, जो भी उनकी संबंधित कार्यवाही में उचित हो सकता है। न्यायालय के अनुसार, इस शक्ति का उपयोग नए उपचार/समाधान सुनिश्चित करने और नई रणनीतियां तैयार करने के लिए किया जा सकता है (यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (1990 एआईआर 273, 1989 एससीसी (2) 540)।

उच्चतम न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से अनुच्छेद 32 के दायरे का विस्तार किया है और इसका उपयोग पर्यावरण की सुरक्षा के लिए नई रणनीतियाँ बनाने में कर रहा है। उदाहरण के लिए, 'एहतियाती सिद्धांत' और 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत', जो सतत विकास की अवधारणा के वियुत्पन्न सिद्धांत हैं, को उचित कार्यवाही में अनुच्छेद 32 को बढ़ावा देकर पर्यावरण की सुरक्षा के संदर्भ में अदालतों द्वारा लागू किया जा रहा है। इस प्रकार, पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर गिरावट के प्रभाव को रोकने के लिए अदालत ने 'एहतियाती सिद्धांत' लागू किया है जिसके अनुसार राज्य और वैधानिक अधिकारियों को उचित उपाय करके पर्यावरणीय गिरावट के सभी कारणों की परिकल्पना करनी चाहिए और उन्हें रोकना चाहिए। इसके अलावा, इस सिद्धांत के अनुसार यह हमेशा उद्योगपतियों का दायित्व है कि वे राज्य प्राधिकरण को दिखाएं कि उनका उद्योग पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित होगा और हानिकारक नहीं होगा। पर्यावरण और पर्यावरण प्रदूषण के पीड़ितों दोनों को न्याय दिलाने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा 'प्रदूषक भुगतान करेगा' सिद्धांत का उपयोग पहले ही कई मामलों में किया जा चुका है। इस सिद्धांत के अनुसार क्षतिग्रस्त पर्यावरण का सुधार सतत विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है और इस प्रकार प्रदूषक क्षतिग्रस्त

पारिस्थितिकी के संरक्षण की लागत के साथ-साथ पीड़ित की लागत भी वहन करने के लिए उत्तरदायी है। 'सार्वजनिक विश्वास' का यह दर्शन हमारी संवैधानिक प्रतिबद्धताओं में मौजूद है और हमारी न्यायपालिका इसे बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है।

रतलाम नगर परिषद बनाम वरदीचंद (एआईआर 1980 एससी 1622) के प्रसिद्ध मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय वैधानिक अधिकारियों पर सार्वजनिक उपद्रव को कम करने और लोगों के प्रति अपने कानूनी दायित्व का निर्वहन करने के लिए दायित्व निर्धारित करके कानून के शासन के सामाजिक न्याय घटक को बनाए रखने में न्यायिक सक्रियता के इतिहास में एक मील का पत्थर है। बजटीय बाधा होने पर भी पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त है। इस मामले में, जे. कृष्णा अय्यर ने कहा कि, "सामाजिक न्याय उचित है और इसलिए लोगों को किसी भी सार्वजनिक कामकाज में अपने लाभ के लिए निहित अधिकार क्षेत्र को लागू करने में सक्षम होना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने जनहित याचिका को अदालतों के संवैधानिक दायित्व के रूप में मान्यता दी।

पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1982 एआईआर 1473) के मामले का परिणाम यह हुआ कि उच्चतम न्यायालय अब किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के संवैधानिक और कानूनी अधिकारों को लागू करने के लिए "सार्वजनिक रूप से उत्साही नागरिकों" के उदाहरण पर जनहित याचिका या सामाजिक हित याचिका की अनुमति देता है, जो अपने सामाजिक या आर्थिक रूप से वंचित स्थिति राहत के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाने में असमर्थ है। जनहित याचिका न्याय की भागीदारी की प्रक्रिया का एक हिस्सा है और उस पैटर्न के नागरिक मुकदमेबाजी में न्याय के दरवाजे पर उदार स्वागत होना चाहिए।

श्रीराम फूड्स एंड फर्टिलाइजर इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (एआईआर 1987 एससी 1086) मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब खतरनाक उत्पादों का निर्माण और बिक्री होती है तो श्रमिकों और पड़ोस में रहने वाले समुदाय के लिए खतरे को कम करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। यह माना गया कि इस मुद्दे पर विचार लंबित है कि क्या कास्टिक क्लोरीन संयंत्र को किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरित करने का निर्देश दिया जाना चाहिए; प्रबंधन द्वारा कास्टिक क्लोरीन संयंत्र को कुछ सख्त शर्तों के अधीन फिर से शुरू करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जो निर्दिष्ट थीं।

वेल्लोर नागरिक कल्याण मंच बनाम भारत संघ (एआईआर 1996 एससी 2715) के ऐतिहासिक मामले में वेल्लोर में पलार नदी के आसपास स्थित चमड़े के कारखानों को नदी में जहरीले रसायन छोड़ते हुए पाया गया, जिससे निवासियों का स्वास्थ्य खतरे में पड़ गया। अंततः,उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि संबंधित चमड़े के कारखानों को अपना व्यवसाय बंद कर देना चाहिए और कहीं और स्थानांतरित होना चाहिए। इस अदालत ने फैसला सुनाया कि 'एहतियाती सिद्धांत' और 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' देश के पर्यावरण कानून का हिस्सा हैं। इस अदालत ने अनुच्छेद 47, 48ए और 51ए (जी) को पर्यावरण की रक्षा और सुधार के लिए संवैधानिक जनादेश का हिस्सा घोषित किया।

मेहता और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (एआईआर 1987 एससी 1086) मामले में अदालत ने निर्देश दिया कि उद्यम को सुरक्षा उपायों के उच्चतम मानकों को अपनाना चाहिए और यदि ऐसी गतिविधि के कारण कोई नुकसान

होता है, तो उद्यम को इस तरह के नुकसान की भरपाई करने के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होना चाहिए और उद्यम के लिए यह कहने का कोई जवाब नहीं होना चाहिए कि उसने ऐसा किया है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ और अन्य (ला नंबर. 14 ऑफ़ 1999, रिट पिटीशन (सी) नंबर. 319 ऑफ़ 1994) मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पानी मनुष्य के अस्तित्व के लिए मूलभूत आवश्यकता है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित जीवन के अधिकार और मानव अधिकारों का हिस्सा है। स्वस्थ पर्यावरण और सतत विकास का अधिकार जीवन के अधिकार में निहित मौलिक मानवाधिकार हैं।

एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (एआईआर 2001 एससी 1948) मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना कि दिल्ली में वाहनों के उत्सर्जन से होने वाला वायु प्रदूषण संविधान के अनुच्छेद 21 तहत जीवन के अधिकार का उल्लंघन करता है। लोगों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए दिल्ली में चलने वाले सभी वाणिज्यिक वाहनों को सीएनजी ईंधन पर परिवर्त्तित करने का निर्देश दिया।

गोदावर्मन थिरुमुलपाद बनाम भारत संघ और अन्य (31 जनवरी 2024) मामले में शीर्ष अदालत की पीठ ने यह कहते हुए फैसले का निष्कर्ष निकाला कि संवैधानिक अदालतों की भूमिका यह सुनिश्चित करना है कि ऐसे पर्यावरणीय निकाय जीवंत रूप से कार्य करें, और उन्हें मजबूत बुनियादी ढांचे और मानव संसाधनों द्वारा सहायता प्रदान की जाए। संवैधानिक अदालतें इन संस्थानों के कामकाज की निगरानी करेंगी ताकि पर्यावरण और पारिस्थितिकी न केवल संरक्षित रहे बल्कि समृद्ध भी हो (फ्री लॉ, 2024)।

गोदावर्मन थिरुमुलपाद बनाम भारत संघ और अन्य (मार्च 06, 2024) मामले में उच्चतम न्यायालय की बेंच ने जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क में अवैध निर्माण और पेड़ों की कटाई के लिए उत्तराखंड के पूर्व वन मंत्री और प्रभागीय वन अधिकारी को फटकार लगाई। इस निर्णय में कहा गया है कि यह सर्वविदित है कि जंगल में बाघ की उपस्थिति पारिस्थितिकी तंत्र की भलाई का एक संकेतक है। जमीनी हकीकत से इनकार नहीं किया जा सकता है कि कॉर्बेट नेशनल पार्क में बड़े पैमाने पर अवैध निर्माण और पेड़ों की अवैध कटाई जैसी घटनाओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसे रोकने के लिए कदम उठाने की जरूरत है (फ्री लॉ, 2024)।

एम के रंजीतसिंह और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (मार्च 21, 2024) मामले में ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (जीआईबी) और लेसर फ्लोरिकन की रक्षा के लिए शीर्ष न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया गया था, ये दोनों विलुप्त होने के कगार पर हैं। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारत संघ और संबंधित मंत्रालयों को वर्णित उपायों को लागू करने के लिए निर्देशित किया जाता है जिन्हें लागू करने का बीड़ा उठाया गया है (फ्री लॉ, 2024)।

तापस गुहा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (06 मई 2024) मामले में पीठ ने व्यापक मंजूरी गतिविधियों के कारण पर्यावरण मानदंडों के उल्लंघन पर चिंता व्यक्त की, क्योंकि सिलचर ग्रीनफील्ड हवाईअड्डा परियोजना का निर्माण आवश्यक पर्यावरणीय मंजूरी के बिना आगे बढ़ा। इसने फैसला सुनाया कि एनजीटी ने सिलचर ग्रीनफील्ड हवाईअड्डा परियोजना के निर्माण में हस्तक्षेप न करके अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया। पीठ ने एनजीटी के फैसले को पलट दिया और निर्देश दिया कि डोलू चाय एस्टेट में प्रस्तावित ग्रीनफील्ड हवाई अड्डे के निर्माण से संबंधित कोई भी कार्य तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि अनिवार्य पर्यावरणीय मंजूरी प्राप्त न हो जाए। इस

निर्णय में कहा कि प्रतिकूल पारिस्थितिक प्रभावों को कम किया जाए और पर्यावरण और स्थानीय दोनों की भलाई की रक्षा की जा सके। बुनियादी ढांचे के विकास के महत्व को स्वीकार करते हुए, यह सर्वोपरि है कि ऐसी परियोजनाएं पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता को होने वाली अपूरणीय क्षति को रोकने के लिए पर्यावरण कानूनों के अनुरूप आगे बढ़ें। इन मानदंडों का पालन करने में विफलता न केवल पर्यावरण प्रशासन की अखंडता को कमजोर करती है, बल्कि दीर्घकालिक पर्यावरणीय गिरावट और सामाजिक कलह का जोखिम भी उठाती है (फ्री लॉ, 2024)।

8 अप्रैल 2024 को उच्चतम न्यायालय ने जलवायु परिवर्तन की प्रकृति और भारत के संविधान में निहित अधिकारों पर कुछ टिप्पणियाँ भी दीं। स्पष्ट शब्दों में, उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि जलवायु परिवर्तन के परिणाम भारतीय संविधान में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हैं। इस प्रकार यह निर्णय मानव समाज पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के संबंध में देशों के बीच बढ़ती आम सहमति को उजागर करता है (केलकर ए. (2024)।

उपरोक्त मामलों की चर्चा के बाद हम कह सकते हैं कि पर्यावरण संरक्षण के संबंध में न्यायिक सक्रियता उल्लेखनीय है। उच्चतम न्यायालय काफी सक्रिय है और उसने जनहित याचिका के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के लिए कई निर्देश और विभिन्न कानूनी प्रावधान जारी किए हैं। उच्चतम न्यायालय लगातार उन कमियों को भरने की कोशिश कर रहा है जो कानून द्वारा छोड़ दी गई हैं। हमारी न्यायिक सक्रियता के माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कई नए विचार सामने रखे। न्यायिक सक्रियता के ये नए नवाचार देश की मदद के लिए कई रास्ते खोलते हैं।

कानूनी व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था से जुड़ी हुई है। राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की विफलता ने नागरिकों और गैर-सरकारी संगठनों को कानूनी व्यवस्था का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया है। फिर भी, सभी नीतिगत समस्याओं को हल करने के लिए अदालतें सबसे अच्छा स्थान नहीं हो सकती हैं, खासकर वे समस्याएं जिनमें महत्वपूर्ण राजनीतिक समझौता करना पड़ता है।

कई कानून होने के बावजूद कुछ में काफी कड़े प्रावधान हैं, यह कहना गलत नहीं होगा कि उल्लंघन के मामले में उन्हें अक्सर सम्मानित किया गया है। यह कुछ हद तक पर्यावरण कानूनों की प्रकृति के कारण ही है। वे आम तौर पर गैर-स्व-क्रियान्वित होते हैं और उन्हें पूरी तरह से लागू करने के लिए राजनीतिक और प्रशासनिक इच्छाशक्ति के साथ नीतियों और कानून की आवश्यकता होती है।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि केंद्र और राज्य, ज्यादातर परिस्थितियों में, संवैधानिक रूप से सह-बराबर हैं, उनके पास कई पर्यावरणीय कानूनों में अतिव्यापी प्राधिकरण और क्षमताएं हैं। राज्य और संघीय दोनों स्तरों पर नियमित और उत्सुकता से लड़े जाने वाले चुनाव पार्टियों के कई विशेष हितों के प्रति समर्पित होने का जोखिम बढ़ाते हैं जिनकी प्राथमिकताएँ अक्सर कुछ पर्यावरण कानूनों के विपरीत होती हैं। यह देखते हुए कि प्रदूषण एक बहु-स्रोत घटना है जिसके लिए प्रशासनिक सीमाओं के पार समन्वय की आवश्यकता होती है, इसमें कई निकायों के सहयोग की आवश्यकता होती है, जिनमें से प्रत्येक अलग-अलग दबाव समूहों का आभारी होता है। इससे पता चलता है कि प्रशासनिक स्तर पर प्रवर्तन विफलताएं कम से कम दो क्षेत्रों से उत्पन्न हो सकती हैं - एक, प्रदूषण से संबंधित विभिन्न मामलों पर अक्सर अतिव्यापी क्षेत्राधिकार वाले अधिकारियों के प्रसार से; और दूसरे,

विभिन्न हित समूहों से जो विभिन्न स्तरों पर नीतियों को प्रभावित करते हैं। जब सभी निकाय सह-समान होते हैं, तो निष्क्रियता के लिए दूसरे को दोषी ठहराना और अन्य पक्षों को अनुपालन के लिए मजबूर करने का काम अदालतों पर छोड़ना आसान हो जाता है।

जनता की भावना के प्रति न्यायालय की चेतना कई निर्णयों और सुनवाइयों में प्रतिबिंबित होती है जहां अदालतों ने मीडिया रिपोर्टिंग और मामलों के बारे में जनता की भावना के बारे में अपनी जागरूकता का संकेत दिया है। इसके अलावा, उच्चतम न्यायालय ने संपादक को लिखे पत्रों और समाचार पत्रों की रिपोर्टों के आधार पर मामलों का संज्ञान लेने के लिए अपनी स्वत: प्रेरणा शक्तियों का उपयोग किया है। इस तरह से देखने पर, न्यायालय एक सामाजिक रूप से अंतर्निहित अभिनेता है जो अपने संस्थागत अधिकार की सीमाओं को पहचानता है। यकीनन, ऐसी सीमाएं बदल सकती हैं यदि, उदाहरण के लिए, पर्यावरण संरक्षण के लिए संगठित निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा अधिक समर्थन मिलता है।

संविधानिक प्रावधानों, पर्यावरण नीतियों एवं विकास उपक्रम जनित पर्यावरणीय मुद्दों और चुनौतियों के न्यायायिक निर्वाचनों ने भारत में एक विशिष्ट विधिशास्त्र को विकसित करने में सफल रहा है। हालाँकि, भारत के इस पर्यावरणीय विधिशास्त्र की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि जन मानस की पर्यावरणीय चेतना कितनी विकसित है, पर्यावरण संरक्षण में उद्योगपतियों की सकारात्मक भूमिका कितनी है तथा पर्यावरण नीति व् न्यायायिक निर्णय का क्रियान्वयन कितना प्रभावित करती है।

संदर्भ सूची

1. बहुगुणा, एस.एल. (1995). डेवलपमेंट रीडिफाइंड. एम.एल. दीवान (सं.). *टुवर्ड्स ए सस्टेनेबल सोसाइटी: परसेप्संस*. नई दिल्ली: क्लेरियन बुक्स।
2. ब्रंटलैंड कमीशन रिपोर्ट (1987). *पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की रिपोर्ट: हमारा साझा भविष्य,* 1987. http://www.un-documents.net/our-common-future.pdf 16 जून 2023 को प्राप्त की गई।
3. उपभोक्ता शिक्षा एवं अनुसंधान केंद्र एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1995) 3 एससीसी 42।
4. कॉनर, मार्टिन ओ' (सं.) (1994). *इस कैपिटलिज्म सस्टेनेबल? पोलिटिकल इकॉनमी एंड पॉलिटिक्स ऑफ़ इकोलॉजी*. गिलफोर्ड प्रेस।
5. देब, डी. (2009). बियॉन्ड देवेलेप्मेंटालिटी: कंस्ट्रक्टिंग इंक्लूसिव फ्रीडम एंड सस्टेनेबिलिटी. दिल्ली: डेनिश बुक्स।
6. डोनेला, एम., डेनिस, एम., रैंडर्स, जे., और बेहरेंस, डब्ल्यू.डब्ल्यू. (1972). द *लिमिट्स टू ग्रोथ. ए रिपोर्ट* टू द *क्लब ऑफ़ रोम्स प्रोजेक्ट ऑन द प्रेदिकामेंट ऑफ़ मैनकाइंड*. न्यूयॉर्क: यूनिवर्स बुक्स।
7. डॉयल, टी., मैकएचेर्न, डी., और मैकग्रेगर, एस. (2016). *एनवायरनमेंट एंड पॉलिटिक्स: रूटलेज इंट्रोडक्शन टू एनवायरनमेंट सीरीज (तीसरा संस्करण)*. न्यूयॉर्क: रूटलेज।
8. फ्री लॉ. (2024). वर्ल्ड एनवायरनमेंट डे: रीसेंट उच्चतम न्यायालय जजमेंट ऑन एनवायरनमेंट प्रोटेक्शन, 5 जून, https://www.freelaw.in/legalarticles/World-Environment-Day-Recent-Supreme-Court-Judgments-on-Environment-Protection. 18 जून 2024 को प्राप्त किया।

9. गाडगिल, एम. और गुहा, आर. (2000). द *यूज़ एंड एब्यूज ऑफ़ नेचर*. ऑक्सफ़ोर्ड, न्यूयॉर्क: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. हैनिगन, जे. (1995). *एन्विरोंमेंटल सोशियोलॉजी*. यूएसए, कनाडा: रूटलेज।
11. केलकर ए. (2024). द इंडियन सुप्रीम कोर्ट'स लैंडमार्क जजमेंट ऑन क्लाइमेट चेंज: इम्प्लीकेशन गोइंग फॉरवर्ड, 9 मई. https://www.claws.in/the-Indian-supreme-courts-landmark-judgement-on-climate-change-implications-going-forward/ 18 जून 2024 को प्राप्त किया।
12. कुमार, डी., दामोदरन, वी., और डिसूजा, आर. (2011). इंट्रोडक्शन. कुमार, डी., दामोदरन, वी., और डिसूजा, आर. (सं.) एनवायरनमेंट एनकाउंटर्स इन साउथ एशिया: ब्रिटिश एम्पायर एंड द नेचुरल वर्ल्ड. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (एआईआर 2001 एससी 1948)
14. मेहता और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (एआईआर 1987 एससी 1086)
15. नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ और अन्य (ला नंबर. 14 ऑफ़ 1999, रिट पिटीशन (सी) नंबर. 319 ऑफ़ 1994)
16. पीपल यूनाइटेड फॉर बेटर लिविंग इन कलकत्ता बनाम ईस्ट कोलकाता वेटलैंड्स मैनेजमेंट अथॉरिटी, एआईआर 1993 सीएएल 215।
17. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1982 एआईआर 1473)
18. पावर, एम. (2014). एनलाइटनमेंट एंड द एरा ऑफ़ मॉडर्निटी. वंदना देसाई और रॉबर्ट बी.पॉटर (सं.) द *कम्पैनियन टू डेवलपमेंट स्टडीज (तीसरा संस्करण)* न्यूयॉर्क: रूटलेज।
19. रतलाम नगर परिषद बनाम वरदीचंद (एआईआर 1980 एससी 1622)
20. रोसेंक्रांज़, ए. एवं जैक्सन, एम. (2003). द दिल्ली पोल्यूशन केस: द उच्चतम न्यायालय ऑफ़ इंडिया एंड द लिमिट्स ऑफ़ जुडीसिअल पॉवर. कोलंबिया जे. एनवाईरोन. *लॉ*. 28, पृष्ठ 223-244।
21. रोस्टो, डब्ल्यू.डब्ल्यू. (1960). द *स्टेजेज ऑफ़ इकोनोमिक ग्रोथ: ए नॉन कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
22. श्रीराम फूड्स एंड फर्टिलाइजर इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (एआईआर 1987 एससी 1086)
23. स्वामीनाथन एम.एस. (1995). सस्टेनेबल एग्रीकल्चर एंड फ़ूड सिक्यूरिटी इन इंडिया. एम.एल. दीवान (सं.). *टुवर्ड्स ए सस्टेनेबल सोसाइटी: परसेप्संस*. नई दिल्ली: क्लेरियन बुक्स।
24. टेट, एन. (1993). कोर्ट्स एंड क्राइसिस रेजीम्स: ए थ्योरी स्केच विथ एशियन केस स्टडीज. 46, पृष्ठ 311-338.
25. यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (1990 एआईआर 273, 1989 एससीसी (2) 540)।
26. वेल्लोर नागरिक कल्याण मंच बनाम भारत संघ (एआईआर 1996 एससी 2715)

13

गांधी और अस्पृश्यता उन्मूलन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. आशुतोष शरण
गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार
प्रो. सुनील महावर
अधिष्ठाता, सामाजिक विज्ञान संकाय, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता से पूर्व भारत की गुलामी के कारणों की खोज करते हुए यह पाया कि भारत में अस्पृश्यता, वर्ण भेद, सामाजिक अन्याय, महिलाओं की गौण स्थिति, श्रम कार्य को नीच समझना आदि अनेक कारण है, जिसके कारण हमारा समाज कमजोर बना हुआ है और हम गुलामी को झेल रहे हैं। इन सभी कारणों के निराकरण एवं सच्चे स्वराज की प्राप्ति हेतु गांधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रमों को आजादी की लड़ाई के दौरान चलाया और कहा कि "मैं ऐसे हिंदुस्तान के लिए काम करूंगा जिसमें गरीब से गरीब भी यह महसूस करें कि यह देश उसका है, जिसको बनाने में उसकी भी विशेष राय और हिस्सा है।"[1] इस आंदोलन में किसी प्रकार का ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं होगा। इसमें सभी धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के लोग समन्वय पूर्वक साथ रहेंगे। इसमें अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं होगा। गांधीजी अस्पृश्यता के प्रति भारतीय समाज में ऐसी सामाजिक चेतना को जागृत करना चाहते थे जिससे कि लोगों को यह एहसास हो कि यह एक ऐसी अन्याय पूर्ण व्यवस्था है जिसे मानवता के लिए किसी प्रकार से उचित एवं न्याय पूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। गांधीजी के अस्पृश्यों के प्रति आत्मिक पीड़ा को इस अभिव्यक्ति में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, उन्होंने कहा कि "सामाजिक दृष्टि से वह कोढ़ी है, आर्थिक दृष्टि से उनकी दशा बदतर है और धार्मिक क्षेत्र में उन्हें उन स्थानों पर प्रवेश की अनुमति नहीं जिन्हें लोग गलती से भगवान का घर कहते हैं।"[2] उन्होंने भारत में व्याप्त अस्पृश्यता पर गहरा विरोध करते हुए कहा कि समाज इन छुआछूत से पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। यह मानवीय समाज का एक गंभीर दोष है, इससे संपूर्ण हिंदू समाज कलंकित हो रहा है। वे अछूतों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार दिलाने के पक्षधर थे और इसके लिए प्रयासरत भी रहे। वे अछूतों को सामाजिक अधिकार दिलाने के लिए हिंदू मंदिरों, सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश दिलाने, समानता का अधिकार दिलाने आदि पर बल दिया ताकि अस्पृश्य लोगों में आत्म सम्मान की भावना जागृत हो सके। उन्होंने अस्पृश्य लोगों को सम्मान दिलाने हेतु सर्वप्रथम 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया तथा उनके सुधार हेतु 'हरिजन' नामक सप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन कर व्यापक योजना बनाई।[3]

---

[1] राम, पत्तू.(1959). गांधी बनाम गांधी. वाराणसी: सर्वोदय साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ -15

[2] तेंदुलकर, जी०डी०.(1961). महात्मा (भाग 1). भारत सरकार: पब्लिकेशंस डिविजन. पृष्ठ -182

[3] शरण, आशुतोष.(2023).मद्यनिषेध का सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव : बिहार के पूर्वी चंपारण जिले का गाँधीय परिप्रेक्ष्य में एक आनुभविक अध्ययन (शोध प्रबंध). बिहार : महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय. पृष्ठ-39

अस्पृश्यता का शाब्दिक अर्थ है-न छूना। अर्थात किसी विशेष समूह के लोगों के शरीर को स्पर्श करने से बचना या रोकना। सामान्यत: जब समाज का कोई एक समुदाय दूसरे समुदाय से जाति, परंपरा, कार्य अथवा रूढ़िवादिता के आधार पर छुआछूत या भेदभाव का व्यवहार करता है तथा उस समुदाय को सामूहिक रूप से अस्पृश्य मानकर सार्वजनिक स्थलों में प्रवेश से वर्जित करने के साथ-साथ सामाजिक समानता की भावना से भी वंचित करता है तो इसे अस्पृश्यता कहा जाता है। यह एक ऐसी सामाजिक कुप्रथा एवं रूढ़िवादी अवधारणा है, जो समाज को दो वर्गों में विभाजित करती हैं, जिसके अंतर्गत सामाजिक समानता से वंचित रखते हुए ऊंची जाति वर्ग के व्यक्ति, निम्न जाति वर्ग के व्यक्तियों के प्रति घृणा या छुआछूत की भावना रखते हैं और उनसे दूरियां बनाए रखते हैं। अस्पृश्यता प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था का अंग रही है। अस्पृश्यता के बारे सवर्ण लोगों में ऐसी सामाजिक भावनाएं या मान्यताएं रही हैं कि अस्पृश्य (शुद्र) व्यक्ति को स्पर्श मात्र करने और यहां तक की उसकी परछाई भी पड़ने से सवर्ण /उच्च जाति के व्यक्ति अशुद्ध हो जाते हैं। उनकी शुद्धता के लिए उन्हें पवित्र गंगाजल से स्नान और अनेक कर्मकांड करने पड़ते हैं। अस्पृश्यता एक नृशंस तथा अमानवीय व्यवहार है। विश्व के अधिकांश देश अस्पृश्यता या भेदभाव रंग, लिंग, जाति, धर्म आदि विभिन्न समस्याओं से जूझते आ रहे हैं और वर्तमान में भी कुछ देश जूझ रहे हैं।

गांधी जी ने कहा था कि सभी व्यक्ति ईश्वर के समान है इसलिए उनमें किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाना चाहिए। यदि हम मनुष्य का अपमान करते हैं तो ईश्वर का भी अपमान होगा। जब ईश्वर ने उनके निर्माण में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया तो हम इंसान जाति के आधार पर उन्हें कैसे अलग कर सकते हैं। सभी को एक समान रूप में रखते हुए समान अधिकार प्रदान किया जाए। वे उन सभी कुरीतियों को दूर करना चाहते थे जो हिंदू समाज में सदियों से चली आ रही थी। जैसे- अस्पृश्य सार्वजनिक कुएं पर नहीं जा सकते, मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते, अपने घर में बरामदे का निर्माण नहीं कर सकते, अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकते और यहां तक की अच्छे भोजन भी नहीं कर सकते, घोड़े/ हाथी की सवारी नहीं कर सकते थे इत्यादि। इन सभी बंधनों को तोड़कर वह एक शब्द और सुसज्जित समाज का निर्माण करना चाहते थे जहां किसी प्रकार का वैमनस्यता की भावना ना हो एक-दूसरे में प्रेम और सौहार्द का संबंध स्थापित हो।[4]

अस्पृश्यता की उत्पत्ति के बारे में अध्ययन करें तो यह ज्ञात होता है कि यह परंपरा वैदिक काल से ही चली आ रही है जहां समाज के लोगों को कर्म के आधार पर क्रमशः चार वर्णों में विभाजित किया गया था-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन 4 वर्णों में शूद्र सबसे निम्न जातियां थी, जिनका कार्य भंगी का कार्य अर्थात मल मूत्र, पखाना, गंदे नालियों की सफाई आदि करना था। कलांतर में ये वर्ण कर्म आधारित न होकर जन्म आधारित हो गई अर्थात जाति व्यवस्था जन्मगत हो गई। शूद्र वर्ण के लोगों में गंदगी विद्यमान होने के कारण इन्हें अछूत की दृष्टि से देखा जाने लगा। तत्पश्चात इन जातियों के प्रति समाज में असमानता की भावना उत्पन्न हुई तथा शूद्रों के प्रति अछूत की भावना एक परंपरा के रूप में शामिल हो गई। इस प्रकार समाज में शूद्र जाति को अस्पृश्य जाति सूचक संज्ञा दी गई और इन्हें समाज में समानता की भावना से अलग रखा गया।

---

[4] उपर्युक्त, आशुतोष (2023).पृष्ठ-40

अस्पृश्यता की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न इतिहासकारों ने जाति व्यवस्था को ही मूल कारण बताया है गांधीजी इस तथ्य को मानने से इनकार करते हैं। इस संबंध में गांधीजी का मानना था कि अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की उपज नहीं है बल्कि ऊंच-नीच की भावना का परिणाम है जो हिंदू धर्म में समाहित है। "अछूत कोई जाति से नहीं होता असल में अछूत तो वह है जिसके मन में पाखंड और झूठ है।"[5] उन्होंने कहा कि "वर्णाश्रम धर्म बताता है कि दुनिया में मनुष्य का सच्चा लक्ष्य क्या है। उसका जन्म इसलिए नहीं हुआ है कि वह रोज-रोज ज्यादा पैसा इकट्ठा करने के रास्ते खोजे और जीविका के नए-नए साधनों की खोज करें। उसका जन्म तो इसलिए हुआ है कि वह अपनी शक्ति का प्रत्येक अणु अपने निर्माता को जानने में लगाए। इसलिए वर्णाश्रम धर्म कहता है कि अपने शरीर के निर्वाह के लिए मनुष्य अपने पूर्वजों का ही धंधा करें। बस वर्णाश्रम धर्म का आशय इतना ही है।"[6] वे कहते हैं कि "वर्ण की रचना पीढ़ी दर पीढ़ी के धंधों की बुनियाद पर हुई है। मनुष्य के चार धंधे सार्वत्रिक हैं-विद्यादान करना, दुःखी को बचाना, खेती, व्यापार और शरीर की मेहनत से सेवा। इन्हीं को चलाने के लिए चार वर्ण बनाए गए हैं।"[7] ये सभी कार्य मनुष्य जाति के लिए समान है। परंतु हिंदू धर्म ने इन कर्मों के आधार पर इन्हें जीवन धर्म बना दिया है और ऊंच-नीच के भेदों को पैदा किया है। अस्पृश्यता कोई वर्ण व्यवस्था का परिणाम नहीं है बल्कि ऊंच-नीच की भावना का ही परिणाम है। अर्थात अपने-अपने कार्यों को लेकर श्रेष्ठता एवं निम्नता की दृष्टि का परिणाम है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता जाति या वर्ण से उत्पन्न नहीं हुई है और न ही यह हिंदू धर्म का अंग है बल्कि यह ऊंच-नीच की भावना से उत्पन्न हुई हैं। "वेद, उपनिषद, गीता आदि हिंदू धर्म के महान ग्रंथ इसका समर्थन नहीं करते।"[8]

गांधी जी का अस्पृश्यता संबंधी विचार

गांधी जी ने कहा था कि अस्पृश्यता एक ऐसी कुरीति है जो व्यक्ति को जन्म के साथ ही लग जाती है और यह उसके लाख धोने के बाद भी जीवन पर्यन्त लगी रहती है। "मैं वर्णाश्रम को मानता हूं और उसके विषय में जन्म और कर्म दोनों को मानता हूं, पर मैं इस बात को नहीं मानता कि भंगी कोई पतित की योनि है। ऐसे कितने ही भंगी देखे हैं जो पूज्य हैं और ऐसे कितने ही ब्राह्मण देखे हैं जिनकी पूजा करना मुश्किल पड़ता है। ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर ब्राह्मणों की या भंगी की सेवा कर सकने के बजाए मैं भंगी के घर पैदा होकर भंगी की सेवा ज्यादा कर सकूंगा और दूसरी जातियों को भी समझा सकूंगा।"[9] मैं भंगी की हर प्रकार से सेवा करना चाहता हूं, मैं अस्पृश्यों का उत्कर्ष और सम्मान चाहता हूं। "मैं अस्पृश्यों का समर्थन इसलिए करता हूं, क्योंकि हमने उनके साथ घोर अन्याय किया है।"[10] वे कहते हैं कि "यदि अस्पृश्यों को अस्पृश्य इसलिए माना जाता है कि वह जानवरों को मारते हैं और मांस, रक्त, हड्डियां और मैला अधिक ढोते हैं तब तो हर एक नर्स और डॉक्टर को भी अस्पृश्य माना जाना चाहिए और इसी

[5] कोचर, कन्हैया लाल. गांधी दर्शन. दिल्ली: अनुपम प्रकाशन. पृष्ठ- 88

[6] यंग इंडिया, 27-10-1927

[7] गांधी, मो०क०.(संस्करण- 2019).मेरे सपनों का भारत. नईदिल्ली: राजपाल एंड संस. पृष्ठ- 210

[8] त्रिपाठी, शंभूनाथ. (1969). गांधी स्तरण और समाजवाद. कानपुर: समाजशास्त्र संसद. पृष्ठ- 85

[9] गांधी, मो०क०, दास, भगवान व अन्य. (1933). मंदिर प्रवेश और अस्पृश्यता निवारण. बनारस सिटी: एस०बी० सिंह एंड कं०,काशी पुस्तक भंडार. पृष्ठ- 35

[10] अभिलाषा. (अक्टूबर 2014). महात्मा गांधी और अछूतोंद्धार. वॉल्यूम 1 इश्यू 5. आईएसएसएन नं०-2394-0344

तरह मुसलमानों, ईसाईयों और तथाकथित ऊंचे वर्गों के उन हिंदुओं को भी अस्पृश्य माना जाना चाहिए जो आहार अथवा बलि के लिए जानवरों की हत्या करते हैं।"[11]

गांधीजी कट्टर हिंदू समर्थक थे और वे इस बात से व्यथित थे कि हिंदू धर्म में अनेक उत्तम विचार होने के बाद भी अस्पृश्यता जैसी कुप्रवृतियां विद्यमान है, जो इसकी जड़ों को धीरे-धीरे खोखला कर रही है। उनका मानना था कि अस्पृश्य लोगों की इस दयनीय दशा के लिए सवर्ण हिंदू ही दोषी है, सवर्णों के हृदय परिवर्तन के बिना अस्पृश्यता का निवारण संभव नहीं है। जब तक सवर्ण व्यक्ति यह स्वीकार न कर लें कि किसी व्यक्ति को जन्म के आधार पर स्पर्श करना पाप नहीं है और जन्म से कोई अपवित्र नहीं होता तब तक अस्पृश्यता का निवारण असंभव है। उन्होंने कहा था कि "यदि अस्पृश्यता जीती रही तो हिंदू धर्म मर जाएगा और यदि हिंदू धर्म को जीना है तो अस्पृश्यता को अवश्य मरना होगा।"[12]

अस्पृश्यता उन्मूलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

"19वीं सदी में ऐसे कई सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन हुए जिनका उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक और पारंपरिक संस्थाओं में सुधार करना तथा उनको नवजीवन प्रदान करना था। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने जाति भेदभाव और छुआछूत जैसी अमानवीय व्यवहार की जड़ों पर प्रहार किया। दक्षिण भारत में जस्टिस पार्टी, ई. वी. रामास्वामी नायकर के नेतृत्व में आत्मसम्मान आंदोलन ने अस्पृश्यता को चुनौती दी। ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज ने भी अस्पृश्यता की आधारशिला को अमान्य ठहराया और सामाजिक समानता का प्रतिपादन किया। परन्तु ये सभी आन्दोलन जनसाधारण को उद्वेलित कर सकने में असमर्थ रहे।"[13]

आर्य समाज के संस्थापक एवं सामाजिक पुनर्जागरण के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदू धर्म में व्याप्त छुआछूत का पुरजोर तरीके से विरोध करते हुए सामाजिक आंदोलन चलाया। स्वामी विवेकानंद ने भी भारत के सवर्ण हिंदुओं से आह्वान किया कि अस्पृश्यों के प्रति व्याप्त छुआछूत की भावना को त्याग दें। वही संत रामानंद ने धार्मिक रूप से छुआछूत तथा जात-पांत का विरोध कर समानता का उपदेश दिया। उनके कई शिष्य अछूत थे और उन्होंने मठ-मंदिरों में अछूतों को प्रवेश की अनुमति दी। इस प्रकार उन्होंने अछूतों को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

डॉ अंबेडकर स्वयं अस्पृश्य थे। वे अस्पृश्यों की स्थिति से भलीभांति परिचित थे। वे चाहते थे कि दलितों की जो समाज में हीनता एवं घृणा की स्थिति है वह दूर हो। उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक समानता का अवसर प्राप्त हो। समाज में उन्हें अन्य जातियों की तरह स्वतंत्रता प्राप्त हो। अंबेडकर हिंदू धर्म को अस्पृश्यता के घृणित विचार के कारण पसंद नहीं करते थे, क्योंकि हिंदू धर्म में अस्पृश्यों के प्रति भेदभाव की भावना थी। मंदिरों, कुँओं आदि सार्वजनिक स्थानों पर जाने की अनुमति प्राप्त नहीं थी। इन्हीं सभी वजह के कारण उन्होंने

---

[11] यंग इंडिया, 29-07-1926

[12] उपर्युक्त, गांधी, मो०क० व अन्य. (1933). पृष्ठ-04

[13] ग्रोवर, बी०एल०, यशपाल. (2004). आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली: एस चांद एंड कंपनी लिमिटेड. पृष्ठ- 286-287

बौद्ध धर्म को अपना लिया था। उन्होंने अस्पृश्यों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रदान कराने के लिए महत्वपूर्ण रूप से योगदान दिया। अंततः उन्होंने भारत की आजादी के बाद संविधान में अस्पृश्यों की स्थिति सुदृढ़ करने तथा समानता प्रदान करने के दृष्टिकोण से आरक्षण के साथ-साथ अन्य प्रावधानों को शामिल किया।

उपर्युक्त वर्णन से यह ज्ञात है कि भारतीय धार्मिक एवं समाज सुधारकों ने दलितोत्थान के लिए अनेक प्रयत्न किए परंतु आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। परंतु गांधी व अंबेडकर ने मुख्य रूप से दलितोत्थान के लिए आशा अनुरूप सफलता प्राप्त की और अस्पृश्यों को सामाजिक समानता दिलाई।

गांधी का अस्पृश्यता उन्मूलन

गांधी जी ने कहा था कि अस्पृश्यता निवारण मूल रूप से धर्म संशोधन व सामाजिक शुद्धि का कार्य है। उन्होंने "अस्पृश्यता उन्मूलन के सवाल को वैसे ही राष्ट्रव्यापी जागरण का विषय बना दिया था, जैसे स्वराज्य के मुद्दे को।"[14] गांधीजी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए सर्वाधिक व्यापक और प्रभावशाली आंदोलन चलाया था। वे अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष को साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष से कहीं अधिक विकराल एवं जटिल मानते थे। इसका कारण यह था कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध तो उन्हें बाहरी ताकतों से लड़ना था, (क्योंकि अपनों के बीच मौजूद दुश्मन ज्यादा खतरनाक और चालाक होता है) परंतु अस्पृश्यता के विरुद्ध उन्हें अपनों से ही लड़ाई लड़नी थी। वे कहते थे कि मेरा जीवन अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए उसी प्रकार समर्पित है जैसे अन्य बहुत-सी बातों के लिए है। उन्होंने अस्पृश्यता उन्मूलन को आत्म-शुद्धि के कार्यक्रम का अंग माना।

गांधीजी बचपन से ही अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए प्रयासरत रहें। उनकी बाल्यकाल की एक घटना है, तब उनकी आयु 12 वर्ष की थी। अक्का नाम का एक अस्पृश्य व्यक्ति उनके घर शौचालय की सफाई करने आया करता, जिसे ना छूने के लिए घर के लोग बात करते थे। इस संबंध में उन्होंने कई बार अपने मां से अक्का को न छूने का कारण पूछा पर उन्हें कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला। इस बीच उन्होंने एक बार उस अस्पृश्य व्यक्ति को स्पर्श कर लिया था तब उनकी शुद्धि के लिए अनेक संस्कार एवं कर्मकांड घर पर आयोजित किए गए, जिनका पालन उन्होंने अनिच्छा पूर्वक किया और अपनी मां को स्पष्ट शब्दों में कहा कि अक्का को स्पर्श करने को पाप समझना अत्यंत गलत है। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए अपना पहला प्रयोग अपने आश्रम में किया था। यह घटना अहमदाबाद आश्रम की है, जहां दुदा भाई आश्रम में रहने आए, जो कि एक दलित थे, पर हंगामा खड़ा हो गया और जो सवर्ण व्यक्ति आश्रम को चंदा देते थे, वो भी देने बंद कर दिए यहां तक कि गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा गांधी भी दुदा भाई को आश्रम में रखने का विरोध कर रही थी। तब गांधी जी ने इस पर तलाक लेने का फैसला कर चुके थे परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ और अंततः स्थिति सामान्य हो गई तथा आश्रम को चंदा भी अन्य स्रोतों से मिलने लगा। इस प्रकार गांधी जी ने दलितों को मुख्यधारा में लाने के लिए अपना पहला प्रयोग किया था।

[14] सिंह, श्रीभगवान.(2010). गांधी और दलित भारत जागरण. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ- 17

गांधी जी ने समाज से अस्पृश्यता की भावना को दूर करने के लिए सर्वप्रथम उन्होंने अस्पृश्यों को 'हरिजन' के नाम से संबोधित किया। जिसका अर्थ होता है- 'हरि का जन' अर्थात ईश्वर के लोग। उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिजन सेवक' के प्रथम अंक (23-02-1933) में 'हरिजन' के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा, कि "हरिजन का अर्थ है- ईश्वर का भक्त, ईश्वर का प्यारा। ईश्वर की प्रतिज्ञा है कि दुखियों का वह बेली है, दया का सागर है, आशक्तों को शक्ति देने वाला है, निर्बलों का बल है, पंगु का पैर है, अंधों की आँख हैं, इसलिए दलित लोग उसके प्यारे होने ही चाहिए। इस दृष्टि से अछूत भाइयों के लिए 'हरिजन' शब्द सर्वथा उपयुक्त है, ऐसा मेरा विश्वास है।"[15] क्योंकि अछूत माने जाने वाला वर्ग सर्वाधिक कमजोर है इसलिए परमपिता ईश्वर की दृष्टि में भी वह सर्वाधिक प्रिय है। यही कारण है कि उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' की संज्ञा से विभूषित किया।[16] इस प्रकार 'हरिजन' शब्द संपूर्ण समाज में प्रायोगिक और लोकप्रिय हुआ। गांधी जी ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए एक महत्वपूर्ण निर्णय लेते हुए 1932 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। "इस संघ की कल्पना तत्वत 'प्रायश्चित करने वालों' के एक समाज के रूप में की गई थी, जिससे हिंदू समाज तथाकथित अस्पृश्यों के प्रति किए गए अपने पाप का प्रायश्चित कर सकें। उसका कार्य किसी को विशेषाधिकार देने के बजाय ऋण चुकाना है इसलिए उसकी कार्यकारिणी में उन्हीं लोगों को शामिल किया गया जिन्हें प्रायश्चित करना था।"[17] इस "हरिजन सेवक संघ का लक्ष्य सत्यपरक और अहिंसात्मक उपायों द्वारा हरिजनों को सवर्ण जातियों के साथ पूर्ण समानता प्रदान करना था।"[18]

गांधी जी ने अस्पृश्यता निवारण के प्रति राष्ट्रीय जनमत को जागरूक करने के उद्देश्य से 'हरिजन' (अंग्रेजी) तथा 'हरिजन सेवक' (हिंदी) सप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन किया। उन्होंने कहा कि एक हरिजन/भंगी का एक मनुष्य के रूप में उतना ही महत्व है जितना एक डॉक्टर/इंजीनियर का है, सभी मनुष्य एक समान है। हमें 'हरिजन' के प्रति मन में व्याप्त रूढ़िवादी धारणाओं को दूर कर हरिजन को सामाजिक सम्मान प्रदान करने की आवश्यकता है। जब तक हम अस्पृश्यों को सामाजिक समानता प्रदान नहीं करते तब तक भारत का विकास एवं भारत की स्वतंत्रता संभव नहीं है। हम भारत को भले ही अंग्रेजों से मुक्ति दिला सके परंतु सच्चे स्वराज की स्थापना अस्पृश्यता निवारण के अभाव में नहीं की जा सकती। " उन्होंने 7 नवंबर 1933 को वर्धा से 2 अगस्त 1934 तक 10 महीनों में 12500 मिल की अस्पृश्यता विरोधी हरिजन यात्रा की।"[19] हरिजन यात्रा के दौरान गांधीजी ने व्यापक स्तर पर गांवों में घूम कर लोगों को अस्पृश्यता निवारण के लिए जागरूक किया और सवर्णों को अपने पापों से मुक्ति के लिए अस्पृश्य लोगों के प्रति मानवीय व्यवहार को बताया। साथ ही उन्होंने हरिजन सेवक संघ के लिए कोष भी एकत्रित किया। "अपनी हरिजन यात्रा के दौरान ऐसा वातावरण तैयार किया जिसमें हरिजनों के उद्धार के कार्य को आगे बढ़ाया जा

---

[15] संपूर्ण गांधी वांग्मय. खंड- 53. पृष्ठ- 408

[16] मैनावत, बनवारीलाल.(जून 2017). अस्पृश्यता उन्मूलन व अछूतोद्धार एवं गांधीजी. शोध मंथन. आईएसएसएन :(पी): जीरो 976-5255. आर्टिकल नं०-13(एसएम 420). पृष्ठ- 75-78

[17]https://m.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B9%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9C%E0%A4%A8_%E0%A4%B8%E0%A5%87%E0%A4%B5%E0%A4%95_%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%98?page=1

[18] उपर्युक्त,अभिलाषा. (अक्टूबर 2014)

[19] उपर्युक्त,अभिलाषा. (अक्टूबर 2014)

सके।"[20] गांधी जी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए 'भंगी-मुक्ति' कार्यक्रम भी चलाया। जिसके अंतर्गत उठाऊ-पाखानों का बहाऊ-पखानों में परिवर्तन किया जाना, सफाई कर्मचारियों के बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था करना तथा उन्हें वैकल्पिक रोजगार मुहैया कराना आदि कार्य शामिल थे। यह कार्यक्रम हरिजन सेवक संघ के द्वारा चलाए गए कार्यों में एक विशेष स्थान रखती है। मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश के लिए भी गांधी जी की प्रेरणा से अनेकों कार्यक्रम संचालित किए गए। गांधी जी स्वयं उन मंदिरों में नहीं जाते थे जहां अछूतों का प्रवेश निषेध था।

गांधीजी अस्पृश्यता निवारण के लिए दो मोर्चों पर एक साथ कार्य कर रहे थे। एक ओर वे सवर्णों में अस्पृश्यता के प्रति व्याप्त भावनाओं के लिए अपराध बोध करा रहे थे तो वहीं दूसरी ओर अस्पृश्यों को उनके परंपरागत सोच और जीवन-शैली में बदलाव की जरूरत से अवगत करा रहे थे तथा अस्पृश्यों में व्याप्त अशिक्षा, शराबखोरी, अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता आदि को समाप्त करने पर बल दे रहे थे। गांधी जी ने सवर्णों से कहा कि " यदि वे इस बात के लिए राजी हो जाये कि कम-से-कम प्रत्येक परिवार में एक-एक 'हरिजन', कुटुंब के आदमी की तरह या कम-से-कम घर के नौकर की तरह ही रख लिया जाये। यह प्राचीन हिंदू प्रथा है कि संपन्न परिवार कम-से-कम एक मेहमान को खिलाए बिना कभी भोजन नहीं करता। आजकल इसका पालन तो बहुत कम होता है, उल्लंघन ही अधिक होता है। यह कार्य पंच यज्ञों में से एक कहा गया है। यह यज्ञ करने के लिए मैं इससे अच्छा उपाय नहीं सोच सकता कि हम एक हरिजन को अपने साथ भोजन करावें।"[21] उन्होंने सवर्णों से अपने पापों की मुक्ति के लिए कहा कि "जिस प्रकार किसी परिवार के बहिष्कृत सदस्य की उसके वापस बुलाए जाने के बाद हिफाजत और विशेष रूप से सेवा की जाती है उसी प्रकार सवर्णों को हरिजनों में कार्य करना चाहिए। जब पाप के भाव का उनके मन में वस्तुतः उदय होगा तब वे हरिजनों के पास शिक्षक या दाता के नाते ना जाएंगे वरण इस प्रकार जाएंगे जैसे- कर्जदार अपना ऋण चुकाने के लिए महाजन के पास जाता है और वे इस भाव से उनको और उनके बालकों को पढ़ाएंगे तथा यथासंभव अन्य उपायों से मदद करेंगे।"[22] वही अस्पृश्यों को सुझाव देते हुए गांधीजी ने कहा था कि अछूत व्यक्ति साफ-सुथरा वस्त्र पहने तथा स्वच्छ भोजन करें साथ ही अपने साफ-सफाई पर आवश्यक रूप से ध्यान दें। इस प्रकार वह पवित्रता पूर्वक स्वच्छ एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करें। यदि भंगी का कार्य मल-मूत्र को साफ करना है तो वह अपना काम करें अपने शरीर की सफाई करें और साफ-सुथरा रहें। भंगी व्यक्ति भी उसी प्रकार पवित्र एवं स्वच्छ है जिस प्रकार की एक मां अपने बच्चों की पखाना साफ करके हाथ-पैर साफ कर शुद्ध और पवित्र होती है। मां जिस प्रकार अस्पृश्य नहीं होती ठीक उसी प्रकार भंगी भी अस्पृश्य नहीं होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधी जी ने दोनों वर्गों में व्याप्त कमियों को उजागर कर तथा सुधार करने की सलाह देते हुए अस्पृश्यता उन्मूलन को

[20] पूरमल(2002). दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय. जयपुर: अविष्कार पब्लिशर्स. पृष्ठ- 87

[21] उपर्युक्त, गांधी, मो०क०व अन्य. (1933). पृष्ठ-20

[22] उपर्युक्त, गांधी, मो०क०व अन्य. (1933). पृष्ठ-21

सफल बनाया। "एम०एस० गिल अपनी कृति 'गांधी: ए सब्लाइम फेल्योर' में लिखते हैं, कि 'हिंदू-मुस्लिम एकता' के बाद गांधी की प्रमुख समस्या अस्पृश्यता मिटाना था।"[23]

वर्तमान में अस्पृश्यता की स्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात गांधी और अंबेडकर के प्रयासों से अस्पृश्यता निवारण हेतु न केवल संविधान में जगह प्रदान की गई बल्कि उनके सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक विकास की दृष्टि से पिछड़ी जातियों को सूचीबद्ध किया गया है। "अतः संविधान के अनुच्छेद-341(1) और 342(2) में ऐसी जातियों को सूचीबद्ध करने के पश्चात उन्हें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से न केवल संबोधित किया गया बल्कि सरकार को यह संवैधानिक अधिकार भी दिया गया कि वे इन जातियों के लोगों के कल्याण हेतु योजनाओं का प्रावधान करें।" इन योजनाओंके तहत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण की विशेष सुविधा प्रदान की गई वर्तमान समय में परिस्थितियां यह है कि भारतीय संविधान द्वारा दलित हिंसा एवं भेदभाव निषेध होने के बावजूद भी गांवों में ही नहीं बल्कि शहरों में भी दलितों के साथ भेदभाव किया जाता है। आज भी ऊंची जाति के लोग दलितों के प्रति घृणा करते हैं। परंतु अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि जो दलित परिवार शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से समृद्ध हो चुके हैं उनके प्रति लोगों में पूर्णतः समानता का व्यवहार तो नहीं कहा जा सकता परंतु आंशिक रूप से समानता का व्यवहार जरूर किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोगों में शारीरिक स्पर्श से तो घृणा नहीं है परंतु मानसिक भेदभाव अभी भी बना हुआ है।

अस्पृश्यों के उत्थान के लिए सुझाव

- शिक्षा की अनिवार्य रूप से समुचित व्यवस्था की जाए।
- दलितों के मुहल्लों/गांवों को चिन्हित कर एक आदर्श हरिजन समाज की योजना की नींव डाली जाए।
- दलितों एवं सामान्य वर्ग के लोगों का एक साथ समय-समय पर एक संयुक्त कार्यक्रम का आयोजन किया जाए जिसमें एक-दूसरे के प्रति घृणित भावनाओं को दूर करने का अवसर प्राप्त हो।
- हरिजनों को स्वच्छता के प्रति आकृष्ट करने हेतु विशेष रुप से अभियान चलाना चाहिए क्योंकि कुछ लोगों में ऐसी मान्यताएं हैं कि मुझे अछूतों से कोई भेदभाव नहीं बल्कि उनकी गंदगी से भेदभाव है।
- शैक्षिक पाठ्यक्रमों में अस्पृश्यता-निवारण को नैतिक रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

गांधीजी सभी लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समानता में विश्वास करते थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के लिए स्वयं अपने आश्रम में अस्पृश्य लोगों को आश्रय प्रदान कर इस मुहिम को आगे बढ़ाया। वे वर्ण व्यवस्था या धर्म को समाप्त नहीं करना चाहते थे बल्कि ऊंच-नीच के भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे।

---

[23] राम, राकेश कुमार. (मार्च 2017). अस्पृश्यता की समाप्ति में गांधी की भूमिका. जेइटीआईआर. वॉल्यूम4. इश्यू3.आईएसएसएन-2349-5162

उन्होंने हरिजनों को मंदिर-प्रवेश, पाठशालाएं, कुंए आदि सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश के लिए समान अधिकार को प्रदान कराया। उनके प्रयासों से समाज में अस्पृश्यता के प्रति चलाए गए अभियान धीरे-धीरे सफलता की ओर आगे बढ़ा और हरिजनों के प्रति लोगों में समानता की भावनाएं जागृत हुई। गांधीजी का एक सपना था कि भंगी के परिवार की कोई लड़की भारत के राष्ट्रपति के पद को सुशोभित करें। साथ ही वे चाहते थे कि यदि मुझे दोबारा जन्म लेना पड़े तो मैं भंगी के घर ही जन्म लूँ। अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी के साथ-साथ डॉ अंबेडकर, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फूले जैसे महापुरुषों ने भारतीय समाज से अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए पुरजोर प्रयास किया और सफलता भी प्राप्त की। परंतु वर्तमान समय में अस्पृश्यता को देखें तो यह ज्ञात होता है कि हरिजनों को कानूनी रूप से सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक मान्यताएं तो प्राप्त हो गई है और छुआछूत की भावनाएं भी काफी हद तक कम हुई है परंतु सामान्य वर्गों के लोगों में हरिजनों के प्रति आज भी मन में हीनता की भावनाएं व्याप्त है। इस भावनाओं को आत्मिक रूप से दूर करने की आवश्यकता है। जब तक हम अस्पृश्यों के प्रति मानसिक हीनता की भावनाओं को दूर नहीं कर सकेंगे तब तक हम गांधीजी के 'सपनों का भारत' जैसा स्वराज की प्राप्ति में योगदान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. राम, पत्तू.(1959). गांधी बनाम गांधी. वाराणसी: सर्वोदय साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ -15
2. तेंदुलकर, जी०डी०.(1961). महात्मा (भाग 1). भारत सरकार: पब्लिकेशंस डिविजन. पृष्ठ -182
3. शरण, आशुतोष.(2023).मद्यनिषेध का सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव : बिहार के पूर्वी चंपारण जिले का गाँधीय परिप्रेक्ष्य में एक आनुभविक अध्ययन (शोध प्रबंध). बिहार : महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय. पृष्ठ-39
4. उपर्युक्त, आशुतोष (2023).पृष्ठ-40
5. कोचर, कन्हैया लाल. गांधी दर्शन. दिल्ली: अनुपम प्रकाशन. पृष्ठ- 88
6. यंग इंडिया, 27-10-1927
7. गांधी, मो०क०.(संस्करण- 2019).मेरे सपनों का भारत. नईदिल्ली: राजपाल एंड संस. पृष्ठ- 210
8. त्रिपाठी, शंभूनाथ. (1969). गांधी स्तरण और समाजवाद. कानपुर: समाजशास्त्र संसद. पृष्ठ- 85
9. गांधी, मो०क०, दास, भगवान व अन्य. (1933). मंदिर प्रवेश और अस्पृश्यता निवारण. बनारस सिटी: एस०बी० सिंह एंड कं०,काशी पुस्तक भंडार. पृष्ठ- 35
10. अभिलाषा. (अक्टूबर 2014). महात्मा गांधी और अछूतोंद्धार. वॉल्यूम 1 इश्यू 5. आईएसएसएन नं०- 2394-0344
11. यंग इंडिया, 29-07-1926
12. उपर्युक्त, गांधी, मो०क० व अन्य. (1933). पृष्ठ-04
13. ग्रोवर, बी०एल०, यशपाल. (2004). आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली: एस चांद एंड कंपनी लिमिटेड. पृष्ठ- 286-287
14. सिंह, श्रीभगवान.(2010). गांधी और दलित भारत जागरण. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ- 17

15. संपूर्ण गांधी वांग्मय. खंड- 53. पृष्ठ- 408
16. मैनावत, बनवारीलाल.(जून 2017). अस्पृश्यता उन्मूलन व अछूतोद्धार एवं गांधीजी. शोध मंथन. आईएसएसएन :(पी): जीरो 976-5255. आर्टिकल नं०-13(एसएम 420). पृष्ठ-75-78
17. https://m.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B9%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%9C%E0%A4%A8_%E0%A4%B8%E0%A5%87%E0%A4%B5%E0%A4%95_%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%98?page=1
18. उपर्युक्त,अभिलाषा. (अक्टूबर 2014)
19. उपर्युक्त,अभिलाषा. (अक्टूबर 2014)
20. पूरमल(2002). दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय. जयपुर: अविष्कार पब्लिशर्स. पृष्ठ- 87
21. उपर्युक्त, गांधी, मो०क०व अन्य. (1933). पृष्ठ-20
22. उपर्युक्त, गांधी, मो०क०व अन्य. (1933). पृष्ठ-21
23. राम, राकेश कुमार. (मार्च 2017). अस्पृश्यता की समाप्ति में गांधी की भूमिका. जेइटीआईआर. वॉल्यूम4. इश्यू3.आईएसएसएन-2349-5162
24. उद्धृत, वर्मा, बबीता. (2012). गांधी, अंबेडकर, दलित एवं सामाजिक न्याय. जयपुर: अविष्कार पब्लिशर्स डिसटीब्यूटर्स. पृष्ठ- 54

14

भारतीय राजनीति एवं सनातन चिंतन

डॉ.आद्या शक्ति राय
सह-आचार्य, विशेष शिक्षा संकाय, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय राजनीतिक दर्शन विश्व के इतिहास में अग्रणी और उन्नत स्थान रखने वाला है। भारतीय राजनीति का इतिहास उतना ही पुरातन है जितना कि यहां की सभ्यता, संस्कृति और धर्म। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में सबसे विकसित राजनीतिक विचारों में से एक है। यह प्राचीन राजनीतिक दार्शनिकों के विचारों का समुचित विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसका उपयोग वर्तमान समय की वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए भी किया जा सकता है। भारतीय राजनीतिक चिंतन को समझने के लिए, भारतीय राजनीतिक दर्शन की गहन समझ आवश्यक है।प्राचीन काल में सारा व्यवस्थित चिंतन दर्शन के अंतर्गत होता था, अतः सारी विद्याएं दर्शन के विचार क्षेत्र में आती थीं। राजनीति सिद्धांत के अंतर्गत राजनीति के भिन्न-भिन्न सैद्धान्तिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है। राजनीति का संबंध मनुष्यों के सार्वजनिक जीवन से है।

भारतीय राजनीतिक दर्शन भारत में दार्शनिक विचार की वह शाखा है, जो राजनीति, शासन व्यवस्था, न्याय, कानून और शासन के रूपों की वैधता से संबंधित प्रश्नों को संबोधित करती है। भगवद्गीता, उपनिषद, वेद, और अन्य ग्रंथ प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। महाभारत, रामायण और मनुस्मृति अन्य स्मृतियों के साथ मानव जीवन के संपूर्ण परिदृश्य को ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दोनों दृष्टिकोण से परिलक्षित एवं वर्णित करते हैं। राज्य का विचार ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण के परिणाम से उत्पन्न हुआ। भारतीय राजनीतिक दर्शन के मूल विचार राज्य और धर्म हैं। प्राचीन भारतीय चिंतन के अनेक स्रोत हैं, जिसमें मुख्य रूप से प्राचीन साहित्य, वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, उपनिषद, महाकाव्य, जैन ग्रंथ और बौद्ध जातक शामिल हैं। इसके अलावा समय-समय पर विभिन्न रचनाओं जैसे अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र और शुक्रनीति ने भी इसमें योगदान दिया है। प्राचीन भारत में राष्ट्र का व्यापक उल्लेख है, जिसमें जनकल्याण, सामाजिक व्यवस्था, धर्म और राजा की सत्ता आदि का विस्तृत वर्णन है।

भारत के वेद, पुराण और उपनिषद प्राचीन भारतीय चिंतन के उत्कर्ष उदाहरण हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र चिंतन के भारतीय स्वरूप का आदर्श उदाहरण है। प्लेटो के समकालीन कौटिल्य का दर्शन व्यावहारिक है। हिंदू दर्शन का पहला ज्ञात सूत्रीकरण वैदिक ग्रंथों में सामने आया और अगला रामायण और महाभारत के पौराणिक युद्धों के दौरान जब संभवतः इतिहास का एक युग दूसरे में विलीन हो गया (मेहता, 1996)।इस प्रकार, भारतीय राजनीतिक दर्शन न केवल ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह वर्तमान वैश्विक संदर्भों में भी प्रासंगिक है और इसकी गहन समझ समकालीन समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती है।

 ISSN: 2321-0443

भारतीय चिंतन व्यावहारिक एवं अत्यंत उपयोगी है। इसका मूल मानव है और यह मानव के चारों ओर घूमता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि गुलामी के समय इस भ्रम को फैलाया गया कि प्राचीन भारतीय चिंतन अति साधारण स्तर का है। प्राचीन भारतीय चिंतन में धर्म और राजनीति को एक साथ जोड़कर देखा जाता है। वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर ऐसे वृत्तान्त मिलते हैं, जो तत्कालीन राजनीतिक विचारों और व्यवस्था का परिचय देते हैं। ऋगवेद के कुछ श्लोक राज्यशास्त्र के विषय पर प्रकाश डालते हैं। अथर्ववेद में राजनीति से संबंधित अनेक श्लोक हैं। इन श्लोकों में राजपद के संबंध में बहुत कुछ कहा गया है। यजुर्वेद में स्थान-स्थान पर राजा द्वारा किए जाने वाले यज्ञों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त, राजतिलक, राजपद का सम्मान, राजकर्मचारियों की संख्या और कार्य तथा अन्य विषयों का भी विवरण पाया जाता है। इन सभी में आध्यात्मिकता पर बल दिया गया है।

भारतीय चिंतन में राज्य को आवश्यक माना गया है और इसमें राज्य का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसमें दण्ड की कठोर व्यवस्था है। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय चिंतन का दृष्टिकोण व्यावहारिक है और राजा का कार्यक्षेत्र व्यापक है। प्राचीन भारतीय राजनीति चिंतन में जिस राजधर्म की कल्पना की गई है, उसमें राज्य का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। राज्य का प्रमुख कार्य समाज में धर्म को स्थापित करना है। भारत में भौतिक जीवन की अवहेलना कभी नहीं की गई। भारतीय चिंतन का उद्देश्य न केवल आध्यात्मिक उन्नति है, बल्कि सामाजिक और भौतिक जीवन की भी पूर्णता है। यह संतुलन प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन की विशेषता है, जो इसे समकालीन संदर्भों में भी अत्यंत प्रासंगिक बनाता है। भारतीय चिंतन में राजनीति और धर्म का संबंध अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक काल से ही यह दृष्टिकोण रहा है कि राजनीति का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता को बनाए रखना है। धर्म के माध्यम से राज्य का संचालन और जनकल्याण की योजनाएं बनाई जाती थीं, जिससे समाज में शांति और समृद्धि स्थापित हो सके। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य के विभिन्न कार्यों, प्रशासनिक संरचनाओं और नीतियों का विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें राज्य की आर्थिक, सामाजिक और सैन्य नीतियों का भी उल्लेख है, जो प्राचीन भारतीय राज्यव्यवस्था को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

हिंदू राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक जीवन के व्यवस्थित अध्ययन को विभिन्न नामों से वर्णित किया है। उदाहरण के लिए, विभिन्न स्मृतियों में इसे "राजधर्म," महाभारत में "राजशास्त्र," "दंडनीति," और "अर्थशास्त्र" कहा गया है। पंचतंत्र में इसे "नृपतंत्र" कहा गया है। प्राचीन काल के राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक जीवन के व्यवस्थित अध्ययन को विभिन्न नामों से वर्णित किया है। राजनीतिक जीवन के व्यवस्थित अध्ययन के लिए पहले प्रयोग किए जाने वाले कुछ नाम राजधर्म, दंडनीति, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र थे। पंचतंत्र अपने आरंभिक श्लोक में ज्ञान की इस शाखा को नृपशास्त्र (राजाओं का विज्ञान) कहता है। कामंदक के ग्रंथ को नीतिसार कहा जाता है; वैशंपायन के कार्य का शीर्षक नीतिप्रकाशिका है; पुराणों ने राजनीति का प्रयोग किया है। चंदेश्वर ने अपनी रचना को राजनीति रत्नाकर नाम दिया है और छांदोग्य उपनिषद में क्षत्रविद्या आती है (शरण, 1983)।भारतीय राजनीतिक चिंतन की प्रमुख विशेषताओं में यह है कि इसे विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा और विश्लेषित किया गया है। उदाहरण के लिए, कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीति के व्यावहारिक और प्रशासनिक पहलुओं पर केंद्रित है, जिसमें राज्य के संगठन, न्याय व्यवस्था, और आर्थिक नीतियों का विस्तृत विवरण है। इसके विपरीत, भगवद्गीता में धर्म और नैतिकता के संदर्भ में राज्य और उसके कर्तव्यों की चर्चा है।महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्य भी राजनीतिक दर्शन के

महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें धर्म, न्याय, और नैतिकता के सिद्धांतों के माध्यम से राजनीति का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे धर्मशास्त्रों में भी राजधर्म का विस्तृत वर्णन मिलता है जो राजा और प्रजा के कर्तव्यों और अधिकारों को स्पष्ट करते हैं।

अत: भारतीय राजनीतिक दर्शन का अध्ययन विभिन्न शास्त्रों, ग्रंथों और दृष्टिकोणों से समृद्ध है, जो इसे एक व्यापक और गहन विषय बनाते हैं। यह दर्शन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि आधुनिक संदर्भों में भी प्रासंगिक है, जिससे समकालीन समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। गनई (2017) ने उद्धृत किया कि राजनीतिक विचार की संपूर्ण हिंदू परंपरा तीन मुख्य महत्वपूर्ण विचारों के इर्द-गिर्द घूमती है। पहला महत्वपूर्ण विचार धर्म की प्रकृति और आधार है। दूसरा महत्वपूर्ण विचार दंड की प्रकृति और संगठन है। तीसरा महत्वपूर्ण विचार इन दोनों अवधारणाओं के बीच संबंध पर केंद्रित है। धर्म की अवधारणा को किसी भी धर्म के साथ पहचाना नहीं जा सकता है। यह अपने दायरे में व्यापक है और इसके साथ तदनुसार व्यवहार करने की आवश्यकता है। धर्म वास्तव में अपने अभिविन्यास में अधिक दार्शनिक है।दंड का विश्लेषण हिंदू परंपरा के राजनीतिक विचार को व्यावहारिक और धर्मनिरपेक्ष चरित्र प्रदान करता है, जबकि अमूर्त दार्शनिक अवधारणाओं से निपटने के दौरान प्राचीन हिंदू परंपरा की अनदेखी नहीं की गई है। शासन और सत्ता संघर्ष के व्यावहारिक और सांसारिक मुद्दों से जुड़ने की आवश्यकता वास्तव में महत्वपूर्ण है। एक महत्वपूर्ण बिंदु जो हमें याद रखना चाहिए वह यह है कि प्राचीन हिंदू राजनीतिक विचारकों ने सीधे शासकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए लिखा था।

महाकाव्य वैदिक साहित्य के बाद रामायण और महाभारत में प्राचीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक दशा का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण में राम के चरित्र के वर्णन से एक आदर्श राजा के गुणों का उल्लेख देखने को मिलता है। महाभारत के शांति पर्व में राज्य धर्म, राजा के कर्तव्य आदि के उल्लेख से भारतीय राजनीतिक चिंतन को एक मजबूत स्तंभ के रूप में देखा गया है। स्मृतियां भारतीय राजनीतिक चिंतन में प्रबल और सशक्त रूप से अपना विशेष महत्व रखती हैं, जिन्हें धर्मशास्त्र के नाम से भी जाना गया है। मनु, विष्णु, नारद, बृहस्पति, पराशर आदि स्मृतियां महत्वपूर्ण हैं। भारतीय राजनीतिक चिंतन में वास्तविक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। राज्य की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। महाभारत में राजदंड का महत्व, राज धर्म की शिष्टता, राजा की आवश्यकता, मंत्रियों की परीक्षा, उनके गुण, राजा की व्यवहारिक नीति, मंत्रिमंडल का संगठन, दूत, सेनापति आदि के गुण, राष्ट्र रक्षा, कर विधान, और राजा के कर्तव्य सैन्य संचालन विधि, गणतंत्र, राज्य और उसकी नीति, राजा और कर्मचारियों के गुण, कर्मचारियों की नियुक्ति, आदर्श राज्य व्यवस्था, राष्ट्र संधि, विग्रह आदि का उल्लेख मिलता है।

महाभारत के पश्चात कौटिल्य का अर्थशास्त्र विशेष उल्लेखनीय है। इसके साथ ही स्मृति ग्रंथों में भी राजा के कर्तव्य, कर्मचारी न्याय, दंड और राष्ट्र संबंधी विषयों का उल्लेख मिलता है। यह सभी व्यवहारिक रूप से राज्य के संचालन में उल्लेखनीय रहे हैं।भारतीय राजनीतिक विचार की परंपरा न केवल प्राचीन ग्रंथों में प्रतिबिंबित होती है, बल्कि यह आधुनिक राजनीति के लिए भी प्रासंगिक है। विभिन्न शास्त्रों और ग्रंथों ने एक व्यापक और गहन दृष्टिकोण प्रदान किया है जो वर्तमान समय में भी महत्वपूर्ण है। इन ग्रंथों का अध्ययन हमें राजनीतिक सिद्धांतों और प्रशासनिक नीतियों को समझने में मदद करता है, जो एक समृद्ध और व्यवस्थित समाज के निर्माण में सहायक है।

भागवद् गीता, महाभारत, रामायण और वेदांत में निहित राजनीतिक दर्शन:

राजनीतिक चिंतन की परंपरा वेदों और उपनिषदों से शुरू होती है। राज्य की प्रकृति के विभिन्न सिद्धांत बने और समय के साथ राज्यों के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया गया। राजनीतिक विचारों के ऐतिहासिक विकास से पता चलता है कि स्वराज और स्वशासन की अवधारणा ने मन को लगातार प्रेरित किया। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों का वेदों, उपनिषदों और भागवद् गीता द्वारा महत्वपूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व किया गया है। महान महाकाव्यों, महाभारत और रामायण में पाया गया राजनीतिक विचार अधिक जटिल और व्यापक है।

रामायण में राम पहले राजा हैं, जिनके चारों ओर जीवन, समाज और राजनीति की एक नई अवधारणा उभरती है। केंद्रीय विषय धार्मिक रीति-रिवाज था जो भारतीय समाज के सभी पहलुओं को प्रभावित और आकार देता था। व्यास का महाभारत, महान कुरु ऋषि और योद्धा भीष्म के युधिष्ठिर को दिए गए प्रवचनों का एक वृत्तांत है। ये प्रवचन राजा के कर्तव्यों और उसकी प्रजा के दायित्वों पर केंद्रित हैं, और जो राज्य का एक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय समाज और राजनीति को प्रभावित करने वाले राजनीतिक विचारों का सबसे गहन स्रोत इसी प्राचीन साहित्य में है। भागवद् गीता में, भगवान कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग और धर्म के सिद्धांतों के माध्यम से जीवन और शासन के गूढ़ पहलुओं की शिक्षा देते हैं। यह राजनीतिक और नैतिक दायित्वों का एक अद्वितीय मिश्रण प्रस्तुत करता है, जो न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामूहिक उन्नति के लिए भी महत्वपूर्ण है।

वेदांत में निहित राजनीतिक दर्शन अधिक दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से राज्य और उसके कर्तव्यों की चर्चा करता है। इसमें समाज की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति को राज्य का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। उपनिषदों में शांति और न्याय की स्थापना पर बल दिया गया है और राजा को इसे सुनिश्चित करने वाला प्रमुख अधिकारी माना गया है।इन सभी ग्रंथों का समन्वय भारतीय राजनीतिक दर्शन को एक समृद्ध और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह दर्शन केवल राज्य की संरचना और कार्यप्रणाली पर ही नहीं, बल्कि समाज के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान पर भी बल देता है, जो इसे एक अद्वितीय और समग्र दृष्टिकोण बनाता है।

भागवद् गीता का राजनीतिक दर्शन

भागवद् गीता को उपनिषदों का सार कहा जाता है, क्योंकि उपनिषदों के मौलिक विचार को गीता में व्यावहारिक और आसानी से संप्रेषणीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत में, गीता की शिक्षाएँ महत्वपूर्ण और मानवतावादी हैं। अपनी मानवतावादी सलाह को सशक्त औचित्य देने के लिए श्रीकृष्ण ने मनुष्य, प्रकृति और भगवान का विस्तृत विश्लेषण किया। यह विश्लेषण मूलतः उपनिषदों के अध्यात्मवाद में निहित है। इस प्रकार, उपनिषदों की भाँति गीता में भी मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के बीच विद्यमान एकात्मकता के संबंध को स्पष्ट किया गया है। गीता के अनुसार, मनुष्य का सर्वोच्च उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति, या समाज का एकीकरण है। यह आदर्श भक्ति, ज्ञान अथवा कर्म से प्राप्त किया जा सकता है। गीता इनमें से प्रत्येक मार्ग पर विस्तृत विचार प्रदान करती है, जिसके परिणामस्वरूप आगे के टिप्पणीकारों ने एक दूसरे पर ध्यान केंद्रित किया और इस तरह गीता के स्वतंत्र विश्लेषण या आलोचनाएँ तैयार कीं। गीता में आदर्श व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ कहा गया है। गीता में उनके विचारों और कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया

है। इससे स्पष्ट होता है कि गीता समग्रता का समर्थन करती है| राजनीति मीमांसा व्यक्तित्व और सुखवाद, रूढ़िवाद और आंतरिक शांति, सक्रियता और त्याग, भागीदारी और अलगाव, ज्ञान और भक्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक एकजुटता का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण प्रदान करता है। वेदों, उपनिषदों और भागवद् गीता में सामाजिक एकजुटता की अवधारणा का आध्यात्मिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पहलू है। जहाँ आध्यात्मिक पहलू मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर की एकता में विश्वास करता है, वहीं समाजशास्त्रीय पहलू वर्ण व्यवस्था, मनोवैज्ञानिक पहलू आश्रम व्यवस्था और पुरुषार्थ के आदर्श में विश्वास करता है। भारतीय दर्शन आधिभौतिक में भेद नहीं करता, भारतीय दर्शन वास्तविकता के आध्यात्मिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पहलुओं के बीच अंतर नहीं करता है। इसका दृष्टिकोण समग्र है। कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत वर्ण व्यवस्था का विस्तार है|

वेद, उपनिषद और गीता की तरह मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के बीच तादात्म्य कायम करता है। गीता ने वर्णाश्रम धर्म का उपदेश दिया है गीता का उपदेश देने वाले कृष्ण स्वयं कहते हैं, 'समाज के चारों वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र की रचना मैंने उनके पूर्व जन्म के अनुसार बाँट कर की है|

वेदांत का राजनीतिक दर्शन

भारतीय दर्शन को अभिव्यक्त करने वाले सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। जिसमें राजा की नियुक्ति, राजा और प्रजा के सबंध, शासन नीतियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में राज्य के लिए राष्ट्र शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित है। अर्थवेद में राष्ट्राणि के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि वेदों में अनेक राष्ट्र की सत्ता स्वीकारी गयी है। ब्राह्मण ग्रंथों में राजनीतिक विषयों के संदर्भ में पर्याप्त वर्णन देखने को मिलता है जो राष्ट्रों की समृद्धि, राजा के गौरव की अभिवृद्धि, राज्यभिषेक विश्व शान्ति की स्थापना इत्यादि के लिए किये जाते थे। किसी देश की राष्ट्रीय राजनीति उसके दर्शन और संस्कृति में निहित होती है। भारतीय राजनीतिक विचार हिंदू धर्म आधारित राजनीति से प्रारंभ होकर समकालीन समय में पश्चिमी राजनीतिक विचार के प्रभाव से धीरे-धीरे विकसित हुआ। हालाँकि, प्राचीन परंपरा को जारी रखते हुए, समकालीन भारतीय राजनीतिक विचार नव-वेदांत पर आधारित है, जो प्राचीन वेदांत दर्शन का आधुनिक संस्करण है। जो अद्वैतवाद, अध्यात्मवाद, विकेंद्रीकरण, सभी के कल्याण, आध्यात्मिक लोकतंत्र और विश्व भाईचारे की विशेषता है। राजनीतिक वेदांतवाद की अवधारणा अत्यधिक महत्वपूर्ण है और यह आधुनिक भारत में प्राचीन हिंदू विचार के सबसे गहन परिवर्तनों में से एक का प्रतीक है।

प्राचीन भारतीय राजनीति चिंतन की विशेषताएं

किसी भी देश की राजनीतिक चिंतन उस देश की परिस्थिति से निर्मित होता है जो उसे अन्य देशों से अलग करती है। यह परिस्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक विकास के स्तर से प्रभावित होता है। प्राचीन भारत में जो राजनैतिक व्यवस्था थी उसकी अपनी विशेषता थी जो उसे पाश्चात्य चिन्तन से अलग करती है। ये विशेषतायें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक कारणों से प्रभावित थी। प्राचीन भारतीय चिन्तन की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

- **राजनीति को विशेष रूप से परिभाषित करना :** प्राचीन भारत में राजनीति को नए रूप में परिभाषित किया गया है, जो आज के राजनीति विज्ञान की परिभाषा से बिलकुल अलग है। राजनीति को किसी ध्येय की पूर्ति का साधन माना गया है। अलब्ध की प्राप्ति (जो प्राप्त नहीं है उसे कैसे प्राप्त किया जाए)| लब्ध का परिरक्षण (जो प्राप्त हो चुका है, उसकी रक्षा करना), रक्षित का विवर्धन (जिसकी रक्षा की गयी है, उसको कैसे बढ़ाया जाये) एवं विवर्धित के सुपात्रो में विभाजन (जिसकी बढ़ोतरी की गयी है उसको सुपात्रो में कैसे वितरित किया जाय) ।

- **राजनीति और धर्म का सम्मिश्रण**: प्राचीन भारतीय चिंतन में धर्म और राजनीति का पारस्परिक जुड़ाव रहा है| भारतीय राजनीति की सबसे प्रमुख विशेषता राजनीति और धर्म का एक साथ होना, अर्थात भारत में राजनीति धर्म से ओतप्रोत है| राजा से भी धर्म के पालन की आशा की जाती है। वह हर प्रकार के धार्मिक परम्पराओं, रीतियों से बंधा हुआ है। धार्मिक दृष्टि से इसके पर्याप्त उदाहरण देखने को मिलते हैं। यह अकाट्य सत्य है कि भारतीय राजनीति प्राचीन समय में धर्म पर आधारित थी और धर्म को सर्वोपरी सत्ता माना गया। भीष्म ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा 'धार्यते इति धर्मः अर्थात् 'धर्म' जिसका अर्थ है 'धारण करना'। हम कह सकते हैं कि जिस भी विधि से राज्य का संरक्षण होता हो वही धर्म है। राज्य को धर्म की दृष्टि से एक मुख्य संस्था माना गया| धर्म और राजनीति को एक दूसरे से पृथक नहीं किया गया । राजा और शासन का प्रमुख कर्तव्य धर्म का पालन करना माना गया और शत्रु से भी धर्म युद्ध करने हेतु निर्देशित किया गया। यदि किसी राज्य में धर्म का स्तर सर्वोच्च है, तो वहाँ के निवासी अपने जीवन के व्यवसाय क्षेत्र में धार्मिक अनुष्ठानों को महत्व प्रदान करते थे और इसी तरह से राजा से भी धर्म पालन की आशा की जाती थी। राजनीति में धर्म एवं नैतिकता का सदैव समावेश रहा है। राज्य को धर्म की दृष्टि से एक मुख्य संस्था माना गया, धर्म और राजनीति को एक दूसरे से पृथक नहीं किया गया ।
- **आध्यात्मिकता पर बल**: प्राचीन भारतीय राजनीति का झुकाव आध्यात्म की ओर अत्याधिक रहा है। भारत को आध्यात्मिक गुरू भी कहा जाता है। जीवन के प्रत्येक पहलू का विचार आध्यात्म से प्रेरित है। यहाँ पर जीवन शैली ही आध्यात्मिक रही है। यही कारण है कि यहाँ राजनीति का रंग भी आध्यात्मिक है। भारत में राजनीति में आत्मा का विकास एवं मानव के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया है। राजनीति का मुख्य ध्येय लोगों को मोक्ष की ओर पथ-प्रदर्शित करना था। भारत में भौतिक जीवन की अवहेलना कभी नहीं की गयी है। विश्व परिदृश्य में भारत ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पर संपूर्ण सृष्टि को परा-शक्ति या परमात्मा द्वारा संचालित माना गया है। भारतीय चिन्तन में यह माना गया है कि जीवन का मूल उद्देश्य आत्मा का विकास करना है।
- **आदर्शवादी न होकर व्यावहारिक दर्शन पर आधारित** : भारतीय चिन्तन आदर्शवादी न होकर व्यावहारिक है। प्राचीन भारतीय राजनीति चिंतन किसी पारलौकिक चिंतन की कल्पना नहीं करता था बल्कि व्यावहारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित करता था, उसका सरोकार राज्य की स्थूल

समस्याओं से था, यथा समाज में चार्तुयवर्ण एवं सामाजिक नैतिकता को स्थापित करना रहा और लोगों को धर्म के मार्ग पर चलना सिखाना था। हिन्दू राजनीतिक चिन्तन उत्कृष्ठ वास्तविकताओं से भरा हुआ है।

- **राज्य एक आवश्यक एवं उपयोगी संस्था** : भारतीय राजनीतिक चिन्तन में राज्य को एक आवश्यक संस्था के रूप में देखा गया है। प्राचीन भारत में राज्य का होना सामाजिक जीवन के लिए सर्वथा आवश्यक एवं उपयोगी रहा है। प्राचीन भारतीय चिंतन की विशेषता रही है कि राज्य को ये एक आवश्यक संस्था मानते हैं। जीवन के तीन लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम की राज्य के बिना प्राप्ति संभव नहीं है। जिस राज्य में व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और यहॉ तक कि उसके आत्मिक विकास के लिए भी राज्य को आवश्यक माना गया|

- **राजा के कार्यों का विशद वर्णन:** राज व्यवस्था के अंतर्गत राजा के कार्यों को महत्वपूर्ण माना गया। और राजा को अपने दायित्वों का निर्वहन किस प्रकार करना चाहिए। प्रजा को कौन-कौन से साधन राजा द्वारा उपलब्ध कराने चाहिए इत्यादि का विस्तृत उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने कहा, राजा को अपना सुख प्रजा के सुख में मानना चाहिए ।

  प्रजासुखेसुखमाज्ञः प्रजानांच हितेहितं। नात्मप्रियंहिंततस्य प्रजानांतुप्रियंहितम् ।।

- **सप्तांग सिद्धांत की अवधारणा** : प्राचीन भारतीय राजनीति में राज्य को साप्तांग माना गया है यानि राज्य के सात तत्व होते हैं यथा: स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दंड और मित्र इसके बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती थी। ये सभी तत्व एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित थे, इन तत्वों को राज्य का शरीर माना गया था, इनके बिना राज्य का स्वरूप निर्धारित नहीं हो सकता था।

- **दंडनीति का महत्व** : भारतीय राजनीतिक चिन्तन यह मानता है कि मानव में आसुरी शक्तियों की प्रधानता होती है। अत उनको नियन्त्रित करने के लिये दण्ड की आवश्यकता होती है। भारतीय चिन्तन में कठोर दण्ड का प्रावधान है| मनु, कौटिल्य सभी ने दण्ड पर बल दिया। प्राचीन भारत में दंडनीति को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया था, दंडनीति को कौटिल्य ने इस प्रकार से वर्णित किया है।

  अप्रणीतो हि मात्स्य न्यायमुदभवयति। बलीयानबल ग्रसते दंडधराभावे।।

  दंड धारण करने वाले के अभाव में बलवान मनुष्य निर्बल को दबोच लेता है। अर्थात, दंड ही प्रजा पर शासन करता है, राजा तो दंड के प्रयोग का माध्यम है। दंड राज्य का आधार होता है, कहा भी कहा गया है कि दंड के बिना राज्य में अमन शांति बहाल नहीं हो सकती। राज्य अपने दायित्व की पूर्ति करने के लिए दंड के प्रावधान को सुनिश्चित करता है और प्राचीन भारतीय राजनीति में दंड के महत्व को हम उसके नामकरण के आधार पर भी जान सकते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो दंड नीति को सर्वाधिक महत्व देता है।

- **राज्य के विस्तृत कार्य क्षेत्र पर बल:** भारतीय राजनीतिक चिन्तन आदर्शवादी तो है परन्तु इसमें कही भी व्यक्तिवाद की झलक नहीं मिलती है। भारतीय चिन्तन में राजा का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। राज्य न केवल व्यक्तियों की रक्षा करेगा वरन उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। राज्य का कार्य क्षेत्र

विस्तृत है और उसका स्वरूप कल्याणकारी है। शासन की आवश्यकता, राजा के पद, और उसको प्रदान की गई शक्ति का उल्लेख हमारे महाकाव्य में स्पष्ट दिखाई देता है। शुक्र नीति में तो यहाँ तक कहा गया कि राजा शासन के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। राज्य इसके बाद नैतिकता के मार्ग पर प्रेरित कर अंतिम लक्ष्य (आत्मा का विकास) को प्राप्ति के लिये वातावरण उपलब्ध करायेगा।

- **राजा की सर्वोच्च सत्ता पर बल:** भारतीय राजनीतिक चिन्तन में राज्य का स्थान सर्वोच्च है। राजा सर्वोच्च शक्तियों का प्रयोग करता है। वह किसी के प्रति जबावदेह नहीं है। अनेक विद्वानों ने राजा को दैवीय माना है। उसमें दैवीय गुणों का समावेश है। कौटिल्य ने राजा और राज्य के बीच कोई अंतर नहीं किया है। राजा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है परन्तु उसे निरंकुश नहीं बनाया गया है।
- **विचारों की अपेक्षा संस्थाओं पर बल** : भारतीय प्राचीन विद्वानों ने अपनी रचनाओं का केन्द्र संस्थाओं को बनाया है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में कल्पनाशील विचारों की अपेक्षा संस्थाओ पर विचार किया गया था, जैसे साप्तांग सिद्धांत। साप्तांग सिद्धांत में राज्य के सात तत्वों के बारे में न सिर्फ सविस्तार बल्कि उसके कार्यों एवं उद्देश्यों के बारे में विचार किया गया है। इन संस्थाओं का महत्व, संगठन तथा कार्य आदि का व्यापक वर्णन किया गया है। समस्त अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मूल रूप से राजनीतिक संगठनों तथा उनके कार्यों को बनाया गया है। चिंतन का प्रमुख आधार संस्थाओं को रखा गया और संस्थाओं के महत्व को उनके कार्यों के विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है | राज्य के महत्व का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में दशरथ की मृत्यु के बाद का जो वर्णन किया गया है वह पढ़ने योग्य है जिसमें यह कहा गया है कि राज्य में अराजकतावादी और व्यक्तिवादी विचार का पूर्ण अभाव रहा है।
- **सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव:** प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था वहाँ की सामाजिक व्यवस्था की देन होती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में हो रहा परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था में हो रहे परिवर्तन की देन होता है। भारतीय चिन्तन में ऐसा देखा गया है कि यहां भी सामाजिक व्यवस्था का व्यापक प्रभाव राजनीतिक व्यवस्था पर रहा है।
- **राजा के व्यापक कार्यों का वर्णन:** प्राचीन भारतीय चिन्तन में प्रायः विद्वानों ने राजा के कार्यों का व्यापक वर्णन किया है। इन रचनाओं के अधिकांश पद राजा की योग्यता, महत्व एवं कार्यों के वर्णन करते हैं। राजा का परम कर्तव्य क्या है? उसे किस प्रकार इसका पालन करना चाहिए? प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था वहां की सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा होती है। प्राचीन भारत में तो सामाजिक व्यवस्था में समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं और जैसे ही सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, वैसे की राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है। राज्य का मुख्य कार्य विभिन्न वर्गों के बीच में समन्वय स्थापित करना था।
- **अंतराष्ट्रीय सम्बन्ध की अवधारणा** : प्राचीन भारतीय राजनीति में पर- राष्ट्र सम्बन्धी विचारों की चर्चा की गयी है जिसको मंडल सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। मंडल सिद्धांत में राजा को केंद्र मानकर चर्चा की गयी है, यहाँ राजा को विजिगीषु माना गया है अर्थात विजय की इच्छा चाहने वाला राजा। मंडल सिद्धांत में विजिगीषु को शक्तिशाली बनाने के उपायों के बारे में भी वर्णन किया गया है जिसमें छः नीतियों और

चार उपायों का वर्णन किया गया है। इस तरह की अवधारणा दुनिया के किसी भी राजनीतिक विचारधारा में नहीं मिलता जैसा कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में मिलता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में तत्कालीन राजनैतिक समस्याओं पर न केवल विचार हुआ वरन उसका समाधान भी प्रस्तुत किया गया। यह उस समय हो रहा था जब पश्चिम में व्यवस्थित अध्ययन प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। भारतीय चिन्तन यर्थातवादी, संस्थावादी तथा अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति पर बल देता है। राज्य शास्त्र या राज धर्म का नाम इस शास्त्र को इसीलिए दिया गया था क्योकि इसका मुख्य संबंध राजा के जीवन व्यवहार से था। **"क्षात्र धमौ महारोद्र शास्त्रनित्य इति स्मृत । बधश्च भरतश्रेष्ठ वाले शस्त्रेस मयुगे ।।" (महामारत, पञ्चम् खण्ड)**

नहुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुल तथा । बिडालमत्ति श्वा राजधान च्याल मृगस्त था ।।महामारत -, शान्तिपर्व (२१) १३ -, पेज

भारतीय विचारक बहुत पहले से ही सम्प्रभुता को राज्य का आधार मानने लगे थे। उनके मतानुसार बल प्रयोग या दण्ड के बिना कोई राज्य कायम नहीं रखा जा सकता। अराजकता, अव्यवस्था एवं अशान्ति को रोकने के लिए अपराधियों को दण्ड देना तथा अन्य लोगों को दण्ड का भय दिखा कर मर्यादा में बनाये रखना राज्य का प्रमुख कर्तव्य माना गया था। इस सम्बंध में नीति वाक्यामृत का यह कथन भी उल्लेखनीय है- "**अलब्ध लाभो लब्ध परिरक्षणं रक्षित विवर्धनम् चेत्यर्थानुवंत्रः** ।" मनुस्मृति के सातवें अध्याय के श्लोक ६६-१०१ में भी इन चार बातों का उल्लेख किया गया है।

भारतीय राजनीतिक चिन्तन अत्यन्त प्राचीन है। इसका राजनीतिक और सामाजिक लोकाचार वेदों में निहित है। चिंतन की वैदिक प्रणालियाँ हिंदू सभ्यतागत परिवेश के मूलभूत ढाँचे का निर्माण करती हैं। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और उसके दार्शनिकों को राजनीतिक विचार की समग्रता से पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जिससे कि वे राजनीतिक विचार के इतिहास में उचित स्थान का दावा कर सकें। भारत की विविधता आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारकों के विचारों में परिलक्षित होती है। स्वामी विवेकानंद ने तर्क दिया कि आध्यात्मिकता में पूरी मानवता के उत्थान की शक्ति है। भारतीय राजनीतिक विचारकों की इन अवधारणाओं या प्रतिमानों की वैश्विक स्तर पर प्रासंगिकता की संभावनाओं पर गौर किया जाए। भारतीय राजनीतिक चिंतन के अध्ययन से ही भारत की राजनीतिक समस्याओं को समझना संभव हो सकता है। दूसरे शब्दों में, विश्व की प्रचलित राजनीतिक अवधारणाएँ भारतीय राजनीति की राजनीतिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकतीं। अतः, भारतीय राजनीतिक दर्शन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि आधुनिक संदर्भों में भी इसकी गहन समझ से समकालीन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. गनई, बी.ए. (2017) हिंदू ट्रेडिशन ऑफ पॉलिटिकल थॉट: एन ओवरव्यू, क्वेस्ट जर्नल्स जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस वॉल्यूम 5 - अंक 10, पृष्ठ: 65-70
2. मेहता, वी.आर. (1996)। भारतीय राजनीतिक विचार की नींव: एक व्याख्या - मनु से वर्तमान तक, मनोहर पुस्तकें
3. शरण, पी. (1983) प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और संस्थाएँ, मीनाक्षी प्रकाशन
4. वर्मा, वी. पी. (2017), प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन, नवरंग ऑफसेट प्रिंटर्स, आगरा
5. शर्मा ,जे. पी. (2016) भारतीय राजनीतिक चिंतन, अकादमिक प्रकाशन
6. कौटिल्य, भयंशास्त्र, १ (४)
7. महाभारत-शान्तिपवं, १५ (३१)
8. महामारत, शान्तिपर्व (२१) १३ -, पेज ४४५५
9. महाभारत पञ्चम् खण्ड, शान्ति पर्व, बाईमवा मध्याय, स्नोक्५-, अनुवादक पण्डित रामनारायण दत्त शास्त्रो- पाण्डेग'राम', गीता प्रेस गोरखपुर, पेज ४८६८
10. महाभारत-शान्ति पर्व, २४ (१८)

15

बी.एड. पाठ्यक्रम के शिक्षणशास्त्र में कला एवं खेल के समावेश: उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ में

डॉ कीर्ति प्रजापति

सहायक आचार्य, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले विश्वविद्यालय, बरेली

विमल कुमार

सहायक आचार्य, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले विश्वविद्यालय, बरेली

नयी शिक्षा नीति 2020 में प्रत्येक विषय को पढ़ाने के लिए प्रयोग आधारित अधिगम को अपनाये जाने की संस्तुति की गई है, जिसमें अन्य शिक्षण विधियों के साथ स्वयं करके सीखना तथा प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किये जाने पर बल दिया गया है | नयी शिक्षा नीति 2020 के अनुसार कला तथा खेल समन्वय एक क्रॉस करीकुलर शैक्षणिक दृष्टिकोण है, जिसके प्रयोग से कक्षा न सिर्फ ज्यादा आनंदपूर्ण बन सकती है, बल्कि भारतीय कला और संस्कृति के शिक्षण में समावेशन से भारतीयता से भी छात्रों का परिचय संभव है| स्थानीय खेल का शिक्षण प्रक्रिया में उपयोग **से** करने छात्रों में परस्पर सहयोग, स्वतः पहल करना, स्वयं निर्देशित होकर कार्य करना, स्व-अनुशासन, समूह भावना, जिम्मेदारी तथा नागरिकता आदि कौशल विकसित किये जा सकते है|

भावी शिक्षकों को विद्यालयों में कला एवं खेल की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित करवाने के लिए शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में कला एवं खेल का समावेश अति आवश्यक है| कला शिक्षा तथा खेल से तात्पर्य केवल कला विषय एवं खेलकूद की शिक्षा ही नही है, वरन कला में सर्वांगीण विकास का भाव समाहित है | शिक्षक कला तथा खेल को शिक्षण शास्त्र की तरह सीखे इसके लिए नाटक तथा खेल के माध्यम से शिक्षा को रुचिपूर्ण करने का प्रशिक्षण प्रशिक्षु शिक्षक को दिया जाना अति आवश्यक है।

स्वास्थ्य और खेल के राष्ट्रीय फोकस के आधार पत्र में ये वर्णित है कि विद्यार्थियों के लिए सभी अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में स्वास्थ्य एवं खेल शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दिया जाए परन्तु आधार पत्र में वास्तविक स्थिति को देखते हुए ये चिंता व्यक्त की गयी है कि प्रावधान तो बहुत बने परन्तु उनको लागू नही किया गया है | कतिपय यह देखने में आया है शिक्षक इन विषयों को एक भार के रूप में लेते हैं तथा इनको पढ़ाना एक गतिविधि कराने जैसा मानते हैं तथा कुछ घंटे की कक्षा लेकर इतिश्री कर लेते हैं |

शिक्षकों को कला व खेल की उपादेयता समझाने हेतु शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में कला एवं खेल को सम्मिलित करना तथा उनकी उपयोगिता को समझते हुए उनकी पाठ्यचर्या में उपयुक्त भारांक देते हुए समय सारिणी में उचित स्थान देना अति आवश्यक है, क्योंकि यदि शिक्षक ही खेल एवं कला की उपयोगिता को नहीं समझेंगे तो विद्यालयों में कला एवं खेल को उचित महत्त्व मिलने की कल्पना करना बेमानी है |

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व : बाल केन्द्रित शिक्षा तथा बहुविषयक उपागम की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा शिक्षा को सुग्राह्य एवं रुचिकर बनाए जाने के क्रम में कला एवं खेल शिक्षा को विशेष महत्व दिए जाने का सुझाव दिया गया | एन.सी.ई.आर.टी. ने अपने दो वर्षीय बी. एड. पाठ्यक्रम को बनाते समय कला शिक्षा को शिक्षणशास्त्र की तरह पढाये जाने का प्रावधान किया है,जिसमें यह कहा गया है कि कला एवं क्राफ्ट के लिए कार्यशालाओं का आयोजन हो, तथा स्थानीय कलाकारों से सम्पर्क किया जाये | यह प्रावधान भी दिया गया है कि स्कूल इंटर्नशिप का मूल्यांकन करते समय ये भी देखा जाए कि विद्यार्थियों ने इस दौरान कला को शिक्षणशास्त्र के रूप में प्रयोग किया है अथवा नही |

सरकार की लगभग प्रत्येक शिक्षक योजना में पिछले कुछ वर्षों से कला एवं खेल को महत्व दिया जा रहा है | पाया गया है कि कला तथा खेल द्वारा शिक्षण केवल शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए ही आवश्यक नहीं, वरन विषयों की गहरी समझ विकसित करने के लिए भी आवश्यक है। शिक्षा के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति कला तथा खेल के शिक्षण के द्वारा आसानी से की जा सकती है। युन्सूक रो (2016) ने अपने अध्ययन में पाया कि नाटक के माध्यम से शिक्षण करने पर आलोचनात्मक संवाद और अंग्रेजी सीखने के अवसरों की पर्याप्त घटनाएं पायी गयीं | कैरेन डी मोस तथा टेरी मोरिस (2002), ने अपने अध्ययन में ये बताया कि कला समेकित अधिगम द्वारा हम समझने के लिए सीखते हैं केवल याद करने के लिए नहीं और इसके द्वारा विद्यार्थी कक्षा के बाहर भी सीखने के अवसर तलाश करते हैं साथ ही उनके सीखने के मार्ग में जो बाधाएं होती हैं वे उनको अवसर के रूप में लेते हैं | आइली हाइमेन (2020) के अध्ययन से स्पष्ट है कि कला समेकित अध्ययन अभ्यास के द्वारा कक्षा कक्ष में सामाजिक तथा सांवेगिक अधिगम को बढ़ावा दिया जा सकता है |

विद्यालयों में खेल एवं कला शिक्षा को महत्व दिया जाए तथा शिक्षण शास्त्र के रूप में भी प्रयोग किया जाए, इसके लिए ये आवश्यक है कि भावी शिक्षकों को इसके लिए प्रशिक्षित किया जाये , इस शोध पत्र द्वारा शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रिया में कला एवं खेल को दिए गए महत्व की विवेचना की गयी है |

शोध के उद्देश्य :

1. उत्तर प्रदेश के चयनित राज्य विश्वविद्यालयों में संचालित दो वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम का निम्न बिन्दुओं के सन्दर्भ में अध्ययन करना-

a) उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्यक्रम के कुल अंकों में से कला एवं खेल के प्रश्पत्र के कुल भारांक |

b) उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्यक्रम के अंतर्गत कला एवं खेल के प्रश्न पत्रों को शामिल करने के उद्देश्य |

c) उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम के अंतर्गत कला एवं खेल के प्रश्न पत्रों की विषय वस्तु |

d) उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम के अंतर्गत कला एवं खेल के प्रश्न पत्रों में निर्धारित दत्त कार्य एवं प्रयोगात्मक कार्य |

e) उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम के अंतर्गत कला एवं खेल के प्रश्न पत्रों को लागू करने के ढंग एवं मूल्यांकन व्यवस्था का अध्ययन करना |

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा दी गई खेल एवं कला शिक्षा की संस्तुतियों के सन्दर्भ में बी.एड. पाठ्यक्रम की विवेचना करना |

शोध विधि: इस शोध में विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के क्षेत्र में भारत की नयी शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के बी. एड. पाठ्यक्रम में कला एवं खेल की पाठ्यचर्या से सम्बंधित पाठ्यचर्या, पाठ्यचर्या के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्य, मूल्यांकन प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम को लागू करने की प्रक्रिया के साथ साथ अन्य विषयों के शिक्षण शास्त्र में कला एवं खेल के समावेश का अध्ययन शामिल है|

नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, कला संगीत नृत्य और रंगमंच राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, स्वास्थ्य और खेल राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, उत्तर प्रदेश के विभिन्न राज्य विश्वविद्यालयों के बी. एड. कार्यक्रम के पाठ्क्रमों के विश्लेषण तथा सम्बंधित कुछ शिक्षक प्रशिक्षकों से वार्तालाप करके आंकड़े एकत्रित किये गए है|

शोध की जनसंख्या में उत्तर प्रदेश के वे सभी राज्य विश्वविद्यालय सम्मिलित है जिनमें शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित होता है |उत्तर प्रदेश को पांच प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में बांटा गया है, ब्रज, अवध,पूर्वांचल, बघेलखंड एवं बुंदेलखंड | प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रत्येक क्षेत्र से एक शिक्षण प्रशिक्षण वाले राज्य विश्वविद्यालय का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया | चुने गए विश्वविद्यालयों के नाम है,

1. संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी
2. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी
3. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
4. महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली
5. जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय बलिया

विवेचना

प्राप्त प्रदत्तों में से शोध के उद्देश्यों के अनुसार विवेचना करने पर हम पाते है कि-

1(a). न्यादर्श के रूप में चयनित पांच विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम की विवेचना करने पर ये पाया गया कि तीन विश्वविद्यालयों (संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी तथा महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली) में शिक्षा में कला एवम नाट्य प्रश्नपत्र का भारांक कुल भारांक के 3 से 4 % के लगभग है, बलिया विश्वविद्यालय में इसके भारांक 1% से भी कम हैं तथा लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ ने इसे अपने मुख्य पाठ्यक्रम का हिसा तो बनाया है परन्तु मूल्यांकन में शेष विषयों की तरह अंक न प्रदान करते हुए ग्रेड प्रदान करने का प्रावधान किया है |

1(b). अधिकांश विश्वविद्यालयों ने शिक्षा में कला एवं नाट्य प्रश्न पत्र के उद्देश्यों के अंतर्गत प्रशिक्षु शिक्षकों को दृश्य एवं नाट्य कलाओं से परिचित कराने के उद्देश्य के साथ साथ व्यक्तित्व विकास से सम्बंधित गुणों के विकास को महत्व देते हुए जो विभिन्न उद्देश्य निर्धारित किये हैं, उनमें समस्या समाधान कौशल, स्वअभिव्यक्ति, सम्प्रेषण कौशल, नागरिकता के गुणों का विकास करना आदि सम्मिलित हैं| महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली में कला एवं नाट्य प्रश्नपत्र के उद्देश्य के रूप में स्कूल पाठ्यक्रम में कला के विविध रूपों को शामिल करने के लिये उचित कौशलों को विकसित करने का उद्देश्य लिया गया है तथा लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ने अपने पाठ्यक्रम में स्पष्ट रूप में कला एवं नाट्य के बारे में उल्लेख किया है कि इन्हें शिक्षण शास्त्र के रूप में प्रयोग करना सिखाया जाए,वहीं बलिया विश्वविद्यालय ने इस प्रकार के किसी उद्देश्य का निर्धारण नहीं किया है|

1(c). पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के बारे में अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसके पाठ्यक्रमों में नृत्य, कला, दृश्य-कला एवं नाट्य-कला के प्रकारों के बारे में सैद्धांतिक जानकारी देना तथा भारतीय संगीत के बारे में बताना सम्मिलित है| नुक्कड़ नाटक, नाटक, अभिनय, एकल अभिनय के बारे में जानकारी प्रदान करने के साथ ही शिक्षा में कला और कला की शिक्षा के बारे में जानकारी देना भी सम्मिलित है| भारतीय उत्सवों में कलात्मक गतिविधियों का ज्ञान कराने वाली विषयवस्तु, विभिन्न दृश्य कलाओं, चित्रकारी, कला, छायाचित्र आदि के बारे में ज्ञान, साथ ही दृश्य कला के दार्शनिक और सामाजिक निहितार्थ भी इसकी प्रमुख विषयवस्तु है| महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली द्वारा इस प्रश्नपत्र में ड्रामा को आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के रूप में भी अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है तथा इसकी विषयवस्तु में एन.सी.टी.ई. की मंशा के अनुरूप हॉट सीटिंग का प्रयोग भी किया गया है ,जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय बलिया में कोई विषयवस्तु दी ही नहीं है तथा बुन्देलखण्ड विश्ववविद्यालय झाँसी में कोई विषयवस्तु स्पष्ट नहीं है केवल उद्देश्यों तथा दत्तकार्य की बात कही गयी है|

1(d). चुने गए विश्वविद्यालयों में इन विषयों से सम्बंधित दत्तकार्य व्यवस्था के बारे में अध्ययन करने से ये ज्ञात होता है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत सिश्वविद्यालय वाराणसी में विचार-विमर्श, भाषण, वाद-विवाद, पोस्टर निर्माण, सामुदायिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में नेतृत्व, प्रार्थना सभा में विचार प्रस्तुतीकरण, और नोटिस बोर्ड पर विचारों का लेखन आदि गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता के आधार पर इसका मूल्यांकन किया जाता है| बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने इस प्रश्नपत्र के मूल्यांकन के लिए उपरिलिखित गतिविधियों के अलावा कलादीर्घा, प्रदर्शनी एवं सांस्कृतिक उत्सव को सम्मिलित करने के साथ ही डॉक्यूमेंट्री एवं फिल्मों के माध्यम से स्थानीय कला को समझना भी शामिल किया है| लखनऊ विश्वविद्यालय ने इस प्रश्पत्र में से दी गई गतिविधियों में से किसी एक गतिविधि का किया जाना प्रशिक्षु शिक्षकों के लिए प्रत्येक सेमेस्टर में अनिवार्य कर रखा है, जिसके आधार पर ग्रेड प्रदान किये जाते है | महत्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय मूल्यांकन प्रक्रिया में उपरोक्त सभी गतिविधियाँ तो सम्मिलित हैं ही इसके अलावा पाठ्यपुस्तक विश्लेषण भी सम्मिलित है, जिसमें प्रशिक्षु शिक्षकों को ये विश्लेषण करना है कि प्रत्येक विषय में कला को शिक्षण करने में कहाँ सम्मिलित किया जा सकता है। साथ ही प्रत्येक विषय(

सामाजिक अध्ययन शिक्षण, विज्ञान शिक्षण, गणित शिक्षण, भाषा शिक्षण, वाणिज्य शिक्षण आदि) में कला के विभिन्न प्रकारों को समाहित करते हुए कम से कम 10 पाठ-योजनाओं का निर्माण प्रशिक्षु शिक्षक द्वारा किया जाना है | जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय बलिया में कोई दत्तकार्य दिया नहीं दिया गया है |

1(e). सभी विश्वविद्यालयों में कला एवं खेल के प्रश्नपत्र को लागू करने के ढंग तथा मूल्यांकन प्रक्रिया का पता लगाने के लिए संस्थानों में संचालित पाठ्यक्रम की विवेचना के साथ सम्बंधित संस्थान के शिक्षकों से वार्तालाप कर संवाद स्थापित किया गया |

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली में इस प्रश्नपत्र को लागू करते समय दत्त कार्यो के दिशानिर्देशों का ध्यान जाता है परन्तु समय सारिणी में इस प्रश्पत्र को पर्याप्त समय नहीं दिया जाता है | छात्रों द्वारा दृश्य व प्रदर्शन कला की गतिविधियों में भाग लिया जाता है, तथा दत्त कार्य में कला को समाहित करते हुए पाठ योजनाएं भी बनायीं जाती है | इसके मूल्यांकन हेतु आन्तारिक तथा बाह्य दोनों पत्रकार के मूल्यान्कन की व्यवस्था है जिसमें 30 अंक आंतरिक मूल्यांकन तथा 20 अंक बाह्य मूल्यांकन हेतु सैद्धांतिक प्रश्नपत्र के रूप में हैं |

लखनऊ विश्वविद्यालय में कला एवं नाट्य को प्रत्येक सेमेस्टर में रखा गया है तथा कला से सम्बंधित कोई भी एक गतिविधि छात्राध्यापकों को प्रत्येक सेमेस्टर में करना अनिवार्य होता है तथा परिणाम में उसकी ग्रेडिंग की जाती है | मूल्यांकन व्यवस्था आंतरिक है |

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में इस प्रश्न पत्र में प्रशिक्षु शिक्षकों से कला के प्रदर्शन की कुछ गतिविधियाँ करवाकर एवं दत्त कार्य देकर इस प्रश्पत्र का केवल आन्तरिक मूल्यांकन कर दिया जाता है |

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में मूल्यांकन केवल आतंरिक है तथा छात्राध्यापकों द्वारा गतिविधियों के आधार पर ग्रेड देकर किया जाता है |

जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया के शिक्षकों से बात करने पर ये स्पष्ट हुआ कि मूल्यांकन के लिए कुल 10 अंक निर्धारित हैं जिसके लिये छात्रों को कोई भी प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है, और बिना किसी स्पष्ट दिशानिर्देशों के स्थानीय कलाकारों के बारे में एक दस्तावेज बनवा कर जमा करवा लिया जाता है जिसके आधार पर उनका मूल्यांकन कर लिया जाता है |

कला के साथ जब खेल के प्रश्नपत्र के बारे में विवेचना की गयी तो ये पाया गया कि खेल का अलग से कोई प्रश्नपत्र किसी भी राज्य विश्वविद्यालय में प्रशिक्षु शिक्षकों को नही पढाया जाता है | चयनित पांच विश्वविद्यालयों में से संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में खेल का कोई प्रश्नपत्र किसी रूप में नही है, जबकि योग शिक्षा ऐच्छिक विषय के रूप में केवल द्वितीय वर्ष में संचालित किया जा रहा है | लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ में प्रोफेशनल डेवलपमेंट के अंतर्गत खेल एवं योग का प्रश्नपत्र संचालित है | बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में खेल ,स्वास्थ्य एवं योग के नाम से अनिवार्य प्रश्नपत्र है, जिसमे खेल एवं स्वास्थ्य की विषयवस्तु में, इसके अर्थ, परिभाषा के साथ साथ विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव, स्वस्थ खान-पान के साथ विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के बारे में पढाया जाता है , योग शिक्षा के लिए इसी प्रश्पत्र के अंतिम इकाई में स्थान है | बलिया में प्रशिक्षित विशेषज्ञ के द्वारा गतिविधि करवाए जाने का प्रावधान है, शेष पाठ्यक्रम में कोई विशेष प्रावधान दृष्टिगोचर नहीं होते हैं | महात्मा

ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली के पाठ्यक्रम में भी खेल शिक्षा का व्यवस्थित प्रावधान नही है |कोई भी विश्वविद्यालय खेल शिक्षा को शिक्षण शास्त्र के रूप में अलग से कुछ नही पढ़ा रहा है |

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कला एवं खेल के बारे में संस्तुति है कि प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाये, कहानी आधारित शिक्षण प्रक्रिया को मानक शिक्षण शास्त्र के रूप में देखा जाए साथ ही कला समन्वित शिक्षण को कक्षा प्रक्रिया में स्थान दिया जाये | एन.सी.ई.आर.टी. ने भी अपने बी. एड. के द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में शिक्षा में कला और नाट्य के प्रश्नपत्र की विषयवस्तु के अंतर्गत प्रावधान किया है कि, पाठ्यक्रम और सहपाठ्यक्रम गतिविधियाँ पृथक नहीं होनी चाहिए, शिक्षा में कला एवं नाट्य को विद्यार्थियों में सृजनात्मकता और सौन्दर्यात्मक संवेदनशीलता को बढाने के लिए उपयोग किया जाना चाहिए साथ ही कला एवं नाट्य के द्वारा आलोचनात्मक चिंतन का भी विकास किया जाना चाहिए | शिक्षा में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित की जाये और शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के लिए कैसे प्रयोग करें ये चिंतन भी इस प्रश्नपत्र में सम्मिलित होना चाहिए | कला के माध्यम से विद्यार्थी स्वयं को अभिव्यक्त करना सीखें, स्थानीय कला और संस्कृति को समझने के साथ स्थानीय हाट मेलों का भ्रमण करते हुए संस्कृति और रीति-रिवाजों के बारे में समझें, स्थानीय कलाकारों के साथ उनका वार्तालाप हो जिससे कि उनका व्यक्तित्व विकास हो तथा वे कला को आत्मसात कर सके | वर्तमान शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्यक्रमों के विवेचन से ये पाया गया कि अध्ययन के लिए चयनित लगभग सभी राज्य विश्वविद्यालयों में ऐसे प्रावधानों का आभाव है |

चुनौतियाँ: कला तथा खेल को शिक्षण शास्त्र के रूप में प्रयोग करने तथा सभी विषयों के साथ इसका समावेशन करने के क्षेत्र में बहुत सी संस्तुतियां दी गयीं हैं, परन्तु फिर भी इसे लागू करने में बहुत सी चुनौतियां बनी हुई हैं, इनको पूर्व में हुए कई अध्ययनों के परिप्रेक्ष्य में निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है-

मालविका-अहलावत (2017) ने अपने शोधपत्र 'आर्ट्स इन टीचर एजुकेशन : चैलेंजेज एंड अपोर्चुनिटीज' में शिक्षक शिक्षा में ड्रामा और आर्ट को विषय के तरीके से लिए जाने में निम्न बाधाएं बताई हैं-

1. प्रदर्शन कला और प्रदर्शन कला के प्रयोग में प्रधानाचार्यों तथा शिक्षकों का नकारात्मक रवैया है तथा बहुत से शिक्षक अपनी शिक्षण शैली को बदलना नहीं चाहते तथा वे अन्य शिक्षकों को भी इस मामले में सहयोग नहीं करना चाहते है |

2. शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया में लगे शिक्षकों को प्रदर्शन कला की जानकारी तथा प्रशिक्षण नहीं है, इस कारण वे इस विषय को उचित प्रकार से विद्यार्थियों के मध्य प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं |

3. संस्थानों में कला प्रशिक्षण से सम्बंधित संसाधनों का अभाव है जैसे कला शिक्षण हेतु उचित व्यवस्था का कक्ष, उपकरण आदि |

4. अध्ययन में सम्मिलित कुछ प्रशिक्षु शिक्षक इस प्रकार की गतिविधियों को समय तथा धन की बर्बादी मानते हैं तथा उनका रवैया नकारात्मक पाया गया |

5. छात्रों का संकोची स्वभाव भी इन गतिविधियों के संचालन में बाधक है वे इनमें सक्रिय प्रतिभाग नहीं करते हैं, ऐसे विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार की गतिविधियों को संचालित करना बड़ी चुनौती होती है |

बेरी ओरेक्क (2004)ने अपने अध्ययन के निष्कर्षों से ये बताया कि शिक्षक यह मानते हैं कि शिक्षण में कला आवश्यक है परन्तु वे इसे बहुत कम ही प्रयोग करते हैं साथ ही पाठ्यक्रम को पूरा कराने के दवाब में भी वे इसको समाहित कर शिक्षण कार्य करने से बचते हैं |

इसके अतिरिक्त शोधकर्ताओं ने विभिन्न विश्वविद्यालय के शिक्षकों से बात करने पर यह पाया कि इस क्षेत्र में कार्य करने में संसाधनों की कमी, शिक्षकों की अभिवृत्ति, नकारात्मक रवैया, प्रशिक्षण तथा जानकारी की कमी, तथा समय का आभाव आदि कला तथा खेल को शिक्षण शास्त्र के रूप में सिखाने के लिए प्रमुख चुनौतियाँ हैं |

उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों में एन.सी.टी.ई. द्वारा निर्गत दिशानिर्देशों के क्रम में बी.एड. द्विवर्षीय पाठ्यक्रम संचालित हो रहा है | बहुत से अनिवार्य विषयों के साथ ही कुछ ऐच्छिक विषय भी सम्मिलित किये गए हैं, जिनके माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षकों की क्षमताओं को निखार कर उनको भविष्य के लिए तैयार किया जाता है | इन विश्वविद्यालयों में जब कला एवं खेल को शिक्षणशास्त्र के रूप में पढाये जाने की पड़ताल की गयी तो पाया गया कि अधिकांश विश्वविद्यालय इन विषयों को उस रूप में अभी संचालित नहीं कर रहे हैं जिस रूप में संचालित करने की बात नयी शिक्षा नीति 2020 तथा एन.सी.ई.आर.टी. कर रहे है |

नयी शिक्षा नीति में ये प्रावधान करने को कहा गया है कि, कला एवं नाट्य को अन्य विषयों के साथ जोड़कर उन विषयों के शिक्षणशास्त्र में विविध कलाओं की उपयोगिता का ध्यान रखते हुए उनको समेकित किया जाये, परन्तु अध्ययन से ये स्पष्ट हुआ कि अधिकाँश विश्वविद्यालय इस प्रावधान का पालन अभी नही कर रहे हैं | शिक्षण प्रशिक्षण में कला एवं नाट्य के साथ खेल शिक्षा का स्वरुप भी निश्चित नही है , और न ही इन विषयों का शिक्षणशास्त्र के साथ कोई व्यवस्थित तारतम्य स्थापित किया गया है | कुछ विश्वविद्यालयों कला एवं नाट्य को शिक्षणशास्त्र के रूप में पढ़ाने का प्रयास अवश्य किया है, परन्तु उनकी पाठ्यचर्या के दिनक्रम में अत्यल्प समय दिया गया है, जिस कारण से उनका वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है |

अध्ययन के अंतर्गत जब कला, नाट्य व् खेल शास्त्र का सम्बन्ध इंटर्नशिप से देखा गया तो ये पाया गया कि इंटर्नशिप के दौरान अथवा उसके मूल्यांकन में कला एवं नाट्य तथा खेल शिक्षा को शिक्षणशास्त्र की तरह प्रयोग करने के लिए कोई विशेष प्रावधान नही है | कला एवं खेल शिक्षा के प्रश्नपत्रों में अधिकतर स्थानों पर कुछ गतिविधियाँ जैसे नाटक प्रतुतीकरण, रंगोली, पेंटिंग आदि बनवाकर इसका मूल्यांकन कर लिया जाता है|

नयी शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तथा शिक्षण शास्त्र के रूप में कला व् खेल को शामिल करने के लिए वर्तमान शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम में वांछनीय परिवर्तन करने की आवश्यकता है, जिससे यह प्रश्पत्र अधिक गंभीरता से पढ़े तथा पढाये जायें, व भावी शिक्षक इनके स्वरुप एवं महत्त्व से भली भांति परिचित हो सके | शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान ही इन विषयों को शिक्षण शास्त्र की तरह सीखने का पर्याप्त अभ्यास अन्य विषयों के साथ एकीकृत करते हुए करवाया जाना चाहिए जो वर्तमान स्थिति में नही हो रहा है |

सुझाव

उपरोक्त अध्ययन से प्राप्त विवेचना एवं निष्कर्षों के आधार पर निम्न सुझाव प्रस्तुत किया जाते हैं -

1. कला एवं खेल के प्रश्नपत्रों को द्विवर्षीय बी.एड. के शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में पर्याप्त भारांक दिए जाने चाहिए|
2. प्रश्नपत्रों को पढाये जाने के उद्देश्य स्पष्ट लिखे होने चाहिए |
3. विश्वविद्यालयों में कला एवं नाट्य के प्रश्पत्र के विषयवस्तु का विस्तार किये जाने की आवश्यकता है |
4. समयसारणी में इन प्रश्नपत्रों को उचित समय दिया जाये, जिससे निर्धारित उद्द्येश्यों को प्राप्त किया जा सके |
5. इन प्रश्नपत्रों को सिर्फ कुछ गतिविधि करवाने तक सीमित ना रखा जाये, बल्कि मूल्यांकन के समय प्रशिक्षु शिक्षकों के वर्ष भर के क्रिया कलापों तथा इंटर्नशिप के दौरान कला व खेल के विषयों के साथ एकीकरण पर भी ध्यान दिया जाये|
6. प्रत्येक विषय में कला के विभिन्न पहलुओं का ध्यान रखते हुए पाठयोजनाओं का निर्माण कराया जाए और उनको प्रशिक्षु कार्यक्रम में उपयोग में लाया जाए| कला एवं खेल का उपयोग शिक्षण शास्त्र के रूप में प्रशिक्षु शिक्षक करें तथा इसके आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाये|
7. इस विषय को शिक्षण शास्त्र की तरह प्रयोग में लाने के लिए प्रशिक्षु शिक्षकों को शोध करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किया जायें|
8. अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि उत्तर प्रदेश के राज्य विश्वविद्यालयों के बी.एड. पाठ्यक्रम में खेल शिक्षा का अभाव है, एवं इसे शिक्षण शास्त्र के रूप में लिया जाना अभी के बी.एड. कार्यक्रम में उपेक्षित ही है , जिस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है|
9. कला एवं खेल के क्षेत्र में काम करने वाली स्थानीय संस्थाओं के साथ विद्यार्थियों का संवाद हो तथा समय समय पर उनके विशेषज्ञों की सहायता से गतिविधियाँ आयोजित हों |
10. समस्त विश्वविद्यालय अपने बी. एड. द्विवर्षीय कार्यक्रम के पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन करें तथा उसमें नयी शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप आवश्यक बदलाव करते हुए अंतर्विषयक उपागम का ध्यान रखते हुए कला एवं खेल का पर्याप्त समावेशन करें |
11. आर्ट एंड क्राफ्ट रिसोर्स सेण्टर को प्रत्येक संस्थान में सुव्यस्थित किया जाए| एन.सी.टी.ई. के मानकों के अनुरूप सभी जगह ये सेण्टर स्थापित हैं परन्तु इनको सुचारू रूप से संचालित करने की आवश्यकता है |
12. कला एवं खेल के शिक्षण से संबंधित पुस्तकें तथा सम्बंधित साहित्य की उपलब्धता संस्थानों में हो |
13. प्रशिक्षु कार्यक्रमों में प्रशिक्षु शिक्षकों को शिक्षण में नाट्य एवं कला तथा खेल को शिक्षण विधि की तरह प्रयोग करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए तथा शिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए |
14. स्थानीय कलाकारों से संवाद स्थापित हो, संग्रहालय, हाट-मेलों का भ्रमण, लोकसंस्कृति से परिचय हेतु समुदाय के साथ अंतःक्रिया के कार्यक्रम अनिवार्य रूप से आयोजित हों और उनका मूल्यांकन प्रक्रिया में उचित भारांक के साथ समावेश हो |

अध्ययन से ये स्पष्ट है कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में कला और खेल केवल सौन्दर्यात्मक तथा शारीरिक पहलू तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में शिक्षण शास्त्र को समृद्ध बनाने में भी इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है, जिसके लिए वर्तमान शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति के अलोक में परिमार्जित करने की आवश्यकता है |

संदर्भ सूची

1. Ro, Eunseok. (2015). Examining Critical Pedagogy with Drama in an IEP Context. Journal of Language Teaching and Research. 7. 1. 10.17507/jltr.0701.01.
2. नयी शिक्षा नीति 2020
3. B.Ed. Curriculum, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj Universitry, Kanpur
4. http://csjmu.ac.in/frontpage/university-syllabus/
5. B.Ed. Curriculum, jannanayka Chandrashekhar University, Balliya,
6. http://jncu.in/Syllabus/UG/BED_TWOYEAR.pdf
7. Sampoornanand Sankrit University, Shiksha Shastri Syllabus
8. https://www.ssvv.ac.in/syllabus
9. B.Ed. Syllabus, University of Lucknow, Lucknow
10. https://udrc.lkouniv.ac.in/Department/DepartmentDetail/Syllabus?dept=29
11. B.Ed. Syllabus, Bundelkahand University, Jhansi
12. https://www.bujhansi.ac.in/pdf/syllabus/syllabus2016/B_ed_2015_17.pdf
13. कला, संगीत नृत्य और रंगमंच , राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र , NCERT, 2008
14. https://ncert.nic.in/pdf/h_focus_group/Kala,%20Sangeet,%20Nirtiya%20aur%20Rangmanch.pdf
15. स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा , राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र , NCERT, 2008
16. https://ncert.nic.in/pdf/h_focus_group/Swasth%20Aur%20Sharirik%20Shiksha.pdf
17. Ahlawat M. (2017). Arts in Teacher Education: Challenges and Opportunities. Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies. 4/30, 53-58.https://www.srjis.com/pages/pdfFiles/14892261919.%20%20alhwat.pdf
18. DeMoss, K., & Morris, T. (2002). How Arts Integration Supports Student Learning: Students Shed Light on the Connections. Chicago, IL: Chicago Arts Partnerships in Education (CAPE).

https://www.scirp.org/(S(351jmbntvnsjt1aadkposzje))/reference/ReferencesPapers.aspx?ReferenceID=1857021

19. Oreck, B. (2004). The Artistic and Professional Development of Teachers: A Study of Teachers’ Attitudes toward and Use of the Arts in Teaching. Journal of Teacher Education, 55(1), 55–69. https://doi.org/10.1177/0022487103260072
20. Heiman, Allie.(2020). Benefits of Art Integration Rationale and Recommendations for Art Integration in Academic Course Work.
    a. https://library.swtjc.edu/eds/detail?db=eric&an=ED618694
21. Syllabus for Bachelor of Education (B.Ed Programme) Department of Teacher Education, NCERT, New Delhi 2016
22. https://ncert.nic.in/pdf/syllabus/Syllabus_BEd.pdf

Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanp

16

भाषा-परिवर्तन के कारण

डॉ. राजेश चन्द आदर्श

आचार्य, हिंदी विभाग, आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भाषा में समय के साथ-साथ रूप परिवर्तन होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। क्योंकि समय के साथ-साथ भाषा के प्रयोक्ता जीवित नहीं रहते। लिखित भाषा तो रहती है परंतु उच्चरित रूप संरक्षित कर पाना संभव नहीं होता। (आज भाषा-संरक्षण की स्थिति तकनीकी के कारण संभव तो हो गयी है लेकिन साधारणजन या साधारण बोलचाल में इसका अनुकरण नहीं किया जाता। यह केवल शोध के लिए रह गया है।) चाहे कितने भी कठोर व्याकरण बना लिए जाएँ, भाषा 10-20 पीढ़ियों बाद (लगभग 500 वर्षों में) बदल ही जाती है। इसे भाषाई विकास में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लेकिन भाषा में कुछ परिवर्तन सरलता और स्पष्टता के लिए भी हुआ करता है। भाषा परिवर्तन के कारणों में कुछ प्रमुख कारण निम्न हैं -

अनुपयोगी रूपों का ह्रास - अनुपयोगी रूपों का ह्रास और नए रूपों के विकास के पीछे सरलीकरण और सरलीकरण की प्रवृत्ति काम करती है। संस्कृत के अकारांत पुल्लिंग शब्दों के षष्ठी एकवचन में रामस्य, सर्वस्य, इकारांत पुल्लिंगों के कवेः, अग्नेः और उकारांत में वायोः, मानोः रूप बनते हैं। सरलता के आग्रह से प्राकृत में इकारांत और उकारांत पुल्लिंगियों के रूप भी अकारांत पुल्लिंग शब्दों की भ्रांति हो जाने से संस्कृत अग्नेः और वायोः प्राकृत में क्रमशः अग्गिस्स, वाउस्स हो गए। मुनि तथा साधु के तृतीया एकवचन में मुनिना और साधुना में अंत्य "ना" के प्रभावस्वरूप हरि तथा करिन् के तृतीय एकवचन में हरिणा और करिणा रूपों के अंत में णा कर दिया जाना सरलीकरण ही है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि मुनि इकारांत है और साधु उकारांत। दोनों की अंतिम ध्वनि अलग-अलग होने पर भी इनके तृतीया एकवचन के रूपों में समानता लाई गई है।

नियमन - यह भी एक प्रकार से सरलीकरण ही है। नियमानुसार निष्पन्न शब्द रूपों को स्मरण रखना अनियमित ढंग से बने रूपों की अपेक्षा सुकर होता है। हिंदी में सामान्य भूतकाल के रूप धातु के अंत में आ प्रत्यय जोड़कर निष्पन्न होते हैं, लिख-लिखा; पढ़-पढ़ा; बैठ-बैठा; चल-चला किंतु कर से करा के स्थान पर किया बनना अनियमित है। यही कारण है कि नियमन के फलस्वरूप इधर 'करा' के प्रयोग की प्रवृत्ति व्यापक होती जा रही है। धातु में 'इए' जोड़ कर वर्तमानकालिक आज्ञा विध्यर्थक रूप बनते है: बैठिए, जाइए, खाइए, गाइए, पाइए, नहाइए। कर से करिए बनता है, किंतु प्रचलित रूप है 'कीजिए'। अब 'करिए'-'कीजिए' में से 'करिए' का प्रयोग भी होने लगा है, जिसके मूल में नियमन की ही प्रवृत्ति काम कर रही है।

नवीनता की प्रवृत्ति - इसमें प्रचलित शब्द रूपों को नए रूप में ढाल दिया जाता है; जैसे - कहलाता-कहता; प्रचुर-प्राचुर्य; स्वीकार करना- स्वीकारना। भोजपुरी में 'चूर' से चुर-चुर या चुरचुरा, भर्रा से भरभरा, दर से दरदरा, लेकिन

भुरभुरा जैसे रूप भी पाए जाते हैं जिनका पूर्व रूप भर्रा या भरभरा के निकट का लगता है, लेकिन खोजना मुश्किल है।

स्पष्टता - कथन में स्पष्ट अर्थ प्रतीति के लिए भी नए रूप प्रकट हो जाते हैं। हिंदी में 'मैं' का बहुवचन 'हम' है। जब एकवचन में भी 'हम' (भोजपुरी के कारण) का प्रयोग देखा गया तो बहुवचनत्व के स्पष्ट बोधन के लिए 'हम लोग' कहने की प्रवृत्ति बढ़ गई।

बल प्रयोग - चरम अवस्था को व्यक्त करने के लिए कुछ शब्द रूपों पर अतिरिक्त बल दे दिया जाता है। ऐसा करने में कतिपय उत्तमावस्थामूलक संबंधतत्त्वों के बाद एक और उत्तमावस्थामूलक संबंधतत्तव संलग्न कर दिया जाता है। श्रेष्ठ शब्द स्वयं चरमावस्था का बोधक है; फिर भी इससे पहले 'सर्व' और बाद में 'तम' संबंधतत्त्वों का योग करके श्रेष्ठतम रूप बना लिया गया है। अंग्रेजी के most beautifullest या most sweetest में 'most' का प्रयोग अतिरिक्त बल के कारण है। ऐसे ही 'बेफिजूल' में 'बे-' अतिरिक्त बलजन्य है।

ध्वनि परिवर्तन - भाषा के परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण शब्दों में होने वाला ध्वनि-परिवर्तन है क्योंकि शब्द ही भाषा का आधार हैI इसी के कारण भाषा में परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

आ - अ आदमी - अदमी / अदीमी।

ई - अइ गलीचा - गलइचा, बगीचा - बगइचा।

इस् - इसइस्पात - इसपात।

ऋ - रि ऋषभ - रिसभ, ऋषि - रिसी, ऋण - रिन।

ऐ - अइ भैंसा - भंइसा, पैसा - पइसा, भैंस - भइस।

औ - अउ औंजार - अउंजार, औरत - अउरत, कौवा - कउवा।

ण - न प्रवीण - परवीन, राणा - राना।

य - ज यजमान - जजमान, यमुना - जमुना।

य - इ कोयल - कोइल, गाय - गाइ / गइया।

र् - र गर्म - गरम, नर्म - नरम।

र - ल दरिद्र - दलिदर / दलिद्दर।

ल - र दुर्बल - दुब्बर।

व - अ पौवा - पउआ।

व - ब वन -बन, वीर - बीर, वाण - बान।

श - स	शहर - सहर, शहदब- सहद।
ष - स	षरीफा - सरीफा, शहर - सहर।
ष - ख/ स	धनुष - धनुस/धनुख, षटकोण - खटकोन/सटकोन।
स् - इस/स	स्कूल - इसकूल, स्टेशन - इसटेसन।
स् - स/ इस/ ०	स्नेह - सनेह, स्वीकार - सवीकार, स्कूल - इसकूल, स्टेशन - इसटेसन / टेसन।
क्ष - ख/छ/च्छ	क्षत्रिय - छतरी / खतरी, क्षार - छार/ खार, क्षय - छय, कक्षा - कच्छा।
त्र - तर	त्रिषूल तिरसूल।
ज्ञ - गिय	ज्ञानी - गियानी।
श्र - सर	श्रवण - सरवन, श्रीमान - सिरीमान।

समानता और अलगाव के बिंदु -

	हिंदी (एकवचन)	भोजपुरी (एकवचन)
उ०पु०- पु०	मैं चलता हूँ।	हम जाइ लां।
स्त्री०	मैं चलती हूँ।	,, ,, ,, ,,
म०पु०- पु०	तू चलता है। (अ०सू०)	तू चले ले। (सामान्य एवं अ०सू०)
स्त्री०	तू चलती है।	तू चले ली।
पु०	तुम चलते हो। (सामान्य)	तू चले ल। (सामान्य एवं आ०सू०)
स्त्री०	तुम चलती हो।	तू चले लू।
पु०	आप चलते हैं। (आ०सू०)	राउर चली लां।
स्त्री.०	आप चलती हैं।	राउर चली लां।
अ०पु०- पु०	वह चलता है। (सामान्य)	उ चले ला। (सामान्य एवं अ०सू०)
स्त्री०	वह चलती है। (,, ,,)	उ चले ले।
पु०	वे चलते हैं। (आ०सू०)	उ चले लं। (आ०सू०)
स्त्री०	वे चलती हैं। (,, ,,)	उ चले लीं। (,, ,,)

लिंग-परिवर्तन की दृष्टि से देखा जाय तो हिंदी की क्रियाओं के प्रत्यय तो बदलते हैं लेकिन उनकी सहायक क्रियाओं के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता जबकि भोजपुरी में इसके विपरित स्थिति है, यहाँ क्रियाओं के रूप ज्यों के त्यों रहते है जबकि सहायक क्रियाओं में परिवर्तन होता है।

भोजपुरी में 'तू चले ले।' सामान्य और अ०सू० है जबकि 'तू चले ल।' सामान्य और आ०सू० भी है क्योंकि जब यह पिता या बड़े भाई के लिए बोला जाता है तो आ०सू० बन जाता है। 'ले' और 'ल' के प्रयोग को भाषा का नया प्रयोगकर्ता नहीं समझ पाता और भाषा हास्यास्पद हो जाती है।

हिंदी का 'वह चलता है।' भोजपुरी में 'उ चले ला।' सामान्य और अ०सू० दोनों है। अर्थात भोजपुरी के अन्य पुरुष का सामान्य वाक्य अ०सू० होता है।

हिंदी के अ०पु० में अ०सू० नहीं होता जबकि भोजपुरी में सामान्य ही अ०सू० की तरह भी प्रयुक्त होता है। भोजपुरी न जानने वाले जब भोजपुरी बोलने की कोशिश करते हैं तो इन बातों का ध्यान नहीं देते और मामला हास्यास्पद हो जाता है। किसी भी भाषा का व्याकरण जाने बिना उसको बोलना तो ठीक है लेकिन उसका मूल्यांकन करना ठीक नहीं है। कई बार दो भाषाओँ के वक्ता आपस में दोनों भाषाई-ज्ञान को मिला देते हैं।

अज्ञान और भूल - हिंदी और भोजपुरी भाषा-भाषी अज्ञानता के कारण भाषा में ऐसी-ऐसी ग़लतियाँ बेधड़क करते हैं कि उनको पता ही नहीं लगता कि वो कोई ग़लती कर रहे हैं या वो भी ग़लती कर सकते हैं। उदाहरण के लिए English की 13 से लेकर 19 तक की संख्याओं का अनुवाद में देखा जा सकता है। Thirteen, Forteen, Fifteen, Sixteen, Seventeen, Eighteen, Nineteen लेकिन प्रयोगकर्ता इनके स्थान पर - Thirty, Forty, Fifty, Sixty, Seventy, Eighty, Ninety का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं।

व्याकरण का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण अज्ञानवश संधिगत शब्दों के अशुद्ध रूप चल पड़ते हैं। तद्+उपरांत=तदोपरांत बनता है, किंतु अज्ञानवश इसे 'तदुपरांत' रूप दे दिया जाता है। तत्त्व, महत्त्व, स्रष्टा, द्रष्टा के स्थान पर, तत्व, महत्व, सृष्टा, दृष्टा रूप का चयन भी अज्ञान के ही कारण है।

'आप' से 'आपका' रूप बनता है लेकिन अज्ञानता के कारण 'हम' से 'हमका', 'तुम' से 'तुमका' इसी प्रकार 'मुझ' से 'मोको' 'तुझ' से 'तोको'।

भोजपुरी का 'मोको' और 'तोक़ो' लगता है कि पूरी तरह से हिंदी के 'मैं-मुझको' और 'तू-तुझको' से प्रभावित है। ये 'मोको' जैसे रूप मुसलिम बुनकर समाज में देखने को मिलता है। कबीर ने भी इसका प्रयोग किया है - "मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में। ना मैं मथुरा, ना मैं काशी। ना क़ाबे कैलास में।"[41]

''अगर मैं तुम को ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका अब नहीं कहता।''[42]

[41] द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद : कबीर, संस्करण 2012, पृष्ठ 179, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० , नई दिल्ली

[42] अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन : कलगी बाजरे की, चुनी हुई कविताएँ, पृष्ठ 19, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-110006

यही नहीं अगर हम हिंदी साहित्य में पात्रों के नाम देखें तो हम यही पाते हैं कि अपनी रचना को वास्तविक जामा पहनाने के लिए अधिकतर साहित्यकार यही करते हैं। यह बहुत हद तक ठीक है कि इससे भाषा समृद्ध होती है लेकिन यह भी सच है कि इससे ही भाषा के स्वरूप में परिवर्तन भी होता है।

"अरे केवन है। केवन अर्थात कौन। पीछे मुड़कट्टा, घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा था, टप्प-टप्प-टप्प !" - [43]

बड़े सम्मान के साथ रामस्वरूप चतुर्वेदी पूरब के 'साकीन' कहते हैं।[44] लेकिन भाषा-परिवर्तन का कारण भाषायी मिश्रण है।

जब भोजपुरी भाषाभाषी हिंदी बोलने का प्रयास करता है तो भोजपुरी के शब्दों को हिंदी भाषा की वाक्य संरचना में प्रयोग करता है। यह सिर्फ सीखने वाले नहीं बल्कि भाषा में दक्ष प्रयोक्ता भी ऐसी गलतियाँ करता है। कारण सिर्फ यही कि मातृ-भाषा व्यक्ति की आदत होती है। लेकिन साहित्यकार जब भाषा में नए प्रयोग करता है तो भाषा की समृद्धि होती है। लेकिन इससे भाषा का स्वरूप बदल जाता है।

भाषा के अर्थ से अनर्थ होने के कुछ महत्त्वपूर्ण उदहारण इस प्रकार हो सकते हैं -

'बहुत हरासमेंट हो रहा है।'

'बहुते नंगा लइका है।'

यहाँ 'नंगा' से अभिप्राय 'ज़िद्दी' है लेकिन भोजपुरी भाषा से अनजान व्यक्ति इसका अर्थ 'नग्न' लगाता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

इसी प्रकार 'उसने मुझे बेइज़्ज़त कर दिया।' में हिंदी प्रयोगकर्ता के लिए 'बेइज़्ज़त' शब्द का अर्थ 'बिना इज्जत के कर देना' या 'इज्जत लूटना' से है जबकि भोजपुरी में इसका अर्थ सिर्फ 'अपमानित करना' है।

सादृश्य - इसे उपमान या मिथ्या प्रतीति भी कहा जाता है। नियमतः 'कर' से भूतकालिक रूप 'करा' बनना चाहिए, किंतु सिया, लिया, दिया के सादृश्य पर 'कर्' से भी 'किया' रूप बना लिया गया है। कभी-कभी 'करा' रूप भी बना लिया जाता है। ऐसे ही 'द्वादश' के सदृश्य पर 'एकदश' का भी 'एकादश' हो गया। भारोपा का त् ग्रिम-नियम से 'थ्' में परिवर्तित हो गया। मूल भारोपा (संस्कृत) भ्राता > जर्मनिक (अंग्रेजी) Brother, माता-पिता बरथेर'त्' से पूर्वस्वघात न होने से फ़र्नर के नियम से मूल भारोपा का 'त्' जर्मनिक में 'द्' में परिवर्तित हो जाना था, किंतु Brother के सदृश्य के कारण Morder, Foder के स्थान पर Mother, Father रूप बन गए। [45]

ध्वन्यात्मक साम्य - भाषा परिवर्तन का सबसे मुख्य कारण प्रयोगकर्ता के वाक्-प्रयोग के कारण होता है। भाषा का प्रयोगकर्ता जब भी बात करता है उसके प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा के बीच द्वंद्व के परिणाम स्वरुप भाषा का रूप परिवर्तित हो जाता है।

---

[43] सिंह, नामवर : हजारीप्रसाद द्विवेदी : संकलित निबंध (देवदारु); पृष्ठ 20, संस्करण 2018, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।

[44] चतुर्वेदी, राम स्वरुप : हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 26, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद- 1, (संख्या में सबसे अधिक बड़े लेखक भोजपुरी क्षेत्र से मिलेंगे- भारतेंदु, हरिऔध, प्रसाद, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिनकर, रेणु यह सब पूरब के 'साकीन' हैं।)

[45] रुबालि, डॉ० केशवदत्त : भाषाविज्ञान और हिंदी, पृ० 102, संस्करण 1963, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली -110002.

'बेहतर' और 'बेटर' लगभग श्रुतिसम शब्द हैं। जिस वक्ता का दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है लेकिन वह प्रयोग अंग्रेजी का ज्यादा करता है। ऐसा व्यक्ति जब 'बेटर' बोलना चाहता है लेकिन जब वह 'बे' उच्चारण कर देता है तो उसे लगता है कि उसे हिंदी बोलना चाहिए। इस क्रम में है वह 'ह' का भी उच्चारण कर देता है और अंग्रेजी के 'बेटर' का प्रभाव अभी भी था। इस प्रकार '/त/' ध्वनि '/ट/' में परिवर्तित हो गई और एक नया शब्द 'बेहटर' बन गया। इसी प्रकार 'पापा' एवं 'बाप' से निर्मित 'पाप' या 'पापस' और 'बापस' शब्द जल्दबाजी में उच्चरित हो जाता है।

इस प्रकार की ग़लतियाँ अशिक्षित या अल्पशिक्षित व्यक्ति नहीं करता। वह दोनों में से किसी एक का चयन पहले से कर लेता है या किसी अन्य शब्द का विकल्प सुरक्षित रखता है।

अंग्रेज़ी का 'Harassment' और भोजपुरी का 'हरारत' शब्द दोनों अलग-अलग हैं। अब भोजपुरी प्रयोगकर्ता पता नहीं कैसे 'Harass' की अंग्रेज़ी समझकर 'थकान' के संदर्भ में इसका प्रयोग बहुत ही धड़ल्ले से करता है। व्यक्ति डॉक्टर के पास जाकर बोलता है - "बहुत हरासमेंट हो रहा है।" डॉक्टर इसका अर्थ थकान के अर्थ में लेता है और इलाज भी कर देता है। लेकिन वही व्यक्ति जब भोजपुरी क्षेत्र से बाहर निकलकर ऐसे वाक्य का प्रयोग करता है तो वह हास्यास्पद हो जाता है। इसी प्रकार 'Mute' और 'Unmute', 'Fault' और 'Default' में फ़र्क़ नहीं कर पता उसे सिर्फ़ 'Mute' और 'Falt' ही सुनाई पड़ता है।

भोजपुरी में भी इस प्रकार की ग़लतियाँ प्रायः मिलती हैं और वह भोजपुरी समाज में पढ़े-लिखे लोगों द्वारा बोली भी जाती है। जैसे हिंदी के 'मैं' का प्रयोग भोजपुरी में 'हम' के रूप में होता है और हिंदी में 'मैं' के साथ सहायक क्रिया 'हूँ' का प्रयोग होता है। जब अनुवाद या व्यवहार में भाषा का प्रयोग होता है तो एक नए प्रकार की भोजपुरी दिखायी पड़ती है, जैसे - 'हम जा रहा हूँ।' जबकि भोजपुरी में 'हम जात हंई/बानी/बाटीं।' ही शुद्ध रूप है। जिसका प्रयोग फ़िल्मी दुनिया और प्रसिद्धि के लिए भी होता है।

इसी प्रकार भोजपुरी भाषी द्वारा वाक्य प्रयोग में लिंग संबंधी दोष भी दिखाई पड़ता है; जैसे - हिंदी में 'हाथी जा रहा है।' को भोजपुरी भाषाभाषी हिंदी बोलते समय 'हाथी जा रही है।' कहता है क्योंकि भोजपुरी में 'हाथी जात हिय/बिया।' 'हिय' और 'बिया' स्त्रीलिंग के लिए प्रयोग की जाने वाली क्रिया है इसलिए भोजपुरी भाषाभाषी का हिंदी में ऐसा प्रयोग (ग़लती) संभव है। भोजपुरी में 'हाथी' स्त्रीलिंग है क्योंकि वहाँ उसका पुल्लिंग 'हत्तथा' है यानि 'हाथी-हत्तथा' न कि 'हथिनी-हाथी' है।

ज़्यादातर ग़लतियाँ अपनी मातृभाषा (बोली) के कारण होती हैं क्योंकि व्यक्ति अपनी द्वितीय भाषा में अपनी मातृभाषा के अनुवाद करके बोलता है। इस कारण भाषा में बदलाव दिखाई पड़ता है और भाषा अशुद्ध हो जाती है लेकिन कई ऐसे प्रयोग भाषा को समृद्ध करते हैं।

अनुवाद करते समय भी प्रायः इस प्रकार की ग़लतियाँ देखने को मिलती हैं। जैसे हम किसी ब्रिटिश के हिंदी संवाद लिख रहे होते हैं, तब भी यह ग़लतियाँ देखने की मिलती हैं। अल्प शिक्षित के साथ-साथ प्रशिक्षित व्यक्ति भी यही गलती करते हैं। लिप्यांतरण-अनुवाद इस प्रकार का होना चाहिए -

कबूतर (खभूथर) का लिप्यांतरण-अनुवाद 'खबूतर' करते है। ऐसे ही English - 'come' और हिंदी - 'कम' ➡️ (खम) का लिप्यांतरण-अनुवाद 'कम' ही करते हैं। गंदे (घंधे) होना चाहिए, करते हैं (घंदे)। कुत्ते को (खुथ्थे) होना चाहिए, लेकिन करेंगे 'खुत्ते'। पकड़ो को 'फकड़ो', जबकि होना चाहिए 'फखड़ो'। इस प्रकार यदि कोई वाक्य है :

'कुत्ते ने कम गंदे कबूतर को पकड़ा।' इसका लिप्यांतरण-अनुवाद होना चाहिए -

'खुथ्थे ने कम घंधे ख़भूथर खो फखड़ा।'

लेकिन अनुवादक करेंगे

'खुत्ते ने खम घंदे खबूतर खो फकड़ा।'

जिन भाषाओं में अल्पप्राण ध्वनि नहीं होती, वहाँ उसके अनुवाद में अल्पप्राण से महाप्राण ध्वनियों के परिवर्तन में यह गलती हो जाती है क्योंकि अनुवादक अल्पप्राण का प्रयोग उस बख़ूबी से नहीं कर पता जिस निपुणता से महाप्राण भाषाभाषी करता है।

प्रायः इस प्रकार की ग़लतियों में न तो अज्ञानता होती है और न ही भूल। बस काम को करते समय अनुवादक को दूर-दूर तक यह ख़्याल भी नहीं रहता कि उससे कोई गलती भी हो सकती है।

भाषा परिवर्तन के कारण : भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण ध्वन्यात्मक साम्यता, अज्ञानता, जल्दबाज़ी, अनुकरण करने की प्रवृत्ति, मातृभाषा का प्रभाव और नए-नए प्रयोग की रुचि के कारण होती है। लेकिन इससे कई बार भाषा में समृद्धि होती है। नए-नए भाषाई प्रयोग भाषा को न केवल रुचिकर बनाते हैं बल्कि भाषा को समृद्ध भी करते हैं।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद : कबीर, संस्करण 2012, पृष्ठ 179, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० , नई दिल्ली
2. अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन : कलगी बाजरे की, चुनी हुई कविताएँ, पृष्ठ 19, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-110006
3. सिंह, नामवर : हजारीप्रसाद द्विवेदी : संकलित निबंध (देवदारु); पृष्ठ 20, संस्करण 2018, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।
4. चतुर्वेदी, राम स्वरुप : हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 26, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद- 1, (संख्या में सबसे अधिक बड़े लेखक भोजपुरी क्षेत्र से मिलेंगे- भारतेंदु, हरिऔध, प्रसाद, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिनकर, रेणु यह सब पूरब के 'साकीन' हैं।)
5. रुबालि, डॉ० केशवदत्त : भाषाविज्ञान और हिंदी, पृ० 102, संस्करण 1963, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली -110002

17

बिहार में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर समावेशी शिक्षा की स्थिति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. डी.एन.सिंह
पूर्व उप प्राचार्य, जाकिर हुसैन टीचर्स ट्रेनिग कॉलेज, लहेरियासराय, दरभंगा , बिहार
नीरज रंजन सिंह
शोधार्थ, शिक्षा शास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

शिक्षा मानव को गरिमामय जीवन जीने के योग्य बनाने के लिए सबसे सशक्त हथियार है | मानवशिक्षा के माध्यम से अपनी क्षमताओं,कौशलों,तर्क करने की क्षमताओं में अभिवृद्धि करता है | वैश्विक परिदृश्य पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि जिन देशों ने शिक्षा की स्थिति को बेहतर किया है वहां सामजिक,आर्थिक,राजनैतिक,असमानताओं को दूर करने में मदद मिली है | वह देश एक समावेशी समाज [inclusive society] बनाने में सफल रहा है | किसी भी समाज में विभिन्न आधारों पर सामजिक विविधता देखने को मिलता है | यह विविधता प्रकृति का सार्वभौमिक गुण होता है | समाज में इस विविधताओं के आधार पर व्यक्तियों को शोषण,तिरस्कार एवं भेदभाव किया जाता है , तब समाज में कई तरह की विषमताएॅ उत्पन्न होने से कई तरह के संघर्ष देखने को मिलते हैं | इसके परिणामस्वरूप समाज का पिछड़ापन और असमानताएँ उत्पन्न हो जाती है, जो सभ्य समाज के लिए अभिशाप है | भारत जैसे देशों में कई तरह की विविधताएँ देखने को मिलती है | वर्तमान समय में भी भारत कई तरह की असमानताओं के दौर गुजर रही है जिसमें सामाजिक, आर्थिक,राजनैतिक तौर देखा जा सकता है | इन असमानताओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) ने इस प्रकार उद्धृत किया है कि

“अगर शिक्षा को जीने के लोकतान्त्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है तो उसे स्कूल में जाने वाली पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना ही होगा जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान संशोधन के चलते अनिवार्य होगया है जिसने आरंभिक शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया है | संविधान के इस संशोधन से हम पर यह जिम्मेदारी आ गयी है कि हम सारे बच्चों को जाति,धर्म संबंधी अंतर,लिंग और असमर्थता सम्बन्धी चुनौतियों से निरपेक्ष रहते हुए स्वास्थ्य,पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया कराये जो उनको शिक्षा ग्रहण में मदद पहुचाएं तथा उन्हें सशक्त बनाएँ |’’

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020[6.1] ने स्वीकार किया है “सभी के लिए अधिगम शिक्षा सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एक मात्र और सबसे प्रभावी साधन है | समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है ,बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य कदम है, जिसमे प्रत्येक नागरिक को सपने संजोने,विकास करने और राष्ट्रहित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध हो |”

अत: उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि देश की समावेशी विकास के लिए शिक्षा सशक्त साधन है तथा इसे प्राप्त करने के लिए शिक्षा को हथियार के तौर पर उपयोग करना होगा | तभी एक समावेशी समाज का निर्माण हो सकेगा | समावेशी समाज के निर्माण के लिए शारीरिक असमर्थता,शैक्षिक,सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए देश की मुख्य धारा में समावेशन करने की जरूरत है | इस लक्ष्य को पाने के लिए समावेशी शिक्षा की आवश्यकता है |

समावेशी शिक्षा -

समावेशी शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा से सम्बंधित है, जो किसी न किसी कारण से समाज के मुख्य धारा विलगित है | शारीरिक और मानसिक रूप से असमर्थ है | ऐसे बच्चों को शारीरिक एवं मानसिक असमर्थता के कारण प्राथमिक स्तर के शिक्षा ग्रहण करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है| परन्तु इस तरह के बच्चों के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार ने विद्यालय में बेहतर समावेशन के लिए कई तरह की क़ानून एवं नीतियाँ लागू कर क्रियान्वित करने का प्रयास किया है |सरकार इन बच्चों के लिए इन नीतियों एवं कानूनों के माध्यम से सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है | समावेशी शिक्षा का एक व्यापक अवधारणा है | जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी भी तरह की बाधाओं को दूर करने पर बल देता है |सर्वप्रथम समावेशी शिक्षा के संप्रत्यय की अवधारणा 1990के दशक के पश्चात् से प्रारंभ हुआ | जब 1994में सलमानका [स्पेन] में यूनेस्को एवं स्पेन की सरकार की संयुक्त तत्वाधान में "विशेष शैक्षिक आवश्यकता पर विशेष विश्व सम्मेलन : सुलभता एवं समता"का अधिवेशन का आयोजन हुआ | इसी आयोजन से समावेशी शिक्षा की अवधारणा प्रचलन में आयी | तब से विभिन्न बच्चों की आवश्यकताओं,रूचियों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाने पर विशेष बल दिया गया | शिक्षा का यही परिवर्तन समावेशी शिक्षा के रूप में परिवर्तित हुआ |

सलमानका सम्मलेन [1994] में समावेशित शिक्षा को इस तरह से परिभाषित किया है –"एक समावेशित शिक्षा प्रणाली में विद्यालय को अन्य विद्यार्थियों [दिव्यांग] के समान बनाना जिससे इन्हें अधिक समाहित किया जा सके, दूसरे शब्दों में सभी बच्चों को उन्हीं समुदाय के नियमित विद्यालयों में शिक्षा प्रदान की जाय |" [सलमानका सम्मलेन,1994]

"शारीरिक एवं मानसिक रूप से दिव्यांगों की शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि समाज के कंधे से कंधे मिलाकर चल सके, उनकी सामान्य तरीके से प्रगति हो और वे पूरे भरोसे और हिम्मत के साथ जिंदगी जिएँ |" [नयी शिक्षा नीति 1986,भाग – 4]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बाल्यावस्था की देखरेख विकासात्मक कार्यकलाप का विस्तार, प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिक पहुँच और संपादन, अध्ययन उपलब्धि पर सुधार एवं अच्छे जीवन के लिए आवश्यक जनकौशल एवं मूल्यों को बढ़ाना आदि पर प्रमुख रूप से बल दिया गया |

4 अगस्त 2009 में शिक्षा का अधिकार कानून पारित हुआ | इस अधिकार कानून में बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया | 1 अप्रैल 2010 को संपूर्ण देश में लागू हो गया | जिसमें 6 वर्ष से

14 वर्ष के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधानों को मौलिक अधिकारअनुच्छेद 21A में जो व्यक्तियों के प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण के अधिकार में सम्मलित किया गया है |

"दिव्यांग बालकों की पहचान और नामांकन तथा उनकी शिक्षा की सुविधाओं को मॉनिटर करना और प्राथमिक शिक्षा में उनके भाग लेने और उसे पूरा करने को सुनिश्चित करना"[शिक्षा का अधिकार,भाग-2, धारा -6,उपधारा – ज]

दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 में दिव्यांगजनों को मुख्यधारा में जोड़ने हेतु प्रावधानों का उल्लेख किया गया है जो कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान इस प्रकार है –

"ऐसी दिव्यांगता से ग्रस्त बालकों के सम्बन्ध में, जिन्हें विद्यालय में पहुंच से रोकता है, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी उन्हें विद्यालय में उपस्थित होने और प्रारम्भिक शिक्षा पूरा करने में समर्थ बनाने के लिए समुचित तथा सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करने का प्रयास करेगा |" [भाग – 4,धारा 6 के उपधारा 7]

"समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि बालकों की पहुँच सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों से प्रतिबंधित नहीं हो"[भाग-4,धारा-8]

"समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी के उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया है कि निःशुल्क शिक्षा और विशेष रूप से निःशुल्क पाठ्यपुस्तक,लेखन सामग्री और वर्दियों के लिए हकदार होगा, परन्तु दिव्यांगता से ग्रस्त कोई बालक निःशुल्क विशेष विद्या और सहायक सामग्री के लिए हकदार होगा |" [भाग-4,धारा-9]

"आसपास के विद्यालयों का अवधारण करने, उनकी स्थापना करने के प्रयोजन के लिए समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी विद्यालय की योजना तैयार करेगा और दूरस्थ क्षेत्रों के बालकों, दिव्यांगता से ग्रस्त बालकों, अलाभप्रदसमूह के बालकों, कमजोर वर्ग के बालकों और धारा 4 में निर्दिष्ट बालकों सहित सभी बालकों के नियत तारीख से एक वर्ष के भीतर और उसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष पहचान कर सकेगा |" [भाग-4, धारा-9,उपधारा-2]

दिव्यांग व्यक्तियों के सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 जिसे आरपीडब्लूडी एक्ट-2016 के नाम से जाना जाता है , पारित हुआ | यह दिव्यांगता के सबसे बड़ा एवं विस्तृत अधिनियम है जो सतरह अध्यायों में विभक्त है | इस अधिनियम में 21 तरह के दिव्यांगता को सम्मिलित किया गया है जो इस प्रकार है- 1. चलन सम्बन्धी दिव्यांगता 2. मांसपेशीय दुर्विकार 3. ठीक हुआ कुष्ठ 4. बौनापन 5. प्रमस्तिष्क घात 6. अम्ल हमले से पीड़ित 7. कम दृष्टि 8. दृष्टि हीनता 9. बधिर 10. श्रवण क्षति 11. वाक् एवं भाषा दिव्यांगता 12.बौद्धिक दिव्यांगता 13.विशिष्ट अधिगम दिव्यांगता 14. ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑडर15. मानसिक रुग्णता 16. क्रोनिक स्नायविक स्थिति 17. बाहुल्य काठिन्य 18. पार्किन्संस रोग 19.हेमोफिलिया 20. थैलेसिमिया 21. सिकल सेल रोग |

उपरोक्त सभी दिव्यांग बच्चों के समुचित विकास के लिए समाज के मुख्य धारा से जोड़ने के लिए समावेशी शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है

"समावेशी शिक्षा का अर्थ है शिक्षा की एक प्रणाली जिसमें विकलांगता वाले और बिना विकलांगता वाले छात्र एक साथ सीखते हैं और विभिन्न प्रकार के विकलांग छात्रों की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षण

और सीखने की प्रणाली को उपयुक्त रूप से अनुकूलित किया जाता है।"[आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम-2016, अध्याय-1,2 ,एम]

अत: कहा जा सकता है कि आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम -2016 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा के साथ अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अब तक का वृहत एवं व्यापक कानून है | इस क़ानून को देश में व्यवहारिक रूप से लागू किया जाय तो उन बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए मील का पत्थर साबित हो सकता है | इसलिए दिव्यांग बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए समावेशी शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा है |

बिहार 2011 के जनगणना के अनुसार देश का सर्वाधिक घनत्व वाला राज्य है। देश की स्वतंत्रता से पूर्व एवं पश्चात् भी बिहार राज्य का विभाजन हुआ है, जिसके कारण भौगोलिक क्षेत्रफल संकुचित हुआ है, जिसका प्रभाव जनसंख्या पर पड़ा है। 2011 के जनगणना के अनुसार बिहार की कुल जनसंख्या- 10,40,99,492 है। देश की कुल जनसंख्या का 8.60% है। देश की सर्वाधिक आबादी वाले राज्यों में बिहार का तीसरा स्थान है। पुरुषों एवं महिलाओं की क्रमश संख्या- 5,42,7,817 एवं 4,98,21,295 है। नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या 11758016 तथा 92341436 क्रमशः है। बिहार का लिंगानुपात 1000:918 है। साक्षरता के दृष्टिकोण से बिहार देश का सबसे पिछड़ा राज्य है। राज्य का साक्षरता दर 61.8% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 71.2% तथा महिला साक्षरता दर 51.5% है। राज्य के सर्वाधिक साक्षरता जिला रोहतास है जिसमें क्रमशः पुरुष एवं महिला साक्षरता दर 82.9% तथा 63.00% है। न्यूनतम साक्षरता वाला जिला क्रमशः पूर्णिया तथा सहरसा है न्यूनतम पुरुष साक्षरता पूर्णिया (59.4%) तथा सहरसा न्यूनतम साक्षरत एवं महिला (41.7%) है। 2011 के जनगणना के अनुसार बिहार देश का सबसे शैक्षिक रूप से पिछड़ा प्रान्त है।

बिहार में शैक्षिक प्रयास-

शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए बिहार सरकार के द्वारा कई शैक्षिक योजनाएँ संचालित किए जा रहे हैं- मुख्यमंत्री बालक/बालिका साइकिल योजना जिसमे माध्यमिक विद्यालय में 9वीं एवं 10वीं के छात्र- छात्राओं को साइकिल हेतु 3000/- रुपये की राशि प्रदान की जाती है।, मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना जिसमें राजकीय, राजकीयकृत एवं सहायता प्राप्त विद्यालयों में नामांकित छात्राओं को पोशाक हेतु राशिः प्रदान की जाती है। मुख्यमंत्री प्रोत्साहन योजना इसके अंन्तर्गत बिहार विद्यालय परीक्षा समिति द्वारा आयोजित 10वीं एवं 12वीं के छात्राओं को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण (सामान्य एवं पिछड़े वर्गो पर 10000/- रुपये का सहायता राशि प्रदान की जाती है।) मुख्यमंत्री अनुसूचित जाति एवं जनजाति मेधावृति योजना, मुख्यमंत्री अत्यंत पिछड़ा वर्ग मेधावृति योजना मुख्यमंत्री अल्पसंख्य विद्यार्थी प्रोत्साहन योजना संचालित की जाती है।

बिहार में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की स्थिति -

बिहार देश का तीसरी सबसे अधिक आबादी एवं पहला अधिक घनत्व वाला राज्य है | बिहार में दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि 2011 की जनगणना के अनुसार दिव्यांग व्यक्तियों की कुल संख्या – 23,31,009 है, जिसमें दिव्यांग पुरूषों एवं महिलाओं की संख्या क्रमश:13,43,100 तथा 9,87,909 है | नीचे दिए गए सारणी में 2011 जनगणना के अनुसार दिव्यांगता के प्रकारों के आधार पर दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या प्रदर्शित किया गया है –

दिव्यांगता के प्रकार	कुल संख्या
दृष्टि बाधित	549080
श्रवण बाधित	572163
वाक् बाधित	170845
चलन बाधित	369577
बौद्धिक दिव्यांगता	89251
बौद्धिक दिव्यांगता iii	37521
अन्य दिव्यांगता	431728
बहु दिव्यांगता	110844
कुल दिव्यांगता	23,31,009

स्रोत –जनसंख्या 2011

बिहार में 05-09 आयु वर्ग के दिव्यांग बच्चें, जो प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में नामांकित होने की अवधि होती है, की कुल संख्या 2,57,526 है, जिसमें दिव्यांग बालक एवं बालिकाओं की संख्या क्रमश: 1,39,317 एवं 1,18,209 है |

यहाँ ध्यान देने योग्य बातें है कि उपरोक्त सारणी में दिव्यांग बच्चों के प्रकार के आधार पर दिव्यांगों की संख्या प्रस्तुत की गयी है| यह वर्गीकरण निःशक्त जन अधिनियम 1995 के आधार पर किया गया है | लेकिन वर्त्तमान समय में निःशक्त जन अधिकार अधिनियम -2016 को पारित होने से दिव्यांग बच्चो को 21 प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है | इस एक्ट के अनुसार पूर्व के प्रकारों में तीन गुणा बढ़ोतरी हुई है | इस आधार पर देखा जाय तो दिव्यांगता की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है | वर्तमान समय में केंद्र सरकार एवं बिहार सरकार के द्वारा इन दिव्यांग बच्चों की समुचित आंकड़ा आना बांकी है| इन तथ्यों को स्वीकार करना होगा कि इन दिव्यांग बच्चों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है | इन बच्चों की आवश्यकता अनुसार प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा की विशेष पहल करने की आवश्यकता है |

बिहार में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति पिछले दशकों की तुलना में प्रगति हुई है लेकिन और सुधार की पहल करने की जरूरत है | ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में सकल नामांकन अनुपात प्रभावशाली 143.6% है, लेकिन प्रतिधारण दर चिंताजनक 58.7% है और ग्रेड V में ड्रॉपआउट अनुपात निराशाजनक 18.9% है (डीआईएसई, 2011-12, प्राथमिक शिक्षा रिपोर्ट कार्ड, बिहार) . सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये विकास सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदायों के बच्चों पर भारी पड़ते हैं। दूसरे शब्दों में, हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बच्चों की अनुपातहीन संख्या

या तो अनुपस्थिति की आदत विकसित कर लेती है या स्कूल छोड़ने की स्थिति प्राप्त कर लेती है। संक्षेप में, प्रचलित प्राथमिक शिक्षा अपनत्व और निष्पक्षता की भावना पैदा करने के लिए पर्याप्त समावेशी नहीं है जो हाशिए पर रहने वाले बच्चों के बीच संतोषजनक सीखने की प्राप्ति और स्कूल प्रतिधारण को बढ़ावा दे सके। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों और कक्षाओं पर हाल के अध्ययनों और टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि स्कूल पाठ्यक्रम और शिक्षण-सीखने की प्रथाएं और प्रक्रियाएं सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदायों के बच्चों की सीखने की जरूरतों और चिंताओं को संबोधित करने के प्रति संवेदनशील नहीं हैं, और इन बच्चों के खिलाफ पूर्वाग्रहपूर्ण और भेदभावपूर्ण प्रथाएं अभी भी कक्षा प्रथाओं और प्रक्रियाओं में काम करती हैं। बच्चों को अक्सर उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर यह माना जाता है कि उनमें सीखने की क्षमता और योग्यताएँ हैं या उनमें कमी है। दूसरी ओर, स्कूल समुदाय भी सार्वजनिक चर्चा में सभी बच्चों के साथ 'समान' व्यवहार करने का दावा करता है और उन्हें एक सार्वभौमिक श्रेणी के रूप में देखता है। जबकि पहला जाति पदानुक्रम की विचारधारा पर आधारित है, दूसरा बच्चों को उनकी व्यक्तिगत पहचान और ताकत के साथ-साथ सामूहिक सदस्यों के रूप में बड़े होने के हिस्से के रूप में गठित उनकी पहचान और चेतना से वंचित करता है। परिणामस्वरूप, सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदायों के बच्चे स्वयं को इससे बाहर रखा गया है | स्कूली पाठ्यक्रम और शिक्षण-सीखने की प्रथाएं और प्रक्रियाएं सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदायों के बच्चों की सीखने की जरूरतों और चिंताओं को संबोधित करने के प्रति उतनी संवेदनशीलता नहीं हैं, और इन बच्चों के खिलाफ पूर्वाग्रहपूर्ण और भेदभावपूर्ण प्रथाएं अभी भी कक्षा प्रथाओं और प्रक्रियाओं में काम करती हैं।

बिहार में शिक्षकों को इन बच्चों के प्रति और संवेदनशीलहोने की जरूरत है | अन्यथा सीखने-सिखाने की प्रक्रियाएँ, और मौजूदा शिक्षा प्रणाली में रुचि कम हो जाती है। सिस्टम के साथ उनके क्रमिक अलगाव का उनकी समग्र सीखने की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जो आम तौर पर दो चरणों में विकसित होता है: पहला, उनकी सीखने की उपलब्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, और दूसरा, उनमें अनुपस्थिति की उच्च दर और अंततः ड्रॉपआउट विकसित होता है।

बिहार में सामजिक परिवेश के अनुरूप पाठ्यक्रम को समृद्ध करने की आवश्यकता है | संज्ञानात्मक जागरूकता और क्षमताएं जो उन्होंने समुदाय के सदस्य के रूप में विकसित की हैं। छुपे हुए पाठ्यक्रम और शैक्षणिक हिंसा: छिपे हुए पाठ्यक्रम का तंत्र समाज के प्रमुख वर्ग के सामाजिक विशेषाधिकारों और ज्ञान को उचित ठहराने के लिए काम करता है, और यह स्थापित करने में काम करता है। रूढ़िवादी मानदंडों और मूल्य प्रणालियों के माध्यम से शैक्षणिक हिंसा अधिकतर, प्रचलित सामाजिक हिंसा स्वयं को शैक्षणिक हिंसा के माध्यम से दंड, मनमाने पुरस्कार और कभी-कभी वंशानुगत आधारित शिक्षा के विश्वास को सुदृढ़ करने सहित विभिन्न जबरदस्त तरीकों के रूप में प्रकट करती है।

सार्वभौमिक सिद्धांत समानता जो सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार करने का अधिकार देती है, हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बच्चों को विशेष ध्यान और समर्थन से वंचित कर देती है जिसकी उन्हें समान शर्तों पर अन्य बच्चों के साथ प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने के लिए आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, इन बच्चों की विशेष सामाजिक और बौद्धिक विशेषताओं को उजागर किया जाता है और उन्हें और उनके मूल समुदाय को अलग-थलग कर दिया

जाता है और उनका अपमान किया जाता है। दोनों ही मामलों में वे अपनी जाति, लिंग और/या धार्मिक पृष्ठभूमि के कारण खुद को नुकसानदेह स्थितियों में पाते हैं।

बच्चे अपने सामुदायिक अनुभवों, पर्यावरणीय परिस्थितियों, सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण अलग-अलग तरीकों से सीखते हैं। प्राथमिक शिक्षा को पूरी तरह से समावेशी बनाने के लिए, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि क्या पढ़ाया जाता है (सामग्री), इसे कैसे पढ़ाया जाता है (विधि), बच्चे कैसे सबसे अच्छा सीखते हैं (प्रक्रिया) के संदर्भ में पाठ्यक्रम सभी बच्चों के लिए सुलभ और प्रासंगिक है। और यह बच्चों के जीवन के अनुभवों और उस वातावरण से कैसे संबंधित है जिसमें वे रहते हैं और सीखते हैं। शिक्षण सामग्री को सभी बच्चों की विविध संस्कृतियों और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के प्रति उत्तरदायी और उनकी सीखने की जरूरतों और रुचियों के लिए प्रासंगिक बनाकर समावेशी बनाने की आवश्यकता है। इसके विपरीत, बिहार प्राथमिक विद्यालयों में जो प्रचलित है वह उन सामाजिक आर्थिक रूप से वंचित बच्चों के प्रतिसंवेदनशीलता को बढ़ने कि आवश्यकता है और सामाजिक रूप से बहिष्कृत बच्चों की जरूरतों के प्रति जागरूक होने की महती आवश्यकता है | जनसख्या के सन्दर्भ में बिहार सामजिक-आर्थिक रूप से वंचित समूहों अपेक्षाकृत अधिक है | भारत को एक समावेशी राष्ट्र के रूप में विकसित करने हेतु बिहार जैसे उन समस्त राज्यों को प्राथमिक शिक्षा के स्तर से ही समावेशी शिक्षा पहल करने की महती आवश्यकता है | इसके सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित समस्त प्रावधानों को यथाशीघ्र लागू करने की आवयकता है ताकि समावेशी शिक्षा के माध्यम से समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर किया जा सके व समतामूलक समाज का निर्माण हो सके |

संदर्भ सूची

1. नयी शिक्षा नीति, (1986),मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार,नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम,(2009),भारत का राजपत्र (असाधारण)
4. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम,(2016)भारत का राजपत्र (असाधारण), विधि एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
5. तिवारी,पी.(2015).समावेशी शिक्षा,(एम.ई.डी.-204).उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी
6. सिंह,आर.आर.एवं नामदेव,हे.(2014).भारत में समावेशी शिक्षा की दशा एवं दिशा. परिप्रेक्ष्य. दिसम्बर
7. नामदेव, हे.(2013).राजस्थान में प्राथमिक स्तर पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चे की समावेशी शिक्षा का अध्ययन (शोध अध्ययन).वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय,कोटा, राजस्थान
8. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा(2005).राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली
9. यादव, ए (.शोध सारांश).समावेशी शिक्षा में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया.लर्निंग कर्व.
10. मदान,ए.(2015).समावेशन ही आगे बढ़ने का मार्ग है.बेंगलुरू:लर्निंग कर्व,नवम्बर
11. खान,एन.एच.ए.(2015).शिक्षा का अधिकार अधिनियम और समावेशी तथा भेदभाव मुक्त स्कूल, बेंगलुरू.नवम्बर.पृष्ठ- 22- 26

12. देवी,आर.(2015).भिन्न प्रकार की क्षमता वाले को शामिल करना बेंगलुरू:लर्निंगकर्व.नवम्बर.पृष्ठ- 62-65
13. चावला आर.(2015).कौन तय करता है कि मेरी जगह कहाँ है ?.बेंगलुरू: लर्निंग कर्व नवम्बर. पृष्ठ-34-36

18

भारतीय दर्शन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सारतत्व

डॉ. गौरव रंजन
सहायक आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, ओड़िशा केंद्रीय विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा में "शिक्षा" को ज्ञान के मार्ग के रूप में संबोधित किया है। संस्कृत के मनीषियों एवं वेद के मर्मज्ञों द्वारा इसे "वेदांग" की संज्ञा दी है। वैदिक साहित्य में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद और निरुक्त को वेदांग की संज्ञा दी गई है। मुंडकोपनिषद् के सूत्र में अपरा विद्या का वर्णन करते हुए इनकी चर्चा की गई है। **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** ॥ (मुंडकोपनिषद्, 1.1.5)। इनके ज्ञान के बाद ही "परा' अर्थात कल्याणमयी विद्या को प्राप्त किया जा सकता हैं। अर्थात इन ग्रंथों को जाने अथवा समझे बिना वेदों के ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। ये ग्रंथ वेदों में छिपे ज्ञान के रहस्य की कुंजी की तरह हैं। शिक्षा ज्ञान का साधन है। यह शब्दों के उच्चारण से संबंधित शास्त्र है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध ग्रंथ पाणिनीयशिक्षा में शिक्षा को 'वेद' की 'नासिका' कह कर संबोधित किया गया है। इसके बिना वेदों के ज्ञान का सुगंध प्राप्त करना असंभव है। **शिक्षा वेदस्य घ्राणम्, तस्या अपुरस्कारेण वर्णनिष्पत्तिरूपो गन्धोऽपि न गृह्येत्।** (पाणिनीयशिक्षा 42, पर त्रिनयन भाष्य, पृ. सं. 63)। संस्कृत के प्रकांड विद्वान आचार्य बच्चूलाल ने 'शिक्षा' पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि **"जिसके द्वारा अभ्यास अपनाया जा सके, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा की जाए और उच्चारण के गुणों की सहिष्णुता की जाए, वह विद्या शिक्षा है"।** भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा लाई गई नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा को एक जीविकोपार्जन हेतु रोजगार पाने के साधनमात्र न मानकर समाज एवं विश्व के कल्याण हेतु एक प्रमुख साधन के रूप में देखती है।

शिक्षा का अर्थ केवल रटना नहीं है अपितु साधक को ज्ञान के मार्ग पर ले जाना है। विगत वर्षों में भौतिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षा का यह मूल लक्ष्य छूट सा गया था। छात्रों में अधिक अंक पाने की होड़ एवं अभिभावकों में यह उत्कंठा कि उनका पुत्र या पुत्री अधिक अंक पा कर समाज में सबसे आगे रहें, शिक्षा को व्यवसाय के राह पर मोड़ दिया। शिक्षा के व्यवसायीकरण की इस विभीषिका को समाज में होने वाली विभिन्न घटनाओं से समझा जा सकता है। छात्रों में बढ़ती आत्महत्या दर एवं बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि, शिक्षा के व्यवसायीकरण का ही परिणाम है। इस शिक्षा ने युवाओं को परनिर्भर बना दिया। उनके लिए शिक्षा का मूल उद्देश्य नौकरी पा कर जीवन यापन करने भर ही सीमित रह गया। जबकि भारतीय ग्रंथों में शिक्षा का मूल उद्देश्य उस ज्ञान की प्राप्ति बताई गई है जिसके द्वारा मनुष्य दुःखों एवं बंधनों से मुक्ति पाकर अपना कल्याण कर सके।

भारत में शिक्षा के व्यवसायीकरण का यह बीज सन् 1835 में बोया गया जब लार्ड मैकाले ने स्मरण पत्र के माध्यम से भारत में शिक्षा सुधार संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया था और स्कूली तथा महाविद्यालय के स्तर पर अंग्रेजी

शिक्षण को बढ़ावा देने की बात कही थी। उस समय भारत एक ब्रिटिश उपनिवेश था। मैकाले की शिक्षा पद्धति का एकमात्र उद्देश्य था कि भारत के युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सके ताकि वो अंग्रेजों को प्रशासन चलाने में सहयोग कर सके। यहीं से भारत में नौकरशाही का भी जन्म होता है। समय के साथ नौकरशाही को सामाजिक प्रतिष्ठा का पर्याय बना दिया गया। देश के युवा पढ़-लिख कर नौकरशाह बनना ही अपना कल्याण समझने लगे। युवाओं के इस सपने ने धीरे- धीरे समाज में शिक्षा के व्यवसायीकरण को इस तरह से स्थापित कर दिया कि इसका उन्मूलन असंभव ही प्रतीत होने लगा।

भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार द्वारा शिक्षा की विसंगतियों को दूर करते हुए इसके व्यवसायीकरण को खत्म करने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। इसमें इस बात को स्पष्ट किया गया है कि शिक्षण पद्धति ऐसी हो जो छात्रों के उत्सुकता को शांत कर सके एवं वैज्ञानिक खोज को बढ़ावा दे। शिक्षण से छात्रों का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित करना साथ ही समय के साथ विश्व पटल पर आई नई चुनौतियों पर विमर्श के माध्यम से समाधान की दिशा में आगे बढ़ना, भारत की नई शिक्षा नीति का एक प्रमुख लक्ष्य है। एक शिक्षक का उद्देश्य छात्रों को केवल विषय वस्तु सिखाना नहीं हैं अपितु उसे यह भी बताना है कि सीखने की विधि क्या है? इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नई शिक्षा में नई शिक्षा नीति -2020 में भारी- भरकम पाठ्यक्रम को हल्का करके छात्रों में चिंतन, रचनात्मक क्षमता, खोजी सोंच तथा समाधानमूलक सोंच को बढ़ावा देने हेतु प्रावधान लाए गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की प्रमुख विशेषताएँ

भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा लाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 कई महत्वपूर्ण बदलाव के साथ लाई गई है। इसमें भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरूप पठन पाठन एवं शिक्षण व्यवस्था में अनेकों परिवर्तन एकसाथ मौजूद हैं। इस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषा के साथ रोजगार, ज्ञान एवं आत्मनिर्भरता के उद्देश्य समाहित हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने की दिशा में यह शिक्षा नीति एक ठोस कदम है। 34 वर्षों बाद आई नई शिक्षा नीति में एक तरफ शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान खामियों को दूर करने के नियम हैं वंही दूसरी तरफ आज अपने बदलते हुए राष्ट्र की आंतरिक एवं वैश्विक चुनौतियों का सामना करने की योजना है।

नई शिक्षा नीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह वास्तविक रूप से राष्ट्रीय नीति है। इसे बनाने के पूर्व संपूर्ण राष्ट्र के 2.5 लाख ग्राम पंचायतों, 6600 प्रखंड एवं 676 जनपदों के जनता से परामर्श लिए गए। जनता के प्रतिनिधियों, छात्रों, अध्यापकों, वैज्ञानिकों, अभिभावकों, उद्योगपतियों अर्थात सभी क्षेत्र के दो लाख से ऊपर सुझावों पर चिंतन कर जनता के आकांक्षाओं के अनुरूप यह नई शिक्षा नीति तैयार हुई है। सम्पूर्ण विश्व मे ऐसे लोकतांत्रिक तरीक़े से तैयार हुई यह प्रथम शिक्षा नीति है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भारतीय भाषाओं पर बल दिया गया है। विद्यालय शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक में भारतीय भाषाओं में अध्यापन पर जोर दिया गया है। मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा मे प्राथमिक स्तर तक की पढ़ाई होगी, आवश्यकता पड़ने पर इसे आठवीं कक्षा तक भी बढ़ाया जा सकता है। अंग्रेजी भाषा केवल एक विषय के रूप में पढ़ाई जाएगी। इसकी अनुशंसा नई शिक्षा नीति में की गई है। विश्व मे हुए कई शोध

यह बताते हैं कि मातृभाषा में सीखना सरल होता है। इसमें सम्प्रेषण एवं संज्ञान आसानी से होता है। लोकभाषा या मातृभाषा में बच्चे चीजों को आसानी से समझते हैं। अन्य भाषाओं में उन्हें रटना पड़ता है। विश्व के कई विकसित देशों में विद्यालयी शिक्षा लोकभाषा या मातृभाषा में ही होती है। उच्च शिक्षा तक मे पठन पाठन लोकभाषा में होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का यह प्रयास ' भारतीय भाषाओं में पठान पाठन' हमारे देश की भाषा एवं संस्कृति को और मजबूत करेगा। इससे हमारे छात्रों की ग्रहण क्षमता में वृद्धि होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्य प्रयास ' सबको शिक्षा' देने की विशिष्ट योजना सबका साथ, सबका विकास को और मजबूत करेगा। समाज मे पिछड़े वंचित वर्गों के लिए भी संचालित योजनाओं के इतर अन्य प्रावधान किए जाएंगे जिससे वे पूर्ण संभावना के साथ अपने सपने को साकार कर सके। सरकारी क्षेत्रों के साथ निजी क्षेत्रों के संस्थानों में भी इन वर्ग के छात्रों को छात्रवृत्ति जैसी योजना चलाई जाएंगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और सतत्विकास लक्ष्य 2030 (एसडीजी)

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उद्घोषित सतत्विकास लक्ष्य – 2030 के लक्ष्य 4 में समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ ही सभी को सीखने का अवसर देने की बात कही गई है। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात पर जोर दिया गया है कि शिक्षा के माध्यम से हर समाज के हर व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को बढ़ाया जाए। शिक्षण का उद्देश्य छात्रों में केवल संज्ञानात्मक क्षमता का विकास करना ही नहीं है, अपितु उनको सामाजिक एवं नैतिक दायित्वों का निर्वहन करना भी सिखाना है। इसमें पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय विषय वस्तु के समावेश का भी प्रावधान है। साथ ही स्थानीय भाषा में शिक्षण को बढ़ावा देने की बात कही गई है। समाज के वंचित तबकों, अनुसूचित जाति, जनजाति, दिव्यांगजन एवं महिलाओं हेतु विशेष प्रबंध करके शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न प्रावधान इसमें मौजूद हैं। नई राष्ट्रीय नीति में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। कहा जाता है किसी घर की नींव मजबूत हो तो घर स्वतः मजबूत हो जाता है। नई शिक्षा नीति-2020 के तहत प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) सुविधाओं के सुदृढ़ीकरण हेतु विस्तृत योजना बनाई गई है। चरणबद्ध तरीके से देश के सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित जिलों को चिन्हित करके विशेष ध्यान देने हेतु कार्यप्रणाली विकसित करने हेतु दिशानिर्देश दिए गए हैं। आंगनवाड़ी तथा प्राथमिक स्कूलों इस हेतु तैयार किया जाएगा। प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) के पाठ्यक्रम निर्माण और शिक्षण हेतु विशेष प्रशिक्षित कर्मचारी एवं शिक्षकों के भर्ती किया जाएगा। आंगनवाड़ी केंद्रों को उच्चतर गुणवत्ता वाले बुनियादी ढांचे, खेलकूद उपकरण और पूर्ण रूप से प्रशिक्षित आंगनवाड़ी कार्यकत्रियों/शिक्षकों के साथ मजबूत करने हेतु योजना बनाई जाएगी। इसके अलावा आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों मे आश्रमशाला का निर्माण भी किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, समावेशी एवं न्यायसंगत शिक्षा को बढ़ावा देने एवं समाज के सभी वर्गों के सशक्तिकरण एवं उत्थान पर जोर देती है। अतः यह कहा जा सकता है की इसके विभिन्न प्रावधान संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा संबंधी सतत्विकास लक्ष्य (एसडीजी)-2030 की दिशा में आगे बढ़ने एवं उसे प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

भारतीय ज्ञान दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020

भारतीय दर्शन में ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य को मानव जीवन के प्रमुख उद्देश्य के रूप में वर्णित किया गया है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ ज्ञान की प्राप्ति करना ही नहीं था अपितु कर्मबंधनों से मुक्ति दिलाकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना भी था। शिक्षा से परमज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे इंसान क्रोध, मोह और अहंकार के बंधन से मुक्त होकर सत्य को अपनाता है और तनावमुक्त जीवन जीता है। प्राचीन भारत में विषय के अध्ययन को लेकर कोई बंदिश नहीं थी। छात्र सभी विषयों को पढ़ सकते थे। प्रश्नोपनिषद् में 16 कलाओं को जानने वाले पुरुष की चर्चा की गई है। भारतीय मनीषा के अन्य ग्रंथों मे 16 कला जानने वाले पुरुष को सर्वश्रेष्ठ पुरुष की संज्ञा दी गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 ने विषयों को पढ़ने से संबंधित बंदिशों को खत्म कर दिया है। अब कोई भी छात्र अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुरूप विषय का चयन कर सकता है। एक विज्ञान का छात्र वाणिज्य एवं कला के विषय को पढ़ सके, इसकी स्वतंत्रता राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020 ही प्रदान करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020, स्कूली स्तर से ही छात्रों को व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करेगी। इससे लोगों मे आत्मनिर्भरता बढ़ेगी तथा बेरोजगारी का उन्मूलन होगा। प्राचीन भारतीय ग्रंथ, मनुष्य को आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित करते हैं। मनुस्मृति के सूत्र 4.160 में यह वर्णित है कि जो कुछ दूसरों पर आश्रित है वह दुःखदायी है, जो कुछ स्वयं पर आश्रित है वह सुखदायी है। यही सुख और दुःख का लक्षण और सार है।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ।। (मनुस्मृति 4.160)

भर्तृहरि द्वारा रचित नीतिशतकम् में भी सूत्र द्वारा यह बताया गया है कि आत्मनिर्भरता से सम्मान की प्राप्ति होती है।

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः।

विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।। (नीतिशतकम्)

इस सूत्र के अनुसार, जंगल को कोई शेर का अभिषेक और संस्कार नहीं करता, वह अपने गुणों के दम पर स्वयं ही पशुओं का राजा कहलाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्मनिर्भरता समाज में लोगों को सशक्त करती है जिससे मान-सम्मान में वृद्धि होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा शिक्षा के माध्यम से देश को आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक सार्थक कदम है।

विभिन्न उपनिषदों में ज्ञान प्राप्ति, चिंतन तथा ज्ञान के सृजन पर चर्चा की गई है। नई शिक्षा नीति भी पत्याक्रम को कर के छात्रों में चिंतन को बढ़ावा देने पर जोर देती है जिससे नए ज्ञान का सृजन हो सके। परिवर्तनशील समाज में मनुष्यों के समक्ष नित नई चुनौतियाँ आ रही हैं। आज मनुष्य के समक्ष जलवायु परिवर्तन से ले कर आर्टिफिशियल इन्टेलिजेन्स और रोबोटिक्स से आने वाले बदलाव समेत अनेकों चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान चिंतन तथा नए ज्ञान के सृजन से ही होना संभव है। नई शिक्षा नीति 2020, समाज को नव ज्ञान सृजन की दिशा में उन्मुख करने हेतु प्रतिबद्ध है।

शिक्षा अगर संस्कृति से दूर हो जाए तो वह उद्देश्यहीन हो जाती है। शिक्षा का उद्देश्य लोगों के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करना है। शिक्षा ऐसी हो जिससे समाज का सर्वांगीण विकास हो तथा लोग आत्मनिर्भर हो कर आर्थिक रूप

से सशक्त बने। शिक्षा के माध्यम से केवल विषय का ज्ञान ही नहीं प्रदान करना चाहिए अपितु संस्कृतिबोध भी शिक्षा का मूल कर्तव्य है। भारतीय दर्शन "शिक्षा" को ज्ञान प्राप्ति के मार्ग के रूप में परिभाषित करता है। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, भारतीय दर्शन के सार तत्व 'को समाहित की हुई है। यह शिक्षा के व्यवसायीकरण को खत्म करने तथा ज्ञान के मूल उद्देश्य 'स्वकल्याण' तथा 'परहित' को बढ़ावा देने में कारगर सिद्ध होगी।

संदर्भ सूची

1. शिक्षा मंत्रालय. 2020. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
2. दिनकर, सिंह रा. (1962).संस्कृति के चार अध्याय. In उदयाचल eBooks.
3. भारद्वाजआलोक. (2017). भारतीय परम्परा के जीवन मूल्य. *विचार*, *10*(01). https://doi.org/10.29320/jnpgvr.v10i01.11057
4. कुमारनरेश. (2023). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अंतर्दृष्टि एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा. *Shodh Sari-An International Multidisciplinary Journal*, *02*(03), 106–113. https://doi.org/10.59231/sari7594
5. सिंहगीता. (2021). भारतीय ज्ञान परंपरा एवं स्वदेशी ज्ञान की वैश्विक परिदृश्य में प्रासंगिकता एवं महत्व. *Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies*, *9*(68), 16312–16319. https://doi.org/10.21922/srjis.v9i68.10029
6. शर्मागौरव, & मिश्रडी पी. (2018). उच्च शिक्षा के विशेष संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की एक महत्वपूर्ण अंतदृष्टि. *Humanities and Development*, *18*(1), 132–137. https://doi.org/10.61410/had.v18i1.129

19

सार्वजनिक स्वास्थ्य और शहरी स्वास्थ्य नीतियाँ: सतत् शहरी कल्याण के निर्माण में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका

शाईस्ता
शोधर्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
डॉ. नावेद जमाल
आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

भारत में सार्वजनिक नीतियों का एक लम्बा इतिहास रहा है। इन नीतियों में सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों का एक विशेष स्थान है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सार्वजनिक स्वास्थ्य "बीमारी को रोकने, स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और पूरी आबादी के बीच जीवन को लम्बा करने के लिए सभी संगठित उपाए (चाहे सार्वजनिक हों या निजी) को शामिल किया गया है। इस गतिविधि का उद्देश्य ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान करना है जिसमें लोग स्वस्थ रह सकें और जो सम्पूर्ण आबादी पर ध्यान केंद्रित करें ना केवल व्यक्तिगत रोगियों या बीमारियों पर, इस प्रकार सार्वजनिक स्वास्थ्य का संबंध केवल किसी विशेष बीमारी के उन्मूलन से न होकर सम्पूर्ण आबादी के स्वास्थ्य से है।"[1] सार्वजनिक स्वास्थ्य एक व्यापक अवधारणा है, जो पूरे समाज या आबादी के स्वास्थ्य को केंद्र में रखता है।

बढ़ती हुई आबादी, खराब होते हुए वातावरण एवं जलवायु परिवर्तन ने एक अच्छी सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति के महत्व को उजागर किया है। बढ़ती हुई शहरी आबादी को देखते हुए शहरी क्षेत्रों के लिए एक व्यापक सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति के महत्व को भी समझा जा सकता है। शहरी आबादी में तेजी से बढ़ोतरी सम्पूर्ण विश्व में देखी जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक हर तीन व्यक्तियों में से दो व्यक्ति शहरी आबादी का हिस्सा होंगे। भारत में भी शहरी आबादी तेजी से बढ़ रही है।(सारणी 1) संयुक्त राष्ट्र के अनुसार 2035 तक भारत की शहरी आबादी 675 मिलियन हो जाएगी, एवं 2035 के मध्य तक भारत की 43.2% आबादी शहरी क्षेत्रों में रहेगी।[2] भारत की राजधानी दिल्ली 2028 तक दुनिया का सबसे ज्यादा आबादी वाला शहर होगा।[3]

संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि कई राष्ट्र अपनी बढ़ती शहरी आबादी के लिए आवास, ऊर्जा, परिवहन और अन्य बुनियादी ढांचे की मांग को पूरा करने के साथ-साथ नौकरियों और स्वास्थ्य सेवाएं और शिक्षा जैसी

[1] World health organisation. Life science research: opportunities and risks for public health Mapping the issues. https://r.search.yahoo.com/_ylt=AwrKGiRqME9nPb0Lu7e7HA -
[2] द हिन्दू, जून 30. 2022. https://www.thehindu.com/news/national/indias-urban-population-to-stand-at-675-million-in-2035-behind-chinas-1-billion-un/article65584707.ece
[3] United Nation, Department of Economic and Social Affairs, "2018 Revision of World Urbanization Prospects", https://www.un.org/en/desa/2018-revision-world-urbanization-prospects

आवश्यक सेवाओं को पूरा करने के लिए संघर्ष करेंगे। संयुक्त राष्ट्र सभी देशों की सरकारों से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों के जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अधिक व्यापक नीतियां लागू करने का आह्वान करता है।[4]

सारणी 1: कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत

क्र. सं.	वर्ष	कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
1.	1901	10.85
2.	1911	10.29
3.	1921	11.18
4.	1931	11.99
5.	1941	13.86
6.	1951	17.29
7.	1961	17.97
8.	1971	19.91
9.	1981	23.33
10.	1991	25.70
11.	2001	27.81
12.	2011	31.14

स्रोत: राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल, 2022[5]

शहर की बढ़ती हुई आबादी के कारण संसाधनों एवं सेवाओं की अतिरिक्त मांग बढ़ रही है। ऐसे में अधिक सतत् शहरी नियोजन एवं सेवाओं की आवश्यकता है। सरकारी पहल के साथ-साथ समुदाय आधारित सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों के द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों में लोगों की भागीदारी नीतियों के कार्यान्वयन से लेकर नीति विश्लेषण तक में देखी जा सकती है। आम-जन की सहभागिता आधारित नीतियों की वकालत अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संगठन भी करते हैं। सामुदायिक सहभागिता आधारित सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों के द्वारा जनता के सम्पूर्ण स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। भारत सरकार द्वारा शहरी स्वास्थ को केंद्र में रखते हुए 2013 में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत की गई। यह मिशन शहरी आबादी को केंद्र में रख कर बनाया गया है साथ ही इस मिशन के द्वारा शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य के विकास एवं सुधार के लिए सामुदायिक सहभागिता को विशेष स्थान दिया गया है। सामुदायिक सहभागिता को स्वास्थ नीतियों में

[4] United Nation, Department of Economic and Social Affairs, "2018 Revision of World Urbanization Prospects", https://www.un.org/en/desa/2018-revision-world-urbanization-prospects

[5] Central Bureau of Health Intelligence Directorate General of Health Services Ministry of Health & Family Welfare.राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल 2022 17th issue, पृ-9.

सुनिश्चित करने के लिए आशा, महिला आरोग्य समिति, रोगी कल्याण समिति, सरकारी-निजी भागीदारी, गैर सरकार संगठनों आदि की भूमिका शहरी क्षेत्रों में देखी जा सकती है।[6]

सार्वजनिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं भारत में सार्वजनिक शहरी स्वास्थ्य नीति का विकास

1988 में एचेसन ने बताया की "सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाज के संगठित प्रयासों के माध्यम से बीमारियों को रोकने, जीवन को लम्बा करने और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का विज्ञान और कला है।"[7] सार्वजनिक स्वास्थ्य का लक्ष्य बिना किसी अंतर के पूरी आबादी के स्वास्थ्य में सुधार करना है। यह स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों पर भी जोर देता है। यह न केवल लोगों को स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ प्रदान करता है, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का भी प्रयास करता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के अंतर्गत स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों जैसे लिंग, पोषण, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और सामाजिक संरचनाएँ आदि है।(चित्र 1) सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास के लिए प्रमुख गतिविधियों में टीकाकरण, स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था, स्वास्थ्य शिक्षा, महामारी नियंत्रण और नीतिगत योजनाओं को शामिल किया गया है।

चित्र 1:स्वास्थ्य के कुछ प्रमुख निर्धारक कारक

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन[8]

[6] स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल अर्बन हेल्थ मिशन https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=1&sublinkid=970&lid=137

[7] Gatseva, P.D., Argirova, M. Public health: the science of promoting health. J Public Health 19, 205–206 (2011). https://doi.org/10.1007/s10389-011-0412-8

[8] स्वास्थ्य के निर्धारक, विश्व स्वास्थ्य संगठन, 4 अक्टूबर 2024. https://www.who.int/news-room/questions-and-answers/item/determinants-of-health

सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति समाज में स्वास्थ्य असमानताओं को कम करने और रोगों की व्यापकता को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका प्रभाव केवल वर्तमान पीढ़ी पर ही नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य न केवल स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण तक सीमित है, बल्कि स्वस्थ समाज की स्थापना में भी योगदान देता है।

किसी देश की सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति सम्पूर्ण जनता को ध्यान में रख कर बनाई जाती है। एक रोग मुक्त समाज की स्थापना के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य की नीतियां शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों की आवयश्कताओं को केंद्र में रख कर बनानी चाहिए। भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों का लम्बा इतिहास रहा है। भारत में सार्वजनिक स्वास्थ के लिए कार्य ब्रिटिश काल में ही शुरू हो गया था जैसे कि महामारी रोग अधिनियम (1897) जिसका उद्देश्य प्लेग जैसी महामारियों को नियंत्रित करना था, चेन्नई में किंग इंस्टीट्यूट ऑफ प्रिवेंटिव मेडिसिन की स्थापना, मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफॉर्म (1919) के अंतर्गत स्वास्थ्य को एक प्रांतीय विषय बनाया गया। इसके द्वारा प्रांतों को स्वास्थ्य नीतियां बनाने के लिए स्वायत्तता प्राप्त हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वास्थ के क्षेत्र में व्यापक नीतिया बनाई गई। पंचवर्षीय योजनाओं में स्वास्थ सेवाओं के सुधार एवं विस्तार को केंद्र में रखा गया। हालांकि, इन नीतियों में मुख्यता ग्रामीण स्वास्थ को केंद्र में रखा गया था। एक लंबे समय तक एक विशेष शहरी स्वास्थ नीति की जरूरत एवं विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। हालांकि, शहरी स्वास्थ्य सेवाओं के विकास को लेकर कार्य पहली पंचवर्षीय योजना से ही शुरू हो गया था। पहली पंचवर्षीय योजना (1951-1956) में सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे को मजबूत करने एवं शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की स्थापना करने पर ध्यान दिया गया था। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-1966) के दौरान शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए बजट को बढ़ाया गया। इसके साथ ही संक्रामक रोगों के नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित किया गया। "शहरी क्षेत्रों में बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए 1982 में कृष्णन समिति की स्थापना की गई। शहरी स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में यह समिति एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। इस समिति ने 50,000 की आबादी पर एक चिकित्सक, एक सार्वजनिक स्वास्थ्य नर्स, चार सहायक नर्स दाइयों, चार बहुक्रियाशील श्रमिकों और 25 सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के प्रबंध किए जाने की सलाह दी। पहली राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (1983) ने किसी विशेष शहरी स्वास्थ्य नीति को केंद्र में नहीं रखा, परंतु ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार एवं समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया"।[9]

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990) में मानसिक और दंत स्वास्थ्य सेवाओं के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों को स्वास्थ्य सेवाएं देने का प्रयास किया गया। 1990 के दशक में शहरीकरण की गति तेज होने के साथ मलिन बस्तियों और शहरी गरीबों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की बढ़ती आवश्यकता महसूस की गई।[10] अब तक सरकार के साथ- साथ बड़ी संख्या में गैर सरकारी संगठन भी स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम करने के लग गए। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 ने शहरी जनसंख्या की स्वास्थ्य आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित किया। इसके साथ ही महानगरीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के खराब हालत एवं उपलब्धता की कमी को भी स्वीकार किया गया था। ये भी माना गया जो

[9] Duggal.R.(2001). EVOLUTION OF HEALTH POLICY IN INDIA. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.cehat.org/uploads/files/a147.pdf

[10] वही

स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हैं वह गरीब वर्ग तक नहीं पहुँच पाती। अन्य कारकों जो महानगरीय क्षेत्रों में बीमारी के बोझ को बढ़ाते हैं जैसे:-वायु प्रदूषण, अस्वास्थ्यकर स्वच्छता और असुरक्षित पेयजल आदि को चिह्नित किया गया। उपयुक्त जनसंख्या मानदंडों को अपनाकर सभी लोगों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने के लिए एक संगठित शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की स्थापना की गई। साथ ही शहरी गरीबों और हाशिए पर खड़े समूहों की विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित भी गया।[11]

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) के अंतर्गत शहरी स्वास्थ्य सेवाओं को व्यापक और सुलभ बनाने के लिए राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (एनयूएचएम) की शुरुआत की गई जिसमें प्रवासी श्रमिकों और शहरी गरीबों की स्वास्थ्य समस्याओं का समाधान करने पर जोर दिया गया। इसके साथ की शहरी क्षेत्रों को केंद्र में रखते हुए 2013 में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत हुई। ये मिशन शहरी क्षेत्रों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को केंद्र में रख कर बनाया गया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2017) में शहरी स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता सुधारने का लक्ष्य रखा गया है।[12] शहरी गरीबों एवं मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिए स्वास्थ्य कार्यक्रमों की प्राथमिकता को केंद्र में रखा गया है। इसके साथ ही प्रथमिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार एवं स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के साथ ही स्वास्थ्य के सुधार में अन्य कारकों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य के विकास में बाधा डालने वाले कारकों को भी चिह्नित किया गया जैसे कि :- स्वच्छ जल की कमी, अस्थायी निवास, प्रदूषित हवा, अपौष्टिक भोजन आदि। इसके साथ ही पिछले दशक में बहुत सी महत्वपूर्ण स्वास्थ्य नीतियां और कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। इन कार्यक्रमों ने शहरी स्वास्थ्य के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जैसे कि:-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (आयुष्मान भारत) यह दुनिया की सबसे बड़ी स्वास्थ्य बीमा योजना है, जो 10 करोड़ से अधिक गरीब और वंचित परिवारों को ₹5 लाख प्रति परिवार वार्षिक स्वास्थ्य बीमा प्रदान करती है एवं स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र (एचडब्ल्यूसी) की स्थापना। इसके साथ ही "मिशन इंद्रधनुष" के तहत, टीकाकरण के विस्तार पर जोर दिया गया है, एवं डिजिटल हेल्थ सेवाओं की उपलब्धता जैसे कि:- ई-संजीवनी प्लेटफॉर्म: यह टेलीमेडिसिन सेवा है, जो आम जन को घर बैठे डॉक्टरों से परामर्श की सुविधा देती है, डिजिटल हेल्थ कार्ड की शुरुआत, जिससे मरीजों का स्वास्थ्य रिकॉर्ड डिजिटली उपलब्ध रहता है। स्वच्छ भारत मिशन, प्रधानमंत्री भारतीय जनऔषधि योजना के अंतर्गत जनऔषधि केंद्र खोले गए जहाँ सस्ती दरों पर गुणवत्तापूर्ण दवाइयाँ उपलब्ध हैं। स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाओं में टेक्नोलॉजी का उपयोग बढ़ाया गया है। ई-हेल्थ क्लीनिक्स, एंबुलेंस ट्रैकिंग सिस्टम और ऑनलाइन अपॉइंटमेंट जैसी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।[13](सारणी, 2)

---

[11] Ministry of Health & Family Welfare of Government of India. NATIONAL HEALTH POLICY 2002 (India). chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://nhm.gov.in/images/pdf/guidelines/nrhm-guidelines/national_nealth_policy_2002.pdf

[12] स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल अर्बन हेल्थ मिशन.
https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=1&sublinkid=970&lid=137

[13] Press Information Bureau, Prime Minister Shri Narendra Modi Inaugurates, Lays Foundation Stone of several projects and Launches various Health Programmes across 4 Ministries on Dhanvantari Jayanti, significantly enhancing health infrastructure across the countryMinistry of Health and Family Welfare. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2069352

सारणी 2: 2014 से 2024 तक- भारत में स्वास्थ्य सुधार की दिशा में प्रमुख सरकारी पहल

वर्ष	कार्यक्रम का नाम	मुख्य उद्देश्य
2014	मिशन इंद्रधनुष	बच्चों और गर्भवती महिलाओं का पूर्ण टीकाकरण।
2015	प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना (पीएमएसएसवाई)	एम्स जैसे संस्थानों की स्थापना और मेडिकल कॉलेजों का उन्नयन।
2015	प्रधानमंत्री भारतीय जनऔषधि परियोजना	उद्देश्य विशेष रूप से निर्धनों तथा वंचितों के लिये किफायती कीमतों पर गुणवत्तापूर्ण दवाएँ उपलब्ध कराना है।
2017	मिशन इंद्रधनुष	कम टीकाकरण वाले क्षेत्रों में टीकाकरण कवरेज बढ़ाना।
2018	2018 आयुष्मान भारत - प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएम-जेएवाई)	गरीब परिवारों को ₹5 लाख तक का स्वास्थ्य बीमा।
2018	आयुष्मान भारत स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र (एचडब्ल्यूसी)	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और उप-केंद्रों का उन्नयन।
2018	2018 राष्ट्रीय पोषण मिशन (पोषण अभियान)	कुपोषण, स्टंटिंग और कम वजन को कम करना।
2020	2020 राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन (एनडीएचएम)	यूनिक हेल्थ आईडी और डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड।
2021	प्रधानमंत्री आत्मनिर्भर स्वस्थ भारत योजना (पीएम-एएसबीवाई)	स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे को मजबूत करना और स्वास्थ्य सुविधाओं का उन्नयन।
2022	टेली-मेडिसिन सेवाओं का विस्तार (ईसंजीवनी)	ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में डिजिटल स्वास्थ्य परामर्श।
2023	आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन (ABDM)	हेल्थ डेटा प्रबंधन के लिए डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ावा देना।

स्रोत: पत्र सूचना कार्यालय[14]

शहरी स्वास्थ्य के समक्ष चुनौतियों का अवलोकन

शहरी क्षेत्रों के समक्ष सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास एवं सुधार को लेकर बहुत चुनौतियां हैं जो कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अलग हैं। हालांकि, शहरी क्षेत्रों में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक हैं एवं शहरी क्षेत्र के स्वास्थ्य सूचांक भी बेहतर है।(सारणी 3) परंतु फिर भी शहरी गरीब एवं हाशिये के समूह को स्वास्थ सेवाओं पे भारी खर्चा करना पड़ता है। इसके साथ की विभिन्न प्रकार के कारक उनके अच्छे स्वास्थ्य में बाधा

[14]पत्र सूचना कार्यालय, Prime Minister Shri Narendra Modi Inaugurates, Lays Foundation Stone of several projects and Launches various Health Programmes across 4 Ministries on Dhanvantari Jayanti, significantly enhancing health infrastructure across the countryMinistry of Health and Family Welfare. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2069352

डालते हैं। सबसे बड़ा कारक एक ही क्षेत्र में उच्च जनसंख्या घनत्व के कारण विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य चुनौतियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें प्रमुख समस्या संक्रामक रोग है। भीड़-भाड़ वाले इलाकों में व्यक्तिगत स्थान की कमी के कारण बीमारियों का संक्रमण तेजी से फैलता है। गंदगी और अस्वच्छता के कारण मलेरिया, डेंगू, और तपेदिक जैसे रोग आम हो जाते हैं।

सारणी 3: भारत के शहरी क्षेत्र के कुछ प्रमुख स्वास्थ्य सूचांक

क्र. सं.	सूचांक	शहरी क्षेत्र में प्रतिशत
1.	नवजात मृत्यु दर (एनएनएमआर)	18
2.	शिशु मृत्यु दर (आईएमआर)	26.6
3.	पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर (यू5एमआर)	31.5
4.	6-59 महीने की आयु के बच्चे जो एनीमिया से पीड़ित हैं (<11.0 g/dl)22 (%)	64.2
5.	15-49 वर्ष की गैर-गर्भवती महिलाएं जो एनीमिया से पीड़ित हैं (<12.0 g/dl)22 (%)	54.1
6.	15-49 वर्ष की गर्भवती महिलाएं जो एनीमिया से पीड़ित हैं (<11.0 g/dl)22 (%)	45.7
7.	15-49 वर्ष की आयु के पुरुष जो एनीमिया से पीड़ित हैं (<13.0 g/dl)22 (%)	20.4
8.	15-19 वर्ष की आयु के पुरुष जो एनीमिया से पीड़ित हैं (<13.0 g/dl)22 (%)	25.0
9.	जिन माताओं ने पहली तिमाही में प्रसवपूर्व जांच कराई (%)	75.5
10.	सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा में प्रति प्रसव औसत जेब से किया जाने वाला व्यय (रु.)	3385 रु.
11.	महिलाओं में रक्त शर्करा स्तर - उच्च (141-160 mg/dl)23 (%)	6.7
12.	महिलाओं में रक्त शर्करा स्तर - बहुत अधिक (>160 mg/dl)23 (%)	8.0
13.	रक्त शर्करा स्तर - उच्च (141-160 mg/dl)23 (%)	7.8
14.	रक्त शर्करा स्तर - बहुत अधिक (>160 mg/dl)23 (%)	8.5

स्रोत: एनएफएचएस-5 से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित[15]

इसके साथ ही आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण भी स्वास्थ्य पर नकरात्मक असर पड़ता हैं जैसे:- स्वच्छ पानी की कमी, यातायात वाहनों एवं कारखानों का धुआँ आदि वायु प्रदूषण का कारण बनता है। दिल्ली जैसे बड़े शहरों में शीत ऋतु में वायु गुणवत्ता सूचकांक लगातार खतरनाक स्तर पर बना रहता है। इस कारण जीवन प्रत्याशा में भी 11.9 वर्ष की कमी आती है इसके साथ ही श्वास सम्बन्धी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। वायु प्रदूषण के कारण लोगों को पलायन भी करना पड़ रह है, ऐसा तबका जो कही जा नहीं सकता यही रहने को मजबूर है एवं समस्यों का सामना कर रहा है। [16] शहरी क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण भी लोगों के स्वास्थ्य के लिए बड़ी समस्या है। यह हृदय रोग और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं को बढ़ावा देता है। स्वच्छ जल की कमी के कारण हैजा एवं पेट की समस्याएं होने का भी खतरा होता है। शहरी जीवन की तेज़ रफ्तार, काम का दबाव, और सामाजिक अलगाव

[15] राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण(एनएफएचएस-5)2019-2021. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय भारत सरकार.
https://mohfw.gov.in/sites/default/files/NFHS-5_Phase-II_0.pdf

[16] हेल्थ इमरजेंसी के करीब पहुंची हवा, दिल्लीवालों की उम्र 11.9 साल हो रही कम, डरा रही रिपोर्ट. नवभारत टाइम्स, 19.12.2024.
https://navbharattimes.indiatimes.com/

मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते है जिससे मनोवैज्ञानिक समस्या होने का खतरा रहता है। शहरी क्षेत्रों में खराब खानपान और गतिहीन जीवनशैली के कारण मोटापा, मधुमेह और हृदय रोग बढ़ रहे हैं। स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव एवं प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की कमी भी एक चुनौती है। ऐसे में सामुदायिक सहभागिता के द्वारा शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है।

सामुदायिक सहभागिता एवं सार्वजनिक शहरी स्वास्थ्य

सामुदायिक सहभागिता सार्वजनिक सेवा वितरण के सभी पहलुओं में स्थानीय निवासियों की भागीदारी पर जोर देती है, जिसमें आवश्यकता मूल्यांकन, योजना, लामबंदी, प्रशिक्षण, कार्यान्वयन, निगरानी और विकास शामिल है। सामुदायिक सहभागिता लोगों की अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने की क्षमता पर जोर देती है। "स्वास्थ्य में सामुदायिक सहभागिता का अर्थ है कि समुदाय के सदस्य स्वास्थ्य से जुड़ी गतिविधियों में हिस्सा ले, जिससे उन्हें स्वास्थ्य देखभाल से जुड़े फैसलों पर नियंत्रण मिलता है"[17] सार्वजनिक शहरी स्वास्थ्य के क्षेत्र में सामुदायिक सहभागिता के परिणाम सकरात्मक रहे हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने इस पद्धति को सार्वभौमिक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल प्राप्त करने के साधन के रूप में भी स्वीकार किया है। भारत में सार्वजनिक शहरी स्वास्थ्य के विकास में सामुदायिक सहभागिता एक महत्वपपूर्ण हिस्सा रही है। स्वयंसेवी स्वास्थ्य कार्यकर्ता देश के सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेषकर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में। स्वास्थ्य के क्षेत्र में पहला सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रम स्वतंत्रता के बाद शुरू हुआ। स्वास्थ्य नीतियों में सामुदायिक सहभागिता के महत्व पर जोर दिया गया है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास में सहायता कर सकती हैं। ये नीतियाँ समुदाय के सदस्यों को सक्रिय भागीदार के रूप में देखती हैं, न कि केवल सार्वजनिक सेवाओं के प्राप्तकर्ता के रूप में जो टिप्पणियाँ देने तक सीमित हैं।

सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रम लोगों को सशक्त बनाने में मदद करते हैं क्योंकि वे सिर्फ सार्वजनिक सेवा के निष्क्रिय उपभोक्ता नहीं हैं बल्कि ऐसे कार्यक्रम के सदस्य हैं जो उन्हें हर स्तर पर शामिल करते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से, वे निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेते हैं जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। सामुदायिक सहभागिता के द्वारा स्थानीय लोगों की स्वास्थ्य शिक्षा को भी बढ़ाया जाता है। लोगों के बीच स्थानीय स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं के द्वारा पोषक आहार, समय पर स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग, टीकाकरण, रोगों से बचाव के उपाए, शिशु देखभाल आदि के बारे में सूचना दी जाती है। इन सूचनाओं को आम-जन तक पँहुचाने के लिए विभिन्न उपायों को प्रयोग में लाया जाता है जैसे कि- जागरूकता अभियान, बैठक, परिचर्चा आदि। इन पहलों के द्वारा सम्पूर्ण जनता के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है साथ ही व्यवहार में सुधार करके आने वाले रोगों से बचाव किया जा सकता है। सामुदायिक सहभागिता सार्वजनिक शहरी स्वास्थ्य सेवाओं को आमजन की आवश्यकता अनुसार विकसित करने

[17] Chu, C & Simpson, R. (1997). Community participation in public health: Definitions and conceptual framework.https://www.researchgate.net/publication/306239533_Community_participation_in_public_health_Definitions_and_conceptual_framework

में सहायता कर सकती है, साथ ही यह भी सुनिश्चित करती है कि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति प्रभावी ढंग से हो।

शहरी स्वास्थ्य में प्रभावी सामुदायिक सहभागिता में बाधाएं

शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य के विकास में सामुदायिक सहभागिता कार्यकर्मों में आने वाली बाधाऐं कुछ हद तक ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अलग हैं। सामुदायिक सहभागिता कार्यकर्मों में लोगों की भागीदारी कम है, मुख्यता कार्यक्रम लोगों की स्वेच्छा से भागीदारी लेने पर निर्भर है। चूँकि कोई वित्तीय लाभ नहीं है, इसलिए कुछ लोग इन गतिविधियों में भाग लेने के लिए अनिच्छुक हैं। जो कार्यक्रम बुनयादी आधार पर सामुदायिक सहभागिता पर निर्भर करते हैं, वह कार्यकर्म बिना भागीदारी के विफल होने के लिए अभिशप्त हैं। इसके साथ ही शहरी क्षेत्रों में प्रवासी जनसंख्या अधिक होने के कारण भी सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रम नकारात्मक तरीके से प्रभावित होते है। इनमें से कुछ कार्यक्रम, जैसे महिला आरोग्य समिति, स्वयंसेवकों को वित्तीय सहायता प्रदान नहीं करते हैं, जबकि अन्य, जैसे आशा कार्यकर्ता और सहायक नर्स मिडवाइफरी (ए. एन. एम.) उनके श्रम के संबंध में न्यूनतम मुआवजा प्रदान करते हैं। स्वयंसेवक कभी-कभी ज़रूरतमंदों की मदद के लिए अपने निजी धन का उपयोग करते हैं। प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों का मानदेय स्तर अलग-अलग है। कुछ राज्यों में, इन स्वयंसेवकों को मिलने वाला मानदेय उन्हें काम करते रहने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए अपर्याप्त है। कुछ स्थानों पर, उन्हें भुगतान में देरी का भी सामना करना पड़ता है और ज़रूरतमंदों की सहायता के लिए उन्हें अपना धन खर्च करना पड़ता है।

महिला स्वयंसेवकों पर काम का दोहरा बोझ होता है: घरेलू काम और स्वयंसेवी गतिविधियाँ। इन स्वयंसेवकों पर काम का बहुत बोझ होता है, एवं जमीनी स्तर पर स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की कमी भी है। इसके साथ ही बहुत कम प्रशिक्षण के साथ कई तरह के काम करते हैं जैसे "परिवारों का नियमित स्वास्थ्य सर्वेक्षण करना, फाइलें और रिकॉर्ड बनाए रखना, आंगनवाड़ी केंद्रों को चलाना, स्वास्थ्य, पोषण, परिवार नियोजन और बाल विकास आदि के बारे में जागरूकता फैलाना।" उनके काम में कोई निरंतरता नहीं है, और सरकार कभी-कभी उनके कार्यभार में अतिरिक्त कार्य जोड़ देती है, जिससे उनका तनाव बढ़ जाता है और उनका स्वैच्छिक श्रम पूर्णकालिक काम बन जाता है। ये स्वयंसेवक जमीनी स्तर पर काम करते हैं, और उन्हें सेवाएँ और सुविधाएँ हमेशा समय पर नहीं दी जाती हैं। जैसा कि पूरी कोविड-19 महामारी के दौरान हुआ, इन फ्रंट-लाइन कार्यकर्ताओं के पास अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए बहुत कम संसाधन बचे थे। साथ में सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रमों में समुदाय की शिक्षा स्तर का भी प्रभाव होता है। अन्य चुनौतियों में बुनियादी ढांचे की कमी, जागरूकता की कमी, सरकारी सेवाओं को लेकर अविश्वास, असामान्य कार्य के घंटे और स्वयंसेवा और सेवाएँ प्रदान करने के बारे में स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रह शामिल हैं।

शहरी स्वास्थ्य में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने की रणनीतियाँ एवं निष्कर्ष

भारत में शहरी स्वास्थ्य नीति का विकास शहरीकरण और स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों के प्रति बदलते दृष्टिकोण का प्रतिबिंब है। यह नीति शहरी समाज के कमजोर वर्गों को सुलभ और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की

दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत में शहरी स्वास्थ्य नीति पंचवर्षीय योजनाओं और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों के माध्यम से धीरे-धीरे मजबूत हुई है। इसका उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ और प्रभावी बनाना है, विशेषकर कमजोर वर्गों के लिए। शहरीकरण और स्वास्थ्य चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए इन नीतियों ने एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया है, जो सतत् विकास के लिए महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही शहरी स्वास्थ्य में सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक जागरूकता, तकनीकी नवाचार, और सामुदायिक नेतृत्व को सशक्त करना आवश्यक है।

शहरी क्षेत्रों में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने के लिए विभिन्न उपायों का प्रयोग किया जा सकता है जैसे कि:- सामुदायिक जागरूकता को बढ़ाया जाए जिसके लिए स्वास्थ्य शिविरों और कार्यशालाओं का आयोजन, स्थानीय भाषाओं में जागरूकता सामग्री विकसित करना, अपरंपरागत मीडिया साधन (फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब आदि), रेडियो, और टेलीविजन का उपयोग, स्थानीय नेताओं, गैर सरकारी संगठन, और नागरिक समूहों को शामिल करना, शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (यूपीएचसी) और समितियों के बीच समन्वय, समुदाय की भागीदारी आधारित स्वास्थ्य सेवाओं की निगरानी और सुधार, सार्वजनिक-निजी भागीदारी का उपयोग। इसके साथ ही स्थानीय समूहों और स्वयंसेवी संस्थाओं की भागीदारी को मजबूत करना जिसके लिए मलिन बस्तियों में महिला और युवा समूहों का गठन एवं स्वास्थ्य और स्वच्छता के महत्त्व पर समुदाय को प्रशिक्षण देना उदाहरण: कुदुम्बश्री मिशन (केरल)। सामुदायिक आधारित निगरानी तंत्र, स्कूल और कॉलेज-आधारित स्वास्थ्य कार्यक्रम, स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए तकनीक के उपयोग द्वारा भी बढ़ोतरी की जा सकती है एवं बाधाओं को कम किया सकता है जिसके लिए मोबाइल एप्स और हेल्थलाइन सेवाओं का उपयोग साथ ही टेलीमेडिसिन के माध्यम से डॉक्टरों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है उदाहरण- आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन। इससे शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच और प्रभावशीलता में सुधार होगा।

(यह लेख भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, दिल्ली द्वारा प्राप्त पूर्ण अवधि डॉक्टरल अनुदान के अंतर्गत संचालित शोध कार्य का प्रतिफल है।)

संदर्भ सूची

1. World health organisation. Life science research: opportunities and risks for public health Mapping the issues. https://r.search.yahoo.com/_ylt=AwrKGiRqME9nPb0Lu7e7HAx.;_ylu=Y29sbwNzZzMEcG9zAzcEdnRpZAMEc2VjA3Ny/RV=2/RE=1734452587/RO=10/RU=https%3a%2f%2fapps.who.int%2firis%2frest%2fbitstreams%2f65478%2fretrieve/RK=2/RS=uN4vMOFwYAt5dCN3nL5X.oAVom8-

2. द हिन्दू, जून 30. 2022. https://www.thehindu.com/news/national/indias-urban-population-to-stand-at-675-million-in-2035-behind-chinas-1-billion-un/article65584707.ece
3. यूनाइटेड नैशन. Department of Economic and Social Affairs, "2018 Revision of World Urbanization Prospects". https://www.un.org/en/desa/around-25-billion-more-people-will-be-living-cities-2050-projects-new-un-report
4. Gatseva, P.D., Argirova, M. Public health: the science of promoting health. J Public Health 19, 205–206 (2011). https://doi.org/10.1007/s10389-011-0412-8
5. विश्व स्वास्थ्य संगठन. विश्व स्वास्थ्य संगठन संविधान. https://www.who.int/about/governance/constitution
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन. गुणवत्ता के लिए सामुदायिक सहभागिता. https://qualityhealthservices.who.int/quality-toolkit/new-to-health-system-quality-thinking/community-engagement-for-quality
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन. अल्मा-अता (Alma-Ata) घोषणा 1978. https://www.who.int/docs/default-source/documents/almaata-declaration-en.pdf
8. गाइटोनडे. आर और आदि (2017). कम्यूनिटी एक्शन फॉर हेल्थ इन इंडिया नैशनल रुरल हेल्थ मिशन: वन पॉलिसी, मेनी पाथ. सोशल साइंस एण्ड मेडिसन 188. 82-90. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2017.06.043
9. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल हेल्थ मिशन . https://main.mohfw.gov.in/sites/default/files/56987532145632566578.pdf
10. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल अर्बन हेल्थ मिशन https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=1&sublinkid=970&lid=137
11. पत्र सूचना कार्यालय. Prime Minister Shri Narendra Modi Inaugurates, Lays Foundation Stone of several projects and Launches various Health Programmes across 4 Ministries on Dhanvantari Jayanti, significantly enhancing health infrastructure across the countryMinistry of Health and Family Welfare. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2069352
12. Chu, C & Simpson, R. (1997). Community participation in public health: Definitions and conceptual framework. https://www.researchgate.net/publication/306239533_Community_participation_in_public_health_Definitions_and_conceptual_framework
13. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. इन्डक्शन ट्रैनिंग मॉडुल फॉर आशा. https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=3&sublinkid=1299&lid=162

14. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. महिला आरोग्य समिति. https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=3&sublinkid=1299&lid=162
15. द टाइम्स ऑफ इंडिया. 30 जून 2022. इंडिया अर्बन पॉपुलेशन टू स्टैन्ड यट 675 मिलियन इन 2035, http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/92561747.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst
https://timesofindia.indiatimes.com/india/indias-urban-population-to-stand-at-675-mn-in-2035-behind-chinas-1-bn-un/articleshow/92561747.cms
16. Ministry of Health & Family Welfare of Government of India. NATIONAL HEALTH POLICY 2002 (India). chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://nhm.gov.in/images/pdf/guidelines/nrhm-guidelines/national_nealth_policy_2002.pdf
17. Duggal.R.(2001). EVOLUTION OF HEALTH POLICY IN INDIA. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.cehat.org/uploads/files/a147.pdf
18. National Health Profile, 2022. CENTRAL BUREAU OF HEALTH INTELLIGENCE, Directorate General of Health Services, Ministry of Health & Family Welfare
19. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण(एनएफएचएस-5)2019-2021. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय भारत सरकार. https://mohfw.gov.in/sites/default/files/NFHS-5_Phase-II_0.pdf
20. स्वास्थ्य के निर्धारक. डब्ल्यूएचओ. 4 अक्टूबर 2024. https://www.who.int/news-room/questions-and-answers/item/determinants-of-health
21. हेल्थ इमरजेंसी के करीब पहुंची हवा, दिल्लीवालों की उम्र 11.9 साल हो रही कम, डरा रही रिपोर्ट. नवभारत टाइम्स, 19.12.2024. https://navbharattimes.indiatimes.com

20

भारत के विस्तारित पड़ोस का परिदृश्य: 2014 के बाद मध्य एशिया के साथ भारत के संबंधों का विश्लेषण

डॉ प्रमोद कुमार

सह-आचार्य, रूस एवं मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110067

सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया के नक्शे पर पाँच सोवियत मध्य एशियाई गणराज्य उभरे। इन गणराज्यों के नाम कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और उज़्बेकिस्तान हैं। ये देश चारों ओर से भूमि से घिरे हुए हैं और समुद्र के रास्ते अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मार्गों तक इनकी पहुँच नहीं है। भारत और मध्य एशिया के बीच सदियों से ऐतिहासिक और सभ्यतागत संबंध रहे हैं। भारत और मध्य एशिया के संबंधों को अलग-अलग आधिकारिक नाम दिए गए हैं जैसे विस्तारित पड़ोस, तात्कालिक और रणनीतिक पड़ोस, उत्तर की ओर देखो नीति और मध्य एशिया को जोड़ो नीति। सोवियत संघ के विघटन और उसके बाद वैश्विक व्यवस्था में आए बदलावों ने भारत की मध्य एशिया नीति को भी प्रभावित किया है। सोवियत संघ के विघटन के बाद, एक शक्ति निर्वात (power vacuum) उभरी और प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ इन गणराज्यों को प्रभावित करने की गुंजाइश तलाश रही थीं। पूर्व सोवियत संघ के क्षेत्र में इन नए स्वतंत्र देशों का उदय इस क्षेत्र में भू-राजनीतिक और भू-रणनीतिक परिदृश्य में सबसे नाटकीय परिवर्तनों में से एक है।[1]

मध्य एशिया ‘एशिया की धुरी’ (pivot of Asia) है। 'इन देशों को कभी-कभी मध्य एशिया या आंतरिक एशिया के रूप में जाना जाता है। मध्य एशिया न केवल एशिया और यूरोप के लिए बल्कि दुनिया की प्रमुख शक्तियों के लिए भी अपने रणनीतिक स्थानों और सुरक्षा चिंताओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह क्षेत्र भारत के लिए ऊर्जा सुरक्षा के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है।'[2] 1991 के बाद इस क्षेत्र ने पाइपलाइनों के लिए अपनी रणनीतिक स्थिति ऊर्जा प्रतिस्पर्धा (energy competition) के कारण 'न्यू ग्रेट गेम' देखा है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों विशेष रूप से तेल और गैस जैसे संसाधन बडी मात्रा में मिलते हैं।[3]

ऐतिहासिक रूप से, 'मध्य एशिया खानाबदोश लोगों और सिल्क रोड से निकटता से जुड़ा हुआ है, भूगोलवेत्ता अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ट ने 1843 में पहली बार 'मध्य एशिया' की अवधारणा को पेश किया। कई ऐतिहासिक पाठ्यपुस्तकें अभी भी इस क्षेत्र को 'स्टालिन के काल में प्रयुक्त नाम तुर्किस्तान' के रूप में संदर्भित करती हैं। स्थल से घिरे मध्य एशिया का भूगोल विशाल मैदानी क्षेत्रों से लेकर ऊंचे पहाड़ों तक फैला हुआ है, जो इसकी स्थलाकृतिक स्थिति और कई प्रकार की जलवायु के लिए बहुत महत्व रखते हैं।[4] जैसा कि कुछ विद्वानों ने कहा है कि पूरे इतिहास में मध्य एशिया समय-समय पर विभाजित और विखंडित हुआ है। मध्य एशिया ने अपने आप में एक शक्ति के रूप

में कम और बाहरी शक्तियों के लिए युद्ध के मैदान के रूप में अधिक काम किया है।[5] ऐतिहासिक रूप से मध्य एशिया नए ग्रेट गेम का केंद्र बना। इसका आधुनिक रूप आज भी रूस, चीन, अमेरिका, तुर्की, ईरान और यूरोपीय संघ के बीच जारी है।

मध्य एशिया: भू-राजनीतिक महत्व

मध्य एशियाई गणराज्यों का इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सुरक्षा और आर्थिक हित है। भू-राजनीतिक नेतृत्व को अधिकतम करने और अपने स्वयं के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए ये देश इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की कोशिश कर रहे हैं। 'ये पाँच मध्य एशियाई गणराज्य वैश्विक बाज़ारों से संबंध और संपर्क बनाने की तलाश में हैं'[6] मध्य एशियाई गणराज्य प्राचीन सिल्क रोड को पुनर्जीवित करने के इच्छुक हैं जो वर्तमान समय में सबसे व्यवहार्य व्यापार मार्गों (most feasible trade routes) में से एक बन गया है। 'रूस के साथ उनका संपर्क इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख विशेषता बनी हुई है। चीन ने इन मध्य एशियाई गणराज्यों के साथ बहुपक्षीय और द्विपक्षीय संबंध बनाए हुए हैं'।[7]

सभी मध्य एशियाई राज्य खनिजों, तेल और गैस के साथ-साथ जलविद्युत संसाधनों (hydroelectric resources) से भी संपन्न हैं। कजाकिस्तान के पास यूरेनियम का 'दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा भंडार है, और यह 2014 में 23,000 टन यूरेनियम का दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक है'।[8] (Athar Zafar, 2015). इसमें लौह-अयस्क, कोयला, तेल, गैस, सोना, सीसा, जस्ता, मोलिब्डेनम आदि सहित लगभग सभी प्रकार के खनिज शामिल हैं। उज्बेकिस्तान में गैस, यूरेनियम और सोने के विशाल और प्रमाणित भंडार हैं। तुर्कमेनिस्तान में प्राकृतिक गैस का दुनिया का चौथा सबसे बड़ा भंडार है। भौगोलिक इलाके के कारण ताजिकिस्तान में विशाल जलविद्युत क्षमता (hydroelectric power) है। किर्गिस्तान एक पहाड़ी देश होने के कारण सोने और जलविद्युत शक्ति से समृद्ध है।[9]

हालांकि, 'भारत पहले ही भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी बीएचईएल (भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड) और नेशनल हाइड्रो पावर कॉरपोरेशन (एनएचपीसी/NHPC) के माध्यम से ताजिकिस्तान को वरज़ोब-1 (Varzob-1) जलविद्युत संयंत्र के पुनर्वास और आधुनिकीकरण में सहायता कर चुका है। इस जलविद्युत स्टेशन का उद्घाटन 2012 में हुआ था और यह चालू है।'[10]

भारत और मध्य एशिया के ऐतिहासिक संबंध

भारत और मध्य एशिया क्षेत्र के बीच ऐतिहासिक एवं सभ्यतागत संबंध हैं, जो 2500 साल पहले के हैं। इन देशों के बारे में महाभारत में उल्लेख मिलता है। हालांकि, 'भारत के विभाजन और उसके बाद कश्मीर के हिस्से पर पाकिस्तान के कब्जे के कारण भारत की उत्तरी सीमा पर प्रत्यक्ष भौतिक संपर्क टूट (direct physical cut off) गया।'[11]

राजदूत अशोक सज्जनहार भारत मध्य एशिया संबंधों के बारे में बात करते हैं कि भारत और मध्य एशिया के बीच संबंध प्राचीन और सभ्यतागत हैं। 'भारत लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर 15वीं शताब्दी ईस्वी तक रेशम मार्ग (Silk Route) के माध्यम से मध्य एशिया से निकटता से जुड़ा हुआ था, जब यूरोप से भारत तक समुद्री मार्ग की खोज की गई थी। प्राचीन रेशम मार्ग (Silk Route) भारत को न केवल रेशम, कपड़ा, मसालों जैसे माल और

वस्तुओं के परिवहन के लिए मध्य एशिया से जोड़ता है, बल्कि यह विचारों, धर्म, परंपरा, दर्शन के आदान-प्रदान का एक प्रभावी माध्यम भी था। बौद्ध धर्म इस मार्ग से भारत से मध्य एशिया और चीन तक पहुँचा है'।[12] हालाँकि, मध्यकालीन समय में सम्राट बाबर अपना राज्य खोने के बाद विदेशी धरती पर अपना भाग्य आजमाने के लिए फरगना घाटी से आया था।

सोवियत काल के दौरान संस्कृति, नृत्य, संगीत, फिल्में, साहित्य ने मध्य एशियाई गणराज्यों को भारतीय संस्कृति के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ा। 1955 में भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनकी बेटी इंदिरा गांधी की अल्माटी, ताशकंद और अशगाबात की यात्रा जिसने इस क्षेत्र को भारत के ओर करीब ला दिया। नरगिस,राजकपूर, मिथुन चक्रवर्ती और अन्य जैसे बॉलीवुड अभिनेताओं ने भारत को इस मध्य एशियाई क्षेत्र के आम लोगों के घरों और दिलों में ला दिया।[13] (ORF. India-Central Asia relations/Sajjanhar, n.d.-a). सोवियत विघटन के बाद भारत मध्य एशिया क्षेत्र में वाणिज्य दूतावास खोलने वाला पहला देश था। ताशकंद में भारतीय दूतावास ने लोगों को भारत और व्यापक मध्य एशियाई क्षेत्र के बीच सांस्कृतिक कूटनीति से संपर्क करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।[14]

मध्य एशिया में भारतीय पहल

पिछले तीन दशकों से भारतीय सरकार ने मध्य एशियाई क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए कई पहल की हैं। भू-राजनीतिक परिदृश्य में बेहतर उपस्थिति के लिए भारत सरकार ने मध्य एशियाई क्षेत्र के प्रति कुछ नीतियों को आधिकारिक तौर पर शुरू किया है। इसे विस्तारित पड़ोस (extended neighbourhood), रणनीतिक और तात्कालिक पड़ोस, लुक नॉर्थ नीति (Look North Policy) और अंत में 2012 में कनेक्ट सेंट्रल एशिया (Connect Central Asia) नीति के रूप में देखा गया।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की मध्य एशियाई देशों की यात्रा ने इस क्षेत्र में भारत का ध्यान आकर्षित किया है। रूस के उफा में आयोजित ब्रिक्स (BRICS) और एससीओ (SCO) शिखर सम्मेलन के संदर्भ में, शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) में भारत की सदस्यता ने सहयोग के लिए, विशेष रूप से सुरक्षा मामलों में, अधिक गुंजाइश बनाई है।[15] हालांकि, ऊर्जा सुरक्षा उनकी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य रहा।[16] Prime Minister Modi in Central Asia."प्रधानमंत्री मोदी मध्य एशिया में)। भारत का उद्देश्य '2050 तक परमाणु ऊर्जा के माध्यम से उत्पादित बिजली का अपना हिस्सा 3.5% से बढ़ाकर 25% करना है, लेकिन इसके पास यूरेनियम का अपर्याप्त भंडार है। इसे कजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान और रूस जैसे गणराज्यों से ईंधन की निरंतर आपूर्ति की जरूरत है, जिनके साथ इसने यूरेनियम की आपूर्ति के लिए सौदे किए हैं। दूसरी ओर, पाइपलाइन की व्यवस्था अधिक जटिल है। तुर्कमेनिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत (TAPI) गैस पाइपलाइन परियोजना, जो तुर्कमेनिस्तान से अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत तक प्राकृतिक गैस लाने वाली थी, भारत-पाकिस्तान मतभेदों के कारण अटक गई है'।[17] जब तक ये मतभेद सुलझ नहीं जाते, तब तक यह संभावना नहीं है कि TAPI पाइपलाइन परियोजना पूरी होगी। भारत सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह तुर्कमेनिस्तान से प्राकृतिक गैस प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक तरीकों पर चर्चा करे। 'ईरान के रास्ते पाइपलाइन के जरिए तुर्कमेनिस्तान की गैस को बंदरगाह तक लाना और फिर इसे एलएनजी (LNG) के रूप में भारत भेजना तभी संभव है जब ईरान पर से आर्थिक प्रतिबंध हटा लिए जाएं'।[18]

जैसा कि पी स्टोबदान लिखते हैं, "परमाणु और तेल क्षेत्रों में तीन महत्वपूर्ण विकास अंततः भारत के मध्य एशियाई ऊर्जा क्षेत्र में प्रवेश को सुगम या आसान बनाएंगे। सबसे पहले, प्रधानमंत्री की यात्रा से सबसे महत्वपूर्ण बात राष्ट्रपति नूरसुल्तान नज़रबायेव का भारत को यूरेनियम की दीर्घकालिक आपूर्ति को नवीनीकृत करने वाले एक प्रमुख अनुबंध पर हस्ताक्षर करने का साहसिक निर्णय है"| 'दूसरी बात, भारत की ओएनजीसी-विदेश लिमिटेड (ओवीएल/OVL) ने अंततः अपनी पहली सफलता तब हासिल की जब प्रधानमंत्री मोदी ने 7 जुलाई, 2015 को सतपायेव ब्लॉक में तेल अन्वेषण के लिए ड्रिलिंग ऑपरेशन शुरू किया'|[19] उन्होंने आगे जोर दिया, "उफा शिखर सम्मेलन के बाद प्रधान मंत्री की तुर्कमेनिस्तान यात्रा ने संभवतः तुर्कमेनिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत (TAPI) पाइपलाइन के साकार होने का रास्ता साफ कर दिया है"| उन्होंने आगे कहा: 'तापी क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को बदल सकता है और इस मार्ग पर समृद्धि ला सकता है... मैं तुर्कमेनिस्तान में ऊर्जा क्षेत्र में दीर्घकालिक निवेश में हमारी रुचि व्यक्त करता हूं'|[20]

जैसा कि प्रोफेसर सी राजा मोहन कहते हैं, "प्रधानमंत्री मोदी को लगेगा कि टेक्टोनिक प्लेटों के बदलने से (shifting tectonic plates) क्षेत्रीय शक्ति संतुलन बदल गया है और इससे उनकी सरकारों की आंतरिक स्थिरता को खतरा है। मोदी को भारत के सामने आने वाले नए भू-राजनीतिक अवसरों को भुनाने और दिल्ली की क्षेत्रीय भागीदारी पर कई पारंपरिक बाधाओं को दूर करने के लिए बहुत अधिक कूटनीतिक कौशल और यहां तक कि अधिक उद्देश्यपूर्ण नीतियों की आवश्यकता होगी"|[21]

भू-राजनीतिक परिदृश्य में भारतीय प्रधानमंत्री की ईरान यात्रा बहुत महत्वपूर्ण है। इसने भारत-ईरान संबंधों को गति प्रदान की, जिससे वे एक नई ऊंचाई पर पहुंच गए। ईरान का चाबहार बंदरगाह अब भारत को मध्य एशिया और यूरोप के लिए प्रवेश द्वार प्रदान कर सकता है, जो भारत की 'कनेक्ट सेंट्रल एशिया' (Connect Central Asia) नीति को भी पुनर्जीवित करता है।[22] हालांकि, चाबहार बंदरगाह समझौता भारत-ईरान वार्ता का केंद्रबिंदु था, और इसे ईरानी राष्ट्रपति रूहानी ने 'रणनीतिक' बताया था क्योंकि "चाबहार बंदरगाह भारत और अफगानिस्तान, मध्य एशिया, काकेशस और पूर्वी यूरोप के बीच संपर्क बिंदु है"। यदि व्यापार इस बंदरगाह के माध्यम से होता है, तो यूरिया और सूखे मेवे के आयात की लागत में काफी कमी आ सकती है, साथ ही तेल आयात की लागत में भी कमी आ सकती है ("चाबहार के साथ दांव बढ़ाना," 2016)। भारत ने चाबहार में एलएनजी प्लांट, गैस क्रैकर और एलपीजी निष्कर्षण इकाई स्थापित करने में भी अपनी रुचि व्यक्त की है।[23]

एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र जहां भारत मध्य एशिया में अपनी छवि और प्रभाव को मजबूत करने के लिए अपने समृद्ध सॉफ्ट पावर संसाधनों (rich Soft Power resources) का लाभ उठा सकता है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारत को एक प्राचीन सभ्यता और शिक्षा केंद्र के रूप में पेश करना। शिक्षा हमेशा भारत की सॉफ्ट पावर पहुंच को बढ़ाने में महत्वपूर्ण कारक रही है। इसका उपयोग राष्ट्र की सांस्कृतिक कूटनीति, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और आर्थिक प्रगति को बेहतर बनाने के लिए किया जाता है।' इसके अलावा 'शिक्षा विदेशी संस्कृतियों और भाषाओं के ज्ञान में सुधार करके देशों के बीच अधिक समझ को बढ़ावा देने में भी मदद करती है, इस प्रकार वैश्विक मंच पर भारत की उपस्थिति को मजबूत करती है'|[24] कजाकिस्तान के संदर्भ में, फार्मा शिक्षा और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए दक्षिण कजाकिस्तान मेडिकल अकादमी, शिमकेंट (Shymkent), कजाकिस्तान और जेएसएस अकादमी ऑफ हायर एजुकेशन एंड रिसर्च, मैसूर के बीच नवंबर 2022 में समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए। हालाँकि, अकादमिक सहयोग

की प्रमुख विशेषताएं जो विदेशी संस्थानों को 'ट्विन डिग्री, संयुक्त डिग्री और दोहरी डिग्री कार्यक्रम (Twin Degree, Joint Degree and Dual Degree Programmes) प्रदान करती हैं, उनका उद्देश्य अच्छा प्रदर्शन करने वाले भारतीय विश्वविद्यालयों और शीर्ष रैंक वाले विदेशी उच्च शिक्षण संस्थानों के बीच सार्थक अकादमिक सहयोग का मार्ग प्रशस्त करना है।'[25]

मध्य एशियाई क्षेत्र में भारत के लिए चुनौतियाँ

जब हम भारत और मध्य एशिया संबंधों में चुनौतियों के बारे में बात करते हैं तो यह देखना ज़रूरी है कि 'मुख्य चुनौतियाँ भौगोलिक, न्यू ग्रेट गेम, चीन का प्रभाव और रूस की बड़े भाई की भूमिका' हैं। रोहित उन्नीकृष्णन ने चर्चा की 'भारत को मध्य एशिया में अपनी सीमाओं को भी पहचानना चाहिए। इसमें भौगोलिक पहुँच की कमी है। अगर भारत को इस क्षेत्र में विस्तार करने के लिए जगह देनी है तो आंतरिक विकास भी उतना ही महत्वपूर्ण है'।[26] 'भारत के लिए तेज़ी से बदलते मध्य एशिया के साथ फिर से जुड़ने का समय आ गया है, जो दुनिया का ध्यान तेज़ी से आकर्षित कर रहा है और सुरक्षा और ऊर्जा के मामले में महाशक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता बढ़ रही है'।[27]

OBR (One Belt One Road) परियोजना जिसे बाद में BRI (Belt and Road Initiative) कहा गया, 'चीन के लिए भू-राजनीति में अपनी एक बड़ी भूमिका स्थापित करने का एक तरीका है, खासकर ऐसे क्षेत्र में जिसे वह अपना "रणनीतिक आधार ("strategic backyard")" मानता है। यह 'चीन के व्यापार मार्गों का विस्तार करने और मलक्का जलडमरूमध्य (Straits of Malacca) तथा समुद्री मार्गो पर अपनी निर्भरता कम करने के साथ-साथ मुख्य भूमि यूरोप के साथ एक मजबूत जमीनी संपर्क' का भी एक तरीका है।[28] हालांकि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'गैर-टकराव और उम्मीद के माध्यम से चीन के वर्चस्व को पेश करने के तरीके के रूप में, ओबीओआर (OBOR) बहुत प्रभावी है'।[29] चीन पहले से ही मध्य एशियाई देशों का एक प्रमुख व्यापारिक साझेदार है, और चीनी निवेश का उपयोग इसके बुनियादी ढांचे की कमी को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। यह चीन की "गो वेस्ट" नीति ("Go West" policy) का एक विस्तार है, जिसका उद्देश्य इसके विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना और पूरे क्षेत्र में अपने प्रचुर संसाधनों को फिर से आवंटित करना है, जिससे यह अपनी अर्थव्यवस्था के साथ और अधिक निकटता से एकीकृत हो सके'।[30]

यह सच है कि 'अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में कोई स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होता'। कजाकिस्तान के नज़रबायेव विश्वविद्यालय में अपने भाषण में, प्रधानमंत्री मोदी ने 'विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने में मध्य एशिया की भूमिका' पर जोर दिया। 'मध्य एशिया के लिए सबसे छोटा रास्ता पाकिस्तान से होकर जाता है, और यह दोनों देशों के बीच सहयोग या तनाव बढ़ने का कारण हो सकता है। दोनों देशों को एससीओ (SCO) की सदस्यता के लिए मंजूरी दी गई है, और यह एक ऐसा रास्ता है जहाँ सहयोग संभव हो सकता है'।[31]

ए. सी. राजा मोहन ने 'मध्य एशिया में भारत की भूमिका पर निरंतर सीमाओं को दूर करने के लिए एक दीर्घकालिक रणनीति' की ओर इशारा किया है। उनमें से एक इस क्षेत्र में भौतिक संपर्क की कमी है। बंदरगाह के बुनियादी ढांचे और आंतरिक एशिया के लिए परिवहन गलियारे के विकास पर ईरान के साथ दिल्ली की हालिया भागीदारी महत्वपूर्ण पहला कदम है'।[32]

जैसा कि पी स्टोबदान कनेक्टिविटी के संदर्भ में ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जबकि ईरान और अफगानिस्तान के माध्यम से भूमि मार्ग या अंतर्राष्ट्रीय उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारा महत्वपूर्ण कार्य हैं, यूरेशिया के लिए कोई भी कनेक्टिविटी तार्किक रूप से भारत के उत्तरी भागों के माध्यम से पारंपरिक भारत-मध्य एशिया मार्ग के साथ अधिक सीधे संभव है जो हिमालय के दर्रों और झिंजियांग स्टेप्स को पार करती है। यूरेशिया तक पहुंच बनाकर, भारत चीन सहित अपने उत्तरी पड़ोसियों के साथ क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण की कोशिश कर सकता है। वास्तव में, यह एकमात्र वास्तविक रूप से संभव विकल्प हो सकता है जिस पर अमल किया जा सकता है'।[33]

यह देखना भी जरूरी है कि 'शंघाई सहयोग संगठन (SCO) की सदस्यता भारत के लिए बहुत अच्छा अवसर प्रस्तुत करती है। यह मध्य एशियाई क्षेत्र में अपनी स्थिति मजबूत करने की दिशा में भारत द्वारा उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम था। इसके अलावा, 'भारत ने क्षेत्र में व्यापार और आर्थिक कूटनीति को बढ़ावा देने के लिए "भारत-मध्य एशिया व्यापार परिषद (ICABC)" की शुरुआत की। इस प्रकार, भारत इस क्षेत्र के साथ एक मजबूत और दीर्घकालिक संबंध बनाने के लिए परिवहन, कृषि, सूचना प्रौद्योगिकी और सैन्य प्रशिक्षण के क्षेत्र में सहायता प्रदान करके उनके साथ जुड़ रहा है। अफगानिस्तान से अमेरिकी सैनिकों की वापसी और अफगान में तालिबान के पुनरुत्थान का सीधा असर मध्य एशियाई देशों की शांति और स्थिरता पर पड़ेगा, जिसका भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी असर पड़ेगा। दूसरी ओर, चीन अपनी अर्थव्यवस्था के साथ मध्य एशियाई क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाने की कोशिश कर रहा है'।[34]

अयजाज वानी ने अपने लेख में कहा, 'भारत ने अपने कूटनीतिक संबंधों और बौद्धिक पूंजी को मजबूत किया है, साथ ही कनेक्टिविटी, आतंकवाद निरोध और अफगानिस्तान पर एक प्रगतिशील एजेंडे की वकालत भी की है। कई पश्चिमी विद्वानों द्वारा एससीओ (SCO) को चीन द्वारा निर्मित और चीन के प्रभुत्व वाला समूह करार दिए जाने के बावजूद, भारत की अध्यक्षता ने देश के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त करने और सभी एससीओ सदस्य देशों के लिए एक रचनात्मक, विश्वसनीय और भरोसेमंद भागीदार के रूप में खुद को स्थापित करने के लिए एक अमूल्य मंच के रूप में कार्य किया।'[35]

'ईरान भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है - भू-रणनीतिक रूप से अफगानिस्तान में प्रवेश के संदर्भ में और भारत की ऊर्जा निर्भरता के कारण। ईरान पर पश्चिमी प्रतिबंधों और ईरान के साथ अपने संबंधों की समीक्षा करने के लिए भारत पर दबाव के साथ समुद्र के नीचे प्राकृतिक गैस (subsea natural gas pipeline) पाइपलाइन को बहुत कम वित्तपोषक (financers) मिलेंगे। हालाँकि, भारत को ईरान के साथ स्वतंत्र संबंध विकसित करने और बनाए रखने की आवश्यकता है और यदि अवसर मिले तो प्राकृतिक गैस पाइपलाइन के विकल्प का लाभ उठाना चाहिए'।[36] हमें मध्य एशियाई क्षेत्र से निपटने के लिए एक सक्रिय दृष्टिकोण की आवश्यकता है और भारत ने द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मंचों पर पहले ही इसकी शुरुआत कर दी है।

संदर्भ सूची

1. Ivan Campbell. (2013). *India's role and interests in Central Asia*. SAFERWORLD. www.saferworld.org.uk/downloads/.../indias-role-and-interests-in-central-asia.pdf
2. Freire, M. R., & Kanet, R. E. (2010). *Key players and regional dynamics in Eurasia*. Springer. http://link.springer.com/book/10.1057/9780230290754
3. Patnaik, A. (1995). *Commonwealth of Independent States: Problems and prospects*. Konark Publishers.
4. Hiro, D. (2011). *Inside Central Asia: A Political and Cultural History of Uzbekistan, Turkmenistan, Kazakhstan, Kyrgyz stan, Tajikistan, Turkey, and Iran*. The Overlook Press.
5. Levitin, L. I. (2001). *Uzbekistan on a Historical Threshold: Critical Observations by a Supporter of President Karimov*. Granta Ed.
6. Kort, M. (2004). *Central Asian Republics*. Facts On File.
7. Alam, M. M. (2005). *Central Asia: Present challenges and future prospects*. Knowledge World.
8. Athar Zafar. (2015). *India-Central Asia: Finding New Synergies for Greater Engagement*. ICWA, New Delhi. www.icwa.in/pdfs/PB/2014/IndiaCentralAsiaPB09072015.pd
9. Stobdan, P. (2016). India and Central Asia: Untying the Energy Knot. *Strategic Analysis*, *40*(1), 14–25.
10. Eelke P. Kraak. (2012, April 9). The Geopolitics of Hydropower in Central Asia: The Syr Darya. *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/geopolitics-hydropower-central-asia-syr-darya/
11. P. Stobdan. (2015, May 7). Central Asia: Back in India's sight. *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/central-asia-back-into-indias-lens/
12. ORF. India-Central Asia relations: Expanding vistas of partnership. *ORF*. Retrieved *June 22, 2016*, from https://www.orfonline.org/expert-speak/india-central-asia-relations-expanding-vistas-of-partnership
13. ORF. India-Central Asia relations: Expanding vistas of partnership. *ORF*. Retrieved *June 22, 2016*, from https://www.orfonline.org/expert-speak/india-central-asia-relations-expanding-vistas-of-partnership

14. Kavalski, E. (2009). *India and Central Asia: The International Relations of a Rising Power*. IB Tauris.
15. Bhandari, A. (2015). Prime Minister Modi in Central Asia. (2015, July 24). *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/prime-minister-modi-in-central-asia/
16. Stobdan, P. (2016). India and Central Asia: Untying the Energy Knot. *Strategic Analysis*, *40*(1), 14–25.
17. Bhandari, A. (2015). Prime Minister Modi in Central Asia. (2015, July 24). *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/prime-minister-modi-in-central-asia/
18. Stobdan, P. (2016). India and Central Asia: Untying the Energy Knot. *Strategic Analysis*, *40*(1), 14–25.
19. Stobdan, P. (2016). India and Central Asia: Untying the Energy Knot. *Strategic Analysis*, *40*(1), 14–25.
20. C.Raja Mohan. (2015). *A passage to inner Asia | ORF*. Retrieved Jul 06, 2015, from http://www.orfonline.org/research/a-passage-to-inner-asia/
21. Vaid, M. (2016). Chabahar pact: A potential game changer. *ORF*. Retrieved Jun 07, 2016, from http://www.orfonline.org/research/chabahar-pact-a-potential-game-changer/
22. Vaid, M. (2016). Chabahar pact: A potential game changer. *ORF*. Retrieved Jun 07, 2016, from http://www.orfonline.org/research/chabahar-pact-a-potential-game-changer/
23. Kakimzhanov, A. (2023). INDIA'S SOFT POWER OUTREACH STRATEGY: CULTIVATING ITS CULTURAL INFLUENCE IN CENTRAL ASIA (THE CASE OF KAZAKHSTAN). *CENTRAL ASIA'S AFFAIRS*, *1*(89). https://journal-caa.kisi.kz/index.php/caa/article/view/111
24. Kakimzhanov, A. (2023). INDIA'S SOFT POWER OUTREACH STRATEGY: CULTIVATING ITS CULTURAL INFLUENCE IN CENTRAL ASIA (THE CASE OF KAZAKHSTAN). *CENTRAL ASIA'S AFFAIRS*, *1*(89). https://journal-caa.kisi.kz/index.php/caa/article/view/111
25. Gokran, K. (2015). Evolving geopolitics in Eurasia: Implications for India. (n.d.). *ORF*. Retrieved Jul 27, 2015, from http://www.orfonline.org/research/evolving-geopolitics-in-eurasia-implications-for-india/

26. P. Stobdan. (2015, May 7). Central Asia: Back in India's sight. *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/central-asia-back-into-indias-lens/
27. McDermott, R. N. (2012). The Shanghai Cooperation Organization's Impact on Central Asian Security. *Problems of Post-Communism*, *59*(4), 56–65. https://doi.org/10.2753//PPC1075-8216590405
28. Gokran, K. (2015). Evolving geopolitics in Eurasia: Implications for India. (n.d.). *ORF*. Retrieved Jul 27, 2015, from http://www.orfonline.org/research/evolving-geopolitics-in-eurasia-implications-for-india/
29. Gokran, K. (2015). Evolving geopolitics in Eurasia: Implications for India. (n.d.). *ORF*. Retrieved Jul 27, 2015, from http://www.orfonline.org/research/evolving-geopolitics-in-eurasia-implications-for-india/
30. Gokran, K. (2015). Evolving geopolitics in Eurasia: Implications for India. (n.d.). *ORF*. Retrieved Jul 27, 2015, from http://www.orfonline.org/research/evolving-geopolitics-in-eurasia-implications-for-india/
31. C.Raja Mohan. (2015). *A passage to inner Asia* | *ORF*. Retrieved Jul 06, 2015, from http://www.orfonline.org/research/a-passage-to-inner-asia/
32. P. Stobdan. (2015, May 7). Central Asia: Back in India's sight. *Gateway House*. http://www.gatewayhouse.in/central-asia-back-into-indias-lens/
33. Singh, S., & Rani, N. (2022). Geopolitics in Central Asian Region: Implications for India. *INDIAN STUDIES REVIEW*, 115.
34. Ayjaz, W. (2023). *SCO under India's presidency*. Orfonline.Org. Retrieved January 10, 2024, from https://www.orfonline.org/expert-speak/sco-under-indias-presidency
35. Khan, A., Singh, S., Singh, B., & Kaur, A. (2023). Eurasia Factor in India's Energy Diplomacy: Paradigmatic Shifts in Corridor Approach to Connectivity. In A. Khan, S. Singh, B. Singh, & A. Kaur (Eds.), *India's Energy Diplomacy in Eurasia: Geopolitical and Geo-economic Perspectives* (pp. 141–177). Springer Nature. https://doi.org/10.1007/978-981-99-8281-3_4

21

कला-समन्वित शिक्षा में आत्म-पहचान की अनिवार्यता

सुस्मिता लख्यानी
आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
शिवम लूथरा
व्याख्याता, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार

समकालीन दुनिया तेजी से बदल रही है, इसलिए शिक्षा-प्रणाली को सुधारना आवश्यक है। जिससे शिक्षकों को 21 वीं सदी के कौशल जैसे- रचनात्मकता, समस्या-समाधान और सहयोग के लिए तैयार किया जा सकेगा। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा की उन प्रणालियों पर जोर दिया जाता है जो अंतःविषयी और बहु-विषयक परिभाषित विशेषताओं को शामिल करते हैं। आवश्यकता समकालीन युग के लिए प्रासंगिक चुनौतियों और चिंताओं की अंतर्निहित विशेषताओं से उभरती है क्योंकि उसे एक विलक्षण, अनुशासन या संदर्भ के भीतर वर्गीकृत करना जटिल साबित होता है। यथार्थ पर टिकी चुनौतियां स्वाभाविक रूप से जटिल हैं, जिन्हें समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों और पद्धतियों से अन्वेषण की आवश्यकता पड़ती है। एक प्रमुख दृष्टिकोण, जो समकालीन शैक्षणिक विमर्श में सक्षम और मान्यता प्राप्त है वह है-कला-समन्वित शिक्षा । यह दृष्टिकोण न केवल शिक्षार्थियों को संलग्न करने और प्रेरित करने का कार्य करता है बल्कि उनकी विविध आवश्यकताओं को संबोधित करके और विभिन्न शिक्षण शैलियों को समायोजित करके उनके समग्र विकास को भी बढ़ावा देता है।

कला-समन्वय एक अंतः विषयक शैक्षणिक दृष्टिकोण है जिसमें विविध विषयों की अवधारणाओं को समझने के लिए कला और संस्कृति के विभिन्न अवयवों का उपयोग किया जाता है (एनईपी 2020, पृ.18)। कला-समन्वित शिक्षा, शिक्षकों और शिक्षार्थियों दोनों को, जुड़ाव के विभिन्न अवसर प्रदान करती है। इसके अलावा, यह छात्रों को कई रूपों में अपनी जिज्ञासा, निरीक्षण और रचना व्यक्त करने में मदद करती है (एनसीएफएसई 2023, पृ. 357)। यह दृष्टिकोण शिक्षार्थियों को विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्तियों के बीच अपनी आलोचनात्मक सोच और सहकार्यमकता को बढ़ावा देते हुए अपनी सहभागिता बढ़ाने के अवसर प्रदान करता है जिससे विविध दृष्टिकोण पैदा होते है।

बहरहाल, कला-समन्वित शिक्षा के कार्यान्वयन के बारे में महत्वपूर्ण आशंकाएं मौजूद हैं, विशेष रूप से विभिन्न विद्यालयी शैक्षणिक स्तरों पर। समकालीन चुनौती उन शिक्षकों के बीच कला शिक्षा के बारे में 'अपर्याप्त जागरूकता' में निहित है जो विद्यालयी व्यवस्था के भीतर विभिन्न पाठ्यक्रम विषयों को पढ़ाते हैं। इस स्थिति को कई पूर्वकल्पित धारणाएं बढ़ावा देती है जो शिक्षक कला-शिक्षा के बारे में रखते हैं जिसके परिणामस्वरूप बाद में कला-शिक्षा और कला-समन्वित शिक्षा दोनों के बारे में कई पूर्वधारणाएं एवं कु-धारणाएं उजागर होती हैं। फलस्वरूप, कला-शिक्षा और कला-समन्वित शिक्षण-प्रशिक्षण एवं उनके अभिविन्यास के विभिन्न स्तरों में सशक्त बदलाव लाए जाने की आवश्यकता है। (कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच पर राष्ट्रीय फोकस समूह, 2005, पृ. 03)।

विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में शामिल विविध हितधारकों के बीच कला-समन्वित शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक दक्षताओं की उन्नति से संबंधित जागरूकता का संज्ञान होना महत्वपूर्ण है।

कला, कला शिक्षा और कला एकीकरण

कला को एक व्यवस्थित प्रक्रिया के रूप में अवधारणाबद्ध किया जा सकता है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी कल्पनाशील रचनाओं और विचारों को वास्तविकता के मूर्त रूपों में प्रकट करते हैं। कल्पनाशील दृष्टि वह शक्ति है जो कला से संबंधित सभी घटकों को एकजुट करती है और जो उनको अपनी सारी विविधता के बाबजूद उन्हें एक करती है (ड्यूवी, 2008)। हालांकि, कला के बारे में कई तरह की गलत धारणाएं बनी रहती हैं जिसमें यह धारणा भी शामिल है कि कला को बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं है; कला के संदर्भ को केवल सुंदरता तक सीमित करना अक्सर एक रूढ़िवादी समझ तक सीमित होता है जो समरूपता और आनुपातिकता जैसे सौंदर्यवादी रूप से मनभावन भौतिक विशेषताओं पर जोर देता है; और यह कि किसी वस्तु या अवधारणा की नकल कला का गठन करती है। हालांकि, कला की अवधारणा मे इन सभी विलक्षण परिप्रेक्ष्य से बहुत अधिक शामिल है। कला को समझना अस्तित्व के विभिन्न अन्य पहलुओं को समझने की प्रक्रिया के समानांतर है। इसके लिए जांच की प्रक्रिया और ज्ञान के अधिग्रहण की आवश्यकता होती है। सीखने की कोई सीमा नहीं है; सीखना एक जीवन भर की प्रक्रिया है (सेलेज़ एंड मावुली, 2014)। यही बात कला- शिक्षा मे भी है। जैसा कि लोवेनफेल्ड (1957) का उल्लेख है, बचपन के शुरुआती वर्षों में शुरू की गई कला-शिक्षा का मतलब एक लचीले, रचनात्मक इंसान और एक ऐसे इंसान के बीच का अंतर हो सकता है जो सब कुछ सीखने और ज्ञान के बावजूद, इस ज्ञान का प्रयोग करने में असक्षम हो। शुरुआती कला शिक्षा के अभाव से व्यक्ति में आंतरिक संसाधनों की कमी एवं पर्यावरण के साथ कमज़ोर रिश्ता देखा जा सकता है (लोवेनफेल्ड, 1957, पृ. 03)।

कला शिक्षा को कलात्मक सिद्धांतों और तत्वों के शिक्षण और सीखने पर केंद्रित एक शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है, जो कला के व्याकरण प्रयोग के माध्यम से अभिव्यंजक क्षमताओं के विकास की सुविधा प्रदान करता है।

हालांकि गलत धारणाएं अक्सर कला शिक्षा की प्रकृति और उद्देश्यों की समझ को धूमिल कर देती है। उपरोक्त गलत धारणाएं, जो अपर्याप्त समझ से उपजी हैं, अक्सर कला शिक्षा की प्रगति और इसके उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा डालती हैं।

शिक्षा के लगभग प्रत्येक प्रारूप में कला शिक्षा पर बल दिया गया है परंतु वस्तुस्थिति यह है कि विद्यालयों, शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यालय प्रबंधकों सभी के द्वारा कला को गौण स्थान दिया जाता है, जबकि विद्यार्थी कला संबंधी गतिविधियों में अत्यधिक रुचि रखते हैं (कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच पर राष्ट्रीय फोकस समूह, 2005. पृष्ठ 03)। कला के संदर्भ में प्रचलित गलत धारणाएं कला शिक्षा की समझ और कार्यान्वयन के बारे में गहरी चिंताओं को जन्म देती है। यह कुप्रभाव इसी तरह कला-समन्वय शिक्षा की समझ और कार्यान्वयन पर भी होता है। कला शिक्षा में मौलिक सिद्धांतों और कला के तत्वों के निर्देश शामिल हैं, जबकि कला-समन्वित शिक्षा कला के दायरे से परे विभिन्न पाठ्यक्रम क्षेत्रों और विषयों की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के भीतर नियोजित एक शैक्षणिक रणनीति के रूप में कार्य करती है। कला-समन्वित शिक्षा की अवधारणा में विविध अनुभवात्मक दृष्टिकोणों और पद्धतियों के

माध्यम से विभिन्न विषयों के साथ एक लचीला समावेशन शामिल है। यह दृष्टिकोण न केवल पढ़ाए जा रहे विषय के लिए विशिष्ट कौशल के विकास को बढ़ावा देता है बल्कि शिक्षार्थियों को उनके संज्ञानात्मक, मनोप्रेरक, और भावात्मक ज्ञानक्षेत्र को बढ़ाने के अवसर भी प्रदान करता है। यह 'अंतिम उत्पाद' पर ध्यान केंद्रित करने की बजाय 'प्रक्रिया' में संलग्न होने के महत्व पर जोर देता है, तथा विभिन्न शिक्षण शैलियों को भी समायोजित करता है। कला-एकीकरण को अक्सर कला के उपयोग के संदर्भ में केवल शिक्षण और अधिगम में अभिवृद्धि के लिए गलत समझा जाता है (लियाओ, 2016)। दुर्भाग्य से, जब कला एकीकरण को इस तरह से गलत समझा जाता है, तो कला के महत्व को अक्सर कक्षा प्रक्रिया में संकुचित कर दिया जाता है (लाजेविक, 2013)।

कला-समन्वित शिक्षा की प्रभावोत्पादकता इसके प्रभावी कार्यान्वयन पर निर्भर है, जो शिक्षार्थियों की सहभागिता को इस तरह से संभव बनाता है जो उनके दिमाग, शरीर और दिल पर सकारात्मक प्रभाव कर सके। प्रक्रिया के साथ यह व्यापक जुड़ाव उनकी अवलोकन- क्षमताओं, कल्पना-क्षमताओं और आलोचनात्मक सोच कौशल बढ़ाने को शामिल करता है। इसके अलावा, यह शिक्षार्थियों को व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करने और इस संघर्ष से उपलब्धि की सुविधा प्रदान करता है। विभिन्न विषयों के शिक्षण और सीखने में कला-समन्वित शिक्षा को नियोजित करने की प्रक्रिया के लिए केंद्रीय कला के साथ पहचान की अवधारणा है। यह पहचान न केवल कला की बारीकियों को समझने के लिए बल्कि कलात्मक प्रक्रिया को उसके शुद्धतम रूप में संलग्न करने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

कला के साथ पहचान

कला में एक व्यापक जुड़ाव शामिल है जो मानव अनुभव के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आयामों को एकीकृत करता है। कला का यह रूप आत्म-पहचान की प्रक्रिया के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जिसमें एक व्यक्ति एक गहन संबंध की स्थापना के माध्यम से कला के साथ एकता की स्थिति प्राप्त करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह एक तथ्य है कि हम जो चीजें करते हैं उसके साथ आत्म-पहचान आवश्यक है (लोवेनफेल्ड 1957)। यह आधार कला शिक्षा और कला-समन्वित शिक्षा दोनों के लिए भी सही है। कला को समझना कला के साथ एकात्म पहचान की आवश्यकता का नाम है, क्योंकि कलात्मक अभिव्यक्ति मौलिक रूप से अपने अनुभवों और नियोजित माध्यमों के साथ व्यक्ति की आत्म-पहचान पर निर्भर करती है। कला-समन्वित शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए कला के साथ गहरा संबंध स्थापित करना आवश्यक है। इसके अलावा, कला-समन्वित शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए, किसी को न केवल कला के साथ बल्कि उस अवधारणा के साथ भी पहचान की आवश्यकता होती है जिसे कला के माध्यम से पढ़ाया जा रहा है; पूरी प्रक्रिया में शामिल सामग्री, जिसे शिक्षक द्वारा चुना जाना ज़रूरी है, जिसके लिए उसे शिक्षार्थियों की उम्र, जरूरतों, पृष्ठभूमि और अनुभवों के साथ पहचान की आवश्यकता होती है। हालांकि, यह प्रपत्र केवल कला-समन्वित शिक्षा के लिए कला के साथ आत्म-पहचान को समझने पर केंद्रित है।

प्रारंभ में, कला के साथ आत्म-पहचान के अर्थ का पता लगाना महत्वपूर्ण है। पहचान एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक मौलिक आयाम है। एक आवश्यक घटक जो किसी व्यक्ति की पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देता है, वह अनुभव है, विशेष रूप से दुनिया के साथ जुड़ाव के माध्यम से प्राप्त अनुभव। फिर भी, सभी अनुभव व्यक्तियों के लिए महत्व नहीं रखते हैं। किसी अनुभव के महत्वपूर्ण माने जाने के लिए, अक्सर व्यक्ति के जीवन पर उसके स्थायी प्रभाव की आवश्यकता होती है। यह प्रभाव व्यक्तिगत, भावनात्मक या परिवर्तनकारी आयामों सहित विभिन्न रूपों

में प्रकट हो सकता है। निहितार्थ के बावजूद, ऐसी किसी भी घटना के लिए आवश्यक एक मौलिक घटक अनुभव के साथ व्यक्ति की व्यापक सहभागिता है। एक महत्वपूर्ण प्रासंगिकत अनुभव, जो गहरी सहभागिता को बढ़ावा देता है, एक व्यक्ति को उस विशेष अनुभव के साथ अपनी आत्म-पहचान को संरेखित करने के लिए बाध्य करता है। आत्म-पहचान एक गतिशील विज्ञान है जो बच्चे की रचनात्मक आवश्यकताओं के साथ सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों की समझ को विकसित करता है (लोवेनफेल्ड 1957) नतीजतन, शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वे कला के साथ अपनी आत्म-पहचान को सम्भव बनाने के लिए बच्चे के विकास के इन पहलुओं को ध्यान में रखें।

आत्म-पहचान में योगदान करने वाले अनुभव एक बच्चे की रचनात्मक आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए आवश्यक हैं। नतीजतन, शिक्षकों के लिए इन रचनात्मक आवश्यकताओं की व्यापक समझ विकसित करना अनिवार्य है, जो अंततः शैक्षिक पाठ्यक्रम में कला के सफल एकीकरण को संभव बनाएंगे। इसके उपरांत, इस समझ का उद्देश्य कक्षा के भीतर सभी छात्रों के संज्ञानात्मक, मनोचिकित्सक और भावनात्मक ज्ञानक्षेत्र के बारे में जागरूकता पैदा करना है, जिससे कला-समन्वित शिक्षा के विकास और कार्यान्वयन की सुविधा मिलती है। इसलिए कला-समन्वित शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए एक अनुरूप दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है।

शिक्षक की भूमिका कला-समन्वित शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए शिक्षार्थियों की रचनात्मक आवश्यकताओं को पहचानने से कहीं अधिक है। शिक्षक की भूमिका एक बाल-केंद्रित वातावरण/दृष्टिकोण को बढ़ावा देने की है जिसमें बच्चे एक पर्याप्त और सूक्ष्म अनुभव में संलग्न हो सकतें है। यह वातावरण संबंधित कला गतिविधियों को खोज के माध्यम से व्यक्तिगत आधार पर कलात्मक प्रक्रिया से अर्थ प्राप्त करने में मदद करता हैं। कला-समन्वित शिक्षा के लिए एक आवश्यक घटक बालक की अभिव्यक्ति है जिसमें वह भय से रहित स्वतंत्रता की भावना का अनुभव करता है, जिससे समग्र विकास को बढ़ावा मिलता है। तदनुसार, शिक्षक के लिए एक अनुकूलित रणनीति तैयार करना आवश्यक है जो की न केवल बच्चे की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखे, बल्कि एक ऐसे वातावरण को भी सृजित करे जिसमें बच्चे अपने विचारों और भावनाओं को बिना किसी आशंका के व्यक्त कर सकें। इस प्रकार का वातावरण एक ऐसा सन्दर्भ विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है जिसमें बच्चे उन्हें दी जाने वाली कला के साथ आत्म-पहचान में संलग्न होने में सक्षम हों।

आइए, अब हम उन सभी बातों को संश्लेषित करने का प्रयास करें जिन्हें हमने अब तक समझा है। कला-समन्वित शिक्षा को एक अत्यधिक प्रभावी शैक्षणिक दृष्टिकोण माना जाता है जो 21 वीं सदी में शिक्षार्थियों की विविध आवश्यकताओं को संबोधित करती है। तथापि, कला शिक्षा को अक्सर विद्यालयी शिक्षा के व्यापक ढांचे के भीतर एक अधीनस्थ घटक माना जाता है। नतीजतन, कला-समन्वित शिक्षा का कार्यान्वयन शिक्षण और सीखने के आदान-प्रदान के संदर्भ में अप्रभावी रहता है। कला-समन्वित शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए कला के साथ गहन पहचान की आवश्यकता होती है, जो कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ आंतरिक एकता का अनुभव देती है। कला के साथ एक बच्चे की आत्म-पहचान को संभव बनाने के लिए एक शिक्षक के लिए बच्चे की व्यापक आवश्यकताओं को संबोधित करना आवश्यक है। साथ ही साथ, बच्चे को कला के साथ सीधे जुड़ाव के माध्यम से कलात्मक प्रक्रिया से अर्थ प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना भी आवश्यक है। आइए, अब हम चर्चा करें कि कला-समन्वित शिक्षा को इस तरह से कैसे लागू किया जा सकता है जो प्रभावी रूप से कला के साथ शिक्षार्थियों

को आत्मसातीकरण की सुविधा प्रदान करें, एवं जिससे कलात्मक जुड़ाव के द्वारा उनके शैक्षिक अनुभवों को भी बढ़ाया जा सके।

एक आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में हम भिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से कला-समन्वित शिक्षा के कार्यान्वयन का निरीक्षण कर सकते हैं। इसमें पाठ्यपुस्तक या श्यामपट्ट से वैज्ञानिक आरेख का पुनरुत्पादन शामिल हो सकता है; गणित में एक ज्यामितीय आकृति का चित्रण या ओरिगामी पेपर जैसी कलात्मक सामग्री का उपयोग करके गणितीय सूत्र की व्यावहारिक व्युत्पत्ति; विभिन्न भौगोलिक स्थानों या संरचनाओं के प्रयोग से एक मानचित्र का निर्माण; साहित्य कक्षाओं में किसी विशेष विषय पर एक पोस्टर का विकास, उदाहरण के लिए, जल संरक्षण, और इसी तरह की अन्य गतिविधियां कला-समन्वय शिक्षा के द्वारा कराई जा सकती है। तथापि, समकालीन कक्षाओं मे इन कला-समन्वित गतिविधियों में अंतर्निहित मौलिक आधार बनाया जाता है जहां कला को केवल एक अनुकरणीय प्रयास के रूप में माना जाता है। यह परिप्रेक्ष्य कला और कला-समन्वित शिक्षा दोनों की प्रभाव उत्पादकता को कम करता है क्योंकि शिक्षार्थी इसमें शामिल कलात्मक अभिव्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने में विफल रहते हैं। नतीजतन, व्यक्ति खुद को कला की सराहना करने में असमर्थ पा सकते हैं क्योंकि ऐसा करने की क्षमता के लिए कलाकृति के साथ संबंध और/या इसके निर्माण में शामिल रचनात्मक प्रक्रिया की समझ की आवश्यकता होती है।

पहचान के माध्यम से कार्यान्वयन

आत्म-पहचान की अनुपस्थिति कला-समन्वित शिक्षा को मौलिक रूप से लागू करने के किसी भी प्रयास को अक्षम कर देती है। इसे समझने के लिए, आइए एक विशिष्ट उदाहरण पर विचार करें। विज्ञान विषय के माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम के भीतर संबोधित महत्वपूर्ण विषयों में से एक विद्युत है जिसमें शिक्षार्थी विभिन्न वैज्ञानिक प्रतीकों का उपयोग करके विद्युत परिपथ का निर्माण करना सीखते हैं। यद्यपि कोई यह गलत दावा कर सकता है कि यह विज्ञान विषय के भीतर चित्रकला के समावेश के कारण एक कला-समन्वित शिक्षा का गठन करता है, परंतु व्यावहारिक परिदृश्यों में विद्युत परिपथ बनाने और विद्युत से संबंधित कार्यों को निष्पादित करने के लिए व्यक्तियों को तैयार करने में इस दृष्टिकोण की प्रभावकारिता, जैसे स्विचबोर्ड में स्विच की स्थापना अथवा विद्युत से चलने वाले उपकरणों का निर्माण करना, जांच का विषय बना हुआ है जिसे महत्वपूर्ण माना गया है। एक अतिरिक्त उदाहरण में वर्षा जल संचयन पर एक पोस्टर तैयार करना शामिल हो सकता है, एक प्रसंग जिसे अक्सर माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रम के भीतर संबोधित किया जाता है। यद्यपि शिक्षार्थी वर्षा जल संचयन के सैद्धांतिक पहलुओं से जुड़ते हैं, लेकिन संपूर्ण समझ के लिए आरेख या पोस्टर के निर्माण से कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं मिलता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पोस्टर का निर्माण करने मात्र से व्यक्ति पोस्टर में बनाए जाने वाले संदर्भ के साथ आत्म-पहचान कर पाए यह निश्चित नहीं होता है। इस घटना को विषय वस्तु के साथ संबंध स्थापित न कर पाने के लिए व्यक्तियों को अक्षम ठहराया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने अपने रोजमर्रा के अनुभवों के संदर्भ में इसका सामना नहीं किया है। इसे सत्यापित करने के लिए, कोई यह देख सकता है कि व्यक्तियों द्वारा उनके वास्तविक जीवन में वर्षा जल को किस हद तक प्रभावी ढंग से संरक्षित किया जाता है।

यद्यपि विद्युत और वर्षा जल संचयन दोनों का शिक्षार्थियों के लिए उनके रोजमर्रा के जीवन में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, लेकिन कला-समन्वित शिक्षा को नियोजित किया गया है या नहीं, जिसमें कला को केवल नकल के रूप में माना जाता है - स्पष्ट रूप से अप्रभावी हैं। यह इस अवलोकन द्वारा प्रदर्शित किया जाता है कि शिक्षार्थी अपने दैनिक जीवन

में इन अवधारणाओं से संलग्न नहीं होते हैं और उनमें इन प्रसंगों से जुड़े कार्यों को निष्पादित करने के लिए आवश्यक कौशल की कमी होती है। ऐसा वास्तविक दुनिया के अनुभवों की अनुपस्थिति के कारण होता है जिसके परिणामस्वरूप रचनात्मकता और प्रभावशीलता दोनों कम हो जाती है।

आइए अब चर्चा करें कि कला-समन्वित शिक्षा का उपयोग करके इन विषयों को कैसे पढ़ाया जा सकता है। कला-समन्वित शिक्षा के माध्यम से विद्युत के बारे में ज्ञान के आदान-प्रदान करने के लिए एक प्रभावी शैक्षणिक पद्धति में 'विद्युत की बचत' विषय पर केंद्रित एक नाट्य प्रस्तुति का विकास शामिल हो सकता है। इस संदर्भ में, शिक्षार्थी बल्ब जैसे साधारण विद्युत उपकरणों के निर्माण में संलग्न होंगे, जो नाटक के प्रदर्शन के भीतर प्रॉप्स के रूप में काम करेंगे। ऐसा करने से शिक्षार्थी विद्युत परिपथों के व्यावहारिक निर्माण में संलग्न होंगे, साथ ही साथ विद्युत संरक्षण की आवश्यकता और तंत्र की समझ प्राप्त करेंगे। इसी तरह, दूसरे उदाहरण में शिक्षार्थियों को वर्षा जल संचयन पर एक पोस्टर बनाने के लिए कहने के बजाय, एक शिक्षक शिक्षार्थियों को उन क्षेत्रों को खोजने के लिए विद्यालय या उनके आसपास के समुदाय की व्यापक खोज करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है जहां पानी या तो बर्बाद हो जाता है या दुर्लभ है। इसके बाद, शिक्षक उन्हें उन पहचाने गए स्थानों में पानी के संरक्षण के लिए विभिन्न रणनीतियों का प्रस्ताव देने के लिए प्रेरित कर सकते हैं, अंततः उन्हें वर्षा जल संचयन प्रणाली से संबंधित अनुभव प्रदान कर सकता है। इसके उपरांत वह वर्षा जल संचयन पर एक पोस्टर तैयार कर सकते हैं। यह प्रक्रिया न केवल जल संरक्षण और उसकी आवश्यकता की समझ की सुविधा प्रदान करेगा, बल्कि वर्षा जल संचयन प्रणालियों की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थानों की पहचान करने की क्षमता भी प्रदान करेगा।

शिक्षार्थियों के साथ प्रतिध्वनित होने वाले संबंधित उदाहरणों का समावेश सहभागिता को बढ़ावा देने और समृद्ध अनुभवों को सुविधाजनक बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण शिक्षार्थियों को कला के साथ आत्म-पहचान करने में सक्षम बनाता है, जिससे कला-समन्वित शिक्षा की प्रभावशीलता में वृद्धि होती है।

21वीं सदी के कौशल जैसे रचनात्मकता, समस्या-समाधान और सहयोग और सहकारिता प्रदान करने के लिए अंतःविषयक और बहु-विषयक शिक्षा आवश्यक है। कला-समन्वित शिक्षा, एक प्रचलित दृष्टिकोण है जो इन आवश्यकताओं को संबोधित करता है और विभिन्न शिक्षण शैलियों से युक्त है; विषयों में अवधारणाओं को प्रदान करता है; विविध शिक्षार्थियों के बीच आवश्यक कौशल को बढ़ावा देता है। बहरहाल, कला-समन्वित शिक्षा का कार्यान्वयन दो कारकों के कारण संशय के घेरे में है। सबसे पहले, कला शिक्षा के बारे में प्रचलित गलत धारणाएं, जैसे कि कला के लिए बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती और सौंदर्य ही कला का मापदंड है, कला की प्रगति में बाधा डालती हैं जिसके कारण कला के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं होती है। दूसरा, कला-समन्वित शिक्षा को उसकी जटिलता के कारण सावधानीपूर्वक समझ और कार्यान्वयन की आवश्यकता होती है। कला-समन्वित शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए शिक्षार्थियों के संज्ञानात्मक, शारीरिक और भावनात्मक संकायों की सहभागिता की आवश्यकता होती है।

कला-समन्वित शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए कला के साथ आत्मसातीकरण महत्वपूर्ण है। कला और कलात्मक प्रक्रिया को समझने के लिए कला के साथ एक व्यक्तिगत संबंध की आवश्यकता होती है। साथ ही, शिक्षकों को विद्यार्थियों की रचनात्मक जरूरतों को स्वीकार करना चाहिए और एक ऐसा वातावरण स्थापित करना चाहिए जो बच्चों को भय के बिना कलात्मक रूप से व्यक्त करने की अनुमति देता हो, जिससे कला के साथ

एकात्मता हो सके। उदाहरण के लिए आत्म-पहचान इस बात पर जोर देती है कि बच्चे कला के साथ सक्रिय रूप से संलग्न हो और इस प्रक्रिया से सार्थकता प्राप्त करें।

समकालीन शैक्षिक वातावरण में आम तौर पर आत्म-पहचान के अवसरों की कमी होती है, जिससे शिक्षार्थियों के कला के अनुभवों में बाधा आती है। शिक्षकों को प्रासंगिक उदाहरणों के माध्यम से व्यावहारिक विषयों को निर्देश देने और शिक्षार्थियों को संलग्न करने, उनकी आत्म-पहचान सुनिश्चित करने और इसकी प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए कला-समन्वित शिक्षा का उसके एकीकृत रूप में उपयोग करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. एनसीईआरटी. (2005). राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र: कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच. नई दिल्ली: एनसीईआरटी.
2. एनसीईआरटी. (2023). नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन. 2023.
3. ड्यूवी, जे. (2008). आर्ट ऐज एक्सपीरियंस. इन द रिचनेस ऑफ आर्ट एजुकेशन (पृष्ठ 33-48). ब्रिल.
4. लिआओ, सी. (2016). फ्रॉम इंटरडिसिप्लिनरी टू ट्रांसडिसिप्लिनरी: एन आर्ट्स-इंटीग्रेटेड अप्रोच टू STEAM एजुकेशन. आर्ट एजुकेशन, 69(6), 44-49.5.
5. लाजेविक, एल. (2013). आर्ट्स इंटीग्रेशन: व्हाट इज रियली हैपनिंग इन द एलीमेंटरी क्लासरूम? जर्नल फॉर लर्निंग थ्रू द आर्ट्स, 9(1), 1-28.
6. लोवेंफेल्ड, वी. (1957). क्रिएटिव एंड मेंटल ग्रोथ (3rd एड.). मैकमिलन.
7. शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मंत्रालय. भारत सरकार, नई दिल्ली.
8. सेलेस, जी. आर., और मावुली, क्यू. (2014). एड्रेसिंग द मिसकन्सेप्शन्स अबाउट आर्ट एंड आर्टिस्ट्स इन घाना. 3(9).

22

दिल्ली विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी: एक अवलोकन

डॉ. रंजनी बहादुर सिंह
स्वतंत्र शोधकर्ता

दिल्ली में स्थित देश की संसद ने जब महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का बिल पास किया, तब यह लगा कि देश के अति पिछड़े इलाकों में रहने वाली गरीब, महिलाओं की आवाज देश की संसद में सुनाई पड़े, इसका मार्ग प्रशस्त हो गया और धीरे-धीरे यह रास्ता राज्य की विधानसभाओं की ओर भी बढ़ेगा। निश्चित तौर पर यह देश में लोकतंत्र के लिए एक सशक्त कदम होगा और इसलिए सभी लोगों को अपनी पार्टीगत भावनाओं से ऊपर उठकर इस विधेयक का स्वागत करना चाहिए। ताकि आधी आबादी जिसमें से अधिकतर ने देश की संसद को तस्वीरों में देखा होगा या नहीं भी देखा होगा, वैसे सभी महिलाओं को इसमें प्रवेश करने और अपनी पीड़ा को देश के सामने रखने का अवसर मिलेगा। यह एक आदर्श स्थिति होगी। पर सदियों से एक कहावत प्रचलित है “चिराग तले आँधेरा' और यह कहावत हमें चरितार्थ होती हुई नजर आती है जब दिल्ली विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी और विद्यानसभा में उनकी उपस्थिति पर नजर डालते हैं और तब महिला आरक्षण विद्येयक और भी प्रासंगिक लगने लगता है कि अगर देश की राजधानी की विधानसभा की स्थिति इतनी दयनीय है तो और राज्यों की विधानसभाओं की स्थिति कितनी भयावह होगी।

आम बोलचाल में कहा जाता है कि अगर हम दिल्ली के चश्में से देश को देखते हैं तो पूरा देश विकसित ही दिखता है। इसका सामान्य अर्थ यह है कि दिल्ली ने हर क्षेत्र में अपना विकास कर लिया है तो पूरा देश भी ऐसा ही कर चुका होगा, पर जब हम उसी चश्में से दिल्ली को विधानसभा को देखते है तो लगता है कि 'दिल्ली अभी बहुत दूर है।' यानी अभी यहाँ भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। कहने को तो दिल्ली में अब तक गठित सात विधानसभाओं में तीन-तीन महिलाओं ने मुख्यमंत्री के रूप में अपनी भूमिका निभा चुकी हैं परन्तु इसके बाद भी विधानसभा में महिलाओं की भागीदारी उस तेजी से नहीं बढ़ी जिस तेजी से बढ़नी चाहिए थी। जबकि दूसरी तरफ एक अच्छी बात है कि दिल्ली नगर निगम के चुनावों में सीटों की संख्या दुगुनी कर महिलाओं को उचित आरक्षण का लाभ दिया गया जिससे उनकी संख्या निगम के सदन में अवश्य ही बढ़ी है। वहीं पाँच साल में पाँच मेयर चुने जाते हैं जिसमें एक-एक बार दलित और महिला के लिए आरक्षण की व्यवस्था होने के कारण पाँच साल कम से कम एक बार तो किसी न किसी महिला को मेयर के रूप में सेवा करने का अवसर अवश्य ही मिलता है। इससे स्थानीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जिससे सरकार पर चाहे वह दिल्ली की सरकार हो या देश की महिलाओं के विकास के लिए चलाये जाने वाली योजनाओं को बढ़ाने पर मजबूर होना पड़ा है, जिसमें केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 'सुकन्या सम्मृद्धि योजना', 'विधवा पेंशन', 'वृद्धा पेंशन', 'जीविका दीदी', 'जननी सुरक्षा योजना', इंदिरा

आवास और मनरेगा जैसी योजनाओं में भी महिलाओं का प्राथमिकता देने वाले कानून बनाये गये। दिल्ली सरकार द्वारा सरकारी बसों में महिलाओं को मुक्त यात्रा का अधिकार भी उसी कड़ी का एक हिस्सा है। इसके लिए भारत के अलग-अलग राज्यों में महिलाओं से संबंधित अनेक योजनाएँ लागू हैं, जैसे कुछ राज्यों में स्कूल जाने वाली लड़कियों के लिए ड्रेस, साइकल, स्कॉलरशिप आदि जैसी अनेक योजनाएँ चल रही हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि स्थानीय राजनीति में बढ़ती महिलाओं की भागीदारी ने राष्ट्र स्तर पर उनकी स्थिति को सुधारने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई। अगर जिस दिन देश की स्तर पर राजनीति में महिलायें इस प्रकार सक्रिय हो गई उस दिन उनकी स्थिति में कितना सकारात्मक परिवर्तन हो जायेगा यह सोचने वाली बात है। हांलाकि यह दिन बहुत जल्दी आ जायेगा ऐसा नहीं कहा जा सकता पर जो स्थिति अभी तक आ गई है वह भी जल्दी नहीं ही आई है, परन्तु हमें यह विश्वास रखना होगा कि देर भले ही हो पर वह दिन भी आयेगा।

अब हम मूल विषय की ओर लौटते है। दिल्ली विधानसभा चुनाव में महिलाओं की भागीदारी और उपस्थिति का अवलोकन करते हैं। दिल्ली एक केन्द्र शासित प्रदेश है, जिसमें विद्यानसभा हो ऐसी मांग आजादी के बाद से लगातार ही की जा रही थी जिसे वर्ष 1993 में मान लिया गया और दिल्ली में इसी वर्ष विधानसभा का गठन कर उसके चुनाव कराये गये। वैसे तो केन्द्र शासित प्रदेश होने का तमगा इसके साथ लगा ही रहा और पूरे राज्य के अलग-अलग हिस्सों को केन्द्र, राज्य, आर्मी को शासन काने के लिए अधिकार दे दिए गये। खैर, सीमित अधिकार के साथ ही सही दिल्ली के लिए 70 विधानसभा सीटों का निर्माण किया गया जिसके लिए चुनाव जैसा कि उपर बताया गया, वर्ष 1993 में सम्मन्न हुए इस चुनाव के आँकड़ों पर नजर डालते हैं तो निम्न स्थिति सामने आती है :

वर्ष 1993 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	1257	59	1316
जीते	67	3	70
जमानत जब्त	1109	46	1155

वर्ष 1998 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	758	57	815
जीते	61	9	70
जमानत जब्त	627	42	669

वर्ष 2003 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	739	78	817
जीते	63	7	70
जमानत जब्त	612	60	672

वर्ष 2008 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	794	81	875
जीते	67	3	70
जमानत जब्त	641	70	711

वर्ष 2013 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	739	71	810
जीते	67	3	70
जमानत जब्त	555	57	612

वर्ष 2015 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल
उम्मीदवार	606	66	673
जीते	64	6	70
जमानत जब्त	472	52	525

वर्ष 2020 दिल्ली विधानसभा चुनाव

	पुरुष	महिला	कुल

उम्मीदवार	593	79	672
जीते	62	8	70
जमानत जब्त	465	64	529

** सभी आँकडे भारतीय निर्वाचन आयोग के वेबसाइट से साभार।*

इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि देश कि संसद को 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का विधेयक क्यों पास करने की जरूरत पड़ी। जब देश की राजधानी की विधानसभा में स्थिति यह है कि 7 विधानसभा चुनावों में महिला विद्यायकों का प्रतिशत सिर्फ दो बार ही 10 के आँकड़े को पार कर सका। दिल्ली में तीन-तीन बार महिला मुख्यमंत्री बनने के बाद भी एक बार भी यह आँकड़ा 15 प्रतिशत तक भी नहीं पहुंच पाया। किसी भी राज्य या देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए इससे दयनीय स्थिति और क्या होगी? जहाँ एक ओर हम उन्हें आधी आबादी मान रहे हैं, दूसरी ओर उन्हें सिर्फ 10 प्रतिशत तक ही भागीदारी प्रदान कर पा रहे हैं और चौकाने वाली बात तो यह भी है कि चुनकर विधानसभा में पहुँचना तो बड़ी बात है। चुनाव लड़ने का साहस भी बहुत सारी महिलाएँ नहीं कर पा रही हैं। अगर हम दिल्ली की 7 विधानसभा चुनावों में उनकी भागीदारी के आँकड़ों पर नजर डालते है तो यह पाते हैं कि महज चार चुनावों में ऐसा हो पाया के चुनाव लड़ने वाली महिलाओं की आँकडा 10 प्रतिशत तक ही पहुँच पाया। उसमें ज्यादातर की जमानत ही जब्त हुई। इससे स्पष्ट है कि हम उनकी भागदारी बढ़ाने का सिर्फ ढोंग ही करते रहे, कभी उन्हें प्रेरित करने का काम नहीं किया, अगर हम ऐसा करते तो उम्मीदवार के रूप में उनकी भागीदारी का आँकड़ा और बढ़ सकता था, जबकि मतदाता के रूप में उनकी भागीदारी हर चुनाव में पुरुषों से थोड़ा-बहुत ही कम रहा है। इससे यह बात तो साबित ही हो जाती है कि जहाँ हमें उनसे फायदा लेना था वहाँ पर हमने उनका भरपूर फायदा लिया पर जहाँ उन्हें हिस्सा देने की बात हुई तो मुँह मोड़ लिया।

- दिल्ली विधानसभा चुनावों में दलित महिलाओं की स्थिति

यह शीर्षक भी हस्यास्पद ही मालूम होगा क्योंकि दलित महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय रही है। दिल्ली की 70 विधानसभा क्षेत्रों में 13 सीटें अनुसूचित जाति (एससी) के लिए आरक्षित है, पर इन 13 सीटों पर नजर डालते हैं तो चौकाने वाले आँकड़ें ही हमारे सामने आते हैं। वर्ष 1993 के चुनाव में तीन महिला उम्मीदवारों ने जीत दर्ज की थी, जिसमें मिंटो रोड - ताजदार बाबर, कालका जी - पूर्णिमा सेठी और बलजीत नगर (एससी) - कृष्णा तीरथ थी, जिसमें कृष्णा तीरथ एकमात्र दलित महिला थी, यानी 70 में से सिर्फ एक। यह स्थिति 1998 में सुधरती है या यूँ कहें कि वर्ष 1998 का चुनाव दलित महिलाओं की स्थितिनुसार अब तक सर्वश्रेष्ठ चुनाव साबित हुआ जिसमें 9 महिलायें चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंची थी जिसमें

मिंटो रोड - ताजदार बाबर

गोल मार्केट - शीला दीक्षित

हौज खास - सुषमा स्वराज

दिल्ली कैंट - किरण चौधरी

सुल्तानपुर माजरा (एससी) - सुशीला देवी

मंडावली - मीरा भारद्वाज

पहाड़गंज - अंजली राय

रामनगर (एससी) - दर्शना

बलजीत नगर (एससी) - कृष्णा तीरथ

आदि शामिल थीं जिसमें सुशीला देवी, दर्शना और कृष्णा तीरथ दलित महिला के रूप में विद्यायक बनी।

वर्ष 2003 का चुनाव वैसे तो महिलाओं के अनुसार ठीक रहा जिसमें सात महिलायें विधायक चुनी गई थी जिसमें

1. गोल मार्केट - शीला दीक्षित
2. मिटों रोड - ताजदार बाबर
3. हौज खास - किरण वालिया
4. रामकृष्ण पुरम - बरखा सिंह
5. पहाड़गंज - अंजली राय
6. मंडावली - मीरा भारद्वाज
7. बलजीत नगर (एससी) - कृष्ण तीरथ

आदि शामिल थी परन्तु इसमें सिर्फ कृष्णा तीरथ एकमात्र दलित महिला थी यानी 70 में सिर्फ एक जो कि वर्ष 1993 जैसी ही स्थिति थी।

वर्ष 2008 का चुनाव दलित महिला के हिसाब से सबसे बुरा चुनाव साबित हुआ जिसमें सिर्फ तीन महिलायें ही विधानसभा तक पहुंच सकी जिसमें

1. गोल मार्केट - शीला दीक्षित
2. मालवीय नगर - किरण वालिया
3. रामकृष्ण पुरम - बरखा सिंह

शामिल थी, इसमें एक भी दलित महिला सदन तक नहीं पहुंच पाई यह स्थिति तब हुई जब शीला दीक्षित दिल्ली की मुख्यमंत्री का पद पिछले 10 वर्षों से संभाल रही थी, परन्तु फिर भी एक भी दलित महिला को सदन में पहुंचाने में सफल नहीं हो सकी। यह भी 'चिराग तले अंधेरा' का एक ज्वलंत उदाहरण ही था।

वर्ष 2013 का चुनाव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था, 15 वर्षों तक दिल्ली में कांग्रेस पार्टी सत्ता में और अपने ऊपर भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े आरोप झेल रही थी। भारतीय जनता पार्टी 15 वर्षों तक विपक्ष में रहने के बाद इस साल सत्ता में वापसी हेतु लगभग आश्वस्त थी, परन्तु येन वक्त पर स्थिति पलट गई और 15 वर्षों का भाजपा का इंतजार और लंबा हो गया। भ्रष्टाचार के खिलाफ लोकपाल विधेयक संसद में पास कराने के नाम पर दिल्ली में उपजे अन्ना हजारे के आन्दोलन से एक नई पार्टी जन्मी जिसे 'आम आदमी पार्टी' कहा गया जिसका नेतृत्व, अन्ना आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभान वाले राजस्व अधिकारी से सामाजिक कार्यकर्त्ता बने अरविन्द केजरीवाल ने किया। लोगों के तमाम अनुमानों को झूठ ठहराते हुए इस नई नवेली पार्टी ने राजनीति में जोरदार शुरुआत करते हुए दिल्ली की 70 में से 28 विद्यानसभा की सीटें जीत ली थी। हांलाकि 32 सीटें जीतकर भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़ी पार्टी बनी अवश्य, लेकिन कांग्रेस के जीते 8 विधायकों ने अरविन्द केजरीवाल को समर्थन देकर उन्हें मुख्यमंत्री बना दिया। यह चुनाव महिला विधायकों की स्थिति के अनुसार अच्छा नहीं रहा और वर्ष 1993 और 2008 जैसी ही स्थिति ही बनी रही जिसमें सिर्फ 3 महिलायें ही विधानसभा तक पहुँच सकीं जिसमें

मंगोलपुरी (एससी) - राखी बिड़ला

शालीमार बाग - बंदना कुमारी

पटेल नगर (एससी) - वीणा आनंद

शामिल थी, पर इसमें सुखद आश्चर्य यह रहा कि तीन में से दो महिलायें राखी बिड़ला और वीणा आनंद दलित समुदाय से संबंध रखती थीं। अगर सिर्फ महिला विधायकों में इनका प्रतिशत निकाला जाये तो यह 66 प्रतिशत ठहरता है, पर 70 सीटों के अनुपात में यह आँकड़ा अत्यन्त शोचनीय है। खैर, यह विधानसभा अपना समय पूरा नहीं कर पाई और दिल्ली में मध्यावधि चुनाव करना पड़ा जोकि आम आदमी पार्टी के लिए तो सुनहरा अवसर साबित हुआ ही परन्तु साथ ही साथ महिला विधायकों को स्थिति में सुधार हुआ और इस बार उनकी संख्या 3 से बढ़कर 6 हो गई जिसमें

मंगोलपुरी (एससी) - राखी बिड़ला

शालीमार बाग - बंदना कुमारी

चाँदनी चौक - अलका लाम्बा

पालम - भावना गौड़

रामकृष्ण पुरम - प्रमिला टोकस

रोहतास नगर - सरिता सिंह

आदि शामिल थीं परन्तु इसमें दुखद बात यह रही कि इन महिलाओं में सिर्फ राखी बिड़ला ही दलित माहिला विधायक के रूप में चुनी गई।

अब आया सन् 2020 का दिल्ली विधानसभा चुनाव, अभी तक वर्ष 1998 को महिला विधायकों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ चुनाव माना गया था, उसके बाद सन् 2020 का चुनाव ही सर्वश्रेष्ठ माना गया। वर्ष 1998 में जहाँ 9 महिलाऐं विधानसभा में पहुंची थी वहीं सन् 2020 में 8 महिलाओं ने सदन में प्रवेश किया जिसमें

मंगोलपुरी (एससी) - राखी बिड़ला

शालीमार बाग - बंदना कुमारी

त्रिनगर - प्रीति तोमर

राजौरी गार्डेन - धनंतरी चंदेला

हरी नगर - राजकुमारी ढिल्लो

पालम - भावना गौड़

रामकृष्ण पुरम - प्रमिला टोकस

कालका जी - आतिशी

आदि शामिल थी परन्तु दलित समुदाय की महिलाओं की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहीं इन 8 महिला विधायकों में सिर्फ राखी बिड़ला एकमात्र दलित समुदाय से संबंध रखती हैं। यानी 27 वर्षों के बाद विधानसभा में दलित महिलाओं की स्थिति वर्ष 1993 जैसी ही बनी हुई है। दिल्ली में अगला चुनाव सन् 2025 में होना है। अब देखना रोचक होगा कि दलित महिलायें अपनी स्थिति कुछ सुधार पाती है या स्थिति पूर्ववत ही बनी रहती है।

दिल्ली विधानसभा चुनावों में अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति

दिल्ली विधानसभा चुनाव में दलित महिलाओं की स्थिति के विश्लेषण के बाद अगर हम अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति देखें तो यह आंकड़ा हमें और भी ज्यादा चौंकाता है। दिल्ली में अब तक हुए 7 विधानसभा चुनावों में अंतिम चार चुनाव में एक भी अल्लासंख्यक महिला सदन में नहीं पहुँच सकी। यह आंकड़ा समाज में अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति दर्शाने के लिए काफी है। वर्ष 1993, 1998 और 2003 में एकमात्र मात्र अल्पसंख्यक समुदाय की महिला ताजदार बाबर ही चुनाव जीत सकी थीं, परन्तु उनके बाद पिछले 27 वर्ष से कोई भी दूसरी अल्पसंख्यक महिला सदन में नहीं पहुंच सकी। इसके कारणों पर गंभीरता से विश्लेषण करने की आवश्यकता है क्योंकि जब तक हम ऐसे विषयों पर गंभीरता से विशेषण नहीं करेंगे तब तक लोकतंत्र में अल्पसंख्यक महिलाओं की भागीदारी बढ़

नहीं सकती। विश्लेषण के बाद भी उनकी भागीदारी बढ़ जायेगी, ये बात भी दावे के साथ नहीं कहीं जा सकती है, परन्तु जब कभी हम ऐसे विषयों पर गंभीरता से बात करेंगे तो उनकी सामाजिक दशा तो अवश्य दी सुधर जायेगी और एक बार समाजिक दशा सुधर जायेगी तब समाज में उनकी भागीदारी भी बढ़ने लगेगी। फिर भी धीरे-धीरे सदन में उनकी उपस्थिति भी बढ़ने लगेगी।

इस प्रकार दिल्ली विधानसभा चुनावों में महिलाओं की भागीदारी का अवलोकन करते हैं तो हम पाते है कि देश की राजधानी की विधानसभा में महिलाओं की भागीदारी नगण्य है और उनके हिस्सेदारी बढ़ाने की बात करते रहना महज एक राजनीतिक ढ़ोंग के अलावा कुछ नहीं है क्योंकि दिल्ली जैसे विकसित राज्य में अगर पिछले 27 वर्षों से गंभीरता से प्रयास किया गया होता तो 33 प्रतिशत का सही कम से कम 25 प्रतिशत तक भी तो महिलाएं सदन तक पहुँच पाती। लेकिन हालात यह है कि इन 27 वर्षों में हांफते-हांफते सिर्फ एक-दो बार ही यह आँकड़ा 10 प्रतिशत को छू पाई है, इसलिए हमे यह बात खुले रूप स्वीकार कर लेना चाहिए कि संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण तो संवैधानिक प्रावधानों के बाद ही मिल पायेगा पर हम पहले अपने-अपने हृदय में तो यह बात स्वीकार करें कि महिलाओं के साथ राजनीति में वर्षों से जो भेदभाव होता आ रहा है उसे अब खत्म होना चाहिए, आखिर अत्याचार का कोई अंत तो होता हो है। परन्तु देश के राजनीति हालात का सिंहावलोकन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि अभी निकट भविष्य में इस भेदभाव या अत्याचार को खत्म होने की संभावना नहीं दिख रही है क्योंकि देश की संसद में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रस्ताव पास करवाने वाली पार्टियां भी चुनाव का टिकट वितरण करते हुए अपनी पार्टी के भीतर 33 प्रतिशत वाले फार्मुले पर कायम नहीं रह पाती है। शायद इसका कारण यह है कि वर्षों से हमारा देश पितृसत्तात्मक समाज का पक्षधर रहा है। स्त्रियों को देवी और नारीश्वर के रूप में पूजते रहने के बावजूद भी कानून बनाते हुए वह हमेशा पुरुष ही बन जाता है। यह एक खास किस्म की मानसिकता जिसे एक झटके में समाप्त नहीं किया जा सकता परंतु कहते हैं कि 'भगवान के घर देर है अंधेर नहीं'। जब स्थानीय चुनावों में महिलाओं के लिए आरक्षण के माध्यम से दरवाजे खोल दिए गए हैं तो एक न एक दिन विधानसभाओं और लोकसभा के दरवाजे भी अवश्य ही खोलने पड़ेंगे।

संदर्भ सूची

1. राजनीति विज्ञान -ए एस नारंग -गीतांजलि प्रकाशन, आनंदलोक,नई दिल्ली,संस्करण 2000
2. दिल्ली: क्रांति के 150साल -आदित्य अवस्थी, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2008
3. परिवर्तन की राजनीति और राजनीति का परिवर्तन,आनंद कुमार, सूर्यमाया प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण,1998
4. समकालीन राजनीति और महिला सशक्तिकरण,अनीता मोदी,बुक इंडेव पब्लिकेशन,कनॉट प्लेस,नई दिल्ली,संस्करण,2008

5. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार, आशारानी वर्धा,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली,संस्करण,1988
6. मुस्लिम महिला रतन,जोहरा बक्श,वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2009
7. महिला विकास एवं मूल्यांकन, मधुसूदन त्रिपाठी,ओमेगा पब्लिकेशन,जामिया नगर,नई दिल्ली, संस्करण 2008
8. नारीवादी राजनीति: संघर्ष और मुद्दे,मालती शर्मा, डी पी एस पब्लिशिंग हाउस,ओखला,नई दिल्ली, संस्करण 2011
9. महिला अधिकार और मानवाधिकार,ममता मल्होत्रा,प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2009
10. महिला सशक्तिकरण का सच, मीनाक्षी सिंह, ओमेगा पब्लिकेशन, कनॉट प्लेस,नई दिल्ली, संस्करण 2009

23

वैदिक सूर्योपासना एवं आरोग्य

डॉ. ममता त्रिपाठी
सहायकाचार्य, संस्कृतविभाग, गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सीरी फोर्टरोड- 110049

सूर्य ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है। यह बात वेद एवं विज्ञान दोनों दृष्टियों से प्रमाणित है। वैदिक साहित्य में सूर्य के विभिन्न रूपों की उपासना की गयी है। सूर्य की ऊर्जा प्राणियों के जीवन का आधार है। जरायुज, अण्डज, ऊद्भिज एवं स्वेदज सभी जीव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपनी ऊर्जा हेतु सूर्य पर निर्भर हैं। वैदिक साहित्य में सूर्य, सविता, पूषा आदि विभिन्न रूपों में देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वर्तमान में विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में बढ़ते अनुसंधान के साथ शोध की आधुनिक वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर सूर्य का महत्त्व निरन्तर बढ़ रहा है। विभिन्न अनुप्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिक मानव-जीवन में सूर्य की महत्ता का प्रतिपादन कर रहे हैं।
विगत शताब्दी में आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में सूर्य से संबन्धी महत्त्वपूर्ण विमर्श हुये। सूर्य के प्रकाश और सूर्यकिरणों पर अनेक अनुसंधान हुये। मानव-स्वास्थ्य पर उसके प्रभाव का अवलोकन किया गया। कुछ शोधों और आँकड़ों के आधार पर सूर्य की पराबैंगनी किरणों को त्वचाकैंसर का कारण माना गया। उसके बाद पूरा विश्व सूर्य के आलोक से बचने लगा। जिसके कारण मानव-शरीर में कतिपय आवश्यक पोषक तत्त्वों का अभाव हो गया तथा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वैज्ञानिक इस क्षेत्र में निरन्तर शोध में संलग्न हैं और इस शताब्दी में सूर्य की किरणों के सन्दर्भ में विज्ञान ने नवीन तथ्योद्घाटन किया है। जिससे सूर्य और उसके प्रकाश के महत्त्व की पुष्टि हुयी है। अब भौगोलिक-क्षेत्र और समय की दृष्टि से सूर्यकिरणों एवं उनके प्रभाव का अध्ययन हो रहा है। वैज्ञानिकों के इस अध्ययन द्वारा वैदिक ज्ञान प्रमाणित हो रहा है। सूर्य ऊर्जा का अजस्र स्रोत है। समस्त जगत् सूर्य की ऊर्जा से ही अनुप्राणित है। सामवेद में कहा गया है कि-सूर्य संसार का धारक है- *धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः।*

[1] यह ऊर्जा जिस भी रूप में व्याप्त है चाहे वह द्युलोक में सूर्य के रूप में, पृथ्वी परअग्नि के रूप में हो, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में हो सबका स्रोत सूर्य ही है- *एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे।*[2] सूर्य की ही शक्ति इन तीनों रूपों में प्रकाशित है। ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसमें कहा गया है कि सूर्य अनेक हैं-

सप्त दिशो नानासूर्याः। देवा आदित्याः ये सप्त [3]

[1] सामवेद, उत्तरार्चिक, 1845
[2] अथर्ववेद, 1/11/1
[3] ऋग्वेद, 9/114/3

 ISSN: 2321-0443

आरोग्यसूक्त में पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र एवं सूर्य को पिता बताया गया है। इनको अनन्त बलशाली बताया गया है। इनके बल का प्रयोग करके मनुष्यशरीर निरोगी रहता है-*विद्मा शरस्य पितरं शतवृष्ण्यम्।*[4] श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी अपने भाष्य में सूर्य से आरोग्य के सन्दर्भ में लिखते हैं कि-

> *"सूर्य पवित्रता करने वाला है। सूर्यकिरण से जीवनतत्त्व सर्वत्र फैलता है। सूर्यकिरणों का स्नान नंगे शरीर से करने पर अर्थात् धूप में अपना शरीर तपाने से आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणचिकित्सा करने का भी एक बड़ा भारी शास्त्र है।"*[5]

सूर्य का प्रकाश केवल मनुष्य को नहीं अपितु इस चराचर जगत् को प्रभावित करता है। चारों प्रकार की योनियों जरायुज, अण्डज, उद्भिज और स्वेदज के जीवन का आधार सूर्य ही है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर विभिन्न जीवों का वितरण, उनके अधिवास, रंग-रूप, आहार एवं विहार में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य के प्रकाश के उपलब्धता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। समुद्र के तल में स्थित शैवालों और गहनतम स्तर पर रहने वाले जीवों से लेकर नभ में सबसे उँची उड़ान भरने वाले पक्षियों, जीवाणुओं, विषाणुओं, कीटाणुओं से लेकर विभिन्न महाद्वीपों में रहने वाली मनुष्य की विभिन्न प्रजातियों के जीवन पर सूर्य का प्रभाव प्रत्यक्ष है। कुष्ठ-नाशन-सूक्त में कहा गया है कि सुपर्ण नामक सूर्य की किरणें वनस्पतियों में प्रविष्ट होती हैं और ये वनस्पतियाँ कुष्ठ रोग का नाश करती हैं।–

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ। तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतिम्।।[6]

वैदिक साहित्य में सूर्य के विभिन्न रूपों की उपासना की गयी है-सूर्य (जो उदित होता है और विस्तार को प्राप्त करता है), सवितृ, आदित्य, मित्र, वरुण, अर्यमा, भग, पूषन्, विष्णु, त्वष्टा। वेद में सूर्य की प्रथम किरणों की उपासना उषा के रूप में प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सूर्य और सविता देवता के रूप में सूर्य वहाँ विद्यमान है। महीतल पर सूर्य के तेज के प्रतिनिधि अग्नि से ही ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का प्रारम्भ होता है। ऋग्वेद का प्रथम सूक्त '*अग्निसूक्त*' है। सूर्य को ऋग्वेद में तेज का प्रतिनिधि, चमकदार एवं विश्व को जगानेवाला माना गया है। सूर्य और उसकी गति का वेदों में स्थान-स्थान पर वर्णन प्राप्त होता है। यह वर्णन इतने प्रचुर परिणाम में है कि इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे वैदिक पूर्वजों की उपासना में सूर्यदेव की प्रधानता थी। यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो इसकी व्याख्या कुछ भिन्न हो सकती है। परन्तु ज्ञान की प्रत्येक विधा को व्यावहारिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से भी देखना चाहिये। अध्यात्म मूल्यवान् प्रवृत्तियों को समाज का स्वभाव बनाने एवम् उसके व्यापक प्रचार-प्रसार की एक सुकर प्रविधि है जिसकी सहज स्वीकृति समाज में होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता कि अध्यात्म उत्तम व्यवस्थाओं को समाज में स्वतः लागू करने का एक माध्यम है। इस प्रविधि से कोई भी व्यवस्था लागू करने पर किसी विशेष दिशानिर्देश की आवश्यकता नहीं होती अपितु समाज इसका स्वयं पालन करता है। उसकी स्वतः स्फूर्त्त भावना उत्तम कार्य के प्रति जुड़ जाती है।

---

[4] अथर्ववेद, 1/3/5
[5] अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, भाग1, पृष्ठ, 18
[6] वही, 1/24/1

अतः यदि हम व्यावहारिक धरातल पर बात करें तो देखेंगे कि वास्तव में सूर्य ही हमारी अजस्र ऊर्जा का स्रोत है। इस बात को न केवल विज्ञान की प्रयोगशालाओं में अपितु अपने दैनंदिन जीवन में भी अनुभव किया जा सकता है। यदि कुछ दिन सूर्योदय न हो तो उसका व्यक्ति, समाज व पर्यावरण पर बहुत ही विपरीत प्रभाव पड़ता है और समस्त वातावरण अवसादग्रस्त हो जाता है। मन पर सूर्य की ऊर्जा न प्राप्त होने की स्थिति में बहुत ही विपरीत प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति का मनोबल शिथिल रहता है। वृक्ष-वनस्पतियाँ और पशु-पक्षी भी कान्तिहीन होते जाते हैं। उथल-पुथल और अनिश्चितता की स्थिति होती है।

इसीलिये सूर्य जीवन में आवश्यक है।ऋग्वेद में कहा गया है कि सूर्य चराचर जगत् का आत्मा है-

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।[7]

सवितृसूक्त के प्रथम मन्त्र में ही ऋषि कल्याण के लिये अग्निदेव का आह्वान करते हैं, रक्षा के लिये मित्र और वरुण को बुलाते हैं तथा समस्त चराचर जगत् के विश्रान्ति के लिये रात्रि का आह्वान करते हैं। इसी क्रम में ऋषि रक्षा अथवा सहायता के लिये सवितृ देव को भी बुलाते हैं-

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।

ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये।।[8]

ऋषि सविता देवता को रक्षक एवं सहायक मानते हैं तथा रक्षा और सहायता हेतु उनका आह्वान करते हैं। सूर्य वस्तुतः चराचर जगत् का रक्षक है। सूर्य के अभाव में अथवा सूर्य के प्रकाश के अभाव में नानाप्रकार की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व पर्यावरणपरक चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं।

इसी सवितृसूक्त में आगे ऋषि कहते हैं कि सविता देवता सम्पूर्ण पापों का विनाश करते हुये बहुत दूर से आते हैं-

आदेवो याति सविता परावतोऽप विश्वां दुरिता बाधमानः।[9]

जीवन में गतिरोध, व्याधि तथा विभिन्न समस्याओं का उत्पन्न होना ही पाप है। सविता देवता के उदय के साथ ये समस्त समस्यायें दूर हो जाती हैं। पाप का नाश हो जाता है।

सविता देवता की किरणों को गम्भीर स्पन्दनयुक्त, मार्गदर्शक और प्राणदायिनी कहा गया है-

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपाः असुरः सुनीथः।[10]

सविता देवता प्राणियों के रोगों और बाधाओं को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं-

[7] ऋग्वेद, 1/112/1
[8] वही, 1/35/1
[9] वही, 1/35/3
[10] वही, 1/35/7

अपामीवां बाधते...।[11]

सूर्य प्रदूषण का नाश भी करता है। अथर्ववेद में कहा गया है-

उत पुरस्तात् सूर्य एत, दुष्टान् च ध्नन् अदृष्टान् च, सर्वान् च प्रमृणम् कृमीन्[12]

अर्थात् सूर्य का प्रकाश दिखायी देने वाले और न दिखायी देने वाले समस्त प्रकार के कृमियों का नाश करता है। ऋग्वेद में सूर्य को गरल दूर करने वाला बताया गया है।[13]

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के 22 वें सूक्त में सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा का व्यापक वर्णन प्राप्त होता है। इसमें हृदय रोग एवं पाण्डुरोग के उपचार के लिये सूर्य की किरणें बहुत उपयोगी बतायी गयी हैं। कृमिरोग, बालरोग, नपुंसकता, विषचिकित्सा, मूत्ररोग आदि के उपचार में सूर्य की किरणें उपयोगी हैं। प्रात्ः कालीन सूर्य की किरणें अधिक गुणकारी होती हैं। सूर्यकिरण-चिकित्सा के अन्तर्गत वर्णित है कि सूर्य पीलिया और हृदयरोग को दूर करता है।–

अनुसूर्यमुदयतां हद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि।[14]

यही पर आगे ऋषि ने कहा है कि सूर्य की रक्तवर्ण की किरणें (प्रातःकालीन लाल रश्मियाँ) शरीर को नीरोग बनाती हैं तथा इनसे दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति होती है और पीलक रोग दूर होता है।[15] सूर्य की लाल किरणें जिसे चारो ओर से आवृत्त करती हैं वह निरोग रहता है तथा उसकी जड़ता दूर होती है।[16] आचार्य सातवलेकर ने इस सूक्त में 'परिधारण' शब्द पर विशेष बल दिया है और लिखा है कि-

"जिस प्रकार तालाब के पानी में तैरने से शरीर के साथ जल का परिधारण हो सकता है, उसी प्रकार लालरंग की सूर्यकिरणें कमरे में लेकर उसमें नंगे शरीर रहना और शरीर को उलट-पुलट करके शरीर के साथ लाल रंग की सूर्य किरणों का सम्बन्ध करना परिधारणविधि का तात्पर्य है। "[17]

अथर्ववेद के *श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त* में ऋषि भृग्वंगिरा यक्ष्माशन देवता से मङ्गल की कामना की है। उसमें कहा गया है कि सूर्य अपनी सीधी गति से दोषों तथा रोगों को दूर करता है। सूर्य शरीर की निरोगता को बढ़ाता है और सुख देता है। सूर्य का तेज शरीर के प्रत्य्येक अंग में रहता है। इसीलिये उसके महत्त्व को देखते हुये सूर्य के प्रति हवन करके उसका सत्कार किया जाता है। सूर्य की सहायता से सिरदर्द, खाँसी, सन्धिशूल अर्थात् जोड़ों का दर्द दूर होता है। कफ तथा पित्त से होने वाले रोग भी सूर्य की किरणों से दूर होते हैं-

स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो रुजन्...मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य।...[18]

---

[11] वही, 1/35/9
[12] अथर्ववेद, 3.7
[13] ऋग्वेद, 1/191
[14] अथर्ववेद, 1/22/1
[15] वही, 1/22/2
[16] वही 1/22/3
[17] अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, भाग-1, पृष्ठ, 66
[18] वही, 1/11/1-3

 ISSN: 2321-0443

चिकित्सा और मानवकल्याण की दृष्टि से सूर्य का बहुत महत्त्व है। सूर्य समस्त रोगों की चिकित्सा करता है। सूर्य की किरणों से समस्त व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

अपचितः प्रपतत सुपर्णो बसतेरिक सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोपोच्छतु[19]

अर्थात् हे हानिकारक व्याधियों! दूर जाओ जैसे तेज उड़ने वाला पक्षी अपने घोंसले से निकल जाता है। सूर्य चिकित्सा करें तथा चन्द्रमा समीप होकर प्रकाश करें।

सूर्य समस्त प्रकार के कीटाणुओं को दूर करता है तथा दृश्य-अदृश्य समस्त रोगों से हमारी रक्षा करता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणान् कृमीन्।।[20]

अर्थात् पूर्व दिशा में सूर्य उदित होता है। सब उसको देखते हैं। वह सूर्य अदृष्ट रोगाणुओं और दृष्ट सभी प्रकार के रोगाणुओं को मारता है। सूर्य सभी प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करता हुआ उदित होता है।–

उद्यान्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि।[21]

सूर्य का जीवन में बहुत मत्त्व है इसीलिये 'आयुष्यवर्धन सूक्त' में ऋषि कहते हैं कि हे आदित्यदेवों! इस मनुष्य में जाग्रत रहो-

विश्वे देवा वसवा रक्षतेममुतादित्या जाग्रत यूयमस्मिन्।[22]

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करते हुये सातवलेकर जी लिखते हैं कि-

"मनुष्य में यह आदित्य शक्ति मस्तिष्क में रहती है, नेत्र में रहती है और पेट में रहती है। मस्तिष्क में मज्जाकेन्द्र चलाती है, पेट में पाचक केन्द्र को चेतना देती है और नेत्र में देखने का व्यापार कराती है। इनमें से कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्य का आयुष्य घटता जायेगा। मस्तिष्क का मज्जाकेन्द्र आदित्य शक्ति से हीन हो गया तो सम्पूर्ण शरीर चेतनारहित हो जाता है। पेट का पाचककेन्द्र आदित्यशक्ति से हीन हो गया तो हाजमा बिगड़ जाता है, नेत्र की आदित्यशक्ति हट गयी तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार बन्द हो जाते हैं।"[23]

आज वैज्ञानिक सूर्य के प्रकाश और पर्यावरण तथा जीवजगत् सम्बन्धित नवीन खोज कर रहे हैं और नवीन पक्षों को प्रमाणित कर रहे हैं। यदि वैज्ञानिक शोधों और उनके द्वारा प्रमाणित तथ्यों को देखा जाये तो उसमें वही बातें हैं जो वेदों में कही गयीं है और अध्यात्म और यज्ञ-याज्ञ-उपासना आदि के माध्यम से समाज में बृहद् स्तर पर लागू की गयी हैं।

---

[19] अथर्ववेद, 6/3/3
[20] वही, 5/23/5
[21] वही, 2/32/1
[22] वही, 1/30/1
[23] अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, भाग 1, पृष्ठ 86

आज मानव-समाज के समक्ष सूर्य की ऊर्जा उचित मात्रा में प्राप्त करने के कारण अनेक प्रकार की शारिरिक और मानसिक चुनौतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। मनुष्य विकास के नाम पर स्वयं सूर्य के प्रकाश से दूर होता चला गया है। यह तथाकथित विकास वास्तव में विनाश की ओर गमन है। विकास के साथ मानव के अधिवासों का स्वरूप बदल रहा है। यही नहीं व्यक्ति के खान-पान, वेषभूषा तथा निवास स्थान सब में परिवर्तन आ रहा है। प्रत्येक परिवर्तन का कुछ सकारात्मक पक्ष होता है तो कुछ नकारात्मक पक्ष भी होता है। ऐसे में यदि अट्टालिकाओं की बढ़ती ऊँचाई और परस्पर एक दूसरे की छत पर निवास करते हुये लोगों के जीवन में अनेक आधुनिक सुख-सुविधायें है तथा आर्थिक सम्पन्नता के साथ उनके पास कृत्रिम पोषण के समस्त साधन उपलब्ध हैं तो भी उनका शरीर कुपोषणग्रस्त है। उनके शरीर में कुछ मौलिक और प्राकृतिक तत्त्वों की कमीं है। समस्त सुख, सुविधा और साधन भी उस कमी को नहीं दूर कर सकते । उसके लिये साधना और प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में जाना और रहन-सहन की कमियों को पहचानकर दूर करना ही स्थायी उपाय है।

सूर्य के प्रकाश को उचित मात्रा में न प्राप्त करने से व्यक्ति के शरीर में जिस आधारभूत जीवनीशक्ति की सबसे अधिक कमीं होती है और जिसे अन्य किसी दूसरे प्राकृतिक अथवा कृत्रिम माध्यम से पूर नहीं किया जा सकता वह विटामिन डी। विटामिन डी के अन्तर्गत डी3 बहुत महत्त्वपूर्ण घटक है। अथर्ववेद के 'प्राणसूक्त' में ऋषि ने सूर्य को 'प्राण' कहा है और इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र में कहा है कि हे प्राण अर्थात् हे सूर्य मुझसे पृथक् न होओ, अलग न होओ पानी के गर्भ के समान हे प्राण! जीवन के लिये मैं तुझे अपने अन्दर बाँधता हूँ- *अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि।*[24] यहाँ सूर्य के किरणों को ग्रहण करने की बात कही गयी है। सूर्य के प्रकाश विटामिन डी का एकमात्र स्रोत है। कुछ अन्य पदार्थों में भी अल्पमात्रा में विटामिन डी पाया जाता है परन्तु यह उपलब्धता भी सूर्य के प्रकाश पर ही परोक्ष रूप से निर्भर है। आजकल विश्व का एक बड़ा वर्ग विटामिन डी की अल्पता का सामना कर रहा है। विटामिन डी अल्पता एक वैश्विक संकट है। विश्व में लगभग एक अरब से अधिक व्यक्ति विटामिन डी अल्पता से ग्रस्त हैं।[25] जिसके चलते अनेक प्रकार के हड्डी के रोग, नेत्ररोग, हारमोन में गड़बड़ी आदि उत्पन्न हो रही है और व्यक्ति का जीवन नारकीय बन रहा है। आजकल विटामिन डी की कमीं बच्चों से लेकर वृद्धों तक हर आयुवर्ग, हर आयवर्ग, नगरीय तथा ग्रामीण प्रत्येक परिवेश में पायी जाती है।

विटामिन डी की अल्पता के कुछ मानवीय कारण है। जिसमें से घरों के वास्तु एवं वेशभूषा में परिवर्तन प्रमुख है। यदि भारत के सन्दर्भ में देखें तो आजकल मनुष्य का आवास न केवल बहुमंजिलीय हुआ है अपितु गृहविन्यास से आंगन लुप्त हो गया है। यदि आंगन है भी तो वह नाममात्र का। परस्पर एक दूसरे से सटे घरों, दिशा का ध्यान न देकर बनाये गये घरों में सूर्य का प्रकाश पहुँच ही नहीं पाता। ऐसे में उसमें निवास करने वाले मनुष्य, जीवजन्तु एवं सूक्ष्म जीव बिना सूर्य के प्रकाश के वहाँ रहते हैं और धीरे धीरे अस्वस्थ हो जाते हैं। अनेक बार यह अस्वस्थता जीवन के लिये घातक भी सिद्ध होती है।

---

[24] अथर्ववेद, 11/4/26

[25] http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3068797

विकास के साथ घरों का विन्यास ही नहीं बदला है अपितु वेषभूषा में भी परिवर्तन है। समय के साथ ऊष्ण और शीतोष्णकटिबन्ध में रहने वाले लोग भी शीतकटिबन्ध के लोगों के प्रभाववश उन्हीं जैसा वस्त्र पहनने लगे हैं और आज नख से शिख तक ढँके रहते हैं चाहे भीषण गर्मी ही क्यों न हो। एक भारतीय जिसके शरीर के गुप्तांगों को छोड़कर समस्त भाग पूर्ण ऊष्मा और वायु प्राप्त करता था आज सूर्य के प्रकाश के एवं प्राकृतिक वायु के सीधे स्पर्श से वंचित है।

बच्चों में विटामिन डी की कमीं से सूखा रोग (रिकेट्स) होता है। जिससे उनका शरीर विकृत हो जाता है तथा अस्थियाँ टेढ़ी-मेढ़ी व भंगुर हो जाती हैं। इसके लिये चिकित्सक आजकल प्रथम परामर्श यह देते हैं कि बच्चे को धूप में कम से कम 10 मिनट रखना चाहिये तथा उसके सभी अंगों पर सूर्य का प्रकाश पड़े यह सुनिश्चित करना चाहिये। परम्परागत रूप से मातायें बच्चे को प्रातः तेल लगाने के बाद कुछ देर धूप में लेटाये रहती हैं जिससे बच्चे को पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी मिलती है और विटामिन डी पर्याप्त मिलने से उसकी रोगप्रतिरोधकक्षता बढ़ती रहती है। इससे वह अन्य बीमारियों से ग्रस्त नहीं होता।

विटामिन डी कैल्शियम के पाचन, स्नायुपेशियों (Neuromuscular) एवं प्रतिरोधकक्षमता के लिये उत्तरदायी होता है। इसकी अल्पता से मोटापा, अत्यधिक तनाव, अवसाद, फाइब्रोमायाल्जिया, क्रानिक फटीग सिंड्रोम, डायबिटीज, आस्टियोप्रोसिस तथा अल्जाइमर आदि बीमारियाँ होती हैं। इसके साथ ही विटामिन डी की कमी से ब्रेस्ट, त्वचा एवं कोलोन कैंसर होने की भी आशंका जतायी गयी है। वर्तमान में विभिन्न शोधों से ज्ञात हुआ है कि विटामिन डी की अल्पता से 17 प्रकार के अलग-अलग कैंसर के साथ-साथ हृदयरोग, स्ट्रोक, ऑटोइम्यून बीमारियों, बर्थ डिफेक्ट और पेरोडोन्टल डिजीज में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।[26]

सूर्य के प्रकाश पर पिछली शताब्दी और इस शताब्दी में लगातार शोध हुये। कुछ शोधों से कुछ भ्रामक व एकांगी परिणाम भी आये। यह बताया गया कि सूर्य के प्रकाश से 95-97% अल्ट्रावायलेट किरणें सीधे पृथेवी पर पहुँचती हैं और त्वचा में प्रवेश कर त्वचा कैंसर कारण बनती हैं।[27] जिसके फलस्वरूप पूरे विश्व के लोग उन शोधों के आधार पर सूर्य के प्रकाश से बचने लगे। जिसके गम्भीर दुष्परिणाम दशकों बाद सामने आये। शोध भ्रामक इसलिये रहे क्योंकि वे एकांगी थे। इतने विस्तृत विश्व के किसी एक भूभाग के कुछ प्रतिशत जनता पर ही किये गये थे।

ऐसा ही कुछ शोधों के आधार पर यह विचार फैला था कि सूर्य का प्रकाश बहुत खतरनाक होता है इससे त्वचा काली होती है और त्वचा कैंसर हो सकता है। इससे बचने के लिये धूप में जाने से पहले सनस्क्रीन अर्थात् सूर्य के प्रकाश से बचने के लिये कवच लगाना चाहिये। इस प्रकार पूरे विश्व की जनता सूर्य के प्रकाश में जाने से बचने लगीं और सनस्क्रीन का व्यापार खूब फला फूला। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अगले कुछ दशकों में विटामिन डी की कमी ने महामारी का रूप ले लिया। इसे महामारी इसलिये नहीं कहते क्योंकि इसकी कमीं तत्काल प्राण हरने वाली नहीं है परन्तु यह प्राण हरने वाली परिस्थिति को शनैः शनैः उत्पन्न करती है। विटामिन डी के अन्तर्गत डी3 की अल्पता से रोगप्रतिरोधक क्षमता कम होंने से कोई भी रोग होने की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है तथा मानव

[26] http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3068797
[27] http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC290997

शरीर को अनेक प्रकार की पीड़ा का सामना करना पड़ता है। उसकी उत्पादकता और कार्यक्षमता भी कम हो जाती है। जिसका सीधा प्रभाव व्यक्ति, परिवार व राष्ट्र पर पड़ता है।

सूर्य के प्रकाश से बचने की प्रवृत्ति और चाहकर भी सूर्यप्रकाश उचित मात्रा में न मिल पाने के कारण आजकल वितामिन डी3 की अल्पता का संकट गहराता जा रहा है। जिसके कारण समाज का जागरूक वर्ग, वैज्ञानिक वर्ग, चिकित्सक वर्ग तथा सरकार भी बहुत चिन्तित है।

सूर्य के प्रकाश में जाने मात्र तथा रहने मात्र से ही यह सुनिश्चित नहीं होता कि शरीर को विटामिन डी मिलेगा ही। सूर्य का प्रकाश त्वचा के कितने भाग का, किस समय और कितनी देर तक प्रतिदिन स्पर्श करता है इससे यह सुनिश्चित होता है कि विटामिन डी की उचित मात्रा का अवशोषण होगा कि नहीं। आवश्यक यह है कि व्यक्ति की त्वचा बिटामिन डी अवशोषित करें। विटामिन डी के अवशोषण में मानवकृत बाधायें तो हैं ही प्राकृतिक बाधायें भी कम नहीं हैं।

प्राकृतिक् बाधाओं में प्रथम बाधा है भारतीय उपमहाद्वीप के निवासियों के प्रति कि भारतीय उपमहाद्वीप के आकाश में क्षोभमण्डल के नीचे एक भूरे बादलों[28] की परत पायी जाती है जिससे सूर्य का गुणवत्तायुक्त प्रकाश इस महाद्वीप पर नहीं पड़ पाता। इस बाधा से वैदिक ऋषि सम्भवतः परिचित थे इसीलिये ऋषि हिरण्यस्तूप ने सवितृसूक्त के अन्तिम मन्त्र में कहा है कि -*ये ते पन्थाः सविता पूर्वव्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।*[29] अर्थात् हे सवितृदेव तुम्हारा जो प्राचीन एवं धूलिरहित अन्तरिक्ष में भलीभाँति बना हुआ मार्ग है, उसी से आओ। वैदिक ऋषि को सम्भवतः यह ज्ञात था कि सूर्य के मार्ग में धूल आदि आने से सूर्य की कल्याणकारिणी किरणों से पृथ्वीलोक सम्यक् रूप से लाभान्वित नहीं हो पायेगा। इसीलिये सवितृदेव से ऋषि ने उस मार्ग से आने को कहा है जहाँ धूल न हो। वर्तमान में भारतीय उपमहाद्वीप के आकाश में स्थित यह भूरा बादल वास्तव में प्रदूषित धूलिकणों का जमाव ही है। जिसके कारण सूर्य की लाभकारी किरणें पूरी उपमहाद्वीप को लाभान्वित नहीं कर पातीं।

दूसरी प्राकृतिक बाधा है भारतीयों की त्वचा में पाये जाने वाल मेलानिन नामक तत्त्व जो त्वचा के रंग के लिये उत्तरदायी होता है। यही त्वचा का रंग गाढ़ा गेहुँआ से काला तक बनाता है। गेहुँवीं व काली त्वचा स्वाभाविक रूप से उज्जवल त्वचा की अपेक्षा कम विटामिन डी ग्रहण कर पाती है। अनेक अध्ययनों द्वारा इस बात की पुष्टि हुयी है कि श्वेत त्वचा वाले व्यक्तियों को ग्रीष्म ऋतु में आधे घण्टे सूर्यस्नान से 50,000IU (1.25mg) विटामिन डी प्राप्त होता है जबकि साँवली त्वचा वालों को इतनी ही देर सूर्यस्नान करने पर 20,000-30,000 IU विटामिन डी मिलता है और इतने ही समय में काली त्वचा वालों को 8,000-10,000 IU विटामिन डी प्राप्त होता है।[30]

त्वचा का रंग भी इस बात पर निर्भर करता है कि भूभाग किस कटिबन्ध में आता है उष्ण, शीत अथवा शीतोष्ण। भारत शीतोष्ण कटिबन्ध में आता है इसीलिये यहाँ के निवासी गोरे से लेकर काले तक हर रंग के होते हैं। भारत का

---

[28] http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3897581

[29] ऋग्वेद, 1/35/11

[30] Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)

उत्तरी भाग शीत कटिबन्ध से प्रभावित है और दक्षिणी भाग उष्ण कटिबन्ध से। ऐसे में भारतीय अपनी त्वचा के रंग के कारण भी विटामिन डी का कम अवशोषण कर पाते हैं।

आजकल विटामिन डी की मात्रा शरीर में सुनिश्चित करने के लिये धूप स्नान का प्रारम्भ हुआ है और धूप लेने के लिये केन्द्र (Basking Center) खुल रहे हैं। लोग खुले स्थानों पर जाकर और समुद्र तट आदि पर जाकर् धूप सेंकते हैं।

आजकल सूर्य के प्रकाश के प्रति जागरूकता बढ़ रही है तथा जनता को सूर्य के प्रकाश की कमीं के कारण होंने वाले दुष्प्रभावों का भी ज्ञान हो रहा है।

अनेक अध्ययनों ने इस बात की पुष्टि भी की है कि टीबी की रोकथाम और उपचार में सूर्य का प्रकाश बहुत उपयोगी है। स्कूल ऑफ मेडिसिन, बोस्टन यूनिवर्सिटी की डर्मैटोलॉजी की प्रोफेसर बारबरा ए. गिलक्रस्ट ने अपने अध्ययन में पाया कि त्वचा और फेफड़े की टीबी के रोगियों को सूर्य के प्रकाश में रहने से लाभ मिला।[31] अथर्ववेद के श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त में ऋषि ने श्वास दोष के अन्तर्गत यक्ष्मा अर्थात् टीबी का उल्लेख किया है।

2008 में इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ इपीडेमियोलॉजी में प्रकाशित एक शोध में बताया गया कि विटामिन डी का उच्च स्तर होंने से टीबी होने का खतरा 32% कम हो जाता है।[32]

सूर्य के प्रकाश के विषय में ऐसे सकारात्मक शोधों के आने के बाद से यूरोप में सूर्य के महत्त्व की पुनर्स्थापना हुयी और 'हेल्दी टैन'[33] को महत्त्व दिया जाने लगा।

सूर्यकिरणों से होंने वाली फोटोथेरेपी केवल टीबी के चिकित्सा में ही नहीं अपितु रह्यूमैटिक डिसार्डर, मधुमेह, घेघारोग, असाध्य अल्सर और घावों में भी उपयोगी सिद्ध हो रही है।[34]

BBC की एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तर भारत की लगभग 69% महिलाओं में विटामिन डी की कमी हैं। केवल 5% महिलाओं में ही विटामिन डी की सही मात्रा पायी जाती है। 26 % महिलाओं में विटामिन डी पर्याप्त है। [35]

रजोनिवृत्ति के समय महिलाओं में होने वाले हारमोन-परिवर्तन से एस्ट्रोजेन नामक हार्मोन में कमीं आने से भी सूर्य के प्रकाश से विटामिन डी के अवशोषण-क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। शरीर में विटामिन डी कम बनने लगता है। परिणामस्वरूप हड्डी के रोग उत्पन्न होते हैं।

[31] Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)
[32] Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)
[33] Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)
[34] Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)
[35] https://www.bbc.com/hindi/india-44713134

मानव-शरीर में 75 नैनोग्राम विटामिन डी की सही मात्रा है। यदि यह मात्रा 50 नैनोग्राम से कम हो तो विटामिन डी की अल्पता है। ब्रिट्रेन की न्यूरोलॉजी नामक पत्रिका में प्रकाशित शोध में बताया गया है कि वृद्धों में विटामिन डी की अल्पता से पागलपन का खतरा बढ़ जाता है।[36]

भारत में भी विटामिन डी की अल्पता के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। सन् 2018 में विटामिन डी की अल्पता को देखते हुये food Safety and Standards Authority of India (FSSAI) ने *'प्रोजेक्ट धूप'*[37] प्रारम्भ किया था। जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राकृतिक सूर्यप्रकाश द्वारा विटामिन डी उपल्ब्ध करवाना था। यह एक ऐसा अभियान था जिसका उद्देश्य सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश से विटामिन डी प्राप्त करने के प्रति जागरूकता का स्तर बढ़ाना था। इसके तहत प्रातः होने वाली प्रार्थना के समय बच्चों को एकत्र करने के बजाय मध्याह्न में एकत्र करने का सुझाव दिया गया था। अनेक गैर सरकारी संस्थान भी जनता को समय-समय पर जागरूक करते रहते हैं।

कोरोना संक्रमणकाल में विटामिन डी की खूब चर्चा हुयी है क्योंकि सूर्य का प्रकाश और शरीर में विटामिन डी की उचित मात्रा विषाणु से लड़ने में सहायक सिद्ध हुये हैं

सूर्य के प्रकाश का महत्त्व आज सर्वविदित है। वेद में सूर्य की अनेक रूपों में उपासना की गयी है। सबका स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्व है। यही नहीं विभिन्न रोगाणूओं और शरीर की व्याध्यों को नष्ट करने में सूर्य की भूमिका का वेद में सीधे उल्लेख और संकेत है। सूर्य पर प्राप्त वैदिक सामग्री का यद्यपि अभी भी पूर्णतः वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो पाया है तथापि भारतीय परम्परा में वेदोक्त सूर्योपासना निरन्तर जारी है। आज भी सूर्य को अर्घ्य देने की परम्परा है। गंगातट पर कल्पवास करते समय चार माह तक गंगास्नान कर अर्घ्य देने की परम्परा भी निरन्तर चली आ रही है। भारतीय परम्परा में पूजा-अर्चना आदि समस्त कार्य खुले आकाश के नीचे होते हैं ऐसे में सूर्य और चन्द्र की किरणें वहाँ साक्षीभाव में रहती ही हैं।

समय के साथ हमारे रहन-सहन और परिधान में आये अन्तर के कारण आज सूर्य के प्रकाश की उचित मात्रा हमें नहीं मिल पाती तथा हमारा शरीर पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी नहीं बना पाता।

अतः नवीन शोधों के आलोक में तथा भारत की भौगोलोक स्थिति को ध्यान में रखते हुये विटामिन डी प्राप्त करने के माध्यमों पर समाज और शासन दोनों को विचार करना चाहिये ताकि इस अदृश्य महामारी के कारण जीवनहानि न हो।

इसके लिये भारत के भूगोल और पर्यावरण को देखते हुये ऐसे गृहनिर्माण को बढ़ावा देना चाहिये जिसके प्रत्येक कक्ष में प्राकृतिक प्रकाश पहुँच सके। घरों में धूप का कुछ देर सेवन किया जा सके ऐसे खुले स्थान को रखने तथा आंगन की व्यवस्था हो। आज समय आ गया है जब व्यक्ति के वेषभूषा से जुड़े 'सभ्य' पक्ष पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। जैसी वेषभूषा जिस भौगोलिक स्थान व ऋतु की प्रकृति के अनुकूल है वैसी वेषभूषा धारण करना ही वस्तुतः

[36] https://www.bbc.com/hindi/india-44713134
[37] https://fssai.gov.in/upload/media/5b447a00c51bcFSSAI_News_Project_Dhoop_UnitedNews_10_04_2018.pdf

'सभ्य' है। भीषण गर्मी और आर्द्रता में भी टाई से गले को रेतना एक थोपी गयी सभ्यता है। आज इस प्रकार के पूर्वग्रहों से बाहर निकलकर यह विचार करने की आवश्यकता है कि कैसे बिना अतिरिक्त प्रयास के सूर्य की किरणों का सेवन किया जा सकता है?

शिशुओं को तेल लगाकर धूप में लेटाने की परम्परा प्राचीनकाल से भारत में रही है। आजकल जीवन की विभिन्न व्यस्तताओं एवम् अज्ञानता, उदासीनता तथा परम्परा के प्रति तिरस्कारभाव के कारण शिशु धूप से वंचित हो रहे हैं और उन्हें सूर्य से सीधे विटामिन डी के विकल्प के रूप में कृत्रिम विकल्प का सहारा लेना पड़ता है जिसके तहत विटामिन डी का सीरप पीना पड़ता है।

भारतीय आयुर्वेद और लोकपरम्परा को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ शरीर स्वस्थ रखने के लिये मर्दन, स्नेहन और स्वेदन आदि क्रियाओं का बहुत महत्त्व रहा है। स्नेहन अर्थात् तेल लगाने के बाद धूपस्नान भी प्रायः होता रहा है। ऐसे में विटामिन डी स्वतः शरीर को उपलब्ध होता रहा है। आज इन समस्त प्रक्रियाओं को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है।

भारतीय जीवन पद्धति में व्यक्ति के दिन का प्रारम्भ प्रायः सूर्यनमस्कार और सूर्य को अर्घ्य देकर होता था। इस प्रक्रिया में लगभग 10-15 मिनट का समय लगता है। सूर्यनमस्कार करते समय और अर्घ्य देते समय प्रायः पुरुषों के शरीर का बड़ा भाग खुला रहता है ऐसे में सूर्य की किरणें सीधे त्वचा को स्पर्श करती हैं और दैनिक विटामिन डी की मात्रा प्राप्त हो जाती है।

विभिन्न स्तरों पर कार्यालयों में काम करने वाले व्यक्तियों के लिये धूप-सेवन चुनौतीपूर्ण है क्योंकि सूर्य के प्रकाश का अधिकतम समय कार्यालयों के बन्द वातानुकूलित कक्षों में व्यतीत हो जाता है। इसप्रकार कार्य करने वाली जनसंख्या भी किसप्रकार सूर्य के प्रकाश का सेवन कर सके इस बात पर नीतिनिर्माताओं को विचार करना चाहिये।

ग्रामीण जनसंख्या अज्ञानतावश या दिखावे में पड़कर सूर्य के समक्ष रहते हुये भी वस्त्रों के सघन आवरण के कारण विटामिन डी का अवशोषण नहीं कर पाती। आजकल खेतों में काम करते समय कृषक भी नख से शिख तक वस्त्रावरण में रहते हैं।

अतः शासन और समाजसेवी संस्थाओं को जनता को व्यापक रूप से विटामिन डी की अल्पता से होने वाली बीमारियों एवं विटामिन डी की उचित मात्रा प्राप्त करने के लिये किये जाने वाले व्यवहार के विषय में जागरूक करना चाहिये। समाज के प्रबुद्धवर्ग, अध्येताओं एवं शोधार्थियों को भारतीय शास्त्रों विशेषकर वैदिक साहित्य में सूर्यकिरणसेवन के विषय में दिये गये निर्देशों पर शोध करना चाहिये तथा उसका व्यापक प्रचार-प्रसार करना चाहिये। अन्यथा विटामिन डी की अल्पता एक अदृश्य महामारी के समान है जिससे न केवल लोगों का जीवन संकट में है अपितु लोगों की उत्पादक-क्षमता घटने और स्वास्थ्य पर होने वाले व्यय से अर्थव्यवस्था पर भी दबाव बढ़ेगा।।

सन्दर्भ सूची

1. *ऋग्वेदसंहिता*, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1941
2. पाण्डेय, विजय शङ्कर, *वैदिकसूक्तसङ्कलन*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2001
3. शास्त्री, हरिदत्त, *ऋक्सूक्तसंग्रह*, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
4. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, *अथर्ववेद का सुबोध भाष्य*, प्रथम भाग, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1985
5. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, *सामवेद का सुबोध भाष्य*, प्रथम भाग, स्वाध्याय मण्डल, पारडी
6. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, *यजुर्वेद का सुबोध भाष्य*, प्रथम भाग, स्वाध्याय मण्डल, पारडी
7. *वैदिक सूक्त संग्रह,* गीताप्रेस, गोरखपुर
8. *The Importance of Vitamins to Human Health*: Proceedings of the IV Kellogg Nutrition Symposium held at the Royal College of Obstetricians and Gynecologists, London on 14-15m December, 1978, Ed. G. Taylor, MTP Press Limited, Lancaster, England, 1979.https://archive.org/details/importanceofvita0000kell_r0p7/page/n7/mode/2up?q=Vitamin+D+deficiency+and+sunlight&view=theater
9. Golbahar, Jamal et.el, *Association of Vitamin D deficiency and hyperparathyroidism with anemia: a cross sectional study*, Journal of Blood Medicine, 29 august, 2003. https://archive.org/details/pubmed-PMC3770718/mode/2up?q=Vitamin+D+deficiency+and+sun&view=theater
10. *Vitamin D deficiency in Adults- Treatment and Prevention*, https://archive.org/details/VitaminDDeficiencyInAdultsTreatmentAndPreventionNICECKS/mode/1up?q=Vitamin+D+deficiency&view=theater
11. Mead, M. Nathaniel, *Benefits of Sunlight: A bright spot for human health*, Benefits of Sunlight: A Bright Spot for Human Health (nih.gov)
12. Moghaddasi, Mehndi et.el, *Serum 25 Hydroxyvitamin D3 concentration in Iranian people with Parkinson's disease*, Iranian Journal of Neurology, 2013;12(2): 56-59
13. http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3068797
14. http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3897581
15. *क्यों है भारतीय महिलाओं में विटामिन डी की कमीं?* https://www.bbc.com/hindi/india-44713134
16. प्रोजेक्टधूप,https://fssai.gov.in/upload/media/5b447a00c51bcFSSAI_News_Project_Dhoop_UnitedNews_10_04_2018.pdf

24

मोरक्को में अमाज़ीग़ जातीय पहचान का पुनर्निर्माण

ज़ीशान आज़ाद
शोधार्थी , दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमाज़ीग़ या बर्बर लोगों को उत्तरी अफ्रीका का मूल निवासी माना जाता है। वे ज़्यादातर उत्तरी अफ्रीका के मग़रिब क्षेत्र में केंद्रित हैं जिसमें मोरक्को, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, लीबिया और पश्चिमी मिस्र के कुछ हिस्से आते हैं। लेकिन बर्बर जनजातियाँ और जातीय समूह नाइजर, माली और बुर्किना फासो जैसे दक्षिणी सहारा रेगिस्तान के देशों में भी पाए जाते हैं। अमाज़ीग़ के बारे में, उनकी उत्पत्ति से संबंधित कई सिद्धांत हैं जिसमें अरबों का सिद्धांत बहुत प्रसिद्ध है। बर्बर की उत्पत्ति को लेकर अरब के लोग यह मानते हैं कि बर्बर लोग अरब थे जिन्हें यमन से उत्तरी अफ्रीका तक ज़मीन के रास्ते ले जाया गया था, जहाँ उन्हें बर्बर अरब भूमि खानाबदोश के रूप में जाना जाता था। उनको प्राचीन यूरोपीय भाषाओं में कई नामों से जाना जाता था, जैसे मूर या मौरी। उन्हें रोमनों द्वारा लिबो या न्यूमिडियन कहा जाता था। अरब अक्सर उन्हें बर्बर कहते थे। अरबी शब्द "बर्बर" यूनानी-लैटिन शब्द "बारबर" से लिया गया है, जिसका इस्तेमाल किसी भी गैर-लैटिन या ग्रीक-भाषी आबादी को संदर्भित करने के लिए किया जाता था, जो सोचते थे कि ग्रीक और रोमन संस्कृति सभी अन्य लोगों से बेहतर है। रोमन लोग "बर्बर" या "बार्बर" शब्द का इस्तेमाल न केवल अमाज़ीग़ को संदर्भित करने के लिए करते हैं, बल्कि विद्रोही जर्मन और अंग्रेजी जनजातियों के लिए भी करते हैं।

अमाज़ीग और इस्लामी शासन:

सातवीं शताब्दी में इस्लामी खिलाफत के माध्यम से अरबों के आगमन के साथ, भारी संख्या में अमाज़ीग़ जनजातियाँ इस्लाम में परिवर्तित हो गई। उनकी पहचान मुसलमानों की इस्लामी पहचान के साथ मिल गई और उनकी भाषाएँ, कानून और परंपराएँ अरबों के अनुसार बदल गई। अरबी भाषा, कस्बों और मैदानों में व्यापक रूप से बोली जाने लगी, जबकि बर्बर भाषाएँ जो कि इनकी मुख्य भाषा थी वो केवल ग्रामीण, पहाड़ी और रेगिस्तानी क्षेत्रों तक ही सीमित रह गई। इस्लाम के एकत्रित करने के प्रभाव ने कभी भी इन दो भाषाओं के मध्य विभाजन नहीं होने दिया। खिलाफत काल के बाद, उस्मानिया के तुर्कों ने इस क्षेत्र पर शासन किया। सोलहवीं शताब्दी में उस्मानिया तुर्कों द्वारा मम्लुकों को पराजित किया गया था। तुर्क विस्तार के परिणामस्वरूप उत्तरी अफ्रीका समान रूप से आक्रामक हैब्सबर्ग और महत्वाकांक्षी उस्मानिया साम्राज्य के बीच शाही प्रतिद्वंद्विता में उलझ गया। सादी और अलावी, दो शरीफी परिवार, जिनके शासन के अधीन आज के मोरक्को और अल्जीरिया के क्षेत्र थे, तुर्की के आक्रमणों और यूरोपीय शिकारियों से मोरक्को की स्वतंत्रता को दृढ़ता से बनाए रखा। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान उत्तरी अफ्रीका में तुर्कों का प्रभुत्व कम हो गया। फ्रांसीसीयों द्वारा किए गए उत्तरी अफ्रीका के क्षेत्रो पर कब्जा उस्मानिया तुर्कों की कमजोरी को साफ़ साफ़ दर्शा रहा था।

औपनिवेशिक काल व फ्रांस की विभाजन नीति:

इस क्षेत्र का यूरोपीय उपनिवेशीकरण उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में शुरू हुआ। सन 1830 में अल्जीरिया, 1911 में लीबिया का उपनिवेश बनना तथा 1912 में मोरक्को के संरक्षित क्षेत्र बनाए जाने के बाद यूरोपीय शक्तियों ने इस क्षेत्र पर अपने तरीके से शासन आरंभ किया। नए औपनिवेशिक स्वामी अपने विषय के सभी पहलुओं में हस्तक्षेप करना चाहते थे चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या अन्य हो। इसी उद्देश्य को लेकर फ्रांसीसियों ने, जिन्होंने उत्तरी और पश्चिमी अफ्रीका के बड़े भूभाग पर अपना शासन स्थापित किया था, मोरक्को के सामाजिक विभाजन पर भी जोर दिया। फ्रांसीसियों ने बीसवीं सदी के दौरान, 'फूट डालो और राज करो' की नीति के ज़रिए मोरक्को के राष्ट्रवादी आंदोलन को तोड़ने की कोशिश की। मई 1930 में बर्बर डिक्री या 'दहिर बर्बर' का जारी होना मोरक्को में पहचान की राजनीति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इस डिक्री का मतलब मोरक्को में दो अलग-अलग कानूनी व्यवस्थाएँ स्थापित करना था, एक अमाज़ीग के लिए उनके स्थानीय प्रथागत कानून के ज़रिए जबकि दूसरी इस्लामी कानून या शरिया से अरबों के लिए। इसने मोरक्को की राष्ट्रवादी पहचान, अरब राष्ट्रवाद और मोरक्को और अन्य मुसलमानों (ज़्यादातर मध्य पूर्व में) के बीच मुस्लिम एकजुटता पर भी सीधा हमला किया। परंतु अरबी और बर्बर बोलने वालों के बीच अंतर करने की कोशिश करने वाला यह फ्रांसीसी औपनिवेशिक उपाय जिसका लक्ष्य बर्बर-भाषी समुदायों को औपनिवेशिक सत्ता के समर्थकों के रूप में जितना था विफल रहा। 1930 के दशक में राष्ट्रवादी समूहों के उदय से पहले ही बर्बर-भाषी क्षेत्र यूरोपीय औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लड़ाई में सबसे आगे थे। मोरक्को में उच्च एटलस की अमाज़ीग़ जनजातियाँ फ्रांसीसी "शांति" अभियान के आगे झुकने वाली आखिरी जनजातियाँ थीं। 1920 के दशक में मोरक्को में स्पेनिश औपनिवेशिक नियंत्रण के खिलाफ सबसे उल्लेखनीय विद्रोह हुआ, जो बर्बर-भाषी रिफ़ में हुआ। बर्बर भाषी न केवल संगठित राष्ट्रवादी आंदोलनों में शामिल थे, बल्कि उन्होंने 1950 के दशक में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लड़ाई में भड़की हिंसा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मोरक्को में, फ्रांसीसी लोगों पर महानगर में ग्रामीण बर्बर-भाषी क्षेत्रों दोनों में हमला किया गया। बहुसंख्यक अमाजिग़ सेना ने 1955 में मोरक्को के कई ग्रामीण क्षेत्रों में फ्रांसीसियों के खिलाफ एक आक्रामक अभियान चलाया और उनके हमलों ने फ्रांसीसियों से "तेज, पूर्ण और अपरिवर्तनीय स्वतंत्रता सुनिश्चित की"।

अरबीकरण और जातीय आंदोलन का विकास:

मग़रिब के देशों को दूसरे विश्व युद्ध के कुछ दशक बाद आजादी मिली, उदाहरण के लिए; मोरक्को और ट्यूनीशिया को 1956 में आजादी मिली, लीबिया को 1951 में, अल्जीरिया को 1962 में आजादी मिलने के बाद इन देशों ने 'अरबीकरण' नामक आंदोलन शुरू किया। इस आंदोलन का उद्देश्य इस्लामी कानूनों, नियमों और विनियमों के साथ-साथ दैनिक बातचीत में इस्तेमाल की जाने वाली अरबी भाषा के सिद्धांत पर एक राष्ट्र का निर्माण करना था। यह इस तथ्य के कारण संभव हुआ कि इन मुस्लिम बहुल उत्तरी अफ्रीकी देशों में से अधिकांश अरब थे जो इस्लामी खिलाफत के दौरान अफ्रीका पहुंचे थे। राष्ट्र निर्माण कार्यक्रम का एक बड़ा हिस्सा शैक्षिक प्रणाली द्वारा निभाया गया था। प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा उपयुक्त भाषा नीतियों का निर्माण और उन्हें लागू करना था। हाल ही में

स्वतंत्र हुए मोरक्को में प्राथमिक विद्यालय की पाठ्यपुस्तकों में इस बात पर जोर दिया गया है कि सातवीं शताब्दी के अंत में इस्लाम के प्रवेश और एक सदी बाद इदरीसी राजवंश का निर्माण ने मोरक्को के इतिहास की शुरुआत को चिह्नित किया। बर्बर लोगों को अरब के लंबे समय से खोए हुए चचेरे भाई के रूप में चित्रित किया जाने लगा। लेखकों के अनुसार, इस्लाम ने बर्बर लोगों को उनके आदिम राज्य से मुक्त कर दिया था, बर्बर भाषा अरबी से जुड़ी हुई थी, और बर्बर लोगों की उत्पत्ति यमन में हुई थी । सदियों से, ये विषय अरब-इस्लामी विमर्श में मौजूद रहे हैं, जिसका उद्देश्य इस्लामी समुदाय के भीतर बर्बर के वंश को स्थापित करना है । इतिहास का यह आख्यान राष्ट्र निर्माण और राज्य निर्माण में शामिल मोरक्को के शहरी अरबी भाषी अभिजात वर्ग के लिए अत्यधिक लाभकारी था क्योंकि इसने नए राष्ट्रीय पदानुक्रम में उनके निरंतर विशेषाधिकार के लिए औचित्य प्रदान किया। राजशाही ने भी इस रणनीति का समर्थन किया, कम से कम आंशिक रूप से, हालांकि विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों, विशेष रूप से इसके अमाज़ीग़ लोगों की मांगों और इच्छाओं को संतुलित करने की आवश्यकता के बारे में अधिक जागरूक होने के बावजूद अरबीकरण की नीतियों के प्रति बर्बर लोगों की प्रतिक्रियाओं को ज़्यादातर नज़रअंदाज़ कर दिया गया । मोरक्को में पहला बर्बरवादी सांस्कृतिक संगठन 1967 में स्थापित किया गया था और इसे एसोसिएशन मारोकेन डे रिसर्च एट डी'एचेंज कल्चरल (मोरक्को एसोसिएशन ऑफ़ रिसर्च एंड कल्चरल एक्सचेंज; एएमआरईसी) कहा जाता था । मोरक्को, जो उत्तरी अफ्रीका में सबसे बड़े अमाज़ीग़ या बर्बर भाषी समुदाय का घर है, ने अरबी और फ्रांसीसी भाषा के पक्ष में लंबे समय से अपनी भाषा और संस्कृति की उपेक्षा की है, जिसके कारण अमाज़ीग़ पहचान आंदोलन का उदय हुआ है, जिसने धीरे-धीरे गति पकड़ी है । मोरक्को में दक्षिण, मध्य एटलस पर्वत और उत्तरी रिफ़ क्षेत्र में तीन बड़े और विशिष्ट बर्बर भाषी समुदाय पाए जाते हैं । राज्य के सार्वजनिक ध्यान के बावजूद इसके अरब चरित्र पर, बर्बर सांस्कृतिक रूपों के प्रति राज्य की प्रतिद्वंद्विता का स्तर उतना नहीं था जितना उस समय अल्जीरिया में था । अल्जीरिया के विपरीत, जिसने स्वतंत्रता के बाद अरब राष्ट्रवाद को अपनी राष्ट्रीय पहचान का एक केंद्रीय घटक बनाया, मोरक्को की राजशाही ने यही कार्य किया । नतीजतन, राजशाही ने बर्बर संस्कृति की कम-महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियों को स्वीकार करने की अपनी इच्छा का प्रदर्शन किया, बशर्ते कि वे कोई राजनीतिक महत्व न लें । मोरक्को की अधिक उदार आधिकारिक नीतियों की बदौलत 1960 के दशक में सीमित संख्या में बर्बर सांस्कृतिक संघ उभरने लगे । इन संघों को अपने शीर्षकों में "बर्बर" शब्द का उपयोग करने से प्रतिबंधित किया गया था क्योंकि वे प्रकृति में स्पष्ट रूप से सांस्कृतिक थे । राजा हसन के शासनकाल के अंतिम दस वर्षों के दौरान महत्वपूर्ण वृद्धिशील राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए क्योंकि उन्होंने स्थिरता को बनाए रखने और अपने उत्तराधिकारी के लिए तैयार होने के लिए काम किया। अगस्त 1991 में, बर्बर समूहों द्वारा भाषाई और सांस्कृतिक अधिकारों के लिए अगादिर घोषणापत्र जारी किया गया था, जिसमें मांग की गई थी कि मोरक्को की आधिकारिक कथा और सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भाषाई नीतियों को राष्ट्र की अमाज़ीग़ पहचान को बेहतर ढंग से दर्शाने के लिए बदला जाना चाहिए । इस में समूह भाषा और सांस्कृतिक अधिकारों की औपचारिक स्वीकृति की मांग की गई तथा शासक वर्ग द्वारा फैलाई गई प्रमुख ऐतिहासिक कथा का विरोध किया गया, जो समाज के पूर्ण अरबीकरण और बर्बर संस्कृति के अवमूल्यन को लोककथा के स्तर तक समर्थन करती थी ।

राजनीतिक व संवैधानिक सुधार तथा वर्तमान स्थिति:

मोरक्को में अमाज़ीग़ पहचान का विकास 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक की शुरुआत में एक नए चरण में प्रवेश कर गया, क्योंकि मोरक्को ने इस मामले पर अधिक प्रगतिशील रुख अपनाना शुरू कर दिया। राजा मोहम्मद VI के 1999 के उदगम के बाद अमाज़ीग़ पहचान के समर्थन में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। राजा ने अमाज़ीग़ आंदोलन को मोरक्को की राष्ट्रीयता के एक आवश्यक घटक के रूप में स्वीकार किया, जो एक पुनरुत्थानशील इस्लामवादी आंदोलन को ऑफसेट करने और एक संसदीय प्रणाली पर महल के शासन को संरक्षित करने की एक बनायी गयी योजना का हिस्सा था, जो अधिक उदार हो रही थी। मोहम्मद VI ने आंशिक रूप से लंबे बर्बर घोषणापत्र के प्रस्तावों का पालन किया, जिसे 2001 में 200 से अधिक बर्बर बुद्धिजीवियों द्वारा एक साल पहले जारी किया गया था। इनमें मोरक्को की राष्ट्रीय पहचान के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में अमाज़ीग़ संस्कृति को स्वीकार करना, ऑडियो-विज़ुअल मीडिया में अमाज़ीग़ की उपस्थिति का विस्तार करना और मोरक्को के स्कूलों में तमज़ीत की शुरुआत करना (जो 2003 में शुरू हुआ) शामिल था। दरअसल, राजा ने मोरक्को की संस्कृति में कुरान और इसकी पवित्र भाषा अरबी के महत्व की पुष्टि करने के लिए भी सावधानी बरती। अरब-इस्लामी और धर्मनिरपेक्ष अमाज़ीग़ धाराओं के बीच एकता स्थापित करने के प्रयास में, अरबी लिपि, जिसकी मांग इस्लामवादियों ने की थी, या लैटिन लिपि, जिसे अमाज़ीग़ कार्यकर्ताओं के बहुमत ने पसंद किया था, के बजाय प्राचीन लीबिया-बर्बर तिफिनग़ लिपि (अभी भी टौरेग समूहों द्वारा उपयोग की जाती है) के संशोधित संस्करण का उपयोग करके तामाज़ाइट को पढ़ाने के महल-प्रभावित निर्णय ने शासन के प्रयासों का उदाहरण दिया। अमाज़ीग़ आंदोलन ने राजा के 2001 के "अमाज़ीग़ दाहिर" के बीच 10 वर्षों में उतार-चढ़ाव देखे, जिसमें उनकी नई कानूनी नीतियों की रूपरेखा थी, और 2011 के मोरक्को के संविधान, जिसने तमज़ीग और अरबी को देश की आधिकारिक भाषाएँ स्थापित कीं। मोरक्को ने बर्बर नव वर्ष को आधिकारिक अवकाश के रूप में मान्यता दी। मोरक्को के राजा ने घोषणा की कि अमाज़ीग़, या बर्बर, नव वर्ष अब एक घोषित अवकाश है। यह स्वदेशी जनजाति की नवीनतम मान्यता है जो अपने कैलेंडर को मान्यता दिलाने के लिए वर्षों से लड़ रही है। अमाज़ीग़ आंदोलन की माँगें 2011 के विरोध प्रदर्शनों का एक प्रमुख विषय थीं, जिसके परिणामस्वरूप मोरक्को ने एक नया संविधान बनाया और मोरक्को के सम्राट ने अपने कुछ अधिकार एक निर्वाचित प्रशासन को सौंप दिए। हालाँकि इसके पक्षधर स्कूलों और सरकार में भाषा के अपर्याप्त उपयोग की आलोचना करते हैं, मोरक्को पहला अमाज़ीग़ देश था जिसने औपचारिक रूप से अपनी स्वदेशी भाषा को मान्यता दी। सार्वजनिक सेवाओं में भाषा के लिए सैकड़ों आधिकारिक क्लर्कों को नियुक्त करने का वादा करने के अलावा, सरकार ने साल 2023 में अमज़ी भाषा का समर्थन करने के लिए बजट को 50% बढ़ाकर 300 मिलियन दिरहम ($ 30 मिलियन) कर दिया। वर्ष 2010 से, एक मोरक्को सार्वजनिक टेलीविजन चैनल अमज़ी संस्कृति के प्रचार के लिए समर्पित है।

दुनिया में कई जातीय पहचान हैं जो अलग-अलग देशों में फैली हुई हैं। इक्कीसवीं सदी में भी कई जातीय पहचानें हैं जो अपने देशों में उत्पीड़ित हो रही हैं जैसे कुर्द, उइगर, रोहिंग्या, बलूच और इसी तरह के अन्य। मोरक्को में अमाज़ीग़ पहचान का पुनरुत्थान एक राष्ट्र के इतिहास में एक जातीय पहचान की सामाजिक और राजनीतिक

आंदोलन की सफलता का एक उदाहरण है। मोरक्को के समाज में अमाज़ीग़ पहचान के महत्व को स्थापित करने में महत्वपूर्ण कदम 2011 में अमाज़ीग़ को आधिकारिक भाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता, अमाज़ीग़ नए साल को राष्ट्रीय अवकाश के रूप में मान्यता देना आदि थे। लेकिन इन प्रगति के बावजूद अभी भी कठिनाइयाँ हैं। यह पुनरुद्धार न केवल मोरक्को में सांस्कृतिक विविधता को मजबूत करता है बल्कि सांस्कृतिक प्रभुत्व के ऐतिहासिक मानदंडों को भी चुनौती देता है, जिससे एक अधिक समावेशी राष्ट्रीय पहचान को बढ़ावा मिलता है। अमाज़ीग़ संस्कृति की पूर्ण स्वीकृति और समावेश सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध से बाधित है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ अरबीकरण और इस्लामीकरण ऐतिहासिक रूप से प्रबल रहे हैं। इसलिए अमाज़ीग़ समुदायों को स्थायी रूप से सशक्त बनाने और उनके इतिहास को संरक्षित करने के लिए, उनके द्वारा शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक समावेश के क्षेत्रों में चल रहे काम महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ सूची

1. Abderrahman El Aissati. (2001). Ethnic Identity, Language Shift, and The Amazigh Voice in Morocco and Algeria. *Race, Gender & Class*, 57-69.
2. Ahfir Abdellah. (2018). *The Historical roots of Amazigh and its Arabization factors in Algeria* . Institutional Repository of the University of Alicante: https://rua.ua.es/dspace/bitstream/10045/81634/1/Revista-Argelina_06_06.pdf से पुनर्प्राप्त
3. Bruce Maddy-Weitzman. (2012). Arabization and Its Discontents: The Rise of the Amazigh Movement in North Africa. *The Journal of the Middle East and Africa*, 109-135.
4. Michael Peyron. (2020). *The Berbers of Morocco.* London: Bloomsbury Publishing.
5. *Morocco recognises Berber New Year as official holiday.* (04 May 2023). Al Jazeera: https://www.aljazeera.com/news/2023/5/4/morocco-recognises-berber-new-year-as-official-holiday से पुनर्प्राप्त
6. Phillip C. Naylor. (2009). *North Africa A History from Antiquity to the Present.* Austin: University of Texas Press.
7. Ramzi Rouighi. (2019). *Inventing the Berbers.* Philadelphia: University of Pennsylvania Press.

25

भारतेन्दु युग एवं काशी में लोकजागरण का प्रसार

अभिषेक कुमार यादव
शोधार्थी , महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

काश्यां मरणां मुक्तिः की आत्मा और चेतना के उत्कर्ष बिंदु की साक्षी नगरी काशी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लिए विख्यात रही है। वास्तव में 'सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' स्वयंमेव एक समग्र शब्दावली है। जिसके अतर्गत साहित्य, कला, भाषा,परंपरा, उत्सव, व्यंजन, जीवन शैली से लगायत सामूहिक व वैयक्तिक चेतना के विभिन्न स्वरूप सम्मिलित रहें हैं। इन तमाम पृष्ठभूमियों पर विदेशी आततायियों का प्रभाव समय-समय पर पड़ता रहा है, शेष भारत की तरह काशी भी अछूती नहीं रहीं। सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेजी हुकूमत के वर्चस्व के साथ काशी के सांस्कृतिक परिवेश में आमूल परिवर्तन होना प्रारंभ हुआ। इस परिवर्तन का सीधा प्रभाव साहित्य और भाषा पर हुआ। संभवत: यही कारण है कि बंगाली, उड़िया,तमिल, तेलुगू, जैसी भाषाओं में आत्मसम्मान, स्वाभिमान, क्षेत्रीय-राष्ट्रीय गौरव जैसे विषय पर केंद्रित साहित्य- रचना प्रतिरोध के रूप में सृजित हुई। बंगाली में रवींद्रनाथ टैगोर, तमिल में सुब्रमनियां भारती, उड़िया में लक्ष्मीकांता महामाया तो तेलुगू के गुरजादा अप्पाराव जैसे कवि लेखकों का प्रादुर्भाव हुआ। ये लगभग वही समय था जब कलकत्ता से शुरू हुई हिंदी पत्रकारिता काशी के साहित्यिक दरवाजे पर दस्तक देने लगी थी। 19वीं शताब्दी के अंत तक की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता व साहित्यिक जगत में बनने लगी थी। हिंदी भाषा में साहित्य रचना 19वीं शताब्दी के पूर्व भी हुई, कुछ लोकप्रिय भी रही, लेकिन उनमें क्षेत्रीय सांस्कृतिक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर था। मूल हिंदी भाषा और अन्य क्षेत्रीय प्रभावों से पृथक मौलिक साहित्य की रचना का श्रेय काशी निवासी भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है।

काशी ब्रिटिश नियंत्रण में एक समृद्ध वाणिज्य और कृषि हब के रूप में पहचान बना चुका था। 19वीं शताब्दी काशी के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण थी, उनमें से एक क्षेत्र संगीत का भी था।इस दौर में ठुमरी (टप्पा) बनारस घराने की सांगीतिक पहचान बन चुकी थी। "होरी, चैती, कजरी, सावनी, झूला जैसे लोकगीतों को शास्त्रीय संगीत में ढाल कर प्रस्तुति करना बनारस घराने की प्रमुख विधाओं में से एक था।"1

काशी के साहित्यकारों और पत्रकारों के अलावा 'रईसों' का भी एक अपना सामाजिक दायरा था। साहित्य व संगीत में रचनात्मक हस्तक्षेप भी था। इस परंपरा में कदाचित रईस साहित्यकार व कला प्रेमी भी रहें। जिन्होंने साहित्य और कला की साधना से काशी के सांस्कृतिक परिवेश को समृद्ध किया। इसी परंपरा के प्रमुख संवाहक थे- भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र। इसे विलक्षण प्रतिभा का द्योतक ही कहा जा सकता है कि एक तरफ जहां साहित्य, पत्रकारिता, शिक्षा, समाज सेवा जैसे कार्यक्षेत्र भारतेंदु बाबू के जीवन के अहम बिंदु बन चुके थे, तो वहीं दूसरी तरफ नाट्य कला शास्त्रीय संगीत, नृत्य, वाद्य जैसे क्षेत्र में भी उनकी पूर्णता व सलंग्नता आकर्षण का केंद्र थी। वास्तव में उनकी इसी विलक्षण योगदान ने उन्हें 'सांस्कृतिक पुरुष' के रूप में प्रतिष्ठा दी।2

भारतेंदु युगीन साहित्य की विशेषताओं में कुछ प्रमुख घटक जैसे- राष्ट्र-प्रेम, गद्य प्रारूप, हास्य व्यंग, जनवादी विचारधारा नई-नई लोकविधाओं का प्रयोग शामिल है। रीतिकालीन परिपाटी की कविताओं का अवसान व नव्य विचारधारा, जन आंदोलनों के इस अभ्युदय काल में साहित्य विशेषत: हिंदी साहित्य ने प्राचीन पारंपरिक तौर-तरीकों को तोड़ा। ब्रितानी हुकूमत का विरोध, भ्रष्टाचार पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करने का तरीका हो या फिर गद्य शैली में वर्णनात्मक तरीके से किसी संदर्भ विशेष की व्याख्या करना हो, इन सभी में साहित्य ने भारतेंदु युगीन सृजन शैली का अनुशरण किया। वास्तव में आलोचना लेखन शैली का प्रादुर्भाव भी इसी युग की देन है। तत्कालीन काशी के सांस्कृतिक परिवेश में नाट्य रचना उस संजीवनी की तरह थी जिसके उपयोग से मृतप्राय हो रही साहित्यिक अंचलों में नया जीवन प्रस्फुटित हुआ। भारतेंदु युगीन साहित्य में राष्ट्र प्रेम महज प्रेम न होकर चिंता की एक ऐसी अभिव्यक्ति दिखती है जिसमें कर्तव्य से विमुख होते नागरिकों के लिए स्पष्ट संदेश निहित होता है। इसकी एक बानगी उनके नाटक 'भारत दुर्दशा' में इस तरह है-

रह्यो कलंक न भारत नामा।
क्यौं रे तू बारानसि धामा।
सब तजि कै भजि कै दुख भारी।
अजहुं बसत करि भुव सुखकारी।।
अरे अग्रवन तीरथ राजा।
तुमहुं बचे अबलौं तजि लाजा।।3

भारतेंदु युगीन साहित्यकार पंडित प्रताप नारायण मिश्र का साहित्य सृजन भी कमोबेश इसी घटक का उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके नाटक 'भारत दुर्दशा रूपक' की पहली पंक्ति की पहली दृश्य में ही उद्बोधित है-

"भारत सोता है, भारत की स्त्री विद्या उसको जगाती है..."4

भारतेंदु युग के एक महत्वपूर्ण साहित्यकार प्रेमघन अंग्रेजी शिक्षा और भारतीय सामाजिक परंपरा के बीच के द्वंद्व को इस प्रकार कागज पर उकेरते हैं-

सबै विदेशी वस्तु नर,गति रति रीत लखात।
भारतीयता कछु न अब भारत में दरसात।।5

इसी युग के एक अन्य साहित्यकार बाबू राधाकृष्णदास भारत पर मुस्लिम आततायियों की अपेक्षा ब्रितानी हुकूमत को भारतीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण बतलाते हैं, परंतु इस अंग्रेजीयत की महिमा मंडन करने के पीछे वह प्रलापी व विलासी भारतीयों को गहरी तंत्रा से झकझोरने का भी कार्य करते है-

मातृहीन सब प्रजावृंद करि, जगत रुलाई।
मातु विजयिनी हाय हाय सुरलोक सिधाई ।।
भई अनाथिनि दिग दिगंत लौं पृथ्वी सारी।
सब भूमंडल आजु शोक की मूरति धारी ।।
हाय दया की मूर्ति हाय विकटुरिया माता।
हा ! अनाथ भारत को दुख में आश्रयदाता ।।6

काशी के तत्कालीन शैक्षणिक पृष्ठभूमि से अंग्रेजी भाषा में दक्षता प्राप्त किए राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' भारतेंदु युगीन वरिष्ठ साहित्यकार थे। यद्यपि उनके साहित्य और विचारधारा का विरोध भारतेंदु हरिश्चंद्र सहित अन्य प्रमुख साहित्यकारों वह समाजसेवियों ने मुखरता से किया। परंतु फिर भी उनकी रचनाओं में अधिकतर भारत पर मुस्लिम आक्रमणकारियों और इसके प्रतिकूल प्रभाव का वर्णन दर्ज है उनकी रचना 'इतिहास तिमिरनाशक' एक तरफ जहां इस्लामी प्रभाव का मुखर विरोध करती है तो वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज और अंग्रेजीयत की हिमायती होती हुई दिखती है। भारत में अंग्रेज़ों के आने से पहले के सामाजिक इतिहास पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा- "ब्राह्मणों की स्वार्थनिष्ठा ने आर्यों को वैदिक से बौद्ध बनाया, बौद्धों ने ऐसा धर्म चलाया कि क्षत्रियों को बनिया कर दिखलाया। मुसलमानों की बेरहमी, सख़्ती, जबर्दस्ती और ऐशपरस्ती ने दोनों को डुबाया।"7

भारतेंदु बाबू के अन्यत्रम मित्र ठाकुर जगमोहन सिंह साहित्य में रूप माधुर्य, वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध आलोचक डॉक्टर रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि इस काल में ठाकुर जगमोहन सिंह जैसा हिंदी कवि या लेखक नहीं मिलता, जिसकी रचना में ऐसी विविधमयी, भावमयी प्रकृति सृजित होती ही है।8

यद्यपि ठाकुर जगमोहन सिंह का साहित्य विशेषकर कविताओं में श्रृंगार पक्ष, प्रकृति प्रेम मुखरता से उद्घाटित होता है; लेकिन फिर भी भारतेंदु युगीन साहित्य की चारित्रिक विशेषताओं से इनका साहित्य भी अछूता नहीं रहा। इसे राष्ट्र चेतना से प्रभावित साहित्य सृजन का प्रमाण ही कहेंगे कि जब बाबू जगमोहन सिंह अनुवादित साहित्य की रचना करते हैं तो चुनाव अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि बायरन की कविता 'प्रिजनर ऑफ शिलन' करते हैं दरअसल इस कविता की पृष्ठभूमि में स्वाधीनता की चेतना है। उन्होंने कविता का अनुवाद 'शिलन का बंदी' नाम से किया है। इस कविता की कुछ अनुवादित पंक्तियां दृष्टब्य हैं-

सात खंभ गाथिक साँचे के रहे पुराने भारी है।
शिलन भुँइहरे जो गम्भीर झुपी अँधियारी कारी है।।
प्रति खंभन में लोह मुंदरी जाए इक-इक साँकर है।
खनखनात भारी अति कारी दंता साहेत मुख जाकर है।।
देखु अजी वाके बाँके ए पैने दाँत लखाँय ।
जो लौं प्रान रहे तन मेरे तो लौं कछु न मिटाँय ।।9

अपने सामाजिक सांस्कृतिक महत्व के लेख 'भ्रूण हत्या' में भारतेंदु बाबू लिखते हैं कि यह न हम ने कभी कहा है और न कहेंगे कि बल से सबका पुनः विवाह हो। परन्तु जो कन्या ही दशा में विधवा हो गई हैं व जिन की काम चेष्टा हो उन का विवाह क्यौं न हो? इसीलिए कि हर महीने एक सहस्र आर्य सन्तति नष्ट हो? क्या हमारे धर्माभिमानी पंडित और आर्य्यगण उस प्रकृति के नित्य और प्रबल प्रवाह को भी अपने हठ से रोकना चाहते हैं? वह कदापि न रुकैगा। समुद्र का वेग किस ने रोका है। सूर्य्य नित्य निकलै ही गा, वर्षा हो ही गी। वैसे ही मनुष्य के देह के मज्जा शुक्र इत्यादि अपना वेग करै ही गे। बड़े ऋषि मुनि जिस वेग को नहीं रोक सके उस वेग को आप इस काल की अबलाओं से रुकवाना चाहते हैं।10

उक्त संदर्भ से एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि भारतेंदु बाबू अपने युग ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य जगत के प्रथम प्रगतिधर्मी रचनाकार थे। उपरोक्त संदर्भ में जिस विषय को भारतेंदु बाबू उद्धृत कर रहें हैं वह निश्चित ही तत्कालीन

साहित्यिक कालखंड की विषय वस्तु नहीं थी। रूढ़िवादिता का विरोध और प्राकृतिक संयोजनो की पहचान करना एक ऐसे ही साहित्य की रचना की पृष्ठभूमि तैयार करता है जो लोकजागरण के प्रसार से ओत-प्रोत है ।

साहित्य और ललित कलाओं में 19वीं शताब्दी में पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है। लेकिन यह साहित्य सृजनता की उच्चस्थ स्थिति का प्रमाण है कि बिना नारीवाद का चोला ओढ़े भारतेंदु बाबू समाज के प्रत्येक वर्ग को अपने साहित्य में स्थान देते हैं। एक अन्य उदाहरण दृष्टब्य है- याद रक्खो 'जिस का बाप जीता है। वह हराम का नहीं कहलाता' फिर उन के दोष भी छिप जायंगे। इसमें आप लोगों को और बहुत कुछ करना भी नहीं है केवल इतना ही करना है कि जो पुनर्विवाह करै उस को जाति से बाहर मत करो और न उसकी निन्दा करो। जो कोई पूछने आवै उस का अनुमोदन करो तो इसका रिवाज आप से आप हो जाय।11

19वीं शताब्दी के मध्य में विशेष कर स्वाधीनता संग्राम की क्रांति के बाद ब्रितानी हुकूमत के बढ़ते दबाव और जन विरोधी नीतियों का विरोध उन्होंने अपनी कृतियों में मुखरता से किया है। हास्य- व्यंग के साथ सीधा चुभते कटाक्ष का एक उदाहरण पढ़ने योग्य है-

हे मिष्टाभाषिण ! हम मातृभाषा त्याग कर के तुम्हारी भाषा बोलेंगे, पैतृक धर्म छोड़ के ब्राह्य धर्मावलम्ब करेंगे, बाबू नाम छोड़ कर मिस्टर नाम लिखवायेंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो तुम को प्रणाम करते हैं।

हे सुभोजक! हम चावल छोड़ के पावरोटी, निषिद्धमांस बिना हमारा, भोजन ही नहीं बनता, कुकुट हमारा जलपान है, अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम को चरण में रक्खो हम तुम को प्रणाम करते हैं।12

भारतेंदु युगीन साहित्यकारों की रचनाओं की प्रमुख विशेषताओं में से एक है लोकजागरण का प्रसार होना। वस्तुत: विषय या मुद्दे की अतिरेखता से परे यह जनवादी विषयवस्तु को दृढ़ता से उठाने को लेकर है। तभी तो इन विषय वस्तुओं में अधिकार, मातृभाषा से सरोकार, अंग्रेजियत का विरोध, गुलामी व चापलूसी मानसिकता का उपहास, स्वतंत्रता, आत्मबल, जड़वादी इतिहास का तिरस्कार, मिथ्या सांस्कृतिक परंपरा अभिमान स्पष्ट रूप से दिखते हैं। गौरतलब है कि रीतिकालीन परिपाटी को दरकिनार करते हुए इस युग के रचनाकारों ने एक नये भाषा संस्कार को पैदा तो किया ही साथ ही साथ साहित्य लेखन में भी नई परंपरा का बीजारोपण किया।

भारतेंदु युगीन पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने अपने साहित्यिक निबंध 'काल' में लिखते हैं कि यों उद्योग करना पुरुष का धर्म है। उसमें लगे रहो। आलस्य बड़ी बुरी बात है। उसे छोड़ो पर यह भी स्मरण रखो काल बड़ा बली है। वह अपने अवसर पर सब कुछ करा लेता है। या यों कहिए कि अपने आप कर लेता है। आप बड़े उद्योगी हैं पर तन मन धन सब निछाबर कर दीजिए हम आपकी ओर दृष्टि भी न करेंगे, साथ देना कैसा? हम बड़े भारी आलसी हैं, पर जब पास पल्ले कुछ न रहेगा और स्वाभाविक आवश्यकताएँ सतावैगी तब विवश हो, हाथ पाँव अथवा जिह्वा किसी काम में लगावैंगे, जिससे निर्वाह हो। इसी से बुद्धिमान लोग कह गये हैं कि मनुष्य को काल का अनुसरण करना चाहिए-जमाने के तेवर पहचानना चाहिए।13

अपने निबंध 'मिडिल क्लास' में पंडित प्रताप नारायण मिश्र गुलामी और नौकरी करने के हिमायती लोगों पर कटाक्ष करते हुए लिखते है कि इन बेचारे पेटार्थियों को विद्या के बड़े-बड़े विषयों में श्रम कराना मानो चींटी पर हाथी का हौदा रखना है। बिचारे अपने धंधे से भी गए, बड़े विद्वान भी न भए। मिडिल शब्द का अर्थ ही है अधविच, अर्थात्

आधे सरग त्रिशंकु की भाँति लटके रहो, न इत के न उत के ! इससे तो सर्कार की मंशा यही पाई जाती है कि हिंदुस्तानी लोग नौकरी की आशा छोड़ें, पर इन गुलामी के आदियों को समझावे कौन?14

सामाजिक बंधनों और धर्मांधता के अव्वल विरोधी पंडित मिश्र के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने गोरक्षा के संबंध में भी कई बार खुले मंच से अपने विचार प्रकट किए थे। कन्नौज के एक व्याख्यान में उनका कथन है-

बां बां करि तृण दाबि दांत सों
दुखित पुकारत गाई है! 15

कहते हैं कि इस लावणी में करुण रस का इतना अतिरेक था कि कुछ कसाइयों ने गौ हत्या से तौबा कर लिया।

भारतेंदु युगीन साहित्यकार प्रेमघन अपनी रचनाओं में लोकजागरण के मुद्दों को मुखरता से उठाते हैं। अपने सामाजिक लेख 'भारत में सिविल सर्विस परीक्षा' में अंग्रेजी परीक्षा प्रणाली का विरोध करते हुए लिखते हैं- इस परीक्षा के विलायत में होने और बिना उसके भारतीयों को उच्च पदाधिकार न प्राप्त होने के कारण देश की बड़ी हानि होती है, क्योंकि बड़े-बड़े वेतन लेने वालें राज्य कर्मचारी प्रायः परदेशी ही होते, जो कि हमारी गाढ़ी कमाई के रुपयों की गठरियाँ बाँध बाँध प्रत्येक मास में सात समुद्र पार कई हजार कोस पर ले जाकर पटका करते हैं; और इस प्रकार निरन्तर हमारा देश न केवल द्रव्य ने हीन हो दरिद्र ही होता, प्रत्युत राज्य प्रबन्ध चातुरी और नाना प्रकार के अनुभव युक्त सज्जनों से शून्य होता चला जाता है,जोकि कुछ न्यून पश्चात्ताप का विषय नहीं है।16

19वीं शताब्दी के मध्य में पनप रहे जातीय धार्मिक झगड़ों का उल्लेख प्रेमघन अपने सामाजिक लेख 'भारत के जातीय झगड़े का समनोपाय चिंतन' में करते हैं। तत्कालीन सामाजिक वैमनस्य पर चिंता जाहिर करते हुए प्रेमघन लिखते हैं कि अब तक केवल बकराईद के अवसर पर झगड़े की आशंका होती थी, अब नित्य ही बनी रहती है, और यदि यही दशा कुछ दिन और रही तो कदाचित् मस्जिदों में बाँग देने और मन्दिरों में शंख-घड़ी बजाने से नित्यप्रति झगड़ा होता ही रहेगा, जो कि देश के निमित्त नितान्त हानिकारक है।17

इन उद्धरणों से यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है कि तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य में गोवध से जुड़े मुद्दे जनाक्रोश का रूप ले चुके थे। इन्हीं जनाक्रोशों को भारतेंदु युगीन रचनाकारों ने अपने लेख का केंद्रीय विषयवस्तु भी बनाया।

एक अन्य भारतेंदु युगीन साहित्य सृजक बाबू राधाकृष्णदास यू तो प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति से प्रभावित दिखते हैं, लेकिन उनकी साहित्य सर्जना में युग़ बोध व जन बोध भी उसी स्पष्टता के साथ परिलक्षित होता है। सरस्वती पत्रिका के संपादन में भी बड़ी भूमिका निभाने वाले बाबू राधाकृष्णदास के रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितिकी और उसके विषम प्रभाव का भी संदर्भ मुखरित होता है-

हाय! हाय! यह बादल तो उड़ करके निकल गए उस ओर।
आंखे पथरा गई न बरसे क्यों तुम ऐसे भए कठोर।
मरे तो आप हैं हम सब क्यों मार रहे हौ तरसाकर।
अब तो दया करो दुख नासो, सरसाओ कुछ बरसाकर ।।
बोल उठा एक, मीठी सोंधी लपक इधर से आती है।
इठला इठला हवा और कुछ ठंडी खबर सुनाती है।।
झीसी सी कुछ पड़ी न घबड़ाओ पानी भी आता है।

आनंदघन कर कृपा तुम्हारे सब दुख दूर बहाता है।।18

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' हालांकि अपने समकालीन साहित्यकारों की तरह जनवादी विचारधारा को लेकर उतने मुखर तो नहीं थे, लेकिन रूढ़िवादिता से न केवल उनका साहित्य बल्कि स्वयं सितारेहिंद भी कोसों दूर रहें। 19वीं शताब्दी के मध्य तक तमाम धार्मिक आंदोलन हुए इनमें से किसी भी आंदोलन को सितारेहिंद का समर्थन नहीं मिला। इन्हीं आंदोलनों की कड़ी में एक आंदोलन थियोसोफिकल भी था। जिसका आधार प्राचीन रूढ़िवादी भारतीय मान्यताओं पर केंद्रित था इसकी प्रणेता ब्लॉवेस्की का दावा तो यहां तक था कि वो मृत आत्माओं से भी बातें कर सकती थी। सितारेहिंद इसकी भर्त्सना करते हुए लिखते हैं कि ब्लॉवेस्की के चमत्कारों के पीछे भागने वाले शिक्षित 'अधकचरी' समझ के हैं। व्यंग्यात्मक लहजे में देश के भेड़िया धसान का जिक्र करते हुए सितारेहिंद लिखते हैं कि इस देश में बात जितनी नामुमकिन होती है उस पर विश्वास उतना ही गहरा होता है।19

यदि समेकित रूप से कहा जाए तो भारतेंदु युगीन लोकजागरण का केंद्र काशी ही था। सितारेहिंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमघन, बाबू राधाकृष्णदास काशी के परिच्छेद में ही निवास करते थे। यह भी कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि ठाकुर जगमोहन सिंह और प्रताप नारायण मिश्र जैसे नायकों पर भारतेंदु मंडल और उसके क्रांतिकारी परिवेश का हिंदी प्रभाव स्पष्ट था। मूलत: उन्नीसवीं शती के लोकजागरण का केंद्र 'काशी' ही थी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. ज्योति सिंहा, बनारसी ठुमरी की परम्परा में ठुमरी गायिकाओं की चुनौतीयां एवं उपलब्धियां, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला, पृ.123
2. डॉ. ज्योति सिंहा, बनारसी ठुमरी की परम्परा में ठुमरी गायिकाओं की चुनौतीयां एवं उपलब्धियां, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला, पृ.363
3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली भाग – 1,संपादक- ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2022, पृ.134
4. प्रतापनारायण मिश्र,प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग 4, सम्पादक- डा. चंद्रिका प्रसाद शर्मा,भारतीय प्रकाशन संस्थान,2001 पृ.13
5. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन',प्रेमघन ग्रन्थावली भाग-1 सम्पादक – डा. राजीव रंजन उपाध्याय,प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2014,पृ.21
6. राधाकृष्णदास, बाबू राधाकृष्णदास, जीवन, समय और साहित्य, सम्पादक- डॉ प्रतिभा अग्रवाल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2022 पृ.11
7. वीर भारत तलवार, भारतीय साहित्य के निर्माता राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद,' साहित्य अकादमी 2017,पृ.49
8. ठाकुर जगमोहन सिंह, ठाकुर जगमोहन सिंह समग्र. संपादक- रमेश अनुपम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2014, पृ.7

9. ठाकुर जगमोहन सिंह, ठाकुर जगमोहन सिंह समग्र. संपादक- रमेश अनुपम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2014, पृ.20
10. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली भाग – 6,संपादक- ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2022, पृ.93
11. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली भाग- 6,संपादक- ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2022, पृ.98
12. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली भाग – 6,संपादक- ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2022, पृ.159
13. प्रतापनारायण मिश्र,प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग 2, सम्पादक- डा. चंद्रिका प्रसाद शर्मा,भारतीय प्रकाशन संस्थान,2001 पृ.100
14. प्रतापनारायण मिश्र,प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग 3, सम्पादक- डा. चंद्रिका प्रसाद शर्मा,भारतीय प्रकाशन संस्थान,2001 पृ.177
15. प्रतापनारायण मिश्र,प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग 4, सम्पादक- डा. चंद्रिका प्रसाद शर्मा,भारतीय प्रकाशन संस्थान,2001 पृ.125
16. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन',प्रेमघन ग्रन्थावली भाग-4 सम्पादक – डा. राजीव रंजन उपाध्याय,प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2014,पृ.393
17. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन',प्रेमघन ग्रन्थावली भाग-4 सम्पादक – डा. राजीव रंजन उपाध्याय,प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2014,पृ.453
18. राधाकृष्णदास, बाबू राधाकृष्णदास, जीवन, समय और साहित्य, सम्पादक- डॉ प्रतिभा अग्रवाल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2022 पृ.4
19. वीर भारत तलवार, भारतीय साहित्य के निर्माता राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद,' साहित्य अकादमी 2017,पृ.46

बुनियादी शिक्षा और शैक्षणिक गणित के शिक्षण के लिए एथनोमैथमेटिक्स साहित्य की समीक्षा

पंकज शर्मा
शोधार्थी , शिक्षा संकाय, दिल्ली विशविद्यालय
डॉ सुनील कुमार
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विशविद्यालय

एथनोमैथमेटिक्स ने विश्व भर में गणित शिक्षा के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। भारत में भी यह तेजी से लोकप्रिय हो रहा है, और प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, गणित, व विज्ञान के छात्रों के उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों में शामिल होने की क्षमता रखता है। यह शिक्षकों की गणित शिक्षण पद्धतियों को बदलने की ताकत भी रखता है (मिरल्स एट अल., 2013, पृ. 167-190)। *इसका प्रभाव भारत की राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा, 2005 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020* में भी देखा जा सकता है, जहाँ बहुसांस्कृतिकता और लैंगिक समानता के साथ भारतीय गणितीय परंपराओं को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर बल दिया गया है।

एथनोमैथमेटिक्स की अवधारणा ब्राजील के गणितशास्त्री एमब्रोसीओ द्वारा दी गई थी, और तब से इसने दुनिया भर में संस्कृति और गणित के बीच संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में, यह क्षेत्र अपेक्षाकृत नया है, लेकिन विभिन्न शिक्षाविदों, शोधकर्ता और गणितज्ञ। इस पर सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। प्राचीन भारत में सांस्कृतिक विविधता और गणितीय अभ्यास का उच्च स्तर रहा है, फिर भी आज कुछ ही संस्थान इस दिशा में कार्यरत हैं। उदाहरणस्वरूप, आईआईटी हैदराबाद का सूचना प्रयोगिक विभाग एथनोमैथमेटिक्स के सिद्धांतों पर आधारित सामग्री विकसित कर रहा है। गणित शिक्षण के राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र (2006) में उल्लेख है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक शिक्षा से वंचित लोग भी अपनी रोजमर्रा की गतिविधियों में गणित का व्यापक उपयोग करते हैं। इसे स्थानीय स्तर पर स्वदेशी, सांस्कृतिक गणित के नाम से जाना जाता है। पांडेय एट अल (2017, पृ.17-26) ने अपने शोध पत्र में कुम्हार समुदाय की पारंपरिक गतिविधियों के माध्यम से गणित शिक्षण में एथनोमैथमेटिक्स की प्रासंगिकता को रेखांकित किया है, जो सांस्कृतिक विविधता को गणित शिक्षा में शामिल करने का महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है।

शर्मा और वर्मा, (2022, पृ.86-95) ने "डोगरा समुदाय के पारंपरिक खेल में एथनोमैथमेटिक्स " पर अपने शोध में गणितीय तत्वों को उजागर किया है। अंततः, एथनोमैथमेटिक्स गणित को केवल अकादमिक विषय तक सीमित न रखकर, समाज और संस्कृति के साथ जोड़कर एक समग्र शिक्षण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

एथनोमैथमेटिक्स पर किए गए शोध पत्रों और लेखों में विचारधाराओं की विविधता के कारण इस विषय की सटीक व्याख्या करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इसके प्रमुख संस्थापक डी'अम्ब्रोसियो (1990) के अनुसार,

एथनोमैथमेटिक्स को गणित के विभिन्न रूपों के अध्ययन के रूप में देखा जाता है, जो विभिन्न सांस्कृतिक समूहों और विचारधाराओं से उत्पन्न होता है। उन्होंने एथनोमैथमेटिक्स शब्द को डी'अम्ब्रोसियो (1985, पृ. 44-48) में सांस्कृतिक समूहों की गणितीय प्रथाओं और विचारों के अध्ययन के रूप में पेश किया। डी'अम्ब्रोसियो (1990, पृ. 443-455) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा कि 'एथनो' शब्द सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को दर्शाता है, जैसे कि भाषा, मिथक, और प्रतीक। 'मैथेमा' शब्द का अर्थ है जानना, समझना, मापना, वर्गीकृत करना, और अनुमान लगाना। 'टिक्स' शब्द तकनीकी और व्यावहारिक पक्ष से संबंधित है।

इस संदर्भ में अन्य शोधकर्ताओं ने भी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। गे और कोल (1967) ने अपने शोध पत्र में एक रचनात्मक गणित शिक्षा की वकालत की, जिसमें स्वदेशी गणित को प्रारंभिक बिंदु के रूप में उपयोग करने का सुझाव दिया गया। वहीं, गेर्डेस (1985, पृ.15-20) ने यह तर्क दिया कि समाज की दैनिक गतिविधियों में गणितीय तत्व होते हैं, जिन्हें मुख्यधारा की गणितीय शिक्षा में मान्यता नहीं दी जाती।

भारत के संदर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीत (2020) में स्वदेशी ज्ञान को शिक्षा के प्रमुख अंग के रूप में शामिल करने पर जोर दिया गया है। यह नीति भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध विरासत को आगे बढ़ाने का प्रयास करती है, जहां प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य आत्म-ज्ञान और मुक्ति की प्राप्ति थी। नई शिक्षा नीति में एथनोमैथमेटिक्स के सिद्धांतों को भारतीय लोकाचार के साथ जोड़कर पाठ्यक्रम में शामिल करने का सुझाव दिया गया है। इस शोध में, शोधकर्ता ने एथनोमैथमेटिक्स को औपचारिक और शैक्षणिक गणित के शिक्षण के संदर्भ में वर्गीकृत किया है, जो इस विषय के विभिन्न पहलुओं और इसे शिक्षण पद्धति के रूप में अपनाने के संभावित लाभों को उजागर करता है।

1. एथनोमैथमेटिक्स में गांधी की बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता

एथनोमैथमेटिक्स और गांधी जी की बुनियादी शिक्षा के बीच एक गहरा और सामंजस्यपूर्ण संबंध देखा जा सकता है, जो दोनों ही भारतीय समाज के पारंपरिक मूल्यों और व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित हैं। महात्मा गांधी ने शिक्षा को केवल साक्षरता के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं और राष्ट्रीय आदर्शों से जोड़ा। उन्होंने शिक्षा में हस्तशिल्प, जैसे बुनाई, मिट्टी के बर्तन, कढ़ाई आदि, को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया, ताकि शिक्षा समाज के हर वर्ग तक पहुँच सके और उसे उपयोगी बनाया जा सके। यह दृष्टिकोण एथनोमैथमेटिक्स की बुनियाद से मेल खाता है, जो सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से प्रासंगिक गणितीय ज्ञान को प्राथमिकता देता है। गौरी (1958, पृ. 45-60) द्वारा बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को सत्य, सामाजिक न्याय, अहिंसा और मातृभाषा के आधार पर परिभाषित किया गया, जो एथनोमैथमेटिक्स के उद्देश्य से भी मेल खाते हैं। एथनोमैथमेटिक्स का प्राथमिक उद्देश्य सहिष्णुता, एकता और सामाजिक सहयोग को बढ़ावा देना है, जैसा कि एम्ब्रोसियो (1997) ने उल्लेख किया। यह कट्टरता और असहिष्णुता से मुक्त समाज का निर्माण करना चाहता है, जो गांधी जी के आदर्शों के अनुरूप है।

भारत में आज भी एथनोमैथमेटिक्स का सांस्कृतिक महत्व बरकरार है, खासकर आदिवासी और गैर-कुलीन समुदायों के बीच। ये समुदाय अपने दैनिक जीवन में पारंपरिक गणितीय प्रथाओं का उपयोग करते हैं, जैसे शिल्पकारों और खुदरा व्यापारियों द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों, त्यौहारों, कला, खेलकूद और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में भी

एथनोमैथमेटिक्स का व्यापक उपयोग है। यह गणित पीढ़ी दर पीढ़ी पारंपरिक रूप से सिखाया गया है, जो समाज की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में सहायक है (डी एम्ब्रोसियो, 2017)।

गांधी जी की बुनियादी शिक्षा, जो कला और हस्तशिल्प जैसे पारंपरिक ज्ञान को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा मानती है, एथनोमैथमेटिक्स के सिद्धांतों से पूरी तरह मेल खाती है। दोनों ही शिक्षा को मानव व्यवहार और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने के साधन के रूप में देखते हैं। दोनों में विविधता, नैतिकता, एक दूसरे के प्रति सम्मान, एकजुटता और सहयोग पर जोर दिया गया है।

अतः, कहा जा सकता है कि एथनोमैथमेटिक्स के सिद्धांत गांधी जी की बुनियादी शिक्षा की विचारधारा के अनुरूप हैं, और इनका एकीकरण शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करता है।

2. क्या एथनोमैथमेटिक्स को पाठ्यक्रम में शैक्षणिक गणित कि जगह लेनी चाहिए ?

एथनोमैथमेटिक्स के पाठ्यक्रम को लेकर उठाए गए प्रश्न इस विषय की जटिलता को उजागर करते हैं, खासकर जब इसे औपचारिक शैक्षणिक गणित के साथ जोड़ा जाता है। एथनोमैथमेटिक्स का उद्देश्य केवल गणित को सिखाना नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक, सामाजिक, और रोजमर्रा के जीवन में गणित की भूमिका को समझने पर आधारित है। इसकी तुलना में, शैक्षणिक गणित अक्सर कठोर, औपचारिक और अमूर्त होता है, जिसे कुछ शोधकर्ता दमनकारी मानते हैं क्योंकि यह मौजूदा शक्ति संबंधों और आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं को बनाए रखने में मदद करता है (डी'अम्ब्रोसियो, 1994; एंडरसन, 1990)।

डी'अम्ब्रोसियो (1994) का तर्क है कि शैक्षणिक गणित अक्सर अभिजात वर्ग के हितों को बनाए रखने के लिए कार्य करता है और इस कारण इसे एथनोमैथमेटिक्स से अलग देखना चाहिए। वे शैक्षणिक गणित को एक औपचारिक और कठोर प्रणाली मानते हैं, जो सामान्य लोगों की सांस्कृतिक और सामाजिक जरूरतों से अलग होती है। इसी दृष्टिकोण से, एथनोमैथमेटिक्स एक ऐसा गणित है जो रोजमर्रा की गतिविधियों में निहित है और विभिन्न सांस्कृतिक समूहों द्वारा उपयोग किया जाता है, जबकि शैक्षणिक गणित को अक्सर पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के एक भाग के रूप में देखा जाता है, जो सभी संस्कृतियों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता।

एथनोमैथमेटिक्स के समर्थकों का मानना है कि शैक्षणिक गणित की अमूर्तता और कठोरता इसे वास्तविक दुनिया से काट देती है। उदाहरण के लिए, बोरबा और सकॉस्मॉस (1997, पृ.17-23) ने तर्क दिया कि गणितीय भाषा और नीतियां लोगों पर अधिकार जमाने के लिए उपयोग की जाती हैं और गणित की निश्चितता एक मिथक है जिसे चुनौती दी जानी चाहिए। इसी प्रकार, एंडरसन (1990, पृ. 348-359) ने शैक्षणिक गणित को पूंजीवाद के लिए एक उपकरण बताया, जो सामाजिक और राजनीतिक दमन में सहायक होता है। इस दृष्टिकोण से, एथनोमैथमेटिक्स न केवल गणितीय ज्ञान को बल्कि सामाजिक न्याय और समानता को भी बढ़ावा देता है।

हालांकि, कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि शैक्षणिक गणित को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए, पॉवेल और फ्रैंकेनस्टाइन (1997, पृ. 249- 260) का तर्क है कि एथनोमैथमेटिक्स के माध्यम से समस्याओं को हल करने के कौशल को विकसित करना जरूरी है, लेकिन इसके साथ ही औपचारिक शैक्षणिक गणित भी छात्रों

की शैक्षणिक आवश्यकताओं और समाज की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण है। गणित को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से जोड़कर पढ़ाने से छात्रों को यह एहसास होता है कि गणित सभी का है और इसका विकास विभिन्न संस्कृतियों द्वारा किया गया है (स्वेट्ज़, 1997)।

आखिरकार, एथनोमैथमेटिक्स और शैक्षणिक गणित के बीच संबंध को समझने के लिए, यह देखना जरूरी है कि दोनों को कैसे एकीकृत किया जा सकता है। जावरस्की (1991) और अर्नेस्ट (2012) जैसे शोधकर्ताओं ने एथनोमैथमेटिक्स को सामाजिक निर्माण और सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना, जबकि औपचारिक शैक्षणिक गणित की कठोरता से इसे विपरीत बताया। हालांकि, यह भी तर्क दिया जा सकता है कि एथनोमैथमेटिक्स और शैक्षणिक गणित को एक दूसरे का पूरक बनाया जा सकता है, जहां औपचारिक गणितीय कौशल और सांस्कृतिक प्रथाओं के बीच संतुलन स्थापित हो।

अतः, एथनोमैथमेटिक्स पाठ्यक्रम में शैक्षणिक गणित की भूमिका को लेकर विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कुछ शोधकर्ता इसे दमनकारी और सांस्कृतिक रूप से अप्रासंगिक मानते हैं, जबकि अन्य इसका उपयोग व्यावहारिक समस्याओं को हल करने और औपचारिक कौशल विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। हालांकि, यह स्पष्ट है कि एथनोमैथमेटिक्स का उद्देश्य केवल गणित को एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षण और सामाजिक न्याय के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

3. क्या मानव संस्कृतियों की प्रकृति समझने के लिए एथनोमैथमेटिक्स को गणित पाठ्यक्रम के पूरक के रूप में शामिल किया जाना चाहिए?

गणित के ऐतिहासिक विकास में विभिन्न संस्कृतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, और इसका प्रमाण विभिन्न समाजों की दैनिक गणितीय गतिविधियों से मिलता है। यह गलत धारणा है कि गणित केवल एक पश्चिमी सांस्कृतिक घटना है, क्योंकि गणितीय अवधारणाओं का विकास विभिन्न सभ्यताओं की आवश्यकताओं और संदर्भों के अनुसार हुआ है (काट्ज़, 1994)। एथनोमैथमेटिक्स के शोध के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि कैसे अलग-अलग समुदायों ने अपनी अनूठी जरूरतों के अनुसार गणितीय विचारों को विकसित और अनुकूलित किया।

एथनोमैथमेटिक्स पाठ्यक्रम सामाजिक गणित की गहरी समझ में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इसके माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि कैसे विविध संस्कृतियों और जनजातियों ने गणितीय अवधारणाओं को अपने सामाजिक ढांचे और जीवनशैली में शामिल किया है। इसके साथ ही, गणित के विकास की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है, ताकि हम यह समझ सकें कि विभिन्न संस्कृतियों में गणितीय ज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ और विकसित हुआ।

आज के औद्योगिक युग में पारंपरिक संस्कृतियाँ और उनकी मूल्यवान गणितीय विरासत धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही हैं। इसे बचाना और संचारित करना हमारा सामाजिक और शैक्षिक कर्तव्य है। इसके लिए हमें स्थानीय ज्ञान परंपराओं और समुदायों द्वारा विकसित गणितीय ज्ञान का संरक्षण करना होगा। यह न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है, बल्कि शिक्षकों और छात्रों को सांस्कृतिक बहुलवाद को समझने और सराहने में भी मदद करेगा।

एथनोमैथमेटिक्स का एक मुख्य उद्देश्य जनजातीय और पारंपरिक संस्कृतियों में गणितीय सोच और ज्ञान की जांच करना होना चाहिए। इससे छात्रों को मानव सरलता और इसकी विभिन्न सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की विविधता का मूल्य समझने का अवसर मिलेगा। हालांकि, यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि औपचारिक आधुनिक गणित पाठ्यक्रम में एथनोमैथमेटिक्स को पूरी तरह प्रतिस्थापित करना सांस्कृतिक भेदभाव का कारण बन सकता है। दोनों के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है ताकि गणित शिक्षा समावेशी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील बने, जबकि छात्रों को औपचारिक गणितीय ज्ञान से भी वंचित न किया जाए। अतः, एथनोमैथमेटिक्स का उद्देश्य विविध संस्कृतियों की गणितीय सोच को समझकर शिक्षा में सांस्कृतिक संवेदनशीलता लाना है, न कि औपचारिक गणित को हटाना।

4. क्या सीखने की परिस्थितियाँ तैयार करते समय एथनोमैथमेटिक्स को ध्यान में रखा जाना चाहिए?

डी'अम्ब्रोसियो (1994) के अनुसार सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण विधियाँ छात्रों की "संज्ञानात्मक क्षमता" "गणित सीखने की क्षमता" और "गणित सीखने के प्रति दृष्टिकोण" को मजबूत करती हैं। यह कहना कठिन है कि गणित शिक्षा अनुसंधान में ऐसे प्रमाण मिलते हैं या नहीं? लेकिन यह निश्चित रूप से एक आम सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यता है कि गणित पढ़ाने के लिए शिक्षक को छात्रों के पूर्व ज्ञान (अनौपचारिक गणित) को कक्षा में पढ़ाए जाने वाले गणित से जोड़ना चाहिए। फेचे (1997) के अनुसार गणित को छात्र की संस्कृति या व्यक्तिगत अनुभव से अलग करके सार्थक रूप से नहीं पढ़ाया जा सकता है। गणित को एक कठिन विषय, छात्रों के लिए अर्थहीन, छात्रों की समझ से परे और लोकप्रिय विषय न मानने का कारण गणित को छात्र की संस्कृति या व्यक्तिगत अनुभव से अलग रखना है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (*2005*) के अनुसार बच्चे गणित को बातचीत करने, संवाद करने, आपस में चर्चा करने और साथ मिलकर काम करने के विषय के रूप में देखते हैं। गणित को बच्चों के जीवन के अनुभव का हिस्सा बनाना सबसे अच्छी गणित शिक्षा है। क्रोम (1997) के अनुसार, शिक्षण की परिस्थितियाँ छात्रों के पूर्व ज्ञान और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित होनी चाहिए। उनका यह भी मानना है कि जाति समूहों और महिलाओं को भी उच्च स्तरीय गणित शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलना चाहिए। लेकिन इससे यह सवाल उठता है कि उच्च स्तरीय गणित शिक्षा पूर्व ज्ञान और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर कैसे आधारित हो सकती है। ज़ुल्ली (1986) के अनुसार, स्कूली शिक्षा के उद्देश्य रोज़मर्रा की शिक्षा के उद्देश्यों से अलग हैं। वायगोत्स्की (1962) के अनुसार, "निकटतम विकास के क्षेत्र" में छात्रों को विषय वस्तु को समझने के लिए शिक्षक या अधिक सक्षम सहकर्मी की मदद की आवश्यकता होती है। वायगोत्स्की का मानना है की रोजमर्रा की अवधारणाओ को लेके सचेत जागरूकता की कमी है इसलिए गणित शिक्षा में इसका संदर्भ नहीं दिया जाना चाहिए। जहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या गणित को संस्कृत या व्यक्तिगत छात्र से संबंधित किये बिना प्रभावी और सार्थक रूप में पढ़ाया जा सकता है? यदि गणित को अर्थहीन, लोकप्रिय विषय माना जाता है तो क्या इसका दोष शिक्षक पर हो सकता है? और गणित को रोजमर्रा की जिंदगी के सन्दर्भ में रखे बिना अधिकांश छात्रों तक कैसे पहुँचाया जाये?

मोल्ले (1997) अपने लेख में कहते हैं समुदायों में छात्रों का संस्कृतिकरण उनके गणितीय रणनीति निर्माण और उपलब्धि में महत्वपूर्ण रूप से संबंधित है इसका अर्थ है की गणित में संज्ञानात्मक क्षमता किसी तरह जातीय मूल से संबंधित है। और हर जातीय मूल्य अलग-अलग अंतर्दृष्टि बनाते हैं। जहाँ पर महत्व जातीय समुदाए के तार्किक

गणितीय ज्ञान पर विचार करने पर चला जाता है। यहां पर यह भी तर्क दिया जा सकता है कि समान आवश्यकताओं ने समान गणित का उत्पादक किया जैसे लोगों ने संख्याओं और गिनती का आविष्कार किया है। दूसरे शब्दों में गणित का संबंध जातीय विविधता से ज्यादा सार्वभौमिकता से है। सवाल यह है कि उच्चतर क्रम के ज्ञान को सांस्कृतिक अनुभव के साथ कैसे एकीकृत किया जा सकता है। मोलेय का सुझाव है कि उच्चतर क्रम के ज्ञान को छात्र के सांस्कृतिक अनुभव के साथ एकीकृत किया जा सकता है। लेकिन अगर ऐसा है, तो गुप्त ऊष्मा की वैज्ञानिक अवधारणा छात्र के सांस्कृतिक अनुभव से कैसे संबंधित है? द्विघात समीकरण, सदिश आदि जैसी उच्चतर क्रम की गणितीय अवधारणाएँ सांस्कृतिक अनुभव से कैसे संबंधित हो सकती हैं? निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि एक शिक्षक को अपने छात्रों की संज्ञानात्मक स्थिति के बारे में जागरूकता होनी चाहिए, लेकिन यह जागरूकता इस बात से प्राप्त की जा सकती है कि छात्र उच्चक्रम की अवधारणाओं की मध्यस्थता पर कैसे प्रतिक्रिया देते हैं, जिसका अर्थ यह नहीं है कि उच्चक्रम की अवधारणाओं को सांस्कृतिक अनुभव से जोड़कर नहीं देखना चाहिए

कैट्ज़ (1994, पृ.26-30) का तर्क है कि "एथनोमैथमेटिक्स एक ऐसा विषय है जो छात्रों की पारंपरिक अवधारणाओं को समझने में योगदान देता है। एथनोमैथमेटिक्स पाठ्यक्रम लोगों को कई आयामों में सोचने पर मजबूर करता है और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह कक्षा में सांस्कृतिक संलयन को बढ़ावा देने में भी मदद करता है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि अकादमिक गणित को कमज़ोर या मुख्यधारा से प्रतिस्थापित करना है । गणित सार्वभौमिक है। हालाँकि संस्कृति के पहलू गणित को प्रभावित करते हैं, लेकिन केवल सांस्कृतिक पहलू ही गणित की सत्य सामग्री को निर्धारित नहीं करते हैं। हम जानते है कि पाइथागोरस थेओरम को यूनानियों ने विकसित किया था और उसके डेढ़ सदी बाद चीनियों ने भी पथागोरोस थेओरम को स्वतंत्र रूप से विकसित किया था, उसी तरह पास्कल का त्रिभुज पास्कल से सदियों पहले चीनियों द्वारा भी विकसित कर लिया गया था। इसी तरह भारत में 10वी शताब्दी के हलायुध नामक गणितज्ञ का दावा है कि पिंगला के अंतिम सूत्र में ऐसे त्रिभुज की व्यांख्या की गयी है (प्राकृत पिंगला प्रस्तरा, रघुनाथ टेम्पल जम्मू)। इससे हम कह सकते हैं कि गणित फ्रांस, चीन ,भारत या ग्रीस की सभ्यताओं से परे है और सार्वभौमिक है। इसलिए हमें कक्षा में सार्वभौमिक गणित पर जोर देना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे इरादों से स्वतंत्र एथनोमैथमेटिक्स केवल झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों, कुम्हारों, बुनकरों और समाज का आदिम वर्ग को गणित शिक्षा में समानता प्रदान करने का जोखिम उठाता दिखाई दे रहा है इसलिए हम कह सकते हैं कि एथनोमैथमेटिक्स पाठ्यक्रम को अकादमिक गणित पाठ्यक्रम में पूरी तरह से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता केवल एकीकृत किया जा सकता है। लेकिन गणित सीखने के लिए परिस्थितियाँ बनाते समय एथनोमैथमेटिक्स को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि छात्र मानव संस्कृतियों की प्रकृति की सराहना कर सकें। एथनोमैथमेटिक्स रचनात्मक सिद्धांतो और गाँधी द्वारा प्रस्तुत बुनयादी शिक्षा के सिद्धांतो पर खरा उतरता है जिसमें छात्र अपने पूर्व ज्ञान के माध्यम से नए ज्ञान का निर्माण करते है एथ्नोमाथेमैथेमैटिक्स नस्लीय और जातीय भेदभाव को खत्म करने की क्षमता रखता है एथनोमैथमेटिक्स का गणित शिक्षा विधि पर सकरात्मक प्रभाव पड़ता है परन्तु एथनोमैथमेटिक्स को पूरी तरह शैक्षिक गणित का स्थान लेने के विरुद्ध में बहुत सारे तर्क मिलते है अफ्रीकी शिक्षाविद् गरंगे (2007, पृ. 577-591) ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य पारंपरिक संस्कृति को खत्म करना या बदनाम

करना नहीं होना चाहिए, बल्कि लोगों को आधुनिक चुनौतियों का सामना करने में मदद करना होना चाहिए। आधुनिक चुनौतियों का सामना एक उदार शिक्षा (जिसमें आधुनिक विज्ञान और सार्वभौमिक गणित शामिल है) द्वारा ही किया जा सकता है एथ्नोमाथेमैथेमैटिक्स पाठ्यक्रम शैक्षणिक गणित में शासक वर्ग की थोपी गई विचारधारा को रोकता है। यह पाठ्यक्रम लोगों को कई आयामों में सोचने पर मजबूर करता है और आदिम वर्गों को सशक्त और कक्षा में सांस्कृतिक रूप से प्रतिनिधित्व करने का एहसास कराता है। यह शैक्षणिक संसाधनों को अधिक न्यायसंगत बनाकर कक्षा में सांस्कृतिक संलयन को बढ़ावा देने में भी मदद करता है। एथ्नोमाथेमैथेमैटिक्स पाठ्यक्रम गणित शिक्षक को गणित कक्षा में विभिन्न संस्कृतियों की सामग्री को शामिल करके शैक्षणिक गणित को फिर से संदर्भित करने में मदद कर सकता है। शिक्षक विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सभी छात्रों का सटीक मूल्यांकन करने, सभी के आत्म-सम्मान का निर्माण करने और छात्रों को सभी जातीय समूहों और संस्कृतियों का सम्मान करना सिखाने के लिए शैक्षणिक गणित में एथ्नोमाथेमैथेमैटिक्स दृष्टिकोण को एकीकृत कर सकता है, जो सभी छात्रों को भविष्य में एक बहुसांस्कृतिक वातावरण में समायोजित करने में मदद करेगा गेर्डेस (1994, पृ.19-22)। शैक्षणिक गणित और नृवंशविज्ञान पाठ्यक्रम का एकीकरण अद्वितीय संस्कृतियों और समाजों में पाए जाने वाले अंतर्निहित गणितीय मूल्यों को पहचानने और उनकी सराहना करने में मदद करेगा।

संदर्भ सूची

1. Anderson, S. E. (1990). World Math Curriculum: Fighting Eurocentrism in Mathematics. *The Journal of Negro Education*, *59*(3), 348–359. https://doi.org/10.2307/2295569
2. Bishop, A. J. (1994). Cultural Conflicts in Mathematics Education: Developing a Research Agenda. *For the Learning of Mathematics*, *14*(2), 15-18. http://www.jstor.org/stable/40248109
3. Borba, M. C., & Skovsmose, O. (1997). The Ideology of Certainty in Mathematics Education. *For the Learning of Mathematics*, *17*(3), 17–23. http://www.jstor.org/stable/40248248
4. Borba, M. (1997). Ethnomathematics : challenging Eurocentrism in Mathematics Education. In A.B. Powell & M. Frankenstein (Eds.), Sunny Albay (pp. 261-272).
5. Croom, L. (1997). Multicultural and gender equity in the mathematical classroom : the gift of diversity. In J. Trentacosta & M.J. Kenney (Eds.), National Council for Teacher Education Yearbook.

6. D'Ambrosio, U.(1994). Ethnomathematics, the nature of mathematics, and mathematics education. In Earnest, P. (Eds.), Mathematics Education and Philosophy : An International Perspective, Falmer, London.
7. D'Ambrosio, U. (1985). Ethnomathematics and its Place in the History and Pedagogy of Mathematics. *For the Learning of Mathematics*, 5, 44–48.
8. D'Ambrosio, U. (1990). Etnomatematica [Ethnomathematics]. Sao Paulo, SP, Brazil: Editora Atica.
9. D'Ambrosio, U. (1994). Cultural framing of mathematics teaching and learning. *Didactics of mathematics as a scientific discipline*, 443–455.
10. D'Ambrosio, U. (1997). Where does ethnomathematics stand nowadays? *For the Learning of Mathematics*, *17*(2), 13–17. http://www.jstor.org/stable/40248230
11. D'Ambrosio, U. (2017). Ethnomathematics and the pursuit of peace and social justice. ETD - Educação Temática Digital. 19. 653. 10.20396/etd.v19i3.8648367.
12. Ernst, P. (2012). WHAT IS OUR FIRST PHILOSOPHY IN MATHEMATICS EDUCATION? *For the Learning of Mathematics*, *32*(3), 8–14. http://www.jstor.org/stable/23391968
13. Fisheh, M. (1997). Ethnomathematics : challenging Eurocentrism in Mathematics Education. In A.B. Powell & M. Frankenstein (Eds.), Sunny Albay (pp. 273-290).
14. Gay, J., & Cole, M. (1967). The new mathematics and the old culture. *Rinehart and Wilson,* New York.
15. Gerdes, P. (1985). Conditions and Strategies for Emancipatory Mathematics Education in Undeveloped Countries. *For the Learning of Mathematics*, *5*(1), 15-20. http://www.jstor.org/stable/40247870
16. Gowrie, S. (1958). Basic education in India *Merrill-Palmer Quarterly of Behaviour and Development*, *5*(1), 46-60. http://www.jstor.org/stable/23082764
17. Gerdes, P. (1994). Reflections on Ethnomathematics. *For the Learning of Mathematics*, *14*(2), 19–22. http://www.jstor.org/stable/40248110
18. Katz, V. J. (1994). Ethnomathematics in the Classroom. *For the Learning of Mathematics*, *14*(2), 26–30. http://www.jstor.org/stable/40248112
19. Le Grange, L. (2007). Integrating Western and Indigenous Knowledge Systems: The Basis for Effective Science Education in South Africa? *International Review of Education/International Zeitschrift Für Erziehungswissenschaft/ Revue*

Internationale de l'Education, *53*(5/6), 577–591. http://www.jstor.org/stable/27715418

20. Lawrence, H. S. S. (1950). Gandhiji's Contribution to Education. *The Phi Delta Kappan*, *32*(2), 42–44. http://www.jstor.org/stable/20332000
21. Mollay, C. (1997). Multicultural and gender equity in the mathematical classroom : the gift of diversity. In J. Trentacosta & M.J. Kenney (Eds.), National Council for Teacher Education Yearbook.
22. Míreles, S. V., Rahrovi, S. R., & Vásquez, F. (2013). COLLEGE OF SCIENCE AND ENGINEERING: Culturally Relevant Mathematics. *Counterpoints*, *391*, 167–190. http://www.jstor.org/stable/42981444
23. National Education Policy (2020). Ministry of Education, New Delhi. *https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf*
24. National Council of Educational Research and Training, National Curriculum Framework (2005). *https://ncert.nic.in/pdf/nc-framework/nf2005-english.pdf*
25. National Council of Educational Research and Training, National Focus Group on Teaching of Mathematics. (2006). *A publication of NCERT Position Paper National Focus Group on Teaching of Mathematics (ISBN 81-7450-539-3).* Retrieved from http://www.ncert.nic.in/new/ncert/rightside/links/pdf/focusgroup/math.pdf
26. National Council of Educational Research and Training. (2006). *Mathematics: Text Book for Class VII. New Delhi*: NCERT
27. Pandey, H., Kushwaha, H., and Bajpai, A. (2017). Ethnomathematics: A Cultural-Based Pedagogy. The Primary Teacher, XLII(3), 17–26.
28. Powell, AB., & Frankenstein, M. (1997). Ethnomathematics : challenging Eurocentrism in Mathematics Education. In A.B. Powell & M. Frankenstein (Eds.), Sunny Albay (pp. 249–260).
29. [Review of *Mathematics in Western Culture*, by M. Kline & M. Kline]. (1954). *Mathematics Magazine*, *28*(2), 121–122. https://doi.org/10.2307/3029374
30. Sharma, P., & Verma, S. (2022). Mathematics Elements in the Traditional Gaming of the Dogra Community of Jammu: An Ethnomathematical Study. Education and Society, 45(4), 86–95.

31. Swetz (1997). Multicultural and gender equity in the mathematical classroom : the gift of diversity. In J. Trentacosta & M.J. Kenney (Eds.), National Council for Teacher Education Yearbook.
32. Taylor, P. C. (1996). Mythmaking and Mythbreaking in the Mathematics Classroom. *Educational Studies in Mathematics*, *31*(1/2), 151–173. http://www.jstor.org/stable/3482938
33. Xie, J., & Masingila, J. O. (2017). Examining Interactions between Problem Posing and Problem Solving with Prospective Primary Teachers: A Case of Using Fractions. *Educational Studies in Mathematics*, *96*(1), 101–118. http://www.jstor.org/stable/45184581
34. Zaslavsky, C. (1991). World Cultures in Mathematics Class. *For the Learning of Mathematics*, *11*(2), 32–36. http://www.jstor.org/stable/40248015
35. Zeuli, J. (1986). The Use of the Zone of Proximal Development in Everyday and School Contexts: A Vygotskian Critique. *The Institute for Research on Teaching.* Michigan State University, Michigan.
36. Vygotsky, L. (1962). Thought and Language. *Massachusetts Institute of Technology Press.* Cambridge, Mass.

27

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में प्रासंगिकता

डॉ पिन्कल चौधरी
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
जिज्ञासा चौधरी
शिक्षक, श्री खुदीराम बोस प्राथमिक शाला, सूरत, गुजरात-395002

शिक्षा के उद्देश्य शैक्षिक प्रक्रियाओं और स्वीकृत सिद्धांतों के साथ तालमेल बिठाने के लिए व्यापक दिशा-निर्देशों के रूप में कार्य करते हैं। *"शिक्षा के उद्देश्य समाज की वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं तथा समुदाय की तात्कालिक चिंताओं के साथ-साथ व्यापक मानवीय आदर्शों को भी ध्यान में रखते हैं"* (NPE, 1986 , पृ.)। महात्मा गांधी ने शिक्षा को सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय, हिंसा और असमानता के प्रति राष्ट्र की चेतना को जगाने के साधन के रूप में देखा था। स्वामी विवेकानंद ने भी शिक्षा से सामाजिक उत्थान के लिए विचार रखे थे। हम महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों में सामाजिक परिवर्तन और के प्रतिबिंब देख सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद, राष्ट्रीय आयोगों माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) शिक्षा आयोग (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसे शिक्षा नीतियां, आयोग, और समितियां द्वारा शिक्षा की चिंताओं पर समयानुसार विचार विमर्श किया गया और जरूरी बदलाव भी किया गया है। *"शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है - जो तर्क संगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों।"* (NEP 2020, पृ. 6).

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउंडेशनल स्टेज NCFS-2022 और स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा NCFSE 2023 में शिक्षा को विषय ज्ञान के साथ भारतीय मूल्यों को संभाले रखने के साधन के रूप में बनाई गई। जिसमे स्वामी विवेकानंद के विचारों की भी झलकियाँ नजर आती है। शिक्षा प्रणाली को आधुनिक बनाने हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा शिक्षक से कुछ अपेक्षाएं रखती है, जिन्हें प्रारंभिक और माध्यमिक दोनों स्तरों पर शिक्षक शिक्षा को भी संबोधित करने की आवश्यकता है।

भारत ने पूरे विश्व को एक परिवार के रूप में मानते हुए हमेशा राष्ट्रों के बीच शांति बनाए रखने के लिए काम किया है। भारत में हाल ही में जी-20 शिखर सम्मेलन में "वसुधैव कुटुम्बकम" के भाव से प्रतिनिधित्व किया है। इस प्राचीन परंपरा के अनुसार, शिक्षा को इस विश्व-दृष्टि को मजबूत करने और युवा पीढ़ी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए प्रेरित करना चाहिए। सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के सख्त अनुपालन में चलाए जाने चाहिए। समानता को बढ़ावा देने के लिए, यह आवश्यक होगा शिक्षा सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध करे। मूर्ति (2003) के अनुसार व्यापक अर्थ में 'शिक्षा' को न केवल एक पाठ्यक्रम तक सीमित रखे बलकि उसका मूल अर्थ-मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को अज्ञानता से मुक्ति तक पहुँचाना है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व

को निखारता है। व्यक्तित्व को निखारता है और दुनिया तक पहुंचने का आत्मविश्वास प्रदान करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में राष्ट्रीय विकास पर ध्यान केंद्रित करते हुए बदले हुए आधुनिक संदर्भ में महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद जैसे विद्वानों के शैक्षिक दर्शन से उभरने वाले विषयों को बढ़ावा भी दिया गया है।

स्वामी विवेकानंद के दर्शन का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में निहितार्थ:

शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह युवाओं को तथ्यों और अवधारणाओं से परे मूल्यों तक ले जाए। जब अर्थ इतने गहरे हो जाएं कि वह उनके दृष्टिकोण और चरित्र को बदल सकें (चंद्रा और शर्मा, 2002)।। जीवन के अनुभव से समाज की कड़वी सच्चाईयाँ व्यक्ति के सामने स्पष्ट हो सकती हैं। जीवन की वास्तविकताओं से परिचित होने से छात्रों में न केवल समाज में वंचितों की समस्याओं के बारे में जागरूकता विकसित होगी, बल्कि उनमें सामाजिक कार्य के लिए दायित्व की भावना भी विकसित होगी (सतप्रकाशानंद, 1978)। स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रदत्त कुछ प्रसिद्ध शैक्षिक विचारों के आदर्श की प्रासंगिकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. मानवता को समग्र रूप से प्रगति करनी चाहिए। विविधता में एकता ही विश्व संस्कृति के लिए प्रतिमान हैं। विज्ञान और धर्म के बीच, तर्क और आस्था के बीच, या कविता और दर्शन के बीच कोई संघर्ष नहीं है:

"शिक्षा का उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जोकि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित - समावेशी, और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करे" (NEP 2020)। शिक्षा में जाति, पंथ, लिंग या संस्कृति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। यूनेस्को के अनुसार, शिक्षा का दृष्टिकोण, विज्ञान और संस्कृति मानव विकास के आवश्यक साधन हैं। एक अलग तत्व के रूप में नहीं हैं। इन सभी के बीच कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए (अविनाशलिंगम, 2010)। *"शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और इक्कीसवीं शताब्दी के मुख्य कौशल से सुसुज्जित करना है" (4.4 NEP 2020)।* बच्चों के बौद्धिक विकास के साथ-साथ दयालु हृदय भी होना चाहिए। यह मिलन हमें जीवन के उच्चतम आदर्श को प्राप्त करने में मदद करेंगा। भारत सरकार ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू किया लेकिन अगर हम स्कूलों में शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया को देखें तो यह असंतुलित है, यह मानव विकास के भावात्मक और मनोदैहिक पहलुओं की उपेक्षा करते हुए बौद्धिक विकास पर जोर देती है। जब हृदय में प्यार और दया नहीं है तो हम विश्व एकता और शांतिपूर्ण जीवन के विचार के बारे में कैसे सोच सकते हैं।

2. प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के साथ सत्य की ओर बढ़ना होगा:

समाज में सभी बालक और बालिकाएँ एक जैसे नहीं हैं, उनमें व्यक्तिगत अंतर हैं और इसलिए प्रत्येक को अपनी क्षमताओं के अनुसार स्वतंत्र रूप से काम करने का अवसर देते हुए सत्य की खोज का अवसर दिया जाना चाहिए (विवेकानंद, 2011)। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउंडेशनल स्टेज 2022 द्वारा पंचकोष या पाँच परतों अन्नमय कोष (शारीरिक परत), प्राणमय कोष (जीवनशक्ति ऊर्जा परत), मनोमय (मन की परत), विज्ञानमय कोष (बौद्धिक परत) और आनंदमय कोष (आन्तरिक स्व) के विकास पर विशेष जोर दिया गया है। हर परत के कुछ ख़ास गुण हैं और सभी परतों को पोषित करने पर बच्चे का सर्वांगिण विकास होता है। आज

की शिक्षा प्रणाली को व्यक्तित्व दिखाने का अवसर प्रदान करना चाहिए। NEP 2020 में भी शिक्षार्थियों के सर्वांगिण विकास और सर्वांगिण और सतत आँकलन के बारे में बताया गया है।

3. मानवीय समस्याओं का अंतिम समाधान व्यक्ति की नैतिकता और आध्यात्मिकता पर निर्भर करता है:

शिक्षा प्राप्ति के लिए पवित्रता, सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, चाहत और दृढ़ता आवश्यक जरूरते हैं। विचार, वाणी और कार्य किसी भी शिक्षक के लिए अत्यंत आवश्यक है। शिक्षक को विषय के ज्ञान जैसे की भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, इतिहास, जीव विज्ञान आदि के साथ शास्त्रों और वेदों का ज्ञान भी होना चाहिए। शिक्षक को विषय के साथ-साथ नैतिक मूल्य और सामाजिक जिम्मेदारी के बीज भी शिष्यों के मन मे बोने चाहिए। प्रत्येक शिष्य को यह एहसास कराया जाना चाहिए कि वह स्वयं समर्थ है और अपने भीतर की दिव्यता के प्रति सचेत है। यह आत्मज्ञान और आत्मनिर्भरता की बात NEP 2020 में भी कही गई है। शिक्षा को शिष्य में शक्ति, पवित्रता और जागृति लानी चाहिए। क्योंकि यह गुण है जो व्यक्ति और राष्ट्र को महान बनाता है। हर किसी को मानव जाति और राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य समझना चाहिए। हमारा यह दृष्टिकोण नैतिक गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए तथा जीवन का एक हिस्सा होना चाहिए। सद्गुणों का अभ्यास शुरू से ही घर और शाला से किया जाना चाहिए (शुक्ला, 2001)।

4. सार्वभौमिक मूल्यों और सहिष्णुता के प्रति व्यक्ति की प्रतिबद्धता ही समग्र रूप से मानवता की पहचान है।

शिक्षकों को बच्चों को केवल सिद्धांतों के माध्यम से पढ़ाने के बजाय वास्तविक संदर्भों में बच्चों से जोड़ना चाहिए (NCF 2005; NCFSE 2023)। जिससे उन्हें शिक्षार्थियों की दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विशेषताओं और आवश्यकताओं की समझ हो पाए। उनके घर और समुदाय के सामाजिकरण से उत्पन्न सीखने के तरीके को समझने में मदद मिलनी चाहिए। शिक्षकों या संभावित शिक्षकों को नैतिकता और मूल्य के साथ विषय को एकीकृत करके सामाजिक संवेदनशीलता, चेतना और बेहतर मानवीय संवेदनाओं का विकास करना चाहिए। यह शिक्षकों और शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। शिक्षा को आंतरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद करनी चाहिए, अर्थात बाहरी और आंतरिक प्रकृति दोनों पर विजय प्राप्त करना शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। सबको अहंकार से ऊपर उठना चाहिए और सभी को मानवता की परस्पर जुड़ी हुई श्रृंखला के रूप में देखने की दृष्टि विकसित करनी चाहिए। आंतरिक स्वतंत्रता प्राप्त करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए और यह शिक्षक ही है जो शिक्षार्थियों के साथ अपने आचरण के माध्यम से जीवन में नैतिकता और मूल्यों की स्थपना का अग्रदूत होगा।

5. खुद पर भरोसा ही मनुष्य के विकास का रहस्य है। यह सभी शक्तियों का स्रोत है। मनुष्य के विकास का अर्थ है उसकी संभावित क्षमताओं का प्रकटीकरण:

सभी विकास के लिए पूर्व शर्त बच्चों का आत्म-विकास है। खुद पर विश्वास विकसित करने से व्यक्ति, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति के मामले में सशक्त बनता है। यह जाति, राष्ट्र, बड़े पैमाने पर दुनिया और उसमें मौजूद सभी संस्कृति के लिए प्यार विकसित करने की कुंजी है। *"सभी बच्चों की स्वतंत्र खेलों, अनौपचारिक व औपचारिक खेलों, योग और खेल की गतिविधियों में सहभागिता उनके शारीरिक व मनो-सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। खेलकूद और योग से अर्जित योग्यताएँ सामूहिक खेलों में शारीरिक बल, स्थूल गत्यात्मक कौशल (ग्रौस मोटरस्किल), नियंत्रण, आत्म-चेतना तथा समन्वयन की क्षमताओं में सुधार लाती हैं" (* NCF, 2005 पृ. 14)

शारीरिक विकास, विशेषकर छोटे बच्चों में मानसिक व संज्ञानात्मक विकास में मददगार है। सोचने व तर्क करने की क्षमता, स्वयं व दुनिया को समझने तथा भाषा का प्रयोग करने का सामर्थ्य अकेले व मिलकर काम करने और दूसरों से अंतःक्रिया करने से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। अलग-अलग गतिविधियों के माध्यम से बच्चों में अपनी क्षमता पहचानने और उसके संदर्भ में अध्ययन विधि चुनने का मौका देना चाहिए। रचनावादी प्रणाली शिक्षक और शिक्षार्थियों को इसका अवसर प्रदान करती है। एक ही गतिविधि या शिक्षा प्रक्रिया सभी शिक्षार्थियों को न्यायसंगत अवसर नहीं दे पायेंगी। शिक्षार्थियों के क्षमता के अनुसार शिक्षा को उनका मनोबल और खुद पर भरोसा बढ़ाना चाहिए।

6. "शिक्षा मनुष्य में पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति है":

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का विषय आंतरिक पूर्णता की अभिव्यक्ति है। दुनिया का सारा ज्ञान मन से आता है। *"वास्तव में ज्ञान एक छुपा हुआ ख़ज़ाना है और शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा के साथ इसे प्राप्त करने में मदद करती है। पाठ्यचर्या और शिक्षाविधि को इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पुनः तैयार किया जाएगा। पूर्व विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक प्रत्येक स्तर में एकीकरण के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट कौशल और मूल्यों की पहचान की जाएगी"* (NEP 2020)। स्वामी विवेकानंद ने शरीर, मन और आत्मा की समग्र तैयारी पर ज़ोर दिया। उनके लिए, मानव अस्तित्व और मानवीय संभावनाओं का मूल, आत्मा (स्व) और आत्मज्ञान में निहित है (NCF-FS 2022)। बच्चों को हम जो शिक्षा प्रदान करते हैं, उससे बच्चों को सच्चाई की तहों को खोलने का अवसर मिलना चाहिए। इस स्तर को प्राप्त करने के लिए अज्ञानता की परतों को उजागर करने से ज्ञान स्वतः प्रवाहित होते हैं। इसके लिए छात्रों को एकाग्रता की विधि सीखनी होगी और मन की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। शिक्षा जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण और चरित्र निर्माण करनेवाली होनी चाहिए। शिक्षा को केवल तथ्यों और विचारों के रूप में संचित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उसको जीना भी चाहिए।

7 . प्रत्येक धर्म एक ही सर्वोच्च सत्ता के प्रति दृष्टि रखता है, जिसकी अलग-अलग तरह से कल्पना की गई है:

सभी धर्म और ज्ञान एक ही सत्य की ओर ले जाते हैं, भले ही दृष्टिकोण अलग-अलग हो। ठीक उसी तरह जैसे कि सभी रचनाओं के पीछे एकता है, भले ही रचनाकार अलग-अलग हों। स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा, दर्शन और धर्म व्यक्ति के आत्म-साक्षात्कार में सहायक होंगे। धर्म और नैतिकता अच्छे आचरण और चरित्र की मजबूती के विकास में सहायक होते हैं (भारती और राव, 2000)। यदि कोई सार्वभौमिक धर्म के बारे में सोचता है तो वह ईश्वर की तरह अनंत होगा, जो प्रत्येक व्यक्ति में दिव्यता को पहचानेगा और जिसकी पूरी शक्ति मानवता को उसके सच्चे और दिव्य स्वरूप में साकार करने के लिए उपयोग की जाएगी। हम सभी अदृश्य बंधनों के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। वर्तमान संदर्भ में जब तकनीकी नवाचारों के कारण पूरी दुनिया अपनी हाथों की उंगलियों पर है, इस दुनिया में संवाद करने के लिए एक दूसरे के मूल्यों को समझना चाहिए और राष्ट्र, जाति, वर्ग, धर्म या नस्ल से परे मानवता का सम्मान करना चाहिए।

8. मानवता की आध्यात्मिक एकता ही नैतिकता का आधार है। यह एकता सार्वभौमिक प्रेम और आनंद का मार्ग है:

विवेकानंद के अनुसार आध्यात्मिकता सार्वभौमिक मूल्यों को विकसित करता है और समाज को एकीकृत करता है। विवेकानंद ने स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन के लिए योग की भी वकालत की थी। *"एक ऐसी प्रणाली के रूप में जो शरीर और मन के एकीकृत विकास को बढ़ावा देती है। योग पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। इसे सभी स्कूलों में शुरू करने का प्रयास किया जा रहा है"* (NCF, 1986)। इसे व्यापक रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी बढ़ावा दिया गया है। नैतिकता को जीना और उसका पालन करना चाहिए। ज्ञान सिर्फ किताबों तक सीमित नहीं है, वह सार्वभौमिक और व्यापक है। यह हमारे स्वभाव का हिस्सा है और हम हर कदम के साथ जीते हैं।

9. आदर्श और व्यवहार में परस्पर सम्बद्ध हैं:-

शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया होनी चाहिए। शिक्षा की भूमिका यह होनी चाहिए कि हम अपने आपको एक अलग दिशा में ले जाएं और रटने की आदत से बचाएँ। समाज और राष्ट्र के विकास को ध्यान में रखते हुए उचित और उचित शिक्षा प्रदान करने में शिक्षकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है (भारती और राव, 2000)। विवेकानंद एक शिक्षक के चरित्र और व्यक्तिगत जीवन को बहुत महत्व देते हैं। त्याग की भावना रखने वाला व्यक्ति एक अच्छा शिक्षक हो सकता है। एक शिक्षक अपने आदर्श उदाहरणों के माध्यम से प्रभावित करने का प्रयास करना चाहिए। एक शिक्षक को पर्यावरण को इस प्रकार निर्मित करना चाहिए कि बच्चा अपने अन्दर छिपे ज्ञान के खजाने से परिचित हो सके जो उसके मन में निहित है। *सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि का समग्र केंद्रबिंदु शिक्षा प्रणाली को रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक समझ और ज्ञान की ओर ले जाना है* (NEP 2020)। शिक्षक यह सुनिश्चित करें कि सीखना रटने के तरीकों से दूर हो। सीखने को व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ की खोज के रूप में देखा जाना चाहिए और ज्ञान सृजन को चिंतनशील सीखने की निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।

10. अपने कार्य के प्रति समर्थन ही ईश्वर की प्रत्यक्ष पूजा है:-

हममें से हर एक को अपने आप को ईश्वर से जोड़ना चाहिए। चाहे हम कोई भी काम कर रहे हों उसमें ईश्वर को देखना चाहिए। हर कोई कार्य लगन, समर्पण और ईमानदारी से किया जाना चाहिए। इस तरह मनुष्य की सेवा हो सकती है। इससे अपने अंदर सहानुभूति की भावना आएगी और अहंकार समाप्त हो जाएगा। *"शिक्षकों को बच्चों की देखभाल करने, उनके साथ समय बिताने का आनंद लेने के लिए तैयार रहना चाहिए। उनके साथ मिलकर ज्ञान प्राप्त करें, समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाएं और एक ऐसा समाज बनाने के लिए काम करें। बेहतर विश्व के निर्माण के लिए छात्रों की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना, प्रतिबद्धता विकसित करना और न्याय एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए उत्साह होना आवश्यक है"* (एन.सी.एफ.टी.ई., 2010)। अत: शिक्षकों को शिक्षार्थियों को सक्रिय भागीदार के रूप में देखने की आवश्यकता है। उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले के रूप में नहीं, बल्कि स्वयं सीखने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। शिक्षा या संभावित शिक्षकों को सामाजिक संवेदनशीलता, चेतना और बेहतर मानवीय संवेदनाओं का विकास करना चाहिए।

विवेकानंद ने जो कल्पना की थी, शिक्षकों को मानवाधिकारों और सर्वांगिण विकास के संदर्भ में शिक्षा की पुनः संकल्पना करने की आवश्यकता है। मानवीय मूल्यों और उसके संरक्षण पर जोर देना चाहिए। स्वयं के भीतर और प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए रहना चाहिए। शांति, लोकतांत्रिक जीवन शैली, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, बंधुत्व और धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक मूल्यों और देखभाल के मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के माध्यम से भारत को शैक्षिक, आर्थिक रूप से शक्तिशाली बनाने और

अज्ञानता और गरीबी से बाहर निकलने का सपना देखा था। वैसे ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिकल्पित शिक्षा में व्यक्तिगत विकास और राष्ट्रीय हित की बात रखी है।

संदर्भ सूची

1. अविनाशलिंगम, टी. एस. (2010). *स्वामी विवेकानन्द द्वारा शिक्षा.* चेन्नई: अध्यक्ष श्री रामकृष्ण मथमिलापुर।
2. भारती, डी. वी., और राव, डी.बी. (2000). *स्वामी विवेकानंद और जॉन डेवी के शैक्षिक दर्शन.* नई दिल्ली: ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन.
3. चंद्रा, एस.एस., और शर्मा, आर.के. (2002). *शिक्षा का दर्शन.* नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. मूर्ति, एस. के. (2003). *शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय आधार.* 9 अक्टूबर, 2011 को http://59.163.61.3:8080/gratest/ से प्राप्त किया गया।
5. एन.सी.ई.आर.टी. (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.
6. एन.सी.ई.आर.टी. (2022). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउंडेशनल स्टेज 2022.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.
7. एन.सी.ई.आर.टी. (2023). *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.
8. एम. एच. आर. डी. (1986). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति.* नई दिल्ली: भारत सरकार.
9. एम. एच. आर. डी. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: भारत सरकार.
10. सतप्रकाशानंद, एस. (1978). *विवेकानंद: वर्तमान युग में उनका योगदान.* भारत: अद्वैत आश्रम।
11. शुक्ला, आर. (2001). *शिक्षा का दर्शन.* जयपुर: सबलाइम पब्लिकेशन्स।
12. विवेकानंद, एस. (2011). *स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण कृतियाँ.* भारत: अद्वैत आश्रम।

28

विद्यालयी स्तर की शिक्षण-अधिगम पारिस्थितिकी में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के निहितार्थ

डॉ. सुमित गंगवार
सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
शुभम कुमार पति
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सामाजिक न्याय का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सामाजिक वर्ग, जेंडर, नस्लीयता, जातीयता, राष्ट्रीयता, धर्म, आयु, जेंडर अभिविन्यास, शारीरिक क्षमता या स्वास्थ्य की स्थिति के आधार पर बिना भेदभाव के उनका मौलिक अधिकार सुनिश्चित हो। विद्यालय समाज का लघु रूप होते हैं, इसलिए अध्यापक को सामाजिक न्याय तथा सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के मूल सिद्धांतों के विषय में जागरूक होना आवश्यक है, ताकि वह विद्यालय परिवेश तथा कक्षा में एक ऐसे वातावरण का निर्माण करने में सक्षम हो सके जिसमें अध्ययन-अध्यापन के दौरान सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का पालन हो। इस शोध लेख में सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का शैक्षणिक प्रक्रियाओं में अनुप्रयोग सम्बन्धी चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त इस लेख में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र का समर्थन करने वाले अध्यापक की विशेषताओं पर प्रकाश भी डाला गया है। प्रस्तुत लेख के अध्ययन उपरांत विद्यालयी स्तर पर कार्यरत सेवाकालीन अध्यापक तथा इस स्तर पर अध्यापन हेतु तैयार हो रहे सेवा-पूर्व अध्यापक सामाजिक न्याय तथा सामजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की अवधारणा से परिचित होकर विद्यालयी स्तर की शैक्षणिक प्रक्रियाओं के कक्षागत व्यवहारों में इन विशेषताओं का समावेशन करके कक्षा की अधिगम पारिस्थितिकी को सामाजिक न्याय तथा सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतो के अनुरूप निर्मित करने में सक्षम हो सकेंगे। ऐसी कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी सामाजिक और संवैधानिक सिद्धांतों की समझ विकसित करने के साथ-साथ इनको अपने जीवन में आत्मसात करने में सक्षम हो सकेंगे जिससे एक समतापूर्ण समाज का निर्माण संभव हो सकेगा। दार्शनिक दृष्टिकोण से सामाजिक न्याय एक स्वतंत्र एवं समतावादी समाज के निर्माण हेतु उत्साह, साहस और मानवीय क्षमता की भावना को संबोधित करता है। सामाजिक न्याय के विषय को वर्णित करने का सबसे उपयुक्त तरीका स्वतंत्रता और उत्पीड़न, समावेशन और बहिष्कार या सहयोग और अलगाव जैसे विरोधाभासों के वास्तविक तथा व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त व्यक्तियों से अंतर्क्रिया करना है। यह एक चिंताजनक विषय है कि कुछ व्यक्ति तथा संस्थाएं केवल अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए सामाजिक न्याय की प्रणाली में स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करती हैं, परंतु अन्य इससे भी आगे जाकर सामाजिक समावेशन और जीवन की सार्थक गुणवत्ता के लिए अधिक महत्वाकांक्षी आदर्शों को अपनाते हैं। डोडसन (1993) अपने कार्यों में सामाजिक न्याय को परिभाषित करते

 ISSN: 2321-0443

हुए लोगों के जीवंत अनुभवों के सार पर प्रकाश डालते हैं। उनके द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कार्य दुनिया भर के कई स्वदेशी तथा स्थानीय समूहों पर प्रासंगिक रूप से लागू होते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के भाग एक *'परिप्रेक्ष्य'* के बिंदु 1.5 *'गुणवत्ता के आयाम'* में स्पष्ट किया गया है कि विद्यालयी पाठ्यचर्या संबंधी सभी अभ्यास संविधान में निहित मूल्यों जैसे- सामाजिक न्याय, समानता तथा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित होने चाहिए। जिसके लिए गुणवत्ता एवं सामाजिक न्याय को पाठ्यचर्या सुधार का केंद्रीय बिंदु बनाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के भाग चार *'विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण'* के बिंदु 4.2 *'सक्षम बनाने वाले वातावरण का पोषण'* में भी विद्यालयी परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए इस बात पर चर्चा की गई है कि सार्वजनिक स्थल के रूप में विद्यालय का वातावरण समानता, सामाजिक न्याय, विविधता और बहुलता के प्रति सम्मान का भाव रखने वाला होना चाहिए।

इसी दस्तावेज के भाग पांच *'व्यवस्थागत सुधार'* के बिंदु 5.1 *'गुणवत्ता को लेकर सरोकार'* में भी शैक्षिक सुधार संबंधी प्रयासों में सामाजिक न्याय को शिक्षा की गुणवत्ता का एक अनिवार्य आयाम मानते हुए स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा में सुधार संबंधी प्रयास तभी सफल हो सकते हैं, जब इन प्रयासों के साथ-साथ सामाजिक न्याय का भी प्रसार हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की प्रस्तावना के आरम्भ में कहा गया है कि शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास तथा राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। शिक्षा द्वारा शिक्षार्थी में नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य जैसे- सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैश्विक चिंतन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय जैसे गुणों का विकास करना इस नीति का एक सिद्धान्त है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के *'ड्रापआउट बच्चों की संख्या कम करने और सभी स्तरों पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना'* भाग के बिंदु 3.3 में इस बात पर जोर दिया गया है कि स्कूलों में सभी बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित हो सके, इसके लिए स्कूलों को राज्य और जिला स्तर पर दिव्यांग व्यक्तियों के सशक्तिकरण से जुड़ी सिविल सोसाइटी संगठन/सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभागों के प्रशिक्षित और योग्य कार्यकर्ता राज्य/केंद्र शासित प्रदेश सरकारों द्वारा अपनाए गए विभिन्न नवीन तंत्रों के माध्यम से जोड़ना चाहिए।

'अनिवार्य विषयों, कौशलों और क्षमताओं का शिक्षाक्रमीय एकीकरण' के बिंदु 4.28 में स्पष्ट किया गया है कि विद्यार्थियों को कम उम्र में 'सही को करना' सिखाया जाएगा, जिसके लिए बुनियादी मानवीय और संवैधानिक मूल्यों यथा न्याय, स्वतंत्रता, समानता इत्यादि को विद्यार्थियों में विकसित करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के *'समतामूलक और समावेशी शिक्षा : सभी के लिए अधिगम'* भाग के बिंदु 6.1 में बताया गया है कि शिक्षा सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। अतः विद्यालय शिक्षा में पहुँच, सहभागिता और अधिगम परिणामों में सामाजिक श्रेणी के अंतरालों को दूर करना, शिक्षा क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउन्डेशनल स्टेज 2022 के भाग एक *'प्रस्तावना और परिचय'* के बिंदु 1.1.3 *'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के औचित्य'* में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) पर विशेष ध्यान दिए जाने का सुझाव दिया है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चों के मस्तिष्क के विकास से लेकर विद्यालय की तैयारी तक, सीखने के प्रतिफलों में सुधार, समानता एवं न्याय, रोजगार समृद्धि और विकास जैसे शिक्षा से जुड़े लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो सके।

इसी दस्तावेज के बिंदु 1.2.2 *'अग्रदूत और विचारक'* में ज्योतिबा फुले तथा सावित्रीबाई फुले का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि शिक्षा के बुनियादी स्तर की शैक्षिक पारिस्थितिकी में सामाजिक न्याय की अवधारणा को लागू करना चाहिए, जिससे छोटे बच्चों में सामाजिक समानता जैसे गुण का विकास किया जा सके।

सामाजिक न्याय:अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक न्याय को परिभाषित करने में सामाजिक सिद्धांत, शैक्षिक प्रतिमान, राजनीतिक शुद्धता, धर्म, ज्ञान, योग्यता और अन्य कारकों की भूमिका होती है। उदाहरण के लिए, नैतिक दर्शन में *'न्याय'* मौलिक सिद्धांतों का एक ऐसा समूह होता है, जिसका उपयोग किसी संस्कृति या समुदाय का व्यक्ति *'क्या अच्छा है और क्या गलत है'* का आकलन करने के लिए करता है। साहस, संयम और ज्ञान के अतिरिक्त न्याय, नैतिक दर्शन के चार स्तंभों में से एक स्तंभ है। धर्म के तीन नैतिक सिद्धांतों अर्थात् दान, आशा और विश्वास को अतिरिक्त नैतिक आधारों के रूप में देखा जाता है। न्याय के विधिक, राजनीतिक और आर्थिक आयामों को सामाजिक न्याय के अंतर्गत शामिल किया जाता है।

सामाजिक न्याय का मूल्य पक्ष यह दिशा-निर्देशित करता है कि विभिन्न संस्थानों तथा स्थानों में हम मानवीय अंतर्क्रिया को कैसे व्यवस्थित करते हैं और सहयोगात्मक रूप से व्यक्तियों की भागीदारी कैसे निर्धारित की जाती है? न्याय के आर्थिक पक्ष के संबंध में तीन आधारभूत सिद्धांत अर्थात् भागीदारी, वितरण और सद्भाव, सामाजिक न्याय की नींव हैं (केल्सो और एडलर, 1958)।

इमैनुएल कांट (1724-1804) का भी यह मानना था कि नैतिक रूप से पवित्र कर्म वे हैं, जो पूरी तरह से कर्तव्य से प्रेरित होते हैं। जिनमें लाभ या स्वार्थ का स्थान नहीं होता है (वार्डेन, 2015)। वर्तमान समय में शिक्षा के स्पष्ट राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में *'शिक्षा में सुधार'* हेतु कांट का सामाजिक न्याय सिद्धांत (दूसरे शब्दों में, स्पष्ट अनिवार्यता सिद्धांत) एक स्तंभ है। अनुसंधान और अध्यापक शिक्षा पर *अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन* पैनल के सदस्य के रूप में कोचरन-स्मिथ और फ्राइज़ अपने प्रतिवेदन में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र अपनाने वाले अध्यापकों को शिक्षा में पेशेवर और अमेरिकी समाज में अन्याय को कम करने के लिए समर्पित कार्यकर्ताओं, दोनों

के रूप में बताया है (कोचरन-स्मिथ और फ्राइज़, 2005)। यह अभिधारणा सामाजिक न्याय अध्यापकों के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि शैक्षिक क्षेत्र से जुड़े अधिकांश पेशेवर कोचरन-स्मिथ और फ्राइज़ के इस मत से सहमत हैं कि विद्यालयी शिक्षा से जुड़े अध्यापकों का कार्य इस लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए संपन्न होना चाहिए। सामाजिक और शैक्षिक असमानताओं से जुड़ी चुनौतियों को सुधारने के लिए एक अध्यापक को यह समझना जरुरी हो जाता है कि संस्थागत मानदंड, राजनीतिक उद्देश्य और शैक्षणिक नैतिकता क्या, क्यों और कैसे परस्पर अंतर्क्रिया करते हैं? क्योंकि संस्थागत राजनीतिक लक्ष्य और सामाजिक न्याय शिक्षा आपस में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

'सामाजिक न्याय' शब्द की उत्पत्ति का श्रेय सिसली के एक पादरी, लुइगी टापरेली डी. एजेग्लियो को दिया जाता है, जिन्होंने वर्ष 1840 में इस शब्द का उपयोग पहली बार किया था। एंटोनियो रोसमिनी-सेर्बती ने वर्ष 1848 में इस शब्द को अपने द्वारा लिखी पुस्तक *'ला कॉस्टीट्यूशन सिविल सेकंडो ला गिउस्टिज़िया सोशल'* के माध्यम से लोकप्रिय बनाया। जॉन स्टुअर्ट मिल (1960) ने अपनी पुस्तक *'युटीलिटेरियनिस्म, लिबर्टी एंड रीप्रीजेंटेटीव गवर्नमेंट'* में *'न्याय'* को सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व के रूप में परिभाषित करते हुए एक मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया (ज़ज्दा, मज़ानोविच और रस्ट, 2006)।

समकालीन शैक्षिक विमर्शों में उपयोग किए जाने वाले *'सामाजिक न्याय'* शब्द का सम्बन्ध मुख्यतः सामाजिक सरोकारों से है। जब *'सामाजिक'* शब्द का उपयोग यूटोपियन आदर्शों का वर्णन करने के लिए किया जाता है, तो इसका अर्थ *'कई लोगों के अच्छे कार्यों के परिणाम'* के स्थान पर व्यक्तियों या समूहों की *'एकजुटता'* के संदर्भ में लिया जाता है, जिसके कारण इस विशेष परिस्थिति में इस शब्द का अर्थ भी बदल जाता है। इस परिस्थिति में *'सामाजिक न्याय'* में *'सामाजिक'* का तात्पर्य किसी ऐसी प्रक्रिया से होता है, जोकि कानूनी निष्पक्षता के आदर्श से उत्पन्न होती है, न कि किसी ऐसी प्रक्रिया से जो स्वतंत्र व्यक्तियों के नियम-पालन वाले व्यवहार से स्वाभाविक और सहज रूप से विकसित होती है।

सामाजिक न्याय के निर्माण के प्रमुख घटकों में से एक सामूहिक चेतना का विकास भी है। जिसके अंतर्गत निष्पक्ष रूप से सामाजिक प्रक्रियाओं का संचालन तथा समुदाय के अंदर व्यक्ति की स्वतंत्रता और आपसी सहयोग जैसे विषय शामिल होते हैं। अतः सामाजिक न्याय के वांछित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए नागरिकों को आपसी सहयोग करते हुए एकजुट होकर कार्य करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि नैतिक मानकों को बनाए रखना सामुदायिक भागीदारी का एक आवश्यक उत्तरदायित्व है (ज़ज्दा, मज़ानोविच और रस्ट, 2006)।

'पॉलिटिकल लिबरलिज्म' (1993) और *'ए थ्योरी ऑफ सोशल जस्टिस'* (1971) के माध्यम से जॉन रॉल्स, सामाजिक न्याय के विचार से जुड़े हुए एक प्रसिद्ध नैतिक और राजनीतिक दार्शनिक हैं जोकि अपनी इन दोनों पुस्तकों में सामाजिक न्याय के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कांट के स्पष्ट अनिवार्यता सिद्धांत, बेंथम और मिल के उपयोगितावादी सिद्धांत और लॉक के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत का संदर्भ देते हैं। *'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस'* (1971) में सामाजिक न्याय को संदर्भित करते हुए उन्होंने यह दावा किया कि प्रत्येक व्यक्ति के पास न्याय पर आधारित एक अनुल्लंघनीयता है, जिसे समग्र रूप से समाज का कल्याण भी खत्म नहीं कर सकता है। इसलिए सामाजिक न्याय

इस अभिधारणा को खारिज करता है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्राप्त अधिक लाभ कुछ लोगों की स्वतंत्रता के नुकसान की भरपाई करता है। रॉल्स के अनुसार सामाजिक न्याय मूलतः एक मानवतावादी विचार है (रॉल्स, 1971, 1993)।

शिक्षा के संदर्भ में सामाजिक न्याय के विषय को विभिन्न परिस्थितियों तथा वास्तविकताओं में मानवीय व्यवहार तथा वांछित प्रतिक्रियाओं हेतु आवश्यक दृष्टिकोण के निर्माण तथा सकारात्मक कार्यों के रूप में देखा जाता है। चूँकि निष्पक्ष और उचित शिक्षा के लिए सामाजिक विसंगतियाँ बाधक होती हैं, इसलिए संपूर्ण शैक्षिक प्रणाली में गहन ज्ञान, जुनून और उचित निर्णय लेने वाले सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की अवधारणा में विश्वास रखने वाले अध्यापकों की आवश्यकता है (सोंडेल, कोच, कैरियर और वॉकोविआक, 2017)।

सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की मुख्य विशेषताएं

सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र का उदय बहुसांस्कृतिक तथा बहुभाषिक शिक्षा, नागरिक अधिकार आंदोलन एवं सामाजिक नारीवाद जैसे सक्रिय और चैतन्य आंदोलनों के एक समृद्ध और जटिल समूह के साझे विमर्श से हुआ है। ये सभी विचारधाराएँ सकारात्मक जातीय पहचान तथा सामाजिक समानता को लागू करने और असमानता तथा अन्याय को दूर करने की प्रतिबद्धता पर जोर देती हैं। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र पाउलो फ्रेरे की आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र पर भीआधारित है, जिन्होंने शिक्षा को स्वतंत्रता के अभ्यास के रूप में देखा था। फ्रेरे ने एक ऐसे संवादात्मक शिक्षणशास्त्र का सुझाव दिया जिसके माध्यम से उत्पीड़ित लोगों को यह समझ में आ जाए कि उनकी वर्तमान स्थिति किसी प्राकृतिक व्यवस्था के कारण नहीं अपितु शक्तिशाली सामाजिक हितों की गतिशीलता का प्रतिफल है इसलिए इसे बदला जा सकता है। फ्रेरे ने जॉन डीवी द्वारा सुझाई गई अनुभवात्मक शिक्षा की मूल अभिधारणा को दृष्टिगत रखते हुए यह तर्क दिया कि शिक्षा को प्रमुख समूहों द्वारा पूर्व स्थापित ज्ञान की अपेक्षा विद्यार्थियों द्वारा सीखने के लिए उपयोग में लाए गए संसाधनों पर केंद्रित होना चाहिए (ज़ज्दा, 2010)।

1. वर्तमान समय में सामाजिक असमानता दुनिया भर के देशों के लिए एक जटिल मुद्दा है। वर्तमान समय में सबसे बड़ी असमानता वाले देशों में स्वास्थ्य समस्याएं, उच्च मृत्यु दर, खराब मानसिक स्वास्थ्य, खराब सामाजिक एकजुटता, अपराध, हिंसा और कैद की उच्च दर देखने को मिलती है। इन सभी सामाजिक असमानताओं तथा अन्याय को पहचानने में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र विभिन्न स्तरों पर कार्यरत अध्यापकों तथा अध्ययनरत विद्यार्थियों की सहायता करता है।
2. सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को उन असमान शक्ति संबंधों को चुनौती देने और बदलने के लिए प्रोत्साहित करता है जो उनके अवसरों और क्षमता को सीमित करते हैं। जिसमें अध्यापक शक्ति और विशेषाधिकार के मुद्दों के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करते हैं और विद्यार्थियों को उसके प्रति मनन करने के अवसर प्रदान करते हैं। इस शिक्षणशास्त्र की सहायता से विद्यार्थियों को यह निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि सामाजिक असमानताएँ पैदा करने वाली संरचनाओं को कैसे बदला जा सकता है और इस परिवर्तन को प्राप्त करने के लिए वे कौन से कदम उठा सकते हैं।
3. यह शिक्षणशास्त्र सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता के लिए समावेशी अभ्यास की आवश्यकता को स्वीकार करता है और यह सुनिश्चित करता है कि विद्यालय के अन्दर निर्णय लेने की सामाजिक प्रक्रियाओं में सभी

अध्यापकों तथा विद्यार्थियों (विशेष रूप से सीमांतीकृत या वंचित) को शामिल किया जाए, उनकी बातों को सुना जाए और उन्हें सशक्त बनाया जाए।

4. सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र का उद्देश्य सभी विद्यार्थियों को शिक्षा से सम्बंधित उच्च मानक हासिल करने में सहायता करना भी है। इस शिक्षणशास्त्र का कार्य यह भी सुनिश्चित करना कि यह कक्षा में असमानता से जुड़े विभिन्न आयामों को बाधित किया जाए।
5. सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में विभिन्न संस्कृतियों के सांस्कृतिक मानदंडों, मूल्यों तथा मान्यताओं का समावेशन करने के साथ-साथ बहुसांस्कृतिक शिक्षण रणनीतियों, उदाहरणों तथा गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है, इसके अतिरिक्त शिक्षार्थियों के ज्ञान का आकलन करने के लिए रूब्रिक्स, पोर्टफोलियो, थिंक पेयर शेयर, क्षेत्रगत निर्दिष्ट कार्य, स्वयं तथा सहकर्मी आकलन तथा नो-वांट टू नो-लर्नेट इत्यादि शिक्षार्थी केन्द्रित वैकल्पिक मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग इया जाना चाहिए।

सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र अपनाने वाले अध्यापक का दृष्टिकोण

अध्यापकों के लिए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र अकादमिक विशेषज्ञता, आलोचनात्मक चिंतन और जिम्मेदारी पर आधारित मार्गदर्शक सिद्धांतों का एक ऐसा समूह है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रेरित है। परंतु इन मार्गदर्शक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से लागू करने के लिए ऐसे सहकारी समुदायों की आवश्यकता है, जो इन सिद्धांतों का समर्थन करते हों तथा इन्हें अपनाने के लिए उपयुक्त हों। एक सामाजिक न्याय अध्यापक के पास जीवन के सभी पहलुओं में अखंडता को बनाए रखने की बहादुरी के साथ-साथ अतीत की सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक असमानताओं के बारे में ठोस जागरूकता होनी चाहिए। इन मार्गदर्शक सिद्धांतों के कारण सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र दूसरों के परस्पर सम्मान, सहानुभूति और सेवा जैसे मूल्यों पर आधारित है (डंकवू और ग्रिफ़िथ्स 2001)।

सामाजिक न्याय तथा शैक्षिक न्याय में पारस्परिक संबंध, जुड़ाव तथा समावेशन आवश्यक है। प्रभावी शैक्षिक गतिविधियों तथा निर्माणवादी वातावरण के लिए *'शिक्षा'* को *'शैक्षिक न्याय'* के रूप में परिवर्तित करना एक उपयुक्त विधि है। कक्षा में लोकतान्त्रिक वातावरण के निर्माण के लिए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की अवधारणा में विश्वास रखने वाले अध्यापक अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए तैयार होते हैं। जॉन डीवी (1916) के अनुसार शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है जो प्रत्येक पीढ़ी के साथ बदलती है, जिससे हमारी संपूर्ण शैक्षिक प्रणाली में *'शिक्षा'* को *'शैक्षिक न्याय'* में बदलना आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक पीढ़ी को लोकतांत्रिक अवधारणाओं और प्रथाओं के निर्माण के लिए जिस जानकारी की आवश्यकता होगी, इस प्रकार के शैक्षिक न्याय परिवर्तन के परिणामस्वरूप उन्हें प्राप्त करना आसान हो जाएगा।

वर्तमान व्यवस्था में प्रगतिशील परिमार्जन हेतु शैक्षिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध अध्यापकों में आवश्यक साहस और दृढ़ संकल्प तथा चुनौती देने की क्षमता होनी चाहिए। शिक्षाविद् तथा विशेषज्ञ इस बात पर जोर देते हैं कि वर्तमान स्थिति को चुनौती देने का अर्थ, भिन्न या विपरीत विचारों के साथ शत्रुता या टकराव की स्थिति के सन्दर्भ में नहीं होना चाहिए। जिसके लिए विद्यालयी स्तर पर अध्यापकों के पास विद्यार्थियों के साथ व्यावहारिक

रूप से जुड़ने और सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के सिद्धांतों को सफलतापूर्वक सिखाने के लिए आवश्यक कौशल होना चाहिए। इन सिद्धांतों और कौशलों की समझ के द्वारा सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र द्वारा अध्यापक लोकतांत्रिक रूप से सामाजिक (विशेषकर शैक्षिक) परिवर्तन में संलग्न हो सकते हैं (मोल और अर्नोट-हॉफ़र, 2005)। लोकतंत्र को आगे बढ़ाने के लिए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापक परस्पर विचार विमर्श करते हैं, सहयोग करते हैं और विचारोत्तेजक संवाद में संलग्न होते हैं। इसके अतिरिक्त वे अन्य समुदायों के मूल्यों एवं लोकतांत्रिक परंपराओं की शिक्षा देते हैं, जिससे शिक्षार्थी के व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में शालीनता, नागरिक कर्तव्य और परोपकारिता के गुणों का विकास होता है (मिल्स और बैलेंटाइन, 2016)। इस शिक्षणशास्त्र का विश्वास है कि व्यक्ति चेतना की सर्वोच्च अवस्था तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वे अपने व्यवहारों को सामाजिक सरोकारों के सन्दर्भ में एक नए सिरे से अन्वेषित करते हैं। इसके बाद शिक्षार्थियों को शिक्षित करना तथा सामाजिक न्याय से अवगत कराना सरल हो जाता है (इंट्रेटर और कुंजमैन, 2006)। इस शिक्षणशास्त्र के माध्यम से निर्मित कक्षा की अधिगम पारिस्थितिकी में विद्यार्थी ये भी सीखते हैं कि उनके अतिरिक्त दूसरे लोग एवं दूसरे समुदाय अपने आस-पास के संसार को किस प्रकार देखते हैं और कैसे/क्या अनुभव करते हैं (इंग्लिस और विलिंस्की, 2007)।

सामाजिक न्याय शिक्षाशास्त्र के मार्गदर्शक सिद्धांत

एक अध्यापक की कक्षागत तथा कक्षणेत्तर निर्देशन क्षमता अनेक चुनौतीपूर्ण विशेषताओं से संबंधित होती है, जिन्हें यदा-कदा जुनून, परिस्थिति में बदलाव की इच्छा या व्यवहार की किसी प्रकार की 'संबंधता' के रूप में जाना जाता है (इंट्रेटर और कुंजमैन, 2006)। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र को अपनाने वाले अध्यापकों में भी इसी प्रकार के गुण विद्यमान होते हैं। ये अध्यापक समाज के अंतर्निहित नैतिक सिद्धांतों के संपर्क में रहने के कारण सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्साहित और सामाजिक अन्याय और असमानताओं को समाप्त करने के लिए समर्पित होते हैं(ब्रुहन, ज़ाजैक, अल-काज़ेमी और प्रेस्कॉट, 2002)। इस लेख में रेखांकित किए गए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के मार्गदर्शक सिद्धांत अध्यापक की कक्षागत शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से संबंधित क्रियाकलापों को निर्देशित करने, कक्षा में नैतिक व्यवहार के मानकों को निर्धारित करने और नागरिक सहभागिता विकल्पों को प्रस्तावित एवं प्रभावित करने का कार्य करते हैं। प्रभावी अध्यापक के लिए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के दर्शन से संबंधित महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. जवाबदेही
2. सम्मान
3. सेवा के प्रति प्रतिबद्धता
4. सत्यनिष्ठा
5. देखभाल करना

1. **जवाबदेही:** यह एक ऐसा उपकरण है, जिसका उपयोग सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में विश्वास रखने वाले अध्यापक नैतिकता और ईमानदारी से किए गए कार्यों की पहचान करने तथा अपने दायित्वों को सुनिश्चित करने

के लिए करते हैं। जवाबदेही यह दर्शाती है कि नैतिक सिद्धांत और क्रियान्वित किए गए कार्य किस सीमा तक आपस में मेल खाते हैं। व्यावहारिक रूप से सामाजिक न्याय अध्यापक अपने पेशेवर, व्यक्तिगत और नागरिक कार्यों की जिम्मेदारी लेने के इच्छुक होते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रगतिशील नीतियाँ, जो व्यक्तियों और समूहों को सामाजिक न्याय शिक्षा आंदोलन में जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, उन सब में सतत जवाबदेही के प्रति चेतना को शामिल करने की आवश्यकता है। इस कारण से सामाजिक न्याय अध्यापक सहयोग का सम्मान करते हुए सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन हेतु निरंतर प्रयासरत रहते हैं। जवाबदेही एक ऐसी सूझ-बूझ वाली प्रक्रिया है, जो आपसी विश्वास पर निर्मित होती है। सामाजिक न्याय अध्यापक सहयोगात्मक भागीदारी को सुनिश्चित करने और समुदायों को सशक्त बनाने के लिए भी जवाबदेह होते हैं (रॉजर्स, 2006)।

2. **सम्मान :** सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापक निष्पक्षता तथा बिना किसी पूर्वाग्रह के अलग-अलग विचारों का अवलोकन करते हैं और उन विचारों को भी स्थान देते हैं, जो उनके अपने वैयक्तिक विचारों से भिन्न होते हैं। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापकों को विभिन्न दृष्टिकोणों के निष्पक्ष विश्लेषण और निरपेक्ष समझ विकसित करने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाता है। हालाँकि, इसका अर्थ सहमति प्रदर्शित करना नहीं है; अपितु यह एक सम्मानजनक वातावरण प्रदर्शित करता है। 'सम्मान' की संकल्पना में विविधता को समावेशित करने के गुण के साथ-साथ दूसरों की समझ, दृष्टिकोण और स्थिति को पहचानते हुए अपनी गरिमा को सम्मान दिया जाता है। इस प्रक्रिया में स्वमूल्यांकन करने, आत्ममनन करने, अपनी स्थितियों का अन्वेषण करने और दूसरों के साथ अन्याय होने पर हस्तक्षेप करने में सक्षम बनाने के लिए सम्मान, स्वीकृति और गरिमा को भी आपस में जोड़ा जाता है।

3. **सेवा के प्रति प्रतिबद्धता:** सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापकों द्वारा सेवा के प्रति प्रतिबद्धता को *'मानवता के संकेतक'* के रूप में जिम्मेदारी स्वीकृत की जाती है। इस संकेतक में कदाचाररहित प्रकृति, ईमानदारी और दूसरों के प्रति सम्मान की भावना जैसी विशेषताएं निहित हैं। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापक अपने व्यक्तिगत लाभ की आशा किए बिना विनम्रतापूर्वक नागरिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। अपने कर्तव्यों से परे जाने की स्थिति में भी वे सामाजिक न्याय के मौलिक सिद्धांतों और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रहते हैं। परंतु ऐसा नहीं है कि सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में अध्यापकों को 'नायक' की भूमिका के रूप में देखा जाना चाहिए या उनके प्रति प्रवर्तन-उन्मुख दृष्टिकोण को कायम रखना चाहिए। एक अध्यापक अपने सुविधा-क्षेत्र के बाहर आने के फलस्वरूप होने वाली असंगति को सामाजिक न्याय की अपनी समझ को गहरा करने के अवसर के रूप में देखते हैं। अध्यापक की शैक्षिक प्रगति की पहचान चुनौतीपूर्ण प्रक्रियाओं से भी जुड़ी होती है, जो सेवा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को विकसित करती है।

4. **सत्यनिष्ठा:** सत्यनिष्ठा को उस मात्रा के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिस सीमा तक किसी व्यक्ति के विश्वास, दृष्टिकोण और कार्य उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन दोनों के अनुरूप हैं। सामाजिक न्याय

शिक्षणशास्त्र में अध्यापक शिक्षार्थियों को अधिक से अधिक व्यावहारिक स्तर की जानकारी देने के लिए सचेत रूप से अपनी सैद्धांतिक समझ को निरंतर अभिवृद्धित करते हैं। इस संदर्भ में वे शिक्षार्थियों के विचारों, नैतिक मूल्यों और कार्यों, उनकी नागरिक प्रतिबद्धता, व्यक्तिगत और व्यावसायिक नैतिकता और धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप अपने कार्यों का सम्पादन करते हैं। इसके विपरीत वे अध्यापक जो मात्र सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र से जुड़े शैक्षणिक सिद्धांतों, दृष्टिकोण और व्यवहार का पालन करने का 'दिखावा' करते हैं, वे वास्तव में मात्र 'बातचीत' करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के व्यावसायिक जीवन में व्यवहार का एक पूर्व निर्धारित पैटर्न होता है, जिसमें आत्म-प्रचार का व्यवहार, आत्मनिरीक्षण से बचना या स्वयं शिक्षार्थियों एवं संस्था के लिए जवाबदेही न स्वीकार करना और उनके द्वारा सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन संबंधी लक्षण परिलक्षित होते हैं।

5. **देखभाल करना:** यदि चारित्रिक विकास शिक्षा का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए तो इस प्रक्रिया में देखभाल की नैतिकता इसकी मौलिक आवश्यकता है (डीवी, 1916)। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र में विश्वास रखने वाले अध्यापकों के लिए चरित्र निर्माण की शिक्षा महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस प्रकार की सीखने की प्रक्रिया उनमें एवं उनसे जुड़े विद्यार्थियों में नागरिकता के बोध को बढ़ावा देती है (कोचरन-स्मिथ, 2003; नोडिंग्स, 2005)। एक सामाजिक न्याय अध्यापक अपने व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में अपने और अपने साथियों के कार्यों की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार रहता है। जब सामाजिक न्याय अध्यापक 'देखभाल की नैतिकता' का पालन करते हैं, तो वे नकारात्मक दृष्टिकोणों और विश्वासों को चुनौती देकर सामाजिक रूप से अपनी विद्यालयी प्रथाओं की परिवर्तनकारी प्रकृति को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

विद्यालयी पारिस्थितिकी में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की प्रासंगिकता

विद्यालयी शिक्षण-अधिगम पारिस्थितिकी से जुड़े विभिन्न हितधारकों के लिए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र की प्रासंगिकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

अध्यापकों के लिए-

इस लेख में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है। इस लेख के अध्ययन उपरांत विद्यालयी स्तर के अध्यापक सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के मूल सिद्धांतों को समझकर कक्षा की शिक्षण-अधिगम पारिस्थितिकी को सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतो के अनुरूप निर्मित करने में सक्षम हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी और सामाजिक रूप से समावेशी बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों ,शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का कक्षा-कक्ष में आयोजन करेंगे जिसके कारण सभी विद्यार्थियों का इन क्रियाकलापों में समावेशन सुनिश्चित हो पाएगा।

शिक्षार्थियों के लिए-

वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षार्थी केंद्रित है। इस लेख में सुझाए गए सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र संबंधी सिद्धांतों को वर्तमान शैक्षिक परिस्थिति में लागू करने से विद्यालयों में शिक्षार्थियों का समावेशन तथा अधिगम में

उनकी संलग्नता पर सकारात्मक प्रभाव दिखाई देगा। सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र पारिस्थितिकी वाले विद्यालयों में शिक्षार्थी अपनी आवश्यकता के अनुसार पाठ्यचर्या, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया तथा मूल्यांकन प्रविधियों का उपयोग करते हुए अधिगम के प्रतिफलों को प्राप्त कर पाएंगे। इस प्रकार की शिक्षा द्वारा शिक्षार्थी में नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का विकास भी संभव हो सकेगा।

पाठ्यचर्या निर्माता एवं पाठ्यपुस्तक लेखकों के लिए-

वर्तमान समय में विद्यालय की पाठ्यचर्या का निर्माण संविधान में निहित मूल्यों जैसे- सामाजिक न्याय, समानता तथा धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप तथा गुणवत्ता एवं सामाजिक न्याय को पाठ्यचर्या सुधार का मुख्य बिंदु माना जा रहा है। इसके आलोक में पाठ्यचर्या निर्माता विद्यालयी शिक्षा के लिए इस प्रकार की विषय-वस्तु को विकसित करने में सक्षम हो सकेंगे। जिसमें सामाजिक न्याय की मूल संकल्पना का ध्यान रखा गया हो। पाठ्यचर्या निर्माण के इन सिद्धांतों को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यपुस्तक लेखक पुस्तकों की विषय-वस्तु में सामाजिक न्याय से जुड़े उदाहरण और चित्र शामिल करेंगे।

विद्यालय प्रबंधकों तथा प्रधानाचार्यों के लिए-

सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के अनुसार सार्वजनिक स्थल के रूप में विद्यालय का वातावरण समानता, सामाजिक न्याय, विविधता और बहुलता के प्रति सम्मान का भाव रखने वाला होना चाहिए। जिसको दृष्टिगत रखते हुए विद्यालय प्रबंधक, विद्यार्थियों के लिए इसी प्रकार की विशेषताओं वाला विद्यालयी वातावरण उपलब्ध कराने में सक्षम हो सकेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन शिक्षा ही है। अतः प्रधानाचार्य भी सभी विद्यार्थियों तक शिक्षा की पहुँच, सहभागिता और अधिगम परिणामों में सामाजिक श्रेणी के अंतरालों को दूर करने जैसे विकास कार्यक्रमों को शिक्षा विमर्श में प्रमुख स्थान देंगे।

विद्यालयी स्तर की शैक्षिक प्रक्रियाओं में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के सिद्धांत अध्यापक तथा शिक्षार्थियों के मध्य सहानुभूति और सांस्कृतिक क्षमता के विकास में सहायक होते हैं, जिसमें उन्हें विविध दृष्टिकोण और अनुभवों की सराहना करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र अध्यापक तथा शिक्षार्थियों में नागरिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देते हुए जटिल सामाजिक मुद्दों के प्रभावी समाधान के लिए आवश्यक कौशलों में दक्षता प्रदान करता है। यह शिक्षणशास्त्र विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से *'निष्पक्षता और समानता के प्रति प्रतिबद्धता'* में संलग्न होने और अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में योगदान करने के लिए तैयार करता है। इस शिक्षणशास्त्र में की जाने वाली सहयोगात्मक परियोजनाएं और अनुभवात्मक शिक्षण गतिविधियां विद्यार्थियों को वास्तविक दुनिया के संदर्भों में सामाजिक न्याय की मूल मान्यताओं को लागू करने में सक्षम बनाती हैं, जिससे उनकी समझ और सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने की क्षमता बढ़ती है।

इस परिवर्तनकारी शिक्षणशास्त्र के प्रमुख सूत्रधार के रूप में सामाजिक न्याय अध्यापक, विशिष्ट विशेषताओं का प्रदर्शन करते हैं, जो उन्हें *'दिखावे की संस्कृति'* से अलग करती हैं। इस शिक्षणशास्त्र में अध्यापक शिक्षा में समानता और समावेशन के प्रति गहरी प्रतिबद्धता रखते हैं और सक्रिय रूप से विविधतापूर्ण अधिगम वातावरण निर्मित करने का निरंतर प्रयास करते हैं। वे विद्यार्थियों में आलोचनात्मक तथा मननशील चिंतन एवं सामाजिक कौशलों के विकास के साथ-साथ उनको सामाजिक मानदंडों और पूर्वाग्रहों पर सवाल उठाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए तैयार करते हैं। एक प्रभावी सामाजिक न्याय अध्यापक सहानुभूति, मुक्त विचारों वाला और अपनी शैक्षणिक गतिविधियों को परिष्कृत करने के लिए चल रहे, आत्म-मनन में संलग्न होने की विशेषता का प्रदर्शन करते हुए विद्यार्थियों के लिए आदर्श (रोल मॉडल) के रूप में कार्य करता है।

शैक्षिक परिदृश्य में सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के एकीकरण से शिक्षा के विभिन्न पक्ष लाभान्वित होते हैं। इसके माध्यम से समावेशिता, आलोचनात्मक समझ और नागरिक जुड़ाव को बढ़ावा मिलता है। अपनी विशिष्ट विशेषताओं के साथ सामाजिक न्याय अध्यापक इन मूल्यों को प्रतिबिंबित करने वाली शैक्षिक पारिस्थितिकी का निर्माण एवं शिक्षार्थी केन्द्रित कक्षा को नवीन आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक न्याय शिक्षणशास्त्र के द्वारा विद्यालयी अध्यापक, शिक्षा में वैविध्यपूर्ण दृष्टिकोणों को सम्मिलित करके तथा शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में किए जाने वाले संवाद को बढ़ावा देने वाली सकारात्मक रणनीतियों को नियोजित करके निरंतर विकसित हो रही दुनिया की विभिन्न सामाजिक चुनौतियों का प्रभावी समाधान करने के लिए सामाजिक रूप से जागरूक और सशक्त व्यक्तियों के विकास में योगदान करते हैं।

संदर्भ सूची

1. ब्रुहन, जे., एवं अन्य. (2002). मॉरल पज़िशन एंड ऐकडेमिक कन्डक्ट: पैरामीटर ऑफ़ टालरन्स फॉर एथिक्स फैल्यर. द *जर्नल ऑफ़ हायर एजुकेशन*, *73* (4), 461-493. DOI:10.1353/jhe.2002.0033
2. केल्सो, ओ. एवं एडलर, एम. (1958). *दी कैपिटलिस्ट मेनीफेस्टो*. न्यूयॉर्क: रैंडम हाउस. https://www.kelsoinstitute.org/pdf/ cm-entire.pdf
3. कोचरन-स्मिथ, एम. (2003). टीचर एजुकेशन एंड सोशल जस्टिस. *टीचर एजुकेशन कॉर्टर्ली*, *30* (2), 7-116.
4. डीवी, जे. (1916). डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन. द *फ्री प्रेस*, न्यूयार्क. https://allenbolar.files.wordpress.com/2015/03/ dewey-democracy.pdf
5. डोडसन, एम. (1993). ऐन्यूअल रिपोर्ट ऑफ़ दी ऐबरिजनल एंड टोरेस स्ट्रेट आइलैंडर सोशल जस्टिस कमिश्नर. http://australianmuseum.net.au/Indigenous-Australia-Social-Justice
6. डंकवू, के., एवं ग्रिफ़िथ्स, एम. (2001). सोशल जस्टिस इन एजुकेशन: अप्परोचेस एंड प्रोसेस (रिव्यू). ब्रिटिश एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन, http://www.bera.ac.uk
7. इंग्लिस, पी. एवं विलिंस्की, जे. (2007). सूप किचन डेमोक्रेसी. (पीपी. 35-49). कूपर के, व्हाइट आर (एडिटेड) के द *प्रैक्टिकल एजुकेटर: क्रिटिकल इंक्वायरी एंड एजुकेशनल प्रैक्टिस* में. स्प्रिंगर, डॉर्ड्रेक्ट, नीदरलैंड्स, ndl.ethernet.edu.et/bitstream/123456789/33585/1/375.JosephZajda.pdf

8. इंट्रेटर, एस. एवं कुंजमैन, आर. (2006). दी पर्सन इन दी प्रोफेशन: रिन्यूविंग टीचर वाइटैलिटी थ्रू प्रोफेशनल डेवलपमेंट. *दी एजुकेशनल फोरम, 71,* 17-32. DOI: 10.1080/00131720608984564
9. मिल्स, सी, एवं बैलेंटाइन, जे. (2016). सोशल जस्टिस एंड टीचर एजुकेशन: ए सिस्टमैटिक रिव्यू ऑफ़ एम्पिरिकल वर्क इन दी फील्ड. *जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन, 67* (4), 263-276. DOI:10.1177/0022487116660152
10. मोल, एल., एवं अर्नोट-हॉफ़र, ई. (2005). सोशियोकल्चरल काम्पिटन्स इन टीचर एजुकेशन. *जर्नल ऑफ़ टीचर एजुकेशन*, 56 (3):242-247.
11. मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.* 12 अक्टूबर 2023 को NEP_final_HINDI_0.pdf (education.gov.in) से प्राप्त किया गया है.
12. नोडिंग्स, एन. (2005). *दी चैलेंज टू केयर इन स्कूल्स: एन ऑल्टर्नेटिव अप्रोच टू टीचिंग*. टीचर्स कॉलेज प्रेस, न्यूयॉर्क.
13. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. (2022). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा फाउन्डेशनल स्टेज 2022.* एनसीईआरटी, नई दिल्ली.
14. रॉल्स, जे. (1971). *ए थ्योरी ऑफ़ जस्टिस*. कैम्ब्रिज, एमए : हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. https://giuseppecapograsi.files.wordpress.com/2014/08/ rawls99.pdf
15. रॉल्स, जे. (1993). *पॉलिटिकल लिबरलिज्म.* न्यूयार्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
16. रॉजर्स, सी. (2006). दी टर्निंग ऑफ़ वन्स सोल– लर्निंग टू टीच फॉर सोशल जस्टिस: द पुटनी ग्रेजुएट स्कूल ऑफ टीचर एजुकेशन (1950-1964). *टीचर्स कॉलेज रिकॉर्ड, 108* (7), 1266-1295। DOI: 10.1111/j.1467-9620.2006.00693.
17. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. (2006). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005.* रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
18. सोंडेल, बी., एवं अन्य. (2017). टूवर्ड्स ए थ्योरी ऑफ़ टीचर एजुकेशन फॉर जस्टिस ऑरिएन्टेड स्टीम. *कैटलिस्ट: ए ओकियाल जस्टिस फोरम, 7* (1), 38-52. https://core.ac.uk/download/pdf/268793202.pdf
19. वार्डेन, एच. (2015). इमैनुअल कांट- जस्टिस एंड फ्रीडम. (पीपी. 213-237). इन फोस्टेड, जी (एडिटेड). *फिलोसोफी ऑफ जस्टिस, कंटेम्परारी फिलोसोफी : ए न्यू सर्वे 12,* स्प्रिंगर साइंस+बिजीनिस डोड्रेक्ट.
20. ज़ज्दा, जे. (2010). *ग्लोबलाईजेशन, एजुकेशन एंड सोशल जस्टिस, ग्लोबलाईजेशन, कम्पैरेटिव एजुकेशन एंड पॉलिसी रिसर्च*. स्प्रिंगर 10. DOI 10.1007/978-90-481-3221-8_6
21. ज़ज्दा, जे. मज़ानोविच, एस., एवं रस्ट, वी. (2006). एजुकेशन एंड सोशल जस्टिस: इशूज़ ऑफ़ लिबर्टी एंड इक्वालिटी इन दी ग्लोबल कल्चर. जे. ज़ज्दा, एस. मज़ानोविच, और वी. रस्ट (एडिटेड), *एजुकेशन एंड सोशल जस्टिस.* (पृ. 1-12). डॉर्ड्रेक्ट: स्प्रिंगर.

https://talkcurriculum.files.wordpress.com/2014/09/zajda-j-majhanovich-s-and-rust-v-2006-introduction-education-and-social-justice.pdf

22. कोचरन-स्मिथ, एम. और फ्राइज़, के. (2005). द एईआरए पैनल ऑन रिसर्च एंड टीचर एजुकेशन : कॉन्टेक्स्ट एंड गोल्स. इन कोचरन-स्मिथ, एम. और जैक्नर, के. (एडिटेड). *स्टडिंग टीचर एजुकेशन : द रिपोर्ट ऑफ द एईआरए पैनल ऑन रिसर्च एंड टीचर एजुकेशन.* लौरेंस एर्लबाम, हिलसाइड, एनजे, पीपी. 37-68.

29

काम का अधिकार और भारतीय संविधान

डॉ. स्वाति सुचारिता नंदा
सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान, डीएवी पीजी कॉलेज,वाराणसी
डॉ. राकेश कुमार मीणा
सहायक आचार्य, शहीद भगत सिंह कॉलेज,नई दिल्ली

काम करने का अधिकार उदार लोकतंत्रों में निहित है जो उनके सभी नागरिकों को सम्मानजनक जीवन प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। ऐसा माना जाता है कि एक अवधारणा के रूप में, 'काम करने के अधिकार' की शुरुआत फ्रांस से हुई थी, जहाँ एक फ्रांसीसी समाजवादी नेता लुइस ब्लैंक ने 19वीं शताब्दी की शुरुआत में हुई सामाजिक उथल-पुथल और 1846 के वित्तीय संकट के बाद बढ़ती बेरोजगारी के मद्देनजर इस अवधारणा को गढ़ा था, जिसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामस्वरूप 1848 की फ्रांसीसी क्रांति हुई। नागरिकों द्वारा प्रारंभ में राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों तथा संपत्ति पर सामंती नियंत्रण की खिलाफत के साथ नागरिकों द्वारा संपत्ति के अधिकार की मांग एक महत्वपूर्ण बात थी। यह माना जाता था कि संपत्ति पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार के आधार के रूप में काम करेगी जो कि नागरिकों को अधिक विचारशील और जिम्मेदार बनने के लिए प्रेरित करेगी। इसलिए केवल संपत्ति के मालिकों को ही नागरिक और राजनीतिक अधिकार दिए गए थे, जैसे कि वोट देने का अधिकार इत्यादि। हालाँकि समाजवादी विचारधारा के उदय ने निजी संपत्ति के अधिकार को एक सद्गुण होने के रूप को चुनौती दी थी। क्रमशः इसे सभी के लिए जीने और काम करने के अधिकार तथा सभी नागरिकों की भलाई के लिए काम करने के कर्तव्य में बदल दिया गया (वूल्सी, 1880)। आधुनिक समय में, काम करने के अधिकार को व्यापक रूप से मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948) ने 1966 के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय में शामिल करके अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में काम करने के अधिकार को स्पष्ट रूप से मान्यता दी है। यह निहित है कि राज्यों का दायित्व है कि वे ऐसी परिस्थितियाँ बनाएँ और बनाए रखें जहाँ प्रत्येक मनुष्य को सम्मानजनक तरीके से उत्पादक रोजगार में संलग्न होने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

भारत में, स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सम्मान के साथ काम करने का अधिकार एक महत्वपूर्ण मांग थी। सामाजिक-धार्मिक सुधारकों के प्रयासों से 1885 की शुरुआत में ही फैक्ट्री श्रमिकों की दुर्दशा के खिलाफ विधायी उपायों की मांग की गई थी (उपाध्याय, 2022:2)। ट्रेड यूनियन आंदोलनों के क्रमिक विकास ने श्रमिकों के विभिन्न अधिकारों की अभिव्यक्ति को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने इस मुद्दे पर ध्यान दिया। स्वदेशी आंदोलन, होम रूल लीग और असहयोग आंदोलन ने श्रमिकों के सम्मानजनक अधिकारों की मांगों को महत्वपूर्ण माना। बाद में, यह संविधान सभा की बहसों में परिलक्षित हुआ, जिसके कारण विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों के तहत काम करने के अधिकार को शामिल किया गया। एक उदार लोकतांत्रिक देश के रूप में भारत जो कि संवैधानिक सिद्धांतों

द्वारा शासित है वह अपने नागरिकों को आर्थिक सुरक्षा की गारंटी देने के लिए प्रतिबद्ध है। यह बात मुख्य रूप से भाग-III और भाग-IV में निहित विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों से स्पष्ट है। यहाँ पर हमें काम करने के अधिकार को उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों में शामिल करने पर हुई बहसों को समझना जरुरी हैं। इसके साथ ही यहाँ भारतीय न्यायपालिका द्वारा उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण मामलों और 'काम के अधिकार' से संबंधित संवैधानिक सिद्धांतों को सुरक्षित करने के लिए विभिन्न सरकारों द्वारा बनाए गए कानूनों को जानना भी आवश्यक है।

संविधान सभा की बहस में काम का अधिकार

संविधान निर्माता संविधान के माध्यम से भारत को तर्कसंगतता के युग में ले जाने के लिए प्रतिबद्ध थे, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर मिले। उन्होंने यह भी महसूस किया कि आजीविका सुरक्षा की उपस्थिति से ही मानवीय गरिमा प्राप्त की जा सकती है। इससे भारत के संविधान में काम करने के अधिकार के अस्तित्व के बारे में सवाल उठे। इस पर विचार करते हुए विधानसभा के माननीय सदस्य श्री पी.आर. ठाकुर ने आजीविका सुरक्षा से संबंधित बुनियादी आर्थिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों के भाग में शामिल करने का तर्क दिया। "पी. आर. ठाकुर ने वास्तव में मौलिक अधिकारों में एक कमी को छुआ है जो हमारे लोकतंत्र को अदूरदर्शी बनाने और दुनिया के किसी भी अन्य संविधान की तुलना में अधिक व्यापक सभी अन्य अधिकारों को काफी हद तक निष्प्रभावी बनाने के लिए जिम्मेदार है। काम करने के अधिकार की अनुपस्थिति हमें बेरोजगारी और भुखमरी जैसी असंख्य बुराइयों की कल्पना कराती है जो देश में कई वर्षों तक कहर ढाती रहेंगी" (डोसल, 1952: 99-100)।

हालांकि, इसका दो कारणों से विरोध किया गया; पहला कारण यह आशंका थी कि इसके लिए पूरी राजनीतिक व्यवस्था को सोवियत समाजवादी मॉडल के अनुसार डिजाइन करना होगा, जो संविधान निर्माता नहीं चाहते थे। दूसरा कारण यह था कि रोजगार के प्रावधान को राज्य का दायित्व बनाने से राज्य पर भारी आर्थिक बोझ पड़ेगा, जबकि देश स्वतंत्रता के तुरंत बाद कठिन वित्तीय परिस्थितियों में खड़े होने के लिए संघर्ष कर रहा था।

हालांकि, संविधान निर्माता अच्छी तरह से जानते थे कि काम के अधिकार को जगह नहीं देना नागरिकों के आर्थिक कल्याण के सिद्धांत के खिलाफ होगा। इसलिए, मसौदा अनुच्छेद 31 (संविधान में अनुच्छेद 39) को 22 नवंबर 1948 को संविधान सभा में बहस के लिए लिया गया था (संविधान सभा बहस, 2014: 511)। इसने राज्य को समाज के कमजोर वर्गों पर विशेष जोर देने के साथ नागरिकों के आर्थिक कल्याण की रक्षा और बढ़ावा देने का निर्देश दिया। मसौदा अनुच्छेद 10 (संविधान में अनुच्छेद 16) पर 30 नवंबर 1948 को बहस हुई थी। इसने सभी सरकारी नौकरियों में अवसर की समानता प्रदान की। इसमें कहा गया कि किसी भी नागरिक के साथ सरकारी नौकरी के लिए धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, वंश, जन्म स्थान या निवास के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। इसने राज्य को किसी भी पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण करने की भी अनुमति दी (डोसल, 1952: 99-100)।

संवैधानिक प्रावधानों में काम के अधिकार की स्थिति

भारत के संविधान में भाग III में 'काम करने के अधिकार' को मौलिक अधिकारों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से शामिल नहीं किया गया है। हालाँकि, काम करने के अधिकार के बहुत महत्वपूर्ण पहलुओं को संविधान में मौलिक अधिकारों

के रूप में शामिल किया गया है। इनमें अनुच्छेद 14 शामिल है जो कानून के समक्ष समानता के शीर्षक के तहत समानता के अधिकार की गारंटी देता है (भारत का संविधान, 2024: पृष्ठ 6)।

> राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता से या कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

यह अनुच्छेद राज्य को स्पष्ट रूप से निर्देश देता है कि वह भारत में रहने वाले सभी व्यक्तियों के लिए काम से संबंधित अधिकारों की समानता सुनिश्चित करे। यह रोजगार की स्थिति और मजदूरी के संबंध में महत्वपूर्ण है। अनुच्छेद 16 विशेष रूप से सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता की गारंटी देता है (भारत का संविधान, 2024: पृष्ठ 6)।

> (1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।
>
> (2) किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी रोजगार या पद के लिए अपात्र नहीं ठहराया जाएगा या उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।
>
> (3) इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई विधि बनाने से नहीं रोकेगी जो किसी वर्ग या वर्गों के नियोजन या नियुक्ति के संबंध में, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार या उसमें किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास के संबंध में कोई अपेक्षा विहित करती हो।
>
> (4) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को नागरिकों के किसी पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए कोई उपबंध करने से नहीं रोकेगी, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है।

यह अनुच्छेद न केवल रोजगार के अवसरों के मामले में गैर-भेदभाव सुनिश्चित करता है, बल्कि राज्य को आवश्यकता पड़ने पर विशेष प्रावधान करके समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों की देखभाल करने का निर्देश भी देता है। यह प्रावधान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं और विकलांगों जैसे हाशिए पर पड़े वर्गों के समर्थन में भारतीय राज्य द्वारा तैयार की गई सकारात्मक कार्रवाई संबंधी नीतियों की रीढ़ है।

अनुच्छेद 19 जो संघ और यूनियन बनाने के अधिकार की गारंटी देता है, जिसने श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति को सुविधाजनक बनाया है। स्वतंत्रता के बाद के दशकों में न केवल मजबूत ट्रेड यूनियनों का उदय हुआ है, बल्कि प्रबंधन को श्रमिकों के कल्याण के लिए बातचीत के स्तर पर भी लाया गया है (भारत का संविधान, 2024: पृष्ठ 6)।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुच्छेद 21 जो कि जीवन के अधिकार की गारंटी देता है, उसकी व्याख्या न्यायपालिका द्वारा आजीविका के अधिकार के रूप में की गई है (भारत का संविधान, 2024: पृष्ठ 6)। वास्तव में, यह अनुच्छेद और न्यायिक व्याख्या ही है जो काम करने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाती है।

एक और उल्लेखनीय प्रावधान अनुच्छेद 23 के तहत दिया गया है जो मानव तस्करी और जबरन श्रम पर रोक लगाता है। अनुच्छेद 24 जो कि 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के श्रम पर रोक लगाता है और यह प्रावधान राज्य को श्रमिकों के शारीरिक, मानसिक और वित्तीय शोषण के लिए जिम्मेदार बनाते हैं।

जैसा कि पिछले भाग में चर्चा की गई है, 'काम करने के अधिकार' को मूल रूप से संविधान निर्माताओं द्वारा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत रखा गया था। अनुच्छेद-41 में 'काम करने, शिक्षा पाने और कुछ मामलों में सार्वजनिक सहायता पाने का अधिकार शीर्षक के अंतर्गत कहा गया है:

> राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने, शिक्षा पाने और बेरोजगारी, बुढ़ापे बीमारी और विकलांगता तथा अन्य अवांछनीय अभाव की स्थिति में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए प्रभावी प्रावधान करेगा।

काम के अधिकार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू अनुच्छेद 39 (द) में प्रदान किया गया है जो पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन की गारंटी देता है। अनुच्छेद 42 'काम की न्यायसंगत और मानवीय परिस्थितियों और मातृत्व राहत के लिए प्रावधान' शीर्षक के तहत एक कदम आगे जाता है जो कहता है:

> राज्य काम की न्यायसंगत और मानवीय परिस्थितियों को सुनिश्चित करने तथा मातृत्व सहायता के लिए प्रावधान करेगा।

श्रमिकों के प्रति अपनी चिंता को जारी रखते हुए, अनुच्छेद-43 में कहा गया है कि:

> राज्य, उपयुक्त कानून या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य तरीके से, सभी श्रमिकों को, चाहे वे कृषि क्षेत्र में हों, औद्योगिक क्षेत्र में हों या अन्य क्षेत्र में, काम, जीविका मजदूरी, काम की ऐसी स्थिति जो एक सभ्य जीवन स्तर और अवकाश के पूर्ण उपभोग को सुनिश्चित करे तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा।

चूंकि निर्देशक सिद्धांत स्वभाव से ही न्यायोचित नहीं हैं, इसलिए अगर काम के अधिकार की गारंटी नहीं दी जाती है तो नागरिकों को राज्य पर मुकदमा करने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन जैसा कि समझा जाता है, राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह नीतियां बनाते समय सिद्धांतों पर ध्यान दे। जब इन सभी प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाता है तो भारतीय संविधान स्पष्ट रूप से सबसे बुनियादी स्तर पर आजीविका सुरक्षा के रूप में काम करने के अधिकार को मान्यता देता है। हालांकि, यह भी स्वीकार करता है कि ऐसे अधिकार व्यक्ति की पसंद पर आधारित होने चाहिए और इसमें बिना किसी भेदभाव के न्यायपूर्ण तरीके से व्यवहार किए जाने के अधिकार भी शामिल हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि यह भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को कार्यस्थल पर समान रूप से काम करने के लिए जगह देता है। संवैधानिक प्रावधान यह भी सुनिश्चित करते हैं कि नागरिकों के साथ भेदभाव न हो। इसलिए ट्रेड यूनियनों को संगठित करने और बनाने के अधिकारों, भाषण और अभिव्यक्ति के अधिकारों और विशिष्ट क्षेत्रों में प्रबंधन में भागीदारी के माध्यम से सामूहिक सौदेबाजी को स्थान दिया गया है।

न्यायिक व्याख्याएं

संविधान के संरक्षक के रूप में, भारत में न्यायपालिका को इसके प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए डिज़ाइन किया गया है ताकि वह उस भावनाओं को सामने ला सके जिसमें इन्हें संविधान निर्माताओं द्वारा शामिल किया गया था। हालांकि भारतीय संविधान ने भाग तीसरे में मौलिक अधिकार में काम करने के अधिकार को शामिल नहीं किया था। काम करने के अधिकार के दायरे में हालांकि, न्यायिक व्याख्याओं ने इसके दायरे का विस्तार किया है जो कि इसे निर्देशक सिद्धांतों से परे ले जाते हैं। मौलिक अधिकारों के स्तर पर काम करने के अधिकार को लाने वाले सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से एक ओल्गा टेलीस और अन्य बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन और अन्य (1985) का है जिसमें सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने फैसला दिया था कि आजीविका से वंचित करना जीवन के अधिकार से वंचित करना है और किसी व्यक्ति को कानून की उचित प्रक्रिया के बिना आजीविका से वंचित नहीं किया जा सकता है (एससीआई, 10 जुलाई 1985)। इस प्रकार, सुप्रीम कोर्ट की व्याख्या अनुच्छेद 21 के दायरे को आजीविका के अधिकार और काम करने के अधिकार को कवर करने के लिए पर्याप्त रूप से विस्तारित करती है।

डेली रेटेड कैजुअल लेबर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1987) के एक अन्य मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कैजुअल वर्कर्स को सम्मानजनक जीवन जीने के लिए उचित व्यवहार दिए जाने की आवश्यकता पर बल दिया (एससीआई, 27 अक्टूबर, 1987)। काम के अधिकार से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों को रोजगार के स्वतंत्र विकल्प के अधिकार, काम की उचित और अनुकूल परिस्थितियों के अधिकार, बेरोजगारी के खिलाफ सुरक्षा के अधिकार, काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने और अपने परिवार के लिए एक सभ्य जीवन की गारंटी देने वाले उचित और अनुकूल भुगतान के अधिकार, बिना किसी भेदभाव के समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार, आराम करने, फुर्सत पाने, काम के घंटों पर उचित सीमा और वेतन सहित आवधिक छुट्टियों का अधिकार, ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार और अपनी पसंद की ट्रेड यूनियनों में शामिल होने का अधिकार और काम की सुरक्षा का अधिकार के रूप में समझा गया। फैसले में जोर दिया गया कि इन अधिकारों को उचित विधायी और कार्यकारी उपायों द्वारा सुनिश्चित किया जाना चाहिए। पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत बोर्ड जैसे कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य को श्रमिकों के लिए सम्मानजनक समाप्ति की स्थिति सहित उचित कार्य स्थितियां सुनिश्चित करने का निर्देश दिया है (एससीआई, 1985)।

एयर इंडिया स्टैच्युटरी कॉरपोरेशन बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन एवं अन्य (1996) में एक अन्य ऐतिहासिक फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया कि एयर इंडिया के स्वामित्व वाली या उसके कब्जे वाली इमारतों में झाड़ू लगाने, सफाई करने, धूल झाड़ने, कपड़े धोने और निगरानी करने वाले ठेका श्रमिकों को उनकी नियुक्ति की तिथि से ही कर्मचारियों के रूप में नियमित किया जाना चाहिए (एससीआई, 6 नवंबर, 1996)। इस फैसले ने न केवल श्रमिकों के अधिकारों को मजबूत किया बल्कि संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए वैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करने की अनिवार्यता पर भी जोर दिया।

विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (1997) का मामला एक और बहुत प्रसिद्ध मामला है, जिसमें अनुच्छेद 19(1)(जी) (एससीआई, 13 अगस्त, 1997) के तहत महिलाओं के सम्मान के साथ काम करने के अधिकारों को बरकरार रखने वाला एक जोरदार फैसला दिया गया था। यह एक युगांतरकारी निर्णय था क्योंकि

न्यायपालिका ने कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए व्यापक दिशा-निर्देश और अनिवार्य निर्देश दिए थे। इसने भारत की महिलाओं के लिए कार्यबल में स्वतंत्र रूप से भाग लेने का रास्ता साफ कर दिया है।

इंडियन होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन (एएचएआर) एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2019) के मामले में, जिसे डांस बार मामले के रूप में भी जाना जाता है, सर्वोच्च न्यायालय ने बार में नृत्य करने को इसमें शामिल महिलाओं के लिए आजीविका कमाने के अधिकार के रूप में बरकरार रखा, जबकि राज्य को उनकी गरिमा और सुरक्षा की रक्षा के लिए कानून बनाने में सक्षम बनाया (एससीआई, 17 जनवरी, 2019)।

इस प्रकार, न्यायिक निर्णयों ने काम करने के अधिकार के दायरे का विस्तार करते हुए इसमें जीवन के अधिकार के साथ-साथ कार्यस्थल पर सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन की व्यापक व्याख्या को भी शामिल कर दिया है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताएँ

भारत कई अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों के लिए प्रतिबद्ध रहा है जो श्रमिकों के कल्याण में सबसे आगे रहे हैं। यूडीएचआर, आईसीईएससीआर और सीईडीएडब्ल्यू के हस्ताक्षरकर्ता के रूप में भारत सहमत है कि काम करने का अधिकार एक मानवाधिकार का मुद्दा है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में अनुच्छेद 23.1 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि (1) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, रोजगार के स्वतंत्र विकल्प, काम की न्यायसंगत और अनुकूल परिस्थितियों और बेरोजगारी से सुरक्षा का अधिकार है (यूडीएचआर, 1948:6))। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा भाग III, अनुच्छेद 6:[3] में कहती है कि (1) वर्तमान वाचा के राज्य पक्ष काम करने के अधिकार को मान्यता देते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को काम करके अपनी आजीविका कमाने का अवसर शामिल है जिसे वह स्वतंत्र रूप से चुनता है या स्वीकार करता है, और इस अधिकार की रक्षा के लिए उचित कदम उठाएंगे। (2) इस अधिकार की पूर्ण प्राप्ति के लिए वर्तमान प्रसंविदा के किसी राज्य पक्ष द्वारा उठाए जाने वाले कदमों में तकनीकी और व्यावसायिक मार्गदर्शन और प्रशिक्षण कार्यक्रम, नीतियां और तकनीकें शामिल होंगी ताकि व्यक्ति की मौलिक राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की रक्षा करने वाली स्थितियों के तहत स्थिर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास और पूर्ण और उत्पादक रोजगार प्राप्त किया जा सके (ICESCR,UNGA)। महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय (CEDAW) महिलाओं को काम करने के अधिकार की गारंटी देता है, जिसमें समान रोजगार के अवसर शामिल हैं: महिलाओं को पुरुषों के समान रोजगार के अवसरों का अधिकार है, जिसमें समान चयन मानदंड शामिल हैं; समान वेतन: महिलाओं को समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार है; लाभ: महिलाओं को पुरुषों के समान सामाजिक सुरक्षा, सवेतन अवकाश और मातृत्व अवकाश सहित समान लाभों का अधिकार है; भेदभाव से सुरक्षा: महिलाओं को गर्भावस्था, मातृत्व अवकाश या वैवाहिक स्थिति के आधार पर रोजगार में भेदभाव से मुक्त होने का अधिकार है भारत के कई कानून इन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रति उसकी प्रतिबद्धताओं से प्रभावित हुए हैं।

प्रमुख कानून

उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के आधार पर समाज के विभिन्न वर्गों के लिए काम करने के सम्मानजनक अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कानून लाए गए हैं। इनमें से कुछ पर नीचे चर्चा की गई है:

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 : यह एक केंद्रीय कानून है जो उन रोजगारों में मजदूरी की न्यूनतम दरें तय करने का प्रयास करता है जहां असंगठित श्रमिकों के शोषण की संभावना के साथ पसीना बहाने वाले श्रम का प्रचलन है। अधिनियम के प्रावधानों का उद्देश्य श्रमिकों के शोषण को रोकने के उद्देश्य से उनके लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करके सामाजिक न्याय करने का उद्देश्य प्राप्त करना है (न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948)।

कारखाना अधिनियम, 1948: औपनिवेशिक सरकार द्वारा लाए गए कानूनों की ही अगली कड़ी है। फैक्ट्री अधिनियम 1948 पिछले अधिनियम की तुलना में अधिक व्यापक है और मुख्य रूप से कारखानों के अंदर श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, काम के घंटे, काम करने की न्यूनतम आयु, वेतन सहित छुट्टी आदि पर केंद्रित है। अधिनियम के मुख्य प्रावधान हैं सुरक्षा, मशीनों की रखवाली, स्वास्थ्य और सफाई, पीने का पानी, कपड़े धोने और शौचालय की सुविधा, दोपहर के भोजन के कमरे और आराम के कमरे, बैठने की व्यवस्था, 500 से अधिक कर्मचारियों वाली फैक्ट्रियों में प्राथमिक चिकित्सा और औषधालय की सुविधा, जहां 50 से अधिक महिलाएं कार्यरत हैं वहां क्रेच, जहां 500 से अधिक लोग कार्यरत हैं वहां कल्याण अधिकारी, प्रत्येक 20 दिन काम करने पर एक दिन की दर से मजदूरी के साथ छुट्टियां, वयस्कों के लिए साप्ताहिक घंटे 48 और युवाओं के लिए 27, युवाओं के संबंध में नियम, ओवरटाइम काम के लिए भुगतान की दर, अधिकतम 5 घंटे काम करने के बाद आधे घंटे का आराम, काम के घंटों की संख्या और साप्ताहिक अवकाश (कारखाना अधिनियम, 1948)।

कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम,1952: स्वतंत्रता के तुरंत बाद सेवानिवृत्त कर्मचारियों को अनिवार्य लाभ या प्राकृतिक मृत्यु के अलावा अन्य कारणों से मरने वाले कर्मचारी के परिवार को लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से अधिनियमित इस अधिनियम का उद्देश्य कर्मचारियों के अधिकारों को संरक्षित करना तथा चिकित्सा कल्याण, आवास, सेवानिवृत्ति पेंशन आदि जैसे कल्याणों का आश्वासन देना था (कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952)।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961: गर्भवती महिलाओं के कल्याण के लिए मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 में पेश किया गया था। यह अधिनियम उन सभी महिला कर्मचारियों पर लागू होता है जो पिछले 80 दिनों से संगठन से जुड़ी हुई हैं। ऐसी महिलाएं मातृत्व अवकाश, स्वास्थ्य देखभाल और कई अन्य लाभों की हकदार हैं (मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961)।

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976: समान पारिश्रमिक अधिनियम उन महिला कर्मचारियों की सहायता के लिए लाया गया था, जिन्हें कार्यस्थल पर पक्षपात का सामना करना पड़ता है। यदि किसी महिला कर्मचारी को समान पद और समान अनुभव पर पुरुष कर्मचारी से कम वेतन दिया जाता है या उन्हें रंग या नस्ल के आधार पर पक्षपात का सामना करना पड़ता है, तो वे समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976) के तहत नियोक्ता पर मुकदमा कर सकती हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005: राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) 2005, जिसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरईजीए) के रूप में भी जाना जाता है, भारत में एक सामाजिक सुरक्षा उपाय और श्रम कानून है जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आजीविका सुरक्षा में सुधार करना है जिसका उद्देश्य 'काम करने के अधिकार' (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005) की गारंटी देना है। इसका उद्देश्य प्रत्येक भारतीय ग्रामीण परिवार के कम से कम एक सदस्य को एक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिनों का सुनिश्चित और गारंटीकृत मजदूरी रोजगार प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल मैनुअल काम करने के लिए स्वेच्छा से काम करते हैं। महिलाओं को मनरेगा के तहत उपलब्ध कराए गए रोजगारों में से एक तिहाई की गारंटी दी जाती है और कम से कम 50% सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। मनरेगा का एक अन्य उद्देश्य टिकाऊ संपत्ति (जैसे सड़क, नहर, तालाब और कुएं) बनाना है। आवेदक के निवास के 5 किमी के भीतर रोजगार उपलब्ध कराया जाना है, और कानून के तहत न्यूनतम कानूनी मजदूरी का भुगतान किया जाना है। यदि आवेदन करने के 15 दिनों के भीतर काम नहीं दिया जाता है, तो आवेदक बेरोजगारी भत्ते के हकदार हैं। यानी अगर सरकार रोजगार देने में विफल रहती है, तो उसे उन लोगों को कुछ बेरोजगारी भत्ते देने होंगे। इस प्रकार, मनरेगा के तहत रोजगार एक कानूनी अधिकार है। आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने और ग्रामीण संपत्ति बनाने के अलावा, नरेगा को बढ़ावा देने के लिए अन्य बातें यह हैं कि यह पर्यावरण की रक्षा, ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने, ग्रामीण-शहरी प्रवास को कम करने और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है। यह दुनिया में सबसे बड़ा और सबसे महत्वाकांक्षी सामाजिक सुरक्षा और सार्वजनिक कार्य कार्यक्रम है। अपनी विश्व विकास रिपोर्ट 2014 में, विश्व बैंक ने इसे "ग्रामीण विकास का एक शानदार उदाहरण" कहा (इकोनॉमिक टाइम्स, 2013)। यह तेजी से माना जा रहा है कि "भारत ने मनरेगा की शुरुआत के बाद से गरीबी, भूख और खाद्य पोषण को कम करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है जो सतत विकास को प्राप्त करने का मूल कदम है" (चहल, 2024: 8)। कुछ मूल्यांकन अध्ययनों में कहा गया है कि मनरेगा ने विशेष रूप से हाशिए के क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं जैसे हाशिए के वर्गों को लाभान्वित किया है (चटर्जी, 2023)।

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013: कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम वर्ष 2013 में लागू किया गया था। इस अधिनियम के अनुसार यदि किसी कर्मचारी को उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है जिसमें शारीरिक संपर्क और प्रगति शामिल है; यौन रूप से रंगीन टिप्पणी करना; यौन प्रकृति का कोई अन्य अवांछित शारीरिक, मौखिक या गैर-मौखिक आचरण; पोर्नोग्राफी दिखाना; या यौन एहसानों की मांग या अनुरोध, इसे एक समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो इस उद्देश्य के लिए समर्पित है और शिकायत दर्ज करने के 90 दिनों के भीतर उक्त शिकायत की जांच की जानी चाहिए (कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013)।

दुनिया के अन्य हिस्सों की तरह भारत में भी काम करने के अधिकार की अवधारणा नई नहीं है। हालाँकि, इस अवधारणा ने विभिन्न देशों में अलग-अलग परिभाषाएँ ग्रहण की हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में काम करने के अधिकार पर कानून स्पष्ट रूप से सभी को सुरक्षित कार्य वातावरण में जीविका कमाने का अवसर देता है और सामूहिक रूप से संगठित होने और सौदेबाजी करने की स्वतंत्रता भी प्रदान करता है। भारत में, संविधान

निर्माताओं ने आर्थिक सुरक्षा और कल्याण स्थापित करने में 'काम करने के अधिकार' की अवधारणा को महत्वपूर्ण माना था। कई अन्य प्रावधानों की तरह काम करने के अधिकार से संबंधित अनुच्छेदों को राज्य के लिए अपने विधानों के माध्यम से जीवन देने के लिए खुला रखा गया था। भारतीय राज्य ने वास्तव में अपने विधानों के माध्यम से उदार लोकतांत्रिक ढांचे में आर्थिक कल्याण को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। न्यायिक व्याख्याओं ने भी काम करने के अधिकार से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों को नए आयाम प्रदान किए हैं। समकालीन युग में, भारतीय नागरिक अपनी आजीविका सुरक्षा के निर्माण और संरक्षण तथा अपने व्यवसायों के चयन के संबंध में स्वतंत्रता और समानता हासिल करने और कार्यबल के रूप में गरिमा बनाए रखने के प्रति राज्य के दायित्व से अवगत हैं। हालाँकि, विभिन्न क्षेत्रों का निजीकरण वर्तमान दौर में श्रमिकों के अधिकारों के लिए चुनौतियां पेश कर रहा है, जिसमें नागरिकों के काम करने के अधिकार के विभिन्न पहलुओं की रक्षा के लिए भारतीय राज्य की मजबूत भूमिका की मांग हो रही है।

संदर्भ सूची

1. चहल, एम. (2024)। मनरेगा द्वारा भारत के सतत विकास का मार्ग। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लॉ, पॉलिसी, एंड गवर्नेंस। खंड 3. संख्या 2. 84-93।
2. चटर्जी, एन. (2023). मनरेगा के माध्यम से सतत विकास प्राप्त करना: पश्चिम बंगाल पर कोविड-19 अवधि को कवर करने वाला एक अध्ययन। भारत में सतत रोडमैप विकास रणनीतियाँ: बेहतर भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करना। http://dx. doi. org/10.31674/book पर; 12.11.2024 को एक्सेस किया गया।
3. संविधान सभा की बहसें (आधिकारिक रिपोर्ट), खंड VII. 4-11-1948 से 8-1-1949; लोक सभा सचिवालय द्वारा पुनर्मुद्रित. नई दिल्ली [छठी पुनर्मुद्रण 2014]
4. महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन। https://www.un.org/womenwatch/daw/ced`aw/text/econvention.htm पर; 20.11.2024 को एक्सेस किया गया
5. दांडेकर, वी.एम. (1991). काम करने के अधिकार को मौलिक बनाना. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, वॉल्यूम. 26. संख्या 11-12. 697-708.
6. देवी, वी.एच., मसूद, एस., और रेड्डी, बी.वाई. (2002). मौलिक अधिकार के रूप में काम करने का अधिकार: भ्रम या वास्तविकता? जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, खंड 44, संख्या 2. 269–272. http://www.jstor.org/stable/43951812
7. डोसल, आर.एस. (1952). संविधान सभा में मौलिक अधिकारों पर बहस: एक साइडलाइट. इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, खंड 13 संख्या 3/4. 99–107.
8. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976. https://samadhan.labour.gov.in/whatsnew/equal_remuneration_act_1976.pdf; 19.11.2024 को एक्सेस किया गया
9. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, आईसीईएससीआर, भाग-III, https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/international-covenant-economic-social-and-cultural-rights पर; 24.11.2024 को एक्सेस किया गया

10. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948)। https://clc.gov.in/clc/sites/default/files/MinimumWagesact.pdf पर; 20.11.2024 को एक्सेस किया गया
11. भाग IV (अनुच्छेद-39) राज्य द्वारा पालन किए जाने वाले नीति के कुछ सिद्धांत। भारत का संविधान। https://www.constitutionofindia.net/articles/article-39-certain-principles-of-policy-to-be-followed-by-the-state/; 13. 10. 2024 को एक्सेस किया गया।
12. भारत के सर्वोच्च न्यायालय (1985), पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत बोर्ड और ... बनाम देश बंधु घोष और अन्य, 26 फरवरी, https://indiankanoon.org/doc/471908/; 20.11.2024 को एक्सेस किया गया
13. भारत का सर्वोच्च न्यायालय (6 नवंबर, 1996)। एयर इंडिया स्टैच्युटरी कॉर्पोरेशन बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन और अन्य। https://indiankanoon.org/doc/784921/; 25.22.2024 को एक्सेस किया गया।
14. भारत के सर्वोच्च न्यायालय (एससीआई) (10 जुलाई 1985), ओल्गा टेलिस एवं अन्य बनाम बॉम्बे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन एवं अन्य।https:// Indiankanoon.org/doc/709776/; 25.22.2024 को एक्सेस किया गया
15. भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (13 अगस्त, 1997)। विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य। https://indiankanoon.org/doc/1031794/; 25.22.2024 को एक्सेस किया गया।
16. भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (17 जनवरी, 2019)। इंडियन होटल एंड रेस्टोरेंट बनाम महाराष्ट्र राज्य गृह। https://indiankanoon.org/doc/113334597/ पर; 25.22.2024 को एक्सेस किया गया।
17. भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (27 अक्टूबर, 1987)। डेली रेटेड कैजुअल लेबर बनाम भारत संघ और अन्य। https://indiankanoon.org/doc/176622/ पर; 25.22.2024 को एक्सेस किया गया।
18. भारत का संविधान [1 मई, 2024 तक], 2024, विधायी विभाग, राजभाषा विंग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार।
19. कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952. https://www.epfindia.gov.in/site_docs/PDFs/Downloads_PDFs/EPFAct1952.pdf; 20.11.2024 को एक्सेस किया गया।
20. कारखाना अधिनियम, 1948. https://labour.gov.in/sites/default/files/factories_act_1948.pdf; 20.11.2024 को उपयोग किया गया।
21. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961. https://vvgnli.gov.in/sites/default/files/Maternity%20Benefit%20Act%2C%201961.pdf; 20.11.2024 को एक्सेस किया गया।
22. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005. भारत का राजपत्र। https://rural.gov.in/sites/default/files/nrega/Library/Books/1_MGNREGA_Act.pdf; 19.11.2024 को एक्सेस किया गया।
23. कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013. http://ncw.nic.in/basic-page/sexual-harassment-work-place-prevention-prohibition-and-redressal-act-2013; 18.11.2024 को एक्सेस किया गया।

24. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा। (1948)। https://www.un.org/sites/un2.un.org/files/2021/03/udhr.pdf पर; 24.11.2024 को एक्सेस किया गया।
25. उपाध्याय, संजय (2022). भारत में ट्रेड यूनियनों का विकास, वी.वी. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नोएडा। https://vvgnli.gov.in/sites/default/files/Evolution%20of%20Trade%20Unions%20in%20India.pdf; 25.11.2024 को एक्सेस किया गया।
26. वूल्सी, थियोडोर ड्वाइट (1880) इतिहास और सिद्धांत में साम्यवाद और समाजवाद। हार्वर्ड विश्वविद्यालय। सी. स्क्रिब्नर संस।
27. विश्व बैंक ने नरेगा को ग्रामीण विकास का एक बेहतरीन उदाहरण बताया। द इकोनॉमिक टाइम्स (10 अक्टूबर 2013)। https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/world-bank-calls-nrega-a-stellar-example-of-rural-development/articleshow/23850985.cms?from=mdr; 11.11.2024 को एक्सेस किया गया।

30

परिसीमन एवं प्रतिनिधित्व: उत्तराखण्ड राज्य के संदर्भ में एक विशेष अध्ययन

मयंक प्रसाद
शोधार्थी , राजनीति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
देवेंद्र सिंह
शोधार्थी , राजनीति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
डॉ. एम.एम. सेमवाल
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

उत्तराखंड राज्य लम्बे एवं प्रभावशाली जन आंदोलन के पश्चात देश के 27 वें एवं हिमालयी राज्यों के क्रम में 11 वें राज्य के रूप में 9 नवंबर 2000 को अस्तित्व में आया। उत्तर प्रदेश के 13 उत्तर पश्चिमी जिलों को पृथक कर नया राज्य उत्तराखंड, उस समय उत्तरांचल बनाया गया। ’पृथक राज्य आंदोलन अपने विराट स्वरूप में तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ओबीसी वर्ग को 27 प्रतिशत आरक्षण के मुद्दे पर आया, जिनकी इस क्षेत्र में सिर्फ 3 प्रतिशत आबादी ही थी।’[1]

किंतु अलग पहाड़ी राज्य के मूल में जल, जमीन, जंगल के साथ ही राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी निहित था। यह विरोधाभास है कि जिन मांगों के साथ सरकारी मशीनरी लखनऊ से देहरादून स्थानांतरित की गयी। पुनः एक पर्वतीय राज्य के रूप में समान स्थिति उत्तराखंड राज्य की पर्वतीय जनता के समक्ष उत्पन्न हो गयी। राज्य में पर्वतीय जिलों के समक्ष शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, परिवहन सुविधाओं के साथ ही राजनीतिक रूप से पिछड़ेपन का संकट भी उपस्थित हो गया है। यह भी कहा जा सकता है कि यह सभी समस्याऐं क्रमिक रूप से श्रंखलाबद्ध हैं। राज्य विधानसभा में पर्वतीय क्षेत्र के लोगों के कम होते प्रतिनिधित्व के कारण आम जनमानस भी अब भेदभावपूर्ण प्रतिनिधित्व के विरूद्ध आवाज उठाने लगे हैं।[2]

तत्कालीन उत्तराखंड राज्य के गठन के पश्चात राज्य के लिये एकसदनीय विधानमंडल स्थापित किया गया। अंतरिम सरकार के गठन के क्रम में 30 विधायकों (उत्तर प्रदेश विधानसभा के 22 तथा विधान परिष्द के 8 सदस्य) के साथ नवनिर्मित राज्य की प्रथम विधानसभा का गठन वर्ष 2000 में किया गया।[3]

राज्य में प्रथम सरकार के गठन के बाद से ही उत्तराखंड पुनः पर्वतीय एवं मैदानी प्रतिद्वंदता में उलझकर रह गया। पर्वतीय राज्य के निवासियों के लिहाज से ’यह विरोधाभास ही है कि जिन मैदानी जिलों हरिद्वार और ऊधमसिंह नगर ने राज्य गठन के समय उत्तराखंड़ पहाड़ी राज्य में मिलाये जाने का विरोध किया था। समयचक्र घूमने से वर्तमान में यही मैदानी जिले ‘असली उत्तराखंड’ बन गये हैं।[4] समय के साथ मैदानी क्षेत्र की बढ़ती राजनीतिक शक्ति ने पहाड़ी जिलों के निवासियों को प्रतिनिधित्व में कमतर कर दिया। विशेष रूप से पूर्वोत्तर के राज्यों की भांति राज्य में ’भीतरी’ तथा ’बाहरी’ का प्रश्न नहीं है। बल्कि राज्य के भीतर ही ’पहाड़ी’ तथा ’मैदानी’ की परस्पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न है।

प्रतिनिधित्व

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में नागरिकों को उनके प्रतिनिधि चुनने का अधिकार एवं सुविधा प्राप्त होती है। इस प्रतिनिधिक लोकतांत्रिक व्यवस्था का समुचित संचालन हेतु मतदान की प्रक्रिया अपनायी जाती है। इसके लिये देश को इकाइयों, जैसे भारत में लोकसभा तथा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। 'निर्वाचन क्षेत्र एक लोकतांत्रिक राज्य की सीमाओं में रहने वाले नागरिकों को अपने प्रतिनिधि चुनने का विधिक स्थान है। निर्वाचित प्रतिनिधि इस प्रकार केवल जनसमूह का प्रतिधित्व नहीं करते अपितु निर्वाचन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।[5] समान एवं न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व इस प्रकार लोकतंत्र की प्रमुख विशेषता है।

परिसीमन

नागरिकों को न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये उचित प्रक्रिया का पालन आवश्यक है। इसके लिये परिसीमन की व्यवस्था अपनायी जाती है। परिसीमन एक विशेष राजनीतिक प्रक्रिया है। जिसके अन्तर्गत लोकसभा एवं विधानसभा सीटों को इस प्रकार वर्गीकृत एवं प्रबन्धित किया जाता है ताकि तय मानकों का पालन ठीक तरह से हो पाये। भारत में परिसीमन का यह कार्य भारतीय निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है। 'निर्वाचन आयोग के अनुसार परिसीमन अथवा हदबंदी का शाब्दिक अर्थ है किसी देश या प्रांत में विधायी निकाय वाले क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा तय करने की प्रक्रिया'।[6]

भारत में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान सर्वप्रथम 1918 में राजस्व जिलों के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त बड़े शहरों एवं छोटे शहरों तथा जिलों को मिलाकर भी निर्वाचन क्षेत्र गठित किये गये। पहली बार भारत शासन अधिनियम, 1919 में स्पष्ट प्रावधानों द्वारा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया गया।[7] परिसीमन का प्रमुख उद्देश्य लोगों को नीति-निर्माण की प्रक्रिया में समान राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना है।[8] इस प्रकार लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभा सीटों की सीमाओं को पुनर्निधारित करने को ही परिसीमन कहा जाता है। 'इसका मुख्य उद्देश्य जनांकिकी परिवर्तन के पश्चात समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है। साथ ही परिसीमन के द्वारा 'एक व्यक्ति, एक मत, एक मूल्य' के सिद्धान्त को भी सुनिश्चत किया जाता है।[9]

परिसीमन के द्वारा 'लोक सभा में विभिन्न राज्यों को आवंटित स्थानों का, प्रत्येक राज्य के लिये विधान सभा के कुल स्थानों का और ऐसे प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र को जहां विधान सभा है, निर्वाचन के लिये प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन का पुनः समायोजन किया जाता है।'[10] इस प्रकार परिसीमन का अर्थ चुनाव के संदर्भ में लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं की राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तन करने से है।

परिसीमन आयोग

परिसीमन अथवा हदबंदी का यह कार्य एक विशेष रूप से गठित आयोग को सौंपा जाता है, इसे परिसीमन आयोग कहते हैं। यह एक उच्च शक्ति प्राप्त आयोग होता है जिसे प्रायः सीमा आयोग भी कहते हैं।'[11] परिसीमन आयोग, भारत सरकार द्वारा परिसीमन अधिनियम के नियमानुसार गठित किया जाता है। जिस सम्बन्ध में भारत के राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचना जारी की जाती है।[12]

संविधान के अनुच्छेद 82 तथा अनुच्छेद 170 के अंतर्गत संसद एक परिसीमन अधिनियम पारित करती है। जबकि ऐसा प्राधिकार राज्यों की विधानसभाओं को नहीं होता है। इसके पश्चात भारत के राष्ट्रपति सीमा निर्धारण के कार्य हेतु एक स्वतंत्र एवं उच्च शक्ति प्राप्त निकाय की नियुक्ति करते हैं। परिसीमन आयोग के आदेशों को कानूनी प्रभाव प्राप्त होता है। इस प्रकार इसे न्यायालयों में चुनौती नहीं दी सकती।[13]

आयोग की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान अथवा पूर्व न्यायाधीश द्वारा की जाती है। आयोग के सदस्यों में भारत के चुनाव आयुक्त एवं सम्बन्धित राज्य के चुनाव आयुक्त भी आयोग शामिल होते हैं। इसके साथ ही लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के कुछ सहयोगी सदस्यों को भी शामिल किया जाता है। आयोग के निर्णय बहुमत द्वारा लिये जाते हैं, जबकि सहयोगी सदस्यों के पास मतदान का अधिकार नहीं होता है।[14]

परिसीमन आयोग संविधान के अनुच्छेद 330 तथा 332 के तहत क्रमशः अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये भी संसद एवं राज्य विधानसभाओं में स्थान निर्धारित करता है।'

भारत में वर्तमान समय तक चार बार परिसीमन आयोगों का गठन किया जा चुका है। सर्वप्रथम 1952 में तथा 1963 में परिसीमन अधिनियम, 1962 के तहत, 1973 में परिसीमन अधिनियम, 1972 के तहत जबकि वर्ष 2002 में परिसीमन आयोग का गठन किया गया। स्विंधान के अनुच्छेद 81 के अनुसार 'निकटतम् जनगणना के पश्चात प्राप्त जनसंख्या के आधार पर संसद एवं राज्य विधानसभा की सीटों का पुनर्निधारण किया जाता है।' इसी प्रकार अनुच्छेद 82 यह वर्णित करता है कि 'इस प्रक्रिया के लिये संसद द्वारा पारित विधि तथा प्राधिकरण के अनुसार पालन किया जायेगा।'[15]

प्रक्रिया एवं प्रावधान

परिसीमन आयोग को कार्य संचालन के लिये भारतीय संसद द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन करना पड़ता है। जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 तथा नवीनतम जनगणना के आधार पर परिसीमन आयोग कार्य करता है। वर्ष 2002 में गठित चैथे परिसीमन आयोग ने 84वें संविधान संशोधन, 2001 (वर्ष 1971 की जनगणना के आधार पर लोकसभा एवं राज्य विधानसभा सीटों के लिये आवंटित संख्या निर्वाचन, 2026 के बाद संपन्न पहली जनगणना तक अपरिवर्तित रहेगी) तथा 87वें संविधान संशोधन, 2003 (वर्तमान परिसीमन वर्ष 1991 की जनगणना के स्थान पर नवीनतम 2001 की जनगणना) के आधार पर कार्य करना प्रारंभ किया।[16]

आयोग नवीनतम जनगणना के आधार पर राज्य विधानसभा तथा लोकसभा सीटों का परिसीमन तय कोटे के आधार पर करता है। साथ ही प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जनसंख्या समान रहे। परिसीमन अधिनियम, 2002 के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करते समय उनकी भौतिक विशेषताओं, प्रशासनिक इकाइयों की वर्तमान सीमाओं, संचार तथा अन्य सुविधाओं को भी ध्यान में रखा जाता है। इस आधार पर जनसंख्या में 10 प्रतिशत का विचलन भी स्वीकार किये जाने का प्रावधान भी शामिल किया गया है।[17] जनसंख्या एवं अन्य मानकों की जांच के बाद आयोग अपनी रिपोर्ट निर्वाचन आयुक्तों तथा जनमानस से विचार-विमर्श के बाद सम्बन्धित राज्य एवं संसद के पटल पर प्रस्तुत करता है।

उत्तराखंड- राजनीतिक एवं भौगोलिक स्थिति

उत्तराखंड पृथक राज्य का निर्माण यहां की कठिन भौगोलिक परिस्थिति एवं विशेष राजनीतिक जरूरतों के अनुसार हुआ। राज्य का कुल क्षेत्रफल 53483 वर्ग किमी है। इसमें 86.07 प्रतिशत (46035 वर्ग किमी) पर्वतीय भाग तथा शेष 13.93 प्रतिशत (7448 वर्ग किमी) मैदानी भाग है।[18]

2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या लगभग 1.01 करोड़ है। जिसमें से 69.77 प्रतिशत पर्वतीय तथा 30.23 प्रतिशत जनसंख्या मैदानी भागों में निवास करती है। वर्ष 2001 से 2011 तक शहरी आबादी में 39.94 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी। जबकि इसी समयकाल में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर 11.52 प्रतिशत रही।[19] राज्य का भौगोलिक विस्तार महान हिमालय, उच्च एवं मध्य हिमालय, शिवालिक, तराई एवं भाबर तथा गंगा के मैदानी क्षेत्र तक है। राज्य की अधिकांश जनसंख्या भी हिमालय क्षेत्र में निवास करती है। अतः राज्य की जनांकीय एवं भौगोलिक स्थिति के आंकड़े उत्तराखंड को पर्वतीय राज्य घोषित करते है।

प्रशासनिक सुविधा के अनुसार राज्य को दो मंडलों, गढ़वाल और कुमांऊ में विभाजित किया गया है। गढ़वाल मंडल में सात जिले (उत्तरकाशी, देहरादून, हरिद्वार, टिहरी, पौड़ी गढ़वाल, रूद्रप्रयाग तथा चमोली) एवं कुमांऊ मंडल में छः जिले (ऊधमसिंह नगर, नैनीताल, पिथौरागढ़, चंपावत, अल्मोड़ा तथा बागेश्वर) हैं। उत्तराखंड राज्य विधानसभा में कुल 70 विधानसभा सीटें हैं। राज्य गठन के बाद से वर्तमान समय तक उत्तराखंड में 5 बार (2002, 2007, 2012, 2017 एवं 2022) विधानसभा के चुनाव संपन्न हुए हैं।

परिसीमन एवं विधानसभा चुनाव

राज्य गठन के उपरान्त पहली बार राज्य में 2002 में विधानसभा चुनाव आयोजित हुए। इस विधानसभा चुनाव में सीटों का निर्धारण उत्तर प्रदेश पुर्नगठन अधिनियम, 2000 में वर्णित प्रावधानों के अनुसार किया गया। जिसके अनुसार उत्तर प्रदेश से पृथक हुए नवनिर्मित राज्य उत्तराखंड, तत्कालीन उत्तरांचल में विधानसभा की 70 सीटें निर्धारित थीं।[20] इन प्रावधानों में स्पष्टतः पर्वतीय राज्य के अनुरूप सीटों का वितरण किया गया था। ताकि पृथक पहाड़ी राज्य बनने के मूल उदेश्यों को प्राप्त किया जा सके।

2002 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस ने जीत हासिल की तथा नारायण दत्त तिवारी राज्य के पहले निर्वाचित मुख्यमंत्री बने।[21]

तालिका 1.1: 2002 विधानसभा चुनाव में सीटों की स्थिति

क्र.सं.	जिले का नाम	कुल विधानसभा सीटें	विधानसभा सीटों के नाम
1	उत्तरकाशी	03	पुरोला, गंगोत्री, यमुनोत्री
2	देहरादून	09	चकराता, विकासनगर, सहसपुर, लक्ष्मण चैक, देहरादून, राजपुर, मसूरी, ऋषिकेश, डोईवाला
3	हरिद्वार	09	भगवानपुर, रूढ़की, इकबालपुर, मंगलौर, लंढौरा, लक्सर, बहादराबाद, हरिद्वार, लालढांग

4	टिहरी	06	प्रतापनगर, टिहरी, घनसाली, देवप्रयाग, नरेन्द्रनगर, धनोल्टी
5	पौड़ी गढ़वाल	08	यमकेश्वर, कोटद्वार, धूमाकोट, बीरोंखाल, लैंसडाउन, पौड़ी, श्रीनगर, थलीसैंण
6	रूद्रप्रयाग	02	रूद्रप्रयाग, केदारनाथ
7	चमोली	04	कर्णप्रयाग, नंदप्रयाग, पिंडर, बद्रीनाथ
8	बागेश्वर	03	कांडा, बागेश्वर, कपकोट
9	अल्मोड़ा	08	द्वाराहाट, सल्ट, रानीखेत, सोमेश्वर, अल्मोड़ा, जागेश्वर, भिकियासैंण, मुक्तेश्वर
10	पिथौरागढ़	05	पिथौरागढ़, गंगोलीहाट, डीडीहाट, कनालीछीना, धारचूला
11	चंपावत	02	चंपावत, लोहाघाट
12	नैनीताल	04	धारी, हलद्वानी, नैनीताल, रामनगर
13	ऊधमसिंह नगर	07	जसपुर, काशीपुर, बाजपुर, पंतनगर-गदरपुर, रूद्रपुर-किच्छा, सितारगंज, खटीमा
कुल		**70**	

स्रोत- राज्य निर्वाचन आयोग, 2002

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि राज्य गठन के पश्चात किस प्रकार विधानसभा सीटों का विभाजन किया गया था। राज्य के 13 जिलों में से 9 जिले पूर्णतः पर्वतीय (उत्तरकाशी, टिहरी, पौड़ी गढ़वाल, रूद्रप्रयाग, चमोली, बागेश्वर, अल्मोड़ा, चंपावत, पिथौरागढ़) हैं। 1 जिला, नैनीताल आंशिक पर्वतीय है एवं 3 जिलों (देहरादून, हरिद्वार तथा ऊधमसिंह नगर) को उनकी भौगोलिक अवस्थिति के अनुसार पूर्णतः मैदानी माना जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नवगठित राज्य के पहले विधानसभा चुनावों में लगभग 30 सीटें मैदानी भाग के लिये एवं शेष 40 सीटें पर्वतीय जिलों के लिये निर्धारित की गयी थी।

परिसीमन आयोग, 2002 ने अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। इस पर लंबे वक्त तक सरकार ने कोई निर्णय नहीं लिया। दिसंबर, 2007 में सर्वोच्च न्यायालय ने तत्कालीन केंद्र सरकार से इसकी प्रगति के विषय में पूछा। अंततः 4 जनवरी 2008 को संसदीय मामलों की समिति ने परिसीमन आयोग की सिफारिशों को लागू करने का फैसला किया। इसके बाद कर्नाटक राज्य के चुनाव पहले विधानसभा चुनाव थे जिन्हें परिसीमन आयोग, 2002 के प्रावधानों के अनुसार संपन्न किया गया।[22] उत्तराखंड में दूसरी विधानसभा के चुनाव फरवरी, 2007 में संपन्न किये गये। इस प्रकार इन चुनावों में परिसीमन आयोग, 2002 के प्रावधानों को लागु नहीं किया जा सका।

अंततः उत्तराखंड राज्य में परिसीमन के पश्चात पहले विधानसभा चुनाव वर्ष 2012 में संपन्न हुए। यह राज्य के गठन के बाद तीसरे विधानसभा चुनाव थे।

तालिका 1.2: 2008 में परिसीमन के पश्चात, वर्ष 2012 में विधानसभा सीटों की स्थिति

क्र.सं.	जिले का नाम	कुल विधानसभा सीटें	विधानसभा सीटों के नाम
1	उत्तरकाशी	03	पुरोला, गंगोत्री, यमुनोत्री
2	देहरादून	10	चकराता, विकासनगर, सहसपुर, देहरादून कैंट, राजपुर रोड, मसूरी, ऋषिकेश, डोईवाला, रायपुर, धर्मपुर
3	हरिद्वार	11	भगवानपुर, रूड़की, भेल रानीपुर, मंगलौर, ज्वालापुर, लक्सर, पिरान कलियार, हरिद्वार, झबरेड़ा, हरिद्वार ग्रामीण
4	टिहरी	06	प्रतापनगर, टिहरी, घनसाली, देवप्रयाग, नरेन्द्रनगर, धनोल्टी
5	पौड़ी गढ़वाल	06	यमकेश्वर, कोटद्वार, चैबट्टाखाल, लैंसडाउन, पौड़ी, श्रीनगर
6	रूद्रप्रयाग	02	रूद्रप्रयाग, केदारनाथ
7	चमोली	03	कर्णप्रयाग, थराली, बद्रीनाथ
8	बागेश्वर	02	बागेश्वर, कपकोट
9	अल्मोड़ा	06	द्वाराहाट, सल्ट, रानीखेत, सोमेश्वर, अल्मोड़ा, जागेश्वर
10	पिथौरागढ़	04	पिथौरागढ़, गंगोलीहाट, डीडीहाट, धारचूला
11	चंपावत	02	चंपावत, लोहाघाट
12	नैनीताल	06	हल्द्वानी, नैनीताल, रामनगर, भीमताल, लालकुआं, कालाढूंगी।
13	ऊधमसिंह नगर	09	जसपुर, काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, किच्छा, सितारगंज, खटीमा, नानकमत्ता
कुल		**70**	

स्रोत- राज्य निर्वाचन आयोग, 2012

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि वर्ष 2008 के परिसीमन के बाद राज्य में प्रतिनिधित्व में परिवर्तन आ गया। 2002 तथा 2007 के विधानसभा चुनावों में 9 पर्वतीय जिलों में लगभग 40 सीटें थी। परिसीमन के पश्चात यह घटकर 34 हो गयी। इसके ठीक विपरीत 4 मैदानी जिलों में यह संख्या बढ़कर 36 हो गयी। साथ ही पर्वतीय जिलों से कुछ विधानसभा सीटों का अस्तित्व हमेशा के लिये खत्म हो गया। इसमें पौड़ी गढवाल की धूमाकोट तथा बीरोंखाल, चमोली की नंदप्रयाग, बागेश्वर की कांडा तथा पिथौरागढ़ की कनालीछीना विधानसभा सीटें शामिल हैं। कुछ पर्वतीय जिलों में विधानसभा सीटों को एकीकृत भी किया गया। दूसरी ओर मैदानी जिलों में विधानसभा सीटें पलायन एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ गयी। देहरादून जिले में 1, हरिद्वार में 2, ऊधमसिंह नगर में 2 तथा नैनीताल में 1 सीट बढ़ी। राज्य में इस परिवर्तन का आधार था, जनसंख्या में बदलाव। जनांकिकी में आये इस परिवर्तन का कारण प्रथम दृष्टि में राज्य में हो रहे पहाड़ो से मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन को माना गया।

पलायन

उत्तराखंड में असमान प्रतिनिधित्व का कारण जनसंख्या स्थानांतरण में खोजा जा सकता है। ऐसे तो राज्य में मानवीय पलायन पूर्णतः नवीन घटना नहीं है। बल्कि राज्य में 11 वीं तथा 12 वीं सदी में राजस्थान, गुजरात तथा गंगा की घाटियों से तीर्थयात्रियों के रूप में यहां आये। तीर्थयात्रा के बाद यही लोग स्थायी रूप से यहां बस गये। ब्रिटिश शासन काल दौरान राज्य से बाहर की ओर भी पलायन शुरू हुआ। जब पर्वतीय क्षेत्र के युवा ब्रिटिश सेना का हिस्सा बने।[23] बड़े स्तर पर मानवीय पलायन के संदर्भ में उत्तराखंड राज्य में वर्ष 2002 तथा 2012 के विधानसभा चुनावों का विश्लेषण करने पर स्पष्टतः प्रतिनिधित्व में असमानता दिखती है। इस प्रकार पर्वतीय जिलों से मैदानी जिलों की ओर स्थानांतरित प्रतिनिधित्व राजनीतिक तथा जनांकिकी चुनौती उत्पन्न कर रहा है।

उल्लेखित वर्षो के मध्य जनसंख्या पलायन के प्रभावों का आकलन करने के लिये उत्तराखड सरकार ने 25 अगस्त 2017 को ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग का गठन किया। आयोग को मुख्य रूप से ग्रामीण पलायन के प्रभाव, स्थिति, कारण, समाधान तथा ग्राम विकास सम्बन्धी कार्य सौंपा गया। आयोग वर्तमान समय तक दो अंतरिम रिपोर्ट (वर्ष 2018 एवं 2022) राज्य सरकार को सौंप चुका है।[24]

तालिका 1.3: पलायन आयोग की रिपोर्ट के आधार पर पर्वतीय तथा मैदानी जिलों का तुलनात्मक अध्ययन

पर्वतीय जिले

क्र.सं.	**जिले का नाम**	**वृद्धि दर (2001 से 2011)**	**मानव विकास सूचकांक (2017)**	**प्रति व्यक्ति आय (रू. में 2017-18)**	**स्थायी पलायन (ग्रा.पं. की संख्या 2008-18)**	**अस्थायी पलायन (ग्रा.प.की संख्या 2008-18)**	**निर्जन ग्राम (2018)**	**जनसंख्या में 50 प्रतिशत कमी वाले गांव (2018)**
1	पौड़ी गढ़वाल	-1.41	0.678 (5)	124920 (5)	821	1025	186	112
2	अल्मोड़ा	-1.28	0.655 (9)	112350 (8)	646	1022	57	80
3	बागेश्वर	4.18	0.662 (8)	113031 (7)	195	346	77	37
	मैदानी जिले							
4	देहरादून	32.33	0.765 (1)	215064 (3)	53	231	7	42
5	ऊधमसिंह नगर	33.45	0.717 (3)	220429 (2)	54	147	19	9

6	हरिद्वार	30.63	0.733 (2)	293078 (1)	73	153	38	7

स्रोत: राज्य पलायन आयोग रिपोर्ट

उपरोक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि राज्य में निरन्तर पर्वतीय जिलों से मैदानों की ओर पलायन हुआ है। क्योंकि पर्वतीय जिलों में जीवन की दशायें कठिन है। जबकि तुलनात्मक रूप से मैदानी जिलों में जीवन बेहतर है। वर्ष 2001 से 2011 के दौरान पर्वतीय जिलों में दशकीय वृद्धि दर 1.3 प्रतिशत है जो कि उत्तराखंड के औसत से कम है। इसी दौरान शहरी जिलों की वृद्धि दर 3.7 प्रतिशत रही। संक्षेप मे, राज्य पलायन आयोग की रिपोर्ट पहाड़ों से मैदानों की ओर पलायन को संख्यात्मक आंकड़ों में प्रस्तुत करती है। अतः इससे राज्य में जनांकिकी में परिवर्तन की पूरी तस्वीर स्पष्ट हो जाती है।

आयोग की द्वितीय अंतरिम रिपोर्ट 2023 के अनुसार, राज्य में 13 जनपदों के 16793 जनसंख्या ग्रामों में से 1048 गैर आबाद है। राज्य के 10 पर्वतीय जिलों, जिनका क्षेत्रफल राज्य के कुल क्षेत्रफल का 85 प्रतिशत है में सिर्फ 50 प्रतिशत लोग रहते हैं।[25]

राजनीतिक प्रतिनिधित्व

पहाड़ों से लगातार होते जनसंख्या स्थानांतरण से एक तरफ पर्वतीय जिलों में मतदाताओं की संख्या में कमी दर्ज की गयी। दूसरी ओर मैदानी जिलों में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि का केन्द्रीकरण होने से जनसंख्या भी जमाव हुआ। जनसंख्या वृद्धि के कारण 2002 की तुलना में 2012 के विधानसभा चुनावों में मैदानी क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व में गुणात्मक वृद्धि दर्ज की गयी।

उल्लेखनीय है कि कोरोना संकट के कारण भारत में प्रति दस वर्षों में संपादित की जाने वाली जनगणना नहीं हो सकी है। जबकि उत्तराखंड राज्य में इन वर्षों में पलायन की गति में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वृद्धि दर्ज की गयी है। अतः निर्वाचन आयोग के प्राप्त आंकड़ों की सहायता से वर्ष 2002 से 2022 के मध्य जनांकिकी तथा मतदाताओं की संख्या में आये बदलावों को समझा जा सकता है।

तालिका 1.4: वर्ष 2002 तथा 2022 के विधानसभा चुनावों में जिलावार मतदाताओं की संख्या का तुलनात्मक अध्ययन

क्र.सं.	**जिले का नाम**	**विधानसभा सीटें 2002**	**विधानसभा सीटें 2022**	**कुल मतदाता 2002**	**कुल मतदाता 2022**	**वृद्धि एवं कमी प्रतिशत 2002-2022**
1	उत्तरकाशी	03	03	170559	193097	13.22
2	देहरादून	06	06	437625	418107	-4.45
3	हरिद्वार	08	06	483929	482510	-0.29

4	टिहरी	02	02	159842	159816	-0.016
5	पौड़ी गढ़वाल	04	03	234250	256869	9.64
6	रूद्रप्रयाग	03	02	155207	170594	9.91
7	चमोली	08	06	489114	438132	-10.43
8	बागेश्वर	05	04	292885	303090	3.48
9	अल्मोड़ा	02	02	137000	157323	14.86
10	पिथौरागढ़	04	06	393633	541292	37.59
11	चंपावत	07	09	684830	902270	31.75
12	नैनीताल	09	10	795279	999313	25.57
13	ऊधमसिंह नगर	09	11	836480	1032977	23.38
कुल				**5270633**	**8172173**	

स्रोत - निर्वाचन आयोग

उपरोक्त तालिका में वर्ष 2002 से 2022 के मध्य तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्टतः राज्य में जनसांख्यिकी परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। जिसका स्पष्ट रूप से प्रभाव राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर पड़ा। टिहरी, पौड़ी, रूद्रप्रयाग तथा अल्मोड़ा जिलों में वर्ष 2002 से 2022 के मध्य मतदाताओं की संख्या में कमी देखने को मिली। जबकि अन्य पर्वतीय जिलों में भी सामान्य वृद्धि ही दर्ज की गयी है। इसके विपरीत चार मैदानी जिलों में तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई। जनसांख्यिी में बदलाव की यह प्रवृति राज्य बनने के बाद के वर्षों में तीव्र गति से शुरू हुई। जनांकिकी में इस बदलाव का प्रभाव स्पष्टतः प्रतिनिधित्व पर देखने को मिला। यह भी ध्यान देने वाला तथ्य है कि यह तुलना सिर्फ मतदाताओं की संख्या में की गयी है। संपूर्ण के संदर्भ में आंकड़े और भी अधिक विस्मयकारी हो सकते हैं।

वर्ष 2022 में उत्तराखंड विधानसभा चुनावों के अंतिम रूप से सत्यापित आंकड़े निर्वाचन आयोग द्वारा जारी किये गये। इन आंकड़ों का अध्ययन देहरादून स्थित एक गैर-सरकारी संगठन 'सोशल डेवेलपमेट फार कम्यूनिटीज फाउंडेशन' ने किया। संगठन ने वर्ष 2012, 2017 तथा 2022 के विधानसभा चुनावों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके अनुसार, उत्तराखंड के चार मैदानी जिलों की 36 विधानसभा सीटों पर वर्ष 2012 से 2022 के बीच कुल मतदाताओं की संख्या में 37 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी। जबकि इसी दौरान 9 पर्वतीय जिलों में 20 प्रतिशत वृद्धि दर रही। सबसे अधिक ऊधमसिंह नगर जिले में 43 प्रतिशत वृद्धि एवं सबसे कम अल्मोड़ा जिले में 13 प्रतिशत वृद्धि हुई। देहरादून की धर्मपुर विधानसभा सीट में इस दौरान 72 प्रतिशत मतदाताओं की संख्या बढ़ी तथा अल्मोडा़ की सल्ट विधानसभा में यह आंकड़ा सिर्फ 08 प्रतिशत ही रहा। राज्य के लगभग 61 प्रतिशत मतदाता चार मैदानी जिलों में है तथा शेष 39 प्रतिशत मतदाता नौ पर्वतीय जिलों में हैं। राज्य के 9 पर्वतीय जिलों की 34 विधानसभा सीटों पर महिलाओं का मत प्रतिशत 63.54 एवं पुरूषों का मत प्रतिशत 52.94 रहा।[26]

इस प्रकार निर्वाचन आयोग, राज्य पलायन एवं ग्राम्य विकास आयोग तथा सोशल डेवेलपमेट फार कम्यूनिटीज फाउंडेशन' इस विषय में महत्वपूर्ण स्रोत हैं। राज्य में प्रतिदिन लगभग 246 लोग विभिन्न कारणों से पर्वतीय क्षेत्रों से

मैदानों की ओर पलायन कर रहे हैं। अपना पृथक राज्य मिलने के बाद भी वर्ष 2000 से लगभग 32 लाख से अधिक लोग अपना घर-बार छोड़कर पलायन कर चुके हैं।[27] यह व्यवस्था एवं पृथक राज्य के उद्देश्यों के लिये चिंतन का विषय है। किंतु इससे बड़ा सवाल यह है कि जब जनसंख्या एक बड़ा हिस्सा राज्य के तराई एवं मैदानी हिस्सों में स्थाई तथा अस्थाई रूप से स्थानांतरित हो रहा है। ऐसे में पर्वतीय राज्य की संकल्पना एवं पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह अवश्य उत्पन्न होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को समान एवं उचित प्रतिनिधित्व लोकतंत्र के मूल स्वभाव में है। यदि एक व्यक्ति भी इससे वंचित रहता है तब इसे व्यवस्था तथा प्रक्रिया का दोष ही माना जायेगा। उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात उत्तराखंड राज्य में प्रतिनिधित्व के मामले में यही वंचना देखी जा सकती है। जिस प्रकार जनांकिकी में बदलाव से पर्वतीय क्षेत्र के लोगों के समक्ष राजनीतिक रूप से अलगाव की स्थिति उत्पन्न हुई है, उससे व्यवस्था तथा प्रक्रिया में सुधार की जरूरत है। पृथक राज्य बनने के 24 सालों में लगातार जनसंख्या पलायन के कारण मैदानी जिलों में ही राजनीतिक शक्ति सिमट कर रह गयी है। यह स्थिति तब राज्य में पर्वतीय क्षेत्र के लोगों का चिंतित करती है, जबकि वर्ष 2026 के बाद पुनः परिसीमन किया जाना है।

उत्तराखंड राज्य में पहाड़ी जिलों के निरन्तर घटते स्थानों को लेकर समग्र रूप से प्रयास की आवश्कता है। राज्य में लोगों द्वारा, परिसीमन का आधार जनसंख्या के स्थान पर भौगोलिक परिस्थितियों एवं यहां के लोगों की विशेष आवश्कताओं को ध्यान में रखकर किये जाने की मांग की जा रही है। यदि परिसीमन कानून के अनुसार वर्ष 2026 के बाद किये जाने वाले परिसीमन में भी पर्वतीय क्षेत्र के लोगों की चिंताओं का समाधान नहीं खोजा जाता है। इस स्थिति में यह राजनीतिक बहुसंख्यकवाद और प्रभावी तरीके से स्थापित हो सकता है। परिसीमन अधिनियमों में भौगोलिक परिस्थतियों का प्रावधान भी किया गया है। जिसे उत्तराखंड जैसे अन्य पर्वतीय राज्यों में लागू किये जाने की आवश्कता है।

राज्य में पर्वतीय जिलों के अल्पसंख्यक दर्जे को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। राज्य गठन के समय अगस्त, 2000 में गृह मंत्रालय ने एक आदेश द्वारा पर्वतीय राज्य की राजधानी को एक मैदानी जिले देहरादून में अस्थाई रूप से बनाने का आदेश जारी किया।[28] किंतु राज्य में लोगों की इच्छा के बाद भी लम्बे समय तक राज्य की राजधानी देहरादून में ही रही। अंततः लोगों की बढ़ती नाराजगी को देखते हुए 2017 में मैदानी क्षेत्रों राजनीतिक शक्ति के चलते गैरसैंण नामक स्थान को ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया गया।[29] किंतु असली राजनीतिक शक्ति अब भी अस्थाई राजधानी में ही मौजूद है।

उत्तराखंड राज्य में जनसंख्या असंतुलन तथा पर्वतीय जिलों के कम राजनीतिक प्रतिनिधित्व का स्थाई एवं दीर्घकालिक समाधान खोजा जाना आवश्यक है। इसके लिये परिसीमन के दूसरे तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। जिनमें जनसंख्या अनुपात के स्थान पर भौगोलिक परिस्थितियों, आर्थिक पिछड़ेपन एवं राजनीतिक असमानता को भी महत्व मिले।

राज्य के पर्वतीय जिलों में मत प्रतिशत में कमी देखी गयी है। जब समाज का एक बड़ा वर्ग अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने से वंचित है। इस स्थिति में राजनीतिक न्याय तथा लोकतंत्र का उचित संचालन नहीं हो सकता है। मत प्रतिशत में यह कमी पुरूष मतदाताओं में अधिक देखी गयी है। जो रोजगार, शिक्षा तथा दूसरे कारणों

से अपने विधानसभा क्षेत्र से दूर रहते हैं। अतः राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने के दीर्घकालिक समाधान के रूप में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार संकट का उपाय खोजा जाना भी आवश्यक है।

स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय अस्मिता प्रमुख मुद्दा रही है। जिसका राजनीतिक समाधान सत्ता एवं प्राधिकारों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से किया गया है। यही कारण है कि भारत को संघवाद का सफलतम उदाहरण माना जाता है। भारतीय लोकतंत्र ने तमाम तरह की विविधताओं एवं भिन्नताओं को स्वीकार किया है। अब जबकि एक राज्य इकाई के भीतर ही यह चुनौती देखने को मिल रही है। तब अवश्य ही गौरवशाली भारतीय संविधान की सीमाओं में इसका समाधान खोजा जाना चाहिये।

संदर्भ सूची

1. Nautiyal, A. (2012). Uttarakhand 2012: Who Gained, Who Lost? *Economic and Political Weekly*, *47*(14), 21–24. http://www.jstor.org/stable/23214671
2. Shukla, S. (2019, December 10). *उत्तराखंड में आबादी नहीं भौगोलिक आधार पर हो परिसीमन, याचिका निस्तारित*. *Nanital News*. Jagran. https://www.jagran.com/uttarakhand/nainital-should-be-delimitation-based-on-geographical-basis-in-uttarakhand-19831807.html
3. प्रसाद, एम., पांडे, एस., सिंह, डी., और सेमवाल, एम.एम. (2023). उत्तराखंड में चुनावी रैली का विश्लेषणात्मक अध्ययन, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, 14(1), 69-76.
4. Nautiyal, A. (2012). Uttarakhand 2012: Who Gained, Who Lost? *Economic and Political Weekly*, *47*(14), 21–24. http://www.jstor.org/stable/23214671
5. Singh, C. P. (2000). A century of constituency delimitation in India. *Political Geography*, *19*(4), 517-532. https://doi.org/10.1016/S0962-6298(99)00090-6
6. *Delimitation*. (n.d.). भारत निर्वाचन आयोग. https://hindi.eci.gov.in/delimitation-website/delimitation/
7. Singh, C. P. (2000). A century of constituency delimitation in India. *Political Geography*, *19*(4), 517-532. https://doi.org/10.1016/S0962-6298(99)00090-6
8. Sultana, P. (2023, September 26). *The Politics of Delimitation in Assam*. (2023, September 26). Economic and Political Weekly, 58 (38), P. 25. https://www.epw.in/journal/2023/38/commentary/politics-delimitation-assam.html
9. John, P. (2023, June 4). *Explained: What is delimitation, who's opposing it and why*. CNBCTV18. https://www.cnbctv18.com/politics/what-is-delimitation-meaning-and-why-ktr-stalin-and-others-are-opposing-bjp-16844431.htm
10. The Delimitation Act, (2002, June 3rd). THE DELIMITATION ACT, 2002 (legislative.gov.in)

11. *Delimitation*. (n.d.). भारत निर्वाचन आयोग. https://hindi.eci.gov.in/delimitation-website/delimitation/
12. Rashid, H. I. (2022, February 6). *All you need to know about the Delimitation Commission and its proposals*. The Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/all-you-need-to-know-about-the-delimitation-commission-and-its-proposals/articleshow/89391166.cms
13. Johari, J. C. (2004). *The Constitution of India a Politico-legal Study*. Sterling Publishers Pvt. Ltd.
14. Kumar, V. (2022). Delimitation., in *The Routledge Companion to Northeast India* ed. Jelle J.P. Wouters and Tanka B. Subba , Routledge Handbooks Online.
15. Arumugam, V. (2018, February 28). Delimitation of parliamentary constituency political and social implication in Tamilnadu. Ph.D. Thesis, University of Madras. http://hdl.handle.net/10603/193715
16. Verma, A. K. (2006). Delimitation in India: Methodological Issues. *Economic and Political Weekly*, *41*(9), 794–799. http://www.jstor.org/stable/4417903
17. The Delimitation Act, (2002, June 3rd). THE DELIMITATION ACT, 2002 (legislative.gov.in)
18. Mamgain, R. P., & Reddy, D. N. (2017). Out-migration from the Hill Region of Uttarakhand: Magnitude, Challenges, and Policy Options. *Rural Labour Mobility in Times of Structural Transformation*, 209–235. https://doi.org/10.1007/978-981-10-5628-4_10
19. Uttarakhand Population 2022 | Sex Ratio & Literacy rate 2024 (census2011.co.in)
20. उत्तरप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, (2000, अगस्त 25).
21. प्रसाद, एम., पांडे, एस., सिंह, डी., और सेमवाल, एम.एम. (2023). उत्तराखंड में चुनावी रैली का विश्लेषणात्मक अध्ययन, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, 14(1), 69-76.
22. https://en.wikipedia.org/wiki/Delimitation_Commission_of_India#:~:text=The%20present%20delimitation%20of%20parliamentary,by%20the%202002%20delimitation%20commission (Accessed on 02 January, 2024).
23. Sati, V. P. (2021, May 16). Out-migration in Uttarakhand Himalaya: its types, reasons, and consequences. *Migration Letters*, *18*(3), 281–295. https://doi.org/10.33182/ml.v18i3.957

24. *Rural Development & Migration Prevention Commission*. (n.d.). http://www.uttarakhandpalayanayog.com/home.aspx
25. ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग, उत्तराखण्ड, पौड़ी. (2023, February). उत्तराखण्ड के ग्राम पंचायतों में पलायन की स्थिति पर द्वितीय अंतरिम रिपोर्ट. In http://www.uttarakhandpalayanayog.com/pdf/Final%20Editing%20book%20(1)%20(1).pdf.
26. Nautiyal, A. (2022, March 17). Six Reports Compendium on Uttarakhand Electoral Data 2012-2017-2022, Social Development for Communities Foundation, Dehradun, Uttarakhand. https://sdcuk.in/resources/six-reports-compendium-on-uttarakhand-electoral-data-2012-2017-2022/
27. Bhagirath. (2022, February 28). Rural migration may alter Uttarakhand 's political geography. Down to Earth. https://www.downtoearth.org.in/news/governance/rural-migration-may-alter-uttarakhand-s-political-geography-69510
28. सिंह, अ. (2018, February 26). खेल मंत्री के लिए गैरसैंण गैर , COA को भेजे पत्र में देहरादून को बताया प्रस्तावित राजधानी. Amar Ujala. https://www.amarujala.com/dehradun/uttarakhand-sports-minister-against-gairsain
29. सिंह, व. (2020, March 5). गैरसैंण ग्रीष्मकालीन राजधानी: क्या ये उत्तराखंड का “वाटरशेड मोमेंट” है, न्यूज़क्लिक. https://hindi.newsclick.in/government-declares-gairsain-as-summer-capital-of-uttarakhand

31

भारत विभाजन और विभीषिका: आलोचनात्मक विश्लेषण

गणेश मल्होत्रा

सहायक प्राध्यापक, सामरिक एवं क्षेत्रिय अध्ययन विभाग, जम्मू विश्वविधालय

माउंटबैटन के प्रेस सलाहकार रहे एलन कैंपबेल-जोहानसन ने 'मिशन विद माउंटबैटन' नाम से एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक के अनुसार उन्होंने 1 जून 1947 को अपनी मां को एक पत्र लिखकर कहा कि "यहां हम महत्वपूर्ण घटनाओं के द्वार पर खड़े हैं और सत्ता हस्तांतरण के बारे में माउंटबैटन की ऐतिहासिक घोषणा की प्रचार व्यवस्था को अंतिम रूप देने के काम में निरंतर डूबा हुआ हूँ। वातावरण बहुत ही क्षुब्ध है और अगर फैसला विभाजन के पक्ष में हुआ – जैसा कि निश्चित सा है – तो बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हो सकते हैं।"

उन्होंने आगे लिखा, "यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुस्सा अंतरिम और आपसी है। अंग्रेज हिन्दू और मुसलमानों दोनों में जितने लोकप्रिय आज हैं, उतने पहले कभी नहीं थे।"

इस चिट्ठी से तीन बातें सामने आती हैं –

1. स्वाधीनता और सत्ता हस्तांतरण में क्या अंतर था, ब्रिटिश इसे सत्ता हस्तांतरण क्यों कह रहे थे?
2. विभाजन से पहले ही सभी को अंदाजा था कि बड़े स्तर पर सांप्रदायिक दंगे हो सकते हैं। फिर भी उन्हें रोकने के प्रयास क्यों नहीं किये गये?
3. जिस आजादी के लिए हजारों क्रांतिकारियों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, बलिदान दिया और जेल गये, 1947 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेता अंग्रेजों के दोस्त बन गये?

इसी किताब में उसी दौरान की एक घटना का जिक्र है। दरअसल, उन दिनों वायसराय भवन यानी आज के राष्ट्रपति भवन में बैठकों का दौर चलता रहता था। जिसमें कांग्रेस सहित मुस्लिम लीग के सभी बड़े नेता शामिल होते थे। कैंपबेल-जोहानसन के अनुसार ये सभी नेता अमेरिकी कारों में सवार होकर आते थे।

15 अगस्त 1947 के दिन, जब भारत में स्वाधीनता दिवस का जश्न मनाया जा रहा था। एलन कैंपबेल-जोहानसन लिखते हैं कि उस दिन दिल्ली की सड़कों पर 'जय हिन्द', 'माउंटबैटन की जय' और कहीं-कहीं पंडित माउंटबैटन की जय' के नारे लग रहे थे।इस दिन भारत जरूर स्वाधीनता का उत्सव मन रहा था लेकिन देश का एक बड़ा हिस्सा विस्थापन और विभाजन का दंश यानी विभीषिका को झेल रहा था। बावजूद इसके, वे कौन लोग थे जो इस अमानवीय क्रूरता के जिम्मेदारों के पक्ष में नारे लगा रहे थे? क्या वे कांग्रेस के लोग थे?

भयावह विभाजन

स्वाधीनता के पांच दिन बाद यानी 20 अगस्त को एलन कैंपबेल-जोहानसन ने अपनी इस किताब में लिखा है कि 2 लाख लोग अस्थाई विस्थापित कैम्पों में भरे हुए हैं और ऐसी परिस्थितियों में रह रहे हैं कि किसी भी समय बड़े पैमाने पर हैजे का प्रकोप हो सकता है।

धर्म आधारित भारत विभाजन ने मानवीय इतिहास का सबसे बड़े विस्थापन के हालात पैदा किये थे। साल 1941 की जनगणना में अविभाजित पंजाब की जनसंख्या 34,309,861 और बंगाल की कुल आबादी 61,460,377 थी। भारत विभाजन से यही दो प्रान्त सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे। उस दौरान लगभग 10 करोड़ लोगों का सामान्य जीवन एक ही रात में कठिनाइयों में बदल गया।

एलन कैंपबेल-जोहानसन लिखते हैं कि 21 सितम्बर 1947 की सुबह गवर्नर-जनरल के डकोटा हवाई जहाज से माउंटबैटन, इस्में, वेरनों, एलन कैंपबेल-जोहानसन (स्वयं लेखक), नेहरू, पटेल, नियोगी, राजकुमारी अमृत कौर, जनरल लॉकहार्ट, एचएम पटेल, और वी शंकर ने पूर्वी एवं पश्चिमी पंजाब का दौरा किया।

- भयंकर उथल-पुथल का पहला आभास भटिंडा पहुंचने पर मिला। यह रेलों का बड़ा स्टेशन है। आदमियों से ठसाठस दो रेलगाड़ियाँ स्टेशन पर खड़ी थीं। कुछ विस्थापित डिब्बों की छत पर थे, कुछ खिडकियों और पायदानों पर लटके हुए थे और कुछ लोग तो इंजनों तक पर चढ़ गये।
- फिरोजपुर पहुंचनें पर फिर विस्थपितों से लदी ऐसी ही रेलें दिखाई दी।
- रावी पहुंचते-पहुंचते जन-समुदाय के इस उन्माद भरे निष्क्रमण के आकार-प्रकार का पहला विहंगम दृश्य हमारे सामने आया। हम जिस दृश्य को देख रहे थे, वह मानव-इतिहास का सबसे बड़ा निष्क्रमण था।
- निष्क्रमणार्थियो के पहले काफिले की झलक इस दल ने फिरोजपुर पर देखी। इसका पीछा करते हुए ये लोग रावी नदी के पार बहुत दूर तक उड़े। विस्थापितों के इस प्रवाह के साथ लगभग पचास मील आगे तक गए लेकिन इसका छोर नहीं मिला।
- लायलपुर-लाहौर सड़क पर धीमी गति से आगे बढ़ने वाले मुसलमान विस्थापितों का काफिला देखा। इस काफिले के एक सिरे से दूसरे सिरे तक उड़ने में इस दल को पंद्रह मिनट से अधिक समय लगा। जबकि लेखक के अनुसार उनके विमान की गति लगभग एक सौ अस्सी मील प्रति घंटा थी। इस प्रकार यह काफिला कम-से-कम पैंतालिस मील लंबा रहा होगा। (45 मील आज के हिसाब से लगभग 72 किलोमीटर होते हैं)

यह विस्थापन का अधिकारिक सर्वे था। इसलिए यह न सिर्फ महत्वपूर्ण है बल्कि अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस दौर में क्या स्थितियां रही होगी? सबसे पहले ध्यान देना होगा कि यह दौरा 21 सितम्बर को हुआ, यानी विभाजन के ठीक 38 दिनों बाद। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि विभाजन का दंश कुछ दिनों नहीं बल्कि महीनों - सालों तक झेला गया था।

4. इस भयावह विभाजन के इतने दिनों बाद क्यों हवाई सर्वे हुआ? विभाजन से पहले और उसके बाद अंग्रेजो के साथ रात्रि भोज, दोपहर के लंच और सुबह के नाश्ते में कौन-कौन लोग शामिल रहे?

क्या विभीषिका रोकी जा सकती थी?

इस जवाब को खोजने के लिए हमें 20 फरवरी 1947 के दिन ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स की चर्चाओं को देखना होगा। दरअसल उस दिन ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने बताया कि जून 1948 से पहले हिन्दुस्तानी सरकार को सत्ता सौंप दी जाएगी।

इस काम के लिए उन्होंने माउंटबैटन को चुना। उन्होंने हाउस को इसी दिन बताया कि वेवल (तत्कालीन गवर्नर) इस्तीफा देंगे और उनकी जगह माउंटबैटन लेंगे।

दरअसल, माउंटबैटन एक जल्द बाज किस्म के व्यक्ति थे और उन्हें अपना समय बर्बाद न होने की अधिक चिंता थी। इसी कारण के चलते भारत के विभाजन और उसकी विभीषिका के लिए माउंटबैटन सबसे ज्यादा जिम्मेदार थे।

मोसली ने अपनी किताब में एक किस्से का जिक्र किया है। जब माउंटबैटन के नाम की घोषणा हुई तो सरदार पटेल ने अपने लोगों से रिपोर्ट मांगी। खबर मिली कि माउंटबैटन क्रांतिकारी झुकाववाला उदार रईस है। पटेल की प्रतिक्रिया थी – जवाहरलाल जी को एक खिलौना मिल जायेगा, हम लोग क्रांति की तबतक व्यवस्था करेंगे।

अंग्रेजों ने भारत से जाने की तारीख 1 जून 1948 ही क्यों तय की? क्या उसके लिए भारतीय नेताओं और जनमानस से पूछा गया था?

जवाब है नहीं। मोसली लिखते हैं कि यह तारीख एटली ने नहीं बल्कि माउंटबैटन ने तय की थी। वह भी अपनी व्यक्तिगत योजना के अनुसार।

सवाल यह है कि वह व्यक्तिगत योजना क्या थी? इसका जवाब हमें एलन कैंपबेल-जोहानसन ने 'मिशन विद माउंटबैटन' में मिलता है। पुस्तक के अनुसार माउंटबैटन को दिसंबर 1946 में एटली ने मिलने बुलाया और वायसराय वेवल की जगह अगला वायसराय बनाने का आमंत्रण दिया। जबकि माउंटबैटन तब ब्रिटिश नौसेना के साथ जुड़ना चाहते थे। उन्हें प्रथम क्रूजर स्क्वेड्रन की कमान के लिए रियर एडमिरल बनना था। इसलिए शुरुआत में माउंटबैटन वायसराय बनने के लिए आनाकानी कर रहे थे।

माउंटबैटन की इस निजी इच्छा के आड़े एटली आ गये थे। मोसली लिखते हैं कि एटली ने माउंटबैटन को समझाया और कहा कि अगले दो सालों में भारत को सत्ता सौंप दी जाएगी। उसके बाद वह नौसेना में जा सकते हैं।

माउंटबैटन ने जवाब दिया कि दो साल का समय तो नौसेना से अलग रहने के लिए बहुत लम्बा हो जायेगा। प्रधानमंत्री एटली ने पूछा कि अगर नौसेना में उनका पद, तरक्की का क्रम और अवसर सुरक्षित हो तो वह कितना समय दे सकते हैं? माउंटबैटन ने इस बारे में समय मांगा और अपने दोस्तों सहित राजा से मुलाकात की।

अगले दिन माउंटबैटन फिर से एटली से मिले और बताया कि वह बारह महीनों में यह काम समाप्त कर लेंगे। इसी अनुसार माउंटबैटन मार्च 1947 में भारत आये और अगले पांच महीनों में भारत में सत्ता हस्तांतरण का काम समाप्त कर दिया।

मोसली लिखते हैं कि माउंटबैटन के साथ आये इस्में को माउंटबैटन की जल्दीबाजी का पता था। इस्मे ने विस्टन चर्चिल को अपने भारत जाने के बारे में बताया था। चर्चिल ने उससे कहा कि जाकर बेवकूफी करोगे, तुम्हे कुछ नहीं मिलेगा। माउंटबैटन ओहदे और पदवी के लिए भारत जा रहा है।

ये लोग भारत को आजादी नही दे रहे थे बल्कि भारत से पिंड छुड़ा रहे थे। जिसकी कीमत विभाजन और सांप्रदायिक दंगों सहित मानवीय इतिहास के सबसे बड़े नरसंहार के रूप में चुकानी पड़ी।

5. आखिर वेवल की जगह माउंटबैटन जैसे जल्द बाज को क्यों भेजा गया? उनके पास समय नहीं था, और वह शायद इस काम के लिए उपयुक्त व्यक्ति भी नहीं थे। तो उन ब्रिटिश षड्यंत्रों और रहस्यों को उजागर करना होगा।

13 अगस्त 1947 की सुबह, लुईस माउंटबैटन अपनी पत्नी एडविना के साथ कराची पहुंचे। अविभजित भारत में वायसराय के नाते यह उनकी अंतिम अधिकारिक यात्रा थी। मोहम्मद अली जिन्ना और उनकी बेगम ने माउंटबैटन दंपति का बहुत ही गर्म-जोशी से स्वागत किया। शहर के गवर्नमेंट हाउस में उनके रुकने का विशेष प्रबंध किया गया, जिसे किसी 'हॉलीवुड' फिल्म के सेट की भांति सजाया गया था। रात में 'सॉफ्ट ड्रिंक्स' और मधुर संगीत के बीच सभी ने मिलकर स्वादिष्ट भोजन का आनंद उठाया। अगले दिन माउंटबैटन ने पाकिस्तान की लेजिस्लेटिव असेम्बली के उद्धाटन की रस्म-अदायगी की और दोपहर में दिल्ली वापस जाने के लिए विमान में सवार हो गये।

जब यह विमान पंजाब के सीमावर्ती इलाकों से गुजरा तो वहां का नजारा एलन कैंपबेल-जॉनसन ने अपनी पुस्तक 'मिशन विद माउंटबैटन' में इस प्रकार लिखा है, "जब हम पंजाब की सीमा के ऊपर से गुजर रहे थे, तो हमने कई जगह आग लगी हुई देखी। यह मनहूस रोशनियाँ मीलों तक फैली हुई थी।" एलन कैंपबेल-जॉनसन उस विमान में माउंटबैटन के साथ ही मौजूद थे।

कुछ ही घंटों के बाद, वायसराय का विमान दिल्ली हवाईअड्डे पर उतर गया और यहां भी 15 अगस्त - स्वाधीनता और उससे सम्बंधित कार्यक्रमों में सभी व्यस्त हो गये। इसी दिन फील्ड मार्शल क्लाउड औचिनलेक ने माउंटबैटन को बताया कि कैसे पूरा पंजाब सांप्रदायिक हिंसा में झुलस गया है। उन्होंने हिन्दू बहुल लाहौर शहर का जिक्र करते हुए बताया, "एक अनुमान के मुताबिक लाहौर शहर के दस प्रतिशत घर आग से जल चुके हैं। यह शहर का लगभग पंद्रह प्रतिशत इलाका है।"

उधर दिल्ली से लेकर कराची तक आधिकारिक कार्यक्रमों अथवा उत्सवों में एक-दो सप्ताह और बीत गये। पंजाब से लगातार पत्र, टेलीग्राम, टेलीफोन आते रहे लेकिन मगर अभी तक किसी ने पंजाब को राहत दिलाने का संतुलित प्रयास नहीं किया। अब जब जैसे-जैसे समय गुजरने लगा तो समाचार-पत्रों में पंजाब की हिंसक घटनाओं का जिक्र बड़े पैमाने पर होना शुरू हो गया।

पंजाब के बेकाबू सांप्रदायिक हालातों को संभालने की जिम्मेदारी एक ब्रिटिश सैन्य-अधिकारी थॉमस विनफोर्ड रीस के हाथों में थी। भारतीय समाचार-पत्रों में रीस को निशाना बनाया गया क्योंकि वह हर मोर्चे पर विफल हो गया। मात्र इस एक कारण के लिए आनन-फानन में माउंटबैटन के 'बेडरूम' में 27 अगस्त की सुबह एक बैठक हुई, जिसमें माउंटबैटन के अलावा उनके एक ब्रिटिश सहयोगी और वी.पी. मेनन मौजूद थे। इस बैठक में पंजाब को राहत दिलाने

अथवा स्वयं का मूल्यांकन करने के बजाय माउंटबैटन का पूरा ध्यान अपने-आप को और अपने ब्रिटिश अधिकारियों को बचाने पर ही केन्द्रित रहा। जबकि मेनन का सुझाव था कि उन्हें समाचार-पत्रों पर ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए। फिर भी माउंटबैटन ने शाम चार बजे कुछ संपादकों को तलब किया और उन्हें पहले डराया कि अगर वे मैक्सिकों में होते तो अबतक उन्हें उठाकर फेंक दिया जाता। फिर उन्हें एक इशारे से समझाया कि अब सारी जिम्मेदारी भारत की संसद की है।

दरअसल, ई. जेंकिस ने 15 अगस्त को ही माउंटबैटन सहित लन्दन में भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को एक टेलीग्राम भेजकर पंजाब की असंतोषजनक स्थिति से अवगत करा दिया था। इसके उसने अलावा एक सुझाव भी दिया कि अब हालातों से नयी सरकारों को निपटाना चाहिए।" कुलमिलाकर अब ब्रिटिश क्राउन और उसकी सरकार सहित अधीनस्थ अधिकारी भारत को सांप्रदायिक हिंसा में झोंककर भागने की पूरी तैयारी कर चुके थे।

भारत आने पहले, लियोनार्ड मोसली के अनुसार रेडक्लिफ को लन्दन स्थित परमानेंट अंडर सेक्रेटरी ने एक बड़े से नक्शे के माध्यम से मात्र 30 मिनट में बता दिया कि उसे 9 करोड़ लोगों के नए घरों, जीवनयापन और राष्ट्रीयता को कैसे निर्धारित करना है।

अतः दोनों बाउंड्री कमीशन के अध्यक्ष रेडक्लिफ 8 जुलाई 1947 को भारत आये। कुछ दिनों दिल्ली में रहने के बाद उन्होंने कलकत्ता और लाहौर का दौरा किया। लियोनार्ड मोसली लिखते है कि उस दौरान बंगाल के ब्रिटिश गवर्नर फेडरिक बॉरोज ने रेडक्लिफ से कहा कि इस विभाजन के दो परिणाम होंगे, पहला absolute bloody murder और दूसरा ईस्ट बंगाल rural slum बन जायेगा।

इस काम के लिए रेडक्लिफ को मात्र पांच सप्ताह का समय दिया गया और उसने तय समय में अपना काम ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया। गौरतलब है कि माउंटबैटन योजना से लेकर सीमाओं का निर्धारण काम मात्र दो महीनों से भी कम समय में हो गया। भारत विभाजन वाले दिन ही रेडक्लिफ ब्रिटेन चला गया। लेकिन अभी इतिहास का सबसे क्रूरतम अध्याय लिखा जाना बाकी था।

अंततः जैसा बाबासाहेब आंबेडकर ने कल्पना की थी, वैसा ही हुआ। सांप्रदायिक विभाजन का हश्र बहुत ही भयावह था। लियोनार्ड मोसेली अपनी पुस्तक के पृष्ठ 279 पर लिखते हैं, अगस्त 1947 से अगले नौ महीनों में 1 करोड़ 40 लाख लोगों का विस्थापन हुआ। इस दौरान करीब 6 लाख लोगों की हत्या कर दी गयी। बच्चों को पैरों से उठाकर उनके सिर दीवार से फोड़ दिये। बच्चियों का बलात्कार किया गया, बलात्कार कर लड़कियों के स्तन काटे गये। गर्भवती महिलाओं के आतंरिक अंगों को बाहर निकाल दिया गया।

विभाजन के बाद केंद्रीय मंत्रिमंडल लगातार चुनौतियों का सामना कर रहा था। विस्थापन, राहत और पुनर्वास के विषयों पर मंत्रिमंडल की कई बैठकें हुई। दुर्भाग्य से, प्रधानमंत्री नेहरू की तत्काल निर्णय न लेने की अक्षमता का नतीजा पाकिस्तान से आने वाले गैर-मुसलमानों को भुगतना पड़ा। हालांकि, वह स्वयं वहां की भयावह स्थितियों को स्वीकार करते थे, लेकिन कोई ठोस समाधान भी नहीं खोजते थे।

शुरूआती मंत्रिमंडल की एक बैठक में प्रधानमंत्री नेहरू ने स्वयं स्वीकार किया था कि पाकिस्तान की सरकार हिन्दुओं को वहां रहने नहीं देगी क्योंकि वे उनकी संपत्तियां हड़पना चाहते हैं (केस संख्या - 270/40/47)। बैठक में एक दृष्टिकोण यह था कि पाकिस्तान सरकार को वास्तव में गैर-मुस्लिमों के पलायन से बहुत अधिक नुकसान नहीं हुआ

था। उन्हें हिन्दुओं की करोड़ों रुपये की संपत्ति मिल गयी है, जिसमें कारखाने, भवन, भूमि आदि शामिल हैं। इसलिए पाकिस्तान सरकार अल्पसंख्यकों को भगाने की योजना पर चल रही है।

एक महीने बाद यानि 17 सितम्बर 1947 को मंत्रिमंडल की दूसरी बैठक में भी यह दोहराया गया कि पाकिस्तान में हिन्दुओं को नहीं रहने दिया जायेगा (केस संख्या - 276/47/47)। पाकिस्तान सरकार और उसके बहुसंख्यक समुदाय की योजनाएं स्पष्ट थीं। वे चाहते है कि किसी भी गैर-मुसलमान को पाकिस्तान में रहने नहीं दिया जायेगा। जानकारी होने के बाद भी उन्होंने कोई साहसिक कदम नहीं उठाया।

जब प्रधानमंत्री को पता था कि पाकिस्तान में हिन्दुओं को रहने नहीं दिया जायेगा, फिर भी वह इस समस्या के समाधान नहीं खोज रहे थे। इसके उलट, वह अजीबोगरीब निर्णय ले रहे थे। उन्होंने मंत्रिमंडल की 18 सितम्बर 1947 को हुई बैठक में कहा कि भारत से जो मुसलमान पाकिस्तान गए हैं, उनके घरों को पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओं को नहीं दिया जायेगा। प्रधानमंत्री नेहरू का स्पष्ट मानना था कि भारत से मुसलमानों के पलायन के बाद खाली हुए उनके घरों का स्वामित्व और उनमें स्थित संपत्ति किसी अन्य को नहीं दी जाएगी। जबकि पाकिस्तान में हिन्दुओं के घरों को जबरन खाली करवाकर उन्हें मुसलमानों को दिया जा रहा था।

यह एक मुस्लिम तुष्टिकरण था, जोकि ब्रिटिश जमाने से चला आ रहा था। जवाहरलाल नेहरू भी इससे अछूते नहीं थे। विभाजन के दौरान भारत की आर्थिक स्थिति कमजोर थी इसलिए वैकल्पिक संसाधनों का इस्तेमाल जरुरी था। मगर प्रधानमंत्री की झूठी धर्मनिरपेक्षता ने ऐसा नहीं होने दिया। उन्हें लगता था कि अगर भारत से जो मुसलमान पाकिस्तान चले गये है, उनके घर पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओ को दे दिए तो भारत के मुसलमान नाराज़ हो जाएंगे।

सिंध से आने वाले सिख और हिन्दुओं पर मंत्रिमंडल का एक मेमोरेंडम 7 दिसंबर 1949 को तैयार किया गया। इस मेमोरेंडम में बताया गया कि सिंध में तकरीबन 14.57 लाख हिन्दू थे, उनमें से साल 1947 में 4.85 लाख भारत आ गये। इसके बाद जनवरी 1948 में कराची में हिन्दुओं और सिखों का फिर से सोची-समझी नीति के तहत नरसंहार किया गया। इसलिए वहां से लगभग 5 लाख और हिन्दुओं का भारत में पलायन हुआ। उस दौरान सिंध के थारपारकर में तकरीबन 2 लाख हिन्दू हरिजन बचे थे। लगभग ऐसी ही स्थिति पाकिस्तान के अन्य जिलों की थी, जहां दंगों में हिन्दुओं को निशाना बनाया गया।

पुनर्वास समिति की एक बैठक जोकि 16 दिसंबर 1949 को हुई, उसमें प्रधानमंत्री ने बताया कि पाकिस्तान के थारपारकर जिले के 1 लाख हरिजन हिन्दू भारत आना चाहते हैं । यह लोग खेती करते हैं और भारत सरकार अगर उन्हें खेती के लिए जमीन देती है, तो वे भारत आयेंगे। यह वास्तव में एक दुखद स्थिति थी। पाकिस्तान के हिन्दू अपने सुरक्षित भविष्य की शर्त पर भारत आना चाहते थे। उनका दुर्भाग्य था कि उनकी एक साधारण सी मांग को प्रधानमंत्री नेहरू पूरा करने में असमर्थ रहे और उनकी अपील को नजरंदाज कर दिया।

इसी बैठक में कार्यवाही में प्रधानमंत्री ने कहा कि हाल ही में श्री ठक्कर बापा और श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने सिंध के थारपारकर जिले के एक लाख हरिजनों से मुलाकात की है। उन्होंने बताया कि यह हरिजन बहुत कष्ट झेल रहे हैं और भारत आने के लिए उत्सुक है। पुनर्वास राज्य मंत्री ने प्रधानमंत्री नेहरू की बात से सहमत होते हुए कहा कि उनकी

जानकारी के अनुसार यह हरिजन मुख्यतः किसान हैं। वे तभी भारत आयेंगे जब भारत में उनके पुनर्वास के लिए भूमि उपलब्ध कराई जाएगी।

डॉ. अम्बेडकर ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पाकिस्तान के हिन्दू हरिजनों की चिंता की। इस सन्दर्भ में उन्होंने 18 दिसंबर 1947 को भारत के प्रधानमंत्री नेहरू को एक पत्र लिखा, "मुझे पाकिस्तान से भारत आने वाले अनुसूचित जाति के विस्थापितों के साथ पाकिस्तान सरकार द्वारा उन्हें भारत आने से रोकने की बहुत सारी शिकायतें मिल रही हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने इसी पत्र में लिखा, "पाकिस्तान सरकार हर संभव तरीके से अनुसूचित जातियों को भारत आने से रोक रही है। मुझे इसका कारण लगता है कि वे चाहते हैं कि अनुसूचित जातियां पाकिस्तान में रहकर दोयम दर्जे का काम करें और पाकिस्तान के जमींदारों के लिए भूमिहीन मजदूर बन जाएं"।[1]

ऐसे भी कई उदाहरण मिलते हैं, जब भारत में हिन्दू शरणार्थियों की व्यवस्था के लिए सरकार कोई कदम नहीं उठा रही थी। इसमें असम राज्य की कांग्रेस सरकार भी शामिल थी। राज्य के मुख्यमंत्री पाकिस्तान से भगाए गये हिन्दुओं को वापस पूर्वी पाकिस्तान भेजने पर भी विचार कर रही थी। विदेश मंत्रालय के 16 सितम्बर 1949 को तैयार किये गए मेमोरेंडम में ऐसा करने के लिए मना कर दिया गया, "पूर्वी बंगाल से बड़ी संख्या में गैर मुसलमानों ने पहले ही असम में शरण ले रखी है। हालांकि, असम सरकार ने उनके पुनर्वास के लिए ज्यादा कुछ नहीं किया। यदि असम सरकार इन गैर-मुस्लिमों को पूर्वी बंगाल जाने के लिए मजबूर करती है तो बहुत कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और निश्चित रूप से काफी आलोचना होगी।"

विभाजन की मार्मिक घटनाओं को देखते हुए सरदार पटेल ने प्रधानमंत्री नेहरू को 2 सितम्बर 1947 को पत्र लिखा, "सुबह से शाम तक मेरा पूरा समय पश्चिम पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू और सिखों के दुख और अत्याचारों की कहानियों में बीत जाता है।"

पाकिस्तान सरकार के इस दमन और अत्याचार को समर्थन मिला हुआ था। पाकिस्तान की अल्पसंख्यक विरोधी सोच का एक उदाहरण उस दौरान पंजाब के गवर्नर जनरल फ्रांसिस मुड़ी के जिन्ना को लिखे पत्र से मिलता है। मुड़ी ने वह पत्र जिन्ना को 5 सितंबर 1947 को लिखा, "मुझे नहीं पता कि सिख सीमा कैसे पार करेंगे। महत्वपूर्ण यह है कि हमें जल्द से जल्द उनसे छुटकारा पाना होगा"।[2]

पाकिस्तान के सिंध प्रान्त से हिन्दुओं पर हमले की खबरें लगातार मिल रही थीं। इस सन्दर्भ में प्रधानमंत्री नेहरू ने 8 जनवरी 1948 को बी.जी. खेर को एक टेलीग्राम भेजा, "स्थितियों को देखते हुए (सिंध में गैर-मुसलमानों की हत्या और लूट-पाट हो रही थी) सिंध से हिन्दू और सिख लोगों को निकालना होगा"।[3]

अगले दिन प्रधानमंत्री ने खेर को एक पत्र लिखकर सिंध के हालातों की जानकारी साझा की, "सिंध में हालात खराब हैं और मुझे डर है कि हमें भारी संख्या में निष्क्रमण देखना होगा। हम उन्हें (हिन्दुओं) सिंध में नहीं छोड़ सकते"।[4]

पाकिस्तान में हिन्दुओं के नरसंहार को लेकर प्रधानमंत्री परेशान हो गये थे। उन्होंने सरदार पटेल को वहां की स्थितियां बताने के लिए 12 जनवरी 1948 को एक पत्र लिखा, "जैसा कि आप जानते हैं, सिंध से बड़ी संख्या में गैर-मुस्लिमों

को निकालना होगा और उन्हें बचाने के लिए पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी। मुझे लगता है कि सिंध से लोगों को समुद्र के रास्ते आसानी से निकाला जा सकता है।”[5]

सरदार पटेल एक दूरदर्शी और गंभीर राजनेता थे। उन्होंने पाकिस्तान से आ रहे हिन्दू और सिखों की सुरक्षा और पुनर्वास के प्रयास पहले ही शुरू कर दिए थे। उनका स्पष्ट मत था कि पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिखों का रुकना संभव नहीं है। उन्होंने प्रधानमंत्री के पत्र का उत्तर लिखा, “मैंने पहले ही खेर को एक पत्र लिखा है और मैं अपनी आगामी बंबई यात्रा के दौरान उनसे और अन्य मंत्रियों से भी बात करूंगा। मैं काठियावाड़ में इन शरणार्थियों के लिए व्यवस्था किए जाने पर भी बात करुंगा”।[6]

पश्चिमी पाकिस्तान के साथ पूर्वी पाकिस्तान में भी हिन्दुओं का नरसंहार जारी था। जो लोग भागकर भारत आ गये, उन्हें यहां बसाने के लिए प्रयास जारी थे। इसलिए 21 फरवरी 1950 को प्रधानमंत्री नेहरू ने पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बिधानचंद रॉय को एक पत्र लिखकर उन्हें बंगाल में ही बसाने का आग्रह किया, “हमारे सामने भयावह समस्या है और मानवीय दृष्टिकोण से इसका समाधान लगभग असंभव है। पूर्वी पाकिस्तान के अधिकांश हिंदू यहां आना चाहते हैं। वही, इन लाखों विस्थापित लोगों को अपनाना और पुनर्वास की व्यवस्था करना असंभव है। मुझे ऐसा लगता है कि हमें पूर्वी बंगाल में हिंदुओं को उनकी संतुष्टि के अनुरूप पूरी सुरक्षा देने और वहां बसाने के लिए जोर देना चाहिए। निःसंदेह हमें भयभीत शरणार्थियों को आश्रय देना और सहायता करनी चाहिए।”

भारत के प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खान को कई पत्र और टेलीग्राम भी भेजे थे।

पाकिस्तान के साथ पत्राचार करने के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नहीं था। वहां से लगातार हिन्दुओं और सिखों को भगाया जा रहा था। भारत के प्रधानमंत्री ने प्रोविजनल संसद में 23 फरवरी 1950 को अपना वक्तव्य दिया, “पिछले कुछ समय से, पूर्वी पाकिस्तान में लगातार भारत विरोधी और हिंदू विरोधी प्रचार हो रहा है। वहां प्रेस, मंच और रेडियो के माध्यम से जनता को हिंदुओं के खिलाफ उकसाया जा रहा है। उन्हें काफिर, राज्य के दुश्मन और न जाने क्या-क्या कहा गया है। हिन्दुओं के साथ घृणा और हिंसा का ऐसा ही व्यवहार पश्चिमी पाकिस्तान में भी हो रहा है।” पाकिस्तान ने हिन्दुओं के खिलाफ हिंसा की रोकथाम में कोई पहल नहीं की।

पाकिस्तान की संकल्पना - पाकिस्तान का प्रारूप मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन में तय किया गया था। इस अधिवेशन की अध्यक्षता मोहम्मद इकबाल कर रहे थे। उन्होंने 29 दिसंबर 1930 को पंजाब, नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस, सिंध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक नया मुस्लिम देश बनाने का प्रस्ताव रखा था।

इकबाल के शब्दों में, “मैं चाहता हूं कि पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत, सिंध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक अलग देश होना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के बिना एक ऐसा स्वतंत्र देश, जिसमें उत्तर-पश्चिम के भारतीय मुस्लिम प्रान्तों का गठजोड़ होगा। यह गठन मुझे भारत के मुसलमानों, विशेषकर उत्तर-पश्चिम भारत के मुसलमानों की अंतिम नियति प्रतीत होता है”।[7]

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 - साल 1935 में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट सामने आया। इसके पहले शेडूयल के भाग 1 के अनुसार मुसलमानों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये थे।

ब्रिटिश कैबिनेट मिशन – द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन की कमजोर स्थिति ने भारत में स्वतंत्रता की राह सरल कर दी थी। जल्दी ही भारत के स्टेट सेक्रेटरी, पैथिक लारेंस ने 19 फरवरी 1946 को स्वशासन की दिशा में एक घोषणा की। जिसके अंतर्गत ब्रिटिश संसद ने तीन महत्वपूर्ण कदम उठाने के फैसले लिये[8] -

- संविधान तैयार करने के लिए ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों और रियासतों के साथ प्रारंभिक चर्चा।
- संविधान बनाने के लिए एक निकाय का गठन।
- एक एग्जीक्यूटिव काउंसिल बनाना - जिसे मुख्य भारतीय दलों का समर्थन मिला हुआ हो।

इसके लिए 24 मार्च को तीन वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारियों का एक कैबिनेट मिशन भारत आया। उन्होंने भारतीय नेताओं और रियासतों के महाराजाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों से मिलना शुरू किया। अधिकतर रियासतों ने मिशन से वादा किया कि वे भारत में हो रहे इन परिवर्तनों में सहयोग देने के लिए तैयार है।[9]

अनेक मुलाकातों और उठा-पठक के बाद 16 मई को ब्रिटिश संसद ने कैबिनेट मिशन की रिपोर्ट के आधार पर भारत में संविधान सभा के गठन की सूचना दी। तीन वर्गों में विभाजित किये गए ब्रिटिश भारत जिसमे चीफ कमिश्नर्स प्रान्त भी शामिल थे, उन्हें 296 सीटें निम्न प्रकार से आबंटित की गयी -

वर्ग A	मद्रास, बॉम्बे, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा से 187 सदस्य
वर्ग B	पंजाब, नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस और सिंध से 35 सदस्य
वर्ग C	बंगाल और असम से 70 सदस्य
चीफ कमिश्नर्स	वर्ग A के दिल्ली, अजमेर-मारवाड़ एवं कुर्ग और वर्ग B के ब्रिटिश बलूचिस्तान जैसे चीफ कमिश्नर्स से एक-एक सदस्य
रियासतें	कुल 93 सीटें मिली, लेकिन रियासतों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने लिए एक वार्ता-समिति का गठन किया गया

मिशन ने संविधान के लिए एक आधारभूत प्रारूप भी तैयार कर लिया था। उसका मुख्य बिंदु था कि एक यूनियन ऑफ इंडिया बनाया जाएगा, जिसमे ब्रिटिश भारत और रियासतें दोनों शामिल होगी। इसका सरोकार विदेशी मामलें, सुरक्षा और संचार से होगा और इन विषयों के लिए जरुरी पूंजी एकत्र करने की अनिवार्य शक्ति भी प्राप्त होगी।

भारत में तीन महीने बिताने के बाद मिशन वापस लौट गया और कांग्रेस ने इसकी सभी शर्तें मान ली थीं। साल 1937 की तरह इस बार भी जवाहरलाल नेहरू जरूरत से ज्यादा जल्दबाजी दिखा रहे थे। कांग्रेस कार्यसमिति की 6 जुलाई को बम्बई में बुलाई गयी बैठक में जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि यह प्रश्न अभी अथवा बाद में मिशन की शर्तों को मानने का नहीं हैं। यह केवल संविधान सभा में प्रवेश की सहमति का प्रश्न है।[10]

चैम्बर ऑफ प्रिंसेस की स्थाई समिति की बैठक में मिशन का स्वागत किया गया। कुछ शर्तों को स्पष्टीकरण के लिए जरूरी समझा गया और उसके लिए 21 नवम्बर को वार्ता - समिति बना दी गयी। इसमें चैम्बर के चांसलर भोपाल के नवाब के साथ पटियाला के महाराजा, नवानगर के जामसाहेब, सी.पी. रामस्वामी अय्यर, सुल्तान अहमद, मिर्ज़ा

इस्माइल, डी.के. सेन, ए. रामस्वामी मुदालियार, के. एम. पणिक्कर, विलासपुर के राजा (मनुभाई मेहता के स्थान पर), डूंगरपुर के महरवाल (डूंगरपुर के महाराजा विदर्भ सिंह के स्थान पर), वी.टी. कृष्णमाचारी और रामचंद्र काक शामिल थे। हालांकि, चैम्बर पूरी तरह से सभी रियासतों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। कुछ रियासतें इसमें शामिल भी नहीं होना चाहती थी। कोचीन और बड़ौदा ऐसी रियासतें थी जिन्हें व्यक्तिगत तौर पर बातचीत करना अनुकूल लगा।[11]

ब्रिटिश संसद लगभग तय कर चुकी थी कि भारत का नया संविधान भारतीयों को ही तैयार करना होगा। संविधान सभा में भी केवल भारतीय शामिल होंगे। उसके लिए जो भी कुछ आवश्यक शर्तें होंगी, वह ब्रिटिश संसद अधिनियमित करेगी। सालों के इंतजार के बाद एक उम्मीद की किरण जगी थी। मगर इसका उत्साह ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका और जवाहरलाल नेहरू की अदूरदर्शिता के कारण इसमें खलल पड़ गया।

संविधान सभा के लिए ब्रिटिश भारत में जुलाई 1946 में चुनाव हुए। सामान्य सीटों में कांग्रेस को बहुमत मिला जबकि मुस्लिम लीग ने मुसलमान बहुल क्षेत्रों की 78 सीटों में से 72 में जीत हासिल की। साल 1937 के चुनावों से नेहरू ने कोई सबक नहीं लिया और लीग ने नतीजों से भारत विभाजन की आग को हवा देना शुरू कर दिया।

मिशन के अनुसार संविधान सभा एकीकृत थी, जिसमें कांग्रेस, मुस्लिम लीग, अन्य दलों और रियासतों को शामिल होना था। शर्तों के अनुसार मुसलमानों के लिए अलग से कोई संविधान सभा नहीं थी। दूसरी ओर मुस्लिम लीग की एक अलग और पूरी तरह से स्वतंत्र संप्रभु देश की मांग भयावह रूप ले चुकी थी। मोहम्मद अली जिन्ना ने लीग के निर्वाचित सदस्यों को दिल्ली बुलाया। उन्होंने बंगाल, पंजाब, सिंध, नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस, असम और बलूचिस्तान को जोड़कर पाकिस्तान की मांग के साथ संविधान सभा में कभी हिस्सा न लेने की प्रतिज्ञा भी ली।[12]

अन्य दलों और कांग्रेसी नेताओं का मत था कि संविधान सभा का सत्र बिना मुस्लिम लीग के नहीं बुलाना चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने भी साफ कर दिया कि बिना लीग के संविधान सभा नहीं बुलाई जाएगी।

माउंटबैटन का भारत आगमन – मुस्लिम लीग की जिद्द और कांग्रेस की जल्दीबाजी से प्रधानमंत्री एटली को लग गया था कि भारत विभाजन ही एकमात्र रास्ता है। उस दौरान वेवल भारत के वायसराय थे और उन्होंने सभी को एकसाथ लाने के भरसक असफल प्रयास किये।

महात्मा गांधी की मन:स्थिति - महात्मा गांधी भारत विभाजन के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने इस सन्दर्भ में मनु गांधी से 1 जून 1947 को चर्चा की थी। मनु को अपने दिल की बात कहते हुए उन्होंने बताया, “आज मैं अपने को अकेला पाता हूँ। लोगों को लगता है कि मैं जो सोच रहा हूँ वह एक भूल है। भले ही मैं कांग्रेस का चवन्नी का सदस्य नहीं हूँ लेकिन वे सब लोग मुझे पूछते है, मेरी सलाह लेते है। आजादी के कदम उलटे पड़ रहे हैं, ऐसा मुझे लगता है। हो सकता है आज इसके परिणाम तत्काल दिखाई न दे, लेकिन हिन्दुस्तान का भविष्य मुझे अच्छा नहीं दिखाई देता। हिन्दुस्तान की भावी पीढ़ी की आह मुझे न लगे कि हिंदुस्तान के विभाजन में गांधी ने भी साथ दिया था।[13]

महात्मा गांधी ने एक बार नहीं बल्कि कई बार भारत विभाजन का विरोध किया था। दरअसल, कांग्रेस कार्यसमिति ने माउंटबैटन योजना को स्वीकार करने की लगभग पूरी तैयारी कर ली थी। महात्मा गांधी ने 2 जून 1947 को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक को संबोधित किया। वहां भी उन्होंने ने साफ कहा कि मैं भारत विभाजन के सम्बन्ध में कार्यसमिति के निर्णयों से सहमत नहीं हूँ।[14]

इसी दिन महात्मा गांधी ने एक पत्र लिखकर भी अपना विरोध प्रकट किया, "भारत के भावी विभाजन से शायद मुझसे अधिक दुखी कोई और न होगा। मैं इस विभाजन को गलत समझता हूँ, और इसलिए मैं इसका भागीदार कभी नहीं हो सकता। [15]

विभाजन स्वीकार - महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद भी 13 जून 1947 को कांग्रेस कार्यसमिति ने विभाजन का ड्राफ्ट प्रस्ताव स्वीकार किया।[16] इसी कार्यसमिति की बैठक में माउंटबैटन योजना को स्वीकार कर लिया गया।[17] कांग्रेस कार्यसमिति का वह प्रस्ताव इस प्रकार था, "आल इंडिया कांग्रेस कमिटी ने जनवरी की पिछली बैठक के बाद की घटनाओं, विशेष रूप से 20 फरवरी 1947 और 3 जून 1947 को ब्रिटिश सरकार की ओर से दिए गए बयानों पर गंभीरता से विचार किया है। आल इंडिया कांग्रेस कमिटी 3 जून को प्रस्तावित प्रावधानों को स्वीकार करती है"।[18]

इंडिया इंडिपेंडेंस एक्ट - माउंटबैटन योजना के आधार पर लन्दन में प्रधानमंत्री एटली की अध्यक्षता में 26 जून 1947 को एक बैठक हुई। ब्रिटिश सरकार का कहना था कि रियासतों का अधिमिलन दो नये देशों में किसी एक अथवा दूसरे में ही होगा।[19] वह किसी भी रियासत को स्वतंत्र देश का दर्जा देने के लिए तैयार नहीं थे। एटली ने हाउस ऑफ कॉमन्स में जुलाई 1947 के दूसरे सप्ताह में इंडियन इंडिपेंडेंस बिल प्रस्तावित किया। यह बिल ब्रिटिश संसद में 18 जुलाई 1947 को पारित हुआ। यह भारत के धार्मिक विभाजन की आधिकारिक घोषणा थी।

भारत सरकार अधिनियम 1935 के आधार पर अधिमिलन पत्र अथवा विलय समझौता तैयार किया गया था। अधिमिलन अथवा विलय की कोई समय सीमा निर्धारित नहीं थी इसलिए 15 अगस्त 1947 के बाद तक महाराजाओं ने हस्ताक्षर किये। ब्रिटिश सरकार ने रियासतों को एक अस्थाई सुविधा प्रदान की थी। अगर कोई महाराजा चाहे तो वह स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था और सामान्य मामलों की देखभाल के लिए भारत अथवा पाकिस्तान में किसी एक के साथ स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट कर सकता था। भारत सरकार ने अधिकतर रियासतों के साथ अधिमिलन अथवा विलय होने तक ऐसा एग्रीमेंट किया था।

इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट के अनुसार पाकिस्तान में एक पृथक संविधान सभा का गठन किया गया। जिसका पहला सत्र 10 अगस्त 1947 को बुलाया गया। परिणामस्वरूप भारत की संविधान सभा में सदस्यों की संख्या घटकर 299 हो गयी, जिसमें रियासतों का प्रतिनिधित्व 89 रह गया। अधिमिलन के साथ संविधान सभा में उनके प्रतिनिधित्व को बनाए रखने के लिए आपसी बातचीत में पहले से तेजी आ गई थी। सरदार पटेल ने कह दिया था कि भारत में वह न तो अलग-थलग रहेंगे और न ही संविधान सभा के बाहर रह सकते हैं।[20]

संदर्भ सूची

1. डॉ. बाबा साहब आंबेडकर राइटिंग एंड स्पीचेस, खंड 17-I, पृष्ठ 369
2. लियोनार्ड मोसेली, द लास्ट डेज ऑफ़ ब्रिटिश राज, जाइको : बॉम्बे, 1960, पृष्ठ 281
3. राष्ट्रीय अभिलेखागार, विदेश मंत्रालय, 51-6/48
4. सिलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खंड 15, पृष्ठ 136
5. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरोस्पोंडेंस, खंड 4, नवजीवन : अहमदाबाद, 1972, पृष्ठ 244
6. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरोस्पोंडेंस, खंड 4, नवजीवन : अहमदाबाद, 1972, पृष्ठ 245

7. लतीफ अहमद शेरवानी (सं.), इकबाल के भाषण लेखन और कथन, इकबाल अकादमी : लाहौर, 1977, पृष्ठ 3-26
8. यूनाइटेड किंगडम की संसद, भारत में कैबिनेट, 19 फरवरी 1946
9. वी.पी. मेनन, द ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इंडिया, लॉन्गमैंन : बॉम्बे, 1957, पृष्ठ 264
10. वी. पी. मेनन, द ट्रांसफर ऑफ़ पॉवर इन इंडिया, लॉन्गमैंन : बॉम्बे, 1957, पृष्ठ 280
11. एस. एम. गोखले, इंडियन स्टेट्स एंड कैबिनेट मिशन प्लान, पृष्ठ 61
12. चौधरी खालिकज्मान, पाथवे टू पाकिस्तान, लॉन्गमैंन : लाहौर, 1961, पृष्ठ 340-41
13. गांधी सम्पूर्ण वांग्मय, खंड 88, पृष्ठ 43-44
14. गांधी सम्पूर्ण वांग्मय, खंड 88, पृष्ठ 53
15. गांधी सम्पूर्ण वांग्मय, खंड 88, पृष्ठ 55
16. इंडियन एनुअल रजिस्टर, 1947, पृष्ठ 75
17. इंडियन एनुअल रजिस्टर, 1947, पृष्ठ 134
18. द हिंदुस्तान टाइम्स - 14 जून 1947
19. निकोलस मंसेर्घ, द ट्रांसफर ऑफ़ पॉवर 1942-7, खंड XI, हिज मेजेस्टी ऑफिस : लन्दन, पृष्ठ 662-663 (इंडिया एवं वर्मा कमिटी की 36वीं वैठक)
20. वी. शंकर, सरदार पटेल : चुना हुआ पत्र व्यवहार, खंड 1, नवजीवन : अहमदाबाद, पृष्ठ 588

32

रूस में लोकतंत्र: एक समालोचना

सुरेश कुमार
रूस एवं मध्य एशियाई अध्ययन केंद्र, अतंराष्ट्रीय अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110067

इसी प्रकार, समकालीन लोकतांत्रिक व्यक्ति यह तर्क दे सकता है कि एथेंस में कोई लोकतंत्र नहीं था क्योंकि वहां केवल कुछ वयस्कों को नागरिकता का दर्जा दिया गया था, जबकि जनसंख्या का बड़ा हिस्सा नागरिक नहीं था। लोकतंत्र एक स्थिर घटना नहीं है, बल्कि यह एक विकासशील और परिवर्तनशील प्रक्रिया है। विभिन्न देशों ने अपने इतिहास, संस्कृति, परंपराओं, और अनुभवों के आधार पर लोकतंत्र के भिन्न-भिन्न रूप अपनाए हैं। कुछ ने संसदीय लोकतंत्र का चयन किया है, जबकि अन्य ने राष्ट्रपति प्रणाली अपनाई है। इसी प्रकार, कुछ राज्यों ने एकात्मक सरकार का रास्ता चुना, जबकि अन्य ने संघीय सरकार की विशेषताओं को अपनाया।

इस लेख में, 1993 में रूसी सरकार द्वारा संविधान अपनाने के बाद से रूस में लोकतंत्र की प्रकृति की जांच किया गया है। पश्चिमी दृष्टिकोण (रूस के लोकतंत्र को 'प्रबंधित, अलोकतांत्रिक, प्रतिस्पर्धात्मक-तानाशाही' के रूप में मानने वाले) और रूसी दृष्टिकोण (संप्रभु लोकतंत्र के अनूठे लक्षणों का दावा करने वाले) दोनों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उन चुनौतियों का विश्लेषण किया जायेगा जो 1993 के बाद से रूस में लोकतंत्र के समेकन को रोकती हैं।

1993 का संविधान और लोकतंत्र

1993 का संविधान, रूस को एक लोकतांत्रिक संघीय राज्य के रूप में वर्णित करता है जिसमें गणराज्य का शासन रूप है। रूसी संघ का संविधान लोकतंत्र और चुनावों के लिए दिशा-निर्देश निर्धारित करता है। रूसी संघ के संविधान के अनुच्छेद 1 (अध्याय 1) में कहा गया है कि **"रूस लोकतांत्रिक संघीय कानून द्वारा शासित गणराज्यीय शासन रूप वाला होगा।"**

अनुच्छेद 3 (अध्याय 1) में कहा गया है कि **"जनमत संग्रह और स्वतंत्र चुनाव लोगों की शक्ति की सर्वोच्च प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होगी।"** इसी प्रकार, रूसी संविधान का अनुच्छेद 13 स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है कि **"राज्य द्वारा प्रायोजित या अनिवार्य विचारधारा नहीं होगी और बहुदलीय प्रणाली अस्तित्व में रहेगी।"** ऐतिहासिक रूप से, रूस में पहला निर्वाचित विधानसभा— **राज्य डूमा**— 1905 में स्थापित किया गया था, लेकिन यह सीमित मताधिकार पर आधारित था और आम जनता के मुद्दों पर बहुत कम जोर देता था। मार्च 1917 की क्रांति के बाद गठित अंतरिम सरकार ने अपेक्षाकृत स्वतंत्र चुनाव में 50 राजनीतिक दलों की प्रतियोगिता का प्रावधान रखा। लेकिन 1917 की बोल्शेविक क्रांति ने **"सभी शक्तियां सोवियत्स को"** के नारे के तहत एक एकल दल की स्थापना की। फिर भी, सोवियत संघ के विघटन से पहले की सरकार को आमतौर पर अधिनायकवादी, निरंकुश और दमनकारी

माना जाता है। हालांकि, रूसी इतिहास में पहली लोकतांत्रिक संस्थाएं और प्रक्रियाएं उसी अवधि में जन्मीं। राजशाही को समाप्त किया गया, एक संविधान लागू किया गया, और चुनाव हुए।

बोल्शेविक क्रांति का स्वभाव स्वयं लोकतांत्रिक था; लोगों द्वारा लोगों का शासन स्थापित हुआ। स्टालिन के शासनकाल के दौरान केंद्रीकरण जारी रहा; 1936 के संविधान में चुनावों को अप्रत्यक्ष और गुप्त रूप से संचालित करने का आदेश दिया गया। मिखाइल गोर्बाचेव ने 1987 में लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरुआत की। हालांकि, उनके प्रयास भी सीमित थे और कम्युनिस्ट पार्टी में बहु-उम्मीदवारों की शुरुआत तक ही सीमित थे।

रूसी लोकतंत्र: प्रबंधित लोकतंत्र

रूस को **"प्रबंधित लोकतंत्र"** के रूप में समझने का विचार राष्ट्रपति पद के उत्तराधिकार के अध्ययन के माध्यम से किया जाएगा। प्रबंधित लोकतंत्र का स्थान **"उदार (पूंजीवादी) लोकतंत्रों"** और **"तानाशाही"** के बीच आता है। उदार लोकतंत्र संगठित राजनीतिक हितों की (औपचारिक रूप से) स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा, लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं और कानून के शासन द्वारा चिह्नित होता है, जबकि तानाशाही संगठित राजनीतिक विपक्ष और राजनीतिक अधिकारों को हिंसक रूप से दबाती है। हालांकि रूस वास्तव में राज्य डूमा, राष्ट्रपति और क्षेत्रीय व गणराज्यीय सभाओं के लिए लगातार चुनाव आयोजित करता है, इसे एक समेकित लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। तो यदि रूस एक समेकित लोकतंत्र नहीं है, तो क्या इसे एक अधिनायकवादी राज्य या **"प्रतिस्पर्धात्मक अधिनायकवाद"** कहा जा सकता है?

रूस का एक लंबा अधिनायकवादी इतिहास है, लेकिन जहां अधिनायकवादी नेता अक्सर संविधान और नियमों को बदलकर उन्हें अपनी इच्छाओं और मांगों के अनुसार अनुकूलित करते हैं, व्लादिमीर पुतिन ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए संविधान को नहीं बदला। इसके विपरीत, उन्होंने क्षेत्रीय गवर्नरों के मुकाबले अपनी स्थिति को बढ़ाने के लिए संघीय कानूनों का उपयोग किया और पार्टी प्रणाली में बदलाव लाने के लिए चुनावी कानूनों को संशोधित किया। हालांकि, रूस ने स्वयं को **"पूर्ण विकसित"** अधिनायकवादी राज्य के रूप में नहीं बदला है। चुनाव अक्सर आयोजित किए जाते हैं, नागरिकों के लिए अपेक्षाकृत स्वतंत्रता है, लेकिन सत्ताधारी शक्तियों को मजबूत लाभ मिलता है।

पोस्ट-सोवियत रूस में, कुछ हद तक, लोकतांत्रिक विशेषताएं थीं जैसे लोकप्रिय चुनाव और जवाबदेही। साथ ही, **"नीतिगत विकल्पों की प्रतिस्पर्धा और राजनीतिक ताकतों के स्वतंत्र खेल पर प्रतिबंध"** थे। रूस वास्तव में एक उदार लोकतंत्र और तानाशाही के बीच आता है, जैसा कि मंडेल (2005) ने जोर दिया। इस प्रकार, व्लादिमीर पुतिन के तहत, रूस ने स्वयं को एक **"प्रबंधित लोकतंत्र"** में विकसित किया। एक तरफ लोकतांत्रिक विशेषताएं हैं, जबकि दूसरी तरफ केंद्रीय प्रशासन ने चुनाव, मीडिया, नागरिक समाज और, रूस के मामले में, क्षेत्रों पर और अधिक नियंत्रण हासिल किया है।

प्रबंधित लोकतंत्र का ऐतिहासिक विकास और संक्रमण

सोवियत संघ के विघटन के शुरुआती वर्षों में, नए रूसी संघ ने तीव्र आर्थिक उदारीकरण को सीमित लोकतांत्रिक संक्रमणीय प्रयासों के साथ जोड़ा। वास्तव में, 1993 में संविधान को अपनाने के कारण, रूस को एक लोकतांत्रिक राज्य के रूप में परिभाषित किया गया, लेकिन संक्रमणीय वर्षों में मुख्य ध्यान आर्थिक उदारीकरण और पुनर्गठन पर था। मेंद्रास (Mendras) ने तर्क दिया कि 1990 के दशक के अंत तक, 1993 के संविधान का दो मौलिक मुद्दों— क्षेत्रीय स्वायत्तता और स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव— पर उल्लंघन किया जा चुका था। संघ के भीतर क्षेत्रीय स्वायत्तता और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्मान की मूल बातें 1994 में चेचन्या में सैन्य हस्तक्षेप के साथ तोड़ी गईं।

1996 के राष्ट्रपति चुनावों के दौरान, कुलीन वर्गों ने बोरिस येल्तसिन की जीत सुनिश्चित करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग किया ताकि चुनावों में कम्युनिस्टों की जीत को रोका जा सके। यहां तक कि 1995 में, चुनावों की अखंडता पर सवाल उठाए गए, हालांकि धोखाधड़ी किस हद तक हुई, यह बहस का विषय है। रूस में राष्ट्रपति चुनाव स्वतंत्र तो हैं लेकिन निष्पक्ष नहीं। येल्तसिन के उत्तराधिकार को लोकतांत्रिक विश्वसनीयता का अभाव था। **"परिवार"** ने व्लादिमीर पुतिन को नया रूसी राष्ट्रपति नियुक्त किया, और 2000 के राष्ट्रपति चुनाव मात्र औपचारिकता थे। जनवरी 2000 तक, पुतिन ने पहले ही 60 प्रतिशत मतदाताओं का समर्थन प्राप्त कर लिया था। धोखाधड़ी के बावजूद, जैसे **"फर्जी मतदाताओं का पंजीकरण"** और **"बैलट बॉक्स में बड़े पैकेट डालना,"** पुतिन शायद फिर भी चुनाव जीत जाते। शासन-समर्थित जीत को सुरक्षित करने के लिए रूस में चुनावी धोखाधड़ी 2004, 2008, और 2012 के राष्ट्रपति चुनावों में भी जारी रही।

2007-2008 का संक्रमण:

राष्ट्रपति पद के उत्तराधिकार की प्रक्रिया 2007-2008 के संक्रमण के दौरान **"अर्ध-संवैधानिक"** राज्य में हुई, जैसा कि साक्वा (Sakwa) ने वर्णित किया। राज्य के भीतर विभिन्न गुटों ने नए राष्ट्रपति को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिद्वंद्विता की। अपनी भूमिका में गुटीय प्रतिद्वंद्विता के मध्यस्थ के रूप में, पुतिन ने अंततः दिमित्री मेदवेदेव को अपने उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त किया।

इस प्रकार, नए राष्ट्रपति का चुनाव निष्पक्ष चुनावों के अधीन नहीं था, हालांकि अन्य उम्मीदवारों ने भी वोट प्राप्त किए। उदाहरण के लिए, कम्युनिस्ट राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार गेन्नेडी ज़्यूगानोव ने 17.72 प्रतिशत वोट प्राप्त किए। मेदवेदेव ने 70.28 प्रतिशत मतों के साथ जीत हासिल की, हालांकि क्षेत्रीय और स्थानीय अधिकारियों को वांछित परिणाम सुनिश्चित करने के लिए दबाव डाला गया।

रूस में चुनावी अखंडता और लोकतंत्र की खामियां

रूस न्यूनतम परिभाषा के अनुसार भी एक समेकित लोकतंत्र की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता। रूस में चुनाव स्वतंत्र तो हैं, लेकिन ऐसा प्रमाण है जो यह सुझाव देता है कि वे निष्पक्ष नहीं हैं। चुनाव अभियानों के दौरान, सत्ताधारी राजनेताओं को धन और मीडिया तक पहुंच में विशेष लाभ मिलता है। उदाहरण के लिए, **कोम्सोमोल्सकाया प्रवदा** के अनुमानों के अनुसार, 1996 के राष्ट्रपति चुनाव अभियान के दौरान येल्तसिन ने प्रिंट मीडिया कवरेज का 75 प्रतिशत और टीवी कवरेज का 90 प्रतिशत हिस्सा अपने पक्ष में किया।

चुनावों में धोखाधड़ी का एक और उदाहरण यह है कि रूस के संघीय इकाइयों में राज्य शक्ति के गठन पर संघीय कानून की अनुपस्थिति और राज्यपालों पर कानून की अनुपस्थिति के कारण, मौजूदा राज्यपालों को चुनावी नियम निर्धारित करने की अनुमति दी गई। कई बार, उन्होंने मजबूत संभावित प्रतिद्वंद्वियों को बाहर रखने के लिए कानून बनाए। हर चुनाव के बाद, रूसी प्रेस में मतदान केंद्रों पर काम करने वाले स्वयंसेवकों की कहानियां प्रकाशित होती हैं, जिनमें परिणामों की कथित गड़बड़ी का विवरण होता है। **असमान शक्तियां और नियुक्तियाँ**:

रूसी प्रणाली की एक और कमी यह है कि कई महत्वपूर्ण कार्यालय अब भी नियुक्त अधिकारियों से भरे हुए हैं। यह विशेष रूप से क्षेत्रीय स्तर पर देखा जाता है, जहां राज्यपाल क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों की संख्या को जितना संभव हो, चुनावों से दूर रखना चाहते हैं। यहां तक कि संघीय स्तर पर भी, कार्यकारी शाखा के निर्वाचित नहीं किए गए सदस्यों को, जिनके कार्य संविधान द्वारा निर्दिष्ट नहीं हैं, बहुत व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। ये शक्तियां निर्वाचित अधिकारियों से अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रपति के स्टाफ प्रमुख **अनातोली चुबैस**, 1996 में येल्तसिन की दीर्घकालिक बीमारी के दौरान सरकारी निर्णय लेने में एक प्रमुख व्यक्ति थे।

रूस में संप्रभु लोकतंत्र (Sovereign Democracy in Russia)

"संप्रभु लोकतंत्र" की अवधारणा की प्रक्रिया रूस में व्लादिमीर पुतिन के शासन की स्थापना के साथ शुरू हुई। इस अवधारणा को परिभाषित किए जाने से पहले भी, रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने कई बार, इस बात पर जोर दिया कि लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों और संस्थाओं को रूस में इस तरह लागू किया जाना चाहिए कि वे देश की राजनीतिक वास्तविकता, परंपराओं और इतिहास से मेल खाएं। इस दृष्टिकोण से, संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा 1990 के दशक में रूस के राजनीतिक, आर्थिक और अंतरराष्ट्रीय संकट के बाद एक लंबे विमर्श प्रक्रिया का परिणाम है। 2006 में एक विदेशी रिपोर्टर के साथ एक साक्षात्कार में **"संप्रभु लोकतंत्र"** की अवधारणा का उपयोग करने के बाद, सुरकोव ने अपनी अवधारणा को अपने लेख **"नेशनलाइजेशन ऑफ फ्यूचर"** में अधिक विस्तार से निर्दिष्ट किया। यह लेख **"एक्सपर्ट"** में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद, यह अवधारणा रूस की राजनीतिक विचारधारा बन गई। जबकि इस अवधारणा पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण मौजूद हैं— कुछ मौलिक और कुछ गौण— इसे वैचारिक रुझानों की एक विस्तृत श्रृंखला से जोड़ा गया है, जिसमें चरम दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद से लेकर अपेक्षाकृत उदार स्थिति शामिल हैं।

संप्रभु लोकतंत्र की मूलभूत विशेषताएं

यह अवधारणा रूसी शासक अभिजात वर्ग के बीच बने राष्ट्रवादी सहमति के मूल तत्वों को शामिल करती है, जैसे:

- मजबूत राज्य,
- आर्थिक क्षेत्र में राज्य कार्यों का सुदृढ़ीकरण,
- समान वितरण,
- और रूस की अंतरराष्ट्रीय स्थिति को एक महाशक्ति के रूप में बहाल करना।

इस अवधारणा को विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक प्रतिक्रियाएं मिलीं, विशेष रूप से मीडिया में। यह इसकी राजनीतिक कार्यक्षमता और रूस की राजनीतिक वास्तविकता के साथ इसके गहरे संबंध को दर्शाता है।

संप्रभु लोकतंत्र का राजनीतिक उद्देश्य:

विशेष रूप से, यह अवधारणा 2000 के दशक की शुरुआत से तेजी से अलग-अलग राजनीतिक ताकतों को एकजुट करने के लिए एक वैचारिक उपकरण के रूप में काम कर रही है। इस प्रकार, इसे केवल पुतिन के शासन के लिए एक विचारधारा के रूप में नहीं बल्कि **"यूनाइटेड रशिया"** पार्टी द्वार इसे एक पार्टी विचारधारा के रूप में भी विकसित किया गया है। 2006 में, सुरकोव द्वारा संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा को परिभाषित करने के बाद, यूनाइटेड रशिया ने इसे पार्टी मंच के लिए एक बुनियादी सिद्धांत के रूप में अपनाया। पार्टी के अध्यक्ष बोरिस ग्राइज़लोव ने घोषणा किया कि:
"हम (यूनाइटेड रशिया) एक संप्रभु लोकतांत्रिक राज्य का निर्माण करना चाहते हैं... संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा रूसी लोगों के लिए एकमात्र विकल्प है, और हम इसे एक स्वाभाविक सिद्धांत के रूप में लेते हैं।" रूस की संवैधानिक अदालत के अध्यक्ष, वेलेंटिन ज़ोरकिन ने इस अवधारणा के संवैधानिक आधार को इस कथन के साथ जोर दिया: **"रूस अपने संविधान के अनुसार एक लोकतांत्रिक संप्रभु राज्य है। इसका मतलब है कि रूस एक लोकतांत्रिक देश है जो अपनी संप्रभुता के साथ लोकतांत्रिक है।"**

संप्रभु लोकतंत्र का तीन-चरणीय विश्लेषण

i) अनुकूलन (Adaptation)

संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा यह दिखाती है कि रूस ने अंतरराष्ट्रीय लोकतंत्र के मानकों को किस प्रकार घरेलू संदर्भ में अनुकूलित किया है। पहले, रूस का राजनीतिक विमर्श लोकतंत्र की अवधारणा का उपयोग करने में कोई आपत्ति नहीं करता है; यह केवल रूसी विशिष्टताओं पर जोर नहीं देता, जो अंतरराष्ट्रीय मानकों से अलग हों। इस संदर्भ में, संप्रभु लोकतंत्र का विमर्श निरंतर सार्वभौमिकता और सामान्यता को प्राप्त करने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, यह पूरी तरह से समझा जाता है कि रूस को एक सार्वभौमिक लोकतंत्र के उदाहरण के रूप में देखा जाना चाहिए। जैसा कि सुरकोव ने तर्क किया, **"जर्मन लोकतंत्र और फ्रांसीसी लोकतंत्र में अंतर सार में नहीं है, बल्कि यह कि वे किस तरह से कार्य करते हैं, इन दोनों में परंपराएं और रूप भिन्न हो सकते हैं।"**

संविधानिक सुधार को सही ठहराने के लिए उन्होंने रूस की राजनीति की तुलना पश्चिमी यूरोपीय राजनीतिक प्रणालियों और उनके नेताओं से की। उदाहरण के लिए, राष्ट्रपति पद की शक्ति को मजबूत करने के पक्ष में उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रपति प्रणाली और फ्रांसीसी अर्ध-राष्ट्रपति प्रणाली का उल्लेख किया। पुतिन के संस्थागत सुधारों की तुलना अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डि. रूजवेल्ट से की गई। इसके साथ ही, रूस के कुलतांत्रिक इतिहास को **"सार्वभौमिक घटना"** के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसकी तुलना जर्मनी के हिटलर, इटली के मुसोलिनी और स्पेन के फ्रांको से की गई।

ii) स्थिति की परिभाषा (Definition of the Situation)

संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा, लोकतंत्र की पुनः परिभाषा पर आधारित होने के कारण, संकट की स्थितियों की व्याख्या भी करती है। विशेष रूप से, यह अवधारणा दो संकट स्थितियों की व्याख्या करती है:

- एक नया अंतरराष्ट्रीय आदेश का पुनर्गठन, और
- घरेलू राजनीतिक संक्रमण।

येल्तसिन शासन के अंत तक, रूस को बाहरी रूप से अपने अंतरराष्ट्रीय स्थान में गिरावट का सामना करना पड़ा और आंतरिक रूप से आर्थिक पतन (1997 में राष्ट्रीय दिवालियापन) का सामना करना पड़ा। रूस को राज्य निर्माण के गंभीर मुद्दे का समाधान करना था, विशेष रूप से दूसरे चेचन युद्ध और 1999 में आतंकवादी हमलों के बाद। संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य के रूप में **"बाहरी राज्य संप्रभुता की रक्षा और आंतरिक संप्रभुता को मजबूत करना"** को परिभाषित किया गया। सुरकोव ने 2007 में प्रकाशित अपने लेख **"रूसी राजनीतिक संस्कृति"** में यह सवाल पूछा:
"(पश्चिमी शक्तियां) रूस से तेल, गैस और लकड़ी खरीदने के लिए क्यों संपर्क करती हैं? हम श्रमिक हैं, इंजीनियर नहीं हैं, बैंकर नहीं हैं, डिजाइनर नहीं हैं..." संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा में यह तर्क दिया गया कि रूस को **"अमेरिकी प्रभुत्व के खिलाफ खड़ा होना चाहिए,"** और इसके लिए अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति और रूस के हितों की पुनः परिभाषा की गई।

iii) संस्थागत निर्माण (Institutional Construction)

ब्लिथ के सिद्धांत के अनुसार, विचार केवल मौजूदा व्यवस्था और संस्थाओं की आलोचना करने के लिए नहीं होते, बल्कि पुराने आदेश को नष्ट करने के बाद नए संस्थागत आदेश का निर्माण करने के लिए होते हैं। संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा ने रूस के लिए यह निर्माणात्मक कार्य किया।

संप्रभु लोकतंत्र को लागू करने के लिए, सुरकोव ने कुछ विशिष्ट नीति कार्यक्रमों का सुझाव दिया:

- रूस की सभी भूमि को एकीकृत करना और इसे केंद्रीयकृत राज्य के रूप में स्थापित करना, जिसमें राष्ट्रपति को संघीय राज्य के गवर्नरों पर शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।
- राजनीतिक ताकतों को मजबूत राष्ट्रीय-स्तरीय राजनीतिक दलों में एकीकृत करना और चुनावी प्रणाली में परिवर्तन लाना।

इस तरह, संप्रभु लोकतंत्र की अवधारणा ने स्पष्ट रूप से उदार विपक्षी दलों को बाहर किया और पुतिन की पार्टी **"यूनाइटेड रशिया"** के लिए एक मजबूत बहुमत पार्टी के रूप में संस्थागत निर्माण की दिशा में काम किया।

लोकतंत्र एक मार्ग है, न कि एक लक्ष्य, और दुनिया के प्रत्येक देश में इसे सबसे अच्छा तरीके से अपनाया जाता है। लोकतांत्रिक मार्ग पर चलने की क्षमता संस्कृति, इतिहास और वर्तमान वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों पर निर्भर करती है,

जैसे कि अर्थव्यवस्था, राजनीतिक संस्थाएं, गरीबी, धर्म, या यहां तक कि प्राकृतिक संसाधन भी। रूस में लोकतंत्र है, लेकिन यह अपनी विशेषताओं के साथ है, जो रूस की वास्तविकता और परिस्थितियों से प्रभावित है, जो लोकतंत्र को प्रभावित करती हैं। सोवियत संघ के विघटन के बाद अस्तित्व में आया स्वतंत्र रूसी संघ एक युवा देश है, जो लोकतंत्र की दिशा में प्रारंभिक चरण में है।

इतिहास की बात करें तो, रूस में लोकतंत्र के कितने उदाहरण हैं? ईमानदारी से कहें तो बहुत कम। रूस में हाल तक लोकतंत्र नाम की कोई चीज नहीं थी। दुर्भाग्यवश, रूसी ऐतिहासिक परंपरा लोकतांत्रिक नहीं रही। सम्राटों और कम्युनिस्टों के शासनकाल के दौरान सरकारें सत्तावादी या यहां तक कि निरंकुश थी; वहां नागरिक समाज, मुक्त बाजार, मानव अधिकार आदि की कोई अवधारणा नहीं थी। इसलिए यह स्वाभाविक है कि रूस को संक्रमण में समय लगेगा। कोई भी लोकतांत्रिक प्रणाली परिपूर्ण नहीं होती। हर राजनीतिक व्यवस्था में खामियां होती हैं, यहां तक कि वे जो पूरी दुनिया में **"लोकतंत्र के उद्धारक"** का झंडा उठाते हैं। रूस उन "अपूर्ण" लोकतंत्रों का हिस्सा है। रूस के इतिहास में कुछ ही लोकतांत्रिक उदाहरण हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि रूसी समाज लोकतंत्र का पालन करने में असमर्थ है। रूस एक लोकतांत्रिक देश है, लेकिन निश्चित रूप से पश्चिमी मानकों के अनुसार नहीं। वहां स्वतंत्र चुनाव हैं और विभिन्न राजनीतिक दल हैं; वहां एक संविधान है जो राजनीतिक जीवन को नियंत्रित करता है; 27 वर्षों में तीन राष्ट्रपति हुए हैं।

पश्चिमी लोकतंत्र के मानक से रूस का लोकतंत्र पूरी तरह मेल नहीं खाता, लेकिन रूस ने अपने सत्तावादी अतीत से बाहर निकलने के लिए लंबा रास्ता तय किया है। कई महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक उपलब्धियां हैं जैसे कि चुनावों में स्वतंत्रता, बहु-उम्मीदवार चुनावों का उपयोग, राजनीतिक विपक्ष की सहनशीलता, संवैधानिक न्यायालय का निर्माण, मीडिया की राजनीतिक सेंसरशिप का उन्मूलन, यात्रा की स्वतंत्रता, राजनीतिक दलों की स्थापना की स्वतंत्रता, और निजी संपत्ति का वैधीकरण— ये सब रूस के संदर्भ में महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक उपलब्धियां हैं।

संदर्भ सूची

1. आद्रियांसे, एम.एल. (2014), "रूस का प्रबंधित लोकतंत्र: प्रणाली और इसका भविष्य", [ऑनलाइन: वेब] 11 अक्टूबर 2019 को एक्सेस किया गया, URL: https://www.academia.edu/20556662/Russias_Managed_Democracy_The_System_and_Its_Future
2. ब्लैंक, एस. (2005), "क्या रूस एक लोकतंत्र है और क्या यह मायने रखता है?", वर्ल्ड अफेयर्स, 167(3): पृष्ठ 125-136।
3. ब्लाइथ, एम. (2002), "महान परिवर्तन: बीसवीं शताब्दी में आर्थिक विचार और संस्थागत परिवर्तन", कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कार्नाघन, ई. (2001), "लोकतंत्र के बारे में सोचना: रूसी नागरिकों के साथ साक्षात्कार", स्लाविक रिव्यू, 60(2): पृष्ठ 336-366।

5. कोल्टन, टी.जे. & मैकफॉल, एम. (2003), "लोकप्रिय चयन और प्रबंधित लोकतंत्र: 1999 और 2000 के रूसी चुनाव", वाशिंगटन: ब्रूकिंग्स इंस्टीट्यूशन प्रेस।
6. गैरेर्ड, जे. आदि. (2000), "1800 से यूरोपीय लोकतंत्रीकरण", न्यूयॉर्क: सेंट मार्टिन प्रेस।
7. जू, जिन-सूक (2016), "रूस में लोकतंत्र पर संस्थागत सुधार और विमर्श", [ऑनलाइन: वेब] 10 अक्टूबर 2016 को एक्सेस किया गया, URL: http://kaisnet.or.kr/resource/down/8_2_05.pdf
8. क्रास्टेव, आई. और होल्म्स, एस. (2012), "पुतिनिज़्म पर हमले: प्रबंधित लोकतंत्र का शव परीक्षण", जर्नल ऑफ डेमोक्रेसी, 23(2): पृष्ठ 33-45।
9. पलासिओस, ई. (2019), "लोकतंत्र 'आ ला रूस': क्या यह असंभव सपना है? क्या रूस में सचमुच लोकतंत्र है?", [ऑनलाइन: वेब] 12 अक्टूबर 2019 को एक्सेस किया गया, URL: https://www.academia.edu/20496292/Democracy_in_Russia_Democracy_a_la_Russe_An_impossible_dream_Does_democracy_really_exist_in_Russia_
10. लेवित्स्की, एस. और वे, एल.ए. (2010), "प्रतिस्पर्धात्मक अधिनायकवाद: शीत युद्ध के बाद के हाइब्रिड शासन", कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. मंडेल, डी. (2005), "प्रबंधित लोकतंत्र: रूस में पूंजी और राज्य", जर्नल ऑफ कंटेम्परेरी सेंट्रल एंड ईस्टर्न यूरोप, 13(2): पृष्ठ 117-136।
12. मेंद्रास, एम. (2012), "रूसी राजनीति: एक कमजोर राज्य का पैरेडॉक्स", लंदन: हर्स्ट एंड कंपनी।
13. ओवरस्लोट, एच. (2007), "राज्य का पुनर्व्यवस्थापन (संविधान को बदले बिना): पुतिन के शासन के तहत रूस, 2000-2008", रिव्यू ऑफ सेंट्रल एंड ईस्टर्न यूरोपीय लॉ, 32: पृष्ठ 41-64।
14. साक्वा, आर. (2011), "रूसी लोकतंत्र का संकट: द्वैतीयक राज्य, गुटीयतावाद और मेदवेदेव का उत्तराधिकार", कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. सोलनिक, एस.एल. (1999), "रूस का संक्रमणक्या लोकतंत्र में देरी लोकतंत्र से इनकार है :?", सोशल रिसर्च, 66(3): पृष्ठ 789-824।

33

छत्रपति शिवाजी महाराज के 'स्वराज' और 'सुराज' की 21 वीं सदी में प्रासंगिकता

डॉ रवि रमेशचंद्र शुक्ल
सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक सिद्धांत अध्ययन केंद्र
अंतरराष्ट्रीय अध्ययन संस्थान,जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

ईसवी सन 700 के पश्चात का युग भारत के लिए अंधकार और विनाश का युग था। इस काल में सार्वजनिक संस्थानों और हिन्दू परम्पराओं पर गहरा आघात होने लगा था। इसके कई कारण हैं, जिसपे अलग से चर्चा हो सकती है। भारत में 'विजयनगर' 'सिख' और 'मराठा' साम्राज्य के उदय के साथ ही यह अंधकार छंटने लगा। इसे भारतीय राजनीति या हिन्दू राजनीति का पुनर्जागरण का युग कहा जा सकता है। किन्तु कालान्तर में समृद्धि के शिखर पर पहुँच कर विजयनगर का पतन हो गया, सिख साम्राज्य भी वांछित सफलता नहीं प्राप्त कर सका। सिर्फ मराठा साम्राज्य ही प्रभावशाली और लम्बे समय तक हिन्दू राजनीति का प्रतिनिधित्व करता रहा। के. पी. जायसवाल के मतानुसार , 'सिख राजनीती स्वयं को अतीत से नहीं जोड़ सकी, इसलिए असफल रही।' सिख साम्राज्य ने अपने आस पास की व्यवस्थाओं को अपनाया और अधिनायकवादी (एक व्यक्ति के शासन) व्यवस्था लागू किया था। श्री गुरु गोविन्द सिंह ने इसमें सुधार लाने की भरपूर कोशिश की, लेकिन वे अपेक्षित सफलता नहीं मिली। 1708 के बाद गुरु ग्रन्थ साहिब को सिखों का गुरु मान लिया गया। अब 'एक व्यक्ति का शासन' 'व्यक्ति हीन शासन' हो गया।
किन्तु मराठा प्रांतों में हिन्दू राजनीति का आंदोलन एकदम भिन्न तरीके से चलाया था। मराठा शासकों ने इतिहास को देखा और समझा; उसी से प्रेरणा लेकर नियम, कानून और शासन व्यवस्था बनाया। मराठा शासकों ने भी अपने समय के मौजूदा संसाधनों का प्रयोग किया, लेकिन उन्होंने ऐसे संसाधन और विचार चुने जिनका भारत के अतीत में स्थान हो। इस साम्राज्य के शिल्पी छत्रपति शिवाजी महाराज और उनकी माता जीजाबाई ने महाभारत और शुक्र नीति जैसे ग्रंथों का गहन अध्ययन करके राज्य के संचालन और राजा के कर्तव्यों का निर्धारण किया था। 'राजा शासन चलाये, न की राज करे' की अवधारणा पर शिवाजी महाराज ने स्वयं को राज्य के पालक या ट्रस्टी की भूमिका में ही रखा। उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का अनुसरण करते हुए शासन चलने की शब्दावली तैयार करवाया जिसे 'राजकोश' (book of state terms) कहा जाता था। उन्होंने एक व्यक्ति के शासन के स्थान पर मंत्रिमंडल के सामूहिक शासन को अपनाया, जो की भारतीय शास्त्रों से सम्मत था। शिवजी पहराज ने इस बात को भली भांति पहचाना था की, 'भारत के समृद्ध इतिहास और संवैधानिक विचाओं के प्रति घोर अंधकार ही समाज की सबसे बड़ी बाधा थी। शिवजी महराज ने 'शास्त्र और शास्त्र' दोनों का अद्भुत समन्वय साधा था। इस कार्य में उनके गुरु समर्थ रामदास का बड़ा योगदान था। 'नरदेह हा स्वाधीन। सहसा न ह्वै पराधीन।। (दासबोध: I. 10. 25). इस प्रकार के विचारों ने उनकी स्वराज की समझ को आकर दिया था। प्रत्येक मनुष्य स्वाधीन होना चाहिए। इसकी सहायता से उन्होंने हज़ारों मावलों को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप आदिलशाही और मुग़लशाही के जबड़ों में हाथ डालकर सत्ता और स्वराज्य हासिल किया था।

भारतीय इतिहास के एक प्रभावशाली चरित्र, छत्रपति शिवाजी महाराज, 17वीं शताब्दी के दौरान एक परिवर्तनकारी अग्रदूत के रूप में उभरे, वह अवधि महत्वपूर्ण राजनीतिक उथल-पुथल और मुगल साम्राज्य और क्षेत्रीय सल्तनतों

के प्रभुत्व से चिह्नित थी। उनके स्वराज्य की स्थापना - एक संप्रभु और स्वशासित राज्य - उनके लोगों के लिए स्वतंत्रता, न्याय और समृद्धि की दृष्टि से प्रेरित थी। यह शोध पत्र स्वराज्य की ऐतिहासिक नींव और प्रमुख सिद्धांतों पर प्रकाश डालता है, जो शिवाजी महाराज द्वारा शुरू किए गए अभिनव शासन मॉडल को उजागर करता है। यह पेपर प्रशासन के सुराज मॉडल की जांच करता है, जिसमें विकेंद्रीकरण, योग्यता-आधारित नियुक्ति और निष्पक्ष कराधान पर जोर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, यह सामाजिक न्याय, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सैन्य चुनौतियों के प्रति शिवाजी महाराज की प्रतिबद्धता की पड़ताल करता है। ऐतिहासिक विश्लेषण और समकालीन मूल्यांकन को शामिल करते हुए एक बहु-विषयक दृष्टिकोण के माध्यम से, इस अध्ययन का उद्देश्य शिवाजी महाराज की विरासत और आधुनिक शासन चुनौतियों के लिए इसकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालना है। छत्रपति शिवाजी महाराज, मराठा साम्राज्य की स्थापना में अपनी भूमिका और अपनी सैन्य शक्ति के लिए जाने जाते हैं। 1630 में शाहजी भोसले और जीजाबाई के घर जन्मे। वह नवीन कल्याणकारी रणनीति, नौसैनिक शक्ति, प्रशासन और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के स्वामी थे। शिवाजी का नाम भगवान शिव से नहीं बल्कि शिवाई नाम के एक क्षेत्रीय देवता से लिया गया था। उनके कार्यों के लिए उन्हें भगवान जैसा दर्जा दिया गया था। शिवाजी महाराज ने सभी धर्मों को समायोजित किया, उन्होंने कभी भी अपनी धार्मिक मान्यताओं से समझौता नहीं किया। यह ठीक है, जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'शिवाजी एंड हिज टाइम्स' में उद्धृत किया है, 'अपने शुरुआती वर्षों से, शिवाजी को दो आदर्शों को संजोने के लिए प्रशिक्षित किया गया था, जिन्होंने उनके पूरे जीवन को अक्कर दिया, ' स्वतंत्रता का आदर्श और स्वतंत्रता का कर्तव्य'।

स्वराज्य की उत्पत्ति: ऐतिहासिक नींव और प्रमुख सिद्धांत

छत्रपति शिवाजी महाराज की कल्पना का स्वराज्य, 17वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य और विभिन्न क्षेत्रीय सल्तनतों के तहत राजनीतिक अस्थिरता और उत्पीड़न की अवधि के दौरान उभरा। शिवाजी महाराज बाहरी प्रभुत्व और शोषण से मुक्त एक संप्रभु और स्वशासित राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उनका दृष्टिकोण स्व-शासन, न्याय और अपने लोगों के कल्याण की इच्छा में गहराई से निहित था। स्वराज्य की अवधारणा को कई मूल सिद्धांतों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे **पहले**, शिवाजी महाराज ने **राजनीतिक स्वतंत्रता और एक संप्रभु राज्य** की स्थापना के महत्व पर जोर दिया जो विदेशी शक्तियों के अधीन होने के बजाय अपने स्वयं के कानूनों और रीति-रिवाजों द्वारा शासित होगा। **दूसरे**, उन्होंने **न्याय और समता** पर आधारित शासन प्रणाली लागू की। एक निष्पक्ष कर प्रणाली ने उनके प्रशासन, किसानों की सुरक्षा और सभी विषयों के कल्याण को चिह्नित किया, चाहे उनका धर्म या जाति कुछ भी हो। एक मजबूत सेना के महत्व को पहचानते हुए, शिवाजी महाराज ने **गुरिल्ला युद्ध जैसी नवीन सैन्य रणनीति और रणनीतियाँ विकसित** की, जो शक्तिशाली विरोधियों के खिलाफ नवजात स्वराज्य की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण थीं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने प्र**शासन में मराठी के उपयोग** को बढ़ावा दिया और स्थानीय संस्कृति को बढ़ावा दिया, जिससे उनके लोगों के बीच पहचान और एकता की मजबूत भावना पैदा करने में मदद मिली। इसके अलावा, शिवाजी महाराज ने महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधारों की शुरुआत की, जिसमें एक **सुव्यवस्थित राजस्व प्रणाली** की स्थापना और संसाधनों का कुशल प्रबंधन शामिल था, जिसने उनके राज्य की आर्थिक स्थिरता और समृद्धि में योगदान दिया। इतिहासकार **जदुनाथ सरकार** शिवाजी महाराज के द्वारा एक आत्मनिर्भर और लचीला राज्य बनाने पर पर प्रकाश डालते हैं। सरकार का कहना है कि, **'शिवाजी का स्वराज्य केवल एक राजनीतिक इकाई नहीं था बल्कि शासन का एक व्यापक मॉडल था जो अपने विषयों के कल्याण और**

आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता देता था'। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के **गॉर्डन जॉनसन** ने शिवाजी महाराज की सैन्य रणनीतियों के नवीन पहलुओं और स्वराज्य की स्थापना और रक्षा में उनकी प्रभावशीलता को रेखांकित किया। जॉनसन बताते हैं कि, **'स्थानीय संस्कृति और प्रशासन पर शिवाजी के जोर ने लोगों को एक समान पहचान के साथ एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।** टेक्सास विश्वविद्यालय के **सुमित गुहा** शिवाजी महाराज के प्रशासनिक कौशल, विशेष रूप से उनकी राजस्व प्रणाली पर जोर देते हैं, जिससे उनके राज्य की वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित की। गुहा का तर्क है कि **'शिवाजी का शासन मॉडल अपने समय से आगे था और समकालीन प्रशासनिक प्रथाओं के लिए मूल्यवान सबक प्रदान करता है'।** इतिहासकार सतीश चंद्र ने शिवाजी महाराज के शासन की समावेशी प्रकृति पर प्रकाश डाला और बताया कि **'शिवाजी की नीतियां समावेशी, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और उनके राज्य के भीतर सभी समुदायों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए बनाई गई थीं'।** इस दृष्टिकोण ने उनकी प्रजा के बीच वफादारी और एकता को बढ़ावा दिया, जो स्वराज्य की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण था।

स्वराज मॉडल

शिव जी का स्वराज मॉडल 17वीं शताब्दी के मराठा शासक छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वशासन और शासन सिद्धांत को संदर्भित करता है। उनकी स्वराज की अवधारणा में कई प्रमुख तत्व निहित थे।

प्रशासनिक संरचना

उन्होंने कुशल शासन के साथ एक केंद्रीकृत प्रशासनिक संरचना की स्थापना की, उन्होंने अपने साम्राज्य को "सुभास" नामक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित किया, जिन्हें आगे "परगना" में विभाजित किया गया। प्रत्येक इकाई का प्रबंधन नियुक्त अधिकारियों द्वारा किया जाता था जो सीधे केंद्र सरकार को रिपोर्ट करते थे। रणजीत देसाई की "शिवाजी: द ग्रेट मराठा" शिवाजी महाराज की प्रशासनिक संरचना पर केंद्रित है:

1. राज्य के विभाजन

शिवाजी ने अपने राज्य को 'सुभाष' नामक कई प्रांतों में विभाजित किया, प्रत्येक का शासन एक सूबेदार द्वारा किया जाता था जो प्रशासन, राजस्व संग्रह और कानून और व्यवस्था के रखरखाव के लिए जिम्मेदार था।

2. अधिकारियों के पदानुक्रम

शिवाजी के प्रशासन के केंद्र में अष्टप्रधान थे, आठ मंत्रियों की एक परिषद जो राजा को सलाह देती थी और वित्त, विदेशी मामलों और न्याय जैसे शासन के विभिन्न पहलुओं का प्रबंधन करती थी।

3. राजस्व और कराधान

शिवाजी के अधीन राजस्व प्रणाली को निष्पक्षता और दक्षता सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक व्यवस्थित किया गया था। उन्होंने चौथ और सरदेशमुखी करों की शुरुआत की, जिससे किसानों पर अत्यधिक बोझ से बचने के साथ-साथ राज्य को आवश्यक धन भी उपलब्ध हुआ।

4. स्थानीय शासन

प्रत्येक गांव की देखरेख एक पाटिल द्वारा की जाती थी, और गांवों के समूहों का प्रबंधन एक देशमुख द्वारा किया जाता था। इस विकेंद्रीकृत दृष्टिकोण ने सुनिश्चित किया कि स्थानीय मुद्दों को तेजी से और प्रभावी ढंग से संबोधित किया जा सके।

सैन्य रणनीति और रक्षा: आधुनिक सुरक्षा के लिए सबक

छत्रपति शिवाजी महाराज की सैन्य रणनीतियों और सुरक्षा ने उन्हें शत्रुतापूर्ण शत्रुओं के बीच अपना अधिकार स्थापित करने और संरक्षित करने में बहुत मदद की। सुरक्षा और लड़ाई की उनकी नवीन तकनीकों ने उनके राष्ट्र के अस्तित्व को सुनिश्चित किया और आधुनिक सैन्य रणनीति की नींव रखी। शिवाजी महाराज की युद्ध शैली रणनीतिक अंतर्दृष्टि और लचीलेपन से परिभाषित होती थी। सबसे प्रसिद्ध विशेषता यह थी कि बड़े दुश्मन सैनिकों पर उसके तीव्र, आश्चर्यजनक हमले और उसके बाद गुरिल्ला युद्ध का उपयोग करके तेजी से भाग जाना, जिसे "गनीमी कावा" भी कहा जाता है। विभिन्न अन्य क्षेत्रीय सेनाओं के साथ, इस रणनीति ने शिवाजी को मुगलों की बड़ी सेना का प्रभावी ढंग से विरोध करने में सक्षम बनाया। शिवाजी महाराज की सैन्य शक्ति को वर्ष 1645 में तोरणा किले पर कब्ज़ा करने से काफी हद तक पता चलता है। काफी छोटी सेना के साथ यात्रा करते हुए, शिवाजी महाराज बीजापुर सल्तनत की सेनाओं से रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण तोरणा किले को जब्त करने में सक्षम थे। सावधानीपूर्वक तैयारी, नवीन विचारों और अपने लाभ के लिए स्थानीय भूगोल के प्रभावी उपयोग ने उन्हें यह जीत हासिल करने में मदद की। तोरणा किले पर कब्ज़ा करने के बाद, शिवाजी का विस्तार शुरू हुआ और उन्होंने अपने क्षेत्र को मजबूत करने में अपनी रणनीतिक क्षमता दिखाई।

प्रसिद्ध शोधकर्ता जदुनाथ सरकार शिवाजी महाराज की सैन्य चपलता की सराहना करते हैं। सरकार के अनुसार, शिवाजी की सफलता काफी हद तक उनके रणनीतिक कौशल और विध्वंसक युद्ध के उपयोग पर निर्भर करती थी। वह बताते हैं कि शिवाजी के दृष्टिकोण ने न केवल अधिक शक्तिशाली सेनाओं के खिलाफ काम किया, बल्कि वर्तमान सैन्य रणनीति की नींव भी रखी। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के गॉर्डन जॉनसन बताते हैं कि शिवाजी महाराज की सैन्य सफलताएं युद्ध की स्थितियों के आधार पर अपनी योजनाओं को संशोधित करने की उनकी क्षमता पर निर्भर करती हैं। मराठी विद्वान बाबासाहेब पुरंदरे ने शिवाजी महाराज की रणनीतिक रणनीति के चल रहे प्रभाव पर प्रकाश डाला, आधुनिक सेना के लिए सुरक्षा और सबक के लिए उनके रचनात्मक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला। युद्ध के तरीकों के निरंतर विकास के बावजूद ऑपरेशन।

कर्नाटक अभियान शिवाजी के जीवन का सबसे बड़ा सैन्य पराक्रम था, और उन्हें भारत में अपने युग के सबसे महान सैनिक के रूप में चिह्नित किया गया। कर्नाटक बीजापुर साम्राज्य का हिस्सा था, जिसमें से शिवाजी का राज्य था भाई, व्यंकोजी, एक जागीरदार था, और उसने बीजापुर की दोनों सेनाओं पर विजय प्राप्त की व्यंकोजी के. जैसा कि श्री किनकैड कहते हैं, "अठारह महीनों के दौरान, अपने अड्डे से 700 मील की दूरी पर उसने इतना बड़ा क्षेत्र जीत लिया था उसके पूर्व साम्राज्य के रूप में। जबकि एक भी उलटफेर घातक हो सकता था, उसने किया एक भी चेक का सामना नहीं करना पड़ा. जीत के बाद जीत हुई थी; शहर के बाद शहर गिर गया. जैसे ही वह गया, उसने अपनी विजय का आयोजन किया, और जब वह लौटा रायगढ़ तक उसकी नई संपत्ति समुद्र से समुद्र तक सुरक्षित रूप से बंधी हुई थी गढ़वाले गढ़ों की एक पंक्ति, जिस पर मृत्युपर्यंत बहादुर और समर्पित सैनिकों का कब्ज़ा था अपने उद्देश्य

के लिए।" उसने अपने भाई को तंजौर और सेमे इसके पड़ोस में क्षेत्र को अपने जागीरदार के रूप में बनाए रखने की अनुमति दी

सैन्य सुधार

एक मजबूत और अनुशासित सैन्य बल के साथ, शिवाजी समुद्री ताकत के महत्व को पहचानने वाले कुछ भारतीय शासकों में से एक थे। एम. एस. नरवणे द्वारा लिखित "शिवाजी एंड द मराठा आर्ट ऑफ़ वॉर" जो शिवाजी के सैन्य सुधारों, विशेष रूप से उनके समुद्री नवाचारों पर प्रकाश डालता है:

1. समग्र सैन्य संगठन पर

शिवाजी के सैन्य सुधार अपने समय के लिए क्रांतिकारी थे। उन्होंने तेज गति और आश्चर्यजनक हमलों पर जोर देने के साथ एक अत्यधिक अनुशासित और मोबाइल सेना की स्थापना की, जो मराठा युद्ध की पहचान बन गई।

2. पैदल सेना और घुड़सवार सेना पर

शिवाजी के अधीन मराठा सेना पैदल सेना और घुड़सवार सेना में विभाजित थी, जो उनकी सैन्य ताकत की रीढ़ थी। घुड़सवार सेना को तेजी से और आक्रामक युद्धाभ्यास के लिए प्रशिक्षित किया गया था, जो अक्सर बड़ी दुश्मन ताकतों को मात देती थी और उन पर भारी पड़ती थी।

3. समुद्री सुधारों पर

नौसैनिक शक्ति के रणनीतिक महत्व को पहचानते हुए, शिवाजी ने एक दुर्जेय नौसेना की स्थापना की। उन्होंने समुद्र तट के किनारे किलों की एक श्रृंखला बनाई और जहाजों को नियुक्त किया जो गश्त कर सकें और विदेशी खतरों से उनके जल की रक्षा कर सकें।

4. नौसेना पर विशिष्ट डेटा

अपने शासनकाल के अंत तक, शिवाजी ने लगभग 50 युद्धपोतों का एक बेड़ा बनाया था। इनमें गुरब (गनबोट) और गैलीवेट्स (तेज गति से चलने वाले जहाज) शामिल थे, जो कोंकण तट को सुरक्षित करने और पुर्तगालियों के वर्चस्व को चुनौती देने में सहायक थे। और जंजीरा के सिद्दी।" शिवाजी की शक्तिशाली नौसेना के कारण मराठा ब्रिटिश, पुर्तगाली और डचों के खिलाफ अपनी पकड़ बना सके। शिवाजी ने एक सुरक्षित तटरेखा के मूल्य और सिद्दी के नौसैनिक हमलों से पश्चिमी कोंकण तटरेखा की रक्षा करने की आवश्यकता को समझा।

5. नौसैनिक अड्डों पर

शिवाजी के नौसैनिक अड्डे, जैसे कि सिंधुदुर्ग का रणनीतिक रूप से स्थित किला, रक्षात्मक गढ़ और आक्रामक प्रक्षेपण बिंदु दोनों के रूप में कार्य करते थे। इन किलेबंदी ने सुनिश्चित किया कि उनकी नौसेना प्रभावी ढंग से काम कर सके और प्रमुख समुद्री मार्गों पर नियंत्रण बनाए रख सके।" शिवाजी ने मराठों की एक सेना बनाई जहाँ कई सैनिकों को साल भर उनकी सेवाओं के लिए भुगतान किया जाता था। इससे पहले मराठों के पास अपनी कोई सेना नहीं थी। मराठा सेना कई इकाइयों में विभाजित थी और प्रत्येक इकाई में 25 सैनिक थे। सेना में हिंदू और मुस्लिम दोनों को बिना किसी भेदभाव के नियुक्त किया गया। शिवाजी ने 2,000 लोगों की सेना को 10,000 सैनिकों में

बदल दिया था। उन्होंने कभी भी अपने सैनिकों को इसके लिए शहीद होने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि एक कदम पीछे हटकर फिर से संगठित हो गए। इससे उन्हें लड़ाई जीतने में मदद मिली, भले ही उनकी संख्या कम थी।

इससे न केवल उनके बेड़े में सुधार हुआ बल्कि आमतौर पर वंचित आबादी के कल्याण और मुख्यधारा के समाज में आत्मसात होने की गारंटी भी मिली। प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार एक निष्पक्ष और समान समाज की दिशा में शिवाजी महाराज के प्रयासों पर जोर देते हैं। सरकार का तर्क है कि सामाजिक न्याय और समावेशिता को आगे बढ़ाने के संदर्भ में, शिवाजी की पहल अपने समय से आगे थी। उनकी सरकार हर विषय के कल्याण के प्रति समर्पण से प्रतिष्ठित थी, इसलिए उन्होंने अपने देश के भीतर वफादारी और एकजुटता को बढ़ावा दिया। शिवाजी की रचनात्मक और न्यायसंगत आय संरचना पर टिप्पणी करते हुए, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गॉर्डन जॉनसन ने कहा कि इसने किसानों के बोझ को कैसे कम किया और कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित किया।
जॉनसन का तर्क है कि इन कानूनों द्वारा बड़े पैमाने पर एक स्थिर और निष्पक्ष समाज का निर्माण किया गया था। टेक्सास विश्वविद्यालय के सुमित गुहा कहते हैं कि शिवाजी महाराज योग्यता और सामाजिक कल्याण पर कितना जोर देते हैं। गुहा का कहना है कि शिवाजी की समावेशी नीतियों और सामाजिक न्याय पर जोर देने से बड़े पैमाने पर एक सौहार्दपूर्ण और समर्पित समुदाय का निर्माण हुआ। इन कानूनों ने गारंटी दी कि सभी पृष्ठभूमियों के प्रत्येक विषय को न्यायसंगत उपचार मिले और राज्य को फलने-फूलने में मदद करने का मौका मिले। मराठी बुद्धिजीवी सामाजिक न्याय के प्रति शिवाजी महाराज के दृष्टिकोण का व्यावहारिक विश्लेषण भी प्रदान करते हैं। विद्वान और इतिहासकार वी.एस. बेंद्रे बताते हैं कि समग्रता और समानता पर केंद्रित शिवाजी के विचार कितने क्रांतिकारी थे। बेंद्रे शिवाजी की प्रभावी सरकार के मुख्य तत्वों के रूप में वंचित क्षेत्रों को शामिल करने और सामाजिक कल्याण को आगे बढ़ाने के प्रयासों पर जोर देते हैं। एक अन्य मराठी इतिहासकार, बाबासाहेब पुरंदरे, रेखांकित करते हैं कि कैसे शिवाजी महाराज के न्यायसंगत कराधान तरीकों ने सामाजिक कल्याण और कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की। पुरंदरे का तर्क है कि सामाजिक न्याय और कल्याण के प्रति शिवाजी के समर्पण ने एक मजबूत, समावेशी समाज का निर्माण किया जो अब समकालीन सरकार के लिए एक टेम्पलेट के रूप में काम कर रहा है। ये दृष्टिकोण और मामले के उदाहरण छत्रपति शिवाजी महाराज के कल्याण और सामाजिक न्याय पर जोर की प्रासंगिकता को दर्शाते हैं। उनके समावेशी विचारों और रचनात्मक सरकार शैली ने न केवल उनके देश को बेहतर बनाया बल्कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के उद्देश्य से आधुनिक पहल के लिए व्यावहारिक सबक भी प्रदान किया।

आर्थिक नीतियां और आत्मनिर्भरता: एक सतत अर्थव्यवस्था का निर्माण

छत्रपति शिवाजी महाराज की आर्थिक नीतियां एक स्थिर और आत्मनिर्भर राज्य के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण थीं। आर्थिक प्रबंधन और संसाधन उपयोग के प्रति उनके दृष्टिकोण ने न केवल उनके क्षेत्र की समृद्धि सुनिश्चित की, बल्कि टिकाऊ आर्थिक प्रथाओं के लिए आधार भी तैयार किया। शिवाजी महाराज के आर्थिक दृष्टिकोण को आत्मनिर्भरता और संसाधन उपयोग पर जोर द्वारा परिभाषित किया गया था। उनके प्राथमिक लक्ष्यों में से एक एक सुव्यवस्थित राजस्व संरचना का निर्माण था जो निष्पक्ष करों और प्रभावी संसाधन प्रबंधन को प्राथमिकता देता था। शिवाजी ने

कर संग्रहण की एक ऐसी प्रणाली बनाई जो न केवल समतावादी थी बल्कि इसका उद्देश्य कृषि उत्पादकता और आर्थिक स्थिरता को बढ़ाना भी था। शिवाजी महाराज की आर्थिक नीति को दर्शाने वाला एक उल्लेखनीय केस अध्ययन कोंकण क्षेत्र के मसाला व्यापार पर उनका नियंत्रण है। कोंकण तट अपने मसाला उत्पादन और समुद्री वाणिज्य के कारण एक महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र था। शिवाजी महाराज ने बंदरगाहों का एक नेटवर्क विकसित किया और वाणिज्यिक चैनलों के विकास का समर्थन किया, जिससे मसालों और अन्य उत्पादों के प्रभावी निर्यात की अनुमति मिली। व्यापार और संसाधनों के इस स्मार्ट प्रबंधन के कारण राज्य की अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ और इसकी आत्मनिर्भरता सुरक्षित हुई। प्रसिद्ध विद्वान जदुनाथ सरकार, शिवाजी महाराज की कर रणनीति की प्रभावशीलता को दर्शाते हैं। सरकार का कहना है कि संग्रहण के प्रति शिवाजी का दृष्टिकोण अपने समय के लिए नया था, वे राज्य की जरूरतों को लोगों की सुविधा के साथ जोड़ने की कोशिश करते थे। उनका तर्क है कि शिवाजी की कर प्रणाली राज्य के अंदर आर्थिक सुरक्षा और विकास सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण थी।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गॉर्डन जॉनसन ने शिवाजी महाराज के आर्थिक आत्मनिर्भरता पर ध्यान केंद्रित करने पर जोर दिया। जॉनसन बताते हैं कि स्थानीय व्यवसायों और व्यापार नेटवर्क के निर्माण के शिवाजी के प्रयासों ने उनके राज्य की आर्थिक सुरक्षा में काफी योगदान दिया, जिससे इसे विदेशी चुनौतियों के बावजूद सफल होने में मदद मिली। टेक्सास विश्वविद्यालय के सुमित गुहा शिवाजी महाराज की आर्थिक नीति के व्यापक प्रभावों पर जोर देते हैं। गुहा का मानना है कि शिवाजी का आत्मनिर्भरता और संसाधन प्रबंधन पर ध्यान उनके राज्य की दीर्घायु में एक महत्वपूर्ण घटक था। वह इस बात पर जोर देते हैं कि शिवाजी की आर्थिक नीतियों ने सरकारी मांगों को अपनी आबादी की संपत्ति के साथ जोड़ने के लिए एक प्रतिमान स्थापित किया, जो वर्तमान आर्थिक प्रथाओं पर लागू होता है। मराठी विशेषज्ञ शिवाजी महाराज की आर्थिक नीति पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण देते हैं।

इतिहासकार वी.एस. बेंद्रे कर संग्रहण और आर्थिक प्रशासन के प्रति शिवाजी के अनूठे दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हैं। बेंद्रे दर्शाते हैं कि कैसे शिवाजी की नीतियों का उद्देश्य राज्य की आर्थिक स्थिरता और उसके लोगों की भलाई दोनों में सहायता करना था। एक अन्य उल्लेखनीय मराठी इतिहासकार, बाबासाहेब पुरंदरे, विशेष रूप से कोंकण क्षेत्र में व्यापार और संसाधन कनेक्शन विकसित करने में शिवाजी महाराज की उपलब्धि पर जोर देते हैं। पुरंदरे का मानना है कि आत्मनिर्भर और समृद्ध राज्य बनाने में शिवाजी की आर्थिक रणनीति महत्वपूर्ण थी। ये विशेषज्ञ मूल्यांकन और केस अध्ययन छत्रपति शिवाजी महाराज के आर्थिक प्रयासों की प्रभावशीलता को दर्शाते हैं। आत्मनिर्भरता, निष्पक्ष कराधान और संसाधन दक्षता पर उनके जोर ने उनके राज्य की दीर्घकालिक वृद्धि और स्थिरता में सहायता की, जो आधुनिक आर्थिक प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण सबक प्रस्तुत करता है।

राजस्व व्यवस्था

शिवाजी के अधीन राजस्व प्रणाली व्यवस्थित थी और इसका उद्देश्य किसानों पर बोझ कम करना था। उन्होंने प्रजा पर अधिक कर लगाए बिना राज्य के लिए एक स्थिर आय सुनिश्चित करने के लिए "चौथ" (राजस्व का 25%) और "सरदेशमुखी" (राजस्व का अतिरिक्त 10%) प्रणाली शुरू की। "शिवाजी महाराज का जीवन: मराठा साम्राज्य के संस्थापक" एन.एस. द्वारा इनामदार, शिवाजी की राजस्व प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करते हुए:

1. राजस्व प्रणाली के सिद्धांतों

शिवाजी की राजस्व प्रणाली किसानों के कल्याण को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। वह न्यायसंगत कराधान में विश्वास करते थे और यह सुनिश्चित करते थे कि किसानों पर बोझ डाले बिना कर निष्पक्ष रूप से एकत्र किए जाएं।

2. चौथ और सरदेशमुखी के प्रारम्भ

अपने प्रशासन और सैन्य खर्चों को बनाए रखने के लिए, शिवाजी ने चौथ और सरदेशमुखी करों की शुरुआत की। चौथ उनके नियंत्रण में भूमि के राजस्व या उपज पर 25% की लेवी थी, जबकि सरदेशमुखी अतिरिक्त 10% शुल्क था।

3. भूमि मूल्यांकन एवं राजस्व संग्रहण

राजस्व अधिकारियों ने मिट्टी की उत्पादकता और अपेक्षित उपज निर्धारित करने के लिए विस्तृत भूमि मूल्यांकन किया। इस डेटा-संचालित दृष्टिकोण ने उचित कर दरें निर्धारित करने और यह सुनिश्चित करने में मदद की कि राज्य का खजाना पर्याप्त रूप से भरा रहे।

4. राजस्व प्रणाली पर विशिष्ट डेटा

शिवाजी के राजस्व सुधारों में कृषि भूमि का विस्तृत सर्वेक्षण और माप शामिल था जिसे 'रैयतवारी' प्रणाली के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक ग्राम प्रधान, या पाटिल, भूमि जोत और उत्पादन के सटीक रिकॉर्ड बनाए रखने के लिए जिम्मेदार थे।

5. शोषण से सुरक्षा

किसानों को शोषण से बचाने के लिए, शिवाजी ने 'कारकुन्स' नाम से जाने जाने वाले अधिकारियों को नियुक्त किया, जिन्हें राजस्व संग्रह प्रक्रिया की देखरेख करने और यह सुनिश्चित करने का काम सौंपा गया था कि किसानों पर कोई अनुचित दबाव न डाला जाए।

सामाजिक न्याय और कल्याण: एक समावेशी समाज का निर्माण

छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा व्यक्त स्वराज्य की विचारधारा दृढ़ता से कल्याण और सामाजिक न्याय विचारों पर आधारित थी। प्रशासन के बारे में उनका दृष्टिकोण एक समावेशी समाज का निर्माण करना चाहता था जिसमें हर विषय - उनके धर्म, जाति या वर्ग स्तर से - के साथ उचित और सम्मानजनक व्यवहार किया जाता था। शिवाजी महाराज की नीतियां वंचितों को ऊपर उठाने और अपने लोगों के कल्याण की गारंटी देने के लिए थीं, इसलिए उनके देश के भीतर सामाजिक शांति और वफादारी को बढ़ावा देना था। सामाजिक न्याय के प्रति शिवाजी महाराज का दृष्टिकोण काफी हद तक समावेशी प्रशासनिक प्रक्रियाओं पर आधारित था। समावेशिता और एकजुटता को बढ़ावा देने के लिए, उन्होंने व्यक्तियों को उनकी जाति या विश्वास के बजाय उनके कौशल और गुणों के आधार पर नामांकित किया। उदाहरण के लिए, उन्होंने सिद्दीहिलाल जैसे मुस्लिम अधिकारियों को महत्वपूर्ण सैन्य पदों पर नियुक्त करके योग्यता और समावेशिता के प्रति अपना समर्पण दिखाया। उनकी सरकार ने महिलाओं के कल्याण, उनकी सुरक्षा और उनके अधिकारों के सम्मान की गारंटी पर भी ध्यान केंद्रित किया। सामाजिक न्याय के प्रति शिवाजी महाराज

के समर्पण को दर्शाने वाला एक प्रमुख केस अध्ययन कोली लोगों का उत्थान है। शिवाजी की नौसेना ने वंचित मछुआरा समुदाय कोली को महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ दीं। उनकी समुद्री विशेषज्ञता को समझते हुए, शिवाजी महाराज ने उन्हें नौसेना बलों में शामिल किया, जिससे उन्हें काम, सम्मान और समुदाय की भावना मिली।

इससे न केवल उनके बेड़े में सुधार हुआ बल्कि आमतौर पर वंचित आबादी के कल्याण और मुख्यधारा के समाज में आत्मसात होने की गारंटी भी मिली। प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार एक निष्पक्ष और समान समाज की दिशा में शिवाजी महाराज के प्रयासों पर जोर देते हैं। सरकार का तर्क है कि सामाजिक न्याय और समावेशिता को आगे बढ़ाने के संदर्भ में, शिवाजी की पहल अपने समय से आगे थी। उनकी सरकार हर विषय के कल्याण के प्रति समर्पण से प्रतिष्ठित थी, इसलिए उन्होंने अपने देश के भीतर वफादारी और एकजुटता को बढ़ावा दिया। शिवाजी की रचनात्मक और न्यायसंगत आय संरचना पर टिप्पणी करते हुए, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गॉर्डन जॉनसन ने कहा कि इसने किसानों के बोझ को कैसे कम किया और कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित किया। जॉनसन का तर्क है कि इन कानूनों द्वारा बड़े पैमाने पर एक स्थिर और निष्पक्ष समाज का निर्माण किया गया था।

टेक्सास विश्वविद्यालय के सुमित गुहा कहते हैं कि शिवाजी महाराज योग्यता और सामाजिक कल्याण पर कितना जोर देते हैं। गुहा का कहना है कि शिवाजी की समावेशी नीतियों और सामाजिक न्याय पर जोर देने से बड़े पैमाने पर एक सौहार्दपूर्ण और समर्पित समुदाय का निर्माण हुआ। इन कानूनों ने गारंटी दी कि सभी पृष्ठभूमियों के प्रत्येक विषय को न्यायसंगत उपचार मिले और राज्य को फलने-फूलने में मदद करने का मौका मिले। मराठी बुद्धिजीवी सामाजिक न्याय के प्रति शिवाजी महाराज के दृष्टिकोण का व्यावहारिक विश्लेषण भी प्रदान करते हैं। विद्वान और इतिहासकार वी.एस. बेंद्रे बताते हैं कि समग्रता और समानता पर केंद्रित शिवाजी के विचार कितने क्रांतिकारी थे। बेंद्रे शिवाजी की प्रभावी सरकार के मुख्य तत्वों के रूप में वंचित क्षेत्रों को शामिल करने और सामाजिक कल्याण को आगे बढ़ाने के प्रयासों पर जोर देते हैं। एक अन्य मराठी इतिहासकार, बाबासाहेब पुरंदरे, रेखांकित करते हैं कि कैसे शिवाजी महाराज के न्यायसंगत कराधान तरीकों ने सामाजिक कल्याण और कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की। पुरंदरे का तर्क है कि सामाजिक न्याय और कल्याण के प्रति शिवाजी के समर्पण ने एक मजबूत, समावेशी समाज का निर्माण किया जो अब समकालीन सरकार के लिए एक टेम्पलेट के रूप में काम कर रहा है। ये दृष्टिकोण और मामले के उदाहरण छत्रपति शिवाजी महाराज के कल्याण और सामाजिक न्याय पर जोर की प्रासंगिकता को दर्शाते हैं। उनके समावेशी विचारों और रचनात्मक सरकार शैली ने न केवल उनके देश को बेहतर बनाया बल्कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के उद्देश्य से आधुनिक पहल के लिए व्यावहारिक सबक भी प्रदान किया।

न्याय व्यवस्था

शिवाजी ने निष्पक्ष एवं कुशल न्याय व्यवस्था स्थापित की। उन्होंने कानून और व्यवस्था की निगरानी के लिए अधिकारियों को नियुक्त किया, यह सुनिश्चित करते हुए कि न्याय उनके सभी विषयों तक पहुंच योग्य था। वह शासन के प्रति अपने सख्त लेकिन निष्पक्ष दृष्टिकोण के लिए जाने जाते थे। जेम्स डब्ल्यू लेन द्वारा लिखित "शिवाजी: हिंदू किंग इन इस्लामिक इंडिया" जो शिवाजी के अधीन मराठों की न्यायिक प्रणाली को छूता है:

1. न्यायिक सिद्धांतों

शिवाजी का प्रशासन न्याय और निष्पक्षता की भावना से प्रतिष्ठित था। उन्होंने एक न्यायिक प्रणाली की स्थापना की जिसका उद्देश्य अपने विषयों के अधिकारों की रक्षा करना और यह सुनिश्चित करना था कि न्याय सभी के लिए सुलभ हो।

2. न्यायिक व्यवस्था की संरचना

शिवाजी के अधीन न्यायिक प्रणाली पदानुक्रमित थी, जिसमें ग्राम सभाएँ छोटे विवादों को संभालती थीं और उच्च न्यायालय अधिक गंभीर अपराधों से निपटते थे। यह संरचना कानूनी मामलों के कुशल और समय पर समाधान की अनुमति देती थी।

3. ग्राम सभाओं की भूमिका

ग्राम सभाओं, या 'पंचायतों' ने न्यायिक प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये स्थानीय निकाय छोटे-मोटे विवादों को निपटाने और अपने समुदायों के भीतर व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार थे।

4. उच्च न्यायालयों

अधिक गंभीर मामलों के लिए शिवाजी ने न्यायाधीशों की नियुक्ति की, जिन्हें 'न्यायाधीश' कहा जाता था। इन अधिकारियों को कानून की व्याख्या करने और न्याय और समानता के सिद्धांतों के अनुसार फैसले देने का काम सौंपा गया था।

मराठी और संस्कृत का प्रचार

जदुनाथ सरकार द्वारा लिखित "शिवाजी एंड हिज टाइम्स" में, शिवाजी द्वारा मराठी और संस्कृत को बढ़ावा देने को उनके सांस्कृतिक और प्रशासनिक सुधारों के एक अनिवार्य हिस्से के रूप में उजागर किया गया है।

1. मराठी का प्रचार

शिवाजी ने फ़ारसी की जगह, जो दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के शासन के दौरान प्रचलित थी, प्रशासन और शासन की भाषा के रूप में मराठी को सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया। इस कदम से मराठी भाषी आबादी के बीच स्थानीय पहचान और गौरव की भावना को बढ़ावा देने में मदद मिली। ।आधिकारिक पत्राचार और राज्य दस्तावेजों के लिए मराठी का उपयोग करके, शिवाजी ने यह सुनिश्चित किया कि उनकी प्रजा प्रशासन को अधिक प्रभावी ढंग से समझ सके और उससे जुड़ सके।

2. संस्कृत का प्रचार-प्रसार

संस्कृत, हिंदू धर्म की धार्मिक भाषा होने के नाते, शिवाजी द्वारा भी महत्व दिया गया था। उन्होंने संस्कृत विद्वानों को संरक्षण दिया और महत्वपूर्ण कार्यों के मराठी में अनुवाद को प्रोत्साहित किया, जिससे धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ आम लोगों के लिए अधिक सुलभ हो गए। शिवाजी का दरबार शिक्षा का केंद्र बन गया, जहां कविता, गद्य और विद्वतापूर्ण कार्यों की रचना के लिए संस्कृत और मराठी दोनों का उपयोग किया जाता था। इस द्विभाषी दृष्टिकोण ने उनके राज्य की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और बढ़ावा देने में मदद की।

3. शैक्षिक एवं साहित्यिक योगदान

शिवाजी ने मराठी और संस्कृत में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए स्कूलों और पुस्तकालयों की स्थापना की। इन संस्थानों ने स्थानीय प्रतिभाओं को पोषित करने और एक विद्वान समाज को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिवाजी के संरक्षण में, मराठी में कई साहित्यिक कृतियों का निर्माण किया गया, जिसमें उनके शासनकाल के इतिहास भी शामिल थे, जो उनकी उपलब्धियों का दस्तावेजीकरण और महिमामंडन करते थे।

सुराज मॉडल

सरकार और प्रशासन में नए विचार: शिवाजी महाराज का सुराज्य मॉडल क्रांतिकारी प्रशासन और शासन सुधारों में प्रकट हुआ जिसने एक कुशल और न्यायपूर्ण राज्य की नींव रखी। शिवाजी महाराज की सरकार संगठित होने और काम करने के नए तरीकों के साथ आने के लिए जानी जाती थी। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि उनके लोग खुश रहें और देश स्थिर रहे। विकेन्द्रीकृत प्रबंधन ढाँचा स्थापित करना सुराज योजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। शिवाजी महाराज ने अपने राज्य को प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित किया, जिन्हें "प्रांत" कहा जाता था, प्रत्येक का प्रबंधन विश्वसनीय अधिकारियों द्वारा किया जाता था जो केंद्रीय प्राधिकरण के प्रति जिम्मेदार थे। इस पद्धति ने सुनिश्चित किया कि सरकार अच्छा काम करे और धोखाधड़ी न्यूनतम रखे। शिवाजी महाराज ने धन लाने का एक सुव्यवस्थित तरीका भी स्थापित किया। उन्होंने सुनिश्चित किया कि कर उचित हों, जिससे किसानों का जीवन आसान हो गया और फसल की पैदावार में वृद्धि हुई। शिवाजी महाराज ने यह सुनिश्चित किया कि सख्त कानूनों का पालन किया जाए और रक्षा और प्रशासन के लिए किलों का एक नेटवर्क बनाया। इससे उसका राज्य अधिक सुरक्षित एवं स्थिर हो गया। उन्होंने क्षमता के आधार पर निर्णयों को प्रोत्साहित किया और एक पेशेवर सेना रखी, जो उनके देश को सुरक्षित रखने और इसे विकसित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी।

प्रसिद्ध विद्वान जदुनाथ सरकार का कहना है कि शिवाजी महाराज एक महान प्रशासक थे क्योंकि वह एक मजबूत सरकारी प्रणाली स्थापित करने में सक्षम थे जिसने केंद्रीय शक्ति को स्थानीय स्वतंत्रता के साथ जोड़ा था। सरकार का कहना है कि इस पद्धति ने उन लोगों के बीच विश्वास को बढ़ावा दिया जिन्होंने इसके लिए काम किया और संसाधनों का अच्छा उपयोग किया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गॉर्डन जॉनसन ने शिवाजी की नवीन आय प्रणाली पर प्रकाश डाला, यह देखते हुए कि उनकी नीतियों ने राज्य के भीतर वित्तीय स्थिरता और आर्थिक विकास को बनाए रखा। टेक्सास विश्वविद्यालय के सुमित गुहा बताते हैं कि शिवाजी महाराज ने समानता और सेना को अधिक पेशेवर बनाने पर बहुत जोर दिया, जिससे उनकी सरकार को अच्छी तरह से और कुशलता से काम करने में मदद मिली। मराठी विद्वान शिवाजी महाराज की सरकार शैली में भी उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

इतिहासकार और विद्वान वी.एस. बेंद्रे कहते हैं कि विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वशासन पर शिवाजी का ध्यान उनके समय के लिए नया था, और ये विचार आधुनिक शासन के लिए महत्वपूर्ण बने हुए हैं। एक अन्य मराठी विद्वान, रंजीत देसाई, शिवाजी महाराज की निष्पक्ष कराधान नीतियों और कृषि उत्पादन और सामाजिक कल्याण पर उनके

सकारात्मक प्रभाव पर जोर देते हैं, यह दिखाते हुए कि कैसे उनका सरकारी मॉडल समकालीन प्रशासन परिवर्तनों को प्रेरित कर सकता है। ये विचार छत्रपति शिवाजी महाराज के सुराज मॉडल के महत्व और इसकी स्थायी प्रासंगिकता को दर्शाते हैं। उनकी रचनात्मक शासन और प्रबंधन प्रथाओं ने न केवल उनके देश को बेहतर बनाया बल्कि आधुनिक सरकार के लिए भी महत्वपूर्ण सबक दिए।

21वीं सदी में प्रासंगिकता छत्रपति शिवाजी महाराज की कालजयी नीतियां: आधुनिक शासन के लिए सबक

छत्रपति शिवाजी महाराज के शासन को नई नीतियों द्वारा चिह्नित किया गया था, जिसने न केवल उनके देश की संपत्ति और सुरक्षा सुनिश्चित की, बल्कि आधुनिक सरकार के लिए मूल्यवान सबक भी प्रदान किए। उनकी विकेंद्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली, जिसने राज्य को "प्रांत" नामक संभावित समूहों में विभाजित किया, ने स्थानीय सरकार और जिम्मेदारी की अनुमति दी, जिससे अधिक त्वरित और प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित हुआ। हस्तांतरण का यह रूप आज विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्थानीय प्राधिकरण का समर्थन करता है और प्रशासन की दक्षता में सुधार करता है। योग्यता-आधारित निर्णयों के प्रति शिवाजी महाराज का समर्पण उनकी सरकार की एक और विशेषता थी। लोगों को उनकी जाति या धर्म के बजाय उनके कौशल और क्षमताओं के आधार पर प्रमुख भूमिकाओं के लिए चुनकर, उन्होंने समावेशन और दक्षता की एक प्रणाली बनाई। यह रणनीति आधुनिक संगठनों और राज्यों के लिए महत्वपूर्ण है जो समानता के माध्यम से न्याय और सफलता में सुधार करने की कोशिश कर रहे हैं। शिवाजी महाराज द्वारा अपनाई गई उचित आय प्रणाली ने राज्य की वित्तीय जरूरतों को लोगों की सुविधा के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उनके उपायों ने किसानों पर कर का बोझ कम किया और कृषि उत्पादन को बढ़ावा दिया, जिससे आर्थिक सुरक्षा बढ़ी। सतत विकास और सामाजिक न्याय की तलाश कर रही आधुनिक सरकारों के लिए उचित करों और आर्थिक सुरक्षा पर यह ध्यान महत्वपूर्ण बना हुआ है। शिवाजी महाराज ने स्थानीय संस्कृति और भाषा के विकास में भी बड़ी प्रगति की। सरकार में मराठी का उपयोग करके और स्थानीय कला और साहित्य को बढ़ावा देकर, उन्होंने क्षेत्रीय पहचान और गौरव को मजबूत किया। यह सांस्कृतिक विपणन आज महत्वपूर्ण है क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देता है और सांस्कृतिक विविधता का स्वागत करता है। इसके अतिरिक्त, शिवाजी महाराज द्वारा संरचनाओं के स्मार्ट उपयोग और भूमिगत युद्ध जैसी नई सैन्य रणनीति ने उनके राज्य की रक्षा शक्तियों में सुधार किया। लचीले और स्मार्ट रक्षा उपायों पर उनका ध्यान वर्तमान सुरक्षा रणनीतियों के लिए महत्वपूर्ण सबक प्रदान करता है। आर्थिक आत्मनिर्भरता शिवाजी महाराज के कार्यक्रमों का एक और महत्वपूर्ण हिस्सा था।

स्थानीय व्यवसायों और व्यापार नेटवर्क का निर्माण करके, उन्होंने विदेशी संसाधनों पर निर्भरता कम की और आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित की। यह पद्धति आज तेजी से महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि राष्ट्र वैश्विक जोखिमों के बीच मजबूत अर्थव्यवस्था बनाना चाहते हैं। शिवाजी महाराज के सामाजिक कार्यक्रम, जिनका उद्देश्य गरीबों और बहिष्कृत समूहों की मदद करना था, उनकी सरकार का अभिन्न अंग थे। ये कार्यक्रम, जिनमें महिलाओं और अन्य कमजोर समूहों के लिए सुरक्षा शामिल है, समानता और जीवन की बेहतर गुणवत्ता को बढ़ावा देने में सामाजिक सहायता के महत्व को दर्शाते हैं। इन्फ्रास्ट्रक्चर विकास भी शिवाजी महाराज की व्यावसायिक योजना का एक प्रमुख

घटक था। सड़कों और सिंचाई प्रणालियों में उनके निवेश से कृषि उत्पादन और व्यापार में सुधार हुआ, जिससे आर्थिक विकास और सामाजिक कामकाज के लिए बुनियादी ढांचे का महत्व रेखांकित हुआ। स्थायी भूमि उपयोग विधियों और जल प्रबंधन सहित पर्यावरण देखभाल के प्रति शिवाजी महाराज का समर्पण, संसाधन प्रबंधन के लिए एक दूरदर्शी दृष्टिकोण को दर्शाता है। पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए ये तकनीकें आज महत्वपूर्ण हैं। अंततः, शिवाजी महाराज के कूटनीतिक प्रयास और रणनीतिक साझेदारियाँ उनके राज्य की रक्षा करने और उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण थीं। कूटनीति और साझेदारी का उनका तरीका अंतरराष्ट्रीय संबंधों को संभालने और आधुनिक वैश्विक दुनिया में राष्ट्रीय सुरक्षा में सुधार के लिए प्रासंगिक बना हुआ है। 17वीं सदी में छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वराज (स्व-शासन) और सुराज (सुशासन) की अवधारणाएं 21वीं सदी में महत्वपूर्ण प्रासंगिकता रखती हैं।

1.विकेंद्रीकरण और स्थानीय शासन

स्थानीय इकाइयों (सुभास और परगना) में सत्ता के विकेंद्रीकरण का शिवाजी का मॉडल यह सुनिश्चित करता है कि शासन लोगों के करीब है। यह दृष्टिकोण दक्षता, जवाबदेही और जवाबदेही को बढ़ाता है। भारत में स्थानीय स्वशासन (पंचायती राज संस्थाओं) की स्थापना के माध्यम से विकेंद्रीकरण के सिद्धांत समकालीन शासन में प्रतिध्वनित होते हैं। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन ने स्थानीय निकायों को स्थानीय मामलों पर निर्णय लेने का अधिकार दिया है। डेटा: पंचायती राज मंत्रालय के अनुसार, आज भारत में 250,000 से अधिक पंचायतें हैं, जो महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। जमीनी स्तर के लोकतंत्र और स्थानीय विकास में

2. स्थानीय समुदायों का सशक्तिकरण

शिवाजी के स्वराज ने स्थानीय समुदायों के सशक्तिकरण और केंद्रीय प्राधिकरण पर निर्भरता कम करने पर जोर दिया। यह मॉडल सामुदायिक भागीदारी और स्वामित्व को बढ़ावा देता है। समुदाय-संचालित विकास (सीडीडी) परियोजनाएं आज लोकप्रिय हैं, जहां स्थानीय समुदाय परियोजनाओं की योजना बनाते हैं, लागू करते हैं और प्रबंधन करते हैं। विश्व बैंक गरीबी उन्मूलन और सतत विकास के लिए एक प्रमुख रणनीति के रूप में सीडीडी का समर्थन करता है.

3. पारदर्शी एवं जवाबदेह प्रशासन

शिवाजी का प्रशासन अपनी पारदर्शिता और जवाबदेही के लिए जाना जाता था। अधिकारियों पर कड़ी निगरानी रखी गई और भ्रष्टाचार से सख्ती से निपटा गया। आज, सुशासन प्रथाएं पारदर्शिता और जवाबदेही पर जोर देती हैं। डिजिटल इंडिया अभियान जैसी ई-गवर्नेंस पहल का उद्देश्य सरकारी सेवाओं को अधिक सुलभ बनाना, भ्रष्टाचार को कम करना और पारदर्शिता को बढ़ाना है। डेटा: 2020 तक, भारत सरकार ने बताया कि 2.3 बिलियन से अधिक डिजिटल लेनदेन ई-गवर्नेंस प्लेटफॉर्म, सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली (पीएफएमएस) के माध्यम से किए गए थे।

4. कल्याण-उन्मुख नीतियां

शिवाजी का सुराज मॉडल उनकी प्रजा के कल्याण पर केंद्रित था। उनकी नीतियों का उद्देश्य न्याय सुनिश्चित करना, कर का बोझ कम करना और आपदाओं के दौरान राहत प्रदान करना था। कल्याण-उन्मुख नीतियां समकालीन शासन

के केंद्र में हैं। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) जैसी योजनाएं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती हैं और ग्रामीण विकास को बढ़ावा देती हैं। मनरेगा, 2023 तक, 70 मिलियन से अधिक परिवारों को रोजगार देता है, जो कल्याण और रोजगार सृजन के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

शिवाजी महाराज द्वारा परिकल्पित स्वराज और सुराज के सिद्धांत 21वीं सदी में भी अत्यधिक प्रासंगिक बने हुए हैं। वे विकेंद्रीकृत शासन, सामुदायिक सशक्तिकरण, पारदर्शिता, जवाबदेही और कल्याण-उन्मुख नीतियों के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करते हैं। इन मॉडलों से प्रेरणा लेकर, समकालीन शासन सतत और समावेशी विकास को बढ़ावा देते हुए आज की चुनौतियों का समाधान कर सकता है।

छत्रपति शिवाजी महाराज की नीतियां और शासन मॉडल आधुनिक नेतृत्व और प्रशासन के लिए कालातीत सबक प्रदान करते हैं। विकेंद्रीकरण, योग्यता-आधारित नियुक्तियाँ, निष्पक्ष कराधान, सांस्कृतिक प्रचार और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए उनके अभिनव दृष्टिकोण समकालीन शासन के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। सामाजिक न्याय, कल्याण और प्रभावी सैन्य रणनीतियों पर शिवाजी महाराज का जोर उनके दूरदर्शी नेतृत्व को और अधिक रेखांकित करता है। इन ऐतिहासिक सिद्धांतों का अध्ययन और कार्यान्वयन करके, आधुनिक सरकारें वर्तमान चुनौतियों से निपटने और अधिक न्यायसंगत और समृद्ध समाज का निर्माण करने के लिए शिवाजी महाराज की विरासत से प्रेरणा ले सकती हैं।

संदर्भ सूची

1. Bendre, V. S. (1987). Shivaji Maharaj: Cultural Icon of Maharashtra. Lok vangmay Gruha.

2. Chandra, Satish. (1997). Medieval India: From Sultanat to the Mughals. Har-Anand Publications.

3. Desai, Ranjit. (1961). Shriman Yogi. Mehta Publishing House.

4. Guha, Sumit. (2004). Culture and Power in Pre-colonial India: Perspectives on Shivaji Maharaj. Oxford University Press.

5. Haig, W. (1930). THE MARATHA NATION. *Journal of the Royal Society of Arts*, *78*(4049), 870–884. http://www.jstor.org/stable/41358538

6. Jayaswal, K. P. (1922). HINDU POLITY: A Constitutional History of India in Hindu Times, L.G. Publishers Distributors, India. (originally published :1924)

7. Johnson, Gordon. (1993). Maratha Empire and Cultural Revival. Cambridge University Press.

8. Pearson, M. N. (1976). Shivaji and the Decline of the Mughal Empire. *The Journal of Asian Studies*, *35*(2), 221–235. https://doi.org/10.2307/2053980

9. Purandare, Babasaheb. (1997). *Raja Shivachatrapati*. Purandare Prakashan.

10. Vartak, Malavika. (1999). Shivaji Maharaj: Growth of a Symbol. *Economic and Political Weekly*, *34*(19), 1126–1134. http://www.jstor.org/stable/4407933

34

नई शिक्षा नीति में गाँधी जी का प्रभाव

डॉ. अनिल कुमार सिंह

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य पर बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की चर्चा के बिना नहीं जा सकती, चाहे उनका समर्थन किया जाए या विरोध चर्चा के केन्द्र में वे रहेंगे अवश्य, उसी प्रकार अपने देश में हम चाहे धर्म, राजनीति समाज या शिक्षा किसी भी विषय पर बात करें, गाँधी जी की चर्चा अनिवार्यतः करनी ही पड़ती है। जब हम दुनिया के बड़े दार्शनिकों की चर्चा करते है तो उस सूची में गाँधी हमें मौजूद दिखते हैं। शायद यही कारण हैं कि गाँधी जी की मृत्यु के 72 वर्ष बाद यानी 2020 में भारत में 'नई शिक्षा नीति' बनती है, तब उसमें भी गाँधी जी के विचारों की स्पष्ट छाप हमें दिखाई पड़ती है, जो इस बात को सही साबित करती हैं, कि दुनिया में महात्मा गाँधी सिर्फ एक व्यक्ति के तौर पर ही अवतरित नहीं हुए बल्कि यह एक विचार जो कभी नहीं मरता है। बल्कि इसके विपरीत, मैं कहूँ तो बीतते हुए समय के साथ वह विचार और पुष्ट ही हो गया है, यही कारण है कि आज सैद्धान्तिक रूप से गाँधी का विरोध करने वाले भी आज उनके बताए गए मार्गों पर चलने में अपने को गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं।

शिक्षा पर गाँधी जी के विचार एकदम स्पष्ट थे। अपने 75वें जन्मदिन के मौके 2 अक्टूबर 1944 को एक अभिभाषण में उन्होंने कहा था - "शिक्षा को केवल स्कूलों तक सीमित करना ठीक नहीं है। वह आजीवन चलने वाली चीज है जो "जन्म से लेकर मृत्यु तक" रोजमर्रा जिन्दगी के हर पहलू से जुड़ी होनी चाहिए जिससे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपने गाँव और क्रमशः देश और विश्व का बेहतर नागरिक बनने का मौका मिले। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि व्यक्ति के मानसिक क्षितिज का विस्तार हो; वह अपनत्व की भावना का संचार करे ताकि मनुष्य संकीर्ण मानसिकता और मान्यताओं से ऊपर उठकर अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक विद्वेष और संदेह को त्याग सके।"[1] गाँधी जी ने अंग्रेजों की औपचारिक स्कूली शिक्षा का हमेशा ही विरोध किया, उनका स्पष्ट मानना था कि इस प्रकार की शिक्षा भारत जैसे गरीब देश के लिए उपयुक्त नहीं है, इससे सिर्फ कुछ अमीर बच्चों को ही लाभ मिलेगा। इसलिए उन्होंने प्रारम्भ से अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति का विरोध जारी रखा।

1857 के बाद जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने देश की बागडोर अपने हाथ में ले ली, तब उसने अपने शासन को थोपने के लिए 3-C-काउंसिल, कोर्ट, कॉलेज को हथियार बनाया जिसका विरोध गाँधी ने 1920 से प्रारम्भ कर दिया और इसके जवाब में उन्होंने 3-H-HAND, HEAD, HEART का समर्थन किया और शिक्षा में इसी 3-H के फार्मूले को लागू करने का समर्थन किया। गाँधी जी ने 31 जुलाई 1937 के 'हरिजन' के अपने ऐतिहासिक लेख

में लिखा था - "शिक्षा से मेरा मतलब बच्चों के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के सर्वश्रेष्ठ आयामों को सामने लाकर उसका विकास करना है। साक्षरता न तो शिक्षा की शुरुआत है, न उसका अंत है। यह सिर्फ एक साधन है जिससे लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं किसी बच्चे को शिक्षा देने की शुरुआत किसी उपयोगी हस्तकौशल से करूँगा ताकि वह प्रशिक्षण शुरू करने के क्षण से ही उत्पादन में योगदान देने लगे। इस तरह हरेक स्कूल को स्वावलंबी बनाया जा सकता है, शर्त यह है कि इन स्कूलों में जो उत्पादन होगा उसका जिम्मा राज्य को संभालना होगा।"[3]

गाँधी जी जिस बुनियादी शिक्षा पर जोर दे रहे थे, वह कोई व्यवसायिक शिक्षा यानी 'वोकेशनल एजुकेशन' नहीं थी बल्कि हिन्दुस्तान में जो उत्पादन की जो पद्धति, शैली, कारीगरी प्रचलित थी उसी को बेहतर तरीके से विकसित करने की बात कर रहे थे। वे 'ज्ञान की दुनिया' और 'काम की दुनिया' के बीच एक रिश्ता स्थापित करना चाहते थे, जिस पर तत्कालीन बुद्धिजीवियों ने बहुत सवाल भी खड़े किए कि गाँधी जी की इस नीति से विद्यालय 'बाल श्रम का केन्द्र' बनकर रह जायेंगे। ऐसे सारे सवालों का उत्तर गाँधी जी 1937 में 'हरिजन' के कई अंकों में देते रहे। "1937 के वर्धा सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ। इस समिति ने आठ साल की बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम का एक दस्तावेज पेश किया, जिसमें किस प्रकार से इन सिद्धान्तों को पाठ्यक्रम में अपनाया जा सकता है, इसका नजरिया प्रस्तुत किया।"[4]

परन्तु आजादी के बाद बड़े भूपत्तियों और उद्योगपतियों के दवाब में गाँधी द्वारा अपनायी गई बुनियादी शिक्षा नीति को लागू नहीं किया गया, क्योंकि उन्हें इस बात का डर सताने लगा कि अगर यह नीति लागू कर दी गई, तो विद्यालयों में शिक्षक बनने के लिए बी.एड. की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी, बल्कि गाँव का सुनार, लोहार, बढ़ई, बुनकर, चर्मकार, मैकेनिक आदि विद्यालयों में शिक्षक की भूमिका में आ जायेंगे। 1966 में पहले शिक्षा आयोग जिसे 'कोठारी आयोग' कहा गया कि रिर्पोट आई जिसमें गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा को पूरी तरह अस्वीकार किया गया, उसमें से सिर्फ 'कार्यानुभव' (वर्क एक्सपीरियंस) को स्वीकार किया गया। इसे भी सोवियत रूस के दबाव में स्वीकारने का आरोप लगा था।

"कोठारी आयोग" ने सिफारिश की थी, 'कॉमन स्कूल सिस्टम' या 'समान स्कूल व्यवस्था' की। यह साठ के दशक की शब्दावली है और उस समय अपने-आप में एक क्रांतिकारी विचार के रूप में सामने आई थी। कोठारी आयोग ने कहा है कि जब तक हिन्दुस्तान में ऐसी स्कूल प्रणाली स्थापित नहीं होगी जिसके जरिए हर बच्चे को चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र या लिंग का हो, समान गुणवत्ता वाली शिक्षा दी जा सके, तब तक हिन्दुस्तान में सौहार्द्र और बराबरी का रिश्ता स्थापित नहीं हो पाएगा।"[5] कोठारी आयोग को यह सिफारिश में गाँधी जी के विचारों की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है।

1986 में आई दूसरी शिक्षा नीति ने हर जिले में नवोदय विद्यालय बनाये जाने की घोषणा की, जिसमें ग्रामीण बच्चों को 12वीं तक की शिक्षा पूर्णतः मुक्त देने की बात कही गई आज यह विद्यालय भारत के लगभग 560 जिलों में सफलतापूर्वक संचालित हो रहे हैं। नवोदय विद्यालयों की यह रचना पूरी तरह से गाँधी जी के विचारों

से प्रभावित है।

अब बात करते हैं 2020 में आई शिक्षा नीति की जिसे ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति’ (NEP) कहा जा रहा है। अगर हम इस शिक्षा नीति की तुलना गाँधी जी के ‘नई तालीम’ से करे तो पाते हैं कि इस शिक्षा नीति पर गाँधी जी की तालीम का पूर्ण प्रभाव है। क्योंकि गाँधी जी में सिर्फ साक्षर होने के शिक्षा नहीं मानते थे, बल्कि कुछ हुनरमंद होना उनके लिए शिक्षा थी। नई तालीम भी प्रारंभिक मातृभाषा में देने की पक्षधर थी नई शिक्षा नीति भी, वहाँ भी कौशल विकास हेतु प्रशिक्षण की बात यहाँ भी है। ‘इक्स्ट्रा कैरीकूलर एक्टिविटी’ अब मुख्य विषय के तौर पर रहेगा ऐसा गाँधी जी का भी स्वप्न था। बच्चे किताबी ज्ञान से ज्यादा हस्तकौशल में प्रक्षिशित हों भारत जैसे गरीब देश के लिए यही उपयुक्त रहेगा ऐसा गाँधी जी का स्पष्ट तौर पर मानना था। नई शिक्षा नीति ने इसे अक्षरशः ही लागू कर दिया है। अगर मैं स्पष्ट शब्दों में अपनी बात कहूँ तो यह कहना होगा कि आजादी के बाद जितनी भी शिक्षा नीतियाँ बनी उसमें आंशिक रूप से गाँधी के नई तालीम का प्रभाव रहा परन्तु 2020 की ‘नई शिक्षा नीति’ बिल्कुल ही नई तालीम की छायाप्रति दिखाई पड़ती है। नई शिक्षा नीति 5वीं तक की शिक्षा मातृभाषा में करने की सिफारिश करती है। गाँधी जी ने भी मातृभाषा पर विशेष जोर दिया था “मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेशभक्त कहलाने के लायक नहीं।”[6]

गाँधी जी का शिक्षा मॉडल सामाजिक ताने-बाने पर आधारित था, इसलिए गाँधी जी ने बुनियादी शिक्षा की बात की जो छोटे और आत्मनिर्भर समुदायों से मिलकर बने समाज में आदर्श स्थापित कर सके, तथा समाज में रहने वाले व्यक्तियों को आत्मनिर्भर, स्वाभिमान, मेहनती और आदर्श नागरिक बनाने में कारगर साबित हो सके। गाँधी जी की नई तालिम परम्परागत शिक्षकों के स्वरूप और भूमिका को भी पूरी तरह बदल देने की समर्थक थी, जिसके अनुसार शिक्षक अब छात्रों के बीच सिर्फ पूर्व-निर्धारित पाठ्यक्रम की बात नहीं करेगा बल्कि वह छात्रों से सीधे संवाद करेगा, जिसमें छात्रों को खुलकर अपनी बात रखने का अवसर प्रदान करेगा, और उनके अनुभवों और जिज्ञासाओं से वह स्वयं भी सीखेगा। इस प्रकार शिक्षक आपने छात्रों को जितना सिखायेगा उतना ही उनसे सीखेगा भी, इस प्रकार शिक्षा लेने-देन की यह प्रक्रिया दोतरफा होगी, जिसमें शिक्षक को भी फायदा होगा और छात्र को भी। जो शिक्षक ऐसा करने में असफल रहेगा उसे गाँधी जी बेकार घोषित करते हैं, परन्तु इसके विपरित जो ऐसा करते हैं, वह सच्चा शिक्षक है अगर शिक्षक स्वयं को छात्र समझकर शिक्षण करेगा तो इसका लाभ छात्र और शिक्षक दोनों को होगा।

बाद के वर्षो में काका साहब कालेकर ने भी गाँधी जी के इस रूख का समर्थन अपनी रिर्पोट में किया। जिसमें उन्होंने लिखा - “आओ शिक्षा को कक्षा की चाहरदीवारी से मुक्त कराएं..... अपनी स्कूलिंग को कभी अपनी शिक्षा पर हावी न होने दें।” परन्तु आजादी के 75-76 वर्षो के बाद भी यह विचार लोगों के सिरे न चढ़ा आज भी लोग शिक्षा का अर्थ सिर्फ स्कूल से ही लगाते हैं। चाहे वो सरकार में बैठे लोग हों या सरकार के बाहर हर किसी के लिए शिक्षा का अर्थ सिर्फ स्कूल ही होता है इस विषय पर सभी पक्ष एक ही नजर आते हैं।

गाँधी जी के मित्र जमनालाल बजाज ‘वर्धा मारवाड़ी एजुकेशनल सोसाइटी’ के अध्यक्ष थे। इस सोसाइटी

के रजत जयंती समारोह में 22-23 अक्टूबर 1937 में निम्नलिखित प्रस्तावों का गाँधी जी ने समर्थन किया:

1. राष्ट्रव्यापी स्तर पर सात साल की मुक्त और और अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।
3. इस दौरान शिक्षा की प्रक्रिया किसी न किसी उत्पादक शारीरिक कार्य के इर्द-गिर्द केंद्रित होनी चाहिए तथा हर गतिविधि या प्रशिक्षण को जहाँ तक संभव हो, उस केन्द्रीय हस्तकौशल के साथ जोड़ा जाना चाहिए, जिसे बच्चे के वातावरण को ध्यान में रखकर चुना गया है ताकि इस हस्तकौशल से बनने वाले उत्पादों से शिक्षकों का खर्च निकाला जा सके।7

इन तमाम प्रस्तावों को 1938 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में स्वीकार कर लिया गया था। नई शिक्षा नीति को अगर हम देखते हैं तो पाते हैं कि 1937 में पारित इस प्रस्ताव की स्पष्ट छाप हमें उसमें दिखाई पड़ती है।

गाँधी जी का स्पष्ट मानना था कि जब तक स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार नही होगा, तब तक एक बेहतर समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता है, इसलिए उन्होंने इन दोनों को एक-दूसरे का पूरक माना और साथ ही यह भी कहा कि, किसी गाँव में एक क्लिनिक या एक स्कूल खोल देने भर से हम लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते, बल्कि यह हमारी प्रवृत्ति का हिस्सा बनना चाहिए तभी ही हमें सफलता मिलेगी। उन्होंने शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य सत्य की खोज माना और इसको स्पष्ट करने के लिए वे 'तैत्रेय उपनिषद्' में वर्णित एक प्रसंग का जिक्र किया करते थे, जिसमें एक साधक सत्य (ईश्वर) की खोज में निकलता है और उसे सबसे पहले भोजन में, फिर ज्ञान में और उसके बाद आनंद में सत्य के दर्शन होते हैं। कहने का आशय यह है कि सत्य की खोज समग्र मानवीय आवश्यकताओं यानी शरीर, मस्तिस्क और आत्मा की आवश्यकताओं को संतुष्टि में निहित है। गाँधी जी कई अवसरों पर कहते थे नई तालीम की शुरूआत स्वच्छता से होती है, यहाँ स्वास्थ और शिक्षा का पूरक संबंध स्पष्ट हो जाता है। लोक में भी एक कहावत है 'भूखे भजन न होत गोपाला' अर्थात् जब पेट खाली हो यानी भूख लगी हो तो भगवान के भजन जैसा पवित्र कार्य करना भी संभव नहीं है। तो फिर हम इस बात की उम्मीद भला कैसे कर सकते हैं कि कोई बालक भूखे पेट विद्यालय जाकर शिक्षा प्राप्त कर लेगा? इस समस्या की गंभीरता को ध्यान में रखकर ही स्कूलों में 'मिड डे मिल' की योजना प्रारम्भ की गई ताकि 'सत्य की खोज' के मार्ग में आने वाले पहले सत्य यानी 'भोजन' का ज्ञान तो छात्रों को प्राप्त हो ही जाये। हाँलाकि स्कूलों में भोजन देने की व्यवस्था यानी 'मिड डे मिल' की योजना भारत में 15 अगस्त 1995 को घोषित कर दी गई थी, जिसका क्रमशः विस्तार किया गया और 2008 तक आते-आते यह योजना पूरे देश के सभी सरकारी विद्यालयों में अनिवार्य रूप से लागू कर दी गई थी। कई प्रकार के सवाल उठाये जाने के बाद भी सरकार ने इसे कभी बंद करने की नहीं सोची क्योंकि सरकारों को इसकी अहमियत का पता था और यह योजना गाँधी जी के उस दूरदर्शी विचार या स्वप्न का ही परिणाम था।

लगातार चलते रहने के बाद इसको सकारात्मक परिणाम आने प्रारम्भ हुए और धीरे-धीरे स्कूलों में छात्रों

की संख्या बढ़ने लगी। देश पर आर्थिक बोझ बढ़ने के बाद भी नई शिक्षा नीति के सिफारिशों में इसे बंद करने की सलाह नहीं दी गई बल्कि इसे पूर्ववत जारी रखा गया। यह योजना आज भी विद्यालयों में अनवरत रुप से जारी है बल्कि इसके विपरीत देखें तो इसका विस्तार ही किया गया है एक नयी योजना 'प्रधानमंत्री मुफ्त अनाज योजना' स्कूलों के बाहर गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए प्रारम्भ कर दिया गया है, जिसका लाभ देश की 80 करोड़ जनता को मिल रहा है। अगर हम तुलनात्मक रूप से देखें तो यह भी शायद गाँधी जी के स्वप्न का ही विस्तार है जिसमें उन्होंने स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन की बात कही थी।

जहाँ तक शिक्षा में भाषा का सवाल है गाँधी जी इस बात के पूर्ण पक्षधर थे कि बच्चों को उनकी मातृभाषा में ही शिक्षा देनी चाहिए। गाँधी जी के इस विचार पर तब तरह-तरह के सवाल उठाये गये कि अगर बच्चे को मैट्रिक (10वीं) के बाद उच्च शिक्षा लेनी है तो वह अंग्रेजी के बिना संभव नहीं है। तब गाँधी जी ने कहा था कि "यह सोचना भयंकर अंधविश्वास होगा कि कोई भी व्यक्ति बगैर अंग्रेजी के पहले दर्जे का वैज्ञानिक या शोध कार्य नहीं कर सकता।' उन्होंने कहा कि अंग्रेजी की शिक्षा में देश को काफी नुकसान पहुँचाया है और इसने उनके कुछ मूल्यवान साथियों को अपने ही घर में अजनबी बना दिया है। उन्होंने लिखा -

"हमें और हमारे बच्चे को अपनी विरासत पर खड़ा होना चाहिए। हमें हरेक संस्कृति और भाषा की सम्पदा का आनंद अपनी ही स्थानीय भाषा में उठाना चाहिए। तभी दुनिया में पैदा विज्ञान और साहित्य के खजाने जनता की सम्पत्ति बन सकेंगे। हमारे यहाँ गहरे पैठ इस शैतान को भगाने के लिए हमें एक नाभकीय उपचार की जरूरत है।"[8] इसका अर्थ यह हुआ कि गाँधी उच्च शिक्षा भी मातृभाषा में दिये जाने के पक्षधर थे। मैट्रिक तक की शिक्षा अनिवार्य रूप से मातृभाषा में हो इसका तो वे पूरजोर समर्थन करते ही थे, उच्च शिक्षा के प्रति भी उनका विचार वैसा ही था हालाँकि एकाध जगह उन्होंने स्वीकार किया है कि अगर किसी को अंग्रेजी की शिक्षा लेनी है तो वह मैट्रिक (10वीं) के बाद ज्यादा मेहनत कर अंग्रेजी सीख सकता है और आगे की शिक्षा वह अंग्रेजी में प्राप्त कर सकता है, पर साथ ही उनका यह भी कहना था कि इस भाषा ने हमारे देश का नुकसान ही किया है, और इस भाषा के भारत में आगमन के पूर्व भी इस देश की शिक्षा व्यवस्था काफी उन्नत और समृद्ध थी। गाँधी जी ने शिक्षा के भाषा संबंधी यह विचार सन् 1937-38 में व्यक्त किये थे, पर यह बात कितनी महत्वपूर्ण थी।

इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इस बात के कहे जाने के लगभग 80 वर्ष बाद भी नई शिक्षा नीति बनाते हुए उनकी कही इस बात का ध्यान रखा गया और नई शिक्षा नीति में बच्चों को मातृभाषा भाषा में ही शिक्षा दिये जाने की बात कही गई। इस शिक्षा नीति में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि भारत में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने का प्रचलन बढ़ गया है इसलिए बच्चों पर अनावश्यक दवाब भी बढ़ गया है, और उनमें कोई भी सिद्धान्त को समझने के बजाय रटने की प्रवृत्ति ज्यादा हो गई है। इसलिए इस शिक्षा नीति में 8वीं कक्षा तक की शिक्षा अनिवार्य रूप से मातृभाषा/स्थानीय भाषा में देने की बात कही गई है। इसमें मातृभाषा या स्थानीय भाषाओं में शिक्षण के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि - "छोटे बच्चे अपने घर की भाषा/मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं। ग्रेड-5 तक अनिवार्य रूप से शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। आगे यह भी कहा गया है कि यह बेहतर होगा कि ग्रेड-8

और उससे आगे तक की शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रिय भाषा है। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसकी अनुपालना करेंगे। यदि निजी स्कूल इस नीति को मानेंगे तभी इसके अपेक्षित परिणाम सामने आयेंगे।"[7] इसमें इस बात को स्पष्टतः स्वीकार किया गया है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए उसे शिक्षा का माध्यम बनाने की जरूरत नहीं है।

भाषाविदों का भी मानना है कि बच्चे अपनी मातृभाषा पर जितना अधिक पकड़ रखेंगे वे उतने ही अधिक तार्किक और रचनात्मक बनेंगे क्योंकि उनके मस्तिष्क पर अनावश्यक जोर नहीं पड़ेगा। समय-समय पर अलग-अलग समितियों ने मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर बल अवश्य दिया, परन्तु शायद अंग्रेजित के दवाब के कारण व्यावहारिक स्तर पर यह व्यवस्था जोर नहीं पकड़ पाई और सिर्फ फाइलों का हिस्सा बन कर रह गई। नई शिक्षा नीति ने भी इसकी सिफारिश बहुत जोरदार ढंग से की है परन्तु इसका हश्र भी पुरानी रिर्पोटों की तरह ही न हो जाये, इसलिए हर स्तर पर सचेत रहने की आवश्यकता होगी तब कहीं जाकर एकाध दशक बाद इसमें कुछ बुनियादी परिवर्त्तन हम देख सकते हैं, नहीं तो अगर इसे राजनीतिक मुद्दा बना दिया गया तब इसका हश्र भी वही होकर रह जायेगा जो पुरानी सिफारिशों का हुआ था। यह ठीक है कि देश और समाज का विकास राजनीति के बगैर नहीं हो सकता परन्तु मेरा मानना यह है कि शिक्षा और स्वास्थ्य दो ऐसे विषय हैं जिन्हें हमें गैर-राजनीतिक चश्मे से देखना होगा या फिर इसे 'विदेश नीति' के तर्ज पर लागू करना होगा कि अगर इसे लागू करने वाली सरकार बदल भी जाये तो उसको शुरुआत वहीं से होनी चाहिए जहाँ से पिछली सरकार ने छोड़ा था, अगर हम ऐसी कोई नीति बनाने में सफल हो पाते हैं तब तो हम इस क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन कर सकते हैं जिसका असर समाज में दिखाई भी पड़ेगा नहीं तो फाइलों का पेट तो हमने भर ही दिया है।

वैसे तो नई शिक्षा नीति में इस बात की कोशिश की गई है कि प्रारम्भिक शिक्षा की बुनियाद मजबूत रहें ताकि मजबूत बुनियाद पर व्यक्तित्व की मजबूत इमारत खड़ी की जा सके, इसलिए मातृभाषा और स्थानीय भाषा में शिक्षा देने की बात करना बच्चे की नींव को मजबूती देना ही है, जिसका पक्ष गाँधी जी ने हमेशा ही लिया। परन्तु साथ ही साथ गाँधी जी इस देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को भी बखूबी समझते थे वे जानते थे इस देश में अधिकांश बच्चे ऐसे गरीब परिवारों से आते हैं जिनके माँ-बाप चाहकर भी उन्हें स्कूल न भेजने पर मजबूर हैं क्योंकि उनके लिए रोजमर्रे के भोजन का प्रबन्ध करना ज्यादा जरूरी काम था ऐसे में बच्चे को स्कूल भेजना उसके प्रबन्धन पर और दवाब ही बढ़ाता, इसलिए स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बहुत ही कम रह जाती थी, क्योंकि 12 वर्षों तक विद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर जीविका के योग्य बनना एक लंबी प्रक्रिया हो जाती थी, इसलिए ज्यादातर लोग प्रारम्भ से ही आपने बच्चों को स्कूल भेजने के बजाय और पुश्तैनी कार्य में शामिल कर लेते थे। अगर कुछ बच्चे अपने माता-पिता की मर्जी के विपरीत स्कूल चले भी आते थे तो भी बहुत दिनों तक वहाँ एक नहीं पाते थे, या यूं कहें की अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते थे। यही कारण था स्कूल में प्रवेश लेने वाले और शिक्षा पूर्ण करने वालों छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक अंतर था। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए गाँधी जी ने बच्चों को स्कूल में ही उनके पुश्तैनी कार्य को ही शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाने पर जोर दिया, और वह भी उनकी मातृभाषा में निश्चित रूप में यह अभियान एक आकर्षक चीज थी जो बच्चों को स्कूल की ओर आकर्षित करने लगा और उनके

बीच में छोड़ जाने का सिलसिला भी कम हुआ। हाँलाकि उस समय गाँधी जी के इस प्रयोग का जोरदार ढंग से विरोध किया गया; परन्तु गाँधी जी दूरदर्शी व्यक्ति थे, तमाम तरह के आलोचनाओं का सामना करते हुए इस फैसले को बदलने को तैयार नहीं हुए। और कुछ ही समय पश्चात् इसके सकारात्मक परिणाम भी आने शुरू हो गये। नई शिक्षा नीति में भी इस प्रयोग पर पुनः जोर देने की बात अनिवार्य रूप से कही है। यही कारण कारण है कि मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा पर तो बल दिया ही गया है। 'कौशल विकास' को भी केन्द्र में रखा गया है। 'कौशल विकास' के जितने भी आयाम हो सकते हैं उन सभी पर नई शिक्षा नीति में विस्तार से चर्चा की गई है। अगर इसे ठीक से लागू करने में ईमानदारी दिखाई गई तो निश्चित तौर यह राष्ट्रहित में उठाया गया एक चमत्कारी कदम सिद्ध होगा।

गाँधी जी के अनन्य सहयोगी आचार्य विनोबा भावे ने कौशल विकास के पाठ्यक्रम को सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में और विकसित किया, "नई तालीम का सार सीखने और सिखाने तथा ज्ञान और काम के बीच के अंतर को दूर करने में निहित है। विनोबा शिक्षक और छात्र के बीच संबंधों को फिर से परिभाषित करने की आवश्यकता पर चर्चा करते हैं, "उन्हें एक-दूसरे को सहकर्मी के रूप में मानना चाहिए.... "इसके बजाय, शिक्षक को एक कला/हुनर में कुशल होना चाहिए (और इसी से जीविका प्राप्त करनी चाहिए, न कि शिक्षण वेतन से) छात्र को शिक्षक और उसके परिवार के साथ रहना, काम करना और बढ़ना चाहिए। इस प्रक्रिया में वह कला/हुनर सीखेगा - जीवन शैली, आचार संहिता, रिश्तों के जाल आदि के हिस्से के रूप में कौशल।"[10]

गाँधी जी बुनियादी शिक्षा को 'मानव' और मशीन के बीच् द्वन्द्वात्मक संघर्ष मानते थे जो सिर्फ भारत के संदर्भ में ही नहीं बल्कि पूरे मानव समाज के संदर्भ में था। इसमें मशीन पाश्चात्य देशों का एकाधिकार स्थापित करने का प्रतीक बन सकता था इसलिए उन्होंने अपने शिक्षण में बुवाई, धातु कार्य, मिट्टी के बर्तन, कताई जैसे हस्तशिल्प की भूमिका पर अधिक बल दिया। वे आत्मनिर्भरता या स्वराज और स्वतंत्रता के प्रतीक थे।

"हिन्द स्वराज में गाँधी जी एक पाठक के सवाल के जवाब में कहते हैं करोड़ो लोगों को अंग्रेजी शिक्षा देना उन्हें गुलामी में जकड़ना होगा। मैकॉले ने शिक्षा की जो नींव डाली है उसने हमें गुलाम बनाया है। मैं यह नहीं कहता कि उसकी ऐसी कोई नीयत थी। लेकिन परिणाम यही हुआ। क्या यह दुखद नहीं है कि हम स्वराज्य की बात विदेशी भाषा में करें?"[11] गाँधी जी के इस वक्तव्य के आधार पर कहा जा सकता है कि 'नई शिक्षा नीति' मैकॉलेवादी मानसिकता पर करारा प्रहार है। जिसे पहले ही कर देना चाहिए था परन्तु गाँधी जी द्वारा देखा गया शिक्षा के स्वरूप का स्वप्न 100 वर्षों के बाद चरितार्थ होता दिखाई पड़ रहा है। अब इस शिक्षा नीति को लागू हो जाने के बाद बच्चों पर से पढ़ाई का बोझ कम होगा, उनके अंदर शिक्षा के प्रति रुचि पैदा होगी, कौशल विकास प्रशिक्षण से बेरोजगारी को समस्या का समाधान होगा, देश में खुशहाली और सौहार्द्र का वातावाण पैदा होगा, गाँधी भी शायद ऐसे ही राष्ट्र के निर्माण का स्वप्न देखते थे।

संदर्भ सूची

1. नई तालीम की कहानी - मार्जोरी साइक्स, CIE, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 29.
2. शिक्षा में बदलाव का सवाल, अनिल सद्गोपाल, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ. 176

3. वही, पृ. 178.
4. गाँधी संस्मरण और विचार, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, सस्ता साहित्य मंडल, 1968, पृ. 317.
5. नई तालीम की कहानी, पृ. 38
6. NEP-2020
7. Regional Resource Centre for Elementary Education, USRN-DU.
8. विमुक्त शिक्षाः www.swaraj.org, 1 मई 2002 को पुनर्लेखित
9. हिन्द स्वराज : गाँधी का शब्द भंडार, गिरिराज किशोर, सस्ता साहित्य मंडल, 2010, पृ. 169.

35

राष्ट्र के भविष्य को बदलने के लिए विजन इंडिया @ 2047 वर्तमान स्थिति, चुनौतियाँ एवं सुझाव

डॉ० गौरव कुमार

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा (राज.)

विकसित भारत की औपचारिक शुरुआत भारतीय विकास यात्रा में एक ऐतिहासिक मोड़ है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2021 के स्वतंत्रता दिवस के भाषण में अमृत काल और भारत/2047 का विजन साझा किया, जिसमें भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की गई। यह परिकल्पना न केवल आर्थिक विकास पर केंद्रित है, बल्कि इसमें सामाजिक-आर्थिक विकास के विभिन्न आयामों को भी समाहित किया गया है। इस विजन में पंच प्राण की अवधारणा दी गई है, जिसमें विकसित भारत का लक्ष्य, औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, अपनी विरासत पर गर्व, एकता और नागरिक कर्तव्य शामिल हैं।

भारत की वृद्धि में योगदान देने वाले कारक

आर्थिक विजन और रणनीति :-

नीति आयोग द्वारा तैयार किए जा रहे 'विजन इंडिया/2047' दस्तावेज में एक महत्वाकांक्षी आर्थिक रूपांतरण की परिकल्पना की गई है, जो भारत को विश्व की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं की श्रेणी में स्थापित करने का लक्ष्य रखती है। इस विजन का मुख्य लक्ष्य 2047 तक भारत को 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना है, जिसमें प्रति व्यक्ति आय को 18,000-20,000 डॉलर तक पहुंचाना शामिल है। वर्तमान में भारत 3.7 ट्रिलियन डॉलर के साथ विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, और विशेषज्ञों का मानना है कि 2030 तक भारत जापान और जर्मनी की अर्थव्यवस्थाओं को पीछे छोड़ सकता है। रेटिंग एजेंसी एसएंडपी के अनुसार, भारत की नॉमिनल जीडीपी 2030 तक 7.3 ट्रिलियन डॉलर तक पहुंच जाएगी। इन महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक व्यापक और बहुआयामी आर्थिक रणनीति तैयार की गई है। 2030-2040 के बीच 9.2 प्रतिशत की वार्षिक औसत विकास दर, 2040-2047 के बीच 8.8 प्रतिशत की विकास दर, और समग्र रूप से 2030-2047 के पूरे कालखंड में 9 प्रतिशत की औसत विकास दर का लक्ष्य रखा गया है। इस विकास दर को हासिल करने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण संरचनात्मक सुधारों की योजना बनाई गई है। इसमें कृषि जैसे कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों से विनिर्माण और सेवा जैसे उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों की ओर संसाधनों का नियोजित स्थानांतरण प्रमुख है।

औद्योगिक विकास के क्षेत्र में, प्रत्येक क्षेत्र में 3-4 वैश्विक चैंपियन कंपनियों के विकास की रणनीति बनाई गई है। इसके साथ ही स्वदेशी उद्योग और नवाचार को बढ़ावा देने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। वित्तीय क्षेत्र में मजबूत सार्वजनिक वित्त और एक सुदृढ़ वित्तीय प्रणाली के निर्माण की योजना है। श्रम बाजार में व्यापक सुधारों की परिकल्पना की गई है, जिसमें श्रमिकों के कौशल विकास, रोजगार क्षमता में वृद्धि, श्रम कानूनों का सरलीकरण, और औपचारिक क्षेत्र में रोजगार को बढ़ावा देना शामिल है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सुधार के लिए फर्मों की दक्षता और नवाचार क्षमता में वृद्धि, उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार, तथा घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों का विस्तार प्राथमिकता में है। निर्यात को बढ़ावा देने के लिए विशेष नीतिगत पहल की योजना है। विकास को समावेशी बनाने के लिए वित्तीय समावेशन का विस्तार, गरीब और हाशिए के वर्गों के लिए सामाजिक कल्याण योजनाओं का विस्तार, और क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए विशेष कार्यक्रमों का प्रावधान किया गया है।

आर्थिक विकास को गति देने के लिए निजी क्षेत्र की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। इसके लिए निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए अनुकूल वातावरण बनाने, सार्वजनिक-निजी भागीदारी को प्रोत्साहित करने, और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए नीतिगत सुधारों की योजना है। बुनियादी ढांचे में निवेश को विशेष प्राथमिकता दी गई है, जिससे अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना को मजबूत किया जा सके। इस आर्थिक रणनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें विकास के साथ-साथ स्थिरता और समावेशिता पर भी ध्यान दिया गया है। मध्यम आय जाल से बचने के लिए विशेष रणनीतियां बनाई गई हैं, जो कई विकासशील देशों के लिए एक बड़ी चुनौती रही है। साथ ही, डिजिटल अर्थव्यवस्था, हरित विकास, और सामाजिक समावेशन जैसे आधुनिक विकास के स्तंभों को भी इस रणनीति में समाहित किया गया है।

लघु और मध्यम उद्यमों के विकास को विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि ये रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण वाहक हैं। इनके लिए विशेष वित्तीय सहायता, तकनीकी उन्नयन, और बाजार तक पहुंच बढ़ाने के कार्यक्रमों की योजना बनाई गई है। इसके साथ ही, स्टार्टअप इकोसिस्टम को मजबूत करने और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।

समग्र विकास दृष्टिकोण :-

विकसित भारत की संकल्पना को साकार करने के लिए एक व्यापक और बहुआयामी विकास दृष्टिकोण अपनाया गया है, जो केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है। इस दृष्टिकोण का मूल आधार सप्तऋषि सिद्धांत है, जो विकास के सात प्रमुख स्तंभों को रेखांकित करता है। यह सिद्धांत समावेशी विकास, अंतिम छोर तक पहुंच, बुनियादी ढांचा और निवेश, क्षमता का विकास, हरित विकास, युवा शक्ति, और वित्तीय क्षेत्र के विकास को समाहित करता है। यह एकीकृत दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है कि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे और यह विकास दीर्घकालिक एवं टिकाऊ हो। समावेशी विकास को विशेष महत्व देते हुए यह दृष्टिकोण गरीबी उन्मूलन, असमानता में कमी, और सामाजिक न्याय पर केंद्रित है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, और बुनियादी सुविधाओं तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है। विशेष रूप से, अंतिम छोर तक पहुंच की रणनीति यह सुनिश्चित करती है कि विकास के लाभ समाज के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों तक पहुंचें। इसके लिए डिजिटल

तकनीक का व्यापक उपयोग, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का विस्तार, और लक्षित हस्तक्षेप की योजना बनाई गई है।

बुनियादी ढांचे और निवेश के क्षेत्र में, शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में विश्वस्तरीय बुनियादी सुविधाओं के विकास पर जोर दिया गया है। इसमें परिवहन नेटवर्क, डिजिटल कनेक्टिविटी, ऊर्जा आपूर्ति, जल संसाधन, और स्वच्छता सुविधाओं का विकास शामिल है। च्ड गति शक्ति जैसी योजनाओं के माध्यम से मल्टी-मॉडल कनेक्टिविटी को बढ़ावा दिया जा रहा है, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने और आर्थिक गतिविधियों को सुगम बनाने में मदद करेगी। क्षमता विकास के क्षेत्र में, मानव संसाधन विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें शिक्षा प्रणाली का आधुनिकीकरण, कौशल विकास कार्यक्रमों का विस्तार, और रोजगार क्षमता में वृद्धि शामिल है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से शिक्षा को और अधिक व्यावहारिक और रोजगारपरक बनाया जा रहा है। साथ ही, अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए शैक्षणिक संस्थानों और उद्योग जगत के बीच सहयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए हरित विकास की दिशा में ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। नवीकरणीय ऊर्जा का विस्तार, कार्बन उत्सर्जन में कमी, और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण प्राथमिकता में है। 2070 तक नेट-जीरो का लक्ष्य हासिल करने के लिए हरित प्रौद्योगिकियों को अपनाने और ऊर्जा दक्षता में सुधार पर जोर दिया जा रहा है। युवा शक्ति के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए हैं, जो भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश का सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करेंगे। इसमें उद्यमिता को बढ़ावा देना, स्टार्टअप इकोसिस्टम को मजबूत करना, और नवाचार को प्रोत्साहित करना शामिल है। युवाओं को वैश्विक कार्यबल में प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए डिजिटल कौशल और नई तकनीकों में प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। वित्तीय क्षेत्र के विकास में वित्तीय समावेशन, डिजिटल भुगतान प्रणाली का विस्तार, और पूंजी बाजार का विकास प्राथमिकता में है। जन धन योजना जैसे कार्यक्रमों ने बैंकिंग सेवाओं तक पहुंच में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देने से वित्तीय लेनदेन में पारदर्शिता और दक्षता बढ़ी है।

इस समग्र विकास दृष्टिकोण को '4s' सिद्धांतों - सामाजिक, सशक्त, स्थायी और साझा विकास - के माध्यम से और मजबूत किया गया है। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि विकास सामाजिक प्रगति से जुड़ा हो, सभी क्षेत्रों में साझा किया जाए, पर्यावरण की दृष्टि से स्थायी हो, और बाहरी संकटों का सामना करने में सक्षम हो। यह एकीकृत दृष्टिकोण विकसित भारत के विजन को एक सर्वांगीण और समावेशी स्वरूप प्रदान करता है।

तकनीकी विकास और नवाचार :-

भारत के विकास विजन 2047 में तकनीकी विकास और नवाचार को एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में स्थापित किया गया है। यह दृष्टिकोण भारत को एक ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने की महत्वाकांक्षा को प्रतिबिंबित करता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यापक रणनीतिक योजना बनाई गई है, जिसमें विभिन्न प्रौद्योगिकी क्षेत्रों

का समावेश है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, क्वांटम कंप्यूटिंग, ब्लॉकचेन, और इंटरनेट ऑफ थिंग्स जैसी उभरती तकनीकों में भारत की क्षमताओं को विकसित करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

डिजिटल इंडिया विजन के तहत, देश में डिजिटल बुनियादी ढांचे का विस्तार किया जा रहा है। 5जी नेटवर्क का विस्तार, ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी का सार्वभौमिकरण और डिजिटल साक्षरता में वृद्धि प्राथमिकता में है। साथ ही, डिजिटल भुगतान प्रणाली, ई-गवर्नेंस, और डिजिटल सेवाओं का विस्तार किया जा रहा है, जिससे नागरिकों को बेहतर सेवाएं प्रदान की जा सकें और प्रशासनिक दक्षता में सुधार हो। अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए विशेष पहल की जा रही है। देश में शीर्ष 10 अनुसंधान प्रयोगशालाओं की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर के अनुसंधान केंद्रों के साथ सहयोग करेंगी। इसके अलावा, कम से कम 10 भारतीय शैक्षणिक संस्थानों को विश्व के शीर्ष 100 संस्थानों मं स्थान दिलाने का लक्ष्य है। इन प्रयासों से देश में नवाचार की संस्कृति को बढ़ावा मिलेगा और नई तकनीकों का विकास होगा। स्टार्टअप और नवाचार इकोसिस्टम को मजबूत करने के लिए विशेष योजनाएं बनाई गई हैं। स्टार्टअप इंडिया, डिजिटल इंडिया, और मेक इन इंडिया जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमिता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा, पेटेंट प्रणाली में सुधार, और नवाचार को वाणिज्यिक रूप देने में सहायता प्रदान की जा रही है।

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास :-

विजन इंडिया 2047 में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को विशेष महत्व दिया गया है, जो भारत की दीर्घकालिक विकास रणनीति का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। यह विजन विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसका उद्देश्य आर्थिक विकास को पर्यावरणीय स्थिरता के साथ संयोजित करना है। पंचामृत नीति के माध्यम से भारत ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक महत्वाकांक्षी रोडमैप तैयार किया है। 2070 तक नेट-जीरो उत्सर्जन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक व्यापक और चरणबद्ध योजना बनाई गई है। इसमें 2030 तक के मध्यकालिक लक्ष्य भी निर्धारित किए गए हैं, जिनमें गैर-जीवाश्म ऊर्जा क्षमता को 500 गीगावाट तक बढ़ाना, कुल ऊर्जा आवश्यकताओं का 50 प्रतिशत नवीकरणीय स्रोतों से पूरा करना, और कार्बन उत्सर्जन में एक अरब टन की कमी लाना शामिल है। साथ ही, अर्थव्यवस्था की कार्बन तीव्रता को 45 प्रतिशत से कम करने का लक्ष्य भी रखा गया है।

हरित ऊर्जा क्षेत्र में भारत महत्वपूर्ण पहल कर रहा है। सौर ऊर्जा, जिसमें भारत विश्व का अग्रणी देश बनना चाहता है, पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन के माध्यम से वैश्विक सहयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। पवन ऊर्जा, जल विद्युत, और बायोमास जैसे अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का भी तेजी से विकास किया जा रहा है। हरित हाइड्रोजन मिशन के तहत स्वच्छ ईंधन के उत्पादन और उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जो भविष्य की ऊर्जा आवश्यकताओं का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है। जैव विविधता संरक्षण के क्षेत्र में भारत ने महत्वपूर्ण प्रतिबद्धताएं की हैं। वन क्षेत्र का विस्तार, जंगली जीवों की सुरक्षा, और पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण प्राथमिकता में है। राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम के तहत वन क्षेत्र को बढ़ाकर कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है। स्थानीय समुदायों की भागीदारी से सामुदायिक वन प्रबंधन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

साथ ही, दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण और उनके प्राकृतिक आवासों की सुरक्षा के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

जल संरक्षण और प्रबंधन विजन 2047 का एक महत्वपूर्ण आयाम है। नमामि गंगे जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के माध्यम से नदियों की सफाई और पुनर्जीवन पर काम किया जा रहा है। जल संचयन, भूजल पुनर्भरण, और कुशल सिंचाई प्रणालियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। शहरी क्षेत्रों में जल संरक्षण और पुनर्चक्रण को अनिवार्य किया जा रहा है। साथ ही, तटीय क्षेत्रों की सुरक्षा और समुद्री पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। चक्रीय अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने के लिए अपशिष्ट प्रबंधन और पुनर्चक्रण पर विशेष बल दिया जा रहा है। एकल उपयोग प्लास्टिक पर प्रतिबंध, ई-कचरे के वैज्ञानिक प्रबंधन, और औद्योगिक अपशिष्ट के पुनर्चक्रण के लिए कठोर नियम बनाए गए हैं। स्वच्छ भारत मिशन 2.0 के तहत शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन की व्यवस्था को सुदृढ़ किया जा रहा है। उद्योगों को शून्य अपशिष्ट की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अनुकूलन और शमन रणनीतियां विकसित की जा रही हैं। जलवायु-स्मार्ट कृषि को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसमें सूखा-प्रतिरोधी फसलों का विकास, कुशल सिंचाई प्रणालियां, और प्राकृतिक खेती शामिल हैं। आपदा प्रतिरोधी बुनियादी ढांचे का विकास और मौसम पूर्वानुमान प्रणालियों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन से प्रभावित समुदायों की सहायता के लिए विशेष सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

शहरी विकास में पर्यावरण संरक्षण को केंद्रीय स्थान दिया गया है। स्मार्ट सिटी मिशन के तहत ऊर्जा कुशल भवनों का निर्माण, सार्वजनिक परिवहन का विस्तार, हरित क्षेत्रों का विकास, और जल संरक्षण को प्राथमिकता दी जा रही है। शहरी वनों का विकास, वर्षा जल संचयन, और अपशिष्ट से ऊर्जा उत्पादन जैसी पहल की जा रही हैं। इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देकर वायु प्रदूषण को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण को जन आंदोलन बनाने का प्रयास किया जा रहा है। स्कूली पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य किया गया है। समुदाय-आधारित पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। युवाओं को पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। विजन 2047 के तहत पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के क्षेत्र में किए जा रहे ये प्रयास भारत को न केवल पर्यावरण की दृष्टि से स्थायी बल्कि आर्थिक रूप से समृद्ध राष्ट्र बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। यह दृष्टिकोण भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ, स्वस्थ और समृद्ध भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

सामाजिक विकास और मानव कल्याण :-

विजन इंडिया 2047 में सामाजिक विकास और मानव कल्याण को केंद्रीय महत्व दिया गया है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र का वास्तविक विकास उसके नागरिकों की खुशहाली में निहित होता है। वर्तमान में भारत विश्व खुशहाली सूचकांक 2024 में 143 देशों में 126वें स्थान पर है, जो यह दर्शाता है कि आर्थिक विकास के बावजूद जीवन की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। इस स्थिति को बदलने के लिए विजन 2047 में एक व्यापक सामाजिक

विकास रणनीति की परिकल्पना की गई है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और रोजगार जैसे मूलभूत क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सुधार की योजना है।

इस विजन के तहत शिक्षा को अधिक व्यावहारिक और रोजगारपरक बनाया जा रहा है, स्वास्थ्य सेवाओं का सार्वभौमिकरण किया जा रहा है, और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों को मजबूत किया जा रहा है। महिला सशक्तिकरण, बाल कल्याण और वृद्धजन देखभाल के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। युवाओं के लिए कौशल विकास और रोजगार सृजन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, साथ ही डिजिटल समावेश और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा दिया जा रहा है।

विजन 2047 का उद्देश्य एक ऐसा भारत बनाना है जहां प्रत्येक नागरिक को विकास के समान अवसर मिलें, उनकी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हों, और वे गरिमापूर्ण जीवन जी सकें। यह दृष्टिकोण मानता है कि वास्तविक विकास केवल आर्थिक संकेतकों से नहीं, बल्कि लोगों की खुशहाली से मापा जाना चाहिए। इसलिए सामाजिक विकास को आर्थिक विकास के साथ समान महत्व दिया गया है, जिससे एक संतुलित और समावेशी विकास सुनिश्चित हो सके।

चुनौतियां और भविष्य का मार्ग

भारत का विजन 2047 तक 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने का है, लेकिन इस लक्ष्य को प्राप्त करने में कई महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक सुव्यवस्थित रणनीति और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

प्रमुख चुनौतियां :-

- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा विकास की आधारशिला है। भारत को शिक्षा की पहुँच और गुणवत्ता दोनों बढाने के लिए सुधार करना होगा। मध्यम आय जाल सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। विश्व बैंक के अनुसार, यह एक ऐसी स्थिति है जहां बढ़ती लागत और घटती प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण एक मध्यम-आय वाला देश उच्च-आय वाली अर्थव्यवस्था में संक्रमण करने में विफल रहता है। भारत के लिए यह चिंता का विषय है कि प्रति व्यक्ति आय 5,000-6,000 डॉलर तक पहुंचने के बाद विकास की गति धीमी न पड़ जाए।
- बढती जनसंख्या और परिवर्तन विकसित भारत के लिए लक्ष्य के लिए चुनौतियाँ है। भारत की वर्तमान जनसंख्या लगभग 1.4 अरब है, जो 2048 में 1.64 अरब के शिखर पर पहुंचने के बाद 2100 तक घटकर 1.45 अरब होने का अनुमान है। इससे बढ़ती हुई वृद्ध आबादी की स्वास्थ्य देखभाल, पेंशन देनदारियों और श्रम की कमी जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।
- उच्च जीडीपी विकास दर को बनाए रखना एक अन्य बड़ी चुनौती है। नीति आयोग के अनुमानों के अनुसार, 2030-2040 के बीच 9.2 प्रतिशत, 2040-2047 के बीच 8.8 प्रतिशत, और 2030-2047 के बीच औसतन 9 प्रतिशत की विकास दर आवश्यक होगी। यह एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य है, विशेषकर जब विभिन्न अनुमान अगले 10 वर्षों के लिए केवल 7 प्रतिशत की विकास दर का संकेत देते हैं।

- कृषि और विनिर्माण क्षेत्रों की स्थिरता भी एक गंभीर चुनौती है। कृषि क्षेत्र में कार्यबल का 50 प्रतिशत से अधिक हिस्सा कार्यरत है, लेकिन यह जीडीपी में केवल 17 प्रतिशत का योगदान करता है। विनिर्माण क्षेत्र भी दशकों से जीडीपी में 15 प्रतिशत के हिस्से पर स्थिर है। इन क्षेत्रों की उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार की आवश्यकता है।
- प्रशासन - प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करना लालफीताशाही को कम करना और पारदर्शिता को बढाना जरूरी है। प्रशासन में महिलाओं की भूमिका बढानी होगी।
- पर्यावरण - विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाना मुश्किल है। भारत को स्वच्छ ऊर्जा समाधान व कुशल अपशिष्ट प्रबन्धन नीतियों को अपनाना होगा।
- स्वास्थ्य - कुपोषण, गैर संचारी रोग बडी समस्याऐं हैं। गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवाऐं उपलब्ध करानी होंगी।

आगे का मार्ग : विजन इंडिया / 2047 के लिए रोडमैप :-

इन चुनौतियों से निपटने के लिए कई स्तरों पर कार्य करने की आवश्यकता हैः

- 2047 तक विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी क्षेत्रों को राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि में योगदान देना होगा। निजीकरण और विनिवेश को तेज करनाः सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश से धन जुटाने, उत्पादकता बढ़ाने और विदेशी निवेश आकर्षित करने में मदद मिल सकती है। केन्द्र सरकार विकसित भारत के विजन को साकार करने के लिए राज्यों द्वारा किये जा रहे सुधारों को समर्थन देने के लिए 50 वर्षों के लिए 75 हजार करोड रूपये का ब्याज मुक्त ऋण उपलब्ध कराएगी। अन्तरिम बजट 2024 में पूँजीगत व्यय के लिए 11 लाख 11 हजार 111 करोड रूपये आवंटित किये गए हैं। इससे 21 वीं सदी में आधुनिक इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण होगा। युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। विकसित भारत के विजन को साकार करने के लिए अटूट समर्पण, युवाओं की अपार प्रतिभा और क्षमताओं को पहचानने की आवश्यकता है।
- मध्यम वर्ग को मजबूत करनाः कर दरों में कटौती या व्यक्तिगत आयकर को खपत कर से प्रतिस्थापित करके मध्यम वर्ग की क्रय शक्ति बढ़ाई जा सकती है।
- श्रम बल की भागीदारी बढ़ानाः शिक्षा और कौशल विकास की गुणवत्ता और पहुंच में सुधार के लिए नई शिक्षा नीति और स्किल इंडिया मिशन जैसी पहलें महत्वपूर्ण हैं।
- बुनियादी ढांचे का विकासः 100 लाख करोड़ रुपये से अधिक की राष्ट्रीय बुनियादी ढांचा पाइपलाइन की योजना को तेजी से क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।
- विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावाः उत्पादन-संबद्ध प्रोत्साहन (PLI) योजना के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक्स, वस्त्र, फार्मास्युटिकल्स और रक्षा जैसे क्षेत्रों में वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनने का अवसर है।
- निजी निवेश को बढ़ावाः बुनियादी ढांचा परियोजनाओं और विनिर्माण के लिए सरकारी समर्थन के माध्यम से निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

- संरचनात्मक सुधारः वित्तीय क्षेत्र सुधार, शहरी नियोजन और ई-कॉमर्स सहित विभिन्न क्षेत्रों में लक्षित सुधारों की आवश्यकता है।

विजन 2047 की सफलता इन चुनौतियों से निपटने और आवश्यक सुधारों को लागू करने की हमारी क्षमता पर निर्भर करेगी। यह एक कठिन लेकिन प्राप्य लक्ष्य है, जिसके लिए सरकार, निजी क्षेत्र और नागरिक समाज के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होगी।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी 2020) इसी दिशा में उठाया गया प्रयास है। बडे पैमाने पर बुनियादी ढाँचे का विकास गरीबी उन्नयन महिलाओं और युवाओं को सशक्त बनाना कृषि क्षेत्र के विकास की आवश्यकता है। विजन इंडिया 2047 भारत के भविष्य का एक महत्वाकांक्षी और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह केवल एक आर्थिक लक्ष्य नहीं है, बल्कि एक समग्र विकास का मार्ग है जो देश को आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और पर्यावरणीय दृष्टि से विकसित राष्ट्र बनाने की परिकल्पना करता है। 2047 तक 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य महत्वाकांक्षी है, लेकिन भारत की वर्तमान प्रगति और भविष्य की संभावनाओं को देखते हुए यह प्राप्य लक्ष्य प्रतीत होता है। देश के पास जनसांख्यिकीय लाभांश, विस्तार करता मध्यम वर्ग, डिजिटल क्रांति की क्षमता, और स्थिरता-केंद्रित विकास दृष्टिकोण जैसे महत्वपूर्ण अवसर हैं। साथ ही, मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएं, वैश्विक नेतृत्व की क्षमता, और नवाचार की संस्कृति इस विजन को साकार करने में सहायक होंगी। हालांकि, मध्यम आय जाल, बढ़ती वृद्ध आबादी, क्षेत्रीय असमानताएं, और पर्यावरणीय चुनौतियां जैसी बाधाओं से निपटने के लिए ठोस रणनीतियों की आवश्यकता होगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए "सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास" के मंत्र पर चलते हुए सरकार, निजी क्षेत्र और नागरिक समाज को मिलकर काम करना होगा। आज हमारा राष्ट्र जो बीज बोएगा, उसी से भविष्य में फल मिलेंगे। आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय खुशहाली को सुनिश्चित करते हुए एक समावेशी विकास का मार्ग अपनाना होगा। विजन 2047 की सफलता इस समग्र दृष्टिकोण और इसके प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. आर्य, ई.वी. (2023), इंडियाज विजन 2047, एशियन विजन पब्लिशर्स, पृ.सं. 154
2. कुठियाल, ब्रज किशोर (2022), भारत 2047 सामूहिक संकल्पना, प्रभात पब्लिकेशन, पृ.सं.210
3. विज़न इंडिया/2047: राष्ट्र के भविष्य को बदलना, दृष्टि प्रकाशन] https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-editorials/vision-india-2047-transforming-the-nation-future
4. विज़न इंडिया/2047. नागरिकों और सरकार को करीब लाना, भारत सरकार, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग &

https://darpg.gov.in/sites/default/files/final %20vision%20india2047..approved.pdf

5. https://www.investindia.gov.in/team-india-blogs/developed-india-vision-progress-towards-2047
6. https://pib.gov.in/PressReleseDetail.aspx?PRID=1888514
7. https://www.thehindu.com/news/national/pm-to-unveil-vision-2047-soon/article67473900.ece
8. https://timesofindia.indiatimes.com/business/30-trillion-economy-document-to-outline-reforms pitch/articleshow/104806581.cms?from=mdr

36

प्राचीन भारतीय वाद विधि : न्याय-वैशेषिक दर्शन में वर्णित कथा तथा चरकसंहिता में वर्णित सम्भाषा विधि के आलोक में

तुषार गांधी
शोधार्थी , संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मोहित कुमार पांडेय
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. ज्योति
सहायक आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. आशीष कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत विभिन्न प्रकार के ज्ञान का उद्गम स्थल रहा है, जिसमें शंका, प्रश्न और समाधान को विशेष महत्त्व दिया गया है। प्राचीन काल से ही यहाँ सार्वजनिक वाद, शास्त्रार्थ और परिचर्चा की समृद्ध परम्परा रही है, जिसमें विद्वानों ने शास्त्रों में प्रतिपादित प्रत्येक शब्द पर गहन विचार किया। वाद और शास्त्रार्थ के माध्यम से भारत में न केवल ज्ञान का विकास हुआ, बल्कि विद्वानों को अपने पक्ष को स्थापित करने और विरोधी पक्ष को खंडित करने के माध्यम से समाधान खोजने और अपने सिद्धांतों में संशोधन का अवसर भी मिला। भारतीय ज्ञान परम्परा में वाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण कई ग्रंथों में वाद के स्वरूप और उसकी प्रक्रियाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वद् (व्यक्तायां वाचि) धातु से निष्पन्न 'वाद' शब्द का सामान्यतः अर्थ भाषण, चर्चा, विचार, शास्त्रार्थ, विमर्श, विवरण, व्याख्या आदि है। आचार्य गौतम कृत न्यायसूत्र में वाद को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः ।[1]

आचार्य गौतम के अनुसार पक्ष तथा प्रतिपक्ष का वह अंगीकार, जिसमें प्रमाणों तथा तर्कों से स्वपक्ष की स्थापना तथा परपक्ष का खंडन हो, शास्त्रोक्त सिद्धांतों के विरुद्ध न हो तथा न्यायानुगत पंचावयव वाक्यों से युक्त हो, वह वाद कहलाता है। इसके अतिरिक्त तर्कभाषा में वाद की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः ।[2]

---

[1] न्यायसूत्र- 1.2.1

[2] तर्कभाषा

 UGC Care Listed Journal ISSN: 2321-0443

तर्कभाषाकार ने वस्तुतः वाद के उद्देश्य को प्रतिपादित करते हुए वाद की परिभाषा प्रस्तुत की है। तदनुसार तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा से की गई कथा, चर्चा या विमर्श ही वाद है। चरकसंहिता में वाद को 'सम्भाषा' नाम से अभिहित किया गया है। चरकसंहिता में वाद की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

तत्र वादो नाम यत्परः परेण सह शास्त्रपूर्वकं विगृह्य कथयति।[3]

चरकसंहिता के अनुसार परस्पर शास्त्रपूर्वक विगृह्य सम्भाषा को वाद कहते हैं। इस प्रकार यह द्रष्टव्य है कि वाद के स्वरूप को अनेक ग्रंथों में व्यापक रूप से प्रतिपादित किया गया है तथा इस निरूपण से यह भी स्पष्ट होता है कि वाद का मुख्य उद्देश्य तत्त्व का ज्ञान है। इस कारण से भारतीय संस्कृति में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि वाद के माध्यम से ही तत्त्व का सम्यक बोध होता है-

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।

कालांतर में वाद का उद्देश्य सत्यान्वेषण के अतिरिक्त जय-पराजय हो गया। इस कारण से वाद के अन्य भेदों-प्रभेदों जल्प, वितण्डा आदि का विकास हुआ। वाद के भेदों-प्रभेदों के निरूपण में शास्त्रों में परस्पर मतवैविध्य है। न्यायसूत्र के अनुसार कथा (न्यायानुगत संवाद) के तीन भेद हैं जिसके अंतर्गत वाद, जल्प तथा वितण्डा हैं-

तिस्रः कथा भवन्ति वादः जल्पः वितण्डा चेति।[4]

इसके विपरीत, चरकसंहिता में वाद के ही दो भेदों के रूप में जल्प तथा वितण्डा का निरूपण किया गया है-

स वादो द्विविधः संग्रहेण जल्पो वितण्डा च।[5]

जल्प में वादी तथा प्रतिवादी दोनों का उद्देश्य छल, जाति, निग्रहस्थान आदि के द्वारा विजय प्राप्त करना है तथा वितण्डा का उद्देश्य स्वपक्ष की स्थापना के बिना परपक्ष का खण्डन मात्र करना है।

भारत में वाद का इतिहास अतीव प्राचीन है। वैदिक काल से ही भारत में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक तथा नैतिक विषयों पर विद्वानों, आचार्यों, मनीषियों के मध्य वाद, संवाद, शास्त्रार्थ, चर्चा आदि होता रहा है। वैदिक काल में दार्शनिक विषयों पर होने वाले वाद को 'ब्रह्मोदय' कहा जाता था तथा इस ब्रह्मोदय को 'ब्रह्मसंसद' में आयोजित किया जाता था-

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।[6]

उपनिषदों में वाद को 'वाकोवाक्य' भी कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद में प्रतिपादित कथन, **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो'** में 'मनन' वस्तुतः तर्कपूर्वक चिंतन को ही द्योतित करता है। अनेक परवर्ती ग्रंथों जैसे अर्थशास्त्र, कामसूत्र, महाभाष्य, काव्यमीमांसा आदि में वादशास्त्र की झलक दिखाई देती है। ज्ञान के विकास में वाद की महती भूमिका होने के कारण वाद की संरचना, वाद के संघटक, वाद-प्रक्रिया आदि के विशद

---

[3] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.28

[4] न्यायसूत्र- 1.2.42 पर वात्स्यायन भाष्य

[5] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.28

[6] कठोपनिषद्- 1.17

निरूपण की आवश्यकता हुई। अतएव कालांतर में अनेक दार्शनिक संप्रदायों जैसे मीमांसा, वेदांत, न्याय-वैशेषिक, जैन, बौद्ध आदि के ग्रंथों में वादशास्त्र तथा तर्कशास्त्र संबंधी चर्चा विशद रूप से प्राप्त होती है। आयुर्वेद के आद्य ग्रंथ चरकसंहिता के विमानस्थान में उल्लिखित सम्भाषा विधि के अंतर्गत वाद (सम्भाषा) के महत्त्व, सम्भाषा के प्रकार, परिषद (सभा) के प्रकार एवं स्वरूप, सम्भाषा-प्रक्रिया तथा वाद मर्यादा का विशद विवेचन किया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में इसका कथन चिकित्सकों के लिए किया गया है (भिषक् भिषजा सह संभाषेत) तथापि उसमें वर्णित उपाय सभी के लिए समान रूप से उपयोगी हैं।

सम्भाषा (वाद) की उपयोगिता

सन्धाय सम्भाषा एवं विगृह्य सम्भाषा के वर्णन से पूर्व चरकसंहिता में सम्भाषा के लाभों के विषय में चर्चा प्राप्त होती है। चरकसंहिता के अनुसार सम्भाषा से निम्नलिखित लाभ होते हैं-

1) यह ज्ञान एवं हर्ष की वृद्धि कराती है- **ज्ञानाभियोगसंहर्षकरी भवति**।[7]
2) ज्ञान का पाण्डित्य या चातुर्य उत्पन्न करने वाली होती है- **वैशारद्यमपि चाभिनिर्वर्तयति**।[8]
3) वाक्शक्ति उत्पन्न करने वाली होती है- **वचनशक्तिमपि चाधत्ते**।[9]
4) यश की वृद्धि कराने वाली होती है- **यशश्चाभिदीपयति**।[10]
5) अध्ययनकाल में पूर्वश्रुत विषय में जो सन्देह होता है, उनका उच्छेद कराती है- **पूर्वश्रुते च संदेहवतः पुनः श्रवणाच्छ्रुतसंशयमपकर्षयति**।[11]
6) सन्देहरहित वस्तु में और भी अधिक दृढ़ निश्चय करा देती है- **श्रुते चासंदेहवतो भूयोऽध्यवसायमभिनिर्वर्तयति**।[12]
7) अध्ययनकाल में गुरुमुख से न सुना हुआ भी कुछ विषय यहाँ पर सुनने में आता है एवं ज्ञान में वृद्धि होती है- **अश्रुतमपि च कञ्चिदर्थे श्रोत्रविषयमापादयति**।[13]
8) आचार्य की सेवा करने वाले शिष्य को सेवा के समय आचार्य द्वारा जो गुह्य ज्ञान प्राप्त होता है, शास्त्रार्थ के समय वह उस गोपनीय ज्ञान को भी विजिगिषा के कारण प्रतिवादी के समक्ष प्रस्तुत कर देता है अतः वाद से कई बार ज्ञान के गूढ रहस्य की भी प्राप्ति हो जाती है- **यच्चाचार्यः शिष्याय शुश्रूषवे प्रसन्नः क्रमेणोपदिशति गुह्याभिमतमर्थजातं तत्परस्परेण सह जल्पन्पिण्डेन विजिगीषुराह संहर्षात्**।[14]

---

[7] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[8] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[9] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[10] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[11] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[12] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[13] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14
[14] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.14

इन कारणों से ही विद्वान 'तद्विद्यसम्भाषा' अर्थात् उस विषय के सम्यक् ज्ञाता से संभाषा या वाद करना प्रशंसनीय मानते हैं।

सम्भाषा के भेद

चरकसंहिता में सम्भाषा के मुख्यतः दो भेदों, सन्धाय सम्भाषा एवं विगृह्य सम्भाषा का कथन किया गया है - **द्विविधा तु खलु तद्विद्यसम्भाषा भवति सन्धायसम्भाषा विगृह्यसम्भाषा च** ।[15] इन्हें ही क्रमशः अनुलोम तथा प्रतिलोम सम्भाषा भी कहते हैं

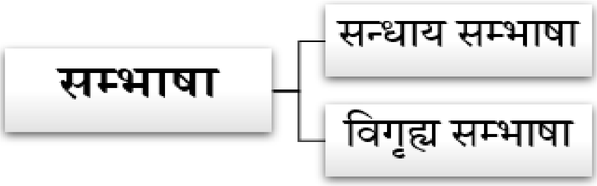

सन्धाय सम्भाषा

चरकसंहिता में सन्धाय सम्भाषा के विषय में कहा गया है-

तत्र ज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसंपन्नेनाकोपनेनानुपस्कृतविद्येनानसूयकेनानुनेयेनानुनयकोविदेन क्लेशक्षमेण प्रियसंभाषणेन च सह सन्धायसम्भाषा विधीयते ।[16]

सन्धि अर्थात् परस्पर मेल स्थापित करके प्रेमपूर्वक संवाद करना ही सन्धाय सम्भाषा का वास्तविक स्वरूप है। इसका स्वरूप न्याय दर्शन में प्रतिपादित 'वाद' के समान प्रतीत होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य तत्त्वबुभुत्सा होता है। सन्धाय सम्भाषा उसके साथ करनी चाहिये जो ज्ञान से युक्त हो, विज्ञान अर्थात् ज्ञान का प्रायोगिक अवबोध रखता हो, वचन-प्रतिवचन की शक्ति से युक्त हो अर्थात् पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष का उसे ज्ञान हो, क्रोधरहित हो, अविकृत विद्या वाला हो, अनुनय-विनयपूर्वक प्रतिपक्षी को अपना पक्ष समझाने वाला हो, क्लेशरहित, सहिष्णु एवं प्रिय बोलने वाला हो, बिना भय के जो पूछना हो विश्वासपूर्वक पूछे, वाद में पराजय से भयभीत न हों ना ही प्रतिवादी को परास्त करके प्रसन्न हो, दूसरों के समक्ष आत्म-प्रशंसा न करे ।इन्हीं गुणों से युक्त विद्वान या प्राज्ञ व्यक्ति के साथ की जाने वाली सम्भाषा ही सन्धाय सम्भाषा कहलाती है।

विगृह्य सम्भाषा

चरकसंहिता में विगृह्य सम्भाषा का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-

अत ऊर्ध्वमितरेण सह विगृह्यसम्भाषायां जलपेच्छ्रेयसा योगमात्मानः पश्यन्प्रागेव च जल्पाज्जल्पान्तरं परावरान्तरं परिषद्विशेषांश्च सम्यक्परीक्षेत सम्यक्परीक्षा हि बुद्धिमतां कार्यप्रवृत्तिनिवृत्तिकालौ शंसति तस्मात्परीक्षामभिप्रशंसन्ति कुशलाः।[17]

---

[15] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.15

[16] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.16

[17] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.17

प्रतिपक्षी को पराजित करने मात्र के उद्देश्य से की जाने वाली सम्भाषा विगृह्य सम्भाषा है। यह न्याय-दर्शन में वर्णित जल्प के संतुल्य ही है जिसमें अन्तिम उद्देश्य विजय ही होता है। वादी अपना श्रेय अर्थात् विद्योत्कर्ष आदि देखकर ही प्रतिवादी से विगृहसम्भाषा के लिए प्रवृत्त हो। इसमें वाद-विवाद से पूर्व ही जल्पक (प्रतिवादी) के लक्षण, स्वरूप, एवं गुण-दोष, प्रतिपक्षी एवं स्वयं के गुण-दोष, तथा परिषद के गुण-दोषों का आकलन भी भली-भांति कर लेना चाहिए। सम्यक परीक्षण करने पर विद्वानों को कार्य में प्रवृत्त होने और कार्य से निवृत्त होने के काल का ज्ञान होता है। अतः कुशल विद्वान परीक्षा की प्रशंसा करते हैं। स्वयं और प्रतिवादी के गुण-दोषों की परीक्षा करते समय जल्प में श्रेयस्कर और अश्रेयस्कर गुणों की परीक्षा भी करनी चाहिए। श्रेयस्कर गुण इस प्रकार हैं- गुरुमुख से शास्त्र का श्रवण, विज्ञान अर्थात् शास्त्रों का सम्यक् अवबोध, धारण अर्थात ज्ञान को मन में धारण करना, प्रतिभा (प्रत्युत्पन्नमतित्व) एवं वक्तृत्व-शक्ति। इसके अतिरिक्त विगृह-सम्भाषा करने वाले के लिए चरकसंहिता में ही ऐसे गुणों का वर्णन भी प्राप्त होता है जो वादी के लिए अश्रेयस्कर हैं- क्रोध, अपाण्डित्य, भीरुता अर्थात् कायरता, अनभ्यास, दत्तचित्त न होना, आदि। इन दोनों प्रकार के गुणों को अपने तथा प्रतिवादी में तुलना करके विगृहसम्भाषा करने से पूर्व न्यूनाधिक रूप में देखना चाहिए।

सम्भाषा के प्रमुख घटक

सम्भाषा के प्रमुख अंग हैं- वादी, प्रतिवादी, सभा या परिषद, अध्यक्ष, मध्यस्थ या प्राश्निक तथा निर्णायक मंडल।

पर (प्रतिवादी) के भेद

पर (प्रतिवादी) की परिभाषा देते हुए न्यायकोश में कहा गया है वादी द्वारा प्रयुक्त न्याय-वाक्य के विरुद्ध न्याय-वाक्य का प्रयोग करने वाला प्रतिवादी या पर है-

वादीप्रयुक्तन्यायवाक्यविरुद्धन्यायवाक्यप्रयोगकर्ता।[18]

वस्तुतः संभाषा के दौरान वादी का प्रतिपक्षी ही पर या प्रतिवादी होता है। गुणों के न्यूनाधिक्य से प्रतिवादी मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं लेकिन सभी कुल-शील आदि भावों को विचारने से इसके अन्य भेद भी हैं-

---

[18] न्यायकोश

तत्र त्रिविधः परः संपद्यते प्रवरः प्रत्यवरः समो वा गुणविनिक्षेपतः नत्वेव कार्त्स्न्येन ।[19]

तीन प्रकार के प्रतिवादी या पर होते हैं- प्रवर (श्रेष्ठ प्रतिवादी), प्रत्यवर (हीन प्रतिवादी) तथा सम (समान प्रतिवादी)।

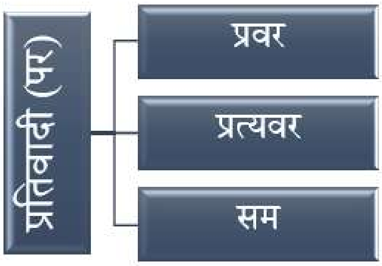

परिषद के भेद

वादी के लिए यह आवश्यक है कि वह सम्भाषण से पूर्व परिषद का अवलोकन अवश्य कर ले। न्यायवार्तिक के अनुसार परिषद को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

जातिविशिष्टपुरुषोपग्रहेण वर्तमाना सभा ।[20]

चरकसंहिता में परिषद के प्रथमतः दो भेद किये गए हैं - ज्ञानवती परिषद एवं मूढा परिषद। पुनः इन परिषदों के सुहृत्, उदासीन एवं प्रतिनिविष्ट परिषद ये तीन-तीन भेद किये गए हैं। विगृह्य सम्भाषा में विजय-प्राप्त करने के लिए किस परिषद में क्या करना चाहिये, यह ज्ञान अत्यावश्यक है।

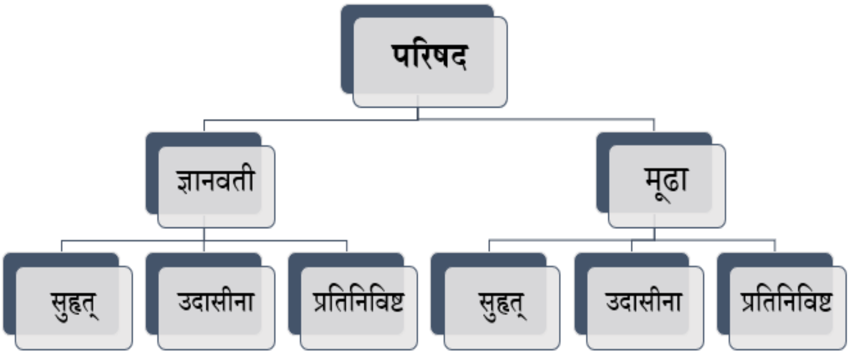

[19] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.18

[20] न्यायवार्तिक- 1.1.14

विभिन्न परिषदों में सम्भाषा प्रक्रिया

ज्ञानवती प्रतिनिविष्ट तथा मूढा प्रतिनिविष्ट, इन दोनों परिषदों में ज्ञान, वाक्कौशल, तर्कशक्ति आदि से युक्त होने पर भी वादी को किसी उत्तम, हीन या समान प्रतिवादी के साथ किसी भी प्रकार से सम्भाषा (वाद-विवाद) नहीं करनी चाहिए-

तत्र प्रतिनिविष्टायां परिषदि ज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसंपन्नायां मूढायां वा न कथञ्चित्केनचित्सह जल्पो विधीयते ।[21]

आचार्य भर्तृहरि ने भी नीतिशतक ग्रंथ में यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य असंभव कार्य को भी करने में सक्षम हो सकता है किंतु प्रतिनिविष्ट एवं दुराग्रही व्यक्ति को कभी किसी भी प्रकार से संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। अतएव प्रतिनिविष्ट व्यक्ति से किसी भी प्रकार का वाद नहीं करना चाहिए-

प्रसह्यं मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत् न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥[22]

मूढा सुहृत् तथा मूढा उदासीन परिषद में ज्ञान-विज्ञान एवं वचन-प्रतिवचन की शक्ति के बिना भी वाद-विवाद किया जा सकता है। ऐसी सभा में वादी को प्रतिपक्षी के समक्ष सम्भाषण में टेढ़े-मेढ़े दीर्घ सूत्रों से युक्त वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए। प्रसन्नतापूर्वक प्रतिवादी का पुनः-पुनः परिहास करते हुए आकार एवं चेष्टा आदि से परिषद का ध्यान आकर्षित करते हुए बोलने के लिए उद्यत प्रतिवादी को बोलने का अवसर प्रदान नहीं करना चाहिये। दुर्बोध वाक्यों को कहते हुए प्रतिवादी से बोलना चाहिए कि उसकी प्रतिज्ञा हीन है। प्रतिवादी द्वारा पुनः वाद करने पर उससे कहना चाहिए, 'एक वर्ष और अपने गुरु से अध्ययन करो। तुम्हारे लिए इतना ही पर्याप्त है।' एक बार पराजित प्रतिवादी को पण्डित जन पराभूत ही मानते हैं। अतः एक बार प्रतिवादी को पराजित करके उसे पुनः वाद का अवसर प्रदान नहीं करना चाहिये।[23]

कुछ आचार्यों के अनुसार, मूढा सुहृत् तथा मूढा उदासीन परिषद में स्वयं से श्रेष्ठ प्रतिवादी के साथ भी प्रतिलोम संभाषण कर ही लेना चाहिए, किन्तु चरक के अनुसार स्वयं से श्रेष्ठ प्रतिवादी के साथ विगृह्य संभाषण निन्दनीय है क्योंकि श्रेष्ठ प्रतिवादी मूढा सुहृत् तथा मूढा उदासीन परिषद को अपने पक्ष में मोड़ सकता है-

कथञ्चिदप्येवं श्रेयसा सह विगृह्य वक्तव्यमित्याहुरेके नत्वेवं ज्यायसा सह विग्रहं प्रशंसन्ति कुशलाः।[24]

स्वयं से हीन अथवा समान प्रतिवादी के साथ ही ज्ञानवती सुहृत् तथा मूढा सुहृत् सभा में संभाषण करना चाहिए -

प्रत्यवरेण तु सह समानाभिमतेन वा विगृह्य जल्पता सुहृत्परिषदि कथयितव्यम् ।[25]

---

[21] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.20

[22] नीतिशतक- 3

[23] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.20

[24] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.20

[25] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.21

अवधान, श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, उपधारण, वचन-प्रतिवचन शक्ति, आदि गुणों से युक्त ज्ञानवती उदासीन सभा में स्वयं एवं प्रतिवादी के गुण, दोष, बल आदि में परस्पर तुलना करके सावधानीपूर्वक संभाषण करना चाहिए। परीक्षा करके जिस बात में प्रतिवादी को अपने से श्रेष्ठ समझें, उस विषय में अयोग्यता को प्रकट न करते हुए वाद नहीं करना चाहिए अथवा वाद से बचना चाहिए। जिस विषय में प्रतिवादी को अपने से हीन समझें, उसमें उसको शीघ्रता से पकड़ लेना चाहिए अर्थात् पराजित कर देना चहिए-

अथवाऽप्युदासीनपरिषद्यवधानश्रवणज्ञानविज्ञानोपधारणवचनप्रतिवचनशक्तिसंपन्नायां कथयता च अवहितेन परस्य साद्गुण्यदोषबलमवेक्षितव्यं समवेक्ष्य च यत्रैनं श्रेष्ठं मन्येत नास्य तत्र जल्पं योजयेत् अनाविष्कृतमयोगं कुर्वन् यत्र त्वेनमवरं मन्येत तत्रैवैनमाशु निगृह्णीयात्।[26]

प्रत्यवर प्रतिवादी का निग्रह करने के उपाय

प्रत्यवर प्रतिवादी को शीघ्र पराजित करने के उपाय बताते हुए चरकसंहिता में कहा गया है-

तत्र खल्विमे प्रत्यवराणामाशु निग्रहे भवन्त्युपायाः तद्यथा श्रुतहीनं महता सूत्रपाठेनाभिभवेत्विज्ञानहीनं पुनः कष्टशब्देन वाक्येन वाक्यधारणाहीनमाविद्धदीर्घसूत्रसंकुलैर्वाक्यदण्डकैः प्रतिभाहीनं पुनर्वचनेनैकविधेनानेकार्थवाचिना वचनशक्तिहीनमर्धोक्तस्य वाक्यस्याक्षेपेण अविशारदमपत्रपणेन कोपनमायासनेन भीरुं वित्रासनेन अनवहितं नियमनेनेति एवमेतैरुपायैः परमवरमभिभवेच्छीघ्रम्।[27]

जिसने शास्त्राध्ययन नहीं किया है, उसे दीर्घसूत्रीय वाक्य सुनाकर पराजित करें। शास्त्र के विशिष्ट ज्ञान से हीन प्रतिवादी के समक्ष अति दुर्बोध अर्थ वाले, क्लिष्ट शब्दों से बने वाक्यों का ही प्रयोग करें। अनभ्यस्त शास्त्र वाले या अल्पबुद्धि के लिए वक्र, लम्बे, दीर्घ-सूत्रीय वाक्यों का प्रयोग करें। प्रतिभाहीन के लिए अनेकार्थी वचनों का प्रयोग करें। वचन-शक्ति से हीन प्रतिवादी को आधे वाक्य पर ही टोक कर व्यवधान उत्पन्न करें। अपण्डित या अचतुर को लज्जाजनक वाक्यों से पराजित करना चाहिए। क्रोधी व्यक्ति को तंग करके, भयभीत को भय दिखलाकर, असावधान प्रतिवादी को नियमन करने वाले वचनों से पराजित करना चहिए। इन उपायों से प्रत्यवर प्रतिपक्षी को पराभूत करना चाहिए।

विगृह्य सम्भाषा हेतु अन्य उपाय

प्रतिवादी के साथ विगृह्य सम्भाषा करते हुए युक्तिपूर्वक भाषण करें। प्रतिवादी के प्रमाणानुकूल वचन का निषेध नहीं करना चाहिए। तीव्र विगृह्य भाषा से उत्पन्न क्रोध से प्रेरित क्रुद्ध प्रतिवादी के लिए कुछ भी अकार्य नहीं होता, वह क्रोधवश कुछ भी कर सकता है। उसके लिए कुछ भी अवाच्य नहीं, वह कुछ भी भला-बुरा कह सकता है। अतएव बुद्धिमान पुरुष सज्जनों की सभा में कलह को अच्छा नहीं समझते हैं-

विगृह्य कथयेदुक्त्या युक्तं च न निवारयेत्।

---

[26] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.21

[27] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.21

विगृह्यभाषा तीव्रं हि केषांचिद्द्रोहमावहेत् ॥
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यमपि विद्यते ।
कुशला नाभिनन्दन्ति कलहं समितौ सताम् ॥[28]

सम्भाषा के पूर्व करणीय उपाय

वादी तथा प्रतिवादी अपनी विजय सुनिश्चित करने हेतु सम्भाषा के पूर्व क्या-क्या उपाय कर सकते हैं, इनका निरूपण भी चरकसंहिता में सम्यक् प्रकार से किया गया है। यहां वस्तुतः धूर्तता सिखाई जा रही है-

प्रागेव तावदिदं कर्तुं यतेत सन्धाय पर्षदाऽयनभूतमात्मनः प्रकरणमादेशयितव्यं यद्वा परस्य भृशदुर्गं स्यात् पक्षमथवा परस्य भृशं विमुखमानयेत् परिषदि चोपसंहितायामशक्यमस्माभिर्वक्तुमेषैव ते परिषद्यथेष्टं यथायोगं यथाभिप्रायं वादं वादमर्यादां च स्थापयिष्यतीत्युक्त्वा तूष्णीमासीत ।[29]

वाद प्रारम्भ होने से पूर्व वादी परिषद के साथ सन्धि करके अपने अभ्यस्त विषय तथा प्रतिवादी हेतु दुरूह विषय को वादार्थ परिषद द्वारा रखवाए। अतएव वाद को ऐसे प्रवृत्त करना चहिए जिससे परिषद प्रतिवादी के पक्ष से विमुख हो जाए। जब परिषद सामने हो तो भला-मानस बनकर कहें कि 'विषय के बारे हम क्या कहें, यह परिषद ही यथायोग्य विषय निर्धारित करे, वाद का स्वरूप निर्धारित करे तथा वाद-मर्यादा निर्धारित करे।' इतना कहकर मौन हो जाना चाहिए।

वाद-मर्यादा

वाद-प्रक्रिया का नियमन करने हेतु चरकसंहिता में वाद-मर्यादा का निरूपण किया गया है-

तत्रेदं वादमर्यादालक्षणं भवति- इदं वाच्यम् इदमवाच्यमेवं पराजितो भवतीति ।[30]

वाद में क्या बोलना है, क्या नहीं बोलना है तथा क्या होने पर पराजित माना जाएगा, इन नियमों का निर्धारण ही वाद-मर्यादा या वाद की सीमा समझी जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में वादशास्त्र वैदिक काल से ही विकसित और समृद्ध होता आया है। वाद की यह परम्परा साहित्य, दर्शन, और सार्वजनिक शास्त्रार्थों के रूप में आज भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय दर्शन, विशेषतः न्याय-वैशेषिक दर्शन में वादशास्त्र का व्यापक और विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथ चरकसंहिता के विमानस्थान में सम्भाषा विधि के अंतर्गत वाद की संरचना, इसके प्रकार, प्रतिवादी की श्रेणियां, परिषद के स्वरूप और उनके प्रकार, वाद की प्रक्रिया, वाद के दौरान ध्यान रखने वाले नियम, प्रतिवादी के निग्रह के उपाय, और वाद की मर्यादा पर गहन चर्चा की गई है। चरकसंहिता में वर्णित सम्भाषा के भेद, जैसे सन्धाय सम्भाषा और विगृह्य सम्भाषा, न्याय दर्शन में प्रतिपादित वाद और जल्प से

[28] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.22-23

[29] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.25

[30] चरकसंहिता, विमानस्थान- 8.26

क्रमशः साम्य दर्शाते हैं। सन्धाय सम्भाषा में वाद का आदर्श स्वरूप प्रकट होता है। यद्यपि चरकसंहिता में सम्भाषा विधि मुख्यतः आयुर्वेदज्ञों के लिए प्रस्तुत की गई है, यह भारतीय वाद परम्परा की एक सार्वभौमिक और विस्तृत संरचना को प्रदर्शित करती है, जिसका उपयोग किसी भी प्रकार के वाद के संचालन में किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता, डॉ. सावित्री (व्या.). *नीतिशतकम्*. दिल्ली: विद्यानिधि प्रकाशन, 2016.
2. झालकीकर, भीमाचार्य. *न्यायकोशः*. तृतीय संस्करण. पुणे: भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, 1928.
3. मिश्र, डॉ. गजाननशास्त्री मुसलगांवकर (व्या.). *श्रीकेशवमिश्रप्रणीता तर्कभाषा*. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2021.
4. मिश्र, डॉ. पंकज कुमार (व्या.). *अन्नम्भट्टप्रणीतः तर्कसङ्ग्रहः*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली: परिमल पब्लिकेशन्स, 2013.
5. विद्यालंकार, जयदेव (व्या.). *चरकसंहिता*. सप्तम संस्करण. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1963.
6. शर्मा, चंद्रधर. *भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2010.
7. Bhattacharya, Chandrodaya. *The Elements of Indian Logic and Epistemology*. Second Edition. Kolkata: Modern Book Agency, 1960
8. Chatterjee, S.C. *The Nyaya Theory of Knowledge.* Calcutta: University of Calcutta, 1939.
9. Prof. Satyamurti. *The Nyaya Conception of Reasoning*. Delhi: Chaukhamba Sanskrit Pratisthan, 2015
10. Tripathi, Radhavallabh. *Vāda in Theory and Practice.* Shimla: Indian Institute of Advanced Studies, 2021
11. Vidyabhushana, Satis Chandra. *A History of Indian Logic*. Calcutta: University of Calcutta, 1921.

37

लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक अधिगम का समावेश: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के संदर्भ में एक नई दृष्टि

संगम
शोधार्थी, यूएसई, जीजीएसआईपीयू, दिल्ली
डॉ. अंजलि शौकीन
सह-आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020, भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार लाने के उद्देश्य से पेश की गई एक क्रांतिकारी नीति है। यह नीति 34 वर्षों बाद, 1986 में लागू की गई शिक्षा नीति की जगह लेकर आई है, और इसका लक्ष्य शिक्षा को अधिक समावेशी, लचीला, बहुआयामी और कौशल-आधारित बनाना है यह एक व्यापक और दूरदर्शी नीति है जिसका उद्देश्य देश की शिक्षा प्रणाली में सुधार करना और इसे 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना है। एनईपी 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली को वैश्विक मानकों के अनुरूप और शिक्षा को सैद्धांतिक से अधिक व्यावहारिक बनाने पर जोर देती है, जिससे छात्रों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त हो सकें। वर्तमान समय में विद्यालयी लेखा शिक्षा पारंपरिक शिक्षण विधियों पर आधारित है, जो मुख्य रूप से रटने और सैद्धांतिक समझ पर केंद्रित होती हैं। इस प्रकार की शिक्षा विधियों से छात्रों की वास्तविक दुनिया के परिदृश्यों में लेखा अवधारणाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने की क्षमता सीमित हो जाती है। एनईपी 2020 के परिप्रेक्ष्य में, लेखा शिक्षा में अनुभवात्मक अधिगम का समावेश एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है। अनुभवात्मक अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें छात्रों को व्यावहारिक अनुभव और सक्रिय भागीदारी के माध्यम से सीखने का अवसर मिलता है। इस दृष्टिकोण से, छात्रों को न केवल लेखा सिद्धांतों की गहरी समझ प्राप्त होती है, बल्कि वे इन सिद्धांतों को वास्तविक जीवन की स्थितियों में भी सफलतापूर्वक लागू कर सकते हैं अत: यह नीति एक समग्र और छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है, जिसमें छात्रों की महत्वपूर्ण सोच, रचनात्मकता, और समस्या-समाधान कौशल का विकास हो सके।

विद्यालय में लेखांकन शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य

लेखांकन एक ऐसा व्यवहारिक विषय है जो केवल व्यापारिक दुनिया में ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन में भी अत्यंत उपयोगी है। लेखांकन की सहायता से लोग अपने खर्चों और निवेशों को बेहतर तरीके से प्रबंधित कर सकते हैं, बजट बना सकते हैं और वित्तीय लक्ष्यों को पूरा कर सकते हैं। लेखांकन समाज और अर्थव्यवस्था की स्थिरता और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह आर्थिक गतिविधियों की पारदर्शिता और सटीकता को सुनिश्चित करता है। यह व्यवसायों के वित्तीय डेटा को व्यवस्थित और विश्लेषित करने में मदद करता है, जो व्यवसाय की आर्थिक स्थिति की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है और महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायक होता है। भारतीय

अकाउंटिंग शिक्षा प्रणाली का आधार डबल एंट्री बुककीपिंग सिस्टम पर है, जिसे पहले कई विकसित देशों जैसे जापान, इटली और यूनाइटेड किंगडम द्वारा पेश किया गया था। आज भी, व्यापार और उद्योग के मौद्रिक लेनदेन को रिकॉर्ड, वर्गीकृत और संक्षिप्त करने की कला को भारत की अकाउंटिंग शिक्षा की प्रक्रिया माना जाता है। लेखांकन शिक्षा की शुरुआत भारत में 19वीं सदी के अंत में हुई थी। पहला वाणिज्य विद्यालय 1886 में मद्रास (अब चेन्नई) में एक चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा स्थापित किया गया था। इसके बाद, 1903 में कोलकाता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में एक वाणिज्य स्कूल स्थापित किया गया, जिसने वाणिज्य और लेखांकन शिक्षा को बढ़ावा दिया। स्वतंत्रता के बाद, 1990 के दशक में अकाउंटिंग शिक्षा को वाणिज्य शिक्षा की एक शाखा के रूप में माना गया। भारत में लेखांकन शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस नीति में व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया गया और शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की बात कही गई। हालांकि, लेखांकन शिक्षा को इस नीति में उस तरह की प्राथमिकता नहीं मिली जैसा कि आज की आवश्यकता है। शिक्षा में अधिकतर जोर सैद्धांतिक ज्ञान पर था और व्यावहारिक अनुप्रयोगों की कमी थी। NCF 2005 ने शिक्षा में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी और अनुभवात्मक शिक्षण पर जोर दिया। इस रूपरेखा में यह सिफारिश की गई कि शिक्षा को छात्रों के लिए अधिक प्रासंगिक और व्यावहारिक बनाया जाए। लेखांकन शिक्षा के संदर्भ में, NCF 2005 ने सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक कौशल के विकास की आवश्यकता पर बल दिया। इसमें अनुशंसा की गई कि छात्रों को वास्तविक जीवन के वित्तीय दस्तावेज़ों और व्यावसायिक परिस्थितियों के साथ परिचित कराया जाए ताकि वे बेहतर ढंग से सीख सकें और समझ सकें। इसके अलावा, समय-समय पर विभिन्न विशेषज्ञ समितियों और शिक्षा आयोगों ने शिक्षा के व्यावहारिक दृष्टिकोण पर जोर दिया। इन सिफारिशों में इस बात पर जोर दिया गया कि लेखांकन जैसे व्यावसायिक विषयों में छात्रों को वास्तविक जीवन के अनुभवों और परियोजनाओं के माध्यम से शिक्षित किया जाए। लेकिन, इन नीतियों और सिफारिशों के बावजूद, वर्तमान समय में भारतीय विद्यालयों में लेखांकन शिक्षा में अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। अधिकांश स्कूलों में लेखांकन की शिक्षा मुख्य रूप से सैद्धांतिक होती है मुख्यतः व्याख्यान आधारित शिक्षण विधियाँ जो रटने की विधि पर जोर देती हैं (जैन और सिन्हा, 2020), इसके परिणामस्वरूप, छात्रों को अवधारणाओं की गहरी समझ और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग में कठिनाई होती है। व्यावहारिक अनुभव के अवसरों की कमी के कारण, छात्रों को वास्तविक जीवन के वित्तीय दस्तावेज़ों के साथ काम करने या व्यावहारिक अभ्यास करने का पर्याप्त मौका नहीं मिलता है। जिससे शैक्षणिक सीखने और उद्योग की आवश्यकताओं के बीच की खाई बनी रहती है (शर्मा, 2021)। इसके अलावा, लेखांकन के वर्तमान पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण कौशल जैसे कि आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान और डेटा विश्लेषण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे छात्रों को भविष्य की चुनौतियों के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं किया जा रहा है। साथ ही, पाठ्यक्रम की कठोर संरचना के कारण छात्रों को अपनी रुचियों और आवश्यकताओं के अनुसार सीखने का लचीलापन नहीं मिल पाता। लेखांकन शिक्षा में अन्य विषयों के साथ अंतरविषयक जुड़ाव की भी कमी है, जिससे छात्रों की शिक्षा सीमित हो जाती है और व्यापक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाता। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 में अनुभवात्मक शिक्षण

(Experiential Learning) को बढ़ावा देने की सिफारिश की गई है, जिससे लेखांकन शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और प्रभावी बनाया जा सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 का वाणिज्य शिक्षा पर प्रभाव

NEP 2020 भारतीय वाणिज्य शिक्षा में महत्वपूर्ण बदलाव लाने वाली है। अंतरविषयक शिक्षण, पाठ्यक्रम पुनरडिजाइन और व्यावहारिक अनुभव को बढ़ावा देकर, नीति का उद्देश्य छात्रों को एक गतिशील वैश्विक अर्थव्यवस्था में सफलता के लिए आवश्यक कौशल से लैस करना है। यह परिवर्तनकारी दृष्टिकोण न केवल शैक्षिक परिणामों को सुधारता है बल्कि छात्रों को भविष्य के करियर अवसरों के लिए भी तैयार करता है।

अंतरविषयक दृष्टिकोण: NEP 2020 वाणिज्य और प्रबंधन शिक्षा में अंतरविषयक दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है। यह दृष्टिकोण न केवल विविध शैक्षिक पृष्ठभूमियों को शामिल करके शिक्षण वातावरण को सुधारता है, बल्कि नीति के समग्र शिक्षा के लक्ष्य के साथ भी मेल खाता है। उद्योग इंटर्नशिप, जो 3-4 महीने की होती है, को एक प्रमुख रणनीति के रूप में उजागर किया गया है जो छात्रों को व्यावसायिक संचालन का व्यावहारिक अनुभव प्रदान करती है, जो उनके करियर विकास के लिए आवश्यक है।

पाठ्यक्रम पुनर्डिजाइन: शोध लेख ने परिणाम आधारित शिक्षा के आधार पर वाणिज्य और प्रबंधन पाठ्यक्रमों के पुनर्डिजाइन की आवश्यकता पर चर्चा की है। यह पुनरडिजाइन छात्रों को वैश्विक नौकरी बाजार की मांगों को पूरा करने के लिए तैयार करने के लिए महत्वपूर्ण है। अध्ययन दर्शाता है कि वाणिज्य शिक्षा में भागीदारों को यह पता होना चाहिए कि वे क्या सीखेंगे और यह उनके भविष्य के करियर के लिए कैसे लाभकारी होगा, जिससे NEP 2020 के उद्देश्यों के साथ संरेखण होता है।

विषय चयन में लचीलापन: NEP 2020 छात्रों के लिए विषय चयन में लचीलापन प्रस्तुत करती है, जिससे वाणिज्य धारा में छात्र विभिन्न अनुशासनों में विषय चुन सकते हैं। यह लचीलापन शैक्षिक अनुभव को बढ़ाने की उम्मीद है, जिससे छात्र अपनी रुचियों और करियर आकांक्षाओं के अनुसार अपना अध्ययन अनुकूलित कर सकें। उदाहरण के लिए, छात्र अब कराधान और लेखांकन जैसे विषयों को मानविकी या विज्ञान से संबंधित विषयों के साथ जोड़ सकते हैं, जिससे एक अधिक एकीकृत शिक्षण अनुभव को बढ़ावा मिलता है।

भागीदारों पर प्रभाव: एक अध्ययन जो वाणिज्य और प्रबंधन अनुशासन में NEP 2020 के प्रति जागरूकता का मूल्यांकन करता है, ने पाया कि नीति का उद्देश्य रचनात्मक क्षमता, कौशल और विश्लेषणात्मक सोच को विकसित करना है। ये क्षमताएँ बदलती आर्थिक परिदृश्य में लगातार आवश्यक होती जा रही हैं, यह इंगित करता है कि NEP 2020 वाणिज्य शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाली है।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा: NEP 2020 का अनुभवजन्य शिक्षण और व्यावसायिक अनुभव पर जोर भारतीय वाणिज्य स्नातकों की वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के रूप में देखा जा रहा है। पाठ्यक्रम में वास्तविक दुनिया के अनुभवों को एकीकृत करके, छात्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार वातावरण की चुनौतियों के लिए बेहतर ढंग से तैयार होते हैं।

अनुभव-आधारित अधिगम: सैद्धांतिक ढाँचा

अनुभव-आधारित अधिगम (Experiential Learning) एक शिक्षण दृष्टिकोण है जिसमें छात्रों को वास्तविक दुनिया के अनुभवों के माध्यम से सीखने का अवसर मिलता है। यह दृष्टिकोण **डेविड कोलब** के अनुभव-

आधारित अधिगम सिद्धांत (1984) पर आधारित है, जो शिक्षा को एक सक्रिय प्रक्रिया मानता है जहाँ ज्ञान अनुभवों के माध्यम से उत्पन्न होता है। डेविड कोलब का मॉडल एक चक्रीय प्रक्रिया पर आधारित है -

1. अनुभव -विचलन (महसूस करने और देखने की प्राथमिकता)
2. चिंतन -आत्मसात करना (सोचने और देखने को प्राथमिकता)
3. विचार -अभिसारी (सोचने और करने की प्राथमिकता)
4. क्रियान्वयन -समायोजन (महसूस करने और करने के लिए वरीयता)

यह चक्र छात्रों को सक्रिय रूप से सामग्री के साथ जुड़ने, अपने अनुभवों पर विचार करने और अपनी जानकारी को वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू करने के लिए प्रोत्साहित करता है। अनुभवजन्य शिक्षण पर जोर लेखांकन में व्यावहारिक कौशल की आवश्यकता के साथ मेल खाता है।

डेवी का अनुभव सिद्धांत (1938) शिक्षा में अनुभव के महत्व पर जोर देता है और तर्क करता है कि अधिगम, क्रिया और चिंतन की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। डेवी का दृष्टिकोण शिक्षा और वास्तविक जीवन के अनुभवों के बीच संबंध को रेखांकित करता है, यह बताते हुए कि छात्र तब सबसे अच्छा सीखते हैं जब वे अकादमिक सामग्री को अपने स्वयं के अनुभवों से जोड़ सकते हैं।

लावे और वेंगर द्वारा विकसित स्थितिगत अधिगम सिद्धांत (1991) इस बात की पुष्टि करता है कि अधिगम स्वाभाविक रूप से सामाजिक होता है और एक विशिष्ट संदर्भ में होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, ज्ञान का अधिग्रहण वास्तविक दुनिया की गतिविधियों और अभ्यास समुदायों में भागीदारी के माध्यम से होता है।

पियाजे (1967) और वायगोत्स्की (1978) द्वारा प्रभावित निर्माणवादी अधिगम सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि अधिगमकर्ता अनुभव और चिंतन के माध्यम से अपनी समझ और ज्ञान का निर्माण करते हैं। अधिगम को एक सक्रिय प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जहाँ छात्र अपने पूर्व ज्ञान और अनुभवों पर निर्माण करते हैं।

शॉन की परावर्तक चिकित्सक की अवधारणा (1983) में पेशेवर अधिगम में चिंतन की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। वह इस विचार पर ध्यान केंद्रित करते हैं कि पेशेवर अपने अभ्यास में की गई क्रियाओं पर विचार करके सीखते हैं। यह परावर्तक अभ्यास पेशेवर दक्षता विकसित करने के लिए आवश्यक है।

समस्या-आधारित अधिगम (PBL), जो 1960 के दशक में उभरा, वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने के माध्यम से आत्म-निर्देशित अधिगम को प्रोत्साहित करता है। यह एक छात्र-केंद्रित शिक्षाशास्त्र है जिसमें छात्र एक खुले अंत वाले समस्या को हल करने के अनुभव के माध्यम से एक विषय के बारे में सीखते हैं। यह आत्म-निर्देशित अधिगम, आलोचनात्मक सोच और ज्ञान के अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करता है। ये ढाँचे मिलकर लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक अधिगम के एकीकरण का समर्थन करते हैं, जिससे व्यावहारिक कौशल और सैद्धांतिक समझ दोनों को बढ़ावा मिलता है।

हाल के साहित्य में कक्षा में व्यावहारिक गतिविधियों के माध्यम से अनुभवात्मक अधिगम के सकारात्मक प्रभाव पर जोर दिया गया है। **सतहे और यू** (2024) ने कोलब और फ्राई के (1975) चार-चरणीय अनुभवात्मक अधिगम मॉडल को लेखांकन चक्र परियोजना में एक आभासी व्यापार सिमुलेशन के माध्यम से लागू किया। इस दृष्टिकोण में छात्रों ने व्यवसायिक गतिविधियों के आधार पर निर्माण, अवलोकन, विश्लेषण और निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग

लिया। फीडबैक से पता चला कि छात्रों को यह परियोजना प्रेरक और प्रासंगिक लगी, जिससे तथ्यात्मक, संकल्पनात्मक, प्रक्रियात्मक, और मेटाकॉग्निटिव आयामों में कौशल में सुधार हुआ। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सिमुलेशन-आधारित अनुभवात्मक अधिगम लेखांकन शिक्षा को बढ़ाने में प्रभावी है।

ओउयांग (2024) ने यू.एस. सीपीए प्रैक्टिस परीक्षा के वित्तीय लेखांकन और ऑडिट सेक्शनों में चीनी लेखांकन छात्रों के प्रदर्शन पर समस्या-आधारित अधिगम (PBL) के प्रभाव की जांच की। अध्ययन ने पीबीएल का उपयोग करने वाले छात्रों और पारंपरिक विधियों का उपयोग करने वाले छात्रों के अंकों की तुलना की, जिसमें पाया गया कि पीबीएल परीक्षा प्रदर्शन में महत्वपूर्ण सुधार करता है।

वांग और चियू (2022) ने व्यावसायिक प्रक्रियाओं और रूपों की समझ बढ़ाने के लिए बिक्री और खरीद लेन-देन चक्रों को पढ़ाने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। अध्ययन ने उन छात्रों के सीखने के परिणामों की तुलना की जिन्होंने इन गतिविधियों में भाग लिया और उन लोगों की तुलना की जिन्होंने केवल सैद्धांतिक निर्देश प्राप्त किया। परिणामों से पता चला कि व्यावहारिक गतिविधियाँ समझ और आलोचनात्मक सोच कौशल में सुधार करती हैं। यह विधि, हालांकि लेखांकन सूचना प्रणालियों में उपयोग की जाती है, विभिन्न व्यावसायिक विषयों में लागू हो सकती है।

अर्फाह (2006) ने लेखांकन शिक्षा को बढ़ाने के लिए एक सिमुलेशन मॉड्यूल को शामिल करने वाली शिक्षण पद्धति प्रस्तुत की। यह मॉड्यूल छात्रों को विभिन्न चरणों में प्रविष्टियाँ करते हुए पत्रिकाओं, खातों, और वित्तीय विवरण उत्पन्न करने की अनुमति देता है, जिससे पारंपरिक शिक्षण विधियों को पूरक बनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य छात्रों की लेखांकन अवधारणाओं और चक्रों की समझ को गहरा करना है, और उन्हें स्वतंत्र रूप से वित्तीय विवरण बनाने और प्रदर्शित करने में सक्षम बनाना है। यह पद्धति व्यावहारिक, हाथों-हाथ अनुभव प्रदान करके अधिगम को अधिक प्रभावी बनाने के लिए डिज़ाइन की गई है।

ये कुछ अनुभवजन्य प्रमाण हैं कि जिन छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने के लिए सिमुलेशन परियोजनाओं के माध्यम से पढ़ाया जाता है, वे अधिगम प्रक्रिया में अधिक सक्रिय रूप से शामिल होते हैं और विभिन्न स्तरों के आकलन में उच्च स्कोर प्राप्त करते हैं। शोध दिखाते हैं कि परियोजना आधारित शिक्षण अनुभव, इंटर्नशिप, और सिमुलेशन छात्र संलग्नता और ज्ञान की धारण को महत्वपूर्ण रूप से सुधारते हैं (पटेल और वर्मा, 2023)।

शैक्षिक सुधारों पर साहित्य सुझाता है कि नीति परिवर्तन को प्रभावी होने के लिए समकालीन शिक्षण विधियों के साथ संरेखित होना चाहिए। निर्माणवादी शिक्षण सिद्धांत, जो यह मानता है कि शिक्षार्थी अनुभव के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करते हैं, NEP की अनुभवजन्य शिक्षण की वकालत का आधार है (ब्रूसिलोव्स्की और मिलान, 2018)। यह दृष्टिकोण आलोचनात्मक सोच और समस्या-सुलझाने के कौशल को विकसित करने का लक्ष्य रखता है, जो लेखांकन के गतिशील क्षेत्र में आवश्यक हैं।

विद्यालय स्तर पर लेखांकन में अनुभवात्मक शिक्षण का कार्यान्वयन

लेखांकन एक ऐसा विषय है जो सैद्धांतिक ज्ञान और व्यावहारिक अनुप्रयोग का मिश्रण है। पारंपरिक शिक्षण विधियाँ, जो अक्सर पाठ्यपुस्तक-आधारित शिक्षण पर केंद्रित होती हैं, छात्रों को वित्तीय लेनदेन और व्यावसायिक प्रक्रियाओं की जटिलताओं को समझने में मदद करने में विफल हो सकती हैं। अनुभवात्मक अधिगम छात्रों को शैक्षणिक ज्ञान

के साथ-साथ व्यावहारिक अनुभव भी प्रदान करता है, जो उन्हें पेशेवर जीवन के लिए बेहतर तरीके से तैयार करता है। यह शिक्षण विधि छात्रों को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और कुशल पेशेवर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विद्यालय स्तर पर लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक शिक्षण को एकीकृत करने के लिए निम्नलिखित **रणनीतियाँ** उपयोग की जा सकती है:

व्यावसायिक प्रैक्टिस सेट्स: छात्रों को वास्तविक व्यापारिक चालानों, लेन-देन और वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह उन्हें वास्तविक जीवन की स्थितियों का सामना करने और लेखा सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से लागू करने का अवसर प्रदान करेगा।

भूमिका निभाना (Role Play): छात्रों को विभिन्न लेखा स्थितियों में विभिन्न पात्रों की भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, वे एक लेखाकार, लेखा परीक्षक या वित्त प्रबंधक की भूमिका निभा सकते हैं, जिससे वे विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से लेखा समस्याओं को समझने में सक्षम होंगे। Rosemary Kerr (2015) के अनुसार, अकाउंटिंग में अनुभवात्मक शिक्षा के अंतर्गत किए गए छोटे रोल-प्ले गतिविधियाँ छात्रों के संचार कौशल, समस्या समाधान, नैतिक निर्णय लेने की क्षमता और अकाउंटिंग ज्ञान के अनुप्रयोग को बढ़ाने में सहायक साबित हुई। ऑनलाइन वीडियो, जैसे YouTube, ने शिक्षक प्रशिक्षण और छात्र समर्थन के लिए महत्वपूर्ण संसाधन प्रदान किए।

परियोजनाएँ और केस स्टडीज़: छात्रों को वास्तविक जीवन के व्यवसायों पर आधारित परियोजनाओं और केस स्टडीज पर काम करने के लिए दिया जा सकता है। यह उन्हें व्यापारिक दुनिया के संदर्भ में लेखा सिद्धांतों को लागू करने का अवसर प्रदान करेगा। Trevor Stanley (2013) के अनुसार, गुणात्मक केस स्टडी और कार्यस्थल प्लेसमेंट शिक्षण में लाभकारी है। यह शोध कार्यस्थल प्लेसमेंट के लाभों पर साहित्य में एक छोटा योगदान जोड़ता है।

वित्तीय सॉफ्टवेयर का उपयोग: छात्रों को वित्तीय सॉफ्टवेयर और टूल्स का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है, जिससे वे आधुनिक लेखा प्रक्रियाओं से परिचित हो सकें और डिजिटल युग के लिए तैयार हो सकें। लेखांकन सॉफ़्टवेयर और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म को शामिल करने से एक अधिक इंटरएक्टिव और आकर्षक शिक्षण वातावरण तैयार किया जा सकता है, जो छात्रों को आधुनिक लेखांकन प्रथाओं के लिए तैयार करता है (रेड्डी और शर्मा, 2022)।

क्षेत्र भ्रमण: छात्रों को व्यवसायों या लेखांकन फर्मों में लेकर जाना, जहाँ वे वास्तविक समय में लेखांकन प्रथाओं को देख सकें। स्टीवन डेलापोर्टास और सह-लेखक (2013) के लेख "लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक शिक्षा: एक जेल यात्रा" से पता चला कि छात्र इस अनुभव में बौद्धिक और भावनात्मक रूप से संलग्न थे छात्रों ने इस अनुभव से कई पाठ सीखे, जिसमें पेशेवर लेखाकारों द्वारा सामना की जाने वाली संघर्षों की प्रकृति, धोखाधड़ी के कारण और पेशेवर करियर में ऐसे संघर्षों से निपटने की रणनीतियाँ शामिल थीं। जिससे परिवर्तकारी शिक्षा का सबूत मिला।

सिमुलेटेड बिजनेस एनवायरनमेंट: छात्रों को लेखांकन सिद्धांतों को वास्तविक दुनिया के संदर्भ में लागू करने और उनकी समझ को गहरा करने के लिए स्कूल सिमुलेटेड व्यवसायिक परिदृश्यों का निर्माण कर सकते हैं, जहाँ छात्रों

को वित्तीय रिकॉर्ड्स का प्रबंधन, व्यापारिक निर्णय लेना और वित्तीय रिपोर्ट तैयार करनी होती है। बिजनेस सिमुलेशन गेम्स विद्यालय स्तर पर लेखांकन शिक्षा में अनुभवात्मक अधिगम को बढ़ावा देने का एक प्रभावी उपकरण हैं। बिजनेस सिमुलेशन गेम्स लेखांकन शिक्षा को अधिक प्रासंगिक, प्रभावी और छात्र-केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ईयाल एकहॉस और सह-लेखकों (2017) के लेख "प्रबंधन शिक्षा में अनुभवात्मक शिक्षण" में अनुभवात्मक शिक्षण सिद्धांत को एक अकाउंटेंसी-उन्मुख बोर्ड गेम पर लागू किया गया, और पाया कि गेम में भाग लेने वाले छात्रों के ग्रेड उन छात्रों से काफी अधिक थे जिन्होंने गेम में भाग नहीं लिया। इसके अलावा, गेम की मनोरंजन और समझने की सरलता ने कोर्स सामग्री की समझ को प्रभावित किया।

लेखांकन में अनुभवात्मक शिक्षण के लाभ

वास्तविक जीवन की समस्याओं का समाधान: अनुभवात्मक अधिगम के माध्यम से छात्रों को वास्तविक व्यवसायिक समस्याओं का समाधान करने का अवसर मिलता है। उदाहरण के लिए, छात्रों को विभिन्न व्यवसायिक परिदृश्यों के माध्यम से वित्तीय स्टेटमेंट्स तैयार करने, बहीखाता लिखने और लेखांकन की प्रक्रियाओं का अभ्यास कराया जा सकता है। यह उन्हें लेखांकन के सिद्धांतों को वास्तविक जीवन में लागू करने की क्षमता विकसित करने में मदद करता है।

प्रायोगिक ज्ञान: अनुभवात्मक अधिगम के तहत छात्रों को लेखांकन के प्रायोगिक पहलुओं पर काम करने का मौका मिलता है। जैसे कि, वे नकली व्यवसायों (Simulated Businesses) के लिए खातों का रखरखाव कर सकते हैं, जिससे वे समझ सकते हैं कि विभिन्न वित्तीय लेन-देन का लेखांकन कैसे किया जाता है। इस प्रकार का अभ्यास छात्रों को थीरी को समझने के साथ-साथ उसे व्यावहारिक रूप में लागू करने में सक्षम बनाता है।

व्यावसायिक कौशल का विकास: लेखांकन में अनुभवात्मक अधिगम छात्रों को केवल शैक्षणिक ज्ञान नहीं, बल्कि व्यावसायिक कौशल भी प्रदान करता है। इससे वे भविष्य में व्यवसायिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक काम करने के लिए तैयार होते हैं। यह उन्हें वित्तीय निर्णय लेने, समस्या समाधान और टीम वर्क जैसे महत्वपूर्ण कौशल सिखाता है, जो किसी भी लेखांकन पेशेवर के लिए आवश्यक होते हैं।

आत्मविश्वास में वृद्धि: जब छात्र अपने सीखे हुए सिद्धांतों को वास्तविक या नकली व्यवसायिक परिदृश्यों में लागू करते हैं, तो इससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। वे समझते हैं कि उन्होंने जो कुछ सीखा है, उसे वे व्यावहारिक रूप में भी उपयोग कर सकते हैं, जो उनके लिए प्रेरणादायक होता है।

अधिक गहन समझ:- अनुभवात्मक अधिगम के दौरान, छात्रों को विभिन्न लेखांकन प्रक्रियाओं और सिद्धांतों की गहन समझ विकसित करने का अवसर मिलता है। जब वे वास्तविक या नकली केस स्टडीज पर काम करते हैं, तो उन्हें पता चलता है कि लेखांकन सिद्धांतों का उपयोग किस प्रकार किया जाता है और वे इन सिद्धांतों को गहराई से समझ पाते हैं।

मूल्यांकन और प्रतिक्रिया: अनुभवात्मक अधिगम छात्रों को अपने कार्यों के लिए तत्काल प्रतिक्रिया प्राप्त करने का अवसर देता है। शिक्षक और सहपाठियों से मिली प्रतिक्रिया उन्हें अपनी गलतियों को सुधारने और अपने लेखांकन कौशल को निखारने में मदद करती है।

उद्यमिता कौशल का विकास: अनुभवात्मक अधिगम के माध्यम से छात्रों में उद्यमिता कौशल का भी विकास होता है। वे समझते हैं कि किस प्रकार लेखांकन की सही प्रक्रिया का पालन करके एक सफल व्यवसाय चलाया जा सकता है, जिससे उनके अंदर एक उद्यमी दृष्टिकोण विकसित होता है।

अनुभवात्मक शिक्षण के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ

संसाधनों की कमी: सभी स्कूलों में अनुभवात्मक शिक्षण को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक संसाधनों, जैसे वित्तीय सॉफ्टवेयर, वास्तविक व्यापारिक दस्तावेज़ या स्थानीय व्यवसायों तक पहुँच की सुविधा, उपलब्ध नहीं हो सकती। स्कूलों और कॉलेजों में अपर्याप्त अवसंरचना और संसाधन अनुभवजन्य शिक्षण पहलों की प्रभावशीलता को सीमित कर सकते हैं (मेहता, 2022)।

शिक्षक प्रशिक्षण: शिक्षकों को पारंपरिक शिक्षण विधियों से अनुभवात्मक शिक्षण दृष्टिकोणों की ओर शिफ्ट करने के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता हो सकती है।नई शिक्षण विधियों के अनुकूल होने के लिए शिक्षकों के लिए पेशेवर विकास कार्यक्रमों की कमी एक महत्वपूर्ण बाधा है (सिंह और गुप्ता, 2021)।

पाठ्यक्रम की कठोरता: मौजूदा पाठ्यक्रम कठोर हो सकता है, जिससे अनुभवात्मक शिक्षण गतिविधियों को शामिल करने के लिए आवश्यक लचीलेपन की कमी हो सकती है। पारंपरिक शैक्षिक प्रथाओं से बदलाव के प्रति प्रतिरोध नए शैक्षिक रणनीतियों को अपनाने में बाधा डाल सकता है (चौधरी और दास, 2023)।

मूल्यांकन विधियाँ: पारंपरिक मूल्यांकन विधियाँ अनुभवात्मक गतिविधियों के सीखने के परिणामों को सही से नहीं माप पातीं, जिससे नए मूल्यांकन उपकरणों के विकास की आवश्यकता होती है।

अनुभवात्मक शिक्षण को बढ़ावा देने में NEP 2020 की सिफारिशें

- **पाठ्यक्रम में लचीलापन:** स्कूलों को अपने संदर्भ के अनुसार अनुभवात्मक शिक्षण गतिविधियों को डिज़ाइन और लागू करने की अनुमति देना। NEP 2020 लेखांकन पाठ्यक्रमों के पुनरडिजाइन को प्रोत्साहित करता है ताकि बहुविषयक तत्वों को शामिल किया जा सके, जिससे सीखने के अनुभव को समृद्ध किया जा सके। अध्ययन दिखाते हैं कि अर्थशास्त्र, व्यवसाय प्रबंधन और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विषयों का एकीकरण छात्रों की लेखांकन की समझ को बढ़ाता है (कुमार और राव, 2022)।
- **शिक्षक सशक्तिकरण:** शिक्षकों को नए शैक्षणिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करना।
- **इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास:** डिजिटल और भौतिक इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास करना जो अनुभवात्मक शिक्षण का समर्थन करता है। स्कूलों को आवश्यक संसाधनों, जैसे कि लेखांकन सॉफ्टवेयर और वास्तविक व्यापारिक दस्तावेज़ों तक पहुँच, में निवेश करना चाहिए।
- **समग्र मूल्यांकन:** उन मूल्यांकन विधियों को बढ़ावा देना जो अनुभवात्मक शिक्षण के माध्यम से विकसित छात्रों के कौशलों की व्यापक रेंज को मापती हैं।

विद्यालय स्तर पर लेखांकन में अनुभवात्मक शिक्षण का एकीकरण, जैसा कि NEP 2020 द्वारा परिकल्पित किया गया है, लेखांकन शिक्षा को बदलने की क्षमता रखता है। पारंपरिक शिक्षण विधियों से आगे बढ़ते हुए, छात्र लेखांकन अवधारणाओं की गहरी समझ विकसित कर सकते हैं, अपनी समस्या-समाधान की क्षमताओं को बढ़ा सकते हैं, और वास्तविक दुनिया की चुनौतियों के लिए बेहतर रूप से तैयार हो सकते हैं। हालांकि, इस क्षमता को साकार करने के लिए संसाधनों, शिक्षक प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम की लचीलेपन से संबंधित चुनौतियों को दूर करने की आवश्यकता होगी। सही समर्थन के साथ, स्कूल अनुभवात्मक शिक्षण को सफलतापूर्वक लागू कर सकते हैं, जिससे अधिक संलग्न और सक्षम लेखांकन छात्रों का निर्माण हो सके।

संदर्भ सूची

1. अर्फाह, एम. (2006). सिमुलेशन के माध्यम से लेखांकन शिक्षा को बढ़ाना: एक व्यावहारिक दृष्टिकोण। जर्नल ऑफ अकाउंटिंग एजुकेशन, 24(3), 173-185.
2. ओउयांग, वाई. (2024)। समस्या-आधारित अधिगम (पीबीएल) और यू.एस. सीपीए प्रैक्टिस परीक्षा में चीनी लेखांकन छात्रों के प्रदर्शन पर इसका प्रभाव। जर्नल ऑफ अकाउंटिंग एजुकेशन, 42(1), 123-140.
3. कुमार, ए., और राव, एम. (2022). लेखांकन शिक्षा में अंतरविषयक दृष्टिकोण: एक नया दृष्टिकोण। जर्नल ऑफ़ कॉमर्स एजुकेशन, 18(3), 234-250।
4. चौधरी, एस., और दास, ए. (2023). NEP 2020 के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ: वाणिज्य शिक्षा का एक केस स्टडी। जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल चेंज, 24(1), 45-67।
5. जैन, आर., और सिन्हा, पी. (2020). लेखांकन शिक्षा में शैक्षिक प्रथाएँ: एक आलोचनात्मक विश्लेषण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ कॉमर्स एंड मैनेजमेंट, 30(2), 112-125।
6. दलवाड़ी, यज्ञेश, और कामिनी शाह। "लेखांकन विषय में गतिविधि आधारित अधिगम के लिए छात्रों की प्राथमिकताएँ: आनंद जिले का एक अध्ययन।" इंडियन जर्नल ऑफ अकाउंटिंग (आईजेए), 50 (2018): 1.
7. पटेल, एस., & वर्मा, आर. (2023). लेखा में परियोजना-आधारित शिक्षा: छात्र जुड़ाव को बढ़ावा देना। अकाउंटिंग एजुकेशन, 32(1), 55-70।
8. ब्रुसिलोव्स्की, पी., और मिलान, ई. (2018). अनुकूलनीय शिक्षण प्रौद्योगिकियाँ: सिद्धांत, मॉडल, और अनुप्रयोग। स्प्रिंगर।
9. मेहता, आर. (2022). उच्च शिक्षा में संसाधन आवंटन: NEP 2020 के प्रभाव। एजुकेशनल प्लानिंग, 29(2), 78-89।
10. रेड्डी, वी., & शर्मा, के. (2022). लेखा शिक्षा में प्रौद्योगिकी का एकीकरण: अवसर और चुनौतियाँ। जर्नल ऑफ़ बिजनेस एजुकेशन, 26(4), 299-310।
11. वांग, तवेई, एट अल. "हैंड्स-ऑन गतिविधियों के दृष्टिकोण का उपयोग करके व्यवसाय लेन-देन चक्रों को पढ़ाना।" जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज इन अकाउंटिंग, 19.2 (2022): 171-186.

12. शर्मा, पी. (2021). अंतर को पाटना: लेखा शिक्षा में व्यावहारिक अनुभव। इंडियन जर्नल ऑफ़ कॉमर्स, 75(4), 145-159।
13. सत्हे, एस., और यू, सी. (2024)। कोलब और फ्राई के अनुभवात्मक अधिगम मॉडल को एक लेखांकन चक्र परियोजना में लागू करना: एक आभासी व्यवसाय सिमुलेशन दृष्टिकोण। जर्नल ऑफ अकाउंटिंग एजुकेशन, 42(2), 201-220.
14. सिंह, ए., & गुप्ता, एस. (2021). NEP 2020 के संदर्भ में शिक्षक प्रशिक्षण: भविष्य के लिए एक रोडमैप। जर्नल ऑफ़ टीचर एजुकेशन एंड रिसर्च, 16(3), 12-25।
15. वांग, एक्स., और चियू, वाई. (2022)। बिक्री और खरीद लेन-देन चक्रों को पढ़ाने के लिए एक व्यावहारिक दृष्टिकोण: व्यवसाय प्रक्रियाओं की समझ को बढ़ाना। जर्नल ऑफ अकाउंटिंग इनफॉर्मेशन सिस्टम्स, 36, 100502.
16. https://en.wikipedia.org/wiki/National_Education_Policy_2020

38

भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रदूषित कर रहे शिकारी एवं प्रपंची शोध-पत्रिकाओं के उद्भव के कारणों का अध्ययन

डॉ. अखिलेश कुमार
सह-आचार्य (शिक्षा), तेजपुर विश्वविद्यालय
डॉ. कृष्ण कान्त त्रिपाठी
सहायक आचार्य, मिजोरम विश्वविद्यालय

'प्रिडेटरी जर्नल्स' एवं 'क्लोन्ड जर्नल्स' हेतु हिंदी में कोई मानक तकनीकी शब्द उपलब्ध न होने के कारण लेखकों को, इनकी प्रवृतियों के अनुरूप, 'शिकारी पत्रिका' एवं 'प्रपंची पत्रिका' शब्द सर्वाधिक उपयुक्त लगी जिसका प्रयोग लेखक द्वारा अन्य प्रकाशनों में भी किया गया है (कुमार, 2020; कुमार एवं अन्य, 2021; कुमार, 2022b, कुमार एवं त्रिपाठी, 2023) । वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रदूषित कर रही शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं (Predatory & Cloned Journals) पर चर्चा एक ऐसा विषय है जो वैज्ञानिक समुदाय के मध्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनपर नियंत्रण की बात भी सम्पूर्ण विश्व में उठ रही है क्योंकि शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं पर उपलब्ध साहित्य के अनुसार, इन पत्रिकाओं ने समस्त वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रदूषित किया है एवं गुणवत्ता-रहित शोध पत्रों के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। एरिक्सन एवं हेलेग्सन (2018) लिखते हैं कि आज तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि कौन-सी शोध पत्रिकाएं शिकारी हैं, वहीं शमशीर एवं अन्य (2017) का मानना है कि यह स्पष्ट नहीं है कि आखिर शिकारी शोध पत्रिकाओं में क्या छापा जाता है? कई विद्वान यह मानते हैं कि शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाएं ' समकक्ष व्यक्ति समीक्षा' जैसी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया के बिना ही शोध पत्रों को प्रकाशित कर देती हैं परन्तु एरिक्सन एवं हेलेग्सन ने वर्णन किया है कि विश्व की प्रतिष्ठित इंडेक्सिंग एजेंसी बायो-मेड सेंट्रल (BMC) ने 2014 में पाया कि लगभग 50 शोध-पत्र झूठी समकक्ष-व्यक्ति समीक्षा (False peer-review) के आधार पर प्रकाशित किये गए थे (एरिक्सन एवं हेलेग्सन, 2017)। कुक के 2017 के अध्ययन में 2013 से 2017 के बीच शिकारी पत्रिकाओं की कुल संख्या में 700 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी है (कुक, 2017)।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक रेंडी सैकमेन (Randy Schekman) जिन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में 2013 में नोबेल अवार्ड से सम्मानित किया गया था, ने चंद बड़े प्रकाशन-गृहों द्वारा प्रकाशित किये जा रहे कथित गुणवत्तापूर्ण जर्नलों को 'विलासितापूर्ण जर्नल (Luxury Journals)' की संज्ञा प्रदान की है और कहा है कि इस प्रकार की पत्रिकाएँ उच्च स्तरीय शोध प्रकाशनों का दावा तो करती हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है। 'द गार्डियन' में 9 दिसंबर, 2013 को छपे एक रिपोर्ट में रेंडी सैकमेन (Randy Schekman) ने कथित गुणवत्तापूर्ण शोध-पत्रिकाओं के बायकॉट की बात कही है। रेंडी सैकमेन (Randy Schekman) ने तो इम्पैक्ट फैक्टर की वैधता पर भी सवाल खड़े किये हैं और कहा है कि 'इम्पैक्ट फैक्टर' ने विज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रकाशनों को विषाक्त कर दिया है (द गार्जियन, 2013)। इम्पैक्ट

फैक्टर का निर्धारण किसी शोध-पत्रिका में छपे शोध-पत्रों को प्राप्त कितनी साईटेशन के आधार पर होती है। रेंडी सैकमेन (Randy Schekman) कहते हैं कि किसी पत्र का साइटेशन ज्यादा होने का अर्थ यह कदापि नहीं कि वह एक गुणवत्ता-पूर्ण शोध है, ज्यादा साईटेशन का कारण यह हो सकता है कि वह विज्ञान हो, लुभावना हो, उत्तेजक हो अथवा गलत हो। उच्च इम्पैक्ट फैक्टर (Impact Factor) उच्च गुणवत्ता का पैमाना नहीं है (द गार्जियन, 2013)।

शिकारी शोध पत्रिकाओं का मुद्दा सर्वप्रथम जेफ्रे बिआल ने 2010 में उठाया(कार्टराईट, 2016; क्लेमन एवं अन्य, 2017; कुमार, 2020; कुमार एवं अन्य 2021, कुमार, 2022; मानका एवं अन्य, 2018; मास्टन एवं ऐशक्राफ्ट, 2016; नरिमानी एवं डादका, 2017; शमशीर एवं अन्य, 2017; श्याम, 2015; डेमिर, 2018; क्रोक्ज़िक एवं कुल्कजिसकी, 2021; निकोल्सन, 2017; शेन एवं ब्जोर्क, 2015; श्याम, 2015; टैकसरिया डा सिल्वा एवं अन्य., 2019; वदीम एवं अन्य., 2017) और कथित शिकारी पत्रिकाओं की एक सूची उन्होंने अपने वेबसाइट पर डाली, जो कि बाद के वर्षों में उन्हें हटानी भी पड़ी, परन्तु यह तबतक यह चर्चा का विषय हो चुका था कि गुणवत्तारहित अनुसन्धान प्रकाशनों पर कैसे रोक लगायी जाय।

शोध का उद्देश्य: शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं पर अध्ययन के क्रम में शोधार्थियों ने समस्या की विकटता जानने एवं यह जानने का प्रयास किया कि इनमें किन विद्वानों के अनुसन्धान पत्र प्रकाशित होते हैं एवं यह पाया कि इस प्रकार की कुछ पत्रिकाओं में शोधार्थियों से लेकर वरिष्ठ आचार्यों तक के अनुसन्धान पत्र प्रकाशित किये गए हैं, साथ ही यह भी सामने आया कि भारत के कई प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के आचार्यगण का नाम इन पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध-पत्रों में शामिल है (कुमार एवं त्रिपाठी, 2023)। ऐसे में शोधार्थियों को जिज्ञासा हुई कि यह जानने का प्रयास किया जाय कि आखिर क्यों शोधार्थी शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं में अपने शोध-पत्रों का प्रकाशन कर रहे हैं?

शोध प्रविधि: केयर लिस्ट के बावजूद विद्वानों द्वारा सतत शिकारी एवं प्रपंची शोध-पत्रिकाओं में किये जा रहे प्रकाशन के कारणों पर विस्तृत अध्ययन के लिए उच्च शिक्षा में कार्यरत छह विद्वानों के साथ फोकस समूह परिचर्चा नवंबर 2023 में ऑनलाइन आयोजित की गयी। फोकस समूह परिचर्चा से पूर्व, शोधार्थियों ने कुछ विद्वानों से व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से इसके कारणों को जानने का प्रयास किया परन्तु यह पाया कि कई विद्वान इस समस्या के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं थे अतः अनुसन्धान के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, इसकी गुणात्मक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए तथा समस्या की जड़ों तक जाने के लिए फोकस समूह परिचर्चा लेखकों को सर्वधिक उपयुक्त विधि लगी। फोकस समूह परिचर्चा हेतु विद्वानों का चयन सोद्देश्य पूर्ण विधि के द्वारा किया गया था जिसके मानदंडों में विद्वानों की इस क्षेत्र में रूचि, एतद्सम्बन्धी विषय पर उनके द्वारा किये गए प्रकाशन एवं परिचर्चा में भाग लेने हेतु उनकी सहमति, उनके द्वारा स्कूपस/ वेब ऑफ़ साइंस में लिस्टेड शोध-पत्रिका में कम से कम एक अनुसन्धान-पत्र एवं केयर लिस्टेड शोध-पत्रिकाओं में कम से कम पांच शोध-पत्र प्रकाशन शामिल था। प्रतिभागी विद्वानों में से चार अध्यापक शिक्षा के एवं दो समाजविज्ञान विषय के थे। विज्ञान विषयों के कुछ विद्वानों से भी इस हेतु संपर्क किया गया परन्तु उन्होंने इस अनुसन्धान में रूचि नहीं दिखायी अतः उन्हें फोकस समूह परिचर्चा में शामिल नहीं किया जा सका। न्यूनतम शोधपत्र प्रकाशन का मानदंड इसलिए रखा गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि समस्त

विद्वान शोध पत्र प्रकाशन की प्रक्रिया से पूर्ण परिचित हैं। फोकस समूह परिचर्चा को विषय पर केन्द्रित रखने हेतु, इस शोध-पत्र के लेखकों ने मॉडरेटर की भूमिका निभाई।

चर्चा एवं निष्कर्ष:

फोकस समूह परिचर्चा के परिणामस्वरूप शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं में विद्वानों द्वारा सतत प्रकाशन के जो कारण सामने आये उनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है:

1. **शिकारी पत्रिकाओं के प्रति जागरूकता का अभाव:** फ़ोकस समूह परिचर्चा में शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं में प्रकाशन के एक बड़े कारण के रूप में भारतीय शोधार्थियों में शिकारी पत्रिकाओं के प्रति जागरूकता का अभाव सामने आया। इस वजह से कई बार अच्छे एवं स्तरीय शोध पत्र भी शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु प्रेषित कर दिए जाते हैं एवं प्रकाशन के उपरांत, शोधार्थी अपने आप को ठगा सा महसूस करता है जब उसे पता चलता है कि उसके शोध पत्र का प्रकाशन किसी शिकारी अथवा प्रपंची शोध पत्रिका में किया गया है। हाल के वर्षों में इस हेतु भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उपयुक्त कदम उठाए गए हैं जिसमें अनुसंधान नैतिकता और शैक्षणिक कदाचार को एक अनिवार्य विषय के रूप में पीएचडी पाठ्यक्रम कार्य में शामिल करने का निर्देश समस्त विश्वविद्यालयों को दिया गया है। इससे शिकारी एवं प्रपंची शोध पत्रिकाओं के प्रति विद्वानों मेंजागरूकता बढ़ेगी एवं यह समस्या अपने आप नियंत्रित हो सकेगी। समस्त विद्वान इससे भी सहमत थे कि इस प्रकार की पत्रिकाओं की धोखाधड़ी के शिकार वे शोधार्थी ज्यादा हो रहे हैं जो सूचना एवं संप्रेषण तकनीक का अल्प ज्ञान रखते हैं एवं साइबर सुरक्षा के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं हैं। ऐसे विद्वान प्रायः प्रकाशन हेतु शोध पत्रिका के चयन से पूर्व उसकी वैधता सत्यापित नहीं करते एवं इस प्रकार की पत्रिकाओं द्वारा भेजे गए स्पैम एवं फिशिंग मेल को वास्तविक मान कर उन पर भरोसा कर लेते हैं। उच्च शिक्षा में कार्यरत विद्वानों के मध्य साइबर सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाये जाने से शिकारी एवं प्रपंची प्रकाशनों की समस्या को कम किया जा सकता है।
2. **भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा रही गुणवत्तापूर्ण अनुसन्धान पत्रिकाओं की कमी:** परिचर्चा के दौरान भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा रही गुणवत्तापूर्ण अनुसन्धान पत्रिकाओं की कमी, शिकारी एवं प्रपंची अनुसन्धान पत्रिकाओं के फलने फूलने के एक बड़े कारण के रूप में उभर कर सामने आया। अधिकांश कथित गुणवत्तापूर्ण पत्रिकाएं आज भी अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित की जा रही हैं एवं एक शोधार्थी जो अपने विषय का विद्वान तो है परंतु अंग्रेजी भाषा पर उसकी पकड़ अच्छी नहीं है उसके लिए स्थानीय भाषा एवं प्रायः हिंदी भाषा में भी शोध पत्र प्रकाशन के अवसर अत्यंत सीमित हो जाते हैं। किसी प्रकार, शोधार्थी अपना शोध प्रतिवेदन अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके प्रकाशन हेतु भेजता है तो भाषाई गलतियों के कारण शोध वह अधिकांश शोध पत्रिकाओं से वापस कर दिया जाता है अंततः शोधार्थी शिकारी पत्रिकाओं द्वारा त्वरित प्रकाशन के मिथ्या विज्ञापन के जाल में फंस जाता है। वस्तुत भारत एक बहुभाषायी राष्ट्र है एवं कई राज्यों में शिक्षा का माध्यम वहां की स्थानीय भाषा है परंतु उन स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित की जा रही शोध पत्रिकाओं का अभाव है। कुछ भारतीय उच्च शिक्षा संस्थान शोध-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी कर रहे हैं परन्तु वे 'नियमित रूप से अनियमित' हैं चाहे वे अंग्रेजी अथवा हिंदी अथवा किसी अन्य

भाषा में क्यों न हो। भारत में हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किये जा रहे शोध-पत्रों की बात करें तो उच्च रैंकिंग प्राप्त शिक्षा संस्थान भी वर्तमान समय में कुछ अपवादों को छोड़कर शोध पत्रिकाओं का प्रकाशन नहीं कर रहे। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में कई ऐसी पत्रिकाएं हैं जिन्हें अगर उपयुक्त संसाधन उपलब्ध हो तो उनमें एक अच्छी शोध-पत्रिका बनने की क्षमता है और ये नवोदित शोध पत्रिकाएं विशेषकर क्षेत्रीय भाषा की पत्रिकाएं हैं जो शिकारी पत्रिका न होकर अल्प संसाधन युक्त पत्रिकाएं हैं। अभी हाल में जिस प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन एवं अनुवाद की पहल की है, ठीक उसी प्रकार भारतीय भाषाओं में शोध पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं उनके प्रोत्साहन की पहल की आवश्यकता है ताकि शोध पत्र प्रकाशन में 'अंग्रेजी भाषा पर अच्छी पकड़ की बाध्यता' होना किसी भी शोधार्थी के लिए एक व्यवधान के रूप में सामने न आए। इस संदर्भ में यह लिपिबद्ध करना भी समीचीन होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, स्थानीय भाषाओं में शिक्षा पर बल देती है और तब स्थानीय भाषा में शोध पत्रिकाओं का प्रकाशन, प्रपंची एवं शिकारी शोध पत्रिकाओं पर नियंत्रण के लिए एक अत्यंत प्रभावी कदम हो सकता है। इस हेतु भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों को आगे आना चाहिए एवं उन्हें भारतीय भाषाओं में अनुसंधान पत्रिकाओं के प्रकाशन के प्रति विचार करना चाहिए। विश्व के कई ऐसे देश हैं जहां शोध पत्रिकाओं का प्रकाशन अंग्रेजी की बजाय उनकी स्थानीय भाषा में किए जाते हैं। इस पुनीत कार्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित नेशनल रिसर्च फाऊंडेशन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है जिस पर भी विचार किए जाने की आवश्यकता है।

3. **समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की प्रक्रिया के विकल्पों पर विचार की आवश्यकता:** शिकारी पत्रिकाओं की अवधारणा समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की संकल्पना पर आधारित है। वैज्ञानिक प्रकाशनों की वैधता सुनिश्चित करने के लिए समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की परंपरा रही है एवं इसके कई मॉडल विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रयोग किये जा रहे हैं। शिकारी पत्रिकाएं कथित प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं से इसलिए अलग है क्योंकि वे समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की प्रक्रिया का दावा तो करती हैं परंतु उसका पालन नहीं करती। वस्तुत इसे सत्यापित करने का कोई साधन नहीं है कि शोध पत्रिका ने इस प्रक्रिया का उपयुक्त पालन किया है या नहीं? वर्तमान समय में समक्ष व्यक्ति समीक्षा की प्रक्रिया का विकल्प भी खोजा जाना चाहिए क्योंकि समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की प्रक्रिया भी आलोचना से परे नहीं है। इस प्रक्रिया की भी अपनी कमियां है। इस प्रक्रिया पर भी पूर्वाग्रह और पक्षपात, समकक्ष व्यक्ति के अनुभव की कमी, समकक्ष व्यक्ति के पास समय की कमी, समीक्षक की जानकारी का सीमित होना, दूसरे समीक्षकों का दबाव आदि कारक गहरा प्रभाव डालते हैं साथ ही, यह प्रक्रिया तब से चली आ रही है जब से वैज्ञानिक प्रकाशनों का आरम्भ हुआ वर्तमान तकनीकी युग में इस प्रक्रिया पर चिंतन एवं आवश्यक संशोधन की आवश्यकता है।

4. **भारतीय भाषाओँ में प्रकाशित की जा रही शोध पत्रिकाओं द्वारा आधुनिक ऑनलाइन सबमिशन सिस्टम की बजाय पारंपरिक माध्यम से अनुसन्धान पत्र आमंत्रित करने की प्रक्रिया:** इस संदर्भ में

यह चर्चा भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा रही कई शोध पत्रिकाओं में ऑनलाइन सबमिशन सिस्टम का अभाव है और आज भी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा रही शोध पत्रिकाएं पारंपरिक माध्यम से: हार्ड कॉपी अथवा ईमेल के माध्यम से शोध-पत्र स्वीकार करती हैं। इसके कारण शोधार्थी के लिए यह जानना कठिन होता है कि उसका विचाराधीन शोध पत्र वर्तमान समय में प्रकाशन प्रक्रिया के किस चरण से गुजर रही है। अभी हाल के वर्षों में शिक्षा मंत्रालय के द्वारा इस दिशा में किये गए प्रयासों से राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसन्धान संस्थान (CSIR-NISCAIR) निस्केयर द्वारा सराहनीय कदम उठाये गए हैं, जिनमें हिंदी के शोध पत्रों के लिए भी डिजिटल ऑब्जेक्ट आइडेंटिफायर (DoI) की व्यवस्था, ऑनलाइन सबमिशन की सुविधा एवं साईटेशन ट्रैकिंग की सुविधा आदि प्रदान की गयी है। इस प्रकार की व्यवस्था अन्य अनुसन्धान पत्रिकाओं के लिए / के द्वारा भी की जानी चाहिए। फोकस समूह परिचर्चा के कुछ विद्वानों का मत था कि राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसन्धान संस्थान (CSIR-NISCAIR) निस्केयर द्वारा एक केंद्रीकृत व्यापक विकल्पों वाला ऑनलाइन शोध पत्रिका प्रकाशन प्लेटफार्म विकसित किया जाना चाहिए जिस पर तय नियमों के तहत कोई भी संस्था अपना अनुसन्धान पत्र प्रकाशित कर सके। उदहारण के लिए ओपन जर्नल सिस्टम (OJS) जैसा शोध पत्रिका प्रकाशन प्लेटफार्म हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं की शोध पत्रिकाओं के लिए विकसित किया जा सकता है।

5. **प्रपंची शोध पत्रिकाओं के प्रकाशन पर सजा का प्रावधान:** क्लोंड अथवा प्रपंची शोध पत्रिकाएं अन्य प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं का आईएसएसएन नंबर चुरा कर उनके नाम पर शोध-पत्र प्रकाशित करते हैं जो साइबर क्राइमके अंतर्गत आता है। इस प्रकार की अनुसंधान पत्रिकाओं के प्रकाशको के विरुद्ध कड़ी कारवाई से संबंधित नियम बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि इस प्रकार की परिपाटी को बंद किया जा सके।
6. **ओपन एक्सेस अनुसन्धान पत्रिकाओं से सम्बंधित स्पष्ट दिशा निर्देशों का अभाव:** इन्टरनेट एवं इस पर आधारित उपकरणों के वर्तमान दौर में ओपन एक्सेस शोध पत्रिकाओं का प्रचलन धीरे धीरे बढ़ता जा रहा हैं परन्तु इस प्रकार के प्रकाशनों के लिए कोई स्पष्ट दिशा निर्देश उपलब्ध नहीं हैं। ओपन एक्सेस शोध पत्रिकाओं के बढ़ते प्रचलन के देखते हुए इस हेतु स्पष्ट दिशा निर्देश वर्तमान समय की मांग है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।
7. **बड़े प्रकाशकों द्वारा 'शिकारी शोध पत्रिकाओं' की समस्या को बढ़ा चढ़ा कर बताना ताकि उनका 'प्रकाशन बाजार' प्रभावित न हो:**

विद्वानों ने सहमति जताई कि शिकारी शोध-पत्रिकाओं की समस्या इतनी बड़ी नहीं है जितना वैज्ञानिक समुदाय में इसका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। कथित शिकारी शोध-पत्रिकाओं में, बड़ी संख्या में, ऑनलाइन आरम्भ की गयी क्षेत्रीय भाषाओं की पत्रिकाएं हैं। इन नवोदित पत्रिकाओं को शिकारी शोध पत्रिका का नाम देकर बड़ी प्रकाशन कम्पनियां भारत जैसे विकासशील देश में अपना बाजार सुरक्षित रखना चाहती हैं ताकि भारतीय शोधार्थी एवं विश्वविद्यालय इनकी शोध-पत्रिकाओं को ऊँची कीमतों पर खरीदते रहें और इन बड़े प्रकाशन-गृहों का भारतीय बाजार प्रभावित न हो। शिकारी पत्रिकाओं की जो बड़ी कमी

बताई जा रही है वह यह है कि इस प्रकार की पत्रिकाएं ‘समकक्ष व्यक्ति समीक्षा’ का पूर्ण पालन नहीं करती जबकि यह सुनिश्चित करना कि कोई शोध-पत्र समकक्ष व्यक्ति समीक्षित (peer-reviewed) है अथवा नहीं, एक दुष्कर कार्य है क्योंकि एक पाठक या एक लेखक के पास ऐसा कोई भी साधन नहीं है जिसके द्वारा वह सुनिश्चित कर सके कि पत्रिका-विशेष समकक्ष व्यक्ति समीक्षित है या नहीं। यदि शोध-पत्रिका में उल्लेख है पत्रिका समकक्ष-व्यक्ति समीक्षित है, तो पाठक एवं लेखक दोनों के पास इसे स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता। शिकारी पत्रिकाओं की कोई सर्वमान्य परिभाषा न होने की वजह से अल्प संसाधन युक्त शोध पत्रिका एवं शिकारी शोध पत्रिकाओं में अंतर करना अत्यंत कठिन है (ग्रुदनीविज एवं अन्य., 2019; मासटन एवं ऐशक्राफ्ट, 2016; पर्लिन एवं अन्य., 2018; रोबर्ट्स , 2016; रौस-वाइट एवं अन्य., 2019)। विद्वानों ने इस पर भी प्रकाश डाला कि शिकारी पत्रिकाओं का सन्दर्भ प्रपंची पत्रिकाओं से बिलकुल अलग है।

8. **कथित गुणवत्तापूर्ण प्रकाशकों द्वारा शोध पत्रों को अस्वीकार करने की उच्च दर (High rejection rate) एवं शोध-पत्रों के प्रकाशन में लिया जानेवाला अत्यधिक समय:**
   विद्वानों ने यह भी माना कि शिकारी शोध-पत्रिकाओं के प्रचलन के लिए गुणवत्तापूर्ण शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु भेजे गए शोध-पत्रों को अस्वीकार करने की उच्च दर एवं उनके द्वारा समकक्ष व्यक्ति समीक्षा के नाम पर लिया जानेवाला अत्यधिक समय है जो मोहेर एवं श्रीवास्तव, 2015, के द्वारा भी उनके शोध पत्र में लिपिबद्ध किया गया है। कथित-गुणवत्तापूर्ण शोध प्रकाशक प्रकाशन हेतु भेजे गए शोध-पत्रों के प्रकाशन की प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लेते हैं, जो कई बार छह महीने से लेकर दो वर्ष तक का भी हो सकता है। ऐसे में एक भारतीय शोधार्थी के पास दो विकल्प बचते हैं: पहला कि उस कथित अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता पूर्ण शोध-पत्रिका के ‘लेखक सर्विसेज’ की शरण में जाए जिसके लिए एक निश्चित धनराशि प्रदान करनी होती है और तत्पश्चात उसके अंग्रेजी में लिखित शोध-पत्र का भाषा संबंधी संपादन (Language editing) किया जाता है एवं भाषा को निखार कर (Language polishing) प्रकाशन योग्य बनाया जाता है, जो अत्यंत खर्चीला है और दूसरा जो विकल्प शोधार्थी के पास बचता है वह है कि किसी शिकारी पत्रिका में अपना शोधपत्र कम खर्च में करा ले।

9. **इन्टरनेट एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का तीव्र विकास:**
   विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया कि शिकारी एवं प्रपंची पत्रिकाओं के उद्भव का एक बड़ा कारण इन्टरनेट एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का तीव्र विकास भी रहा जिसके कारण अत्यंत कम खर्च में वैज्ञानिक आलेखों का प्रकाशन, डिजिटलीकरण, उनका संरक्षण एवं त्वारित गति से उनकी सहभाजन संभव हो पाई। वर्तमान समय में समस्त पारंपरिक प्रिंट मीडिया आधारित शोध-पत्रिकाएँ भी ऑनलाइन मोड में प्रकाशित की जाने लगी हैं। प्रिंट माध्यम से किसी पत्रिका के प्रकाशन के लिए ज्यादा संसाधनों की आवश्यकता होती है जबकि ऑनलाइन माध्यम ने इसे आसन, सुलभ एवं कम खर्चीला बना दिया।

सारांशतः शिकारी पत्रिकाओं के उद्भव के बड़े कारणों में इनके प्रति जागरूकता का अभाव, शोधकर्त्ता के पास प्रकाशन के अवसरों की कमी, परिवर्तित हो रहे प्रकाशन एवं शोध प्रतिमान आदि पाए गए एवं केयर लिस्ट में

स्थानीय भाषाओं के समावेशन हेतु इसे और लचीला बनाने एवं भारत में प्रकाशन के अवसर उपलब्ध कराने सम्बन्धी नीति पर किये जाने की आवश्यकता विशषज्ञों ने सुझाई ताकि शोध की एक स्वस्थ संस्कृति विकसित हो सके।

संदर्भ सूची

1. बर्गर एम., एवं सिरासेला, जे. (2015). बियॉन्ड बिआल लिस्ट: बेटर अंडरस्टैंडिंग पब्लिशर्स. कॉलेज एंड रिसर्च लाइब्रेरी न्यूज़ , 76 (3), 1–4. https://doi.org/10.5860/crln.76.3.9277 से 8 अक्टूबर सायं 8.50 को पुनर्प्राप्त
2. क्लेम्न्स, एम., डे कोस्टा इ सिल्वा, एम., जॉय, ए.ए., कोबी, के.डी., मजरेलो, एस., स्तोबेर, सी., एवं हटन, बी., (2017). प्रेडेटरी इन्विटेशनस फ्रॉम जर्नल्स: मोर देन जस्ट अ न्यूसेन्स ? द ओंकोलोजिस्ट, 22(2), 236–240. https://doi.org/10.1634/theoncologist.2016-0371 से 8 अक्टूबर सायं 8.55 को पुनर्प्राप्त
3. डेमिर, एस. बी. (2018). प्रेडेटरी जर्नल्स: हू पुब्लिशेज इन देम एंड व्हाय? जर्नल ऑफ इनफोर्मेट्रीक्स, 12(4), 1296–1311. https://doi.org/10.1016/j.joi.2018.10.008 से 10 सितम्बर 2020, 9.15 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
4. एरिक्सन, एस., एवं हेलेगसन, जी. (2017). द फ़ाल्स एकेडमी: प्रेडेटरी पब्लिशिंग इन साइंस एंड बायोएथिक्स, मेडिसिन, हेल्थ केयर एंड फिलोसफी, 20(2), 163–170. https://doi.org/10.1007/s11019-016-9740-3 से 10 सितम्बर 2020 10.42 अपराह्न को पुनर्प्राप्त
5. एरिक्सन, एस., एवं हेलेगसन, जी. (2018). टाइम टू स्टॉप टॉकिंग अबाउट 'प्रेडेटरी जर्नल्स.' लर्नड पब्लिशिंग, 31(2), 181–183. https://doi.org/10.1002/leap.1135 से 9 सितम्बर 2020, 7.53 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
6. कुक, सी. (2017). प्रेडेटरी जर्नल्स: द वर्स्ट थिंग इन पब्लिशिंग, एवर, जर्नल ऑफ ऑर्थोपोडिक एंड स्पोर्ट्स फिजिकल थेरेपी, 47(1), 1–2. https://doi.org/10.2519/jospt.2017.0101 से 8 सितम्बर 2020 11.41 अपराह्न को पुनर्प्राप्त
7. क्राक्जिक, एफ., एवं कुल्जिसकी, इ., (2021). हाउ इस ओपन एक्सेस अक्युजड ऑफ़ बीइंग प्रेडेटरी? द इम्पैक्ट ऑफ़ बिआल लिस्ट ऑफ़ प्रेडेटरी जर्नल्स ऑन एकेडमिक पब्लिशिंग. द जर्नल ऑफ़ एकेडमिक लाईब्रेरियनशिप, 47(2), https://doi.org/10.1016/j.acalib.2020.102271 से 8 अक्टूबर सायं 8.50 को पुनर्प्राप्त
8. ग्रुदनिविज, ए., मोहर, डी., एवं कोबी, के. डी. (2019). प्रिडेटरी जर्नल: नो डेफिनिशन, नो डिफेंस (नेचर). नेचर, 576, 210–212, https://doi.org/10.1038/d41586-019-03759-y से 20 सितम्बर 2021, 8 बजे सायं को पुनर्प्राप्त
9. कुमार, ए. (2020). भारतीय उच्च शिक्षा एवं शिकारी पत्रिकाओं का फैलता जाल: एक समीक्षा, भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर, 41 (2). 49-58. https://ncert.nic.in/pdf/publication/journalsandperiodicals/bhartiyaadhunikshiksha/B

AS_Oct%2020.pdf.

10. कुमार, ए. (2022a). क्लोन्ड ऑर हाईजैक्ड जर्नल: अ फॉर्म ऑफ़ अकेडमिक साइबर क्राइम. टुवर्ड्स एक्सीलेंस, 14(2), 2065–2074. https://hrdc.gujaratuniversity.ac.in/Publication/article?id=10172
11. कुमार, ए. (2022b). इन्टरनेट युग में वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं के आपराधिक स्वरुप "क्लोन्ड" शोध पत्रिकाओं का बढ़ता वर्चस्व एवं उनसे बचाव: क्लोन्ड शोध पत्रिका "बुलेटिन मोनुमेंटल" के अध्ययन पर आधारित. संचार माध्यम, 34(2), 114–120.
12. कुमार, ए., तिवारी, पी. के., एवं सिंह, आर. आर. (2021). पब्लिश इन इंडिया की संभावित रूपरेखा एवं शिकारी पत्रिकाओं पर नियंत्रण: एक समीक्षा. भारतीय आधुनिक शिक्षा, 42(2), 00.
13. कुमार, ए. एवं त्रिपाठी, के.,के, (2023) प्रपंची शोध पत्रिकाओं में किसके शोधपत्र प्रकाशित होते हैं? (प्रपंची शोध पत्रिका बुलेटिन मोनुमेंटल का एक व्यष्टि अध्ययन, संचार मध्यम
14. मानका, ए., मोहर, डी., कगसी, एल., देवीर, जेड., & देरियु, एफ. (2018). हाउ प्रेडेटरी जर्नल्स लीक इन टू पबमेड, सीएमएजे, 190 (35), E1042–E1045. https://doi.org/10.1503/cmaj.180154 से 3 सितम्बर 2020 4.05 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
15. मस्टन, वाय. बी., एवं ऐश्क्राफट, ए. एस. (2016). द डार्क साइड ऑफ: ट्रेडिशनल एंड ओपन एक्सेस वर्सेस प्रेडेटरी जर्नल्स. नर्सिंग एडुकेशन पर्सपेक्टिवस , 37(5), 275–277. https://doi.org/10.1097/01.NEP.0000000000000064 से 3 सितम्बर 2020, 4.21 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
16. मोहर, डी., एवं श्रीवास्तव, ए. (2015). यू आर इनवाईटेड टू सबमिट... बी एम सी मेडिसिन, 13(1), 1–4. https://doi.org/10.1186/s12916-015-0423-3 से 4 सितम्बर 2020, 9.46 अपराह्न को पुनर्प्राप्त
17. निकोल्सन, डी. आर. (2017). प्रेडेटरी पब्लिशिंग प्रैक्टिसेज: इज देयर लाइफ आफ्टर बिआल्स लिस्ट? लाईबर्स, 27(2), 53–70.
18. पटवर्द्धन, बी. (2017). इंडियन साइंस एंड प्रेडेटरी जर्नल्स. जर्नल ऑफ आयुर्वेद एंड इंटीग्रेटीव मेडिसिन, 8(1), 1–2. https://doi.org/10.1016/j.jaim.2017.02.004 से 16 अगस्त 2020 8.31 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
19. पटवर्द्धन, बी. (2019). वर्ल्ड व्यू: इंडिया स्ट्राइक्स बैक अगेंस्ट प्रेडेटरी जर्नल्स, नेचर, 571, 7. https://www.nature.com/articles/d41586-019-02023-7 से 1 सितम्बर 2020 5.51 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
20. पर्लिन, एम. एस., इमास्तो, टी., एवं बोर्नसटीन, डी. (2018). इज प्रिडेटरी पब्लिशिंग अ रियल थ्रीट ? एविडेंस फ्रॉम अ लार्ज डाटाबेस स्टडी . साईनटोमेट्रिक्स, 116(1), 255–273. https://doi.org/10.1007/s11192-018-2750-6 से 21 सितम्बर 2021, 6.14 बजे सायं को पुनर्प्राप्त
21. रोबर्ट्स, जे. (2016). प्रिडेटरी जर्नल्स: थिंक बिफोर यू सबमिट . हेडेक: द जर्नल ऑफ़ हेड एंड फेस पेन,

56(4), 618–621. https://doi.org/10.1111/head.12818 से 22 सितम्बर 2021, 6.18 बजे सायं को पुनर्प्राप्त

22. रोस-वाइट, ए., गॉडफ्रे, सी. एम., सियर्स, के. ए., एवं विलसन, आर. (2019). प्रिडेटरी पब्लिकेशन इन एविडेंस सिंथेसिस. जर्नल ऑफ़ द मेडिकल लाइब्रेरी एसोसिएसन, 107(1), 57–61. https://doi.org/10.5195/JMLA.2019.491 से 22 सितम्बर 2021, 6.20 बजे सायं को पुनर्प्राप्त
23. शमशीर, एल., मोहेर, डी., मधुएक्वे, ओ., टर्नर, एल., बार्बर, वी., बर्क, आर., क्लार्क, जे., गलीपिऊ, जी., रोबर्ट्स, जे., एवं शिया, बी. जे, (2017a). पोटेंशिअल प्रेडेटरी एंड लेजीटीमेट बायोमेडिकल जर्नल्स: कैन यु टेल द डिफ़रेंस? अ क्रॉस सेक्शनल कॉमपेरीजन. बी एम् सी मेडिसिन, 15(1), 1–14. https://doi.org/10.1186/s12916-017-0785-9 से 8 सितम्बर 2020, 9.56 अपराह्न को पुनर्प्राप्त
24. शेन, सी., एवं बोज़्रोक, बी.सी. (2015). 'प्रेडेटरी' ओपन एक्सेस: अ लोंगिच्युडनल स्टडी एंड मार्किट कैरेकतरिस्टिक्स. बी.एम.सी. मेडिसिन 13(1), 230. https://doi.org/10.1186/s12916-015-0469-2 से 8 सितम्बर 2020, 9.56 अपराह्न को पुनर्प्राप्त
25. श्याम, ए. (2015). प्रेडेटरी जर्नल्स: व्हाट आर दे? जर्नल ऑफ ऑर्थोपोडिक केस रिपोर्ट्स, 5 (4), 1–2. https://doi.org/10.13107/jocr.2250-0685.330 से 13 सितम्बर 2020, 9.41 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
26. टाईक्सेरिय डा सिल्वा, जे.ए., डोबारंज़स्की, जे., सिगारिस, पी., एवं अल-खतीब, ए. (2019). प्रेडेटरी एंड एक्सप्लोईटेटिव बिहेवियरइन एकेडेमिक पब्लिशिंग: एन असेसमेंट. द जर्नल ऑफ़ एकेड्मिक लाइब्रेरियनशिप, 45(6), 102071. https://doi.org/10.1016/j.acalib.2019.102071 से 13 सितम्बर 2020, 9.41 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त
27. द गार्जियन (2013). नोबल विनर डिक्लेयर बायकाट ऑफ़ टॉप साइंस जर्नल्स, https://www.theguardian.com/science/2013/dec/09/nobel-winner-boycott-science-journals से 2 अक्टूबर 1.40 सुबह पुनर्प्राप्त
28. वदीम, एस., इन्ना, जी., एवं मरीना, एस. (2017). प्रेडेटरी पब्लिशिंग एंड बिआल्स लिस्ट: लेसंस फॉर द कन्ट्रीज ऐडापटिंग नावल रिसर्च इवैल्यूएशन क्राइटेरिया. साइंस एंड एजुकेशन, 23(8), 39–43. https://doi.org/10.24195/2414-4665-2017-8-5 से 13 सितम्बर 2020, 9.41 पूर्वाह्न को पुनर्प्राप्त

39

राजस्थान के जनजातीय समुदाय एवं उनकी विशिष्ट संस्कृति

_सरोज कुमार_
सहआचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

ज्ञात भारतीय इतिहास में जनजातीय समाज एवं उनकी विशिष्ट जीवन-शैली सदैव ही भारतीय राष्ट्र एवं समाज का अतिमहत्वपूर्ण भाग रहा है। भारत में जनजातीय जनसंख्या विश्व की दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या है। यद्यपि स्वाधीनता के उपरान्त भी विकास की गति जनजाति बहुल क्षेत्रों में अपेक्षित रूप से आगे नहीं बढ़ पाई परन्तु गत दशक में जनजातीय क्षेत्रों के चहुँमुखी विशस की गति विविध योजनाओं के माध्यम से बढ़ी है। और इन्हें भारत की मुख्यधारा से जोड़ने के गम्भीर प्रयास भी जारी है। 28 अप्रैल 1960 को संविधान के अनुच्छेद 339 की अनुपालना में अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना हुई थी, जिसकी पहली रिपोर्ट 1961 में प्रकाशित हुई। इसमें जनजातीय समुदायों को भारत के प्राचीनतम समुदाय के रूप में उल्लेखित किया गया था। भारतीय संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अनुच्छेद 342 में जनजातीय समुदायों को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता दी गई है। इस समय भारत में लगभग 550 जनजातीय समुदाय अस्तित्व में है।

भारतीय जनजातीय समाज एवं विविध समुदायों का मानव वैज्ञानिक अध्ययन वेरिन एल्विन और जी. एस. घुरिये ने विस्तृत रूप से किया है। एल्विन ने भारत की जनजातियों के विषय में कहा कि उनके पूर्वज कथित आर्य आगमन के पहले से भारत में रह रहे हैं। दरअसल एल्विन जनजातीय समाज को एक औपनिवेशिक चश्मे से प्रस्तुत कर रहे थे और इसलिए उनके बताए सिद्धांतों के आधार पर ही ''आदिवासी, मूलनिवासी'' इत्यादि का विमर्श कालान्तर में खड़ा हो गया। इसके विपरीत प्रसिद्ध समाजशास्त्री जी. एस. घुरिये ने जनजातियों को पिछड़ा हुआ 'हिन्दू' माना। उन्होंने इस केन्द्रीय सिद्धान्त के आधार पर जनजातीय समुदाय को तीन प्रकार की श्रेणियों में बांटा है-

1. पूर्ण एकीकृत एवं स्वयं संगठित जनजातीय समुदाय।
2. संगठित एवं हिन्दू धर्म से प्रभावित समुदाय तथा
3. हिन्दू धर्म में पूर्णरूप से घुले मिले जनजातीय समुदाय।

इसी प्रकार बृजेन्द्र पाल सिंह ने 2010 के अपने एक मानव वैज्ञानिक अध्ययन में भारत के कुछ चुनिंदा जनजातीय समुदायों की विशिष्ट संस्कृति, आर्थिक स्थिति एवं विकास के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया है। कुँवर सुरेश सिंह ने अपने प्रसिद्ध अध्ययन ''भारत में जनजातीय स्थिति'' में भारत के जनजातीय समुदायों की तथा विविध जनजातीय समूहों की अपनी विशिष्ट पहचान की चर्चा की है। उन्होंने जनजातीय समुदाय के विविध पहलुओं पर अपनी अन्य कृतियों में भी विस्तारपूर्वक बताया है।

सामान्यत: जनजातीय समुदायों को उनकी विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक एवं नृवंशीय पहचान के आधार पर जाना जाता है। पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय बाहुल्य प्रान्तों से लेकर गुजरात के कच्छ तक और कश्मीर घाटी के गुजर बकरवाल जनजातीय समुदाय से लेकर दक्षिण की नीलगिरि पहाड़ियों तक विभिन्न जनजातीय समुदाय आधुनिकता के इस दौर में भी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान सुरक्षित बनाए रखने में प्राय: सफल ही रहे है। यद्यपि ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से ही भारत के विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों एवं समुदायों के ऊपर सुनियोजित सांस्कृतिक अतिक्रमण एवं अत्याचार किए जाते रहे परन्तु छोटा नागपुर, संथाल परगना से लेकर गोंडवाना, नागालैंड और राजस्थान तक ऐसे प्रयासों के विरुद्ध जनजातीय आन्दोलन भी करते रहे हैं। औपनिवेशिक एवं उत्तर-औपनिवेशिक काल खंड में पृथकतावादी विमर्श को बढ़ावा देकर जनजातीय बनाम गैर जनजातीय संघर्ष एवं परिणामस्वरूप भारत की आंतरिक सांस्कृतिक एकता को कमजोर करने के प्रयास भी होते रहे हैं। स्वाधीनता के समय झारखंड क्षेत्र में कोल्हान आन्दोलन, पूर्वोत्तर में बोडो, कुकी-मैती विवाद, उत्तर-पश्चिम भारत में भील प्रदेश की मांग इत्यादि को उपर्युक्त विमर्श के परिप्रेक्ष्य में ही देखना उचित होगा।

जनजातीय समाज : कुछ प्रमुख आँकड़े

अनुसूचित जनजाति वो समूह है जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत अधिसूचित है। ऐसी पहली अधिसूचना 1950 में जारी की गई थी। 1951 की जनगणना के अनुसार जनजातीय आबादी भारत में 5.6 प्रतिशत थी जो 2011 की जनगणना में बढ़कर 8.6 प्रतिशत हो गई है अर्थात् लगभग 10.4 करोड़ जनजातीय समुदाय किस प्रकार अपनी जड़ों से आज भी जुड़े रहना चाहता है, इसका स्पष्ट प्रमाण इस तथ्य में हैं कि 2011 की जनगणना के अनुसार कुल ग्रामीण आबादी का 11.3 प्रतिशत जनजातीय आबादी है, वही मात्र 2.8 प्रतिशत जनजातीय नगरीय क्षेत्रों में निवासरत है। कुल 705 अधिसूचित अनुसूचित जनजाति समूहों में से 75 (P.V.T.G-Particularly Vulnerable Tribals Groups) विशेष संकटग्रस्त जनजातीय समूह है। 1975 में ढेबर आयोग में प्रारंभिक जनजातीय समूहों को एक पृथक श्रेणी के रूप में चिन्हित किया जिसे 2006 में (P.V.T.G-Particularly Vulnerable Tribals Groups) के रूप में नया नाम दिया गया।

सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या लक्षद्वीप एवं मिजोरम में लगभग 94 प्रतिशत है जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में यह 13.48 प्रतिशत अर्थात् लगभग 92.39 लाख है। लेकिन जनजातीय समुदाय में साक्षरता की दर सामान्य 73 प्रतिशत की तुलना में 59 प्रतिशत रही जो कि शोचनीय थी। राजस्थान में जनजातीय साक्षरता मात्र 52.8 प्रतिशत ही थी। योजना आयोग के अन्य मापदण्डों में भी जनजातीय समुदायों के विकास की धीमी रफ्तार की पुष्टि होती है। तथापि महिलाओं की स्थिति जनजातीय समुदाय में बेहतर है। इसका प्रमाण इस बात में हैं कि महिला पुरुष अनुपात का राष्ट्रीय औसत 943 की अपेक्षा जनजातीय वर्ग में यह 990 थी।

राजस्थान की प्रमुख जनजातियाँ एवं उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान :

राजस्थान की लगभग 13.48 प्रतिशत जनजातीय समुदाय राज्य में निवासरत है। परन्तु इन समुदायों का मुख्य केन्द्र दक्षिणी और पूर्वी राजस्थान का क्षेत्र रहा है। मेवाड़, हाड़ौती, ढूँढार तथा वागड़ के भू-सांस्कृतिक क्षेत्र विशेष रूप से

जनजाति बहुल हैं। सरकार द्वारा इस क्षेत्र की जनजाति बहुल आबादी के समग्र आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से जनजाति उपयोजना क्षेत्र (TSP) बनाया गया है। झालावाड़ तथा बारां क्षेत्र में निवासरत सहरिया जनजाति को अत्यन्त पिछड़ेपन एवं वंचना के कारण ''आदिम जनजाति श्रेणी'' के रूप में भारत सरकार ने चिहिन्त किया है एवं उनके विकास को किए जाने को प्राथमिकता प्रदान है। राजस्थान में दक्षिण राजस्थान के 8 जिलों के उन 5697 गांवों एवं क्षेत्रों को उनके जनजातीय संख्या के अनुपातिक आधिक्य के आधार पर 2018 से जनजातीय उपयोजना क्षेत्र (TSP) के रूप में घोषित किया गया है। 2011 के जनगणना के अनुसार इन अधिसूचित जनजातीय उपयोजना क्षेत्र में कुल जनसंख्या का 70.43 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या है।

राजस्थान के विभिन्न जनजातीय समुदायों एवं उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक-सामाजिक जीवनशैली को निम्नलिखित रूप से रेखांकित किया जा सकता है।

1. मीणा जनजाति (उपजातियाँ- जमींदार, चौकीदार, पुराना-बासी, नया-बासी, उजला, मैला, पड़ियार, रावत, भील, सुरतवाल, ढेढ़िया)

मीणा जनजाति राजस्थान का सबसे बड़ा जनजातीय समूह है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनजातीय आबादी में लगभग 47 प्रतिशत हिस्सा इसी मीणा जनजाति का है। यह प्रमुख रूप से पूर्वी मध्य और दक्षिणी राजस्थान के शेखावाटी, हाड़ौती, ढूँढार और मेवात क्षेत्र में रहते हैं। इतिहास के अनेक कालखंडों में ये राजस्थान के कई क्षेत्रों में शासक वर्ग भी थे तथा इनके अनेक राज्य जैसे- ढूँढ़ार, सिहार, गेटोर, आमेट, रणथम्भौर, खेराड़ इत्यादि के उदाहरण हमें मिलते हैं। उपजातियों में जमींदार तथा उजला मीणा स्वयं को अन्य उपजातियों की अपेक्षा मानते हैं। मीणा जनजाति राज्य के अन्य जनजाति समूहों से प्राय: अधिक विकसित एवं समृद्ध है। मत्स्य पुराण के अनुसार 'मीन' से मीणा जाति की उत्पत्ति मानी जाती है जो कि भगवान विष्णु का अवतार भी माना जाता है। मीणा जनजाति में सामाजिक संगठन का मुख्य आधार गोत्र-व्यवस्था है तथा इनके बही-पत्रियों में मीणाओं के 12 पाल, 32 तड़ एवं 80 गोत्रों का उल्लेख भी है। मीणा ग्रामीण संगठन की सबसे लघु इकाई 'ढाणी' कहलाती है, जिसमें प्राय: एक ही गोत्र के लोग निवास करते हैं। परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। बाल विवाह का प्रचलन भी रहा है किन्तु शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ अब यह समाप्ति की ओर है और महिलाओं की सामाजिक स्थिति भी सुदृढ़ हो रही है। मीणा जनजाति में गोत्र विवाह नहीं होते और दापा (वधू मूल्य) की प्रथा भी नहीं है।

नाता प्रथा प्रचलित हैं जिसमें विवाहिता स्त्री अन्य व्यक्ति से विवाह कर सकती है। विधवा विवाह पर भी कोई कठोर प्रतिबन्ध नहीं है। पुरुष प्राय: धोती-कुर्ता तथा महिलाएँ कांचली ओढ़नी घाघरा पहनती है।

मृत्यु भोज (नुक्ता) की परम्परा है तथा दुर्भाग्यवश तन्त्र-मन्त्र का अंध विश्वास भी है। मीणा जनजाति में परम्परागत जाति पंचायत जिसका मुखिया पटेल कहलाता है- आज भी काफी प्रभावी है। इस जनजाति के लोग मुख्यत: शैव और शाक्त रहे हैं। इनकी अर्थव्यवस्था कृषि एवं पशुपालन पर टिकी है। स्वतंत्र भारत में इस जनजाति ने शिक्षा राजनीति एवं प्रशासनिक सेवाओं के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की है।

भील जनजाति

भील जनजाति राजस्थान का दूसरा सबसे बड़ा जनजातीय समुदाय है जो मुख्यत: उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, सलूम्बर, प्रतापगढ़, चित्तौड़गढ़ एवं भीलवाड़ा जिलों में निवासरत है। 2011 की जनगणना के अनुसार भील जनजाति राजस्थान में जनजाति समुदाय की कुल आबादी का लगभग 44.38 है। इनकी कई उपजातियाँ हैं जिनमें भील-गरासिया, ढोली-भील, डूंगरी भील, डूंगरी गरासिया मेवासी भील, रावल भील, तड़वी भील, भागलिया, भिलाला, पाबड़ा, बसावा इत्यादि प्रमुख हैं। यह राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश में भी निवासरत है। भील जनजाति भारत की सबसे पुराने जनजातीय समुदायों में से एक मानी जाती है। 'भील' शब्द की उत्पत्ति 'भिल्ल' अथवा द्रविड़-शब्द 'बिल' से मानी जाती है जिसका शाब्दिक अर्थ है- धनुष। संभवत: धनुष-बाण की इनके जीवन में महती भूमिका के कारण ही इन्हें भील कहा गया है। संस्कृत ग्रन्थों में निषाद इसी वन्य जाति के लिए प्रयुक्त हुआ है। जेम्स टॉड ने इन्हें 'वनपुत्र' कहा है। क्षत्रिय रियासतों के उदय से पूर्व राजस्थान के दक्षिणी अंचलों में भीलों का राजनीतिक आधिपत्य भी रहा। महाराणा प्रताप के मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में भील समुदाय का उल्लेखनीय योगदान रहा है और पूर्व मेवाड़ रियासत के राज्य-चिह्न पर भील सरदार का चित्र इसी बात का प्रतीक है।

सामाजिक / आर्थिक जीवन

भीलों के सामाजिक जीवन का प्रमुख आधार गोत्र व्यवस्था है। जिसे 'गोतर' या अटक रहते हैं। एक-गोत्र के सभी सदस्य स्वयं को समान पूर्वज की संतति मानते हैं। सामान्यत: वैवाहिक संबंध सगोत्र नहीं किए जाते हैं। विवाह के अनेक प्रकार प्रचलित हैं।

दापा प्रथा (वधू मूल्य) के कारण यद्यपि मोनोगेमी (एक विवाह) अधिक प्रचलित है परन्तु आर्थिक स्थिति ठीक होने पर बहुविवाह की भी परम्परा है। विवाह योग्य युवक-युवतियाँ मेलों अथवा हाटों में मिलकर स्वयं के जीवन साथी का चयन कर पति-पत्नी के रूप में भी रहने लगते हैं परन्तु वधू-पक्ष को झगड़ा-राशि चुकाने पर ही उनके विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो सकती है। विधवा स्त्रियाँ सामान्यत: अपने देवर से विवाह करती हैं जिसे ''देवर पट्टा'' कहते हैं। इस समुदाय में 'नातरा-प्रथा' भी प्रचलित है जिसमें एक स्त्री द्वारा अपने पति को छोड़ अन्य व्यक्ति से विवाह करने पर पूर्व पति को झगड़ा राशि चुकाना आवश्यक होता है।

भील परिवारों में एकल परिवार का प्रचलन है। विवाह होते ही व्यक्ति अपने पिता के घर से अलग रहने के लिए अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ अपना अलग घर अर्थात् 'टापरा' बना लेता है। वंश परम्परा पितृ सत्तात्मक है। पुत्र जन्म पर थाली बजाई जाती है और पुत्री के जन्म पर सूपड़ा।

भील सामान्यत: पहाड़-पठार (मंगरे) के ढलानों पर अलग-अलग झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं जिसे 'टापरा' कहा जाता है। टापरों के समूह होते हैं जिन्हें 'फला' या सगोत्र 'खेड़ा' कहा जाता है। टापरे के पास ही पशु पालन, अनाज रखने इत्यादि के लिए 'डागला' भी बनाया जाता है। एक गाँव में एक से अधिक 'फले' होते हैं जो सामान्य गाँवों की भाँति पास-पास न होकर एक दूसरे से दूर होते हैं। गाँव में स्थानीय लोक-देवता भैरव, खाकल देव, खेड़ाखूंट, माताजी, महादेव इत्यादि के देवरे बने होते हैं जो सामान्यत: छोटे और खुले ही होते हैं। भीलों की भाषा भीली हैं जो इनके विस्तृत निवास स्थान के कारण मेवाड़ी, वागड़ी, गुजराती और हाड़ौती का एक मिश्रित स्वरूप है।

'गवरी' मेवाड़ के भील समुदाय का एक प्रमुख एवं पवित्र धार्मिक लोक नृत्य नाट्य एवं व्रत है जो रक्षा बंधन के अगले दिन (ठंडी राखी) से सवा महीने तक चलता है। यह दरअसल गौरी और शिव की कथाओं पर आधारित है जिसमें कई-प्रसिद्ध पात्र जैसे बुड़िया, राय बुड़िया होते हैं। गवरी में भाग लेने वाले व्रतधारी भील व्रत की समस्त वर्जनाओं जैसे- एक बार भोजन, मांस-मदिरा, हरी सब्जियों का त्याग करते हुए ग्रामीण अंचलों में नृत्य करते हैं। डूंगरपुर जिले का बेणेश्वर धाम भीलों का महत्कुम्भ भी कहा जाता है। बेणेश्वर मेला एवं घोटिया आम्बा मेला इनके प्रमुख मेले हैं जहाँ इनकी समृद्ध सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन की झलक देखने को मिलती है। होली पर किया जाने वाला 'ग्ोर नृत्य प्रमुख नृत्य है और दीपावली पर 'मेरयूपूरने' की रस्म होती है। किसी भी अन्य जनजातीय समुदाय की भांति भील समुदाय भी तन्त्र-मंत्र तथा जादू टोने में अधिक विश्वास रखता हैं। ग्रामीण अंचलों में इसलिए 'भोपे' (गुणी, तान्त्रिक) का इनके जीवन में बहुत प्रभाव होता है।

भील समुदाय के सामाजिक जीवन का नियमन भी सामूहिकता के आधार पर होता है। गाँव का मुखिया गमेती या पटेल कहा जाता है जो सामाजिक विवादों का समाधान ''भांजगड़ियों' के सहयोग में करता है जिसे 'न्यावटा' कहा जाता है।

गाँव में कोई 'खूंटा' (मर) जाता है तो अंतिम संस्कार एवं मृत्यु भोज के लिए प्रत्येक परिवार से लकड़ी एवं अनाज से योगदान करने की प्रथा है। इस प्रकार 'कायटा' (मृत्यु भोज) आयोजन होता है। मृतात्मा की एक पाषाण प्रतिमा परम्परागत रूप से प्रतिष्ठित की जाती है जिसे 'सीरा चौकली' अथवा 'चीरा बावसी' कहते हैं।

भीलों का आर्थिक जीवन मुख्यत: वन्य उत्पादों, लघुकृषि कार्यों पशुपालन एवं श्रमकार्य पर निर्भर है। इसलिए कई बार वन्य उत्पादों के विषय में सरकार एवं सरकारी योजनाओं के साथ इनका संघर्ष भी देखा जाता है। विकास के लाभ लेते हुए भील समुदाय भी शिक्षा एवं सरकारी सेवाओं में अब उभरकर सामने आने लगा है। संत मावजी, सुरमालदास, गोविन्द गुरु इनके प्रमुख समाज सुधारक रहे हैं। गोविन्द गुरु द्वारा औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध संघर्ष की गाथा और जनजातीयों का मानगढ़ बलिदान अभिस्मरणीय है मानगढ़ इसलिए जनजातियों तथा क्षेत्र के सभी निवसियें के लिए पवित्र धाम का सवरूप ले चुका है।

गरासिया-

गरासिया जनजाति राजस्थान की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति है। जिसकी जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनजाति जनसंख्या का 2 प्रतिशत है। यह मुख्यत: उदयपुर, पाली, और सिरोही जिलों में निवासरत हैं सिरोही जिले के आबूरोड़ तहसील का 'भाखरपट्टा' जो 24 गाँवों का समूह है, वह गरासिया जनजाति का मूल क्षेत्र माना जाता है। ये पड़ोस में गुजरात के बनासकांठा और साबरकांठा जिलों में भी निवास करते हैं। गरासिया स्वयं की उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं। इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार 'ग्रास' शब्द से गरासिया बना है जो राज्य की विशिष्ट सेवा के बदले दिए गए भूस्वामी भी रहे हैं।

सामाजिक जीवन

गरासिया समुदाय के गाँव प्राय: पहाड़ी ढलानों पर 'फलें के रूप में दूर-दूर बसे होते हैं। एक 'फला' में एक गोत्र की बस्ती होती है और फला का मुखिया पटेल होता है जो कि वंशानुगत होता है, गाँव पर प्रभावी सामाजिक नियंत्रण रखता है। गरासिया समुदाय के तीन प्रमुख समूह हैं-

1. मोटकी नियात 2. नेनकी नियात 3. निचली नियात

इस समुदाय के लोग सामान्यत: कच्चे घरों में रहते हैं जिन्हें ये 'घेर' कहते हैं। इनके घरों में प्राय: 'सोहरी' (मिट्टी की कोठी), खाटला (चारपाई), 'माटला' (मरकी), 'घेन्टी' (हाथ चक्की) इत्यादि दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

परिवार पितृसत्तात्मक होता है और 'दापा' प्रथा (वधूमूल्य)' के कारण विधिवत विवाह कम और पलायन विवाह अधिक प्रचलित है। स्थानीय मेलों में युवक-युवती अपना जीवन-साथी स्वेच्छा से चुनकर पलायन कर अलग से पति-पत्नी के रूप में रहने लगते हैं। इसके अतिरिक्त विवाह की अन्य रीतियाँ जैसे- मोरबंधिया, आटा-साटा, मेलबों एवं सेवा-विवाह आदि भी प्रचलित है। विवाह के उपरान्त पुत्र अपनी अलग झोपड़ी बनाकर रहने लगता है और इसलिए एकाकी परिवार का प्रचलन अधिक है। इस जनजाति में विधवा विवाह और 'नातरा' प्रथा भी प्रचलित है। महिला की स्थिति समाज में ठीक होती है और इसलिए पुत्र-पुत्री दोनों के ही जन्म पर समान रूप से समारोहपूर्वक खुशियाँ मनाई जाती है। विशेष उल्लेखनीय यह भी है कि महिला की मृत्यु पर पीहर पक्ष को सूचित कर उनसे अनुमति के पश्चात् ही अंतिम संस्कार होता है। इसके कारण ही कई बार 'मौताणा' और चढ़ोतरा' जैसी प्रथाएँ भी देखने को मिलती है। गरासिया महिलाएँ और पुरुष दोनों ही चान्दी के भारी भरकम आभूषण पहनते हैं और रंग-बिरंगे परिधान इनकी विशेष पहचान है। इन परिधानों में गरासिया 'गोर' नृत्ये करते हैं। महिलाओं में 'मांडला' (गोदना) का चलन भी है। गरासिया जनजाति भी पूर्वजों की आत्मा में विश्वास करते हैं तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिन पाषाण प्रतिमा बनाकर पूर्वज प्रतिष्ठित किए जाते हैं जिसे 'हूरा' अथवा 'मोगी' कहते हैं। दाहसंस्कार एवं मृत्युभोज भी सामूहिक रूप से ही आयोजित होता है। गरासिया जनजाति प्रचलित हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ 'इसर और गौर' (शिव पार्वती) की विशेष पूजा करते हैं। भाखर पट्टा के गरासिया 'भाखर बावसी' के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं। गरासिया समुदाय के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में मेलों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। 'भाखर बावसी' का मेला, तेवटी का मेला' कोटेश्वर का मेला, सियावा का गोर मेला, दोयतरा, अम्बा जी और देवला के मेले इनके प्रमुख मेले हैं।

आर्थिक जीवन

गरासिया समुदाय का आर्थिक जीवन भी वन उपज संग्रहण, कृषि कार्य-एवं गांव तथा निकटवर्ती कस्बों में सामान्य श्रमकार्य के ऊपर ही निर्भर है। इनके मुख्य वन-उत्पादों में तेंदूपता, महुआ संग्रहण भी प्रमुख है। मक्का, गेहूँ, कांगणी, कूरो, कोदरा इत्यादि प्रमुख कृषि उत्पाद होते हैं। ये पशुपालन के साथ-साथ स्थानीय वन-क्षेत्र में शिकार भी करते हैं। मांसाहार और मदिरा सेवन भी प्रचलित हैं। इनमें कृषि कार्य में परस्पर सहयोग की प्रथा ''हेलरू'' अथवा ''हलमा'' प्रचलित है। अकाल की स्थिति तथा वन उपज के सीमित होते संसाधनों के कारण ये श्रमिक का कार्य अधिक करने लगे हैं और इस कारण से अपराध में भी लिप्त पाए जाने लगे हैं।

डामोर जनजाति

डामोर जनजाति राजस्थान की पांचवी सबसे बड़ी जनजाति है जो मुख्यत: डूंगरपुर जिले के सीमलवाड़ा के डामरिया क्षेत्र में निवासरत हैं। ये कुछ संख्या में उदयपुर, बांसवाड़ा और सलूम्बर जिलों में भी है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या का लगभग 1 प्रतिशत डामोर जनजाति है। डामोर जनजाति में राजपूतों से मिलते जुलते गोत्र होते हैं, जैसे- परमार, सिसोदिया, राठौड़, चौहान, सोलंकी, बारिया इत्यादि। स्वाभाविक रूप से ये स्वयं की उत्पत्ति राजपूतों के समान मानते हैं। विभिन्न गोत्रों में भी सामाजिक संस्तरीकरण पाया जाता है। सामान्यत: गुजरात के सीमावर्ती क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण इनकी भाषा पर भी गुजराती का बड़ा प्रभाव देखा जाता है।

सामाजिक जीवन

डामोर सगोत्र विवाह नहीं करते हैं। 'देज' (वधू मूल्य) चुकाकर परिवार द्वारा विधिवत विवाह की परम्परा है। समुदाय का मुखिया ही सामान्यत: विवाह तय करता है। लेकिन पुत्र-पुत्री के जन्म पर भेदभाव नहीं किया जाता है। जाति-पंचायत का मुखिया पटेल होता है जो समुदाय में सामाजिक विवादों एवं विवाह इत्यादि में निर्णायक भूमिका रखता है। डामोर जनजाति के घर कच्चे किन्तु बड़े आकार के होते हैं जो 'घेर' कहे जाते हैं और ये क्षेत्र के सम्पन्न कृषक वर्ग पाटीदारों के मकान से मिलते जुलते होते हैं। इनमें मांसाहार और स्थानीय देसी महुवा शराब का भी अधिक प्रचलन है। सभी हिन्दू त्योहरों एवं देवी देवताओं को मानने वाले डामोर दीपावली के 14वें दिन देव-दीवाली मनाते हैं और उस दिन पूर्वजों के स्थान पर विशेष पूजा-अर्चना करते हैं। इनका आर्थिक जीवन भी मुख्य रूप से कृषि एवं पशुपालन है लेकिन ये बड़े भूस्वामी नहीं होते। इसलिए सामान्यत: पड़ोस के गुजरात में अधिक उन्नत कस्बों में मजदूरी के लिए अस्थायी पलायन भी करते हैं। पशुधन को ये लक्ष्मी मानकर उसकी विशेष श्रृंगार पूजा करते हैं।

सहरिया जनजाति

सहरिया जनजाति राजस्थान की एक मात्र आदिम जनजाति समूह है और राज्य की चौथी सबसे बड़ी जनजाति है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनजाति जनसंख्या का 1.09 प्रतिशत सहरिया जनजाति है। राजस्थान में इनका निवास मुख्यत: बारां जिले के शाहाबाद और किशनगंज तहसील में है। ये मध्यप्रदेश के उत्तर पश्चिम जिलों में भी निवासरत है। सहरिया शब्द की उत्पत्ति फारसी भाषा के शब्द 'सेहर' में मानी जाती है, जिसका अर्थ है- वन क्षेत्र में निवास करना। कई विशेषज्ञ इन्हें मुगल-कालीन रसद आपूर्ति के कार्य में लगे समूहों के रूप में भी देखते हैं जो कालान्तर में वन क्षेत्र में ही रहकर विपन्न स्थिति में पहुँच गए। सहरिया जनजाति प्रमुख रूप से क्षेत्र के गाँवों के बाहरी भाग में सामूहिक झोपड़ीनुमा बस्तियों में निवास करते हैं जिसे ''सहराना'' कहते हैं। इनके घर सामान्यत: स्थानीय पत्तों एवं कच्ची मिट्टी से बने होते हैं जिन पर पारम्परिक किन्तु आकर्षक 'माडने' (भित्ति चित्र) बने होते हैं। सहराना के मध्य भाग में एक छतरीनुमा बड़ी गोल झोपड़ी बनी होती है जिसे बंगला कहा जाता है। यह बंगला ही सम्पूर्ण सहराना की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र बिंदु होता है। अतिथियों को इसी बंगले में ठहराया जाता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन

सहरिया जनजाति में परिवार को कुटुम्ब कहा जाता है जो पितृसत्तात्मक होता है। गोत्र व्यवस्था मजबूत है और सगोत्र विवाह न करके सहराना के पंच पटेल एवं माता-पिता द्वारा निश्चित विधिवत विवाह का प्रचलन अधिक है। दापा प्रथा, नाता प्रथा एवं विधवा विवाह का भी चलन है। इस जनजाति में जाति पंचायत बहुत संगठित रूप से कार्य करती है। पंचायत का मुखिया पटेल वंशानुगत और आदर का अधिकारी होता है। जाति पंचायत के तीन स्तर होते हैं।[1] पंचताई पंचायत (सहराना स्तर की पंचायत), 2. एकादसिया पंचायत (11-12 गाँवों की पंचायत), 3. चौरासिया पंचायत (84 गाँवों की पंचायत)

समुदाय के बड़े निर्णय चौरासिया पंचायत में ही किए जाते हैं जिसमें अपराध के लिए जुर्माना, प्रायश्चित एवं एवं जाति बहिष्कार का भी निर्णय शामिल होता है। सहरिया जनजाति अत्यन्त धर्म-निष्ठ जनजाति है जो विविध हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा, अनुष्ठान करते हैं। होली पर सहराना के बंगले पर सामूहिक रूप से फाग और रसिया, लांगूरिया, कंदिया का गायन होता है। सहरिया स्वांग नृत्य भी करते हैं। सहरिया अंचल में सीता बाड़ी का मेला सहरियाओं का महाकुम्भ माना जाता है। सहरिया वन क्षेत्र में शिकार भी करते हैं और इनमें मांसाहार एवं शराब का सेवन भी अधिक प्रचलित है।

आर्थिक जीवन

सहरिया जनजाति मुख्य रूप से वन उपज संग्रहण, तेन्दू पता, कृषि कार्य एवं मजदूरी पर अपने आर्थिक जीविकोपार्जन हेतु निर्भर होते हैं परन्तु इनकी कृषि तकनीक अत्यन्त अल्पविकसित होने के कारण अकाल इत्यादि के कारण सहरिया आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़े समुदायों में से है। इनमें अन्य जनजातियों की अपेक्षा साक्षरता दर भी काफी कम है और तद्नुसार सरकारी सेवाओं में भी इनकी भागीदारी अल्प ही है। कुपोषण भी बहुत अधिक है। इन्हीं कारणों से सहरिया जनजातियों के लिए 1977-78 से ही ‘सहरिया विकास कार्यक्रम‘ प्रारंभ किया गया और वर्तमान में जनजाति उपयोजना क्षेत्र (TSP) के अंतर्गत सहरिया क्षेत्र के विशेष विकास के निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं।

पटेलिया जनजाति

पटेलिया जनजाति मूलत: मध्यप्रदेश के झाबुआ क्षेत्र में निवास करती है परन्तु राजस्थान में भी कोटा, बारां, झालावाड़ जिलों में निवासरत है। यह जनजाति कुछ दशकों पूर्व ही राजस्थान क्षेत्र में मजदूरी के उद्देश्य से अप्रवासी के रूप आए और यहां बस गए है। 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में इनकी जनसंख्या मात्र 8000 है। पटेलिया भी अपना उद्भव राजपूत परम्परा से मानते हुए परमार, चौहान, राठौड़, सोलंकी, बारिया, पालिया, दातिया, बामनिया, पसाया इत्यादि गोत्रों में विभाजित है। बारां जिला के लगभग 20 गांव में उनकी सघन आबादी है। यह स्वयं को भीलों से श्रेष्ठ मानते हैं।

सामाजिक जीवन

 ISSN: 2321-0443

पटेलिया जनजाति पितृसत्तात्मक होता है जिसमें एकल एवं संयुक्त दोनों प्रकार के परिवारों का प्रचलन है। विवाह संबंध परिवार द्वारा तय किए जाते हैं एवं वधूमूल्य की भी परम्परा है। विधवा-विवाह एवं नाता प्रथा भी सामान्यत: प्रचलन में है। पटेलिया मूलत: हिन्दू देवी-देवताओं के उपासक होते हैं तथा पूर्वज पूजा एवं तन्त्र-मन्त्र में भी विश्वास करते हैं। इनमें बलि प्रथा भी प्रचलित है। सामाजिक विवादों का समाधान जाति पंचायत के द्वारा किया जाता है। यह जनजाति हाड़ौती क्षेत्र में कृषि कार्य एवं खदानों में श्रमिक के रूप में कार्य करती है। कृषि एवं पशुपालन भी इनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है किंतु शिक्षा, साक्षरता एवं सरकारी सेवाओं में भागीदारी कम है।

कथौड़ी

कथौड़ी जनजाति राजस्थान में मूलत: एक अप्रवासी जनजाति है जो केवल उदयपुर जिले के कोटड़ा, झाड़ोल, खेरवाड़ा, गोगुन्दा और ओगणा के वन क्षेत्रों में निवासरत है। इनकी कुछ संख्या हाड़ौती के खेरवा में भी है। से मूलत: महाराष्ट्र के खानदेश क्षेत्र से विस्थापित होकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में खेर अर्थात् कत्था बनाने के श्रमिक के रूप में उदयपुर के वन क्षेत्र में आए थे। इसलिए इनकी भाषा भी मराठी का ही एक अपभ्रंश है।

सामाजिक आर्थिक जीवन

कथौड़ी वन क्षेत्र में लघु आकार के कच्चे झोपड़ों में रहते हैं जिसे यह खोलरा रहते हैं। प्राय: 2 से 4 खोले आपास में जुड़े होते हैं। इनके पहनावें में भी मराठी प्रभाव देखा जा सकता है। यह मांसाहारी होते हैं एवं शराब का प्रचलन भी अत्यधिक है। इसलिए वन क्षेत्र में स्थानीय स्तर पर शिकार भी करते हैं। कथौड़ी जनजाति में पितृसत्तात्मक परिवार होता है, वधू मुख्य की परम्परा है और सामाजिक जीवन में समुदाय के मुखिया, पटेल अथवा भोपो की भूमिका अहम होती है। ये हिन्दू परम्पराओं और त्योहरों को मनाने के साथ-साथ तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत एवं पितरों की पूजा में भी गहन विश्वास करते हैं। कुछ विशेष पेड़ों की ये पूजा करते हैं। ये स्थानीय स्तर पर जड़ी-बूटी, चिकित्सकीय पादपों का भी ज्ञान रखते हैं। कथौड़ी जनजाति में मृतकों के शव को दफनाने की परम्परा है। इनका थालीसर वाद्ययंत्र प्रमुख है।

कत्था बनाने पर प्रतिबंध होने के कारण इनका आर्थिक जीवन लघु बन उपज संग्रहण एवं मजदूरी पर निर्भर होकर रह गया है। यह जनजाति राजस्थान के सबसे पिछड़ी एवं विपन्न जनजाति में से एक है। यद्यपि इनके लिए विशेष अभियान चलाकर इनको विकास से जोड़ने के सरकारी प्रयास भी चल रहे हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य जनजातियाँ जैसे- कोकना, कोकनी, तड़वी, कोली, नायक भी राजस्थान में अल्पसंख्या में निवास करते है। ये मूलत: है पड़ोसी राज्यों मध्यप्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र के सीमावर्त्ती क्षेत्रों में रहते है।

संदर्भ सूची

1. राजस्थान जनजातीय विकास रिपोर्ट, राजस्थान सरकार 2010
2. जनजातीय मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट, भारत सरकार (2014)
3. योजना आयोग 11वीं पंचवर्षीय योजना अनुसूचित जनजाति सामाजिक विकास रिपोर्ट, भारत सरकार (2008)

4. राजस्थान में जनजातीय विकास की राज्य योजना -उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ, राजस्थान राज्य जनजातीय विकास विभाग, राजस्थान सरकार, 2012
5. राजस्थान में जनजातीय विकास पर वार्षिक रिपोर्ट, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, नई दिल्ली, 2018
6. Census of India Report, 2011, Government of India
7. सक्सेना, एच.एस., राजस्थान में जनजातीय परिस्थिति, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1987
8. माथुर, पी.सी., राजस्थान में जनजातीय विकास, हिमांशु प्रकाशन, उदयपुर, 1996
9. गुप्ता, आर, राजस्थान में जनजातीय विकास की योजना, अरिहंत प्रकाशन, दिल्ली, 1997
10. Bhatia, M.S, Tribal developmet in Rajasthan : The Role of Voluntary organizations, Rawat Publication, New Delhi, 2001
11. Bhardwaj, D.P., Tribes in Rajasthan, A sociological study, Jaipur
12. Baniskar A, In the belly of the river : Trinal conflicts over development , OUP, New Delhi, 1995
13. Sinha, R.P. - Developement of tribals in Rajasthan, Pointer Publisher, Delhi, 2006
14. Chaudhary R.C., Tribal Development in Globalization : Issues and Challenges in Rajasthan, Commonwealth Publishers, Delhi, 2012
15. Hussain, Nadeem, Tribal Society in India, Harnam Publication, New Delhi, 1983
16. Mishra, P.R., Tribes in Rajasthan : Development, Deprivation and Discontent, Rawat Publisher, Jaipur, 2000
17. Jain R.K., Scheduled Tribes of Rajasthan, Rawat Publisher, Jaipur, 1993
18. Singh, Vidhyanand, The Bhils of Rajasthan : Ethnicity in Tradition and Modernity, Rawat Publisher, Jaipur, 1998
19. Shukla R.L., Economic life of tribals in Rajasthan, Mittal Publication, New Delhi, 1982
20. Kumar, Devendra, Tribal movements and politics in Rajasthan, Alekha Publisher, Jaipur, 2003
21. Singh K.S., "The tribal situation in Rajasthan", EPW, 19 (367), 1994

22. Sharma B.D., : "Tribal Development and integration in Rajasthan", Indian Journal of Social work, 39(1), 1978

23. Mehta, M.S. : "Economic Development of Tribal Area in Rajasthan", Journal of Rural Development, 29(04), 2010

24. Sahariya M, "Impact of Development Progress on Tribal communities in Rajasthan", Social Science Spectrum, 1(2), 2005

25. Joshi, H, "Education and Development of Tribal women in Rajasthan", International Journal of Educational Planning and administration, 6(1), 2016

40

वैश्विक दक्षिण : भारत के विकास में गुणात्मक परिवर्तन का अध्ययन

डॉ. मो. जमशैद आलम
सहायक आचार्य, सह विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, मिल्लत कॉलेज, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
सद्दाम हुसैन
शोधार्थी, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

वैश्विक दक्षिण का विचार एक ऐतिहासिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में उभरा जो उन देशों को दर्शाता है जो आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ में वैश्विक उत्तर के विकसित देशों से भिन्न हैं। भारत, वैश्विक दक्षिण का एक अग्रणी सदस्य, एक अनूठे परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। यह अध्ययन भारत में विकास के गुणात्मक परिवर्तन, उसकी चुनौतियों, अवसरों और वैश्विक स्तर पर इसकी भूमिका को समझने का प्रयास करेगा।

वैश्विक दक्षिण वह शब्द है जो उन विकासशील देशों को संदर्भित करता है जो आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक रूप से वैश्विक उत्तर के विकसित देशों से भिन्न हैं।[2] भारत, जो इस समूह का एक प्रमुख सदस्य है, ने पिछले कुछ दशकों में अपने विकास पथ में कई गुणात्मक परिवर्तन किए हैं। इस पत्र में भारत के आर्थिक, सामाजिक, और तकनीकी परिवर्तन का विश्लेषण किया जाएगा, साथ ही उन प्रमुख चुनौतियों और अवसरों पर चर्चा की जाएगी जो भारत के भविष्य को आकार दे रहे हैं।

1. वैश्विक दक्षिण: एक परिचय

वैश्विक दक्षिण एक समकालीन अवधारणा है जो दुनिया के उन विकासशील देशों को संदर्भित करती है जो ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से वैश्विक उत्तर (विकसित देशों) से अलग हैं।[3] यह शब्द उपनिवेशवाद के प्रभाव, औद्योगिक विकास की गति, और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों को समझने के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

1.1 वैश्विक दक्षिण की परिभाषा और उत्पत्ति

वैश्विक दक्षिण की अवधारणा को 20वीं सदी के उत्तरार्ध में, विशेष रूप से शीत युद्ध के दौरान, स्पष्ट रूप से मान्यता मिली। यह मुख्य रूप से उन देशों को संदर्भित करता है जो औपनिवेशिक शासन के तहत रहे और जिन्होंने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक असमानताओं का सामना किया।[4]

- वैश्विक दक्षिण की संकल्पना शीत युद्ध के बाद उभरी।
- यह मुख्यतः एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों को संदर्भित करता है।
- इन देशों में साझा समस्याएं: उपनिवेशवाद का इतिहास, विकासशील अर्थव्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक असमानता जैसी रही है।

1.2 वैश्विक दक्षिण में भारत की भूमिका

भारत वैश्विक दक्षिण का एक प्रमुख सदस्य है और इसकी विशेष भूमिका निम्नलिखित कारणों से है:

1. आर्थिक नेतृत्व

- भारत दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है।
- तकनीकी और आईटी क्षेत्र में भारत की प्रगति ने इसे विकासशील देशों का नेतृत्वकर्ता बना दिया है।

2. लोकतांत्रिक ढांचा

- भारत का लोकतंत्र, विविधता और समावेशिता इसे अन्य विकासशील देशों के लिए प्रेरणा स्रोत बनाता है।

3. वैश्विक मंच पर सक्रियता

- भारत ने वैश्विक दक्षिण के लिए अंतरराष्ट्रीय मंचों जैसे जी20, ब्रिक्स और संयुक्त राष्ट्र में आवाज उठाई है।

4. साझा समस्याएं और समाधान

- भारत का विकास पथ वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के लिए एक प्रतिमान के रूप में उभरा है, विशेषकर गरीबी उन्मूलन, डिजिटल अर्थव्यवस्था, और सतत विकास में।

1.3 वैश्विक दक्षिण और वैश्विक उत्तर के बीच अंतर

- आर्थिक स्थिति उत्तरी देश विकसित और दक्षिणी देश विकासशील।
- राजनीतिक स्थिति दक्षिण का प्रतिनिधित्व अक्सर कम।
- विकास के पैमाने मानव विकास सूचकांक, जीडीपी और सामाजिक विकास में अंतर।

वैश्विक दक्षिण और वैश्विक उत्तर के बीच मुख्य अंतर उनके आर्थिक और सामाजिक विकास के स्तर में देखा जा सकता है-

पहलू	***ग्लोबल नॉर्थ***	वैश्विक दक्षिण
आर्थिक विकास	उन्नत औद्योगिकीकरण, उच्च जी.डी.पी	कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, निम्न जी.डी.पी
शिक्षा और स्वास्थ्य	उच्च साक्षरता दर और स्वास्थ्य सेवाएं	सीमित संसाधन और बुनियादी सेवाओं की कमी
तकनीकी प्रगति	उन्नत तकनीकी और नवाचार केंद्र	तकनीकी आत्मनिर्भरता का अभाव
राजनीतिक स्थिति	वैश्विक नीति निर्धारण में प्रभावशाली	वैश्विक राजनीति में सीमित भागीदारी

2. भारत: गुणात्मक परिवर्तन की यात्रा

भारत एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राष्ट्र है। जिसने अपनी स्वतंत्रता के बाद से एक लंबी और प्रेरणादायक यात्रा तय की है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इसे एक ऐसा देश माना जाता है जिसने न केवल आर्थिक और सामाजिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन किया है बल्कि वैश्विक दक्षिण के विकासशील देशों के लिए एक आदर्श

स्थापित किया है और तकनीकी विकास की इस यात्रा ने न केवल भारत की वैश्विक स्थिति को मजबूत किया बल्कि वैश्विक दक्षिण के विकासशील देशों के लिए भी इसे प्रेरणा का स्रोत भी बनाया है।[5] यह शोध पत्र भारत के विकास में इन बदलावों का अध्ययन करता है और उनके व्यापक प्रभावों का विश्लेषण करता है।

2.1 भारत की विकास यात्रा का ऐतिहासिक संदर्भ

- स्वतंत्रता के बाद की स्थिति: कमजोर आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति।
- योजनाबद्ध विकास: पंचवर्षीय योजनाएं और उनके प्रभाव।
- 1991 का आर्थिक उदारीकरण: विकास की नई शुरुआत।

2.2 गुणात्मक परिवर्तन: परिभाषा और महत्व

गुणात्मक परिवर्तन शब्द का उपयोग किसी भी प्रणाली, समाज या संस्थान में ऐसी बुनियादी और गहरे बदलावों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जो सिर्फ बाहरी या दिखावटी नहीं, बल्कि संरचनात्मक और मानसिक स्तर पर प्रभाव डालते हैं।[6] यह परिवर्तन केवल मात्रात्मक वृद्धि (जैसे धन, उत्पादन, या संसाधन) तक सीमित नहीं होता बल्कि यह विचारधारा, दृष्टिकोण, मूल्य प्रणाली, और व्यवहार में भी गहरे बदलाव को दर्शाता है।

गुणात्मक परिवर्तन एक समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, और मनोवैज्ञानिक स्तर पर नए दृष्टिकोण और नीतियों का आगमन है, जो समाज के भीतर के मौजूदा ढांचे को स्थायी रूप से बदल देता है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गुणात्मक परिवर्तन की यात्रा का उद्देश्य न केवल विकास की दिशा को सही करना था बल्कि देश की मानसिकता, सोच, और दृष्टिकोण को भी बदलना था।

2.2.1 गुणात्मक परिवर्तन की परिभाषा

गुणात्मक परिवर्तन वह बदलाव होता है जो किसी समाज, राष्ट्र या क्षेत्र के भीतर न केवल बाहरी रूप से दिखाई देता है बल्कि उसकी जड़ों और मूलभूत संरचनाओं में भी बदलाव लाता है। यह परिवर्तन जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, विज्ञान, राजनीति, और अर्थव्यवस्था में होता है।

गुणात्मक परिवर्तन को समझने के लिए इसे तीन मुख्य तत्वों में विभाजित किया जा सकता है-

1. संरचनात्मक परिवर्तन: यह वह परिवर्तन है जो किसी संस्था या व्यवस्था की संरचना में होता है, जैसे सरकार, न्यायपालिका, या शिक्षा व्यवस्था में बदलाव। उदाहरण के लिए, भारतीय संसद में महिला आरक्षण, सरकारी योजनाओं की संरचना में बदलाव, आदि।
2. सांस्कृतिक परिवर्तन: यह समाज की परंपराओं, रीति-रिवाजों, और जीवन के तरीके में बदलाव को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, भारत में शिक्षा के क्षेत्र में सुधार और महिला सशक्तिकरण की दिशा में सुधार।
3. सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव: यह समाज के सोचने के तरीके में बदलाव होता है जो लोगों के मानसिकता और दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। जैसे, भारत में जातिवाद, लिंग भेदभाव और सामाजिक असमानताओं को लेकर बढ़ती जागरूकता और बदलाव की दिशा।

2.2.2 गुणात्मक परिवर्तन के प्रमुख तत्व

1. शिक्षा और ज्ञान का प्रसार: गुणात्मक परिवर्तन के अंतर्गत शिक्षा का स्तर और समाज में इसका प्रसार प्रमुख भूमिका निभाता है। शिक्षा न केवल व्यक्तियों को ज्ञान प्रदान करती है बल्कि यह उनकी सोचने की क्षमता,

मूल्यों और समाज के प्रति दृष्टिकोण को भी प्रभावित करती है। भारत में शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच में सुधार ने समाज में जागरूकता और नए विचारों को जन्म दिया।

2. राजनीतिक सुधार: लोकतांत्रिक संस्थाओं की मजबूती और नागरिकों की सहभागिता गुणात्मक परिवर्तन के महत्वपूर्ण पहलू हैं। भारत में संविधान के द्वारा दिए गए अधिकारों और स्वतंत्रता का पालन, चुनाव प्रणाली में सुधार, और राजनीतिक पारदर्शिता बढ़ाने के प्रयासों ने समाज में सकारात्मक बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाए हैं।

3. सामाजिक समावेशिता: गुणात्मक परिवर्तन में समाज में असमानताओं को दूर करने के प्रयास होते हैं। जातिवाद, लिंग भेदभाव, और अन्य सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए जो नीतियाँ लागू की जाती हैं, वे गुणात्मक परिवर्तन का हिस्सा होती हैं। महिला सशक्तिकरण, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के अधिकारों को बढ़ावा देने जैसी योजनाएं भारत में इस बदलाव की दिशा में उठाए गए कदम हैं।

4. आर्थिक सुधार और विकास: केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि यह बदलाव समाज के हर वर्ग तक विकास के लाभ पहुंचाने पर केंद्रित होता है। कृषि क्षेत्र में सुधार, छोटे और मध्यम उद्योगों को बढ़ावा, और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को सुनिश्चित करना गुणात्मक परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

5. सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन: समाज में नए विचारों, विचारधाराओं और दृष्टिकोणों का स्वागत करना भी गुणात्मक परिवर्तन का हिस्सा है। जैसे, भारत में पारंपरिक कुप्रथाओं और रीति-रिवाजों का उन्मूलन, जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, और महिला शिक्षा को बढ़ावा देना।

2.2.3 गुणात्मक परिवर्तन का महत्व

गुणात्मक परिवर्तन के महत्व को समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि ये परिवर्तन समाज को समग्र रूप से सशक्त बनाते हैं और इसके परिणामस्वरूप एक अधिक समावेशी, प्रगति-उन्मुख और स्थिर समाज की नींव रखी जाती है।

1. समाज में समानता और न्याय का प्रचलन: गुणात्मक परिवर्तन समाज के भीतर असमानताओं को समाप्त करने में मदद करता है। यह एक ऐसा समाज बनाता है जहाँ सभी को समान अधिकार और अवसर मिलते हैं चाहे वह शिक्षा, रोजगार, या राजनीतिक प्रतिनिधित्व हो। महिला अधिकारों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के अधिकारों में सुधार इसके उदाहरण हैं।

2. आर्थिक समृद्धि और सामाजिक सशक्तिकरण: गुणात्मक परिवर्तन समाज के हर वर्ग के लोगों को आर्थिक रूप से सशक्त करता है जिससे गरीबी में कमी आती है और समृद्धि की दिशा में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से परिवर्तन होता है। आर्थिक विकास और रोजगार सृजन में गुणात्मक बदलाव ने भारत को एक वैश्विक आर्थिक शक्ति बनाने में योगदान दिया है।

3. वैश्विक स्तर पर सम्मान और पहचान: जब किसी राष्ट्र में गुणात्मक परिवर्तन होते हैं तो वह राष्ट्र वैश्विक स्तर पर अधिक सम्मान और पहचान प्राप्त करता है। भारत की आर्थिक और तकनीकी प्रगति ने उसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रमुख स्थान दिलाया है। भारत का अंतरराष्ट्रीय सौर संठबंधन (आई.एस.ए.) जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर नेतृत्व इस बदलाव का एक उदाहरण है।

4. समाज में सामाजिक जागरूकता का विकास: गुणात्मक परिवर्तन केवल बाहरी नीतियों में सुधार नहीं करता बल्कि समाज के भीतर जागरूकता और समझ भी पैदा करता है। यह बदलाव समाज की मानसिकता को सकारात्मक

दिशा में परिवर्तित करता है जैसे महिलाओं के अधिकार, पर्यावरण संरक्षण, और अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर लोगों की जागरूकता।

3. आर्थिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन

भारत, वैश्विक दक्षिण के देशों में एक प्रमुख राष्ट्र, ने पिछले कुछ दशकों में अपनी आर्थिक संरचना और विकास के विभिन्न पहलुओं में गुणात्मक परिवर्तन का अनुभव किया है। यह परिवर्तन न केवल भारत के लिए बल्कि अन्य विकासशील देशों के लिए भी एक प्रेरणास्त्रोत बन गए हैं। आर्थिक सुधार, वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, और समावेशी नीतियों के कारण भारत ने वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी एक अलग पहचान बनाई है।

3.1 औद्योगिकीकरण और सेवा क्षेत्र का विकास

- विनिर्माण और औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देना।
- आईटी और सेवा क्षेत्र ने भारत को वैश्विक मंच पर स्थापित किया।
- मेक इन इंडिया और स्टार्टअप इंडिया की पहल।

3.2 कृषि और ग्रामीण विकास

- हरित क्रांति और उसके प्रभाव।
- ई-गवर्नेंस और डिजिटल तकनीक का उपयोग।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार।

3.3 विदेशी निवेश और व्यापार

- एफडीआई नीति में बदलाव।
- भारत का वैश्विक व्यापार में योगदान।

3.4 डिजिटल अर्थव्यवस्था का उदय

- डिजिटल इंडिया और यूपीआई का प्रभाव।
- ऑनलाइन व्यापार और ई-कॉमर्स।

भारत में यह परिवर्तन विभिन्न क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है जैसे कि कृषि, उद्योग, सेवा क्षेत्र, और ग्रामीण तथा शहरी विकास। भारत ने वैश्विक दक्षिण में आर्थिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन का नेतृत्व करते हुए एक प्रेरणादायक प्रतिमान प्रस्तुत किया है। 1991 के आर्थिक सुधारों से लेकर वर्तमान में डिजिटल क्रांति तक भारत ने अपनी आर्थिक प्रणाली को मजबूत और समावेशी बनाया है। यह परिवर्तन न केवल भारत की अर्थव्यवस्था को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाते हैं बल्कि वैश्विक दक्षिण के अन्य विकासशील देशों को भी प्रेरित करते हैं।

भारत की आर्थिक यात्रा अभी जारी है और इसे सतत विकास, नवाचार, और समावेशी नीतियों के माध्यम से और अधिक प्रगतिशील बनाना आवश्यक है। भारत का यह गुणात्मक परिवर्तन न केवल इसे आत्मनिर्भर बनाएगा बल्कि यह वैश्विक अर्थव्यवस्था में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

4. सामाजिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन

भारत, वैश्विक दक्षिण के अग्रणी देशों में से एक, सामाजिक विकास के क्षेत्र में कई गुणात्मक परिवर्तनों का गवाह रहा है। इन परिवर्तनों ने समाज की संरचना, सोच, और जीवन शैली को गहराई से प्रभावित किया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, लिंग समानता, और सामाजिक समावेशिता जैसे क्षेत्रों में सुधारों ने भारत को विकासशील देशों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करने में मदद की है।

4.1 शिक्षा में सुधार

- शिक्षा के अधिकार (आर.टी.ई.) और कौशल विकास मिशन।
- डिजिटल शिक्षा और प्रौद्योगिकी का उपयोग।
- महिलाओं और हाशिये के समूहों की शिक्षा तक पहुंच।

4.2 स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार

- आयुष्मान भारत और सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं में अंतर को पाटना।
- महामारी के दौरान भारत का प्रदर्शन।

4.3 लैंगिक समानता और सामाजिक समावेश

- महिलाओं का सशक्तिकरण और आरक्षण।
- अनुसूचित जाति, जनजाति, और अल्पसंख्यकों के लिए योजनाएं।

4.4 शहरीकरण और बुनियादी ढांचा विकास

- स्मार्ट सिटी मिशन।
- ग्रामीण-शहरी असमानता को कम करने का प्रयास।

भारत ने वैश्विक दक्षिण के देशों के लिए सामाजिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन का एक प्रभावी प्रतिमान प्रस्तुत किया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, और लिंग समानता में सुधार से लेकर सामाजिक समावेशिता तक इन परिवर्तनों ने न केवल भारत को सशक्त बनाया है बल्कि अन्य विकासशील देशों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बना है।

हालांकि, चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, लेकिन सतत विकास और समावेशी नीतियों के साथ भारत अपनी सामाजिक संरचना को और अधिक प्रगतिशील बना सकता है। यह परिवर्तन न केवल देश के भीतर बल्कि वैश्विक स्तर पर भी सामाजिक सुधार के लिए एक प्रेरक शक्ति होगी।

5. तकनीकी और नवाचार में परिवर्तन

भारत, जो वैश्विक दक्षिण के अग्रणी देशों में से एक है, ने पिछले कुछ दशकों में तकनीकी और नवाचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन का अनुभव किया है। इन परिवर्तनों ने न केवल भारत की अर्थव्यवस्था को गति दी है बल्कि समाज और प्रशासन में भी गहरे बदलाव किए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, स्टार्टअप, डिजिटल क्रांति, और अनुसंधान व विकास (आर.एण्ड डी.) जैसे क्षेत्रों में भारत ने वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाई है।

5.1 आईटी और नवाचार का प्रभाव

- सॉफ्टवेयर और तकनीकी सेवाओं का निर्यात।
- डिजिटल पहचान (आधार) और सेवाओं का डिजिटलीकरण।

5.2 स्टार्टअप और उद्यमिता का बढ़ावा

- भारत का स्टार्टअप पारितंत्र।
- युवा उद्यमियों की भूमिका।

5.3 विज्ञान और अनुसंधान में योगदान

- इसरो और डीआरडीओ की सफलता।
- मेड-इन-इंडिया तकनीकी उत्पाद।

भारत का तकनीकी और नवाचार क्षेत्र न केवल देश की प्रगति का स्तंभ बना है बल्कि वैश्विक दक्षिण के लिए भी एक प्रेरणादायक प्रतिमान प्रस्तुत करता है। डिजिटल क्रांति, आईटी सेवाओं का प्रसार और स्वदेशी तकनीकी क्षमताओं का विकास, भारत के लिए वैश्विक स्तर पर पहचान का माध्यम बना है।

हालांकि चुनौतियाँ अभी भी हैं, सतत नीतियों और समर्पित प्रयासों के साथ, भारत तकनीकी और नवाचार के क्षेत्र में और अधिक प्रभावी बन सकता है। यह न केवल भारत की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को मजबूत करेगा, बल्कि वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के लिए भी एक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करेगा।

6. विदेश नीति और वैश्विक नेतृत्व में परिवर्तन

भारत, एक प्रमुख विकासशील देश और वैश्विक दक्षिण के अग्रणी प्रतिनिधियों में से एक, ने पिछले कुछ दशकों में अपनी विदेश नीति और वैश्विक नेतृत्व में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। वैश्विक राजनीति में भारत का उदय न केवल इसकी आर्थिक शक्ति बल्कि इसकी कूटनीति, सांस्कृतिक प्रभाव और बहुपक्षीय मंचों पर सक्रियता के कारण हुआ है। इन परिवर्तनों ने भारत को वैश्विक दक्षिण के लिए आवाज देने वाले एक प्रभावशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है।

6.1 भारत का वैश्विक मंच पर उभरना

- ब्रिक्स(बी आर आई सी एस), जी 20, और एस सी ओ में नेतृत्व।
- दक्षिण-दक्षिण सहयोग को बढ़ाना।

6.2 विकासशील देशों की आवाज बनना

- जलवायु परिवर्तन और सतत विकास के मुद्दों पर भारत की भूमिका।
- व्यापार और तकनीकी सहयोग में भागीदारी।

6.3 भू-राजनीतिक संतुलन

- अमेरिका, रूस और चीन के साथ संबंध।
- इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में रणनीतिक भागीदारी।

भारत की विदेश नीति और वैश्विक नेतृत्व में हुए परिवर्तन वैश्विक दक्षिण के लिए एक प्रेरणा स्रोत हैं। भारत ने विकासशील देशों की चिंताओं को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। अपनी आर्थिक,

तकनीकी, और कूटनीतिक क्षमताओं का उपयोग करके भारत ने न केवल अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा की है बल्कि वैश्विक दक्षिण के लिए एक सशक्त आवाज बनने की दिशा में भी कदम उठाए हैं।

आने वाले समय में, भारत का नेतृत्व और सक्रियता वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों को एकजुट करने और विकासशील देशों के मुद्दों को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

7. चुनौतियां और संभावनाएं

भारत, वैश्विक दक्षिण के अग्रणी राष्ट्रों में से एक, वैश्विक स्तर पर तेजी से उभर रहा है। यह न केवल अपने आर्थिक और राजनीतिक विकास के कारण बल्कि वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के लिए एक प्रेरणा और नेतृत्वकर्ता के रूप में भी पहचान बना रहा है। हालांकि, इस यात्रा में भारत को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जबकि इसकी क्षमता और संभावनाएँ इसे नए अवसरों की ओर ले जाती हैं।

7.1 विकास के असमान पैटर्न

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अंतर।
- सामाजिक और आर्थिक असमानता।

7.2 पर्यावरणीय समस्याएं

- प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन।
- सतत विकास की आवश्यकता।

7.3 बेरोजगारी और कौशल विकास

- रोजगार के अवसरों का अभाव।
- शिक्षा और उद्योग के बीच तालमेल।

7.4 राजनीतिक और प्रशासनिक चुनौतियां

- भ्रष्टाचार और नीति क्रियान्वयन में बाधाएं।
- समावेशी नीतियों की कमी।

भारत के लिए वैश्विक दक्षिण की चुनौतियाँ और संभावनाएँ दोनों ही इसे एक महत्वपूर्ण दिशा में ले जाने का अवसर प्रदान करती हैं। यदि भारत अपनी कूटनीतिक सक्रियता, आर्थिक सुधार, और तकनीकी नवाचारों को प्रभावी ढंग से लागू करता है तो यह न केवल वैश्विक दक्षिण का एक सशक्त नेता बनेगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरेगा।

भारत को अपनी ताकत और सहयोगी दृष्टिकोण का उपयोग करके, वैश्विक दक्षिण के देशों के लिए एक स्थायी, न्यायसंगत, और समृद्ध भविष्य का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

8. भारत के लिए भविष्य की दिशा

भारत, जो वैश्विक दक्षिण का एक प्रमुख और प्रेरणादायक सदस्य है, ने वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान को सशक्त किया है। बदलते विश्व राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य में, भारत के सामने अवसर और चुनौतियों का

अनोखा मिश्रण है। भविष्य में भारत को वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के साथ मिलकर आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने नेतृत्व और सहयोग को और अधिक प्रभावी बनाना होगा।

8.1 सतत और समावेशी विकास

- हरित अर्थव्यवस्था और नवीकरणीय ऊर्जा।
- सामाजिक और आर्थिक समावेश।

8.2 नवाचार और तकनीकी नेतृत्व

- कृत्रिम बौध और डेटा विज्ञान में भारत का योगदान।
- 6जी और भविष्य की तकनीकों का विकास।

8.3 वैश्विक संबंधों में सुधार

- अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और साझेदारी।
- विकासशील देशों के लिए प्रतिमान बनना।

वैश्विक दक्षिण में भारत की भूमिका एंव नेतृत्व न केवल उसकी आंतरिक क्षमताओं पर निर्भर करती है, बल्कि अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग और समन्वय पर भी आधारित है।[7]

भारत को अपने तकनीकी, आर्थिक, और कूटनीतिक संसाधनों का उपयोग कर वैश्विक दक्षिण के लिए एक स्थायी और समावेशी विकास प्रतिमान प्रदान करना चाहिए। जलवायु परिवर्तन, सामाजिक न्याय, और तकनीकी समानता जैसे वैश्विक मुद्दों पर भारत का सक्रिय योगदान न केवल उसकी वैश्विक स्थिति को मजबूत करेगा बल्कि विकासशील देशों के लिए एक उज्जवल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करेगा।

वैश्विक दक्षिण न केवल एक भौगोलिक अवधारणा है बल्कि यह उन साझा समस्याओं और संभावनाओं का प्रतीक है जो इन देशों को जोड़ती हैं। भारत, जो इस समूह का एक अग्रणी सदस्य है, ने विकासशील देशों के लिए एक सफल प्रतिमान प्रस्तुत किया है। इसके माध्यम से, यह स्पष्ट होता है कि वैश्विक दक्षिण का प्रभाव और महत्व आने वाले दशकों में और अधिक बढ़ेगा।

भारत ने वैश्विक दक्षिण के एक प्रमुख सदस्य के रूप में कई गुणात्मक परिवर्तन किए हैं। इन बदलावों ने न केवल भारत को एक मजबूत अर्थव्यवस्था और वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित किया है बल्कि विकासशील देशों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनाया है। हालाँकि, असमानता, पर्यावरणीय संकट, और सामाजिक चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। अगर भारत सतत और समावेशी विकास की दिशा में अपने प्रयास जारी रखता है तो वह न केवल वैश्विक दक्षिण का नेतृत्व करेगा, बल्कि वैश्विक मंच पर भी एक मिसाल कायम करेगा।

भारत के विकास में गुणात्मक परिवर्तन वैश्विक दक्षिण के लिए एक प्रेरणा है। अपनी आर्थिक प्रगति, सामाजिक सुधार और तकनीकी नवाचारों के माध्यम से भारत ने यह सिद्ध किया है कि एक विकासशील देश भी वैश्विक मंच पर नेतृत्व कर सकता है। हालाँकि चुनौतियां अब भी बनी हुई हैं, लेकिन भारत का प्रतिमान इसे एक स्थायी और समृद्ध भविष्य की ओर ले जा रहा है।

गुणात्मक परिवर्तन समाज और राष्ट्र के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह न केवल समाज की संरचना और कार्यप्रणाली में बदलाव लाता है बल्कि समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता को भी सुधारता है।

भारत ने अपनी यात्रा में कई गुणात्मक परिवर्तन देखे हैं जो उसे एक प्रगति-उन्मुख राष्ट्र बनाने में सहायक रहे हैं। समाज में सुधार, आर्थिक विकास, और वैश्विक स्तर पर प्रभावी योगदान के लिए गुणात्मक परिवर्तन आवश्यक हैं।

भारत का विकास वैश्विक दक्षिण के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणा है। इसने यह प्रदर्शित किया है कि मजबूत नीतियाँ, तकनीकी नवाचार, और समावेशी विकास के माध्यम से विकासशील राष्ट्र वैश्विक नेतृत्व हासिल कर सकते हैं।

भारत को इस समूह का नेतृत्वकर्ता माना जाता है। इसका कारण भारत का लोकतंत्र, जनसंख्या, आर्थिक प्रगति, और ऐतिहासिक महत्व हैं।

सुझाव

भारत को अपनी गुणत्मक विकास को बनाए रखने के लिए सतत विकास और समानता पर ध्यान देना जारी रखना चाहिए।

आगे बढ़ते हुए, भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आर्थिक, सामाजिक, और तकनीकी विकास के साथ-साथ कूटनीतिक सक्रियता को बनाए रखते हुए वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के लिए सहयोग और मार्गदर्शन का कार्य करता रहे। यह शोध इस बात पर बल देता है कि भारत का यह गुणात्मक परिवर्तन न केवल राष्ट्रीय विकास के लिए बल्कि वैश्विक साउथ के सामूहिक विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. अमर, पॉल, एड. (2014) : *'मध्य पूर्व और ब्राजील: नए वैश्विक दक्षिण पर परिप्रेक्ष्य* , ब्लूमिंगटन: इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस.
2. ब्रांट, विली. (1980) : *उत्तर-दक्षिण: अस्तित्व के लिए एक कार्यक्रम: अंतर्राष्ट्रीय विकास मुद्दों पर स्वतंत्र आयोग की रिपोर्ट*, कैम्ब्रिज: एमआईटी प्रेस.
3. कोहन, डेबोरा (1999) : *हिस्ट्री एंड मेमोरी इन द टू साउथ्स: रीसेंट सदर्न एंड स्पैनिश अमेरिकन फिक्शन* : नैशविले: वेंडरबिल्ट यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. वेस्ट-पावलोव, रसेल, एड. (2018) : *द वैश्विक दक्षिण एंड लिटरेचर* . कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. कॉनेल, रेविन (2007) : *दक्षिणी सिद्धांत: सामाजिक विज्ञान में ज्ञान की वैश्विक गतिशीलता* . कैम्ब्रिज: राजनीति.
6. साउथ कमीशन (1990) : *साउथ को चुनौती: साउथ कमीशन की रिपोर्ट* । ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. वा न्गुगी, मुकोमा, सं. (2012) : "रीथिंकिंग द वैश्विक दक्षिण ।" *जर्नल ऑफ कंटेम्परेरी थॉट* (ग्रीष्मकालीन): globalsouthproject.cornell.edu में पुनर्मुद्रित

41

शासन-व्यवस्था और न्यायिक दक्षता: अप्रचलित कानूनों की समीक्षा, निरस्तीकरण और नवीनीकरण

डॉ. मनीष कर्मवार
सहायक आचार्य, दिल्ली विश्वविद्यालय, अफ़्रीकी अध्ययन विभाग
सुनेहा शर्मा
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, अफ़्रीकी अध्ययन विभाग

यह शोध पत्र भारत सरकार के उन प्रयासों का विवरण प्रस्तुत करता है जिन्हें 2014 के बाद से अप्रचलित और पुराने कानूनों को निरस्त करने के लिए किया गया है। इस शोध में भारतीय संविधान का परिचय दिया गया है, जो भारतीय लोकतंत्र की नींव है, और इसमें राज्य और उसके नागरिकों के बीच संबंधों को विनियमित करने वाले नियम शामिल हैं। इस शोध पत्र में विशेष रूप से उन कानूनों का विवरण दिया गया है जिन्हें मोदी सरकार ने निरस्त किया है, जिनमें से कुछ आजादी के पहले के समय से लागू थे और कुछ आजादी के बाद के। इन कानूनों को हटाने का मुख्य उद्देश्य यह था कि वे या तो प्रयोग में नहीं आ रहे थे या फिर वे ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय नागरिकों को दबाने के लिए बनाए गए थे। सरकार के इस कदम का मुख्य लक्ष्य भारतीय कानूनी ढांचे को अधिक संगत और प्रयोग में लायक बनाना है, जिससे नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा में सुधार हो सके और सामाजिक न्याय के प्रयासों को बल मिल सके।

सरकार ने निरस्तीकरण और संशोधन अधिनियम के माध्यम से कानूनी ढांचे को सरल और अधिक प्रभावी बनाने की कोशिश की है। इस प्रक्रिया में, कई पुराने और अप्रासंगिक कानूनों को खत्म किया गया, जिससे नए भारत के निर्माण में सहायता मिली। इस कदम से भारतीय न्यायिक प्रणाली में दक्षता बढ़ी है, और समाज में न्याय की पहुंच में सुधार हुआ है। इस नीति का मुख्य लक्ष्य न केवल पुराने कानूनों को हटाना था, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना था कि नए कानून भारतीय समाज की वर्तमान और भावी जरूरतों के अनुरूप हों।

इस नीति के कारण भारत में कानूनी सुधार की दिशा में एक नई ऊर्जा का संचार हुआ है, जिससे नागरिकों को अधिक स्पष्ट और समझने योग्य कानूनी ढांचा प्राप्त हुआ है। यह प्रयास सरकारी प्रक्रियाओं को भी अधिक लचीला बनाता है, जिससे आम जनता की विभिन्न सेवाओं तक पहुंच आसान होती है। साथ ही, यह उपाय भारत को एक आधुनिक और गतिशील राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में मदद कर रहा है, जो अपने नागरिकों के हित में तेजी से कानूनी परिवर्तन कर सकता है। इसके अलावा, यह सरकार के गवर्नेंस मॉडल को और अधिक पारदर्शी और जवाबदेह बनाने में योगदान देता है, जिससे भरोसा और समर्थन दोनों में वृद्धि होती है। इन परिवर्तनों से भारतीय न्याय प्रणाली में सुधार के साथ-साथ सामाजिक न्याय को बढावा मिलता है, जिससे वंचित समुदायों और आम नागरिकों को न्याय प्राप्ति में आसानी होती है।

संविधान:

भारत का संविधान भारतीय लोकतंत्र का आधारभूत दस्तावेज है, जो सरकार और उसके विभिन्न संगठनों की संरचना, प्रक्रियाओं, शक्तियों और कर्तव्यों को निर्धारित करता है। यह नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का भी उल्लेख करता है। भारतीय संविधान को 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत किया गया और 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया, जिसे अब हम गणतंत्र दिवस के रूप में मनाते हैं।भारत का संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है, जिसमें प्रारंभिक रूप में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। वर्तमान में, इसमें 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियां शामिल हैं। संविधान सभा में संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद पर व्यापक बहस की गई, और इस प्रक्रिया में 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिन लगे। इस दौरान 11 सत्रों में 167 दिनों की बैठकें हुई। संविधान की प्रस्तावना भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करती है। यह नागरिकों को न्याय, समानता और स्वतंत्रता का आश्वासन देती है और बंधुत्व को बढ़ावा देने का प्रयास करती है। संविधान में समय-समय पर संशोधन होते रहे हैं, और अब तक इसमें 105 संशोधन हो चुके हैं। यह संविधान भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है और इसकी समृद्धि और विकास का प्रतीक है।

संशोधन प्रकिया

देश के प्रथम प्रधानमन्त्री ने एक बार कहा था, “हम चाहते है कि शक्ति ठोस और स्थाई बनाये किन्तु यह शाश्वत नहीं होता है। यदि संविधान को कठोर और अपरिवर्तित बना दिया जाये तो देश का विकास अवरूद्ध हो जाएगा।” अत: हम कह सकते हैं कि भारत के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया संविधान के अध्याय XX के अंतर्गत अनुच्छेद 368 में उल्लिखित है। यह संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करता संविधान में संशोधन की तीन मुख्य प्रक्रियाएँ हैं:

i. साधारण बहुमत से संशोधन:
ii. विशेष बहुमत से संशोधन:
iii. विशेष बहुमत एवं राज्य विधानमंडलों की स्वीकृति:

अप्रचलित कानूनों की पहचान व निरस्त प्रक्रिया:

भारत के अप्रचलित कानूनों की पहचान और उन्हें निरस्त करने की प्रक्रिया प्रशासनिक सुधार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। 2016 में 'ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया' व्याख्यानमाला में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्रशासनिक बदलाव के लिए पुरानी व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि अप्रचलित कानूनों और पुरानी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को हटाकर ही नए प्रयोगों के माध्यम से बदलाव संभव है। इस दिशा में भारतीय विधि आयोग एक प्रमुख भूमिका निभाता है। विधि आयोग का पुनर्गठन हर तीन वर्ष में किया जाता है और यह संविधान में उल्लिखित अपने गठन संबंधी नियमों और शर्तों के तहत कार्य करता है। आयोग को अपने क्रियाकलापों में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है, जिससे यह केंद्र सरकार द्वारा उल्लिखित या स्वमेव आधार पर विधि संबंधी अनुसंधान कर सकता है और मौजूदा कानूनों की समीक्षा कर सकता है। अप्रचलित कानूनों की पहचान और उन्हें निरस्त करने की प्रक्रिया

के तहत आयोग विभिन्न कदम उठाता है, जैसे मौजूदा कानूनों की समीक्षा, प्रक्रियाओं में देरी को दूर करना, अप्रचलित कानूनों की पहचान, नए कानूनों का प्रस्ताव, समय-समय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

आयोग मौजूदा कानूनों की समीक्षा करता है ताकि उनमें सुधार किया जा सके और नए कानून लागू किए जा सकें। यह समीक्षा नियमित अंतराल पर की जाती है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि कानून प्रासंगिक और प्रभावी बने रहें। आयोग न्याय प्रणाली में सुधार के लिए प्रक्रियाओं में देरी को दूर करने, मुकदमों के जल्द निपटाने और मुकदमे के खर्चों में कमी संबंधी अध्ययन और अनुसंधान करता है। इससे न्यायिक प्रशासन अधिक प्रभावी और सुलभ बनता है। और आयोग उन कानूनों की पहचान करता है जो अब प्रासंगिक नहीं हैं और बेकार या अनावश्यक हो चुके हैं। ऐसे कानूनों को निरस्त करने की सिफारिश की जाती है। यह प्रक्रिया प्रशासनिक दक्षता को बढ़ाने और अद्यतन कानून व्यवस्था को बनाए रखने में सहायक होती है। नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक नए कानूनों को लागू करने के संबंध में सुझाव देना और संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त उद्देश्यों को प्राप्त करना आयोग का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इससे सुनिश्चित होता है कि कानूनी ढांचा समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हो। आयोग केंद्र सरकार को अपने द्वारा विचार किए गए सभी मुद्दों, विषयों, अध्ययनों और अनुसंधान पर समय-समय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। इन रिपोर्टों के आधार पर केंद्र और राज्य सरकारें आवश्यक कार्रवाई करती हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO), भारतीय विधि आयोग, और विधायी विभाग द्वारा गठित दो सदस्यीय समिति ने 1,800 से अधिक पुराने केंद्रीय कानूनों को अप्रचलित और अनुपयोगी मानते हुए उनकी पहचान की। इस प्रक्रिया में विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के साथ परामर्श किया गया ताकि इन कानूनों की प्रासंगिकता का मूल्यांकन किया जा सके।

चरणबद्ध निरस्त प्रक्रिया:

प्रारंभिक समीक्षा, मंत्रालयों और विभागों से परामर्श, समीक्षा और सिफारिश, विधेयक प्रस्तुत करना। सबसे पहले, मौजूदा कानूनों की एक सूची तैयार की जाती है और उनकी प्रासंगिकता और उपयोगिता की जांच की जाती है। विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से परामर्श किया जाता है ताकि वे अपनी आवश्यकताओं और अनुभवों के आधार पर कानूनों की प्रासंगिकता पर अपनी राय दे सकें। समीक्षा के बाद, आयोग अप्रचलित कानूनों की सूची तैयार करता है और उन्हें निरस्त करने की सिफारिश करता है। अप्रचलित कानूनों को निरस्त करने के लिए विभिन्न विधेयक तैयार किए जाते हैं और संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं।

क्रमांक	अधिनियम का नाम	निरस्त कानूनों की कुल संख्या
1	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2023	76
2	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2022	65
3	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2019	58
4	निरसन और संशोधन (द्वितीय) अधिनियम, 2017	140

5	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2017	105
6	प्रस्ताव अधिनियम (निरसन) अधिनियम, 2016	758
7	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2016	294
8	निरसन और संशोधन (द्वितीय) अधिनियम, 2015	90
9	निरसन और संशोधन अधिनियम, 2015	35
	कुल	1621

2014 के बाद से आये निरसन और संशोधन अधिनियम

अप्रचलित कानूनों की पहचान और उन्हें निरस्त करने की प्रक्रिया का उद्देश्य प्रशासनिक सुधार और न्यायिक प्रणाली की प्रभावशीलता को बढ़ाना है। यह कदम प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाने, देरी को कम करने और न्याय प्रणाली की कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है। इस प्रक्रिया के तहत निरस्त किए गए कानूनों में कई ऐसे कानून शामिल थे जो औपनिवेशिक काल से चले आ रहे थे और जिनकी अब कोई प्रासंगिकता नहीं थी। उदाहरण के तौर पर, पुराने कर कानून, व्यापार और वाणिज्य से संबंधित कानून और सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित कानून जिन्हें आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं पाया गया।

1. अप्रचलित कानूनों के उदाहरण:
   i. भारत की आज़ादी से पूर्व के चयनित रद्द किये गये कानून

भारत में प्रचलित पुरातन कानूनों पर विचार करते समय, हमें कई ऐसे विधि प्रावधान मिलते हैं जो आज के समय में अप्रासंगिक और अटपटे प्रतीत होते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक कानून जो पतंगों को विमान के समान मानता है, जिसके तहत पतंग उड़ाने के लिए भी लाइसेंस की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, एक अन्य कानून में कार निरीक्षकों के लिए यह अनिवार्य किया गया है कि उनके दांत "अच्छी तरह से ब्रश" किए गए हों।

1867 का एक औपनिवेशिक कानून सभी सराय (विश्राम गृह) के मालिकों को यह निर्देश देता है कि वे सभी राहगीरों को मुफ्त पेयजल उपलब्ध कराएं। टिड्डियों के हमले से निपटने के लिए, कानून में यह प्रावधान है कि सभी लोग एक साथ जोर से शोर मचाएं और इस स्थिति में नई दिल्ली में ड्रम न बजाने पर जुर्माना लगाया जाएगा। इसके अलावा, यदि कोई व्यक्ति सड़क पर 10 पैसे से अधिक मूल्य का पैसा पाता है, तो उसे तुरंत "जिला कलेक्टर" को सूचित करना होता है अन्यथा उसे दंडित किया जा सकता है। 1855 में ब्रिटिश शासकों ने एक भारतीय जनजाति, संथाल, को "असभ्य जाति" के रूप में मान्यता दी और उन्हें देश के कानूनों से मुक्त कर दिया। जातीय अपंगता निवारण अधिनियम, 1850 का उद्देश्य जाति आधारित कुछ कानूनी असमर्थताओं को दूर करना था। स्वतंत्र भारत में बाद के समय में व्यापक रूप से भेदभाव विरोधी और समानता कानूनों द्वारा इस मुद्दे को संबोधित किया गया है, जिससे यह अधिनियम अब अप्रासंगिक हो गया है।

न्यायिक अधिकारी संरक्षण अधिनियम, 1850 न्यायिक अधिकारियों को उनके आधिकारिक कृत्यों के लिए कानूनी कार्यवाहियों से सुरक्षा प्रदान करता था। आज, न्यायिक प्रतिरक्षा और संरक्षण सामान्यतः संवैधानिक प्रावधानों और विशिष्ट न्यायिक सेवा कानूनों के तहत कवर किए जाते हैं, जिससे यह अधिनियम अनावश्यक हो गया है। सूद कानून निरसन अधिनियम, 1855 ने ऋणों पर ब्याज दरों को विनियमित किया था, जिसे अब आधुनिक बैंकिंग और वित्तीय विनियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सूद कानूनों को अब अधिक व्यापक वित्तीय कानूनों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

मद्रास अनकन्वेंटेड अधिकारी अधिनियम, 1857 ने मद्रास प्रेसीडेंसी में कुछ अधिकारियों की नियुक्ति और कर्तव्यों को विनियमित किया था, जिसे आधुनिक सिविल सेवा नियमों और विनियमों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। हावड़ा अपराध अधिनियम, 1857 हावड़ा जिले के लिए विशिष्ट था और कुछ स्थानीय अपराधों को संबोधित करता था, जिन्हें अब भारत भर में लागू सामान्य आपराधिक कानूनों के तहत कवर किया जाता है। ओरिएंटल गैस कंपनी अधिनियम, 1857 और 1867 एक विशिष्ट गैस कंपनी के विनियमन से संबंधित था, जो अब चालू नहीं है या आधुनिक ऊर्जा और उपयोगिता विनियमों के संदर्भ में प्रासंगिक नहीं है।

कलकत्ता पायलट अधिनियम, 1859 ने कलकत्ता (अब कोलकाता) बंदरगाह में जहाजों को नेविगेट करने वाले पायलटों को विनियमित किया था, जिसकी भूमिकाएं अब आधुनिक समुद्री सुरक्षा और नेविगेशन विनियमों द्वारा शासित हैं। कोरोनर्स एक्ट, 1871 के तहत कोरोनर्स की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को विनियमित किया गया था। कोरोनर्स की भूमिकाओं में समय के साथ महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं और अब उनकी जिम्मेदारियां अद्यतन कानूनों द्वारा नियंत्रित होती हैं जो चिकित्सा-कानूनी जांच और मृत्यु प्रमाणन से संबंधित हैं। इस एक्ट के प्रावधान आज की कानूनी रूपरेखा में पुराने और अप्रासंगिक हो चुके हैं। ड्रामेटिक परफॉरमेंस एक्ट, 1876 नाटकीय प्रदर्शनों को नियंत्रित करने के लिए लागू किया गया था। इसमें सामग्री पर प्रतिबंध और थिएटरों के लिए लाइसेंस आवश्यकताएं शामिल थीं। इस एक्ट को सेंसरशिप प्रावधानों के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा और यह रचनात्मक अभिव्यक्ति को बाधित करता था, जिससे औपनिवेशिक शासन के दौरान प्रदर्शन कला और सांस्कृतिक गतिविधियों की वृद्धि में रुकावट पैदा हुई। आधुनिक मनोरंजन नियमों और कलात्मक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कानूनों के विकास के साथ, इस एक्ट के प्रावधान समकालीन भारत में अप्रासंगिक हो गए हैं।

ऐसा ही एक और कानून था भारतीय खजाना ट्रोव अधिनियम, 1878: एक औपनिवेशिक युग का कानून जो खजाने की खोज की रिपोर्टिंग की आवश्यकता थी। इसी श्रंखला में हैकनी-कैरिज एक्ट, 1879 ने घोड़ों से खींचे जाने वाले किराए की गाड़ियों (हैकनी कैरिज) के संचालन को नियंत्रित किया था, जो औपनिवेशिक युग के दौरान सामान्य परिवहन के साधन थे। घोड़ों से खींची जाने वाली गाड़ियों की जगह आधुनिक मोटर वाहनों ने ले ली है और सार्वजनिक परिवहन के लिए नियामक रूपरेखा मोटर वाहनों और सार्वजनिक परिवहन नियमों के साथ काफी विकसित हो गई है। इस कारण से, हैकनी कैरिज के लिए विशेष कानून अनावश्यक हो गए हैं। फेयरवेज में रुकावट एक्ट, 1881 जलमार्गों में रुकावटों से संबंधित था, जो औपनिवेशिक युग के दौरान नौवहन उद्देश्यों के लिए अधिक प्रासंगिक थे। आधुनिक समुद्री कानूनों और नियमों ने इसके प्रावधानों को अनावश्यक बना दिया है। लैंड एक्विजिशन

(माइंस) एक्ट, 1885 भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया और उद्देश्यों में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के साथ बदलाव आया है। भूमि अधिग्रहण पर वर्तमान कानून अधिक व्यापक और समकालीन विकास आवश्यकताओं के अनुरूप हैं।

संपत्तिशील बैठकों की रोकथाम एक्ट, 1911 सार्वजनिक सभाओं को रोकने के उद्देश्य से लागू किया गया था, जिन्हें औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ देशद्रोही या असंतोषजनक माना जाता था। इसने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना करने वाली सार्वजनिक सभाओं और भाषणों को सीमित किया, जिससे सार्वजनिक बहस और औपनिवेशिक शासन के खिलाफ शांतिपूर्ण विरोध बाधित हुआ। दिल्ली कानून एक्ट, 1912 और 1915 ब्रिटिश शासन के दौरान दिल्ली की शासन व्यवस्था के लिए विशिष्ट थे और बाद के कानूनों द्वारा इसे अधिस्थगित किया गया है, जो दिल्ली को केंद्र शासित प्रदेश और बाद में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के रूप में शासित करते हैं।

पुलिस (असंतोष को उकसाना) अधिनियम, 1922 का उद्देश्य सरकार के प्रति देशद्रोह और असंतोष को रोकना था, जो औपनिवेशिक युग की चिंताओं को दर्शाता है। आधुनिक कानून अलग कानूनी और संवैधानिक संदर्भ में देशद्रोह और सार्वजनिक व्यवस्था को संबोधित करते हैं। कैंटोन्मेंट्स (घर आवास) अधिनियम, 1923 सैन्य छावनियों में आवास को नियंत्रित करता था, जो आज के सैन्य आवास नीतियों और शहरी योजना में बदलाव के साथ कम प्रासंगिक है। बंगाल आतंकवादी उत्पातों का दमन (पूरक) अधिनियम, 1932 ने अधिकारियों को व्यापक शक्तियां दीं कि वे आतंकवाद का मुकाबला करने के बहाने बिना मुकदमे के संदिग्धों को गिरफ्तार और हिरासत में रख सकें, जिसमें अक्सर राजनीतिक असहमति भी शामिल होती थी। इसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं को निशाना बनाने के लिए व्यापक रूप से आलोचना का सामना करना पड़ा, जिन्हें आतंकवादी कहकर उनकी गतिविधियों को दबाने के लिए प्रयोग किया गया।

गन्ना अधिनियम, 1934 गन्ना उद्योग के पहलुओं को नियंत्रित करता था, जिन्हें तब से व्यापक कृषि और औद्योगिक नियमों में अद्यतन और एकीकृत किया गया है। आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1938 ने देशद्रोह की परिभाषा को व्यापक किया और राजनीतिक अपराधों के लिए दंड को बढ़ाया। इसका उपयोग भारतीय नेताओं और कार्यकर्ताओं को अभियोजित और कारावास में डालने के लिए किया गया, जो स्वतंत्रता की वकालत कर रहे थे, ब्रिटिश प्रयासों को दर्शाता है कि कैसे कानूनी डराने-धमकाने के माध्यम से राष्ट्रवादी आंदोलनों को रोकने की कोशिश की गई। दिल्ली भूमि उपयोग प्रतिबंध अधिनियम, 1941 ने दिल्ली में भूमि उपयोग पर प्रतिबंध लगाए, जिन्हें अब समकालीन शहरी योजना और ज़ोनिंग कानूनों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

साप्ताहिक अवकाश अधिनियम, 1942 औद्योगिक श्रमिकों के लिए साप्ताहिक अवकाश को विनियमित करने के लिए इस अधिनियम को पेश किया गया था, लेकिन इसे अपनी अपर्याप्तताओं और श्रम की स्थितियों को सुधारने में विफलता के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा। अपने सकारात्मक इरादे के बावजूद, इस अधिनियम को प्रतीकात्मक कानून के रूप में देखा गया, जिसने औपनिवेशिक शासन के तहत प्रचलित शोषणकारी कार्य स्थितियों को ठीक से संबोधित नहीं किया। युद्ध चोटें (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम, 1943 द्वितीय विश्व युद्ध से संबंधित गतिविधियों के दौरान श्रमिकों को लगी चोटों के लिए क्षतिपूर्ति और बीमा कवरेज प्रदान करता था। जबकि यह

लाभकारी प्रतीत होता है, इसके कार्यान्वयन की आलोचना भारतीय श्रमिकों के कल्याण के बजाय ब्रिटिश हितों और उद्योगों को प्राथमिकता देने के लिए की गई, जिससे औपनिवेशिक आर्थिक शोषण को बढ़ावा मिला।

शत्रु के साथ व्यापार (आपातकालीन प्रावधानों की निरंतरता) अधिनियम, 1947 भारत की स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होते हुए, इस अधिनियम ने आपातकालीन प्रावधानों को बढ़ाया ताकि व्यापार और आर्थिक गतिविधियों को विनियमित किया जा सके, जिन्हें ब्रिटिश हितों के लिए हानिकारक माना जाता था। यह अधिनियम ब्रिटिश प्रयासों का प्रतीक था कि कैसे भारत की स्वतंत्रता की ओर बढ़ते हुए भी वे नियंत्रण और आर्थिक प्रभुत्व बनाए रखना चाहते थे, जो औपनिवेशिक मानसिकता को दर्शाता है।

इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन के हितों की रक्षा करना और भारतीय समाज को नियंत्रित करना था। हालांकि, आज के आधुनिक और प्रगतिशील समाज में, इन कानूनों की प्रासंगिकता नहीं रह गई है। ऐसे कानूनों का बने रहना न केवल विधिक प्रणाली को जटिल बनाता है, बल्कि प्रशासनिक प्रक्रिया में भी बाधा उत्पन्न करता है।

भारत की आज़ादी के बाद के के चयनित रद्द किये गये कानून

टेलीग्राफ तार (विधि विरुद्ध कब्जा) अधिनियम, 1950, जो टेलीग्राफ तारों के कब्जे को विनियमित करता था और इसके विधि विरुद्ध कब्जों के लिए दंड का प्रावधान करता था, वर्ष 2013 में भारत में टेलीग्राफ सेवाओं को स्थायी रूप से बंद कर दिया गया था। इस अधिनियम में विनिर्दिष्ट तारों की चौड़ाई शामिल थी। इसके पश्चात्, जब स्पष्ट हो गया कि इन तारों का उपयोग अन्य उद्देश्यों के लिए नहीं होगा, तो इस अधिनियम को हटा दिया गया।

यूं ही नमक शुल्क अधिनियम, 1953 ने भारत में उत्पन्न नमक पर शुल्क लगाया था। इस अधिनियम को रद्द करने से नमक उत्पादन पर पुराने कर बोझ को हटाया गया, जो समग्र आर्थिक सिद्धांतों के साथ समर्थन करते हैं और महत्वपूर्ण वस्त्रों पर न्यूनतम कर लगाने की दिशा में होता है। यंग पर्सन्स (हानिकारक प्रकाशन) अधिनियम, 1956 ने उन प्रकाशनों की बिक्री और वितरण का नियंत्रण किया जो युवा व्यक्तियों के लिए हानिकारक माने गए। डिजिटल मीडिया के उभरने और जानकारी के आसान पहुंच के संदर्भ में, इस अधिनियम को अपेक्षित किया गया कि इसे रद्द किया जाए, ताकि मीडिया संचार पैटर्न्स में बदलाव का सम्मान किया जा सके और डिजिटल मीडिया की उपलब्धता के संदर्भ में इसका महत्व कम हो। चाय (संशोधन) अधिनियम, 1980 ने चाय उद्योग के विनियमन से संबंधित कुछ प्रावधानों में संशोधन किया था। इस अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य चाय उद्योग पर प्रशासनिक बोझ को कम करना और प्रदर्शन को सुधारना था, जिससे अधिक समर्थन और वृद्धि हो सके।

अखबार (मूल्य और पृष्ठ) अधिनियम, 1956 ने अखबारों के मूल्य और प्रकाशन की संख्या को नियंत्रित किया था। इस अधिनियम को रद्द करने से सरकारी हस्तक्षेप को अनावश्यक बताया गया, जिससे अखबार उद्योग में दर को और सामग्री निर्णयों को बाजारी ताकतों के द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, इससे मीडिया की स्वतंत्रता और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिल सकता है। अनिवार्य जमा योजना अधिनियम, 1963 के तहत कुछ संस्थाओं को सरकार के साथ धन जमा करने की आवश्यकता थी। इस अधिनियम को रद्द करने से ब्यूरोक्रेटिक बाधाएँ कम हो गईं और

व्यवसायों को अपनी वित्त प्रबंधन में अधिक लचीलापन मिला, जिससे एक व्यवसाय-मित्र स्वीकृति निर्माण हो सकती है।

कॉपीराइट (संशोधन) अधिनियम, 1999 ने भारत में कॉपीराइट संरक्षण से संबंधित प्रावधानों में संशोधन किया था। अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय मानकों और प्रौद्योगिकी उन्नतियों के साथ समन्वित कॉपीराइट कानूनों को अपडेट करना था, जिससे निर्माताओं के लिए बेहतर संरक्षण सुनिश्चित हो सके और नवाचार को बढ़ावा मिल सके। मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2001ने भारत में मोटर वाहनों से संबंधित विभिन्न प्रावधानों में संशोधन किया था। अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य मोटर वाहन विनियमन को सरल और सुगम बनाना था, जिससे सड़क सुरक्षा और परिवहन में कुशलता को बढ़ावा मिल सके। भारतीय साक्ष्य (संशोधन) अधिनियम, 2002 ने भारतीय कानूनी प्रक्रियाओं में साक्ष्य के नियमों में संशोधन किया था। इस अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य न्यायिक प्रक्रियाओं में साक्ष्य के मानकों और प्रक्रियाओं को आधुनिक बनाना था, जिससे न्यायिक प्रक्रियाओं में निष्पादन और कुशलता सुनिश्चित किया जा सके।

प्रतिस्पर्धा (संशोधन) अधिनियम, 2009 ने भारत में प्रतिस्पर्धा कानून से संबंधित प्रावधानों में संशोधन किया था। इस अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य बाजारों में प्रतिस्पर्धा और कुशलता को बढ़ावा देना था, प्रतिस्पर्धा विनियमन को अद्यतित और सरल बनाकर। व्यक्तिगत कानून (संशोधन) अधिनियम, 2019 ने भारत में कुछ समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन किया था। इस अधिनियम को रद्द करने का उद्देश्य संवैधानिक सिद्धांतों और समाजिक मानकों के साथ व्यक्तिगत कानूनों को सुधारना और समन्वित करना था, न्याय और समानता को कानूनी कार्यकर्मों के माध्यम से सुनिश्चित करना।

प्रभाव और महत्व:

सरकार ने उन पुराने कानूनों को निरसन करने का निर्णय लेते हुए एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है जो अब प्रयोग में नहीं लाये जा सकते थे और जिन्हें अंग्रेजों ने भारतीय नागरिकों की दबाने के लिए बनाया था। इस कदम से कानूनी ढांचे में सुधार हुआ है और प्रशासनिक बोझ को कम किया गया है। प्राचीन कानूनों के निरसन से भारतीय व्यवसाय समुदाय को बड़ी सुधार और आराम मिला है। पूर्व में ऐसे कानून थे जो व्यवसायों को हरेक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के अधीन रखते थे, जैसे स्वास्थ्य से संबंधित अधिनियम जिनसे हरेक फैक्ट्री को चाहे वह किसी भी उद्देश्य के लिए, सफेदी (वाईटवाश) कराने का आदेश दिया जाता था। इस प्रकार के पुराने अधिनियमों के निरसन से, कानूनी प्रणाली में आवश्यक सुधार आया है और नई वास्तविकताओं और आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया गया है। इससे आर्थिक और कानूनी दृष्टिकोण से परोक्ष रूप से भारतीय समाज को बड़ा लाभ हुआ है, जहाँ पुराने और अप्रचलित विधियों का अब और कोई स्थान नहीं है। ये कानून चूँकि पहले से ही प्रयोग में नहीं लाये जाते, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कानून वापिस लेने के बाद यह बदलाव आया है, अपितु कानून वापिस लेना यह सुनिश्चित करता है की किसी भी नागरिक या उद्योग को इनका प्रयोग करके फंसाया नहीं जा सकता।

इस प्रक्रिया ने भारतीय व्यवसाय समुदाय को न केवल कानूनी ढांचे में सुधार और वृद्धि के अवसर प्रदान किए हैं, बल्कि उन्हें व्यापार सुगमता में भी बड़ा बदलाव आया है। अब व्यवसायी बिना पुराने कानून के टूटने के डर के, नए उद्यमिता के अवसरों का लाभ उठा सकते हैं। साथ ही, इस निरसन प्रक्रिया ने सरकारी हस्तक्षेप को भी कम करके व्यवसायों को स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में मदद की है। इससे न केवल व्यवसाय समुदाय, बल्कि समाज के विभिन्न प्रतिष्ठानों और संगठनों को भी फायदा पहुंचा है जिनकी संघटना और कार्यक्षमता में सुधार हुआ है। नए और उन्नत विधियों के अनुसार बदलते हुए कानूनी परिप्रेक्ष्य ने समाज के विकास में बड़ा योगदान दिया है और व्यवसायों को विश्वास और स्थिरता के साथ अपने कार्यों को आगे बढ़ाने का साहस प्रदान किया है। नागरिकों को भरोसा दिलाया है की सरकार बदनाम हो चुकी न्याय व्यवस्था को पुन: जीवित करने में तत्पर है। ज़्यादातर नागरिकों को इन पुराने कानूनों का ज्ञान ही भारत सरकार द्वारा उन्हें रद्द करने के बाद हुआ, यूँ इस उद्यम ने कानून के प्रति जागरूकता भी बढाई है।

फ़िलहाल, सरकार नियमित समीक्षा और विधायी उपायों के माध्यम से पुराने कानूनों की पहचान और निरसन का कार्य जारी रखे हुए है। यह निरंतर प्रयास इसकी एक आधुनिक, कुशल और उत्तरदायी कानूनी प्रणाली बनाए रखने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है, पर साथ ही साथ देशद्रोह के क़ानून के बारे में सरकार पर लगने वाले क़ानून भी शोधकर्ताओं व् नागरिकों को ध्यान में रखने चाहिए।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि इस तरह 2014 के बाद से भारतीय सरकार ने 1400 से अधिक अप्रचलित केंद्रीय कानूनों को निरस्त करने का व् कई अन्य की पहचान करने का काबिले तारीफ है। यह व्यापक प्रयास भारत के कानूनी ढांचे को सरल बनाने, पुराने नियमों और कानूनों को हटाने के लिए किया गया है जो अब आधुनिक शासन और आर्थिक गतिविधियों में किसी काम के नहीं रहे।

संदर्भ सूची

1. बक्शी, पी.एम. (2023). भारत का संविधान (19वां संस्करण). लेक्सिसनेक्सिस।
2. बसु, डी. डी. (2023). भारतीय संविधान का परिचय 26वां संस्करण।
3. वर्णवाल, महेश कुमार (2017), भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण, कोसमास पब्लिकेशन, बजीराबाद दिल्ली।
4. कश्यप, एस. सी. (2019). भारत का संविधान: छात्रों के लिए एक पुस्तिका। विटस्टा पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड।
5. कश्यप, एस. सी. (1996). हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि।
6. जैन, एम.पी. (2020). भारतीय कानूनी और संवैधानिक इतिहास की रूपरेखा। लेक्सिसनेक्सिस।
7. जौहरी, डॉ. जे.सी. (2019), राजनीति विज्ञान, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा।
8. जैन, डॉ. पुखराज (2014), डॉ. बी.एल. फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

9. संविधान संशोधन विधेयक, (2014) लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली।https://legislative.gov.in/hi/document
10. https://web.archive.org/web/20080427052233/http://indiacode.nic.in/coiweb/coifiles/amendment.htm
11. https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india

42

बिहार की राजनीति में गठबंधन प्रयोग: सत्ता समीकरणों का समीक्षात्मक विश्लेषण

नरेन्द्र कुमार आर्य,
सह-आचार्य,राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय , बिहार

बिहार की अत्यधिक गतिशील राजनीति में गठबंधन अक्सर बनते और टूटते रहते हैं। ये बदलाव सीधे तौर पर शासन, नीतिगत निर्णयों और लाखों लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। मतदाताओं, नीति निर्माताओं और विश्लेषकों के लिए इन राजनीतिक पुनर्संयोजनों की समझ महत्वपूर्ण है ताकि यह आकलन किया जा सके कि राज्य में सत्ता संघर्ष विकास और लोकतंत्र को कैसे प्रभावित करते हैं। इस लेख का उद्देश्य स्वतंत्रता के बाद के दशकों में बिहार में बदलते राजनीतिक गठबंधनों को पाँच अवधारणात्मक चरणों के माध्यम से विश्लेषण करना है। इसमें लगातार गुटबंदी आधारित पुनर्संयोजनों के पीछे के कारणों व इसके शासन, चुनाव और लोक कल्याण पर प्रभाव को समझने का प्रयास किया जाएगा। अतीत और वर्तमान रुझानों का विश्लेषण करके, लेख इस बात पर प्रकाश डालना चाहेगा कि ये परिवर्तन राज्य के राजनीतिक भविष्य को कैसे आकार देते हैं। लेख का मुख्य उद्देश्य बिहार में राजनीतिक गठबंधनों के विकास का पता लगाना है, शुरुआती वर्षों में कांग्रेस के प्रभुत्व से शुरु कर क्षेत्रीय और जाति-आधारित दलों के उदय से लेकर वर्तमान में राष्ट्रीय गठबंधन की राजनीति तक। इसका उद्देश्य गठबंधनों के निर्माण और विघटन के पीछे के मुख्य कारकों की जांच करना है, जिसमें जातिगत गतिशीलता, शासन संबंधी मुद्दे और राष्ट्रीय राजनीतिक बदलाव शामिल हैं, साथ ही यह आकलन करना है कि ये गठबंधन बिहार में चुनावी नतीजों और शासन को कैसे प्रभावित करते हैं, नीतियों और सार्वजनिक प्रशासन को कैसे प्रभावित करते हैं। अंत में लेख बिहार में राजनीतिक गठबंधनों के भविष्य और स्थिरता, शासन और विकास पर उनके संभावित प्रभावों का पता लगाएगा।

1. कांग्रेस युग (1947-1970 का दशक): राष्ट्रवाद का गढ़ और राजनीतिक परिवर्तन के बीज

स्वतंत्रता के बाद के दशकों में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने खुद को बिहार में निर्विवाद राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया। यह प्रभुत्व स्वतंत्रता संग्राम में इसके नेतृत्व का स्वाभाविक परिणाम था, जिससे पार्टी को जनता का अपार विश्वास हासिल हुआ। श्री कृष्ण सिन्हा, अनुग्रह नारायण सिन्हा और डॉ. राजेंद्र प्रसाद जैसे कांग्रेस नेताओं ने राज्य के शासन को भूमि सुधार, औद्योगिक विस्तार और शिक्षा में महत्वाकांक्षी प्रयास के माध्यम से आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांग्रेस शासन के शुरुआती वर्षों को मजबूत नेतृत्व और आधुनिकीकरण की दृष्टि से परिभाषित किया गया था। बिहार के पहले मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिन्हा ने आर्थिक आत्मनिर्भरता, राष्ट्रवाद और सामाजिक कल्याण के सिद्धांतों पर आधारित शासन में दृढ़ विश्वास रखते हुए सामंती ज़मींदारी व्यवस्था को खत्म करने और किसानों को भूमि का पुनर्वितरण करने के उद्देश्य से भूमि सुधार शुरू किया। हालाँकि, ये सुधार केवल आंशिक रूप से सफल रहे, क्योंकि शक्तिशाली ज़मींदारों ने अक्सर प्रॉक्सी या प्रतिनिधि स्वामित्व और कानूनी

खामियों के माध्यम से अपनी ज़मीन को बनाए रखने के तरीके खोज लिए। उनके करीबी सहयोगी अनुग्रह नारायण सिन्हा ने बुनियादी ढाँचे के विकास, सिंचाई और बिजली उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते हुए बिहार के वित्त के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयासों के बावजूद, बिहार काफी हद तक कृषि प्रधान रहा। कांग्रेस सरकार ने साक्षरता कार्यक्रमों का विस्तार करने का प्रयास किया, लेकिन शिक्षा मुख्य रूप से शहरी अभिजात वर्ग और उच्च जाति समुदायों तक ही सीमित रही। पिछड़ी जातियों और ग्रामीण आबादी को व्यापक शैक्षिक अवसर प्रदान करने में विफलता ने मौजूदा सामाजिक असमानताओं को और गहरा कर दिया। श्रीकृष्ण सिन्हा ने बिहार के मुख्यमंत्री पद की जिम्मेदारी संभाली और 1961 तक इस पद पर बने रहे। 1946 से 1990 तक, चार अल्पकालिक गैर-कांग्रेसी सरकारों को छोड़कर, राज्य में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ही शासन रहा। पहली बार, 5 मार्च 1967 से 28 जनवरी 1968 तक, महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में बिहार में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। इसके बाद, 22 जून 1969 से 4 जुलाई 1969 तक कांग्रेस के ही एक गुट, कांग्रेस (ओ), की सरकार रही, जिसमें भोला पासवान शास्त्री मुख्यमंत्री बने। 22 दिसंबर 1970 से 2 जून 1971 तक कर्पूरी ठाकुर सोशलिस्ट पार्टी के मुख्यमंत्री रहे। इसके बाद, 24 जून 1977 से 17 फरवरी 1980 तक कर्पूरी ठाकुर और रामसुंदर दास के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार सत्ता में रही।कांग्रेस ने स्थिर सरकार तो प्रदान की मगर आंतरिक संघर्ष, जाति-आधारित असंतोष और प्रशासनिक अक्षमताएं भी उभरीं, जिसने बाद में इसके प्रभुत्व को कमजोर कर दिया ।

कांग्रेस ने नेहरू के राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुरूप विकास के समाजवादी मॉडल का अनुसरण किया; मगर, आर्थिक नीतियों के लाभ समान रूप से समाज के हाशिए के वर्गों में नहीं पहुँचने से नाराजगी बढ़ रही थी। अपनी प्रारंभिक सफलता के बावजूद, कांग्रेस सरकार बढ़ती आंतरिक विभाजन और बढ़ती जाति-आधारित राजनीति से जूझती रही। 1961 में श्रीकृष्ण सिन्हा की मृत्यु के बाद, पार्टी को नेतृत्व अस्थिरता का सामना करना पड़ा, जिसमें मुख्यमंत्रियों में लगातार बदलाव हुए। केबी सहाय, जिन्होंने 1963 से 1967 तक पद संभाला, ने भूमि सुधारों को अधिक आक्रामक तरीके से लागू करने का प्रयास किया, लेकिन इस कदम ने शक्तिशाली जमींदार वर्ग को अलग-थलग कर दिया और राजनीतिक प्रतिरोध को जन्म दिया। इसी समय, कांग्रेस पिछड़ी जातियों के बीच समर्थन खोने लगी, जो लंबे समय से सत्ता संरचना से अलग-थलग महसूस कर रहे थे। पार्टी पर पारंपरिक रूप से उच्च जातियों का वर्चस्व था, जबकि अन्य जातियों का बढ़ता दबदबा भी पार्टी के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया।

पिछड़े वर्गों (ओबीसी) ने नई राजनीतिक चुनौतियाँ पैदा कीं। 1970 के दशक की शुरुआत में पिछड़ी जाति के नेताओं का उदय हुआ, जिन्होंने अपने समुदायों को संगठित करना शुरू किया, जिससे बिहार में और अधिक विखंडित राजनीति की नींव पड़ी। 1960 के दशक के अंत तक, कांग्रेस का प्रभुत्व कम होने लगा था। आर्थिक मंदी, भूमि सुधारों को पूरी तरह से लागू करने में विफलता और बढ़ती जाति चेतना ने मतदाताओं में असंतोष पैदा किया। 1967 के चुनावों ने एक महत्वपूर्ण मोड़ दिया, जब कांग्रेस ने पहली बार अपना पूर्ण बहुमत खो दिया। इस राजनीतिक बदलाव ने बिहार की राजनीति में एक नए युग की शुरुआत का संकेत दिया, जहां गठबंधन सरकारें और जाति-आधारित लामबंदी तेजी से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में आ गयीं। कांग्रेस युग ने बिहार में शासन की नींव रखी लेकिन सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के अनुकूल होने में इसकी असमर्थता ने अंततः इसकी पकड़ को कमजोर कर दिया, जिससे बाद में क्षेत्रीय और जाति-आधारित आंदोलन उभरने लगे।

2. समाजवादी और जाति-आधारित राजनीति का उदय (1970-1990 का दशक)

1970 से 1990 का कालखंड बिहार के राजनीतिक परिदृश्य में एक गहरा परिवर्तन लेकर आया। कांग्रेस पार्टी, जो कभी राज्य की राजनीति पर हावी थी, नई ताकतों के उभरने के साथ ही अपनी जमीन खोने लगी। राम मनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जैसी हस्तियों के नेतृत्व में समाजवादी आंदोलन ने कांग्रेस के उच्च-जाति-प्रधान शासन के खिलाफ जनता को लामबंद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस युग में जाति-आधारित राजनीतिक लामबंदी का उदय भी हुआ, जिसकी परिणति 1990 के दशक में लालू प्रसाद यादव और उनके राष्ट्रीय जनता दल (राजद) के प्रभुत्व के रूप में हुई। ये बदलाव गहरे सामाजिक-आर्थिक बदलावों और ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समूहों से प्रतिनिधित्व की बढ़ती मांगों को दर्शाते हैं।

1970 के दशक तक, कांग्रेस के प्रति असंतोष व्यापक हो गया था यह सार्थक भूमि सुधारों को लागू करने में विफल रही जिसने बिहार की आबादी का बहुमत -पिछड़ी जातियों और दलितों को अलग-थलग कर दिया। इस पृष्ठभूमि के खिलाफ, समाजवादी नेताओं ने समानता, विकेंद्रीकरण और निचली जातियों और ग्रामीण गरीबों के सशक्तीकरण पर आधारित शासन की एक वैकल्पिक दृष्टि पेश की। राम मनोहर लोहिया की विचारधारा ने पिछड़े वर्गों के उत्थान और आर्थिक पुनर्वितरण पर जोर दिया। उनका नारा "संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़ा पावे सौ में साठ"। यह हाशिए के समुदायों के लिए रैली का नारा बन गया था । लोहिया के सकारात्मक कार्रवाई, भूमि सुधार और भाषाई और क्षेत्रीय स्वायत्तता पर जोर को बिहार की आम जनता ने सकारात्मक प्रभाव के रूप में ग्रहण किया था,जहां सामाजिक पदानुक्रम ने लंबे समय से आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को निर्धारित करता रहा था। 1967 के चुनावों ने पहले ही कांग्रेस की जनता में घटती लोकप्रियता और पकड़ का संकेत दे दिया था, क्योंकि समाजवादियों सहित विपक्षी दलों के गठबंधन ने महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में कुछ समय के लिए सरकार बनाई थी। हालांकि इस अस्थिर सरकार ने दिखाया कि कांग्रेस को चुनावी तौर पर चुनौती दी जा सकती है। 1970 के दशक की शुरुआत में, बढ़ते भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी और आर्थिक संकट ने व्यापक सार्वजनिक असंतोष को जन्म दिया। गांधीवादी समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण (जेपी) ने 1974 में संपूर्ण क्रांति (संपूर्ण क्रांति) आंदोलन की शुरुआत की, जिसमें कांग्रेस को सत्ता से बाहर करने और व्यापक राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की मांग की गई। बिहार इस आंदोलन का केंद्र बन गया, जहाँ छात्र, युवा और मध्यम वर्ग के पेशेवर जेपी के भ्रष्टाचार मुक्त और जन-केंद्रित सरकार के आह्वान के पीछे एकजुट हो गए। इस आंदोलन को तब गति मिली जब इंदिरा गांधी ने 1975 में आपातकाल की घोषणा की, नागरिक स्वतंत्रता को कम कर दिया और विपक्षी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। आपातकाल की ज्यादतियों ने कांग्रेस को लोगों से और भी दूर कर दिया, जिससे 1977 के चुनावों का मंच तैयार हो गया, जिसमें कांग्रेस विरोधी ताकतों का गठबंधन जनता पार्टी केंद्र और बिहार दोनों जगहों पर सत्ता में आई।

डॉ. राम मनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण (जेपी) के "सप्तक्रांति" और “संपूर्ण क्रांति” आंदोलनों ने बिहार में समाजवादी नेताओं की एक नई पीढ़ी को जन्म दिया। इन आंदोलनों से पिछड़ों और दलितों के अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर, नीतीश कुमार, शरद यादव, दलित राजनीति का चेहरा रामविलास

पासवान व लालू प्रसाद यादव उभरे जिनमे से कई राष्ट्रीय राजनीति में भी चर्चित रहे तथा बाद में बिहार के मुख्यमंत्री भी बने।

3. जनता पार्टी का उदय और विखंडन (1977-1990)

1977 में जनता पार्टी की जीत एक महत्वपूर्ण क्षण था जो बिहार में कांग्रेस की पहली बड़ी हार का प्रतिनिधित्व करता है और दर्शाता है कि विपक्षी ताकतें मज़बूत पुरानी पार्टी को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हो सकती हैं। हालांकि, वैचारिक और व्यक्तिगत मतभेदों ने जल्द ही जनता पार्टी के भीतर आंतरिक संघर्षों को पैदा कर दिया। जनता पार्टी ने शुरू में कर्पूरी ठाकुर (1977-79) जैसे समाजवादी नेताओं के साथ बिहार पर शासन किया, जिन्होंने पिछड़ी जातियों के लिए अग्रणी आरक्षण नीतियां शुरू कीं। राज्य की नौकरियों और शिक्षा में ओबीसी आरक्षण पर मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के उनके फैसले ने बड़े पैमाने पर राजनीतिक बदलाव किया, जिससे पिछड़ी जातियों को सशक्त बनाया गया, जबकि उच्च जाति के अभिजात वर्ग इससे नाराज हुए । राष्ट्रीय स्तर पर जनता सरकार 1979 में गिर गई, जिससे 1980 में इंदिरा गांधी की वापसी हुई। कांग्रेस ने बिहार में कुछ समय के लिए सत्ता हासिल की, लेकिन इसकी पकड़ अंतत: कमजोर ही बनी रही।

राष्ट्रीय स्तर पर विश्वनाथ प्रताप सिंह और बिहार में लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में जनता दल का उदय हुआ। 1990 के बिहार विधानसभा चुनावों ने एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया। यादव समुदाय के करिश्माई नेता लालू प्रसाद यादव प्रमुख राजनीतिक व्यक्ति के रूप में उभरे। उनका उदय अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी), विशेष रूप से यादव, कुर्मी और कोइरी के दावे का प्रतीक था, जो लंबे समय से बिहार की सत्ता संरचना में हाशिए पर थे। लालू प्रसाद यादव 1990 में जनता दल के समर्थन से बिहार के मुख्यमंत्री बने। जनता दल को कुछ ग़ैर-कांग्रेसी दलों का समर्थन प्राप्त था।उनका नेतृत्व सामाजिक न्याय (सामाजिक न्याय) के आख्यान से प्रेरित था, जिसका उद्देश्य पिछड़ी जातियों, दलितों और अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुसलमानों को सशक्त बनाना था। उन्होंने मंडल आयोग के कार्यान्वयन का समर्थन किया, जिसने सरकारी नौकरियों में ओबीसी के लिए 27% आरक्षण प्रदान किया। मुसलमानों और यादवों (MY फ़ैक्टर) के बीच उनकी लोकप्रियता ने उन्हें एक मज़बूत चुनावी गणित का आधार प्रदान किया, नतीजन उन्होंने 1997 में राष्ट्रीय जनता दल या राजद की स्थापना की, जो आज भी बिहार में प्रभावशाली राजनीतिक ताकत बना हुआ है।

हालांकि लालू प्रसाद यादव ने पिछड़ी जातियों को सफलतापूर्वक संगठित किया मगर मुख्यमंत्री के रूप में उनका कार्यकाल (1990-2005) भ्रष्टाचार, अराजकता और आर्थिक गिरावट के मुद्दों से भरा रहा। कुख्यात "चारा घोटाला" जिसमें मवेशियों के चारे के लिए सार्वजनिक धन का गबन किया गया था, ने उनकी प्रतिष्ठा को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाया। लालू के शासन में अपराध, राजनीतिक हिंसा और फिरौती के लिए अपहरण में वृद्धि देखी गई, जिससे शासन अस्थिर हो गया और मीडिया द्वारा इसे "अराजकता और "जंगल राज" के शासन के रूप में लोकप्रिय बनाया गया। जाति आधारित सशक्तिकरण में वृद्धि हुई, लेकिन बिहार के बुनियादी ढांचे, उद्योग और रोजगार के अवसरों में गिरावट आई, जिससे बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। इन आलोचनाओं के बावजूद, हाशिए पर पड़े समुदायों से जुड़ने की अपनी क्षमता के कारण लालू राजनीतिक रूप से प्रासंगिक बने रहे। उनकी लोकलुभावन अपील और रणनीतिक

गठबंधनों ने उन्हें 2005 तक सत्ता में बनाए रखा, जब नीतीश कुमार के सुशासन अभियान ने आखिरकार राजद को सत्ता से बाहर कर दिया।

4. भाजपा और महागठबंधन का युग (2000-2010)

2000 के दशक की शुरुआत में बिहार की राजनीतिक दिशा में एक नया चरण शुरू हुआ, जिसकी विशेषता भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) और महागठबंधन का उदय था। इस अवधि में विकास-केंद्रित राजनीति का उभार देखा गया, जो पहले की जाति-प्रधान चुनावी रणनीतियों से अलग था। हालाँकि, गठबंधन अस्थिर रहे, जिसमें नेता राजनीतिक अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अक्सर अपनी निष्ठाएँ बदलते रहे। इस युग के केंद्र में नीतीश कुमार थे, जिनकी गठबंधन बनाने और तोड़ने की क्षमता - सबसे खास तौर पर भाजपा और बाद में राष्ट्रीय जनता दल (राजद) और कांग्रेस के साथ - बिहार के शासन को परिभाषित करती है। इस अवधि में लालू प्रसाद यादव के प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभाव में भी गिरावट देखी गई, क्योंकि भ्रष्टाचार घोटाले के की मुद्दों के कारण वे जेल में थे और शासन के मुद्दों ने राज्य पर राजद की पकड़ कमजोर कर दिया था।

जद(यू)-भाजपा सरकार (2005-2013) के तहत, बिहार में एक उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया, जिसमें शासन जाति-आधारित राजनीति की बजाय कानून और व्यवस्था, बुनियादी ढांचे और कल्याण सुधारों पर ध्यान केंद्रित किया जाने लगा। संगठित अपराध और "बाहुबली" राजनेताओं पर एक बड़ी कार्रवाई ने जनता का विश्वास बहाल किया, जबकि पुलिस की बढ़ी हुई उपस्थिति और प्रशासनिक दक्षता ने अपराध दर में काफी कमी की। बुनियादी ढांचे का विकास प्राथमिकता बन गया, बड़े पैमाने पर सड़क निर्माण परियोजनाओं ने कनेक्टिविटी और बिजली में सुधार किया. ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की पहुंच बढ़ाने वाले शहरी विकास कार्यक्रमों ने बिहार के पुनरुद्धार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्कूली छात्राओं को मुफ्त साइकिल प्रदान करने वाली मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना ने महिला साक्षरता और स्कूल में उपस्थिति में तेज वृद्धि की। इसके अतिरिक्त, मध्याह्न भोजन योजनाओं और पंचायत स्तर के शासन को मजबूत करने से ग्रामीण शिक्षा और भागीदारी में वृद्धि हुई।

इस अवधि में बिहार की राजनीतिक कहानी में बदलाव आया व विकास और शासन को चुनावी चर्चा में सबसे ऊपर रखा जाने लगा। इन सुधारों ने नीतीश कुमार को विकास समर्थक नेता के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई, जिससे भाजपा के साथ उनकी साझेदारी मजबूत हुई। 2010 तक, जद(यू)-बीजेपी गठबंधन ने 243 में से 206 सीटें हासिल करके ज़ोरदार जीत हासिल की। जद(यू)-बीजेपी गठबंधन की सफलता के बावजूद, नीतीश कुमार और बीजेपी के बीच बढ़ते तनाव ने एक नाटकीय राजनीतिक दरार पैदा कर दी। विवाद का मुख्य बिंदु 2014 के लोकसभा चुनावों के लिए बीजेपी के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में नरेंद्र मोदी का उदय था। नीतीश ने खुद को धर्मनिरपेक्ष छवि वाले नेता के रूप में स्थापित किया और मोदी के हिंदुत्व से प्रेरित राजनीतिक नेतृत्व का विरोध किया। इस वैचारिक दरार के कारण जून 2013 में जद(यू)-बीजेपी गठबंधन की आठ साल लंबी साझेदारी खत्म हो गई।

नीतीश कुमार के लिए राजनीतिक नतीजे तत्काल और गंभीर थे। जद(यू) के कई पारंपरिक मतदाता, विशेष रूप से उच्च जातियां और शहरी समर्थक, बीजेपी की ओर आकर्षित हुए, जिससे नीतीश का चुनावी आधार कमजोर हुआ।

2014 के आम चुनाव जद(यू) के लिए विनाशकारी साबित हुए, क्योंकि बीजेपी ने बिहार में 40 लोकसभा सीटों में से 22 पर जीत हासिल करते हुए जीत हासिल की, जबकि जद(यू)अपमानजनक हार के कारण सिर्फ 2 सीटों पर सिमट गई - जिसने नीतीश कुमार की राजनीतिक स्थिति के लिए एक बड़ा झटका दिया। 2014 के चुनावी पराजय के बाद, नीतीश कुमार ने अपने पूर्व प्रतिद्वंद्वी लालू प्रसाद यादव की राजद और कांग्रेस के साथ गठबंधन करके 2015 में महागठबंधन बनाकर राजनीतिक जमीन हासिल करने की कोशिश की। इस गठबंधन का मुख्य उद्देश्य जाति-आधारित समर्थन को मजबूत करके बिहार में भाजपा के बढ़ते प्रभाव का मुकाबला करना था।

गठबंधन रणनीतिक रूप से तैयार किया गया था - राजद ने यादव-मुस्लिम वोट बैंक पर अपना दबदबा बनाए रखा, जबकि जद(यू) ने कुर्मी, कोइरी और अत्यंत पिछड़ी जातियों (ईबीसी) के बीच अपनी अपील बनाए रखी। कांग्रेस द्वारा पारंपरिक उच्च-जाति और दलित मतदाताओं को जोड़ने के साथ, महागठबंधन ने खुद को भाजपा के लिए एक कठिन चुनौती के रूप में पेश किया। महागठबंधन ने 2015 के बिहार विधानसभा चुनावों में 243 में से 178 सीटें जीतीं । यह भाजपा के लिए एक बड़ा झटका था, जो 2014 के लोकसभा चुनावों में अपनी सफलता का जश्न मना रही थी। इस जीत के साथ, नीतीश कुमार मुख्यमंत्री के रूप में वापस तो आ गए, लेकिन राजद सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी।

गठबंधन हालांकि जल्द ही अस्थिर साबित हुआ, क्योंकि जद(यू) और राजद के बीच गहरे तनाव फिर से उभर आए। मुख्य मुद्दा राजद नेताओं, विशेष रूप से लालू के बेटे तेजस्वी यादव, जो उपमुख्यमंत्री के रूप में कार्यरत थे, के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप थे। 2017 तक, उनके खिलाफ कई भ्रष्टाचार के मामले दर्ज किए गए, जिससे नीतीश कुमार के लिए राजनीतिक दुविधा पैदा हो गई। अपनी "स्वच्छ शासन" छवि से समझौता करने से इनकार करते हुए, नीतीश ने खुद को राजद से दूर कर लिया, जिससे गठबंधन के भीतर दरार बढ़ती गई। जुलाई 2017 में एक नाटकीय राजनीतिक बदलाव के तहत नीतीश कुमार ने महागठबंधन में भ्रष्टाचार को कारण बताते हुए मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था। पैंतरा बदलते हुए , 24 घंटे के भीतर ही उन्होंने भाजपा के साथ फिर से गठबंधन कर लिया और जद(यू)-भाजपा गठबंधन की नई सरकार बना ली। हालांकि यह कदम राजनीतिक रूप से रणनीतिक था, लेकिन राजद और कांग्रेस ने उन पर विश्वासघात का आरोप लगाया और नीतीश पर भ्रष्टाचार का इस्तेमाल कर गठबंधन बदलने का आरोप लगाया।

अगर हम इस युग (2000-2010) से कुछ महत्वपूर्ण सबक लें, तो हम कह सकते हैं कि बिहार शासन-केंद्रित राजनीति की ओर बढ़ गया। जद(यू)-बीजेपी गठबंधन (2005-2013) के दौरान जद(यू)- कनिष्ठ पार्टनर बन के रही बीजेपी ने स्वतंत्र ताकत हासिल की, खासकर नरेंद्र मोदी के उदय और नीतीश के 2013 में गठबंधन से अलग होने के बाद। 2014 तक, बीजेपी एक प्रमुख राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी, जो सीधे जद(यू) और राजद दोनों से प्रतिस्पर्धा कर रही थी। नीतीश कुमार ने उल्लेखनीय राजनीतिक पैंतरेबाजी का प्रदर्शन किया, कई बार गठबंधन बदले- 2005 में जद(यू)-बीजेपी, 2015 में जद(यू)-राजद-कांग्रेस और 2017 में फिर से बीजेपी के साथ। जबकि इससे उन्हें सत्ता बरकरार रखने में मदद मिली, लेकिन इसने समुदायों के बीच उनकी विश्वसनीयता को भी खत्म कर दिया।

इस अवधि ने बिहार की राजनीतिक गतिशीलता को मौलिक रूप से नया रूप दिया, जिसमें शासन, बदलते गठबंधन और भाजपा के उत्थान ने राज्य की विकसित होती सत्ता संरचना को परिभाषित किया। 2000 और 2010 के दशक को बिहार के जाति-संचालित राजनीति से शासन-आधारित विमर्श में परिवर्तन द्वारा परिभाषित किया गया था, जिसमें भाजपा और जद(यू) प्रमुख खिलाड़ी के रूप में उभरे थे। हालांकि, गठबंधनों की अस्थिर प्रकृति ने रेखांकित किया कि कैसे राजनीतिक अस्तित्व अक्सर वैचारिक स्थिरता पर पूर्वता ले लेता है इस बीच, मोदी की लोकप्रियता से प्रेरित भाजपा के बढ़ते प्रभाव ने इसे बिहार की सबसे मजबूत राजनीतिक ताकत के रूप में स्थापित कर दिया। जैसे-जैसे बिहार 2020 के दशक में प्रवेश कर रहा था , भाजपा, जद(यू) और राजद के बीच मुकाबला लगातार विकसित होता जा रहा था, नई चुनावी चुनौतियों और मतदाताओं की बदलती प्राथमिकताओं ने इसके राजनीतिक इतिहास के अगले चरण को आकार दिया है।

5. 2020 के बाद बिहार का राजनीतिक परिदृश्य: गठबंधन और अनिश्चितता का चक्र

2020 के बिहार विधानसभा चुनावों ने राज्य की राजनीतिक लचीलेपन की परंपरा को मजबूत करते हुए, राष्ट्रीय जनता दल (राजद) सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी, लेकिन वह बहुमत हासिल करने से चूक गई। जद(यू) की सीटों की संख्या में गिरावट के बावजूद, भारतीय जनता पार्टी जद(यू)-बीजेपी गठबंधन सत्ता बरकरार रखने में कामयाब रहा। हालांकि, यह राजनीतिक व्यवस्था अल्पकालिक थी, क्योंकि नीतीश कुमार ने 2022 में एक बार फिर भाजपा से नाता तोड़ लिया और राजद, कांग्रेस और वाम दलों के साथ महागठबंधन को पुनर्जीवित किया।

2020 के बिहार विधानसभा चुनावों ने एक महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव को चिह्नित किया, जिसमें तेजस्वी यादव के नेतृत्व में पुनरुत्थानशील राजद ने सत्तारूढ़ जद (यू)-भाजपा गठबंधन के खिलाफ एक मजबूत चुनौती पेश की। तेजस्वी यादव विपक्ष का चेहरा बनकर उभरे, और 75 सीटों के साथ राजद सबसे बड़ी पार्टी बन गई। सबसे खराब प्रदर्शन करते हुए जद(यू) ने केवल 43 सीटें जीतीं । उसे एक बड़ा झटका लगा। भाजपा ने 74 सीटें हासिल कर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) गठबंधन के भीतर शक्ति संतुलन को फिर से स्थापित किया, जिससे भाजपा प्रमुख भागीदार बन गई, अनुमानत: सरकारी फैसलों में नीतीश कुमार का प्रभाव कम हो गया।

मगर इसने नीतीश कुमार की राजनीतिक अनुकूलनशीलता को रेखांकित किया, क्योंकि वे चुनावी असफलताओं के बावजूद एक बार फिर सत्ता बरकरार रखने में सफल रहे। इसके अलावा, हिंदुस्तानी आवाम मोर्चा (HAM) और विकासशील इंसान पार्टी (VIP) जैसे छोटे सहयोगियों के राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार में प्रवेश ने गठबंधन के समीकरण को और जटिल बना दिया, क्योंकि नीतीश को अब एक बहुसंख्यक भाजपा के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए कई हितधारकों को संतुलित करना था। लेकिन नीतीश कुमार का मानना था कि 2020 के चुनावों में चिराग पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी (लोजपा) ने 100 से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों में जद(यू) के खिलाफ बागी उम्मीदवार खड़े किए, जिससे राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) का वोट बंट गया और सीधे तौर पर जद(यू) की सीटों की संख्या 2015 में 71 से घटकर 2020 में सिर्फ 43 रह गई। हालांकि लोजपा ने खुद केवल एक सीट जीती, लेकिन इसके कार्यों ने कई प्रमुख क्षेत्रों में जद(यू) को कमजोर कर दिया। जद(यू) के भीतर कई लोगों को संदेह था

कि भाजपा ने नीतीश कुमार के प्रभाव को कम करने और बिहार की राजनीति में भाजपा के वर्चस्व को स्थापित करने के लिए इस रणनीति को गुप्त रूप से प्रोत्साहित किया था।

2022 के मध्य तक, जद(यू) और भाजपा के बीच दरार इतनी गहरी हो गई थी कि उसे सुधारा नहीं जा सकता था। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) के भीतर जद(यू) के सिकुड़ते प्रभाव पर जो शांत असंतोष के रूप में शुरू हुआ, वह खुले राजनीतिक घर्षण में बदल गया, अंततः अगस्त 2022 तक, नीतीश कुमार एक बार फिर भाजपा से नाता तोड़ने और राजद के नेतृत्व वाले महागठबंधन में शामिल होने का नाटकीय फैसला लिया। इस विवाद का एक प्रमुख कारण नीतीश कुमार द्वारा अग्निपथ योजना का विरोध था जिससे पूरे बिहार में हिंसक विरोध प्रदर्शन होने लगे थे। नतीजन, जनता के आक्रोश की संभावित गणित को भांपते हुए नीतीश ने इस नीति की खुले तौर पर आलोचना की, जिससे भाजपा के साथ दरार और बढ़ गई। नीतीश ने जाति आधारित जनगणना की भी पुरजोर वकालत की, उनका तर्क था कि इससे लक्षित कल्याणकारी नीतियों में मदद मिलेगी, भाजपा अपने उच्च जाति के मतदाता और नेतृत्व के कारण इसके के प्रति अनिच्छुक रही। इस कदम ने हालांकि, उनके लगातार राजनीतिक बदलावों ने उनकी विश्वसनीयता पर भी सवाल उठाए, आलोचकों ने उन पर सिद्धांतों की बजाय सत्ता को प्राथमिकता देने का आरोप लगाया।

2022 के पुनर्गठन ने बिहार के अप्रत्याशित राजनीतिक परिदृश्य में एक और अध्याय को चिह्नित किया, जिसने 2024 के लोकसभा चुनावों तक एक गहन लड़ाई के लिए मंच तैयार किया। बिहार में 2024 के लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) और महागठबंधन के बीच कड़ी प्रतिस्पर्धा देखने को मिली, जो बदलती राजनीतिक गतिशीलता को दर्शाता है। भाजपा, जद (यू) और लोजपा (रामविलास) वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) ने 40 में से 24 सीटें जीतीं, जिसमें भाजपा और जद (यू) ने 12-12 सीटें हासिल कीं, जबकि लोजपा (आरवी) ने 5 में से 5 सीटें जीतीं। हालांकि, भाजपा और जद (यू) दोनों के वोट शेयर में गिरावट देखी गई, जिसमें भाजपा 20.52% (2019 में 24.5% से) और जद (यू) 18.52% (22.3% से) पर आ गई। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) ने उत्तर बिहार में अच्छा प्रदर्शन किया, 21 में से 18 सीटें जीतीं, लेकिन दक्षिण बिहार में हार का सामना करना पड़ा। राजद, कांग्रेस, वाम दलों और वीआईपी वाले महागठबंधन ने निराशाजनक प्रदर्शन किया, जिसमें केवल 4 सीटें जीतीं। राजद को सबसे ज़्यादा वोट शेयर (22.14%) मिलने के बावजूद, वह इसे सीट जीत में बदलने में विफल रही। कांग्रेस और वामपंथी दल कोई भी सीट जीतने में विफल रहे, जिससे गठबंधन और कमज़ोर हो गया।

अगर हम बात करें बिहार विधानसभा के 2025 के चुनावों के बारे में तो नीतीश कुमार का प्रशासनिक और शासन-केंद्रित दृष्टिकोण अक्सर राजद की लोकलुभावन, जाति-आधारित लामबंदी रणनीति के विपरीत होता है। गठबंधन की स्थिरता के लिए इन मतभेदों को प्रबंधित करना महत्वपूर्ण होगा। जाति-आधारित जनगणना एक एकीकृत एजेंडा के रूप में: नीतीश कुमार और राजद दोनों ने ओबीसी, ईबीसी और दलितों के बीच समर्थन को मजबूत करने के उद्देश्य से जाति-आधारित जनगणना पर जोर दिया है।भ्रष्टाचार का राजद का इतिहास और "जंगल राज" की कहानी

एक बड़ी चुनावी देनदारी बनी हुई है। संदेह करने वाले मतदाताओं को यह विश्वास दिलाना कि राजद एक प्रगतिशील और शासन-उन्मुख पार्टी में बदल गई है, उनकी सबसे बड़ी चुनौती रहती है।

बिहार के गहरे विखंडित मतदाताओं के साथ, 2024 के चुनाव संभवतः भाजपा के राष्ट्रवादी-विकास एजेंडे और महागठबंधन के जाति-सचेत सामाजिक न्याय के बीच मुकाबला होंगे। गठबंधन, जाति समीकरण और शासन की कहानियों को नेविगेट करने की दोनों पक्षों की क्षमता बिहार के राजनीतिक भविष्य को निर्धारित करेगी। आखिरकार, बिहार का राजनीतिक भविष्य शासन, जातिगत गतिशीलता और गठबंधन रणनीतियों के जटिल अंतर्संबंध पर टिका है - यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य भारत के उभरते चुनावी परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण युद्धक्षेत्र बना रहे।

निष्कर्ष: लोकशासन या सत्ता की राजनीति?

चूंकि बिहार का राजनीतिक परिदृश्य बदलते गठबंधनों के साथ विकसित हो रहा है, इसलिए बुनियादी सवाल बना हुआ है: क्या ये गठबंधन आधारित राजनीति शासन के प्रति वास्तविक प्रतिबद्धता से प्रेरित हैं या ये केवल राजनीतिक अस्तित्व के लिए रणनीतिक चालें हैं? एक ओर, गठबंधन की राजनीति ने बिहार के नेतृत्व को प्रासंगिक बने रहने और मतदाताओं की बदलती अपेक्षाओं के अनुकूल होने की अनुमति दी है। वहीं इसने (2005-2013) के दौरान कानून और व्यवस्था, बुनियादी ढांचे और शासन सुधारों पर जोर दिया, जबकि (2015-2017, 2022-2024) में सामाजिक न्याय और जाति प्रतिनिधित्व के मुद्दे को पुनर्जीवित किया। ये तथ्य बताते हैं कि पार्टियां मतदाताओं की बदलती मांगों पर प्रतिक्रिया दे रही हैं और जनता का समर्थन बनाए रखने के लिए अपनी रणनीतियों को समायोजित कर रही हैं। हालांकि, जेडी(यू), राजद, बीजेपी और कांग्रेस के बीच बार-बार टूटने और सुलह से संकेत मिलता है कि सत्ता बरकरार रखना अक्सर नीतिगत स्थिरता पर प्राथमिकता ले लेता है। नीतीश कुमार 28 जनवरी 2024 को महागठबंधन छोड़कर फिर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) में शामिल हुए और रिकॉर्ड नौवीं बार बिहार के मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। 2015 से अबतक यह उनकी पांचवीं बार राजनीतिक निष्ठा बदलने की घटना है और बिहार की राजनीति में राजनीतिक अवसरवाद के बारे में चिंताएं बढ़ाते हैं। ऐसी अस्थिरता दीर्घकालिक शासन योजना को कमजोर करती है, और 2025 के विधान सभा चुनाव में मतदाता एक बार फिर तय करेंगे कि क्या ये बदलते गठबंधन उनके हितों की पूर्ति करते हैं या केवल सत्ता संघर्ष के चक्र को दर्शाते हैं जो बिहार के बुनियादी मुद्दों को अनसुलझा छोड़ देता है।

संदर्भ सूची

1. Ankit, R. (2018). Caste politics in Bihar: In historical continuum. *Loughborough University Journal Contribution.* https://hdl.handle.net/2134/33746
2. Ashutosh Kumar. (2003). State electoral politics: Looking for the larger picture. *Economic and Political Weekly, 38(30),* 3145–3147. http://www.jstor.org/stable/4413825
3. Barik, R. (2006). *Land and caste politics in Bihar.* Shipra Publications.

4. Chaturvedy, R. R., & Thakur, A. K. (2014, June 27). The rise and fall of Nitish Kumar. *The Hindu.* https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/the-rise-and-fall-of-nitish-kumar/article6155878.ece

5. Das, A. (1992). *Republic of Bihar.*

6. Goyal, Y., & Kaushik, A. K. (2015). Political dynamics in Bihar: Electoral competition and representation. *Economic and Political Weekly, 50(39),* 18–22.

7. Kumar, S., Alam, M. S., & Joshi, D. (2008). Caste dynamics and political process in Bihar. *Journal of Indian School of Political Economy, 20(1–2),* 1–100.

8. Kunnath, G. (2018).

9. Mukherjee, R. (2010). Coalition building in a divided society: Bihar state, India, 2005-200. *Innovations for Successful Societies.* Trustees of Princeton University. http://www.princeton.edu/successfulsocieties

10. Nakamizo, K. (2021). The politics of obedience: The BJP system and the 2020 Bihar state assembly election. *Asian Studies, 67(2),* 40–57. https://doi.org/10.11479/asianstudies.67.2_40

11. Nambisan, V. (2001). *Bihar: Is in the eye of the beholder.* Penguin UK.

12. Palshikar, S., Kumar, S., & Lodha, S. (Eds.). (2017). *Electoral politics in India: The resurgence of the Bharatiya Janata Party.* Routledge.

13. Pai, S. (2013). *Handbook of politics in Indian states: Region, parties, and economic reforms.* OUP India.

14. Sahay, G. R. (2009). Major caste matters: Caste and politics in rural Bihar. *Contributions to Indian Sociology, 43(3),* 411–441. https://doi.org/10.1177/006996670904300303

15. Schakel, A. H., Sharma, C. K., & Swenden, W. (2019). India after the 2014 general elections: BJP dominance and the crisis of the third party system. *Regional & Federal Studies, 29(3),* 329–354. https://doi.org/10.1080/13597566.2019.1614921

16. Singh, S. (2015). *Ruled or misruled: The story and destiny of Bihar.* Bloomsbury.

17. Thakur, S. (2000). *The making of Laloo Yadav: The unmaking of Bihar.* HarperCollins.

18. Vardhan, A. (2020). Caste, land, and quotas: A history of the plotting of social coalitions in Bihar till 2005. *Newslaundry.*

19. Verniers, G., & Center for Asian Studies. (2015). The BJP and state politics in India: A crashing wave? Analyzing the BJP performance in five state elections. https://www.ifri.org/sites/default/files/migrated_files/documents/atoms/files/asie_vision_80_oksl_5.pdf

20. Witsoe, J. (2013). *Democracy against development: Lower-caste politics and political modernity in postcolonial India.* University of Chicago Press.

21. Yadav, L. P. (2019). *Gopalganj to Raisina: My political journey.* Rupa Publications.

22. चौधरी, प. क., व श्रीकांत. (1998). बही धार त्रिवेणी संघ की: बिहार में सामाजिक न्याय का पहला संघर्ष. पटना: लोकतंत्र प्रकाशन।

23. चौधरी, प. क., व श्रीकांत. (2001). बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

24. चौधरी, प. क., व श्रीकांत. (2005). स्वर्ग पर धावा: बिहार में दलित आंदोलन 1912-2000. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

25. सिन्हा, अ. (2013). नीतीश कुमार और उभरता बिहार. प्रभात प्रकाशन।

43

कक्षा में सकारात्मक मनोविज्ञान की भूमिका

पारुल जुल्का
शोधर्थी, डिपार्टमेंट ऑफ एजूकेशनल स्ट्डीज, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली
डॉ हरप्रीत कौर जस
सह- आचार्य, डिपार्टमेंट ऑफ एजूकेशनल स्ट्डीज, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली

पिछले एक दशक से विद्यार्थियों में मनोविज्ञान से संबंधित समस्याएं बढ़ती हुई नजर आ रही हैं। विद्यार्थी शिक्षा में सफ़लता के दबाव से और खासकर पूरी तरह से सहायता न मिल पाने के कारण अक्सर मानसिक तनाव से गुजरते हैं और इसके चलते कई बार आत्महत्या जैसी चरम स्थिति पर भी पहुंच जाते हैं। यह दुखद है। जहां बचपन और यौवन जीवन में भोलेपन और उन्माद की सीढ़ी माना जाता रहा है, वहीं आज इससे वयस्क जीवन की चिंता ने इसे घेर लिया है। यह पर्चा इस बात पर रोशनी डालता है कि इसके क्या कारण हो सकते हैं कि बच्चे और युवा जो अभी स्कूल या कॉलेज में जीवन का बोध मात्र कर रहे है वह इतनी जल्दी- तनाव घबराहट और डिप्रेशन की चपेट में आ रहे हैं? और इसके क्या समाधान हो सकते है? यह शोध पत्र इन प्रश्नों का उत्तर तीन सिद्धांतों से देखता है-पहला सकारात्मक मनोविज्ञान जो विशेष कर स्कूलों और शिक्षा संस्थानों से जुड़ा है। दूसरे सकारात्मक मनोविज्ञान को अध्ययन करने के क्या तरीके हैं। और तीसरा आत्म अवलोकन और खुदी का मार्ग जो भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय सिद्धांत है। शोधार्थी इन तीन संज्ञान को रखते हुए अपने स्कूलों और शिक्षा संस्थानों के अनुभव से इन्हें जोड़ कर सुदृढ़ करते हैं।

सकारात्मक मनोविज्ञान क्या है?

परम्परागत मनोवैज्ञानिक की मनोविकार पद्धति को काफी हद तक ठुकराते हुए सकारात्मक मनोविज्ञान मनुष्य की सकारात्मक मन की स्थिति को बनाए रखने और विकसित करने पर जोर देता है। सकारात्मक मनोविज्ञान मनुष्य के मानसिक संतुलन का एक नया दृष्टिकोण है। जहां एक तरफ मनोरोग का विज्ञान – मनोविज्ञान (psychology) और मानसिक रोग विज्ञान (psychiatry) मनुष्य के मन की चिंता, गुस्सा, तनाव, उलझन आदि या कोई भी व्यवहार संबंधी विकार को संतुलन या असंतुलन की दृष्टि से देखता है, वहीं दूसरी ओर सकारात्मक मनोविज्ञान पद्धति 'बीमारी की रोकथाम उसके इलाज से पहले बेहतर है' के सिद्धांत पर आधारित और मनुष्य को अपनी मानसिक स्थिति से अवगत करवाते हुए उसे मनोरोग की ओर बढ़ने से रोकती है । पर कई बार नकारात्मक विचारों से ग्रस्त होने पर या मनोविकार संबंधी परिस्थितियों में भी सकारात्मक प्रणाली कारगर साबित होती है। मनुष्य को मनोविकार से निजात पाने के लिए ना केवल उसका इलाज करना पड़ता है मगर अपने जीवन का एक प्रगतिशील चित्र भी अंकित करना पड़ता है वहाँ सकारात्मक मनोविज्ञान बहुत लाभदायक है। अपने व्यक्तित्व के प्रगतिशील पहलू से अवगत होने पर मनुष्य अपने जीवन को लेकर दिशा निर्धारित करने में सक्षम होता है।

सकारात्मक मनोविज्ञान शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो मानसिक स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाने के लिए एक विश्वसनीय उपकरण के रूप में कार्य करता है। इस पद्धति के दृष्टिकोण से ये जरूरी है कि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्यापक ना केवल गलती करने पर ही विद्यार्थियों का सही मार्गदर्शन करें पर 'हमारे लिए सही व्यवहार क्या है?' इसको भी समय-समय से विद्यार्थियों को अवगत कराते रहे। साथ ही सकारात्मक मनोविज्ञान ये भी मानता है कि हर व्यक्ति के अंदर अपने को अच्छा और प्रगतिशील देखने की इच्छा होती है और यदि वह खुद को अच्छा नहीं मान रहा है तो वह आपस में अपने सहपाठियों से और अध्यापक से मिलकर अपने विचारों मैं बदलाव लाने का प्रयत्न कर सकता है। सकारात्मक दृष्टिकोण अपने, जीवन और आस-पास के लोग के लिए जागृत किया जा सकता है बशर्ते के परिस्थिति बहुत विकट न हो। विद्यार्थी या किसी मनुष्य को निरंतर हीन महसूस करवाया जाना या शोषण के स्थिति में ले जाना अमानवीय है। नोबल (2015), सकारात्मक शिक्षा को बयान करते हुए कहता है- "*सकारात्मक मनोविज्ञान के मूल सिद्धांतों का एकीकरण उन साक्ष्य-आधारित संरचनाओं, प्रथाओं और कार्यक्रमों के साथ, जो न केवल वेल-बीईंग को बढ़ाते हैं बल्कि शैक्षणिक उपलब्धि में भी सुधार करते हैं।*" (p.4) इस अवधारणा के मूल में शिक्षा के प्रति 'चरित्र और अकादमिक' दृष्टिकोण की विचारधारा निहित है। इस दृष्टिकोण को समर्थन देने के लिए अनुभवजन्य रूप से प्रमाणित हस्तक्षेप यह सुनिश्चित करते हैं कि विद्यालय ऐसे वातावरण का निर्माण करें, जहाँ छात्र अपनी आंतरिक क्षमताओं का अन्वेषण कर सकें और अपने संज्ञानात्मक, भावनात्मक व सामाजिक कौशलों का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिक प्रभावी ढंग से करने के मार्ग खोज सकें।

सकारात्मक मनोविज्ञान मूल्य मानवीय मूल्यों की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। जहाँ मानवीय मूल्य दर्शन पर आधारित है, वहीं सकारात्मक मनोविज्ञान इंसान के मन पर ज्यादा केंद्रित होता है। सकारात्मक मनोविज्ञान व्यक्तियों को स्वतंत्र और स्वायत्त अस्तित्व के रूप में देखता है, जो किसी पूर्व निर्धारित सीमाओं में बंधे नहीं होते, बल्कि अपनी विशिष्ट क्षमताओं और गुणों के माध्यम से विकास की असीम संभावनाएँ रखते हैं तथा अपने जीवन को संपूर्णता और उद्देश्य के साथ आकार देने की स्वतंत्रता रखते हैं। सकारात्मक मनोवैज्ञानिक पद्धति मनुष्य को इस तरह के विचारों और दृष्टिकोण से अवगत कराती जिससे वह अपनी सोच को और अपने जीवन को एक सुव्यवस्थित ढंग से चला सके। उदाहरण के तौर पर क्लास में आते ही टीचर का या स्कूल का बच्चों का अभिनंदन करना उनको अपने बारे में सकारात्मक महसूस कराना उनको ये महसूस कराना कि स्कूल उनको बहुत अच्छी दृष्टि से देखता है, बच्चों के मनस-पटल पर एक बहुत अच्छा प्रभाव डालता है।

सकारात्मक मनोविज्ञान तीन आयामों (सेलिगमैन, स्टीन, नानसूक और पीटरसन; 2005) पर निर्धारित है। पहला मनुष्य की खुशी और उसके अच्छे भाव। उसके वह भाव जो उसे खुश करते हैं। मनुष्य को उसके रिश्ते(-दोस्त घर परिवार इत्यादि), उसका अपने जीवन में सफल होना, उसका किसी कार्य को अच्छे से करना, उसका नया कुछ सीखना आदि ये सब उसे खुशी प्रदान करता है। खुश होना एक बहुत निजी अनुभव भी है। कई बार हम ये नहीं जानते कि हमें किस बात से खुशी मिल रही है मगर हम खुश होते हैं। उस पल में अपने आप का ध्यान से अवलोकन करना कि क्या चीज़ हमें खुशी दे रही है ये जानना बहुत जरूरी है। हर मनुष्य अपनी जीवन की परिस्थितियों के हिसाब से भी खुशी को परिभाषित करता है। इसलिए खुश होने की कोई एक परिभाषा नहीं है। ज़्यादा से ज़्यादा व्यक्ति अपनी खुशी को बयान कर सकें- 'वह कब और किस वजह से खुश होते हैं?' या वह अपनी ख़ुशी के लिए क्या कुछ करते हैं या उनकी खुशी दूसरे पर आधारित है?' तो ये जानना उन्हें खुद को खुश रखने में भी मदद करेगा और वे दूसरों को

भी खुश रखने की ठीक कोशिश करेंगे जब यह जान पाएंगे कि उन्हें क्या बात खुशी देती है। अपनी खुशी को निजी खुशी देखना और व्यक्तिगत तौर पर देखना और दूसरे की खुशी को अपनी खुशी के सामने रखना भी खुशी को एक बेहतर रूप से परिभाषित करने में मदद करता है। और इसकी वजह से आम तौर पर जो मतभेद होते हैं उन्हें भी दूर किए जाने के संभावना उपजती है। दूसरा आयाम है क्यों उसकी अपनी अच्छाइयां और व्यक्तित्व के चरित्र की मूल्य। तीसरा आयाम है कि वे कैसे अपनी अच्छाइयों और अच्छे गुणों से समाज में अच्छे कार्य करना चाहता है। समाज की जो प्रणाली या इदारे मौजूद है उनमें वह किस तरह से अपना दायित्व निभा सकता है।

PERMA मॉडल-

शैक्षिक व्यवस्थाओं से सकारात्मक मनोविज्ञान को जोड़ने के लिए हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि "शिक्षा के साथ सकारात्मक मन की स्थिति और चरित्र को जोड़ने के हम क्या समझते है? (हैटी, 2016) और भी सरल शब्दों में समझे तो, विद्यालयों में शिक्षा के साथ विद्यार्थियों को सकारात्मक मन की स्थिति हासिल करना कैसे सिखाया जा सकता है? इन सवालों का समाधान, सकारात्मक मनोविज्ञान एक मॉडल के रूप में देता है जो PERMA मॉडल के नाम से भी प्रसिद्ध है। पांच प्रमुख तत्वों पर आधारित यह मॉडल सकारात्मक मन की स्थिति को समझने और उसे बढ़ावा देने के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करता है। यह पांच तत्व है सकारात्मक भावनाएँ (positive emotions), संलग्नता (engagement), संबंध (relationships), अर्थ (meaning) और उपलब्धि (accomplishment)। कक्षाओं में परंपरागत शैक्षणिक उपलब्धियों और शिक्षार्थियों की सतत भलाई एवं सकारात्मक मन की स्थिति के बीच संतुलन बनाने के उद्देश्य से, PERMA मॉडल अनुभवजन्य रूप से आधारित हस्तक्षेपों को लागू करने पर ध्यान केंद्रित करता है।

सकारात्मक भावना, मॉडल का पहला स्तंभ, आशावादी बने रहने और जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों का एक रचनात्मक और सकारात्मक तरीके से सामना करने की क्षमता खोजने पर केंद्रित है। यह व्यक्तियों को सकारात्मक भावनात्मक अनुभवों की अपेक्षा करने, उन्हें आरंभ करने और निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करता है और नकारात्मक भावनाओं के प्रति स्वस्थ प्रतिक्रियाओं को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। यह मॉडल नकारात्मक भावनाओं के अस्तित्व के विचार को अस्वीकार नहीं करता, बल्कि नकारात्मक भावनाओं के खिलाफ सकारात्मक भावनाओं को एक बफर के रूप में प्रस्तावित करता है, और इस प्रकार एक अधिक आशावादी दृष्टिकोण के लिए तर्क करता है। दूसरा सकारात्मक संलग्नता है, जो हमारे कार्यों में पूरी तरह से डूबे रहने और गहराई से शामिल होने के अनुभव को संदर्भित करता है, जो 'फ्लो' (flow) का सार है। यह व्यक्तियों के सर्वोत्तम कार्य करने के अनुभव और समर्थन के लिए मार्गों की जांच करता है। सकारात्मक मन की स्थिति के निर्माण में इस्तेमाल होने वाला तीसरा तत्व सकारात्मक संबंध हैं, जिसे दूसरों के साथ संबंध के रूप में परिभाषित किया गया है। प्यार और देखभाल पाने की क्षमता को फलने-फूलने (flourishing) की स्थिति की एक मास्टर कुंजी माना जाता है। सकारात्मक संबंधों पर आधारित हस्तक्षेप सामाजिक और भावनात्मक कौशल विकसित करने पर केंद्रित होते हैं ताकि स्वयं और दूसरों के साथ पोषण संबंध विकसित किया जा सके। वेल-बीइंग के चौथे तत्व के रूप में अर्थ का तात्पर्य उस अनुभव से है जो व्यक्ति को अपने आत्म-स्वार्थ से परे किसी उच्चतर उद्देश्य या व्यापक समुदाय से जुड़ने और उसकी सेवा करने की प्रेरणा देता है (सेलिगमैन, 2011)। यह केवल जीवन में अपनी भूमिका को समझने तक सीमित नहीं है, बल्कि हमारे अनुभवों और कर्मों को किसी ऐसे विराट तत्व से जोड़ने की प्रक्रिया है जो हमारे अस्तित्व से परे है। मॉडल का

अंतिम तत्व उपलब्धि है जो अर्थपूर्ण परिणामों के लिए प्रयास करने और उन्हें प्राप्त करने के माध्यम से आत्मविश्वास और क्षमता विकसित करने पर केंद्रित है। चुनौतियों को पार करने और इच्छित लक्ष्यों को पूर्ण करने से प्राप्त होने वाला व्यक्तिगत संतोष एक ऐसा संतोष और खुशी पैदा करता है जो बाहरी मान्यता से स्वतंत्र है।

कक्षाओं में उपयोग करें जा रहे सकारात्मक शिक्षा-आधारित हस्तक्षेपों की क्षमता एवं प्रासंगिकता आवेदन के परिणामों के माध्यम से समझा जा सकता है। विभिन्न शोधकर्ताओं ने इन हस्तक्षेपों को व्यक्तिगत और अंतर-व्यक्तिगत क्षेत्रों, शैक्षणिक और भावनात्मक क्षेत्रों जैसे व्यापक क्षेत्रों में विकास से संबंधित बताया है। (व्हाइट और मरे, 2015, कर्न एट अल., 2015; नॉरिश एट अल., 2013) कुछ प्रमुख उदाहरणों में जिलोन्ग ग्रामर स्कूल (Geelong Grammar School) या भूटान पाठ्यक्रम शामिल हैं। वाग्नर और रूच (2015) ने PERMA मॉडल के सकारात्मक प्रभावों को रेखांकित किया है, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि चरित्र-शक्ति (character strength) को विकसित करने वाले कल्याणकारी कार्यक्रम (well-being programs) कक्षा के सकारात्मक माहौल को सुदृढ़ करते हैं। इसका सीधा प्रभाव शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ता है, क्योंकि विद्यार्थी सीखने के प्रति प्रेम, दृढ़ता, उत्साह, कृतज्ञता, आशा और व्यापक दृष्टिकोण जैसी महत्वपूर्ण चरित्र-शक्तियों का विकास और परिष्करण करते हैं। (वाग्नर और रूच, 2015, चेरी औ और कैनेडी, 2018 द्वारा उद्धत)

हैप्पीनेस पाठ्यक्रम

युवा शिक्षार्थियों के बीच सकारात्मक मन की स्थिति को बढ़ावा देने के लिए उपायों की योजना बनाने और उन्हें लागू करने के लिए एक और प्रयास ने खुशी के पाठ्यक्रम का परिणाम दिया है। दिल्ली सरकार द्वारा स्कूलों में लागू किया गया, यह एक सकारात्मक मनोविज्ञान आधारित हस्तक्षेप कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य छात्रों के बीच कल्याण, ध्यान और सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देना है। पाठ्यक्रम का ऐसा मानना है कि मानव अस्तित्व के चार स्तर हैं: भौतिक, व्यवहारिक, बौद्धिक और अनुभवात्मक। ये मिलकर खुशी के मौलिक त्रिकोण को आकार देते हैं, पहला जो शारीरिक इंद्रियों पर ध्यान केंद्रित करता है, जिसे क्षणिक खुशी के रूप में जाना जाता है (momentary happiness), दूसरा अंतरव्यक्तिगत संबंधों में भावनाओं पर आधारित है, जिसे गहरी खुशी के रूप में जाना जाता है (deeper happiness) और अंततः ज्ञान और जागरूकता पर आधारित जिसे सतत खुशी के रूप में जाना जाता है (sustainable happiness)। इस प्रकार खुशी का त्रिकोण पाठ्यक्रम (happiness curriculum) की नींव बनाता है। खुशी का केंद्रीय विचार दुनिया भर में वेल-बीइंग और शिक्षा के सर्वोत्तम प्रथाओं से लिया गया है, जिनमें से सकारात्मक शिक्षा एक स्तंभ है। यूनेस्को हैप्पी स्कूल्स फ्रेमवर्क (UNESCO Happy Schools Framework 2016) पर आधारित पाठ्यक्रम का निर्माण करते हुए, पाठ्यक्रम के चार मुख्य घटक हैं: माइंडफुलनेस, कहानी सुनाना और कक्षा में गतिविधि-आधारित चर्चा और विचार। चारों का ध्यान खुशी के स्रोतों और परिस्थितियों की ओर है। पाठ्यक्रम में ख़ुशी के विभिन्न स्त्रोतों का उजागर किया गया है, जिनमें से कुछ है परिवार और दोस्तों के साथ स्वस्थ सम्बन्ध, शांत मन, सकारात्मक भावना, निस्वार्थ आत्मा, देखभाल करने वाला दृष्टिकोण आदि।

आत्म अवलोकन

आत्मावलोकन का मार्ग अपने चरित्र, गुण-अवगुण, अच्छाई-बुराई को सुनियोजित और अनुशासित तरीके से अपने व्यवहार का विश्लेषण कर जानना है। भारतीय ज्ञान परंपरा- वेदों उपनिषदों और गुरु शिष्य परंपरा में अपने अंतःकरण

को स्थापित करने की बात कही गई है। पंचकोष पद्धति (देखिए p. 42 NCF-SE, 2023) पंचकोश विकास समझने के लिए।)के अनुसार मनुष्य के अस्तित्व के पांच पटल हैं- अनम्य प्राणम्य ज्ञानम्य विज्ञानम्य के साथ एक आनंदमय कोष है जो कि मनुष्य के शरीर, मन, भाव, विचार और विद्वता को रोज़मर्रा के व्यवहार में क्रियान्वित देख कर जीवन की समझ परम सत्य से जोड़ते हुए अनुभव करता है। इन सब बातों को भारतीय पद्धति में संत-महात्माओं, मुनियों और फकीरों की ज़िंदगी से भी सीखा जा सकता है। भारत में हर परंपरा खुदि को जानने की ओर प्रेरित करती है। संत-सूफी महात्मा और ऋषियों ने दुनिया के सभी भौतिक सुखों का त्याग कर इस सत्य मार्ग को चुना। आज हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेते हुए अपनी रोज़मर्रा और नियमित कार्यशैली में इस विद्वता के द्वारा अपनी यथार्थ की छवि विकसित करने के फ्रेमवर्क तैयार करने हैं।

National Curriculum Framework School Education (NCFSE) और National Curriculum Framework Foundational Stage (NCF FS) सेल्फ self की अनुभूति पर काफी चर्चा और जोर है। स्कूलों को और साथ ही उच्च शिक्षा पद्धति को छात्रों को स्वावलंबी बनाने हेतु उनको अपने अस्तित्व / वजूद के बारे में ज्ञान होना जरूरी है । आत्म-ज्ञान कुंजी है मनुष्य जीवन के अनुशासन के लिए जो कि उसे अपने जीवन की गतिविधियों को निर्धारित करने में मदद करता है। सफलता उसके आत्मविश्वास को भी स्थापित करती है। सेल्फ को दोनों ही policy framework अधिगम की तमाम आयामों के साथ जोड़ा गया हैं। पर सच तो यह है कि इसके पाठ्यक्रम को नियमित रूप से लागू करने के जरूरत है। अक्सर self development की कई कार्यशाला और लेक्चर के दौरान विद्यार्थियों के गंभीर सवाल उनकी अद्भुत सोच को दर्शाते हैं। इन सवालों की नित्य-प्रति समझने वालों की कमी महसूस होती है। यह ज्ञान सार्थकता का ज्ञान है।

निष्कर्ष

जहाँ पश्चिमी सभ्यता तुम्हें हमेशा सकारात्मक मनोविज्ञान पर व्यवस्थित रूप से काफी शोध कार्य मिलता है वही इसकी कमी एशिया और भारतीय दृष्टिकोण से दिखाई देती है। PERMA प्रोफाइल एक से अनेक देशों में और एशिया के देशों में अनुवाद होना की वजह से इस कमी को पूरा करता दिखाई पड़ता है। और इससे लोगों की सकारात्मक विचारधारा को जानने का मौका मिलता है। इस पर और शोध किए जाने चाहिए ताकि लोगों के सकारात्मक दृष्टिकोण के बारे में जाना जा सके और जहाँ उनको प्रगति और प्रोत्साहित करने की जरूरत है वहां पाठ्यक्रमों द्वारा या समाज में किन्हीं और तरीकों से उनकी सकारात्मक दृष्टिकोण को उनके व्यक्तित्व के प्रति विकसित करने पर ज़ोर दिया जाए।

ईस्ट-वेस्ट की विचारधाराओं के अंतर को संबोधित करने के लिए हैपीनेस पाठ्यक्रम एक मजबूत सेतु है। हैप्पीनेस पाठ्यक्रम को दिल्ली सरकार ने भी अपने स्कूलों में क्रियान्वित किया है। इसको UNESCO फ्रेमवर्क से देखते हुए और लोगों, उनकी संस्कृति और अनुभवों से जोड़ते हुए बच्चों में आत्मविश्वास जागृत किया जा सकता है। और इस रास्ते से सकारात्मक मनोविज्ञान की पद्धति की भूमिका स्कूलों में बनाने में मदद मिलेगी। इसके साथ भारतीय मूल्यों और विचारधारा पर भी विचार करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा में आत्मावलोकन और आत्मा के ज्ञान का वृहद संसार है, परन्तु आज इसे पश्चिम के सकारात्मक मनोविज्ञान की तरह सुनियोजित तरीके से व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। जहाँ इसे NEP-2020, NCF FS, 2022, NCF SE, 2023 में जगह मिली है पर इसके क्रियान्वित करने हेतु अभी कदम उठाने की जरूरत है। भारत का आत्म अवलोकन का संसार 'जिन खोजा तिन पाया' पर आधारित है।

हमारे अनुभव में जहाँ विद्यार्थियों में इसके प्रति उत्सुकता में कमी नहीं दिखाई देती परन्तु मार्गदर्शन हेतु पाठ्यक्रम और गतिविधियों अभी सुचारु रूप से क्रियान्वित किया जाना बाकी है। यह पर्चा इस नतीजे को इंगित करता है कि सकारात्मक मनोविज्ञान, हैप्पीनेस पाठ्यक्रम और आत्म-अवलोकन के समन्वय पर कार्य कर इंटीग्रेटेड दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। यह न केवल स्कूल में विद्यार्थी और अध्यापक के लिए है पर मनोविज्ञान विभाग में भी इस पर शोध करने की जरूरत है।

संदर्भ सूची

1. Au, W.C.C., & Kennedy, K.J. (2018). *A Positive Education Program to promote Wellbeing in Schools: A Case Study from a Hong Kong School.* Higher Education Studies, Volume 8, No. 4
2. Hattie, J. (2016). *Shifting away from distractions to improve Australia's schools: Time for a reboot*. Australian College of Educational Leadership Monograph (No 54).
3. Kern, M., Waters, L., Adler, A., & White, M. A. (2015). *Measuring whole school wellbeing in students and staff.* In M. White & S. Murray (Eds.) Evidence-based approaches to positive education in schools: Implementing a strategic framework for wellbeing in schools (pp. 65-91). Dordrecht, the Netherlands: Springer.
4. Ministry of Education (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India
5. National Council of Educational Research and Training. (2022). *National Curriculum Framework for Foundational Stage 2022*. Ministry of Education, Government of India.
6. National Council of Educational Research and Training (2023). *National Curriculum Framework for School Education 2023.* Ministry of Education, GOI.
7. Norrish, Jacolyn & Williams, Paige & O'Connor, Meredith & Robinson, Justin. (2013). *An applied framework for Positive Education*. International Journal of Wellbeing.
8. SCERT Delhi & DoE Delhi (2018). Handbook for Teachers (*Happiness Curriculum) Grade 6-8.* New Delhi. SCERT & DoE
9. Seligman ME, Steen TA, Park N, Peterson C. *Positive psychology progress: empirical validation of interventions.* Am Psychol. 2005 Jul-Aug;60(5):410-21. doi: 10.1037/0003-066X.60.5.410. PMID: 16045394.
10. Seligman, M. E. P. (2011). *Flourish: A visionary new understanding of happiness and wellbeing*. New York, NY: Free Press.

11. Noble, T., McGrath, H. (2015) *PROSPER: A New Framework for Positive Education*. *Psych Well-Being* 5, 2. https://doi.org/10.1186/s13612-015-0030-2
12. White, M., & Murray, A. S. (2015). *Well-being as freedom: Future directions in well-being*. In M. White & S. Murray (Eds.), Evidence-based approaches in positive education: Implementing a strategic framework for well-being in schools (pp. 167-175). Dordrecht, the Netherlands: Springer.
13. UNESCO. (2016). *Happy Schools: A Framework for Learner Well-Being in the Asia Pacific.* UNESCO [United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization]. Retrieved from: https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000244140

44

मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा की राह में अवरोध: लखनऊ का मात्रात्मक विश्लेषण

डॉ. शोमाइला वारसी
सहायक आचार्य, किरोड़ीमल महाविद्याल, दिल्ली विश्वविद्यालय
अबिदा बानो
स्वतंत्र शोधकर्ता

लखनऊ 1857 के विद्रोह के दौरान एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा था। उस समय, अवध का प्रशासन लखनऊ में था और इसने ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष में एक निर्णायक भूमिका निभाई। समय के साथ, यह शहर अपनी समृद्ध संस्कृति, साहित्य, भोजन, और परंपराओं के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध हो गया। 2011 की जनगणना के अनुसार, लखनऊ की कुल जनसंख्या में मुस्लिम जनसंख्या 26.36% है। अन्य अल्पसंख्यकों में ईसाई (0.55%), सिख (0.76%), जैन (0.17%) और बौद्ध (0.11%) शामिल हैं। इस शहर की क्षेत्रीय स्थिति इसे एक महत्वपूर्ण शैक्षिक केंद्र बनाती है, क्योंकि यहां कई प्रमुख शैक्षिक संस्थान और विश्वविद्यालय हैं। लखनऊ में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाएँ हिंदी और उर्दू हैं, जो यहाँ की सांस्कृतिक और सामाजिक धारा का प्रतीक हैं।

लखनऊ का क्षेत्रफल लगभग 2528 वर्ग मील है और यह गोमती नदी के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित है। यह शहर बाराबंकी (पूर्व), उन्नाव (पश्चिम), रायबरेली (दक्षिण) और हरदोई तथा सीतापुर (उत्तर) जिलों से घिरा हुआ है। यहाँ की मुख्य कृषि उत्पादों में गन्ना, गेहूँ, चावल, आलू, सरसों और अन्य फसलों का उत्पादन होता है। इसके अलावा, शहर में कई प्रकार के खाद्य पदार्थ और वस्त्र उद्योग भी प्रमुख हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लखनऊ कई महत्त्वपूर्ण संरचनाओं का केंद्र रहा है, जैसे इमामबाड़ा, रूमी दरवाजा, और कैसरबाग, जो इस शहर की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को दर्शाते हैं।

भारत में मुस्लिम राजनीति के दौरान, लखनऊ दिल्ली सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य का हिस्सा रहा है। जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1856 में अवध पर कब्जा किया, तो लखनऊ ब्रिटिश शासन का हिस्सा बन गया और यहाँ के प्रशासन को पूरी तरह से बदल दिया गया। लखनऊ की वर्तमान जनसंख्या लगभग 45,89,838 है, जिसमें 23,94,476 पुरुष और 21,95,362 महिलाएँ हैं। लखनऊ में साक्षरता दर 82.56% है, जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 71.54% है, जो 2001 में 60.47% थी। इसके अलावा, श्रमिकों के श्रम बल में भागीदारी की दर 32.24% है, जबकि महिलाओं का योगदान केवल 5.6% है। हालांकि, इस वृद्धि के बावजूद, मुस्लिम समुदाय में निरक्षरता की समस्या बहुत गंभीर है। सरकारी आंकड़े और योजनाएँ इन समस्याओं को सही से नहीं दर्शा पातीं हैं, जिससे मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसरों में कमी आ रही है।

साहित्य की दृष्टि से लखनऊ एक प्रमुख साहित्यिक केंद्र रहा है। 10 अप्रैल 1936 को ऑल इंडिया राइटर्स एसोसिएशन की स्थापना सैय्यद सज्जाद जहीर और अहमद अली द्वारा रिफा ए आलम क्लब में की गई थी। इस संगठन की स्थापना में कई प्रतिष्ठित साहित्यकारों जैसे सैयद फकरुद्दीन बैली, हामिद अख्तर, फैज अहमद फैज, नदीम काश्मी, सादात हसन मंटो और इस्मत चुगताई आदि का योगदान था। इस आंदोलन का एक गहरा प्रभाव खासतौर पर मुस्लिम महिलाओं और उनके सामाजिक धार्मिक पिछड़ेपन को उजागर करने वाली 9 कहानियों और 1 नाटक (अंगारे) के रूप में दिखा। इस नाटक को जल्द ही प्रतिबंधित कर दिया गया था। विशेष रूप से इसका प्रभाव इसलिए अलग था क्योंकि इसके सभी लेखक एक ही सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से ताल्लुक रखते थे जैसे- सज्जाद जहीर, अहमद अली, रशीद जहां और मोहम्मद उज़ जफर। इसके माध्यम से मुस्लिम समुदाय के साहित्यिक और शैक्षिक क्षेत्र में पितृसत्तात्मक मानसिकता, पुरानी सोच और पुराने जमाने के विचारों को उजागर किया गया।

मुस्लिम महिलाओं के विकास के लिए शैक्षणिक संस्थाएं

भारत ने विविधताओं में एकता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसमें विभिन्न समुदाय और लोग एक साझा सांस्कृतिक चेतना से जुड़े हुए हैं। उत्तर प्रदेश अपने कुल घरेलू उत्पाद का 3.77 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करता है। राज्य में लगभग 18 प्रतिशत महिला शिक्षक हैं। शैक्षिक पिछड़ापन आर्थिक पिछड़ेपन का सूचक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अशिक्षा को समाप्त करने और अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के आर्थिक सुदृढ़ीकरण के लिए एक संकल्प लिया है। यह नीति महिलाओं को उनके समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर देती है। यह महिलाओं के लिए समान शिक्षा के अवसर प्रदान करती है और इस शिक्षा के माध्यम से उनके सामाजिक स्थिति में सुधार की संभावना उत्पन्न करती है।

पैगंबर मोहम्मद ने भी महिलाओं की शिक्षा के पक्ष में अपनी राय दी थी। सर सय्यद अहमद खान ने उत्तर भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा के कार्यक्रमों की शुरुआत की। अलीगढ़ में स्थापित एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज उनका प्रमुख योगदान था। जाकिर हुसैन ने उच्च शिक्षा और विकास के बीच समन्वय स्थापित करने का काम किया। उनके दृष्टिकोण में शिक्षा स्किल, चेतना और राष्ट्र निर्माण में एक प्रमुख भूमिका निभाती है।

किसी भी समाज, क्षेत्र या संस्कृति के विकास का सीधा संबंध उस क्षेत्र की शैक्षिक स्थिति से होता है, इसलिए शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। विश्वविद्यालय आज के समय में ज्ञान को संजोने और नवाचारों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में सुधार के लिए उपक्रम

1. महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शैक्षिक संस्थानों को प्रभावी भूमिका निभानी चाहिए।

2. महिलाओं की तकनीकी, पेशेवर और वोकेशनल कार्यक्रमों में भागीदारी बढ़ानी चाहिए और लैंगिक असमानता को समाप्त करना चाहिए।

3. भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित करने के कई प्रावधान हैं। गोपाल सिंह कमेटी के अनुसार ड्रॉपआउट जैसी समस्या मुस्लिम समुदाय के पिछड़ेपन का बड़ा कारण है (अंजुम, 1992)।

मुस्लिम महिलाओं की स्थिति चिंताजनक है और इसके अलावा अन्य समुदायों में भी महिलाओं की स्थिति बेहतर नहीं है। विभाजन के कारण मुस्लिम समस्याओं का कोई ठोस समाधान नहीं निकला है। विभाजन ने मुस्लिम समुदाय के आम लोगों और बौद्धिक वर्ग के बीच और अधिक दूरी उत्पन्न कर दी है। प्रबुद्ध मुस्लिम वर्ग ने आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाए और अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित कर लिया (शर्मा, 2024)।

मुस्लिम महिलाओं की स्थिति बेहद गंभीर और चिंताजनक है। यह इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि शिक्षा के प्रारंभिक स्तर पर कोई विशेष प्रावधान नहीं है। शिक्षा से वंचित होने के कई कारण हैं:

1. आत्मसम्मान की सुरक्षा की चिंता, विशेष रूप से सांप्रदायिक दंगे

2. सेवा क्षेत्र में असमानता

3. इस्लाम के एकतरफा व्याख्या से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल

4. मुस्लिम धार्मिक नेता और आंदोलन जो मुस्लिम समुदाय में नकारात्मक विचार फैलाते हैं।

शरीयत के तहत मुस्लिम और मुस्लिम महिलाओं का जागरण एक बड़ी समस्या है। मदरसों के बाहर मुस्लिम मुल्लाओं द्वारा महिला शिक्षा को इस्लाम के खिलाफ बताया जाता है, जो एक बड़ी चुनौती उत्पन्न करता है। इस कारण एक सामुदायिक रूप से नई शिक्षा पद्धति की आवश्यकता महसूस की जाती है। करमत हुसैन बालिका कॉलेज गोमती के पास स्थित है और यह कॉलेज महिलाओं को शिक्षा देने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है ताकि लड़कियां पढ़-लिखकर नए अवसर प्राप्त कर सकें। कई बार बच्चों के अभिभावक को समझाना मुश्किल होता है, क्योंकि वे अंग्रेजियत (वेस्टर्नाइजेशन) के विरोध में होते हैं। लेकिन अब इस दृष्टिकोण में भी बदलाव आ रहा है। लड़कियों में शिक्षा का स्तर बढ़ा है, हालांकि उनकी सुरक्षा और गुणवत्ता अभी भी एक बड़ी चिंता का विषय है। बुर्का के मुद्दे ने भी वर्तमान और परंपरा के बीच बहस को जन्म दिया है। कई बड़े मस्जिदों और भवनों के अलावा मुस्लिम स्कूलों का एक बड़ा नेटवर्क है, जिनमें से कुछ सरकारी अनुदान प्राप्त करते हैं, जबकि कुछ चैरिटेबल संस्थाओं या समुदाय द्वारा संचालित होते हैं। शिया नेता मौलाना क्लब ए सादिक द्वारा कई शैक्षिक संस्थानों का संचालन किया जाता है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी बालिका शिक्षा पर जोर दिया जाने लगा है। हालांकि मुस्लिम नेताओं द्वारा प्रारंभिक और उच्च शिक्षा के संबंध में कोई ठोस पहल देखने को नहीं मिली है।

19वीं सदी में मुमताज अली ने कहा था, "एक शिक्षित मुस्लिम महिला अपनी भलाई के लिए किसी अनुभवहीन, अशिक्षित और मानसिक रूप से दिग्भ्रमित महिलाओं के समूह से बेहतर है।" यही विचार आज की आधुनिक मुस्लिम महिलाओं पर अधिक प्रभाव डालता है। मुस्लिम अल्पसंख्यक कल्याण के लिए सरकार ने कई योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्माण किया है। सर्व शिक्षा अभियान इस दिशा में एक प्रमुख पहल रही है, और मुस्लिम शिक्षा के लिए यह युगांतरकारी साबित हुआ है। हालांकि, जानकारी के अभाव, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार ने इन योजनाओं को धरातल पर सफल होने में रुकावटें उत्पन्न की हैं।

शैक्षिक संस्थाओं की समझ की कमी, व्यवहारिक और भावनात्मक दृष्टिकोण से मुस्लिम महिलाओं के उच्च शिक्षा में मौजूद समस्याओं का समग्र मूल्यांकन, जैसे स्कूलों की कमी, शैक्षिक अवसंरचना का अभाव आदि, इन सभी मुद्दों का उचित समाधान कर ही शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है।

मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा का सांख्यिकीय विवरण

लखनऊ में मुस्लिम महिलाएं सबसे कम शैक्षिक स्तर पर हैं। यह एक सामान्य धारणा बन चुकी है कि मुस्लिम देशों में आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी कम होती है, और उनकी शैक्षिक स्थिति भी कमजोर रहती है। अशिक्षा, परदा प्रथा, अज्ञानता, पुरुषों का वर्चस्व और पारंपरिक सामाजिक मान्यताएं भारतीय महिलाओं के विकास में बड़ी बाधाएं बन चुकी हैं (अहमद, 2023)। मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा में कई रुकावटें हैं, जैसे- आर्थिक स्थिति, अभिभावकों का विरोध, परिवारिक जिम्मेदारियां, सहशिक्षा की प्रैक्टिकल समस्याएं। इस अध्ययन द्वारा मुस्लिम समुदाय के पिछड़ेपन का कोई स्पष्ट कारण नहीं पाया जा सका है।

इस अध्ययन का उद्देश्य सांख्यिकी और गुणवत्ता की दृष्टि से लखनऊ में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना है। पायलट सर्वे के माध्यम से 300 मुस्लिम लड़कियों को 15 सरकारी, निजी, तकनीकी, पेशेवर और पॉलीटेक्निक कॉलेजों का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जो चार प्रमुख आवश्यकताओं - आर्थिक अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति (राजनीतिक), एकीकरण (सद्भाव और एकीकरण) और नमूना रखरखाव (मूलभूत मूल्य) पर केंद्रित है।

मुस्लिम महिलाओं के उच्य शिक्षा के संस्थागत टाल मटोल के कारण

1. संरचनात्मक कारण: शिक्षा की गुणवत्ता में कमी, हिंदी भाषा पर अधिक ध्यान, महिलाओं के लिए सीमित कॉलेजों की संख्या, प्रत्येक 30 विद्यार्थियों के लिए कम शिक्षक अनुपात, स्वच्छता और महिलाओं के लिए

बुनियादी सुविधाओं की कमी (जैसे संस्थानों में सैनिटरी नैपकिन की उपलब्धता का अभाव), स्कूल, कॉलेज और पीजी कॉलेजों का एकल भवन (जैसे शिया पीजी कॉलेज), अधिकांश डिग्री कॉलेजों में सहशिक्षा का अभाव (अहमद, 2023)।

2. सामाजिक-भावनात्मक कारण: बाहरी दुनिया से अपरिचितता, पारिवारिक जिम्मेदारियां, विवाह, सामाजिक दबाव और पैसे कमाने की आवश्यकता जैसी समस्याएं।

3. धार्मिक कारण: पर्दा प्रथा को बड़ी समस्या नहीं माना जाता, लेकिन इससे शिक्षा पर प्रभाव पड़ा है। सहशिक्षा में पर्दे की अनिवार्यता भी मुस्लिम महिलाओं के शैक्षणिक पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण है।

4. सुरक्षा कारण: असुरक्षा की भावना अभिभावकों को चिंतित करती है, जिसके परिणामस्वरूप वे अपने बच्चों को बाहर जाने से रोकते हैं। इसी कारण वे बच्चों को पास के कॉलेज में दाखिला दिलवाते हैं, लेकिन ऐसे कॉलेजों का विस्तार सीमित होने से बच्चों का समग्र विकास नहीं हो पाता और वे बाहरी दुनिया से कटे रहते हैं।

5. प्रशासनिक कारण: कॉलेज के प्रिंसिपल द्वारा समय का पालन न किया जाना, पदानुक्रम का गलत उपयोग, छात्र संघों का अभाव, जिससे शिक्षकों और प्रशासन के कुप्रबंधन का विरोध नहीं हो पाता, नियुक्ति प्रक्रिया में पारदर्शिता की कमी, नई तकनीकों और नवाचारों का कम प्रयोग, पुराने शिक्षण तरीकों का उपयोग और गरीब तथा असहाय बच्चों के लिए फीस में राहत की अनुपस्थिति।

6. व्यवहारिक कारण: शिक्षकों की पुरानी मानसिकता, नए विचारों और संभावनाओं को स्वीकार करने में विफलता, आधिकारिक रवैया, विद्यार्थियों को एक ही प्रणाली का पालन करने के लिए मजबूर करना, शिक्षा के महत्व को समझाने में असफलता, जिसके कारण छात्रों में नई क्षमताओं को सीखने की इच्छाशक्ति खत्म हो जाती है।

7. पारिवारिक कारण: विवाह, आर्थिक समस्याएं, शिक्षा के महत्व को न समझना, आत्मविश्वास की कमी, ध्यान और प्रेरणा की कमी, सहशिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, और विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की कमी। इसके अलावा, व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय हितों की अनदेखी भी एक बड़ी समस्या बनती है।

8. सरकारी और गैर-सरकारी कारण: शिक्षा से संबंधित योजनाओं के बारे में जानकारी की कमी, सरकारी योजनाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप, और शैक्षिक व्यवस्था और अशिक्षा के बीच के संबंधों को न समझ पाना।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की उच्च शिक्षा में भागीदारी में भिन्नता है। मुस्लिम महिलाओं के विविधतापूर्ण पहलुओं की अनदेखी की गई है। महिलाओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से उनके पिछड़ेपन के वास्तविक कारणों को उजागर किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने मुस्लिम महिलाओं के लिए समान अवसर पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जनगणना के आंकड़े मुस्लिम महिलाओं के संदर्भ में उत्तर प्रदेश और लखनऊ से संबंधित अपर्याप्त हैं। बढ़ती गरीबी और अशिक्षा के कारण यह साफ है कि उनकी स्थिति में तुलनात्मक रूप से गिरावट आई होगी। इस अध्ययन से यह स्पष्ट है कि महिलाओं की उच्च शिक्षा में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच भिन्नताएं हैं। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है, और राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

<u>शिक्षा के स्तर ने सुधार के लिए प्रस्तावित सुझाव</u>

शिक्षा के महत्व को हर स्तर पर फैलाना चाहिए ताकि यह अशिक्षा और गरीबी को समाप्त करने में मदद कर सके। आज के समय में, शिक्षा विकास का एक वैश्विक मानक बन चुकी है। विकासवाद और आधुनिकता के इस दौर में मुस्लिम महिलाओं का पिछड़ापन एक गंभीर समस्या बनकर सामने आता है। यह अत्यंत आवश्यक है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से मुस्लिम महिलाओं को सशक्त और समर्थ बनाया जाए। यह तभी संभव है जब उनके शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए और उनके सामाजिक दायित्वों और कर्तव्यों का पुनर्निर्धारण किया जाए। इसके अलावा, यह भी जरूरी है कि मुस्लिम महिलाएं वे सभी अवसर प्राप्त करें, जो अन्य नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं। आंकड़े इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उनकी स्थिति में बदलाव के लक्षण हैं, लेकिन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से उनके प्रभाव का मूल्यांकन करना आवश्यक है। वर्तमान में, महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में भागीदारी कम है, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि उन्हें विशेष सहायता और प्रोत्साहन दिया जाए, ताकि वे जीवन के हर क्षेत्र में बेहतरीन योगदान कर सकें।

संदर्भ सूची

1. अंसारी, इकबाल। (1989)। द मुस्लिम सिचुएशन इन इंडिया। नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर प्राइवेट लिमिटेड।
2. अज़हर, उज़मा। (2012)। दिल्ली के मुसलमानों में शिक्षा के मुद्दे। इस्लाम और मुस्लिम समाज: एक सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 5(1)।

http://www.muslimsocieties.org/Vol5/Issues_in_Education से प्राप्त।

3. अहमद, रज़िया। (2023)। भारत में मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा की स्थिति। शोध और विकास मंच। www.sodhandvikas.org से प्राप्त।
4. गोयल, अरुणा। (2004)। महिला विकास और सशक्तिकरण के आर्थिक और सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य। नई दिल्ली: दीप और दीप प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।
5. दत्ता, नोनिका। (1999)। पहचान बनाना: जाटों का सामाजिक इतिहास। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. भारत सरकार। (2022)। मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट। नई दिल्ली: महिला और बाल विकास मंत्रालय।
7. मोहिनी, अंजुम। (1992)। मुस्लिम महिलाएँ भारत में। नई दिल्ली: रेडियंट प्रकाशक।
8. शर्मा, अनामिका। (2024)। मुस्लिम महिलाओं की उच्च शिक्षा की राह में अवरोध: लखनऊ का मात्रात्मक विश्लेषण। लखनऊ: भारतीय समाजशास्त्रीय प्रकाशन।
9. सिंह, एस. एन. (सं.)। (2003)। मुस्लिम इन इंडिया। नई दिल्ली: अनमोल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड।
10. खान, समीरा। (2019)। शैक्षिक अवसर और मुस्लिम महिलाएँ: सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण। नई दिल्ली: सागर पब्लिकेशन।
11. हाशमी, जीनत। (2022)। शैक्षिक असमानता और मुस्लिम महिलाएँ: एक विश्लेषण। शिक्षा सुधार पोर्टल। www.educationforall.in से प्राप्त।
12. व्हाइट, ई. एच। (1978)। मुस्लिम राष्ट्रों में महिलाओं की स्थिति के संकेतक के रूप में कानूनी सुधार। एल. बेक और एन. किड्डी (सं.) में, मुस्लिम दुनिया में महिलाएं । लंदन: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. उत्तर प्रदेश सरकार। (2023)। शैक्षिक विकास पर विशेष रिपोर्ट: मुस्लिम समुदाय का अध्ययन। लखनऊ: शिक्षा विभाग।
14. उत्तर प्रदेश जनसंख्या जनगणना डेटा। (2011)। भारत की जनगणना 2011। https://www.census2011.co.in/census/state/uttar+pradesh.html से प्राप्त।
15. इश्तियाक, हुमैर। स्नेहल शिंगावी द्वारा अनुवादित। (2014)। अंगारे की समीक्षा। डॉन। http://www.dawn.com/news/1130276 से प्राप्त।

मॉरीशस में प्रचलित हिंदू परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन

राहुल कुमार भारती
शोधार्थी , इतिहास विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ
श्रीप्रिया पाण्डेय
इतिहास विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ

मॉरीशस में हिंदू पंथ प्रमुख पंथ है, इसके बाद ईसाई, इस्लाम और बौद्ध पंथ आते हैं। मॉरीशस तीसरा सबसे अधिक हिंदू आबादी वाला एकमात्र अफ्रीकी देश है। मॉरीशस की लगभग 68% आबादी की जड़ें भारतीय हैं और वे हिंदी, तेलुगु, तमिल, उर्दू और भोजपुरी बोलते हैं। क्रेओल्स, फ्रेंको मॉरीशस और चीन-मॉरीशस, ज्यादातर ईसाई पंथ का पालन करते हैं। मॉरीशस एक धार्मिक विविधता वाला देश है, जहां हिंदू पंथ सबसे व्यापक रूप से प्रचलित है। भारतीय मूल के लोग (इंडो-मॉरीशस) ज्यादातर हिंदू पंथ और इस्लाम का पालन करते हैं। फ्रेंको-मॉरीशस , क्रियोल और चीन-मॉरीशस ईसाई पंथ का पालन करते हैं। चीन-मॉरीशस के अल्पसंख्यक लोग बौद्ध पंथ और अन्य चीनी-संबंधित धर्मों का भी पालन करते हैं, हिंदू पंथ मूल रूप से मॉरीशस में मुख्य रूप से उन भारतीयों के माध्यम से आया जो गुलामी के उन्मूलन के बाद द्वीप पर गिरमिटिया मजदूरों के रूप में काम करते थे। यह मॉरीशस को अफ्रीका में सबसे अधिक हिंदुओं का प्रतिशत वाला देश बनाता है और नेपाल और भारत के बाद क्रमशः दुनिया में हिंदुओं का तीसरा सबसे अधिक प्रतिशत वाला देश बनाता है। मॉरीशस में हिंदू पंथ सबसे बड़ा पंथ है, 2011 में हिंदू, कुल आबादी का लगभग 48.5% प्रतिनिधित्व करते थे।[1] यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों ने 19 वीं शताब्दी के पहले भाग में दासों को पकड़ने और व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया था, ब्रिटिश साम्राज्य ने शुरुआती दशकों में इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। हालाँकि, गन्ना, कपास, तंबाकू और अन्य नगदी फसलों के औपनिवेशिक बागानों में कम लागत, उच्च तीव्रता वाले श्रम की मांग बढ़ती रही। ब्रिटिश साम्राज्य ने अफ्रीका से दास श्रम आपूर्ति के स्थान पर भारत से गिरमिटिया श्रम आपूर्ति शुरू कर दी।[2] भारत से लाए गए गिरमिटिया लोगों में मुख्य रूप से हिंदू शामिल थे, लेकिन मुस्लिम और ईसाई भी शामिल थे। वे अनुबंध के अधीन थे, अनुबंध का एक लंबे समय से स्थापित रूप जो उन्हें एक निश्चित अवधि के लिए जबरन श्रम के लिए बाध्य करता था, दासता की निश्चित अवधि के अलावा, यह दासता के समान था। भारत से गिरमिटिया मजदूरों को ले जाने वाला पहला जहाज 1836 में रवाना हुआ।[3] गन्ना ,भारत की मूल फसल है, यूरोप में पाए जाने वाले ठंडे अक्षांशों में नहीं उगती है, बल्कि उष्णकटिबंधीय अक्षांशों में उगती है, यूरोपीय और अमेरिकी मांग को पूरा करने के लिए बड़े औपनिवेशिक उष्णकटिबंधीय बागानों में उगाई जाती थी। यह गन्ना और अन्य उष्णकटिबंधीय फसल के बागान हैं, जो गिरमिटिया हिंदुओं और अन्य प्रवासियों को भारत से मॉरीशस और अन्य उष्णकटिबंधीय देशों जैसे फिजी , जमैका , त्रिनिदाद , मार्टीनिक , सूरीनाम और अन्य में लाए गये। हिंदू और गैर-हिंदू, जिन्होंने गिरमिटिया श्रम अनुबंध स्वीकार कर लिया और मॉरीशस लाए गए, उन्हें

भारत में कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। औपनिवेशिक भारत में गरीबी, ब्रिटिश राज में भुखमरी, महामारी और गंभीर आवधिक अकाल औपनिवेशिक शासन के दौरान बड़े पैमाने पर थे।[4] 19वीं सदी के ब्रिटिश भारत के दौरान लाखों भारतीय सामूहिक भुखमरी से मर गए।[5] विषम परिस्थितियों ने परिवारों, गांवों को तोड़ दिया और पलायन शुरू हो गया। 1839 तक, मॉरीशस में पहले से ही 25,000 भारतीय औपनिवेशिक बागानों में दास जैसी परिस्थितियों में काम कर रहे थे, लेकिन ये मुख्य रूप से पुरुष थे, क्योंकि औपनिवेशिक श्रम कानूनों ने महिलाओं और बच्चों को पुरुषों के साथ जाने से रोक दिया था। 1840 के दशक में ब्रिटिश बागान उपनिवेशों में सस्ते श्रम की भारी कमी के कारण बड़ी संख्या में गिरमिटिया मजदूरों को विशेष रूप से कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास के बंदरगाहों से मॉरीशस में पुरुषों और महिलाओं दोनों को व्यवस्थित रूप से भेजना पड़ा। समाजशास्त्र के प्रोफेसर माइकल मान के अनुसार, मॉरीशस पहुंचे भारत के हिंदू और गैर-हिंदू 18वीं और 20वीं शताब्दी के बीच औपनिवेशिक दुनिया में भेजे गए 30 मिलियन से अधिक गिरमिटिया भारतीय श्रमिकों का एक छोटा सा प्रतिशत थे (जिनमें से कई वर्षों तक बागान मजदूर के रूप में सेवा करने के बाद लौटे)। जब मॉरीशस को ब्रिटिश साम्राज्य से आज़ादी मिली, तब तक इसकी ज़्यादातर आबादी भारतीय मूल की थी। पैट्रिक आइज़ेनलोहर के अनुसार, मॉरीशस की कुल आबादी का लगभग 70% हिस्सा भारतीय मूल का है। खुद को हिंदू मानने वाले लोग कुल आबादी का लगभग 48% या भारतीय मूल के लोगों का लगभग 69% हिस्सा हैं। द्वीप पर सबसे बड़े त्योहारों में से एक महाशिवरात्रि या 'शिव की महान रात्रि' है। फरवरी और मार्च के महीनों में मनाए जाने वाले इस वार्षिक हिंदू उत्सव के दौरान, चार से नौ दिनों तक अनुष्ठान और उपवास के बाद शिव पूजा और गणेश पूजा की पूरी रात जागरण होता है।

मॉरीशस में अन्य धर्मों की झलक

मॉरीशस में ईसाई पंथ

मॉरीशस का दूसरा सबसे बड़ा पंथ , ईसाई पंथ , 1638 में मॉरीशस के उपनिवेशीकरण के बाद डच लोगों द्वारा द्वीप पर लाया गया था। 1715 में फ्रांसीसियों द्वारा मॉरीशस पर नियंत्रण करने के बाद, उन्होंने एक आदेश पारित किया, जिसके अनुसार आने वाले सभी दासों को कैथोलिक बपतिस्मा लेना अनिवार्य था।[8] मॉरीशस क्रियोल और फ्रेंको-मॉरीशस जातीय समूह ज्यादातर ईसाई हैं और सिनो-मॉरीशस जातीय समूह के महत्वपूर्ण हिस्से भी मुख्य रूप से ईसाई हैं ।[9] ईसाई पंथ (विशेष रूप से प्रोटेस्टेंटवाद) को अंग्रेजों ने तब और मजबूत किया जब उन्होंने द्वीप पर अपना शासन स्थापित किया। वर्तमान में, सभी ईसाइयों में से 83% खुद को कैथोलिक मानते हैं। ईसाई पंथ का सबसे बड़ा गुट, कैथोलिक पंथ , ईश्वर को पवित्र त्रिमूर्ति के रूप में पहचानता है, जिसमें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा शामिल हैं। कैथोलिक मॉरीशसवासी वेटिकन सिटी में पुरोहिताई और पोप की पवित्रता का पालन करते हैं। द्वीप भर में चर्चों की पूजा पद्धति काफी भिन्न होती है, और कोई भी लैटिन, फ्रेंच और अंग्रेजी जैसी विभिन्न भाषाओं में सामूहिक प्रार्थनाएँ देख सकता है। मॉरीशस का सबसे पुराना चर्च- सेंट फ्रांसिस ऑफ असीसी चर्च, 1756 में बेसाल्ट चट्टान का उपयोग करके बनाया गया था और यह बहुत पूजनीय है। नोट्रे डेम डे ल'ऑक्सिलियाट्रिस, इसकी ज्वलंत लाल छत और इसके पीछे नीला समुद्र, अनगिनत विचित्र पुराने चर्चों में से एक है। क्रिसमस और नए साल के दौरान मॉरीशस की यात्रा नए साल के आगमन का एक शानदार तरीका है।

मॉरीशस में इस्लाम

मॉरीशस में इस्लाम, हिंदू पंथ और ईसाई पंथ के बाद यह देश का तीसरा सबसे बड़ा पंथ है। मॉरीशस की आबादी में मुसलमानों की हिस्सेदारी 17.3 प्रतिशत से ज़्यादा है। मॉरीशस पहुंचने वाले गिरमिटिया मजदूर हिंदू पंथ की तरह इस्लाम भी लेकर आए। इन लोगों की उत्पत्ति भारत में गुजरात , पांडिचेरी और बंगाल के क्षेत्रों में हुई थी। मॉरीशस में अपना व्यापार स्थापित करने वाले धनी भारतीय व्यापारियों ने द्वीप पर इस्लाम के प्रचार-प्रसार में भी सहायता की। एक कम ज्ञात तथ्य: अरब मुस्लिमों ने सबसे पहले मॉरीशस द्वीप की खोज की थी और इस द्वीप का नाम दीना अरोबी रखा था।
मॉरीशस में अधिकांश मुसलमान अपनी पहचान सुन्नी संप्रदाय से रखते हैं।[10] हिंदी में पारंगत होने के बावजूद, कई लोग उर्दू, गुजराती और भोजपुरी भी बोलते हैं। पूरे मुस्लिम समुदाय को तीन सामाजिक समूहों में विभाजित किया जा सकता है- मेमन, जो मॉरीशस की कुछ सबसे प्रमुख मस्जिदों को नियंत्रित करते हैं, सुरती, जो समृद्ध गुजराती और कच्छ व्यापारी हैं, और हिंदी कैलकटिया- बिहार के गिरमिटिया मजदूर। मॉरीशस में शिया अल्पसंख्यक की जड़ें दक्षिण एशिया और पूर्वी अफ्रीका में हैं। 1805 में बनी कैंप डेस लस्कर्स मस्जिद मॉरीशस की पहली मस्जिद थी और अब इसे अल अक्सा मस्जिद के रूप में पहचाना जाता है। पोर्ट लुइस में जुम्मा मस्जिद 1850 के दशक में बनाई गई थी और यह मॉरीशस की वास्तुकला की उत्कृष्ट कृतियों में से एक है। अपने प्राचीन सफेद मुखौटे और हरे रंग की सजावट के साथ, मस्जिद सभी मुसलमानों के लिए एक अत्यंत पूजनीय स्थल है। ईद-उल-फितर एक राष्ट्रीय अवकाश है और इसे भव्य परोपकारी समारोहों द्वारा चिह्नित किया जाता है।

मॉरीशस में बौद्ध पंथ

मॉरीशस की लगभग 0.4% आबादी बौद्ध पंथ का पालन करती है और चीन-मॉरीशस के एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा इसका पालन किया जाता है।[11] यह पंथ अधिकतर 19वीं सदी की शुरुआत में मॉरीशस में प्रवास करने वाले सिनो मॉरीशस (चीनी मूल) द्वारा लाया गया था। एक धार्मिक पंथ होने के नाते, बौद्ध पंथ अपने सिद्धांतों को भारत के गौतम बुद्ध की शिक्षाओं से प्राप्त करता है। बौद्ध पंथ के दो प्रमुख विद्यालय मौजूद हैं- थेरवाद और महायान। सभी बौद्ध परंपराओं का उद्देश्य दुखों पर काबू पाना और निर्वाण प्राप्त करके जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना है। श्रद्धालु बौद्ध मध्य मार्ग का पालन करते हैं- एक ऐसी जीवनशैली जिसमें न तो गहन तपस्या होती है और न ही अत्यधिक विलासिता। चीन-मॉरीशस समुदाय चीनी नव वर्ष उत्सव और लालटेन उत्सव मनाता है, दोनों में दृश्यात्मक रूप से आश्चर्यजनक उत्सव शामिल होते हैं। क्वात्रो बोर्नेस में पंथ रक्षित महायान बौद्ध केंद्र मॉरीशस बौद्धों के लिए महत्वपूर्ण सामुदायिक केंद्रों में से एक है।

मॉरीशस में बहाई पंथ

इस पंथ का पालन करने वाले लोगों की संख्या बहुत कम है, फिर भी इसके अनुयायी काफी हैं। बहाई पंथ दुनिया के स्वतंत्र धर्मों में सबसे युवा है। बहाउल्लाह द्वारा स्थापित, यह पंथ दुनिया भर के 235 देशों और क्षेत्रों में मौजूद है। इस पंथ ने 1953 के आसपास मॉरीशस में अनुयायियों को इकट्ठा करना शुरू किया और तब से यह संदेश दिया है

कि मानवता एक ही जाति है और इसका एक वैश्विक समाज में एकीकरण सबसे महत्वपूर्ण है।[12] बहाई सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों को खत्म करने के लिए काम करते हैं और उनका उद्देश्य एकता, सद्भाव, न्याय और शांति की विशेषता वाले वैश्विक समाज का विकास करना है। मॉरीशस के बहाईयों की राष्ट्रीय आध्यात्मिक सभा का मुख्यालय पोर्ट लुइस में है और यह बहाईयों के प्रशासनिक मामलों के साथ-साथ उनके आध्यात्मिक और नैतिक विकास की देखरेख करती है। रिदवान , बारह दिवसीय त्यौहार जो बहाउल्लाह के ईश्वर के अवतार होने की घोषणा का स्मरण करता है, सबसे महत्वपूर्ण बहाई त्यौहार है।

अन्य पंथ

कन्फ्यूशियसवाद, ताओवाद और जैन पंथ मॉरीशसवासियों द्वारा पालन किये जाने वाले कुछ अन्य सूक्ष्म पंथ हैं।

मॉरीशस में हिंदू पंथ

हिन्दू मॉरीशस में तब आए, जब भारतीयों को फ्रांसीसी उपनिवेश में बंधुआ मजदूर के रूप में लाया गया और बाद में बड़ी संख्या में मॉरीशस और हिंद महासागर के पड़ोसी द्वीपों में ब्रिटिश बागानों में लाया गया।[13] ये प्रवासी मुख्य रूप से अब के भारतीय राज्यों बिहार , उत्तर प्रदेश , मध्य प्रदेश , झारखंड , महाराष्ट्र , तमिलनाडु , तेलंगाना और आंध्र प्रदेश से आए थे, साथ ही भारत के विभाजन के बाद पाकिस्तान के सिंध क्षेत्र से भी प्रवासी आए।[14] अधिकांश अप्रवासी बिहार, बंबई, मद्रास और भारत के उत्तर पश्चिमी प्रांतों से आए थे। उस समय के आव्रजन रजिस्टर में उल्लेख किया गया है कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में निम्नलिखित थीं- हिंदी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, बंगाली और, जहां तक पंथ का संबंध था, वे मोटे तौर पर सनातनियों के रूप में माने जाने वाले रूढ़िवादी विश्वास के हिंदुओं के बीच विभाजित थे। और मुसलमान, यानी पैगंबर मोहम्मद के अनुयायी। हिंदू विष्णु, राम शिव और कृष्ण के भक्त थे और वे पूजा और समारोहों के पौराणिक रूप में शामिल थे। यह उन चीनी बागानों के मालिकों का श्रेय है जो आप्रवासियों को मॉरीशस में लाए थे कि उन्हें बिना किसी बाधा के अपने विश्वास का पालन करने के लिए हर सुविधा दी गई थी। 1867 की शुरुआत में, द्वीप के उत्तर में "गोकुला" नामक एक गाँव में एक शिव मंदिर बनाया गया था।[15] और लगभग उसी समय तमिलों ने द्वीप की राजधानी पोर्ट-लुईस में अपने स्वयं के पूजा स्थल स्थापित किए। यह भारतीय समुदाय में महान आध्यात्मिक जागृति का काल था। 1872 में, वृहत् जुम्मा मस्जिद बनकर तैयार हुई और यह बेहतरीन इमारत मुस्लिम कला की कृपा और सुंदरता के लिए एक श्रद्धांजलि है। "इसके गुंबद और मीनारों की सुंदरता अद्वितीय है और जब आप एक स्पष्ट रात में इसके नीचे खड़े होते हैं, तो असंख्य तारे ऊपर की ओर चमकते हैं, यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है कि आप खुद को ओरिएंटल भूमि पर ले जाया जाएगा जहां अकेले अल्लाह की पूजा की जाती है।" भारतीय प्रवासी 223 चीनी संपदाओं में रह रहे थे, जो द्वीप के नौ जिलों में पाए जाते थे। वे संपत्ति शिविरों में रहते थे और एक औसत बस्ती में लगभग 300 मजदूर होते थे। भारतीय गांवों की तरह ही, उनके घर लकड़ी से बने होते थे, जिन्हें पुआल से ढका जाता था और अंदरुनी हिस्से को चारों तरफ मिट्टी और गोबर से लीपा जाता था। अधिकांश परिवारों के पास रहने के लिए एक या दो कमरे थे। घरेलू फर्नीचर में चार लकड़ी के खंभों से बना एक बिस्तर होता था, जिसमें सलाखों और एक रस्सी की जाली होती थी, जो गद्दे के रूप में काम करती थी, उसी सामग्री से बने कुछ छोटे स्टूल, कुछ नीची बेंचें (जिन्हें पीरा के नाम से जाना जाता है), कपड़े रखने

के लिए एक संदूक, एक मेज, खाना पकाने के बर्तन और पीतल और तांबे के पीने और खाने के बर्तन (जिन्हें लोटा और थारी के नाम से जाना जाता है)। खाना आम तौर पर घर में ही बनाया जाता था, चूल्हा आमतौर पर बरामदे के करीब एक कोने में रखा जाता था। उस समय मनाए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण त्योहार और समारोह थे दुर्गा पूजा, होली, दिवाली और शिवरात्रि। एकादशी और रामनौमी अधिकतर महिलाओं द्वारा मनाए जाते थे। तमिलों ने फायर वॉकिंग समारोह और मुसलमानों ने ईद मनाई। प्रत्येक संपत्ति पर एक बैतका (ग्राम क्लब) होता था, जिसमें पंचायत कार्य करता था, जो इस काल में शायद सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संगठन था। हिंदू समुदाय का विचार, उनकी सामाजिक संरचना काफी हद तक वैसी ही थी जैसी एक विशिष्ट व्यक्ति में पाई जाती है। प्रत्येक स्थानीय भारतीय बस्ती में सार्वजनिक और निजी समारोहों का संचालन करने के लिए एक ब्राह्मण पुजारी (पुरोहित) अवश्य होगा, एक नाई भी होगा (जिसे नावे कहा जाता है) जिसका सामाजिक व्यवस्था में विशेष रूप से संबंध में अपना नियुक्त कार्य होता है। विवाह का उत्सव, श्राद्ध (मृत्यु समारोह) और नामसंस्कार (जन्म समारोह)। संयुक्त परिवार प्रणाली के नियमों के अनुसार जीवन को विनियमित किया गया था, जो एक ही छत पर रहने वाले दूर के रिश्तेदारों को भी सहायता और सहायता प्रदान करता था। पिता घर का मुखिया था, और परिवार के घटक सदस्यों की सारी आय या तो उसके या उसकी पत्नी के हाथ में आती थी। और ऐसा हुआ कि बेटे और बेटियों, भतीजे और भतीजियों को समान दर्जा प्राप्त था। सभी उपलब्ध हाथ भूमि पर खेती करते थे और इस प्रकार सामूहिक रूप से अपने श्रम के फल का आनंद लेते थे। यदि माता-पिता की मृत्यु हो जाती है तो घर के सदस्यों की देखभाल की जिम्मेदारी सबसे बड़े भाई को दी जाती है। संपत्ति का बंटवारा नहीं हुआ था, विरासत के कानूनों ने बेटी को विरासत से वंचित नहीं किया, लेकिन व्यवहार में वे हमेशा इससे वंचित रहीं। शुरुआती दिनों में भारत में महिलाओं के खिलाफ भी यही पूर्वाग्रह व्याप्त था। बैतका में ही सबसे आकर्षक त्योहार और समारोह होते थे। सबसे लोकप्रिय "कथा" थी जो भागवत के एक धार्मिक अवसर के उत्सव को चिह्नित करने के लिए की जाती थी, जो आम तौर पर क्रिसमस के आसपास आयोजित की जाती थी। पुजारी को सुनने के लिए सैकड़ों की संख्या में पुरुष और महिलाएं उपस्थित हुए, जिन्होंने सरल शब्दों में गीता, रामायण और महाभारत में प्रकट भगवान की अच्छाई और महिमा पर जोर दिया और पुरुषों की दुष्टता और पराजित शासकों के अत्याचार की ओर इशारा किया। उनका अपना अंत है, उन्हें इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था कि ब्राह्मण पुजारी के उपदेश ऐतिहासिक सत्य की प्रतिध्वनि हैं या नहीं, उन्हें विद्वानों के विवादों में कोई दिलचस्पी नहीं थी, यह जीवन की पवित्रता और दृढ़ता थी, जो भारत के धार्मिक कार्यों में निहित है, जिसने उन पर इतना गहरा प्रभाव डाला। यहां ब्राह्मण पुजारियों के बारे में एक शब्द कहा जाना चाहिए, वे शब्द के स्वीकृत अर्थ में विद्वान नहीं थे, यहां तक कि हिंदी भाषा के बारे में उनका ज्ञान बहुत गहरा नहीं था, लेकिन उन्होंने काफी लंबे समय तक हिंदुओं पर महान आध्यात्मिक प्रभाव डाला और दूर-दराज के देशों में भारत के धार्मिक रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को जीवित रखने का श्रेय काफी हद तक उन्हें जाता है। जीवन के उल्लास को बढ़ाने के लिए गाँव में नाट्य प्रदर्शन भी होते थे लेजेस, जिनमें से सबसे उल्लेखनीय "रामलीला" और "इंद्र सभा" थे, और यद्यपि उनमें बहुत अधिक कलात्मकता नहीं थी, फिर भी उन्होंने स्वदेशी संस्कृति की लालसा को संतुष्ट किया। हालाँकि, सबसे लोकप्रिय मुस्लिम त्योहार, "मुहर्रम" थी, जिसे आम तौर पर "ताजिया" के नाम से जाना जाता है। यह इलाके के लोगों के लिए राष्ट्रीय खुशी का अवसर था। गाँव के सभी लोग उत्सव के मैदान में एकत्र हुए और सुबह के शुरुआती

घंटों तक मनोरंजन में भाग लिया। इस उत्सव की मुख्य विशेषता द्वीप के सर्वश्रेष्ठ पहलवानों द्वारा लड़ी जाने वाली कुश्ती प्रतियोगिता थी। प्रत्येक संपत्ति पर, इनमें से एक या दो पहलवान होते थे, और चीनी बागानों के प्रबंधक द्वारा उनकी अच्छी तरह से देखभाल की जाती थी, ताकि वह अपनी संपत्ति के लिए प्रतियोगिता जीतने का प्रतिष्ठित गौरव हासिल कर सकें। बैम बू से निर्मित और कई रंगों के कागज से ढका हुआ एक विशाल टॉवर सेलेब्रा पर खड़ा किया गया था। टियोन ग्राउंड, यह आम तौर पर एक पतली संरचना थी, जिसका आधार बाकी हिस्सों की तुलना में चौड़ा था। बैतका ने अन्य खुशियों के लिए एक मिलन स्थल प्रदान किया। रात के खाने के बाद पुरुष वहां एकत्र होते थे और दिव्य धुनों पर थिरकते थे। उनमें से जो अधिक सुसंस्कृत होंगे, वे बाकी लोगों को हिंदू दर्शन के ऊंचे सिद्धांतों की व्याख्या करेंगे और उनका दिमाग स्वर्ण युग में वापस चला जाएगा, जब भारत की सभ्यता अपने चरम पर पहुंच गई थी, जब ऋषि अपने सिल्वान रिट्रीट से ब्रह्मा के निर्माता के साथ संवाद में होंगे। भारतीय आप्रवासियों ने संगीत वाद्ययंत्रों की काफी विस्तृत श्रृंखला का उपयोग किया। वहाँ ड्रम था, जिसका उपयोग सही माहौल बनाने के लिए, ताल को चिह्नित करने के लिए सहायक उपकरण के रूप में किया जाता था। वहाँ झांझें थीं, जो उपस्थित सभी लोगों को संगीत प्रदर्शन में भाग लेने में सक्षम बनाती थीं। अधिक उन्नत समूहों में, एक ऑर्केस्ट्रा, एक मोनोकॉर्ड वाद्ययंत्र, कास्टा नेट, रैटल, वायलिन और सितार था। और मंदिरों में धार्मिक अवसरों के लिए शंख, बांसुरी और तुरही का उपयोग किया जाता था। पोशाक के संबंध में पुरुष हमेशा धोती को अपनाते थे। किसी ने पगड़ी (पगड़ी) पहन रखी थी तो किसी ने सिर पर बड़ा रूमाल बाँध रखा था। महिलाएँ स्कर्ट और शॉल पहनती थीं और केवल कुछ ही साड़ी पहनती थीं। शुरुआती दिनों में किसी भी प्रांतीय बाधा ने कम्यून के एक हिस्से को अलग नहीं किया। ग्रामीण इलाकों में खेल आदि जैसी कई सामाजिक गतिविधियों में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की रेखा धुंधली थी। वे एक ही भाषा बोलते थे, भोजपुरी (जो हिंदी का व्युत्पन्न था)। वे व्यावहारिक रूप से एक ही तरह से रहते थे, समान मूल्यों को साझा करते थे, एक ही व्यवसाय में लगे हुए थे (वृक्षारोपण पर मजदूर) इस प्रकार एक समान भावना में लगे लोगों के बीच समानता की भावना प्राप्त हुई जो आम है। विवाह समारोह संभवतः हिंदू धार्मिक जीवन के पारंपरिक रीति-रिवाजों, मान्यताओं और अनुष्ठानों की अभिव्यक्ति के लिए सबसे शानदार अवसर प्रदान करता है। यह काफी हद तक जाति व्यवस्था की अनिवार्यताओं से निर्धारित और रंगीन था, जो हालांकि अपने संचालन में उतना कठोर और गंभीर नहीं था। भारत की तरह, राष्ट्र ने अभी भी समुदाय के सामाजिक संगठन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक सामान्य नियम के रूप में विवाह केवल वर्ग संरचना के साथ "इन-ग्रुप" के सदस्यों के बीच ही हो सकते हैं। यह हमेशा एक "अरेंज" विवाह होगा, और भावी दूल्हे को अपने माता-पिता के निर्णय का पालन करना होगा। वह अपनी पत्नी को केवल अंतिम समारोह के दिन ही देख पाएंगे। पुराने दिनों में विभिन्न अनुष्ठान कई हफ्तों तक चलते थे और वे सख्ती से समय द्वारा स्वीकृत उपयोग के अनुसार होते थे। विवाह समारोह में जो सुरम्यता थी वह अपने आप में एक उल्लेखनीय विशेषता थी। मोटर कार के आगमन से पहले, दूल्हे की पार्टी के लिए खच्चर गाड़ियों में टेंट लेकर दुल्हन के घर जाने की प्रथा थी। इस अवसर पर धनी परिवारों द्वारा घोड़ों द्वारा खींची जाने वाली सुंदर गाड़ियों का उपयोग किया जाता था। दूल्हे के "रथ" को खूब सजाया जाएगा। उनके कुछ मेहमान पैदल चलकर उस स्थान से थोड़ी दूरी पर दूल्हे से मिलेंगे जहां शादी होगी। गंतव्य पर पहुंचने पर मेहमानों को एक मंडप में ठहराया जाएगा,

जबकि विवाह समारोह एक अलग तंबू में होगा जहां केवल करीबी रिश्तेदार मौजूद होंगे। मेहमानों के मनोरंजन के लिए नाच लड़कियों द्वारा नृत्य किया जाएगा और प्रदर्शन लगभग पूरी रात चलेगा।

हिंदू विवाह समारोह के साथ होने वाले संस्कारों का वर्णन ए. एल. बाशम ने इस प्रकार किया है- दूल्हा और दुल्हन अलग-अलग मंडप में प्रवेश करते थे और एक छोटे पर्दे के दोनों ओर बैठे थे। कार्यवाहक ब्राह्मण द्वारा बुदबुदाए गए पवित्र श्लोकों की संगत में, पर्दा हटा दिया गया और जोड़े ने पहली बार एक-दूसरे को देखा। पवित्र अग्नि में घी और चावल की अगली आहुति दी गई। जब दुल्हन आग में अनाज चढ़ा रही थी तो दूल्हे ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिसके चारों ओर उसने उसे घुमाया, आमतौर पर उनके कपड़ों को एक साथ बांध दिया, जिसके बाद वह एक चक्की पर चली गई। फिर जोड़े ने एक साथ सात कदम उठाए, दुल्हन हर कदम पर चावल के एक छोटे ढेर पर पैर रख रही थी। फिर उन पर पवित्र जल छिड़का गया और समारोह का मुख्य भाग समाप्त हो गया। बिल्कुल वही संस्कार मॉरीशस में देखे गए थे, और जब कोई यह दर्शाता है कि वे ऋग्वेद में वर्णित लोगों से आवश्यक रूप से भिन्न नहीं हैं, तो कोई राधाकृष्णन के अवलोकन की शक्ति देख सकता है कि अपने लंबे इतिहास में भारतीय संस्कृति "कहीं भी अलग नहीं हुई है, कहीं भी टूटी नहीं है"।[16]

प्रमुख हिन्दू त्यौहार

मॉरीशस में हिंदू प्रमुख त्योहार मनाते हैं, जैसे- पोर्ट लुइस में दिवाली।

द्वीप पर सबसे बड़े हिंदू त्योहारों में से एक महा शिवरात्रि ("शिव की महान रात") है। इस वार्षिक हिंदू उत्सव के दौरान, जो फरवरी और मार्च के महीनों में होता है, चार से नौ दिनों के समारोह और उपवास के बाद पूरी रात शिव पूजा की जाती है।

मॉरीशस में अन्य महत्वपूर्ण हिंदू त्योहारों में शामिल हैं:-

- थाईपुसम , भगवान मुरुगन का सम्मान करते हुए, यह विशेष रूप से तमिल हिंदुओं द्वारा मनाया जाता है।[17]
- गणेश चतुर्थी, एक त्यौहार है जो मराठी भाषी समुदाय के लिए सार्वजनिक अवकाश के दिन मनाया जाता है, तथा गणेश के जन्म का उत्सव मनाया जाता है।
- दुर्गा पूजा नौ दिनों तक देवी के सम्मान में मनाई जाती है।
- दिवाली , "रोशनी का त्यौहार", जिसे दीपावली के नाम से भी जाना जाता है। यह हिंदू त्यौहार मॉरीशस में राष्ट्रीय सार्वजनिक अवकाश है। यह जातीय बाधाओं से परे लोकप्रिय है, मॉरीशस के ईसाई भी इसे मनाते हैं।
- उगादि / गुड़ी पड़वा , हिंदू नववर्ष।
- होली रंगों का त्योहार
- पोंगल / मकर संक्रांति , एक फसल उत्सव।

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मॉरीशस में हिन्दू पंथ की जड़े बहुत पुरानी हैं, जो अपने साथ भारतीय रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि को अपने में समेटे हुए हैं, जिसकी स्पष्ट झलक उनके वर्तमान रीति-रिवाजों, विवाह, संस्कारों में दिखाई देती हैं। मारीशस में अच्छी खासी हिन्दू आबादी निवास करती हैं, जो अपने सनातन परम्पराओं के लिए विख्यात हैं, वे भारत के साथ अभिन्न जुड़ाव महसूस करते हैं, जो हिन्दू पंथ और भारतीयता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

संदर्भ सूची

1. "पंथ और लिंग के आधार पर निवासी जनसंख्या" (पीडीएफ) सांख्यिकी मॉरीशस । पी। 68. मूल से संग्रहीत (पीडीएफ) 6 अक्टूबर 2022 को।
2. स्टीवन वर्टोविक (रॉबिन कोहेन, संस्करण) (1995)। विश्व प्रवास का कैम्ब्रिज सर्वेक्षण । पृ. 57-68
3. Thinker, Hugh (1992), New System of Slavery, Hansib Publishing, London.
4. डेविड नॉर्थरूप (1995)। साम्राज्यवाद के युग में गिरमिटिया मजदूर, 1834-1922 । कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 62-67
5. माइक डेविस (2002)। लेट विक्टोरियन होलोकॉस्ट्स: एल नीनो फेमिन्स एंड द मेकिंग ऑफ द थर्ड वर्ल्ड । वर्सो बुक्स। पीपी. 6–11, 54–59, 167–173
6. माइकल मान (2016)। "अध्याय 16: परिसंचरण और प्रवास"। जॉन मैरियट (संपादक) में। आधुनिक साम्राज्यवादी इतिहास के लिए एशगेट अनुसंधान साथी रूटलेज।
7. पैट्रिक ईसेनलोहर (2006)। लिटिल इंडिया: डायस्पोरा, टाइम, एंड एथनोलिंग्विस्टिक बिलॉन्गिंग इन हिंदू मॉरीशस । यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस। पृ. 7–8
8. वॉटसन, जेम्स एल. (1980). एशियाई और अफ्रीकी गुलामी प्रणालियाँ . यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस. पृ. 158-159 में से 348
9. " मॉरिशस में ईसाई पंथ का इतिहास " (पीडीएफ) . मूल से संग्रहीत (पीडीएफ) 10 मई 2011 को प्रकाशित किया गया ।
10. बोसवर्थ, क्लिफोर्ड एडमंड, एड. (1989). इस्लाम का विश्वकोश: फासिक्यूल्स 111- 112 मशराह मावलिद . ब्रिल. पृ. 849.
11. "पंथ और लिंग के आधार पर निवासी जनसंख्या" (पीडीएफ) . सांख्यिकी मॉरीशस । पृ. 68, 71. मूल से संग्रहीत (पीडीएफ) 6 अक्टूबर 2022 को
12. "मॉरीशस में आस्था का इतिहास" । मॉरीशस के बहाईयों की आधिकारिक वेबसाइट । मॉरीशस का बहाई समुदाय। 2014
13. मीनाक्षी थापन (2005)। ट्रांसनेशनल माइग्रेशन और पहचान की राजनीति । SAGE प्रकाशन। पृ. 65-67
14. पॉल यंगर (2009)। न्यू होमलैंड्स: मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, फिजी और पूर्वी अफ्रीका में हिंदू समुदाय। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी. 3–8, 30–31, 53–54
15. ए. बीजाधुर, लेस इंडियंस ए एल'इले मौरिस (पोर्ट-लुई, ला टाइपोग्राफी मॉडर्न, 1935), पृ. 25

16. ए.एल. बाशम, द वंडर दैट वाज़ इंडिया (लंदन, सिडगविक एवं जैक्सन)
17. ज़ीगालाटस, डी.; मिटकिडीस, पी.; फिशर, आर.; एट अल. (2013). "चरम अनुष्ठान प्रोसोशलिटी को बढ़ावा देते हैं " (पीडीएफ)। मनोवैज्ञानिक विज्ञान, 24

46

किशोरों की आक्रामकता पर नैतिक अलगाव का प्रभाव

डॉ. इंदु
मनोविज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय उकलाना, हिसार, हरियाणा

आक्रामकता सदैव मानवजाति के लिए चिंता का विषय रही है। हम प्रतिदिन ऐसी आक्रामक घटनाओं के बारे में अखबारों/टीवी या सोशल मीडिया के माध्यम से अवगत होते रहते है। आक्रामक व्यवहार में किशोर वर्ग का संलगन होना किसी भी देश/समाज/परिवार के लिए बेहद चिंतनीय है। क्योंकि किसी भी देश का भविष्य उस देश की युवा पीढ़ी है। और 13 से 19 साल तक के किशोर भी इस प्रकार की आक्रामकता में संलिप्त होते है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने हमेशा यह पता लगाने की कोशिश की है कि वास्तव में आक्रामकता क्या है। 'आक्रामकता' शब्द को परिभाषित करना कठिन है लेकिन फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। आक्रामकता एक संज्ञा है जिसे आमतौर पर आक्रामक व्यवहार के एक कार्य के रूप में जाना जाता है। किसी भी वस्तु व्यक्ति या स्वयं को भी मंशा से पहुंचाई गई हानि/चोट आक्रामकता कहलाती है। आक्रामक आचरण को मौखिक या शारीरिक हमले द्वारा चित्रित किया जा सकता है। कभी-कभी आक्रामकता आत्म रक्षा के लिए उचित होती है लेकिन कभी-कभी आक्रामकता अनुचित होती है और यह स्वयं और दूसरों के विनाश का कारण बनती है। व्युत्पत्तिशास्त्रियों ने आक्रामकता शब्द को लैटिन शब्द 'एग्रेसियो' से लिया है। 1911 में इस शब्द का प्रयोग पहली बार अकारण हमले के संदर्भ में किया गया था। आक्रामकता एक सार्वभौमिक भावना है और अब यह किसी परंपरा या एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है।

"एक ऐसी प्रतिक्रिया के रूप में वर्णित किया जो दूसरे जीव को हानिकारक उत्तेजना प्रदान करती है"। (अर्नोल्ड बस्स, 1961)

अल्बर्ट बंडुरा (1979) ने आक्रामकता को परिभाषित करते हुए कहा "आक्रामकता को जानबूझकर व्यक्तिगत नुकसान और शारीरिक विनाश के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आक्रामकता में व्यक्तिगत रूपों के साथ-साथ संस्थागत और अंतर्राष्ट्रीय हिंसा भी शामिल है। किशोर आक्रामक व्यवहार पर नैतिक विघटन का प्रभाव पड़ता है।

नैतिक विघटन (अलगाव)

स्वयं को यह समझाने की प्रक्रिया कि नैतिक मानक स्वयं पर लागू नहीं होते "नैतिक विघटन" कहलाती है। नैतिक प्रतिबंधों से स्वयं को अलग करना व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर एक बढ़ती हुई मानवीय समस्या है क्योंकि यह अलगाव अमानवीय कृत्यों को जन्म देता है। थॉमस गैबोर ने 1994 में अपनी पुस्तक "एवरीबडी ड़ज इट" में लिखा है कि नैतिक अलगाव जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त है। नैतिक परिकल्पनाएँ मुख्यतः इसी पर केन्द्रित होती हैं कि "नैतिक विचार नैतिक कृत्यों की उपेक्षा करते हैं"। नैतिक तर्क की व्याख्या "अनैतिक मानदंडों और आत्म-

प्रतिबंधों" में निहित स्व-प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से की जाती है तथा किस नैतिक एजेंसी द्वारा यह काम किया गया है (बंडुरा, 1986, 1991)। नैतिक आत्म में आत्म-चिंतनशील, आत्म-नियामक और सक्रिय तंत्र शामिल हैं। ये सभी स्व-संदर्भित प्रक्रियाएं नैतिक आचरण के संज्ञानात्मक और प्रेरक नियामक प्रदान करती हैं। 1986 में अल्बर्ट बंडुरा ने अपने **सामान्य सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत** का विस्तार करते हुए नैतिक अलगाव के सिद्धांत का प्रस्ताव रखा। सामान्य सामाजिक संज्ञानात्मक परिकल्पना के अनुसार, जब हमारी आत्म-नियंत्रण क्षमताएं उचित रूप से काम करती हैं, तो आक्रामक व्यवहार हतोत्साहित होता है। आक्रामक व्यवहार को उस आत्म-निर्णय के माध्यम से हतोत्साहित किया जाता है कि यदि वे ऐसा व्यवहार करेंगें जो उनके आंतरिक नैतिक मानकों के विपरीत है तो उन्हें वैसा ही व्यवहार सहन भी करना पड़ेगा। "ये स्व-नियामक कार्य विफल हो जाते हैं जब नैतिक पृथक्करण प्रणालियाँ स्व-मंजूरी प्रक्रिया और" नियम भंग करने वाले व्यवहार के बीच संबंधों को अक्षम कर देती हैं (बंडुरा, 1986, बंडुरा, 1990, 1999, 2002). बंडुरा ने सिफारिश की कि "नैतिक विघटन 'एक समूह' के माध्यम से होता है आठ परस्पर संबंधित संज्ञानात्मक तंत्र/प्रक्रियाएं है जो अनैतिक आचरण को प्रोत्साहित करती हैं।"

1. **नैतिक औचित्य (Moral Justification):** नैतिक अलगाव का पहला तंत्र व्यवहार के संज्ञानात्मक पुनर्निर्माण पर काम करता है। व्यक्ति परंपरागत रूप से तब तक हानिकारक कार्यों में भाग नहीं लेते जब तक कि वे अपने गलत कार्य को नैतिक तौर पर न्याय संगत करके स्वयं का बचाव नहीं कर लेते। नैतिक औचित्य तंत्र में हानिकारक कृत्यों को सामाजिक रूप से सराहनीय या नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में चित्रित करके सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से स्वीकार्य और संतोषजनक बनाया जाता है।
2. **मंगलभाषी उपनाम/शब्द (Euphemistic Labelling):** हानिकारक कार्यों को कम हानिकारक दिखाने के लिए स्वच्छ भाषा (अच्छे शब्दों) का उपयोग करके उनका नाम बदलना (बोलिंगर, 1982)। हमारे द्वारा इस्तेमाल कि गई भाषा से हमारे विचार और हमारे विचारों से हमारी गतिविधियाँ निर्धारित होती हैं। और यदि हम अनैतिक कार्यों के लिए भी अच्छे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हमारे दिमाग तक यह सूचना पहुँचती है कि हमारे द्वारा किया गया कार्य उचित है। **मंगलभाषी उपनाम/शब्द** एक हानिकारक हथियार है. और व्यक्ति तब अधिक निर्दयतापूर्ण कार्यों को अंजाम देता है जब वह अपनी आक्रामक गतिविधियों को मौखिक रूप से साफ़ कर देता है (डायनर, डाइनेन, एंड्रेसन, बीमन, और फ्रेज़र, 1975)।
3. **लाभप्रद तुलना (Advantageous Comparison):** हानिकारक आचरण को अच्छा बनाती है। आचरण को कैसे देखा जाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी तुलना किससे की जाती है। उग्रवादी अपने आचरण को उन व्यक्तियों पर की गई व्यापक क्रूरताओं के साथ तुलना करके बलिदान के रूप में देखते हैं। अगर व्यक्ति अपनी अमानवीयताओं को अन्य कृत्यों के साथ तुलना कर पा रहा है तो जितनी अधिक स्पष्टता इस तुलना में होंगी, यह उतना ही निश्चित होगा कि किसी का अपना खतरनाक कार्य परोपकारी प्रतीत होगा।
4. **उत्तरदायित्व का विस्थापन (Displacement of responsibility):** इसका अर्थ है अधिकारियों के दबाव के परिणामस्वरूप अपने आचरण का मूल्यांकन करके स्वयं को जिम्मेदारी से मुक्त करना। नैतिक नियंत्रण स्पष्ट रूप से तब काम करता है जब व्यक्ति यह पहचानते हैं कि उनकी सन्निकट गतिविधियों व्यक्ति को चोट पहुँची है। उत्तरदायित्व का विस्थापन किसी के कारण होने वाले नुकसान में एजेंट की भूमिका को अस्पष्ट करने या कम

करने से संचालित होता है। और व्यक्ति यह महसूस करता है की उसके द्वारा किया गया आक्रामक/दूसरों को चोट पहुँचने का कार्य उसने अधिकारियों के कहने पर किया था।

5. **जिम्मेदारी का प्रसार (Diffusion of responsibility):** यह नैतिक विघटन भी उत्तरदायित्व के विस्थापन की ही तरह काम करता है। यह एक समूह के सदस्यों के बीच किसी के कार्य के लिए जिम्मेदारी बांटने को संदर्भित करता है (वॉन, 1996)। जिम्मेदारी के विस्थापन और प्रसार दोनों में, नैतिक जिम्मेदारी किसकी होगी यह बात अस्पष्ट होती है। नैतिक नियंत्रण भी उसी अवस्था में कमज़ोर होता है जब व्यक्तिगत जिम्मेदारी खत्म होकर सबमें बंट जाती है उदाहरण के लिए भीड़ द्वारा की गई तोड़ फोड़ में व्यक्ति यह सोचता है कि मेरे अकेले द्वारा ये कार्य नहीं किया गया बहुत सारे व्यक्ति इसके जिम्मेदार है। मन में ऐसी भावना आने पर अनैतिक आचरण बढ़ने की संभावना भी बढ़ जाती है।
6. **परिणामों का विरूपण (Distortion of consequences):** इसका तात्पर्य किसी के अनैतिक कृत्यों के प्रभाव की गंभीरता को कम करना है (बंडुरा, 1999)। परिणामों को विकृत करना, किसी के आचरण के प्रभावों को अनदेखा या कम करके नैतिक नियंत्रण कार्य को कमजोर करने की एक विधि है। उस बिंदु पर जब व्यक्ति व्यक्तिगत लाभ या सामाजिक दबाव के कारण दूसरों के लिए हानिकारक गतिविधियाँ करते हैं, तो वे अपने द्वारा होने वाले नुकसान का सामना नहीं करने या उसे सीमित करके देखने का प्रयास करते हैं। हालाँकि, जब व्यक्ति अपने आचरण के हानिकारक प्रभावों को कम करके, गलत रूप देकर देखता है या अनदेखा करता है या संदेह करता है, तब तक किये गए अनैतिक आचरण के लिए आत्म-निंदा का कोई कारण नहीं है।
7. **दोषारोपण (Attribution of Blame):** नैतिक अलगाव के इस प्रकार मे व्यक्ति अपने अनैतिक व्यवहार/दूसरों की हानि को उकसाने का परिणाम मानता है। और स्वयं को दोषमुक्त करने की आवश्यकता को पूरा करता है। परिणामस्वरूप, दंडात्मक प्रत्यक्ष को घिनौने उकसावों के प्रति एक वैध संरक्षित प्रतिक्रिया के रूप में देखा जाता है।
8. **अमानवीयकरण (Dehumanization):** *वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष या समूह को मानवता या मानवीय अधिकारों से वंचित मानता है। उनके मानवीय विशेषताओं कि अपेक्षा करते हुए उनकी पीड़ा चिंता या उनके अपमान को वैध मानता है।* उदाहरण के लिए, नाजियों द्वारा यहूदियों कि तुलना चूहों से करना। अतः मानवीय विशेषताओं का खंडन करके व्यक्ति को नैतिक घृणा का पात्र घोषित करना।

समस्या:

किशोरों में आक्रामकता के संबंध में नैतिक विघटन का अध्ययन करना।

उदेश्य:

किशोरों में नैतिक अलगाव और आक्रामकता के बीच संबंधों का अध्ययन करना।

परिकल्पना:

नैतिक अलगाव और आक्रामकता के बीच एक सकारात्मक संबंध होगा।

कार्यप्रणाली

प्रतिभागी: यह अध्ययन 13-19 वर्ष के आयु वर्ग के बीच दोनों लिंगों के 100 स्कूली छात्रों के नमूने पर आयोजित किया गया था। वर्तमान अध्ययन के लिए डेटा हरियाणा के सीबीएसई-संबद्ध, निजी स्कूलों से एकत्र किया गया था।

पैमाने:

1. **नैतिक विघटन के तंत्र (बंडुरा, बारबरानेली और कैप्रारा, 1996):**

नैतिक विघटन का मूल्यांकन 1996 में बंडुरा, बारबरानेली और कैप्रारा द्वारा विकसित नैतिक विघटन के तंत्र के पैमाने का उपयोग करके किया गया था। यह एक स्व-रिपोर्ट प्रश्नावली है और इसमें 32 आइटम शामिल हैं। निम्नलिखित आइटम नैतिक विघटन के विभिन्न तंत्रों के अनुरूप हैं। नैतिक औचित्य: 1, 9, 17, 25; व्यंजनात्मक भाषा: 2, 10, 18, 26; लाभप्रद तुलना: 3, 11, 19, 27; जिम्मेदारी का विस्थापन: 5, 13, 21, 29; जिम्मेदारी का प्रसार: 4, 12, 20, 28; विकृत परिणाम: 6, 14, 22, 30; दोषारोपण: 8, 16, 24, 32; अमानवीयकरण: 7, 15, 23, 31 । प्रत्येक आइटम के लिए, प्रतिभागियों को 3-बिंदु लिकर्ट-प्रकार के पैमाने पर इस तरह के आचरण के लिए नैतिक दोषमुक्ति की स्वीकृति की डिग्री पर सहमत होने के लिए कहा जाता है – 1. सहमत 2. न तो सहमत और न ही असहमत 3. असहमत। नैतिक विघटन के उप कारकों के समग्र माप के कारण, इस माप के लिए अल्फा विश्वसनीयता गुणांक .82 है।

2. **आक्रामकता प्रश्नावली (बस्स और पैरी, 1992):**

आक्रामकता प्रश्नावली (1992) बस्स और पैरी द्वारा विकसित की गई है। यह आक्रामकता के समग्र लक्षण का आकलन करने के लिए एक स्व-रिपोर्ट प्रश्नावली है। इसमें 29 आइटम शामिल हैं। इस पैमाने के चार उप-स्तर हैं: "शारीरिक आक्रामकता" (9 आइटम), "मौखिक आक्रामकता" (5 आइटम), "क्रोध" (7 आइटम) और "शत्रुता" (8)। स्कोरिंग 5-पॉइंट लिकर्ट स्केल पर की जाती है, यानी, (1 = "मेरे लिए बेहद अस्वाभाविक से 5 = मेरे लिए बेहद स्वाभाविक")। आइटम नंबर नौ और सोलह रिवर्स-स्कोर वाले आइटम हैं। पैमाने के लिए आंतरिक स्थिरता गुणांक इस प्रकार हैं: "शारीरिक आक्रामकता, $\alpha = .85$; मौखिक आक्रामकता, $\alpha = 0.72$; क्रोध, $\alpha = 0.83$ और शत्रुता, $\alpha = 0.77$, आंतरिक स्थिरता $\alpha = 0.89$ के साथ)। उप-स्तरों के लिए नौ सप्ताह का परीक्षण पुनः परीक्षण विश्वसनीयता और कुल स्कोर $\alpha = 0.72$ से $\alpha = 0.80$ (बुस और पेरी, 1992) तक है।

प्रक्रिया:

डेटा संग्रह के लिए निजी स्कूलों से 7वीं से 12वीं कक्षा तक के सभी छात्रों को उपलब्धता के आधार पर चुना गया था। शोध कार्य के लिए विद्यालय के प्रधानाचार्य से अनुमति ली गई। छात्रों को सहज महसूस कराते हुए उनके साथ तालमेल स्थापित किया गया, फिर छात्रों को प्रश्नावली सौंपी गई। प्रश्नावलियों के पूरा होने के बाद, उनसे वापस ले लिये गये, और प्रतिभागियों को उनकी बहुमूल्य समय देने के लिए धन्यवाद दिया गया। प्रश्नावली का स्कोर उनके संबंधित मैनुअल में दिए गए निर्देशों के अनुसार किया गया था। फिर डेटा को सारणीबद्ध किया गया और अध्ययन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पियर्सन प्रोडक्ट मोमेंट सहसंबंध का उपयोग करके इसका विश्लेषण किया गया।

परिणाम:

तालिका: नैतिक अलगाव और आक्रामकता के तंत्र के बीच अंतर-सहसंबंध मैट्रिक्स (संख्या = 100)

चर	शारीरिक आक्रामकता	मौखिक आक्रामकता	क्रोध	शत्रुता	आक्रामकता (कुल)
नैतिक औचित्य	**.441****	**.423****	**.359****	**.330****	**.489****
व्यंजनात्मक भाषा	**.329****	**.420****	**.410****	**.242****	**.442****
लाभप्रद तुलना	**.340****	**.241****	**.342****	**.238****	**.371****
जिम्मेदारी का विस्थापन	**.376****	**.389****	**.395****	**.315****	**.440****
जिम्मेदारी का प्रसार	**.360****	**.361****	**.391****	**.361****	**.444****
विकृत परिणाम	**.353****	**.328****	**.376****	**.328****	**.418****
दोषारोपण	**.463****	**.449****	**.425****	**.374****	**.510****
अमानवीयकरण	**.415****	**.349****	**.471****	**.340****	**.485****
नैतिकता तंत्र अलगाव (कुल)	**.610****	**.540****	**.611****	**.482****	**.685****

Significant at level 0.01**

तालिका 1. नैतिक अलगाव और आक्रामकता के तंत्र और इसके कारकों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाया गया है कि नैतिक औचित्य का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.441$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.423$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.359$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.330$, $p < 0.01$)। नैतिक औचित्य का भी आक्रामकता के कुल स्कोर (आर=0.489; $p<0.01$) के साथ एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। नैतिक औचित्य व्यवहार के संज्ञानात्मक पुनर्निर्माण पर काम करता है। यह इंगित करता है कि हानिकारक आचरण को सामाजिक रूप से सराहनीय या नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में चित्रित करके व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से संतोषजनक और स्वीकार्य बनाया जाता है। इसे क्रूर कृत्यों की नैतिकता को संज्ञानात्मक रूप से पुनर्वर्गीकृत करके विकसित किया जाता है ताकि इसे आत्म-निन्दा या नैतिक औचित्य से मुक्त किया जा सके। यह अधिक अच्छे की सेवा के रूप में संज्ञानात्मक रूप से अनैतिक कार्यों को अस्वीकार कर रहा है।

नैतिक अलगाव का दूसरा तंत्र व्यंजनापूर्ण भाषा है। तालिका 1 व्यंजना भाषा और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि व्यंजनापूर्ण भाषा का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.329$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.420$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.410$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.242$, $p < 0.01$)। व्यंजनापूर्ण भाषा का भी आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.442$; $p<0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है।

अतः यह इंगित करता है कि व्यंजनापूर्ण भाषा का जितना अधिक उपयोग होगा किशोरों में आक्रामकता उतनी ही अधिक होगी।

नैतिक विघटन का तीसरा तंत्र लाभप्रद तुलना है। तालिका 1 लाभप्रद तुलना और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि लाभप्रद तुलना का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.340$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.241$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.342$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.238$, $p < 0.01$)। लाभप्रद तुलना का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.371$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। इसका अर्थ हुआ कि इसका तात्पर्य यह है कि कुछ व्यक्ति हानिकारक कृत्य को नैतिक रूप से स्वीकार्य बनाते हैं; और मानवीय कृत्य की धारणा इस बात से प्रभावित होती है कि उसकी तुलना किससे की जाती है। किशोरों को लगता है कि उनका व्यवहार नैतिक रूप से अधिक स्वीकार्य है। इस प्रकार, लाभप्रद तुलना में आगे रहने वाले किशोर अधिक आक्रामकता प्रदर्शित करते हैं।

नैतिक विघटन का चौथा तंत्र जिम्मेदारी का विस्थापन है। तालिका 1 जिम्मेदारी का विस्थापन और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि जिम्मेदारी का विस्थापन का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.376$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.389$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.395$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.315$, $p < 0.01$)। जिम्मेदारी का विस्थापन का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.440$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। यह दर्शाता है कि जिम्मेदारी का विस्थापन वास्तविकता को विकृत कर देता है। इन स्थितियों में लोग अपने कार्यों को अपने कार्यों के बजाय सत्ता या अधिकार के आदेश के रूप में देखते हैं। किशोर सोचते हैं कि वे अपने व्यवहार के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और यह उन्हें और अधिक आक्रामक बना देता है। वर्तमान अध्ययन से संकेत मिलता है कि जब एक किशोर "जिम्मेदारी के विस्थापन" के तंत्र का उपयोग करता है तो उसका परिणाम उच्च आक्रामकता होता है।

नैतिक विघटन का पाँचवा तंत्र जिम्मेदारी का प्रसार है। तालिका 1 जिम्मेदारी का प्रसार और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि जिम्मेदारी का प्रसार का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.360$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.361$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.391$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.361$, $p < 0.01$)। जिम्मेदारी का प्रसार का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.444$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। "जिम्मेदारी का प्रसार" लोगों के समूह के साथ आता है। जैसे-जैसे समूह की संख्या बढ़ती है, उत्तरदायित्व का प्रसार भी बढ़ता है। उत्तरदायित्व का प्रसार किशोरों में आक्रामकता के साथ महत्वपूर्ण रूप से जुड़ा हुआ है क्योंकि बड़े समूह के बच्चे अपने कार्यों के लिए स्वयं को जिम्मेदार महसूस नहीं करते हैं और वे अधिक आक्रामक व्यवहार करते हैं।

नैतिक विघटन का छटा तंत्र विकृत परिणाम है। तालिका 1 विकृत परिणाम और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि विकृत परिणाम का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.353$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.328$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.376$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.328$, $p < 0.01$)। विकृत परिणाम का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.418$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। इससे पता चलता है कि किशोर अपने द्वारा किए गए हानिकारक कार्यों के परिणामों को विकृत या गलत तरीके से प्रस्तुत करते हैं। वह केवल न्यूनतम प्रभाव या परिणाम देखते हैं, न कि उन्होंने जो किया है उसकी पूरी तस्वीर देखते हैं। उन्हें लगता है कि उन्होंने कोई बड़ा हानिकारक कार्य नहीं किया है और यह उन्हें और अधिक आक्रामक व्यवहार की ओर ले जाता है।

नैतिक विघटन का सातवाँ तंत्र दोषारोपण है। तालिका 1 दोषारोपण और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि दोषारोपण का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.463$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.449$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.425$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.374$, $p < 0.01$)। दोषारोपण का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.510$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। इसका तात्पर्य यह है कि किशोर अपने और दूसरे व्यक्ति के कार्यों के लिए कारण खोजने का प्रयास करते हैं। बच्चे अपने कार्यों के लिए दूसरे व्यक्तियों पर दोष मढ़ते हैं और इसे तार्किक तथा नैतिक रूप से संतोषजनक मानते हैं, इसलिए यह उन्हें आक्रामक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है। अतः परिणाम दर्शाता हैं कि जो किशोर "दोषारोपण" के तंत्र में उच्च हैं, वे अधिक आक्रामकता प्रदर्शित करते हैं।

नैतिक विघटन का आठवाँ तंत्र अमानवीयकरण है। तालिका 1 अमानवीयकरण और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि अमानवीयकरण का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.415$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.349$, $p < 0.01$), गुस्सा ($r = 0.471$, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.340$, $p < 0.01$)। अमानवीयकरण का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.485$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग अधिक अमानवीयकरण दिखाते हैं, उन्हें लगता है कि पीड़ित इंसान नहीं हैं या उनमें मानवीय गुण कम हैं। पीड़ित को अब आशाओं या भावनाओं वाले व्यक्ति के रूप में नहीं देखा जाता है। यह लोगों को नैतिक चिंता के बिना और कम सहानुभूति के साथ दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करने को उचित ठहराता है, और इसलिए दूसरों के लिए हिंसक या आक्रामक व्यवहार को मान्य करता है। इससे किशोर अधिक आक्रामक हो जाते हैं। वर्तमान परिणाम बताते हैं कि अमानवीयकरण का आक्रामकता के साथ महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध है।

तालिका 1 में नैतिक विघटन (कुल) और आक्रामकता के चार तंत्रों के बीच सहसंबंध गुणांक को इंगित करती है। यह दर्शाती है कि नैतिक विघटन (कुल) का आक्रामकता के कारकों के साथ सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है, यानी, शारीरिक आक्रामकता ($r = 0.610$, $p < 0.01$), मौखिक आक्रामकता ($r = 0.540$, $p < 0.01$), गुस्सा (r

= 0.611, $p < 0.01$) और शत्रुता ($r = 0.482$, $p < 0.01$)। नैतिक विघटन (कुल) का आक्रामकता के कुल स्कोर ($r = 0.685$; $p < 0.01$) के साथ भी एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक संबंध है। नतीजे बताते हैं नैतिक विघटन के तंत्र आक्रामकता के साथ सकारात्मक रूप से जुड़े हुए हैं। जैसे-जैसे नैतिक अलगाव का स्तर बढ़ता है, किशोरों में आक्रामकता भी बढ़ती जाती है।

अतः परिणाम को देखते हुए कहा जा सकता है कि किशोरों में नैतिक मूल्यों के विकास के साथ ही उनकी आक्रामकता को कम किया जा सकता है। समाज में बढ़ते अपराध के ग्राफ मे किशोरों कि आक्रामकता मुख्य कारण है। बच्चों में नैतिकता का विकास परिवार से आरंभ हो तथा स्कूली स्तर पर भी नैतिक शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाए। किशोरावस्था बहुत सारे शारीरिक बदलाव का समय भी होता है। अतः उनके हो रहे शारीरिक परिवर्तनों के मानसिक उद्वलनों को समझते हुए नैतिक शिक्षा का उनके जीवन मे समावेश आवश्यक है। ताकि सुंदर समाज, सुन्दर देश कि कल्पना को साकार किया जा सके।

संदर्भ सूची

1. Buss, A. H. (1961). *The psychology of aggression*. Wiley.
2. Buss, A. H., & Perry, M. (1992). The Aggression Questionnaire. *Journal of Personality and Social Psychology, 63* (3), 452–459. https://doi.org/10.1037/ 0022-3514.63.3.452
3. Bandura, A. (1973). *Aggression: A social learning analysis*. Holt.
4. Bandura, A. (1977). *Social learning theory*. Prentice Hall.
5. Bandura, A. (1986). *Social foundations of thought and action: A social cognitive theory.* Prentice-Hall.
6. Bandura, A. (1990). Mechanisms of moral disengagement. In W. Reich (Ed.), *Origins of terrorism: Psychologies, ideologies, theologies, and states of mind,* (pp. 161-191). Cambridge University Press.
7. Bandura, A. (1991). Social cognitive theory of moral thought and action. In W. M. Kurtines & J. L. Gewirtz (Eds.), *Handbook of moral behavior and development: Theory, research, and applications (1),* 71-129. Erlbaum.
8. Bandura, A. (1992). Social cognitive theory of social referencing. In S. Feinman (Ed.), *Social referencing and the social construction of reality in infancy* (pp. 175–208). Plenum Press. https://doi.org/10.1007/978-1-4899-2462-9_8.
9. Bandura, A. (1999). Moral disengagement in the perpetration of inhumanities. *Personality and Social Psychology Review, 3* (3), 193-209.

10. Bandura, A. (2002). Selective moral disengagement in the exercise of moral agency. *Journal of Moral Education, 31*(2), 101–119. https://doi.org/10.1080/0305724022014322
11. Bandura, A., Barbaranelli, C., Caprara, G. V., & Pastorelli, C. (1996). Mechanisms of moral disengagement in the exercise of moral agency. *Journal of Personality and Social Psychology, 71* (2), 364-374.
12. Bollinger, D. (1982). *Language: The loaded weapon*. Longman.
13. Diener, E., Dineen, J., Endresen, K., Beaman, A. L., & Fraser, S. C. (1975). Effects of altered responsibility, cognitive set, and modeling on physical aggression and deindividuation. *Journal of Personality and Social Psychology, 31*, 328-337.
14. Gabor, T. (1994). *Everybody does it: Crime by the public*. University of Toronto Press.

47

सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पाउडर का निर्माण एवं मूल्य संवर्धन द्वारा कम लागत वाले परम्परागत खाद्य पदार्थों का विकास एवं मानकीकरण

डॉ. आंचल सिंह
सहायक आचार्य (खाद्य और पोषण), गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा बिहार

सहजन (ड्रमस्ट्रिक) एक तेजी से बढ़ने वाला सुखा प्रतिरोधी पेड़ है जिसका वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलीफेरा लैम है जो मोरिंगेसी परिवार से संबंधित है। इसके पत्तियों में अधिक मात्रा में पोषण मूल्य पाऐ जाते है | जैसे :प्रोटीन ,विटामिन, आयरन, कैल्शियम, खनिज भी पाये जाते है | इसे 'ड्रमस्टिक एवं हॉसरीडिस के नाम से भी जाना जाता है | इसे कम उपयोग किये जाने वाले पौधा में से एक माना जाता है| परंपरागत रूप से सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियाँ, फल, फूल और अपरिपक्व फलियाँ कों बिहार में खाई जाती हैं। सहजन में उच्च पोषण क्षमता होती है क्योंकि इसकी पत्तियों में पोषक तत्वों और मुख्य रूप से फ्लेवोनोइड्स, फेनोलिक घटकों और फेनोलिक एसिड की उच्च सांद्रता होती है, जो प्राकृतिक एंटीऑक्सिडेंट का एक अच्छा स्रोत है | मोरिंगा ओलीफ़ेरा कुपोषण से निपटने के लिए हमारे दैनिक आहार में उपयोग करने के लिए एक बेहतर विकल्प भी माना जाता हैं । अध्ययन में सहजन के पत्तों से मूल्य वर्धित उत्पाद विकास करने का एक प्रयास हैं | प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उदेश्य निर्जलिकरण प्रक्रिया द्वारा सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तों के पाउडर निर्माण और ड्रमस्टिक के पत्तों के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पाद तैयार करना एवं विकसित उत्पादों के संवेदी मूल्यांकन का विश्लेषण करना हैं | **अलकाली एट अल. (2015)** ने मोरिंगा ओलीफेरा की पत्तियों की पोषण गुणवत्ता पर सुखाने के तापमान के प्रभाव पर अध्ययन किया है। मोरिंगा की पत्तियों के पाउडर की गुणवत्ता में तापमान के प्रभाव की जांच करने के लिए शोध किया गया था। परिणाम बताते हैं कि तापमान पत्ती के पाउडर की पोषक संरचना को प्रभावित करता है। जैसे-जैसे सुखाने का तापमान बढ़ता गया, कच्चे प्रोटीन में उल्लेखनीय कमी आई ($p \leq 0.05$)। 40 और 50^{o}C पर सुखाई गई मोरिंगा की पत्तियां 2 सप्ताह तक छाया में सुखाई गई पत्तियों से बेहतर हैं। इसके अलावा, खनिज सामग्री में आम तौर पर तापमान के साथ उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। **मिश्रा एट अल. (2012)** ने मानव उपभोग के लिए मोरिंगा ओलीफेरा पत्तियों का उपयोग किया और पाया कि पत्तियों के पाउडर को फिर शिशु आहार, सूप, सब्जियों में मिलाया जा सकता है, जिससे आपत्तिजनक स्वाद और फ्लेवर के बिना पोषण मिलता है। अध्ययन खाद्य क्षेत्र द्वारा सहजन की पत्तियों के परिचय और उपयोग की ओर अधिक रुझान की संभावना की सिफारिश करता है| **बोटेन एट अल. (2018)** ने शिशुओं और उनके देखभाल करने वालों के बीच मोरिंगा ओलीफेरा पत्ती पाउडर को शामिल करने वाले पूरक भोजन की स्वीकार्यता पर अध्ययन किया और पाया कि पूरक खाद्य पदार्थ जिनमें मोरिंगा पत्ती पाउडर को अनाज के एक भाग के रूप में शामिल किया जाता है - फलियों के पूरक खाद्य मिश्रण या जब सामान्य शिशु के भोजन में खाद्य पूरक के रूप में जोड़ा जाता है, तो वे अच्छी तरह से स्वीकार किए जाते हैं।

शोध विधि (Research Methodology)

सहजन के पत्तियो के पाउडर का निर्माण (Formulation of Drumstick Powder)

मोरिंगा के ताजे पत्तों को सामान्य तापमान पर एक सप्ताह हेतु छाया में सुखाया गया और फिर निर्जलित पत्तियो को पीसकर पाउडर बनाया गया | पाउडर के पैकिंग के लिए वायुरोधी ब्लॉक पैकेज का उपयोग लिया गया | मोरिंगा ओलीफेरा के ताजी पत्तियो कों तोड़ कर अलग किया गया | जैसे तना, सुखी हुई पत्तियो, मुरझाई हुई पत्तियो से ताजी पत्तियो का पाउडर बनाने हेतु शोधकार्य में ताजे हरी पत्तियो का चयन किया गया | पत्तियो कों चयन करके छटाई करके धुलकण और गंदगी हटाने के लिए साफ ठंडे पानी से धुलकर 80∘C पर दो मिनट के लिए ब्लांचिंग किया गया है | ब्लांचिंग करने के पश्चात् पत्तियो कों में एक सप्ताह के लिए छाया में सुखाया गया | उसके पश्चात् उत्पादों का विकास और संवेदी मुल्याकंन किया गया | जिसके लिए जय प्रकाश महिला कॉलेज छपरा के गृह विज्ञान विभाग के प्रयोगशाला में पैनलों के द्वारा संवेदी मूल्यांकन किया गया |

मूल्य-वर्धित उत्पादों का विकास (Development of value-added products)

अनाज, दालों और सब्जियों की विभिन्न पारंपरिक तैयारियाँ जैसे चपाती, भटूरा, छोले (काबुली चना), मेदु वड़ा, चिल्ला, इडली (सूजी), आलू भुर्जी, गोभी की सब्जी और कच्चे केले की सब्जी को प्रयोगशाला में मानकीकृत किया गया। इन्हें सहजन (मोरिंगा ओलिफेरा) के पत्तों के पूरक के साथ मानकीकृत व्यंजनों का उपयोग करके 5, 10 और 15 प्रतिशत के स्तर पर तैयार किया गया था। जबकि आलू भुर्जी, गोभी की सब्जी और कच्चे केले की सब्जी को 3, 5 और 7 प्रतिशत के स्तर पर पूरक किया गया।

ऑर्गेनोलेप्टिक मूल्यांकन (Organoleptic evaluation)

विकसित उत्पादों का मूल्यांकन गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश महिला कॉलेज, छपरा, बिहार के 10 न्यायाधीशों के प्रशिक्षित पैनल द्वारा किया गया। न्यायाधीशों को प्रत्येक तैयारी के साथ एक नियंत्रण और चार परीक्षण नमूने दिए गए। नियंत्रण नमूना सामान्य या सामान्य व्यंजनों में उपयोग की जाने वाली सामग्री से तैयार किया गया था और परीक्षण नमूने निर्जलित पत्तियों को पूरक करके तैयार किए गए थे। किसी भी पूर्वाग्रह से बचने के लिए नमूनों को कोडित किया गया था। प्रत्येक उत्पाद का तीन बार परीक्षण किया गया और औसत स्कोर की गणना की गई। न्यायाधीशों को 9 पॉइंट हेडोनिक रेटिंग स्केल (रंगना 1986) के स्कोर कार्ड का उपयोग करके रंग, उपस्थिति, स्वाद, बनावट, स्वाद और समग्र स्वीकार्यता के लिए नमूनों को स्कोर करने के लिए कहा गया था। सभी स्वीकृत मूल्य वर्धित उत्पादों को टी 0, टी 1, टी 2 और टी 3 के रूप में नामित किया गया था, जहां

1: ट्रीटमेंट T_0 (नियंत्रण-T0): सहजन (मोरिंगा ओलीफेरा) के पत्तों के पाउडर के पूरक के बिना मानकीकृत विधि से पकाए गए उत्पाद।

2: ट्रीटमेंट 1 (T_1): I के समान + सभी पूरक उत्पाद 5 प्रतिशत स्तर पर

3: ट्रीटमेंट 2 (T_2): I के समान + Aसभी पूरक उत्पाद 10 प्रतिशत स्तर पर

4: ट्रीटमेंट 3 (T_3): I के समान + सभी पूरक उत्पाद 15 प्रतिशत स्तर पर

सभी सब्जी आधारित व्यंजनों (आलू भुर्जी, गोभी भुर्जी और केले की भुर्जी) को 3, 5 और 7 प्रतिशत के स्तर पर पूरक बनाया गया था।

निर्जलित सहजन की पत्तियों के पाउडर का उपयोग करके मूल्यवर्धित पारंपरिक व्यंजनों की कीमत प्रति 100 ग्राम

क्रम संख्या	मूल्यवर्धित पारंपरिक व्यंजन का नाम	प्रति 100 ग्राम मेंसर्विंग की संख्या	लागत प्रति 100 ग्राम में
1	चपाती (गेहूं का आटा)	4	6
2	भटूरा (परिष्कृत गेहूं का आटा)	4	7
3	इडली (सूजी)	3	5
4	मेदू वड़ा (उड़द की दाल)	3	6
5	चिल्ला (चने का बेसन)	3	6
6	छोला (काबुली चना)	3	7
7	गोभी की भुजिया	3	5
8	आलू की भुजिया	3	5
9	केला की भुजिया	3	5

परिणाम एवं निष्कर्स (Result and Discussion)

विकसित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन (Sensory Evaluation of developed products)

Table 1: पारंपरिक व्यंजन चपाती में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

चपाती का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	7.0 ±0.9	6.9 ±0.8	7.2 ±0.76	8.0 ±0.76	7.9±0.18
T_1 5%	8.2 ±0.6	8.5 ± 0.9	8.6 ±0.5	8.6 ±0.3	8.2±0.2
T_2 10%	7.1 ±0.5	7.0 ±0.7	7.5 ±0.9	7.5 ±0.9	7.6 ±0.2
T_3 15%	6.3 ±0.1	6.1 ±0.6	6.2 ±0.7	6.2 ±0.7	6.6±0.6

पैनल द्वारा 9 बिंदु हेडोनिक स्केल पर चपाती के औसत स्वीकार्यता स्कोर दिए गया है | नियंत्रण नमूने के संदर्भ में सभी संवेदी मूल्याकंन में यानी रंग, स्वाद, बनावट, रूप एवं समग्र स्वीकार्यता के औसत स्कोर 6.1-0.9 के बीच है | इस परिणामों ने संकेत दिया गया है कि चपाती पैनल द्वारा अत्यधिक स्वीकार्य थी | जब इसकी तुलना

नियंत्रण से की गई तो मोरिंगा पाउडर कों अलग-अलग टी$_1$, टी$_2$ और टी$_3$ स्तर पर आटे युक्त उपयोग की गई | चूँकि बिहार में गेंहू से बने रोटियां मुख्य रूप से खाई जाती है, और इसलिए इन खाध से बने उत्पादों की अपेक्षाकृत अधिक स्वीकार्यता 5% सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग के साथ चपाती के स्वाद से संबंधित डेटा ने नियंत्रित नमूने पर सबसे अधिक मान 8.2±0.2 स्कोर किया | जब तीनों उपचारों में सभी संवेदी विशेषताओं के औसत अंक की तुलना की 5% सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर ने सबसे अधिक अंक प्राप्त कि (रंग 8.2 ±0.6, स्वाद 8.5 ± 0.9, बनवाट 8.6 ±0.5) | इसलिए 5% चपाती कों सबसे अत्यधिक पसंद किया गया |

Table 2: पारंपरिक व्यंजन भटूरा (परिष्कृत गेहूं का आटा) में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

भटूरा (परिष्कृत गेहूं का आटा) का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	7.2 ±0.49	7.3 ±0.82	7.5 ±073	7.9 ±0.18	7.2 ±0.12
T_1 5%	8.06±0.35	9.5 ±0.72	8.2 ±0.60	8.6 ±0.09	8.9 ±0.09
T_2 10%	7.2 ±0.6	7.3 ±0.9	7.7 ±0.56	7.1 ±0.06	6.4 ±0.06
T_3 15%	6.2 ±0.2	5.3 ±0.7	6.8 ±0.9	6.3 ±0.02	5.8 ±0.02

संवेदी पैनल द्वारा 9 बिंदु हेडोनिक स्केल पर भटूरा कों औसत स्वीकार्यता स्कोर दिए गया है | जिसमे टी$_1$ कों संवेदी पैनल द्वारा अत्यधिक स्वीकार्य किये गये थे | नियंत्रण की तुलना में स्वाद में टी$_1$ कों उच्चतम स्कोर मिला था | सभी संवेदी विशेषताओं के लिए उच्चतम स्कोर देखा गए और उच्चतम समग्र स्वीकार्यता स्कोर टी$_1$ के लिए दर्ज किया गया | जबकि नियंत्रण के संबंध में टी$_2$ और टी$_3$ कों सबसे कम स्कोर दिया गया थे |

Table 3: पारंपरिक व्यंजन इडली (सूजी) में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

इडली (सूजी) का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.3 ±0.84	8.6 ±0.86	7.4 ±0.80	8.5 ±070	8.6 ±0.6
T_1 5%	9.1 ±0.46	8.2 ±0.89	8.6 ±0.72	8.8 ±0.17	9.6 ±0.02
T_2 10%	8.0 ±0.5	8.1 ±0.07	7.0 ±0.09	7.5 ±0.10	6.9 ±0.03
T_3 15%	7.3 ±0.3	6.8 ±0.02	7.3 ±0.03	7.2 ±0.02	5.8 ±0.02

पैनल विशेषज्ञों द्वार नियंत्रण के तुलना में टी$_1$ कों बहुत पसंद किया गया है | उच्चतम मान टी$_1$ के लिए मापा गया है और सबसे कम (5.8 ±0.02) टी$_3$ लिए पाया गया है | इडली के 5% स्तर पर समग्र स्कोर (9.6

±0.02), 10% और 15% स्तर पर पूरकता स्तर की तुलना में उच्च पाया गया।स्वाद और बनावट में नियंत्रण और टी$_1$ उच्चतम अंक प्राप्त किये | उसके पश्चात् संवेदी मूल्यांकन पैनल द्वारा टी$_2$ और टी$_3$ औसत स्कोर से भिन्न थे | हांलकि अधिकतम स्कोर नियंत्रण नोट किये गये थे | जबकि न्युनतम टी$_3$ के लिए पाया गया है |

Table 4: पारंपरिक व्यंजन मेदू वड़ा (उड़द की दाल) में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

मेदू वड़ा (उड़द की दाल) का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.2 ±0.86	8.6 ±0.90	8.4 ±0.86	7.5 ±0.9	8.6 ±0.9
T_1 5%	9.06±0.78	9.2±0.89	9.3±0.76	8.6±0.06	9.5±0.7
T_2 10%	7.6±0.09	7.3±0.08	7.9±0.68	7.9±0.03	7.8±0.6
T_3 15%	7.5±0.03	6.5±0.03	5.3±0.09	5.3±0.02	6.07±0.3

संवेदी मूल्यांकन के स्कोर से यह दर्शाता है कि मेदू वड़ा में मोरिंगा ओलीफेरा के पाउडर कों मिला कर तैयार किये गये | मेदु वड़ा में 5% निर्जलित सहजन की पत्तियों के पाउडर के पूरक के स्तर में समग्र स्कोर सबसे अधिक 9.5±0.7 पाया गया। सभी विकसित मेदू वड़ा की उपस्थिति पैनल के सदस्यों द्वारा अत्यधिक स्वीकार्य थी। नियंत्रण नमूने के संबंध में, समग्र स्वीकार्यता को छोड़कर सभी संवेदी विशेषताओं के लिए उच्चतम औसत स्कोर देखे गए और उच्चतम समग्र स्वीकार्यता स्कोर टी1 के लिए दर्ज किया गया। हालांकि, सभी संवेदी पैनल विशेषताओं के द्वारा टी 3 के लिए सबसे कम स्कोर ग्रेड किए गए और मान (6.07-0.3) तक थे।

Table 5: पारंपरिक व्यंजन चिल्ला (चने का बेसन) में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

चिल्ला (चने का बेसन) का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	7.05±0.80	7.02±0.82	7.6±0.89	6.3±0.09	7.9±0.09
T_1 5%	9.02±0.64	9.3±0.78	8.6±0.82	8.3±0.18	8.08±0.06
T_2 10%	7.08±0.36	7.9±0.06	7.06±0.16	7.0±0.06	7.09±0.05
T_3 15%	6.5±0.06	7.6±0.05	7.0±0.09	6.5±0.03	6.04±0.02

संवेदी पैनल द्वारा 9 बिंदु हेडोनिक स्केल पर चिल्ला कों औसत स्वीकार्यता स्कोर दिए गया है | तालिका 5 में 5%, 10% और 15% समावेश के साथ तैयार चिल्ला कों संवेदी मूल्यांकन पर डेटा प्रस्तुत किया गया है। इन परिणामों ने संकेत दिया कि चिल्ला (सी, टी1, टी2 और टी3) के संवेदी मूल्यांकन (रंग, , स्वाद, बनावट, उपस्थिति

और समग्र स्वीकार्यता) के सभी मापदंडों के स्कोर पैनल के सदस्यों द्वारा थोड़ा पसंद से लेकर बहुत पसंद तक के थे, जो दर्शाता है कि सभी उत्पाद स्वीकार्य पाए गए। हालांकि, T_1 के लिए उच्चतम स्कोर 8.08±0.06 प्राप्त हुए और टी 3 के लिए सबसे कम 6.04±0.02 देखा गया। चिल्ला के स्वाद और बनावट मापदंडों के लिए भी इसी तरह के परिणाम पाए गए और औसत स्कोर क्रमशः भिन्न- भिन्न थे। चिल्ला की स्वाद के संबंध में, टी1 के लिए उच्चतम स्कोर देखे गए, जबकि टी3 ने सबसे कम स्कोर प्राप्त किए। सभी परीक्षणों के लिए चिल्ला की समग्र स्वीकार्यता के लिए औसत स्कोर विभिन्न थे |

Table 6: पारंपरिक व्यंजन छोला (काबुली चना) में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

छोला (काबुली चना) का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.01±0.86	9.6±0.82	8.5±0.83	7.08±0.17	9.0±0.09
T_1 5%	9.02±0.72	8.0±0.63	7.05±0.75	6.09±0.13	9.8±0.07
T_2 10%	7.09±0.06	7.5±0.07	7.01±0.60	6.0±0.09	7.5±0.05
T_3 15%	6.5±0.002	6.05±0.06	6.09±0.09	6.1±0.02	7.65±0.02

नौ-बिंदु हेडोनिक रेटिंग स्केल का उपयोग करके जजों के विशेषज्ञ पैनल द्वारा छोला (काबुली चना) की स्वीकार्यता परीक्षण के औसत स्कोर तालिका 6 में प्रस्तुत किए गए हैं। निर्जलित सहजन की पत्तियों के पाउडर के पूरक के 5 प्रतिशत स्तर पर काबुली चना द्वारा उच्चतम स्कोर प्राप्त किए गए। संवेदी मूल्यांकन के सभी गुणों के लिए सभी संवेदी मापदंडों को अत्यधिक पसंद और बहुत अधिक के बीच स्कोर किया गया था। इस प्रकार, तालिका 6 से यह देखा गया कि निर्जलित सहजन की पत्तियों के पूरक के 5 प्रतिशत स्तर पर छोला (काबुली चना) हेडोनिक पैमाने पर सभी ऑर्गेनोलेप्टिक मापदंडों के संबंध में सबसे अच्छा था।

Table 7: पारंपरिक व्यंजन गोभी की भुजिया में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

गोभी की भुजिया का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.01±0.07	8.6 ±0.06	7.3 ±0.07	7.6 ±0.17	8.3 ±018
T_1 3%	8.03±0.06	9.3±0.78	8.6 ±0.72	8.3±0.18	8.9 ±0.09
T_2 5%	7.06±0.72	8.6 ±0.08	6.9±0.68	6.09±0.13	6.9 ±0.03
T_3 7%	6.04±002	7.1 ±0.07	7.0±0.09	5.3±0.02	5.8 ±0.02

परिणामों से पता चला कि बिना किसी पूरक के गोभी की भुजिया (नियंत्रण) के लिए रंग, रूप, स्वाद, बनावट और स्वाद के औसत अंक क्रमशः 8.01, 8.6, 7.3, 7.6 और 8.3 थे, जो निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर के 3 प्रतिशत स्तर पर पूरकता से कम पाया गया। स्वीकार्य स्तर के बाद बिना किसी पूरकता के गोभी की भुजिया (नियंत्रण) को दूसरा स्थान मिला। समावेशन के स्तर में वृद्धि के साथ स्वीकार्यता कम होती पाई गई। गोभी की भुजिया के समग्र स्वीकार्यता स्कोर के आधार पर यह पाया गया कि 3 प्रतिशत स्तर पर पूरकता ने सबसे अधिक स्कोर किया और निर्जलित पत्तों के पाउडर के 7 प्रतिशत पूरकता के स्तर पर सबसे कम स्वीकार्य स्कोर किया। परिणामों से पता चला कि नियंत्रण की तुलना में निर्जलित पत्तों के पाउडर के 3 प्रतिशत पूरक स्तर पर सभी ऑर्गेनोलेप्टिक पैरामीटर के लिए उच्चतम स्कोर प्राप्त हुए इस प्रकार, यह देखा गया कि निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर के साथ 3 प्रतिशत समावेशन स्तर पर गोभी की सब्जी को सुखात्मक पैमाने पर सभी ऑर्गनोलेप्टिक पैरामीटर के संबंध में सर्वोत्तम माना गया।

Table 8: पारंपरिक व्यंजन आलू की भुजिया में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

आलू की भुजिया का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.01±0.86	8.02±0.82	8.0±0.75	7.5 ±0.06	8.9±0.80
T_1 3%	9.02±0.02	9.3±0.70	8.6±0.72	8.0±0.00	9.0±0.30
T_2 5%	6.09±0.7	7.9±0.00	7.06±0.6	4.9±0.02	6.09±0.20
T_3 7%	5.5±0.03	6.6±0.05	7.0±0.05	3.3±0.03	5.04±0.00

स्कोर के समान रुझान आलू भुर्जी के लिए भी देखे गए। तालिका 8 में स्वाद और समग्र रूप से 3 प्रतिशत स्तर के निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर के साथ आलू भुर्जी द्वारा प्राप्त उच्चतम स्कोर को दर्शाया गया है। परिणामों से पता चला है कि नियंत्रण की तुलना में निर्जलित पत्तों के पाउडर के 3 प्रतिशत पूरक स्तर पर सभी ऑर्गेनोलेप्टिक पैरामीटर के लिए उच्चतम स्कोर प्राप्त हुए थे। इस प्रकार, यह देखा गया कि निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर के साथ 3 प्रतिशत स्तर के पूरक पर आलू भुर्जी को हेडोनिक पैमाने पर सभी ऑर्गेनोलेप्टिक पैरामीटर के संबंध में सर्वश्रेष्ठ माना गया। **नांबियार और परनामी (2007)** ने निर्जलित सहजन के पत्तों के साथ पोहा पूरकता विकसित की और 5 ग्राम/100 ग्राम स्तर स्वीकार्य पाया गया जबकि वर्तमान अध्ययन में स्वीकार्य स्तर 7.5 प्रतिशत था। **थिप्पेस्वामी एट अल. (2020)** ने देखा कि ताजा मोरिंगा ओलीफेरा के पत्तों में विभिन्न भंडारण स्थितियों की तुलना में फॉस्फोरबिक एसिड (43.26 मिलीग्राम प्रतिशत) की अच्छी मात्रा दिखाई दी। मोरिंगा ओलीफेरा के पत्तों में खनिजों की न्यूनतम मात्रा दिखाई दी। विटामिन और खनिजों की सराहनीय मात्रा के कारण अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आहार में मोरिंगा के पत्तों को शामिल करना।

Table 9: पारंपरिक व्यंजन केला की भुजिया में निर्जलित सहजन (ड्रमस्ट्रिक) के पत्तियो के पाउडर का उपयोग करके मूल्य वर्धित उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन के विभिन्न मांपदडों के औसत अंक |

केला की भुजिया का संवेदी गुण					
उत्पाद (Product)	**रंग (color)**	**स्वाद (Taste)**	**बनावट (Texture)**	**उपस्थिति (Appearance)**	**कुल मिलाकर (Over all)**
T_0	8.3 ±0.84	9.6±0.82	7.4 ±0.80	6.8 ±0.17	8.0±0.09
T_1 3%	9.1 ±0.46	8.0±0.63	7.6 ±0.72	7.3±0.18	9.08±0.00
T_2 5%	8.0 ±0.5	7.5±0.07	7.0 ±0.09	6.09±0.13	7.09±0.03
T_3 7%	7.3 ±0.3	5.05±0.06	6.3 ±0.03	5.3±2.02	6.04±0.02

केला की भुजिया के समग्र स्वीकार्यता स्कोर के आधार पर यह पाया गया कि 3 प्रतिशत स्तर पर पूरकता ने सबसे अधिक स्कोर किया और निर्जलित पत्तों के पाउडर के 7 प्रतिशत पूरकता के स्तर पर सबसे कम स्वीकार्य स्कोर किया। परिणामों से पता चला कि नियंत्रण की तुलना में निर्जलित पत्तों के पाउडर के 3 प्रतिशत पूरक स्तर पर सभी ऑर्गेनोलेप्टिक पैरामीटर के लिए उच्चतम स्कोर प्राप्त हुए इस प्रकार, यह देखा गया कि निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर के साथ 3 प्रतिशत समावेशन स्तर पर गोभी की सब्जी को सुखात्मक पैमाने पर सभी ऑर्गनोलेप्टिक पैरामीटर के संबंध में सर्वोत्तम माना गया। **येगाम्बल और स्वर्णलता** (2019) ने मोरिंगा के पत्तों में पोषक तत्वों के विश्लेषण और उत्पादों के विकास पर एक अध्ययन किया। अध्ययन से पता चला कि मोरिंगा के पत्तों में सभी मैक्रो और माइक्रोन्यूट्रिएंट्स होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि इस अद्भुत पत्तियों के पोषक तत्वों को विभिन्न उद्देश्यों पर लगाया जाए। मोरिंगा के पत्तों के पाउडर से विकसित उत्पाद पोषक तत्वों के अच्छे स्रोत हैं। इसलिए, अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न उत्पादों से मोरिंगा के पत्तों को शामिल करने से कुपोषण में कमी आएगी।

सारांश एवं उपसंहार (Summary and Conclusion)

सहजन (ड्रमस्ट्रिक) पत्ते का पाउडर का मिश्रण करके खाध का विकास और मानकीकरण करना है |सुखवादी पैमाने पर, 5 प्रतिशत स्तर पर पूरक मूल्य वर्धित चपाती, भटूरा, छोला (काबुली चना), मेदु वड़ा, चीला (चना के बेसन) के साथ निर्जलित सहजन के पत्तों के पाउडर की समग्र स्वीकार्यता के औसत स्कोर ने सभी संवेदी विशेषताओं के लिए महत्वपूर्ण रूप से उच्चतम स्कोर प्राप्त किए। 3 प्रतिशत स्तर पर पूरक मूल्य वर्धित आलू, गोभी और केला भुर्जी और गोभी के पत्तों के पाउडर के औसत स्कोर ने सभी संवेदी विशेषताओं के लिए महत्वपूर्ण रूप से उच्चतम स्कोर प्राप्त किए। सभी स्वीकृत मूल्य वर्धित व्यंजनों ने अपने संबंधित नियंत्रण व्यंजनों की तुलना में उच्च स्कोर प्राप्त किया। जिसमें सभी व्यंजन में अल्पउपयोगी मोरिंगा पाउडर का उपयोग कई तरीकों से किया जा सकता है | मौजूदा उत्पादों में शामिल करके और पोषक तत्वों से भरपूर मूल्यवर्धित उत्पादों का निर्माण करके टिकाऊ, सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य, लागत प्रभावी रणनीति की खोज करना आवश्यक है ,जिससे मोरिंगा ओलीफेरा के पत्ते का पाउडर की खपत बढ़ाई जा सके और इस तरह सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से निपटा जा सके । आधुनिक घरों में खाने के तरीके और जीवनशैली में आए बदलावों को ध्यानपुर्वक रखते हुए रेसिपी तैयार की गई है। रेसिपी

का चयन सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के साथ-साथ मोरिंगा ओलीफेरा के पत्ते की खपत बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया है। इसके अलावा, इसका उद्देश्य है कुपोषण के प्रबंधन के लिए मोरिंगा ओलीफेरा के पाउडर का उपयोग करके कम लागत वाले सुपर फूड का विकास एवं मानकीकरण एवं आहार में विविधता लाना भी है।चयनित रेसिपी भारतीय आबादी के लगभग सभी आयु समूहों द्वारा खाई जाती हैं और इन्हें कम सामग्री और कम समय में तैयार किया जा सकता है | हालांकि बच्चों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का जोखिम होता है, लेकिन वे ज्यादातर स्नैक्स और फास्ट फूड आइटम पसंद करते हैं। इसलिए मोरिंगा पाउडर के साथ जैसे : चपाती, छोला, भटूरा, मूंग दाल की चिला, मेदू वडा, आलू की भुजिया, सूजी का इडली, आलू की भुजिया और केला की भुजिया को समृद्ध करके, आहार में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा सुनिश्चित की जा सकती है और इडली को नाश्ते के रूप में भी परोसा जा सकता है और भोजन के रूप में भी खाया जा सकता है। इसलिए मोरिंगा पाउडर के साथ इन आम खाद्य पदार्थों में बिना अधिक प्रयास के आहार में सूक्ष्म पोषक तत्वों को शामिल करने का एक तरीका हो सकता है। यह खाध उत्पाद की आधारित रणनीति औषधीय अनुपूरण की तुलना में अधिक सुरक्षित है।

संदर्भ सूची

1. Alakali,J.S.,andKucha,C.T.I.A.(2015).Effectofdryingtemperatureonthenutritionalquality ofMoringaoleiferaleaves,African .J.FoodSci.,9(7):pp.395-399.
2. Boateng, L., Nyarko, R., Asante, M., and Asiedu, M.S. (2018). Acceptability of complementaryFoods that Incorporate Moringa oleifera Leaf Powder among Infants and Their Caregivers.FoodNutrBull.,39(1):137-148
3. Mishra,S.P.,Singh,P.,andSingh,S.(2012).ProcessingofMoringaleavesforHumanconsumption.Bull.Env.Pharmacol.Life.Sci.,2(1):28-3
4. Nambiar V S and Parnami S (2007) Standardization and organoleptic evaluation of drumstick (*moringa oleifera*) leaves incorporated into traditional Indian recipes. *J Trees for Life* **3**:2-6.
5. Rangana S (1986) Mannual of analysis of fruits and vegetable products. Tata Mcgraw-Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
6. Thippeswamy, T.G., Shreedhar, M.V., Murty, B.R.S., and Thijaswi, N. (2020). Ascorbic acid andmineral content in Moringa oleifera leaves: A study of ascorbic acid stability. J. Pharm. Sci.Res.,12(7):978-986
7. Yegambal, S., and Swarnalatha, A. (2019). Nutrient analysis and development of products indrumstickleaves.J.Pharmacogn. Phytochem.,8(1):1173-1176.

48

वैश्वीकरण का हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर प्रभाव: स्थानीय से वैश्विक परिप्रेक्ष्य तक की यात्रा

नूरुल होदा
शोधर्थी, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, भारत
डॉ. एमडी ओबैदुल ओला
स्वतंत्र शोधकर्ता
डॉ कल्याणी प्रधान
स्वतंत्र शोधकर्ता

हिंदी साहित्य, सदियों से फैली एक सांस्कृतिक धरोहर, समृद्ध और विविध परंपरा का सार है। इस साहित्यिक विरासत के पोषण और प्रसार में हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, जो रचनात्मक अभिव्यक्ति के बौद्धिक चर्चा के मंच के रूप में कार्य करती हैं। पिछले कुछ दशकों में साहित्यिक परिदृश्य में एक बड़ा बदलाव देखा गया है, जो वैश्वीकरण की व्यापक शक्तियों द्वारा प्रेरित है। यह परिवर्तन केवल हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की सामग्री को प्रभावित करने तक सीमित नहीं है; बल्कि इसने उनके प्रभाव क्षेत्र और वैश्विक पहुंच को मौलिक रूप से पुनर्परिभाषित किया है।

डिजिटल युग की शुरुआत और वैश्वीकरण की लहर ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की दुनिया में एक गहन परिवर्तन को प्रेरित किया है। यह परिवर्तन केवल सामग्री को प्रभावित करने तक सीमित नहीं है; बल्कि इसने उनके प्रभाव क्षेत्र और वैश्विक पहुंच को मौलिक रूप से पुनर्परिभाषित किया है। अब ये पत्रिकाएं क्षेत्रीय पाठक वर्ग तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये विचारों, संस्कृतियों और दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान को सुगम बनाने वाले गतिशील वैश्विक मंच बन गई हैं।

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का इतिहास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू होता है, जब भारतीय समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक जागृति का दौर चल रहा था। इस दौरान पत्रिकाएं जैसे 'सरस्वती', 'हंस', और 'माधुरी' ने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। इन पत्रिकाओं ने न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित किया, बल्कि समाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना को भी बढ़ावा दिया। प्रेमचंद, और जयशंकर प्रसाद जैसे महान साहित्यकारों ने इन पत्रिकाओं के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त किया, जिससे हिंदी साहित्य को एक नई पहचान मिली।

आधुनिक युग में, डिजिटल प्रौद्योगिकी के उदय ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन और वितरण को पूरी तरह से बदल दिया है। अब पारंपरिक मुद्रित पत्रिकाओं के साथ-साथ ऑनलाइन पत्रिकाएं भी लोकप्रिय हो गई हैं। 'अभिव्यक्ति', 'अनुभूति', और 'कथादेश' जैसी ऑनलाइन पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य को वैश्विक पाठकों तक

पहुंचाया है। इन पत्रिकाओं ने न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित किया है, बल्कि साहित्यिक आलोचना, समीक्षा, और अनुवाद को भी प्रोत्साहित किया है। इससे हिंदी साहित्य का वैश्विक प्रभाव बढ़ा है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद को बढ़ावा मिला है।

वैश्वीकरण के प्रभाव ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को नई चुनौतियों और अवसरों से रूबरू कराया है। एक ओर, इन पत्रिकाओं को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है, तो दूसरी ओर, उन्हें नई तकनीकों और माध्यमों का उपयोग करके अपने पाठकों तक पहुंच बनाने का अवसर मिला है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने इन पत्रिकाओं को न केवल पाठकों तक पहुंचने में मदद की है, बल्कि उन्हें नए लेखकों और विचारों से जोड़ने का भी मौका दिया है। इससे हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रभाव क्षेत्र और भी व्यापक हो गया है।

इस लेख का उद्देश्य हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा शुरू की गई इस परिवर्तनकारी यात्रा का व्यापक अन्वेषण करना है। यह उनके विकास को साहित्यिक गतिविधियों के क्षेत्रीय आश्रय स्थल से विचारों, संस्कृतियों और दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान को सुगम बनाने वाले गतिशील वैश्विक मंच के रूप में चित्रित करता है। इस यात्रा में, हम समय के साथ-साथ पीछे मुड़कर देखते हैं और उन ऐतिहासिक संदर्भों का व्यापक परीक्षण करते हैं, जिन्होंने इन पत्रिकाओं के पाठ्यक्रम को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, हम यह भी जानेंगे कि कैसे आधुनिक तकनीक और वैश्वीकरण ने इन पत्रिकाओं को नए आयाम दिए हैं और उन्हें वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनाया है।

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि वे न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित कर रही हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श को भी प्रोत्साहित कर रही हैं। ये पत्रिकाएं नए लेखकों को मंच प्रदान करती हैं और साहित्यिक विविधता को बढ़ावा देती हैं। इस प्रकार, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं न केवल साहित्य के क्षेत्र में, बल्कि समाज और संस्कृति के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

ऐतिहासिक संदर्भ:

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का ऐतिहासिक संदर्भ एक मनोरम कथा है, जो भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत के ताने-बाने में गहराई से बुना हुआ है। "सरस्वती", "हंस" और "हरिश्चंद्र" जैसी पत्रिकाओं का महत्व अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये प्रतिष्ठित स्तंभ हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रम पर एक अमिट छाप छोड़ी है।

सरस्वती:

19वीं शताब्दी के अंत में स्थापित, यह पत्रिका हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए एक मिसाल कायम की। महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे दिग्गज लेखकों के कार्यों को प्रकाशित करके, इसने हिंदी भाषा के साहित्यिक पुनर्जागरण की नींव रखी। सरस्वती ने न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित किया, बल्कि भाषा के शुद्धिकरण और व्याकरण के मानकीकरण पर भी जोर दिया। इस पत्रिका ने हिंदी को एक सशक्त साहित्यिक माध्यम के रूप में स्थापित करने में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में सरस्वती ने नए लेखकों को प्रोत्साहित किया और हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी।

हंस :

यह पत्रिका मुंशी प्रेमचंद जैसे साहित्यिक दिग्गजों के लिए एक मंच बन गई। यह सामाजिक सुधार और महिला शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। हंस ने समाज में व्याप्त कुरीतियों और असमानताओं को उजागर करने का साहसिक कार्य किया। इस पत्रिका ने न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित किया, बल्कि समाज सुधार के लिए जागरूकता फैलाने का भी काम किया। प्रेमचंद की कहानियों और निबंधों ने इस पत्रिका के माध्यम से समाज के हाशिए पर खड़े लोगों की आवाज को मुखर किया।

हरिश्चंद्र

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में स्थापित, यह पत्रिका नैतिक मूल्यों और नैतिक साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए एक उत्प्रेरक बन गई। इसने उभरती प्रतिभाओं को पोषित किया और रामधारी सिंह दिनकर जैसे प्रसिद्ध लेखकों के लिए एक मंच प्रदान किया। हरिश्चंद्र ने साहित्य के माध्यम से समाज में नैतिकता और मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दिया। इस पत्रिका ने न केवल साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित किया, बल्कि समाज में नैतिक जागरूकता फैलाने का भी काम किया। रामधारी सिंह दिनकर की रचनाओं ने इस पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति की भावना को मजबूत किया।

इन पत्रिकाओं ने न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि समाज और संस्कृति को भी प्रभावित किया। इनके माध्यम से नए विचारों और दृष्टिकोणों का प्रसार हुआ, जिसने भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित किया। इन पत्रिकाओं ने साहित्य को समाज के साथ जोड़ने का काम किया और साहित्यिक रचनाओं को समाज के हर वर्ग तक पहुंचाया।

इसके अलावा, इन पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य को एक नई पहचान दी और इसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। इनके माध्यम से हिंदी साहित्य ने न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी अपनी पहचान बनाई। इन पत्रिकाओं ने साहित्यिक विविधता को बढ़ावा दिया और नए लेखकों को प्रोत्साहित किया, जिससे हिंदी साहित्य का भंडार और भी समृद्ध हुआ।

इस प्रकार, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का ऐतिहासिक संदर्भ न केवल साहित्य के विकास को दर्शाता है, बल्कि समाज और संस्कृति के विकास में इनकी भूमिका को भी उजागर करता है। ये पत्रिकाएं साहित्यिक विरासत की धरोहर हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया है।

बदलती गतिशीलता:

वैश्वीकरण ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की गतिशीलता में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है। इन परिवर्तनों को दर्शाने वाले कई महत्वपूर्ण पहलू हैं:

भाषा और सामग्री विविधता: पारंपरिक रूप से हिंदी साहित्य के क्षेत्र में निहित, इन पत्रिकाओं ने भाषाई और विषयगत विविधता को अपनाने में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। अंग्रेजी और अन्य भाषाओं ने अब इन पत्रिकाओं के पन्नों में अपना स्थान बना लिया है, जिससे उनके पाठक वर्ग को व्यापक वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह बदलाव न केवल भाषाई सीमाओं को तोड़ता है, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी बढ़ावा देता है। उदाहरण के तौर पर, अब हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं अंग्रेजी में अनुवादित रचनाएं, बहुभाषी कविताएं और वैश्विक साहित्यिक विमर्श को भी शामिल करती हैं। इससे न केवल हिंदी साहित्य का दायरा बढ़ा है, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद को भी मजबूती मिली है।

पहुंच और विस्तार: ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और डिजिटल प्रकाशन के आगमन ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए पहुंच के एक नए युग की शुरुआत की है। ये अब भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं हैं; इन्होंने भौतिक वितरण की सीमाओं को पार कर लिया है और वैश्विक दर्शकों के लिए आसानी से सुलभ हो गई हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स जैसे कि 'अभिव्यक्ति', 'अनुभूति' और 'कथादेश' ने हिंदी साहित्य को दुनिया भर के पाठकों तक पहुंचाया है। इन प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से पाठक न केवल पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं, बल्कि उन्हें डाउनलोड करके ऑफलाइन भी पढ़ सकते हैं। इससे हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का पाठक वर्ग काफी व्यापक हो गया है।

सोशल मीडिया और इंटरएक्टिविटी: सोशल मीडिया ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के साथ पाठकों के संवाद को नया आयाम दिया है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म्स पर इन पत्रिकाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। इन प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से पाठक लेखकों से सीधे जुड़ सकते हैं, उनकी रचनाओं पर प्रतिक्रिया दे सकते हैं और साहित्यिक चर्चाओं में भाग ले सकते हैं। इससे न केवल पाठकों की संलग्नता बढ़ी है, बल्कि साहित्यिक समुदाय को भी मजबूती मिली है।

नए लेखकों को मंच: वैश्वीकरण और डिजिटल युग ने नए लेखकों को अपनी रचनाएं प्रकाशित करने का अवसर दिया है। पारंपरिक प्रकाशन प्रक्रिया में अक्सर नए लेखकों को मौका मिलने में कठिनाई होती थी, लेकिन ऑनलाइन पत्रिकाओं ने इस अंतर को पाट दिया है। अब कोई भी लेखक अपनी रचनाएं ऑनलाइन पत्रिकाओं में जमा कर सकता है और वैश्विक पाठकों तक पहुंच बना सकता है। इससे हिंदी साहित्य में नए विचारों और प्रतिभाओं को बढ़ावा मिला है।

वैश्विक सहयोग और अनुवाद: वैश्वीकरण ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करने का अवसर दिया है। अब ये पत्रिकाएं विदेशी लेखकों की रचनाओं को प्रकाशित करती हैं और हिंदी साहित्य को अन्य भाषाओं में अनुवादित करके वैश्विक पाठकों तक पहुंचाती हैं। इससे हिंदी साहित्य का वैश्विक प्रभाव बढ़ा है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद को बढ़ावा मिला है।

आर्थिक स्थिरता और नए मॉडल: डिजिटल युग ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए आर्थिक स्थिरता के नए मॉडल भी प्रस्तुत किए हैं। अब ये पत्रिकाएं ऑनलाइन सदस्यता, विज्ञापन और क्राउडफंडिंग जैसे तरीकों से अपने

संसाधन जुटा सकती हैं। इससे उनकी आर्थिक निर्भरता कम हुई है और वे अधिक स्वतंत्रता के साथ अपने साहित्यिक उद्देश्यों को पूरा कर सकती हैं।

इस प्रकार, वैश्वीकरण और डिजिटल युग ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की गतिशीलता को पूरी तरह से बदल दिया है। ये पत्रिकाएं अब न केवल साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन करती हैं, बल्कि वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक और सामाजिक विमर्श को भी प्रोत्साहित करती हैं। इस बदलती गतिशीलता ने हिंदी साहित्य को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया है और इसे वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनाया है।

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव:

वैश्वीकरण ने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की दुनिया में एक गहन परिवर्तन को प्रेरित किया है, जिसने उनकी पहचान और प्रभाव को पुनर्निर्मित किया है। यह प्रभाव केवल अनुकूलन से परे है; यह एक पुनर्जागरण का प्रतीक है---वैश्विक संदर्भ में इन साहित्यिक प्रकाशनों का पुनर्जन्म। यहां, हम हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर वैश्वीकरण के बहुआयामी प्रभावों को जानने का प्रयास करते हैं:

- **सांस्कृतिक आदान-प्रदान:**

सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों द्वारा सुगम बनाए गए सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परिवर्तनकारी प्रकृति में हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर वैश्वीकरण का गहरा प्रभाव स्पष्ट है। ये प्रकाशन, जो कभी अपने स्थानीय मूल तक सीमित थे, अब गतिशील वैश्विक पोर्टल में विकसित हो गए हैं, जो दुनिया भर के लेखकों के साहित्यिक योगदान की समृद्ध विविधता का जश्न मनाते हैं। यह परिवर्तन केवल एक सतही परिवर्तन नहीं है; बल्कि यह इन पत्रिकाओं के सार के मौलिक पुनर्परिभाषण का प्रतिनिधित्व करता है।

विदेशी लेखकों का एकीकरण: हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं ने विदेशी लेखकों के कार्यों को सहजता से एकीकृत किया है, जिससे भौगोलिक सीमाओं को पार करके अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक प्रवृत्तियों और विविध सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचाया गया है। "सरस्वती", "हंस" और "हरिश्चंद्र" जैसी उल्लेखनीय प्रकाशनों ने इस वैश्विक साहित्यिक संवाद को अपनाया है, जिससे पाठकों को क्षेत्रीय कथाओं से परे विभिन्न कोनों से आने वाली साहित्यिक रचनाओं को प्रस्तुत की गई है।

साहित्यिक रचनाएं: इन पत्रिकाओं के पाठक अब एकल कथा तक सीमित नहीं हैं; बल्कि वे दुनिया के विभिन्न कोनों से आने वाली साहित्यिक रचनाओं में फैले हुए हैं। विदेशी लेखकों के कार्यों को शामिल करना इन पत्रिकाओं की एक विशेषता बन गई है, जिससे पठन अनुभव समृद्ध हुआ है और एक अधिक समावेशी साहित्यिक वातावरण को बढ़ावा मिला है।

सांस्कृतिक समन्वय के पुल: हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं केवल प्रकाशनों की भूमिका से परे हो गई हैं; ये विविध संस्कृतियों को जोड़ने वाली पुल बन गई हैं। यह विकास सांस्कृतिक समन्वय को सक्षम बनाता है, जहां इन पत्रिकाओं के पन्ने विभिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के लिए एक मंच के रूप में कार्य करते हैं। विचारों और कथाओं का मुक्त आदान-प्रदान एक अधिक परस्पर जुड़े और सांस्कृतिक रूप से विविध साहित्यिक परिदृश्य में योगदान देता है।

साहित्य का वैश्विक संवाद: वैश्वीकरण ने साहित्य के एक गहन संवाद को सुगम बनाया है, जिसने भाषाई और भौगोलिक सीमाओं को तोड़ दिया है। ये पत्रिकाएं सक्रिय रूप से इस संवाद में योगदान देती हैं, जिससे विचार विविध सांस्कृतिक परिदृश्यों में स्वतंत्र रूप से प्रवाहित होते हैं। इन प्रकाशनों के पन्ने साहित्य की सीमाओं को पार करने और संस्कृतियों को जोड़ने की साहित्य की स्थायी शक्ति के प्रमाण के रूप में खड़े हैं।

जैसे-जैसे ये पत्रिकाएं वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में विकसित होती हैं, सांस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रति उनकी प्रतिबद्धता बनी रहती है। विदेशी लेखकों का एकीकरण और सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने से हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं अधिक समावेशी और परस्पर जुड़े वैश्विक साहित्यिक समुदाय में महत्वपूर्ण योगदानकर्ता के रूप में स्थापित होती हैं।

- **साहित्यिक उत्सव और सम्मेलन**

वैश्वीकरण के समकालीन युग में, साहित्यिक उत्सव और सम्मेलनों ने एक गहन परिवर्तन का किया है, जिसने उनकी पारंपरिक सीमाओं को पार कर अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को अपनाया है। यह परिवर्तन केवल एक सतही बदलाव नहीं है; बल्कि यह इन घटनाओं के मौलिक पुनर्परिभाषण का प्रतिनिधित्व करता है, और हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं साहित्यिक दुनिया के भीतर इस वैश्विक संवाद को आकार देने और सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

साहित्यिक उत्सव और सम्मेलनों में हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की भूमिका: हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं इन साहित्यिक आयोजनों में केवल भागीदार नहीं हैं, बल्कि ये वैश्विक साहित्यिक संवाद को सक्षम बनाने वाले पुल के रूप में कार्य करती हैं। स्थानीय मंचों से गतिशील वैश्विक पोर्टल में विकसित होकर, ये पत्रिकाएं साहित्यिक उत्सव और सम्मेलनों के क्षितिज को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भागीदारी में विविधता:

साहित्यिक आयोजन, जो कभी क्षेत्रीय या राष्ट्रीय विषयों तक सीमित थे, अब वास्तव में वैश्विक हो गए हैं। दुनिया भर के लेखक, विद्वान और साहित्य प्रेमी इन आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, जिससे भौगोलिक और भाषाई सीमाओं से मुक्त होकर साहित्यिक चर्चा को समृद्ध किया जाता है।

वैश्विक संवाद और समावेशिता :

इन आयोजनों का दायरा व्यापक हो गया है, जिससे एक व्यापक साहित्यिक संवाद को बढ़ावा मिलता है, जो सांस्कृतिक सीमाओं को पार करता है। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा प्रचारित वैश्विक परिप्रेक्ष्य से प्रभावित होकर, साहित्यिक उत्सव और सम्मेलन ऐसे मंच बन गए हैं, जहां विविध रचनाएं सार्थक बातचीत में शामिल होती हैं। इन आयोजनों की समावेशिता हिंदी साहित्य की विकसित होती प्रकृति को दर्शाती है, जो अपनी क्षेत्रीय पहचान से परे होकर वैश्विक साहित्यिक संवाद का एक अभिन्न हिस्सा बन गई है।

हिंदी साहित्य का प्रभाव:

हिंदी साहित्य, जो कभी अपनी क्षेत्रीय पहचान तक सीमित था, अब उन सीमाओं को पार करके वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य के रूप में उभरा है। यह विकास कुछ हद तक हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं द्वारा निभाई गई परिवर्तनकारी भूमिका का परिणाम है। इन प्रकाशनों ने एक वैश्विक साहित्यिक समुदाय को बढ़ावा देने में उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया है, जो विविधता और समावेशिता पर फलता-फूलता है।

वैश्विक साहित्यिक समुदाय पर प्रभाव :

साहित्यिक उत्सव और सम्मेलनों के माध्यम से प्रसारित हिंदी साहित्य का प्रभाव वैश्विक स्तर पर पहुंचा है। ये आयोजन विचारों, सांस्कृतिक दृष्टिकोणों और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आदान-प्रदान के लिए मंच बन गए हैं। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं, इन आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग लेकर और योगदान देकर, हिंदी साहित्य को व्यापक वैश्विक साहित्यिक संवाद में एकीकृत करने में सहायक बनी हैं।

आर्थिक प्रभाव:

वैश्वीकरण का हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर परिवर्तनकारी प्रभाव सांस्कृतिक और साहित्यिक आयामों से परे जाकर नए आर्थिक अवसरों का मार्ग प्रशस्त करता है। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं ने इस बदलते परिदृश्य में रणनीतिक रूप से कार्य किया है, और विभिन्न माध्यमों का उपयोग करके न केवल अपने अस्तित्व को सुनिश्चित किया है, बल्कि अपनी आर्थिक स्थिरता को भी मजबूत किया है।

- **प्रायोजन और विज्ञापन राजस्व:**

वैश्वीकरण द्वारा सुगम बनाई गई वैश्विक पहुंच के जवाब में, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं ने वैश्विक कंपनियों और संगठनों से प्रायोजन और विज्ञापन राजस्व सुरक्षित करने में कुशलता दिखाई है। यह वित्तीय सहायता इन पत्रिकाओं की आर्थिक नींव के लिए एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में कार्य करती है, जिससे वे अपने साहित्यिक प्रयासों को बनाए रखने और बढ़ाने में सक्षम होती हैं।

- **राजस्व स्रोतों में विविधता:**

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की आर्थिक लचीलापन राजस्व स्रोतों में विविधता के माध्यम से और प्रदर्शित होती है। पारंपरिक स्रोतों से परे, इन पत्रिकाओं ने डिजिटल युग में ऑनलाइन सदस्यता, ई-बुक्स और मर्चेंडाइज बिक्री में कदम रखा है। यह विविधता उनके वित्तीय पोर्टफोलियो को समृद्ध करती है, जो तेजी से बदलते वैश्विक परिदृश्य में लचीला और अनुकूलनीय है।

- **ऑनलाइन सदस्यता:**

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं ने पाठकों की बदलती प्राथमिकताओं को पहचानते हुए ऑनलाइन सदस्यता में सफलतापूर्वक कदम रखा है। यह न केवल प्रौद्योगिकी-प्रेमी दर्शकों की प्राथमिकताओं को पूरा करता है, बल्कि उनके पाठक वर्ग को वैश्विक स्तर तक विस्तारित भी करता है। ऑनलाइन सदस्यता की सुविधा ने इन पत्रिकाओं को दुनिया भर के हिंदी साहित्य प्रेमियों के लिए सुलभ बना दिया है।

- **ई-बुक्स और मर्चेंडाइज बिक्री:**

डिजिटल युग ने राजस्व उत्पन्न करने के नए मार्ग खोले हैं। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं ने ई-बुक्स की क्षमता को पहचानते हुए डिजिटल प्रकाशन को अपनाया है, जिससे साहित्यिक सामग्री इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में उपलब्ध हो गई है। इसके अलावा, इन पत्रिकाओं से जुड़े ब्रांडेड उत्पादों की मर्चेंडाइज बिक्री भी इन साहित्यिक मंचों की आर्थिक स्थिरता में योगदान देती है।

- **वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करना:**

राजस्व स्रोतों में विविधता न केवल हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की तात्कालिक वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करती है, बल्कि उन्हें भविष्य के लिए रणनीतिक रूप से तैयार भी करती है। यह उन्हें आर्थिक अनिश्चितताओं और बाजार में उतार-चढ़ाव का सामना करने में सक्षम बनाता है, जिससे उनके साहित्यिक मिशन को जारी रखने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान होता है।

- **वैश्विक स्तर पर साहित्यिक को सशक्त बनाना:**

वैश्वीकरण से प्राप्त वित्तीय स्थिरता न केवल उनके भविष्य को सुरक्षित करती है, बल्कि उन्हें हिंदी साहित्य को बढ़ावा देने और वैश्विक स्तर पर साहित्यिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के अपने कार्य को जारी रखने के लिए सशक्त भी बनाती है। यह उन्हें वैश्विक साहित्यिक संवाद में सक्रिय रूप से योगदान देने में सक्षम बनाता है।

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के सामने चुनौतियां:

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का वैश्विक संस्थाओं में परिवर्तन ने कई चुनौतियों को जन्म दिया है, जिनका सामना इन प्रकाशनों को करना पड़ता है। जहां वैश्वीकरण ने कई अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसने हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं की प्रामाणिकता, प्रतिस्पर्धा और प्रासंगिकता के लिए कुछ बाधाएं भी खड़ी की हैं।

1. **प्रामाणिकता बनाए रखना:**

प्रामाणिकता और वैश्विककरण के बीच संतुलन: जैसे-जैसे हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं वैश्विक दर्शकों तक पहुंचने का प्रयास करती हैं, उन्हें हिंदी साहित्य की प्रामाणिकता को बनाए रखने और अंतरराष्ट्रीय संवाद को पूरा करने के बीच एक नाजुक संतुलन बनाना पड़ता है। भाषाई और विषयगत विविधता का विस्तार करते हुए, पत्रिकाओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हिंदी साहित्य का सार बना रहे। इसमें भाषाई शुद्धता को बनाए रखना शामिल है, भले ही वे भाषाई विविधता को अपना रही हों।

2. **प्रतिस्पर्धा:**

वैश्विक साहित्यिक बाजार में प्रतिस्पर्धा: वैश्विक साहित्यिक बाजार अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक है, जहां हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को विभिन्न भाषाओं और शैलियों में प्रकाशनों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिक और प्रतिष्ठित बने रहने के लिए न केवल पाठकों को आकर्षित करना और बनाए रखना आवश्यक है, बल्कि साहित्यिक प्रस्तावों की भीड़ में एक अलग पहचान स्थापित करना भी चुनौतीपूर्ण है।

3. **परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन:**

परंपरा और आधुनिकता के प्रतिच्छेदन को नेविगेट करना: हिंदी साहित्य की एक समृद्ध परंपरा है, जो सदियों की संस्कृति और इतिहास में निहित है। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को परंपरागत विषयों और आधुनिक विचारों के प्रतिच्छेदन को नेविगेट करने के तरीके खोजने होंगे, ताकि वे विविध पाठक वर्ग को आकर्षित कर सकें। यह चुनौती हिंदी साहित्य को परिभाषित करने वाले मूल सांस्कृतिक और साहित्यिक मूल्यों से जुड़े बिना विकसित होने में निहित है।

4. **साहित्यिक विरासत का संरक्षण:**

साहित्यिक विरासत का संरक्षण: अपनी पहुंच का विस्तार करने और वैश्विक दर्शकों को पूरा करने की खोज में, हिंदी साहित्य की साहित्यिक विरासत को संरक्षित करने की चुनौती है। इसमें उस सामग्री का चयन और अनुकूलन करना शामिल है, जो वैश्विक स्तर पर प्रतिध्वनित हो, लेकिन हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की अखंडता से समझौता न करे।

5. **वित्तीय स्थिरता:**

आर्थिक दबाव: जहां वैश्वीकरण ने आर्थिक अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसने आर्थिक दबाव भी लाए हैं। पत्रिकाओं को अपनी सामग्री की गुणवत्ता और पहुंच को बनाए रखने के लिए अपने वित्त का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करना होगा। वैश्विक संदर्भ में प्रायोजन और राजस्व के लिए प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। प्रौद्योगिकियों को अपनाना: वैश्विक दर्शकों तक पहुंचने और डिजिटल युग में प्रासंगिक बने रहने के लिए, पत्रिकाओं को विकसित होती

प्रौद्योगिकियों को अपनाना होगा। इसमें डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभावी उपयोग, रिस्पॉन्सिव वेबसाइट डिजाइन, मोबाइल एप्लिकेशन और सोशल मीडिया शामिल है। पारंपरिक रूप से प्रिंट में काम करने वाली पत्रिकाओं के लिए इन प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का प्रबंधन करना एक चुनौती हो सकता है।

अवसर और भविष्य की संभावनाएं:

हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का वैश्विक संस्थाओं में परिवर्तन ने नए अवसर और भविष्य की संभावनाएं खोल दी हैं। ये अवसर साहित्यिक परिदृश्य की बदलती गतिशीलता के साथ जुड़े हुए हैं, जो वैश्वीकरण और डिजिटल प्रगति द्वारा प्रेरित हैं।

1. **साहित्यिक सहयोग:**

सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना: हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के पास अंतरराष्ट्रीय समकक्षों के साथ सहयोग करने का अवसर है, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान और साहित्यिक विनिमय को बढ़ावा मिल सकता है। ऐसे सहयोग विविध आवाजों को एक साथ ला सकते हैं, जिससे वैश्विक साहित्य का एक समृद्ध ताना-बाना बन सकता है। पत्रिकाएं अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों के साथ संयुक्त परियोजनाएं, साहित्यिक उत्सव या थीम आधारित संस्करण शुरू कर सकती हैं।

अनुवादित संस्करण और बहुभाषी सामग्री: अनुवादित संस्करण और बहुभाषी सामग्री जैसी पहल हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के पाठक वर्ग को काफी हद तक बढ़ा सकती है। विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक कार्यों को सुलभ बनाकर, पत्रिकाएं भाषाई अंतर को पाट सकती हैं और एक व्यापक, अधिक विविध दर्शक वर्ग को आकर्षित कर सकती हैं। इसमें स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तर पर अनुवादकों के साथ साझेदारी शामिल हो सकती है, ताकि साहित्यिक कार्यों के उच्च गुणवत्ता वाले अनुवाद सुनिश्चित किए जा सकें।

डिजिटल संलग्नता:

पाठक संलग्नता को बढ़ाना: ई-बुक्स, पॉडकास्ट और इंटरैक्टिव वेबसाइट्स सहित डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करके, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं पाठक संलग्नता को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त कर सकती हैं। ई-बुक्स वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभता प्रदान कर सकते हैं, जबकि पॉडकास्ट कहानी कहने और साहित्यिक चर्चाओं के लिए एक अतिरिक्त आयाम प्रदान करते हैं। इंटरैक्टिव वेबसाइट्स इमर्सिव अनुभव बना सकते हैं, जिससे पाठक साहित्यिक समुदाय में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

ऑनलाइन साहित्यिक समुदाय: ऑनलाइन साहित्यिक समुदाय बनाना और क्राउडसोर्सिंग का उपयोग करना पाठकों को जोड़ने का एक शक्तिशाली तरीका हो सकता है। ये समुदाय चर्चाओं, बुक क्लबों और सहयोगात्मक परियोजनाओं के लिए स्थान के रूप में कार्य कर सकते हैं। हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और समर्पित वेबसाइट्स का उपयोग करके वैश्विक स्तर पर पाठकों के साथ जुड़ सकती हैं। ऑनलाइन संलग्नता में इंटरैक्टिव सुविधाएं, जैसे पाठकों के सर्वेक्षण, लेखकों के साथ प्रश्नोत्तर सत्र और आभासी साहित्यिक आयोजन भी शामिल हो सकते हैं।

वैश्विक साहित्यिक मंचों में भागीदारी:

वैश्विक साहित्यिक मंचों में सक्रिय भागीदारी: हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं वैश्विक साहित्यिक मंचों और पहलों में सक्रिय रूप से भाग ले सकती हैं। इसमें अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक पुरस्कारों में शामिल होना, वैश्विक साहित्यिक उत्सवों में भाग लेना और सहयोगात्मक साहित्यिक परियोजनाओं में योगदान देना शामिल है। यह एक्सपोजर न केवल हिंदी साहित्य की वैश्विक दृश्यता को बढ़ाता है, बल्कि इन पत्रिकाओं को वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में अभिन्न खिलाड़ियों के रूप में स्थापित करता है।

शैक्षिक पहल:

साहित्यिक शिक्षा कार्यक्रम: पत्रिकाएं हिंदी साहित्य को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम शुरू करके साहित्यिक शिक्षा में योगदान दे सकती हैं। इसमें भारत और विदेशों में शैक्षणिक संस्थानों के साथ सहयोग करके हिंदी साहित्यिक कार्यों को पाठ्यक्रम में शामिल करना शामिल हो सकता है। साहित्यिक कार्यशालाएं, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और मेंटरशिप कार्यक्रम उभरती प्रतिभाओं को पोषित करने और पाठकों की एक नई पीढ़ी को आकर्षित करने में मदद कर सकते हैं।

वैश्वीकरण का हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं पर प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसने इन प्रकाशनों को मौलिक रूप से पुनर्निर्मित किया है, जिससे वे स्थानीय मंचों से वैश्विक साहित्यिक संवाद और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के केंद्र बन गए हैं। यह परिवर्तन एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसने इन पत्रिकाओं के सामने अवसरों और चुनौतियों की एक विस्तृत श्रृंखला को उजागर किया है।

इस बदलते परिदृश्य में हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उन्हें अपनी भाषाई और सांस्कृतिक प्रामाणिकता को बनाए रखते हुए एक विविध और वैश्विक पाठक वर्ग को संतुष्ट करना होगा। हिंदी साहित्य और संस्कृति का सार वैश्विक मान्यता की खोज में कमजोर नहीं होना चाहिए। इसलिए, इन पत्रिकाओं को अपनी सामग्री को सावधानीपूर्वक संकलित करना चाहिए, ताकि हिंदी साहित्य की अनूठी पहचान को संरक्षित रखा जा सके, जबकि इसे व्यापक दर्शकों के लिए आसान बनाया जा सके।

वैश्विक साहित्यिक क्षेत्र में फलने-फूलने के लिए, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को डिजिटल प्रौद्योगिकियों की क्षमता का उपयोग करना चाहिए। डिजिटल युग पाठकों को वैश्विक स्तर पर जोड़ने के लिए कई मार्ग प्रदान करता है। ई-बुक्स, पॉडकास्ट, इंटरैक्टिव वेबसाइट्स और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग करके, पाठक संलग्नता को बढ़ाया जा सकता है, जिससे हिंदी साहित्य एक समकालीन, प्रौद्योगिकी-प्रेमी दर्शक वर्ग के साथ प्रतिध्वनित हो सकता है। यह डिजिटल परिवर्तन इंटरैक्टिव और इमर्सिव अनुभवों के द्वार खोलता है, जिससे पठन प्रक्रिया को अधिक आकर्षक और सहभागी बनाया जा सकता है।

इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साहित्यिक सहयोग इन पत्रिकाओं के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक प्रकाशनों के साथ सहयोग, अनुवाद परियोजनाएं और संयुक्त साहित्यिक उत्सव विविध आवाजों को एक साथ ला सकते हैं, जिससे वैश्विक साहित्य का एक समृद्ध ताना-बाना बन सकता है। बहुभाषी

सामग्री और अनुवादित संस्करण भाषाई बाधाओं को तोड़ सकते हैं, जिससे एक व्यापक और अधिक विविध पाठक वर्ग आकर्षित हो सकता है।

इन पत्रिकाओं को वैश्विक साहित्यिक मंचों और आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए, जिसमें अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक पुरस्कार और सम्मेलन शामिल हैं। यह न केवल हिंदी साहित्य की दृश्यता को बढ़ाता है, बल्कि इन प्रकाशनों को वैश्विक साहित्यिक संवाद में अभिन्न रूप में स्थापित करता है, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान और विनिमय को बढ़ावा मिलता है।

आर्थिक स्थिरता के संदर्भ में, हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं को अपने राजस्व स्रोतों में विविधता लाना चाहिए। वैश्विक कंपनियों से प्रायोजन और विज्ञापन राजस्व सुरक्षित करना, ऑनलाइन सदस्यता, ई-बुक्स और मर्चेंडाइज बिक्री में कदम रखना, ये सभी इन पत्रिकाओं की वित्तीय मजबूती को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह वित्तीय स्थिरता उन्हें हिंदी साहित्य को बढ़ावा देने और वैश्विक स्तर पर साहित्यिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के अपने मुख्य मिशन को जारी रखने के लिए सशक्त बनाती है।

जैसे-जैसे हिंदी साहित्यिक पत्रिकाएं वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करती हैं और अवसरों का लाभ उठाती हैं, वे वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में प्रभावशाली बनती हैं। हिंदी साहित्य की प्रामाणिकता को बनाए रखने, डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने, साहित्यिक सहयोग में शामिल होने, वैश्विक मंचों में भाग लेने और वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने की उनकी क्षमता न केवल उनकी स्थिति को मजबूत करेगी, बल्कि हिंदी साहित्य की गहराई और विविधता के साथ वैश्विक साहित्यिक समुदाय को भी समृद्ध करेगी।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, महावीर प्रसाद. "सरस्वती पत्रिका का ऐतिहासिक महत्व."
2. शर्मा, रामविलास. "हिंदी साहित्य का इतिहास."
3. मिश्र, नामवर सिंह. "हिंदी साहित्य और वैश्वीकरण."
4. UNESCO. "Globalization and Cultural Diversity in Literature."

49

कठोपनिषद में मन की संकल्पना की शैक्षिक विवेचना

मनु गंगवार

शोधार्थी, बी.एड./एम.एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

प्रोफेसर प्रवीण कुमार तिवारी

आचार्य, शिक्षा विभाग (केंद्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपनिषद का अर्थ है गुरु या ज्ञान के समीप बैठना, जिसके माध्यम से अज्ञान से मुक्ति मिलती है। उपनिषदकालीन ऋषि अपने युग में सामान्यतया दार्शनिक चिंतन और विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक चिंतन में अग्रणी थे। भारतीय दार्शनिक प्रणालियों में मन के स्थान की संक्षेप में चर्चा की गयी है। मन को मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। मन को समस्त इंद्रियों का स्वामी है जो स्मृतियों, इच्छाओं, भावनाओं और विचारों आदि का साधन है। मन की अपनी अनूठी विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ हमारी वर्तमान स्थिति को बदलने में हमारी सहायता कर सकती है। उपनिषदों में मन वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त करने का साधन है। यदि कोई अपने मन को नियंत्रित कर सकता है और उसे बाहर की बजाय अंदर की ओर देखने के लिए प्रशिक्षित कर सकता है तो कहा जाता है कि वह स्वयं के बारे में अनुभूति की दिशा में बढ़ सकता है। मन को नियंत्रण में लाने के लिए वैराग्य और अभ्यास की आवश्यकता है। सभी उपनिषदों में मन के संबंध में विविध संदर्भ मिलते हैं। इस पत्र में केवल कठोपनिषद में मन संबंधी उद्धृत प्रकरणों की शैक्षिक विवेचना की गई है।

उपनिषद प्राचीन भारतीय संस्कृति और अध्यात्मिक ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं। इसमें हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा किए गए चिंतनों का सूक्ष्म वर्णन है। आचार्य शंकर ने 13 प्रधान उपनिषदों की चर्चा की है जिनमें से कठोपनिषद एक है। सनातन धर्म सभी उपनिषदों को श्रुति का भाग मानता है अर्थात् ईश्वर द्वारा इस ज्ञान का प्रत्यक्ष रहस्योद्घाटन हुआ है। उपनिषद स्वयं ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान को समाप्त करने का सुझाव देता है। उपनिषद वेदांत के रत्न हैं जिन्हें वेद का ज्ञानकाण्ड कहा जाता है। उपनिषद आत्मानुभूति एवं आत्मज्ञान के विषय को प्रमुखता से उठाते हैं। कठोपनिषद कृष्ण यजुर्वेद से संबंधित है। कठोपनिषद, नचिकेता और यम के बीच संवाद है। यह छः खंडों में विस्तारित है और छंदों की कुल संख्या 119 है। इस उपनिषद में मृत्यु के देवता यम और ज्ञान के जिज्ञासु नचिकेता के बीच सम्पूर्ण संवाद हमें यह समझाने के लिए प्रेरित करते हैं कि अंतिम वास्तविकता मन और अनुभव की सीमाओं से परे है। इस संवाद में यम नचिकेता को आत्मज्ञान और मोक्ष के विषय में शिक्षा देते हैं। यह उपनिषद सांसारिक माया, आत्मा की पहचान ,धर्म, श्रद्धा, जीवन का उद्देश्य, आध्यात्मिकता, मृत्यु, साधना के विषय में गहरा ज्ञान प्रदान करता है। कठोपनिषद में इस विषय का वर्णन है कि सामान्य ज्ञान का लक्ष्य आनंद है, वास्तविक ज्ञान का लक्ष्य मोक्ष है और इसे शिक्षक के द्वारा एवं आत्मा के पक्ष से प्रदान करना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद का प्रसिद्ध उपदेश "उठो जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय" कठोपनिषद के इस मंत्र पर आधारित है-

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरात्रिबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।। (कठोपनिषद 1/3/14)

कठोपनिषद में मन की वास्तविकता की प्रकृति के बारे में एक नयी अंतर्दृष्टि प्रदान किया गया है। मन की उत्पत्ति मन् धातु से हुई है जिसका अर्थ है सोचना। मन शरीर का भावनात्मक हिस्सा है। किसी की धारणाएँ इसी क्षेत्र के माध्यम से निर्मित होती हैं। पांच इंद्रियों और कर्मेन्द्रियों के माध्यम से एकत्र की गई सभी जानकारी इस बिंदु पर संसाधित होती हैं, और ज्ञान और सोच का निर्माण होता है। मन वह आश्रय भी है, जहाँ सभी विचार, संदेह, अवसाद, धारणा, ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न होते हैं। मन की विशेषताओं को कई अवधारणाओं के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है, जैसे जागरूकता (संज्ञान), समझ (ज्ञानम), विशिष्ट समझ (विज्ञानम), श्रेष्ठ ज्ञान (प्रज्ञानम), संकल्प (धृति), अंतर्दृष्टि (दृष्टि), प्रतिबिम्ब (मनीषा), आवेग (ज्योति), इच्छा (संकल्प), उद्देश्य (कृतु) आदि।

श्रीमद्भगवद्गीता में मन को संवेदनात्मक, मजबूत और स्थिर बताया गया है और मन का नियंत्रण वायु की तरह ही मुश्किल है। इसलिए मन अनियंत्रित एवं अस्थिर है लेकिन मन को अभ्यास से नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें कहा गया है:

चञ्चलं हि मन: कृष्णप्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्येवायोरिव सुदुष्करम्।। (श्रीमद्भगवद्गीता 6/34)
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहम चलं।
अभ्यासेनतुकौन्तेयवैराग्येण च गृहय्ते।। (श्रीमद्भगवद्गीता 6/35)
असंयतात्मना योगोदुष्प्राप इति में मति:।
वश्यातात्मनातु यतताशक्योऽवाप्तुमुपायत:।। (श्रीमद्भगवद्गीता 6/36)

यह मन के केन्द्रीय पहलुओं को समझाता है जिन्हें नियंत्रित करना कठिन है। योग बहिर्गामी और अन्तरगामी प्रवृतियों का संयमित रुप है। मन को नियंत्रण में लाने के लिए विरक्ति और अभ्यास की आवश्यकता होती है।

कठोपनिषद में भी मन विषयक विविध प्रकरण उद्धृत हैं। प्रमुख रूप से इनका उल्लेख प्रथम अध्याय के तृतीय वल्ली एवं द्वितीय अध्याय के प्रथम व तृतीय वल्ली में मिलता है।

कठोपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीय वल्ली में मन विषयक प्रकरण:

कठोपनिषद के प्रथम अध्याय के तीसरी वल्ली में रथ की सादृश्यता का उपयोग स्वयं (आत्मा), सारथि (बुद्धि), लगाम (मन), घोड़े (इन्द्रिय) के बीच अंतरसंबंध को दिखाने के लिए एक रथ के रूप में मानव शरीर की बहुत ही शिक्षाप्रद संदर्भ आता है जो इस प्रकार है –

आत्मानँ रथिनं विद्धि शरीरँ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।। (कठोपनिषद 1/3/3)

कठोपनिषद के इस मंत्र में मन के प्रथम विभक्ति का वर्णन हुआ है। इस मंत्र में आत्मा को रथ का स्वामी, शरीर को रथ समझा गया है क्योंकि रथ में बंधे हुए अश्वरूप को इंद्रियों अर्थात्् लगाम से खींचा जाता है तथा बुद्धि को सारथी यानी चलाने वाला नेतृत्वकर्ता जो आत्मारूपी स्वामी के निर्देशन से चलता है, व मन को लगाम अर्थात् इंद्रियरूपी अश्वों को मन के माध्यम से नियंत्रित करने वाला समझा गया है, जिस प्रकार घोड़े लगाम से नियंत्रित होकर चलते हैं उसी प्रकार इंद्रियाँ मन से नियंत्रित होकर ही अपने मार्ग में प्रवृत्त होती हैं।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्वश्यानि दुष्टाश्र्वा इव सारथेः।। (कठोपनिषद 1/3/5)

इस मंत्र में मन के तृतीय विभक्ति का प्रयोग हुआ है जहाँ यदि बुद्धिरूपी सारथी विवेकहीन और चंचल मन से युक्त होता है तो उसकी इंद्रियाँ दुष्ट घोड़े की भाँति वश में न रह कर लगाम के सहारे संपूर्ण रथ को ही अपने वश में कर लेती है क्योंकि इंद्रियाँ विषयों को ग्रहण तभी कर सकती है जब मन उनके साथ होता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्र्वा इव सारथे:।। (कठोपनिषद 1/3/6)

इस मंत्र में मन के तृतीय विभक्ति मनसा का उपयोग हुआ है। इस मंत्र में बताया गया है कि जो बुद्धिरूपी सारथी विवेकी और मन को नियंत्रित रखने वाला या वश में किए हुए रहता है, उसकी इंद्रियाँ सन्मार्ग पर चलने के लिए मन को बाध्य किए रहती है, उसकी इंद्रियाँ प्रवृत्त और निवृत्त किए जाने में इस प्रकार समर्थ होती हैं जैसे श्रेष्ठ अश्व विवेकयुक्त सारथी के अधीन रहकर निर्दिष्ट पथ पर चलते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्क: सदाशुचि:।
न स तत्पदमाप्नोति सँसारं चाधिगच्छति।। (कठोपनिषद 1/3/7)

कठोपनिषद के इस मंत्र में मन के स्वरूप का अर्थ यह है कि जो मन का संयमी नहीं, मन को वश में रखने में असमर्थ है और सदा अपवित्र आचरण करता है, वह उस श्रेष्ठ पद को प्राप्त नहीं कर सकता और अनेक जन्म-मरण युक्त संसार को प्राप्त होता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्क: सदा शुचि:।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।। (कठोपनिषद 1/3/8)

इस मंत्र में समनस्क शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है संयतचित्त या मन से संयमी होना। जो अपनी बुद्धि को निरंतर विवेकशील बनाकर उसके द्वारा मन को नियंत्रित करके पवित्र आचरण करता है, वह पुन: जन्म नहीं लेता बल्कि श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मन:प्रग्रहवान् नर:।
सोऽध्वन: पारमाप्नोति तद्विष्णो: परमं पदम्।। (कठोपनिषद 1/3/9)

प्रस्तुत मंत्र में मन: मन की प्रथम विभक्ति के रूप में वर्णित है, जिसका अर्थ मनरूपी लगाम से है जो मनुष्य विज्ञानवान बुद्धि से संपन्न सारथी है और मन की लगाम अपने हाथ में पकड़ा होता है, मन को भगवान के तत्व चिंतन में लगा देता है तथा इंद्रियों का संबंध भगवान से जोड़ देता है वह ऐसे संसार मार्ग के पार होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है।

इन्द्रियेभ्य: परा ह्यर्था अर्थेभ्यच्श्र परं मन:।

मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान् पर:।। (कठोपनिषद 1/3/10)

कठोपनिषद के इस मंत्र में मन के प्रथम विभक्ति तथा पंचमी विभक्ति मन: एवं मनस: का वर्णन हुआ है। यहाँ मन को इंद्रियों से श्रेष्ठ विषयों से बलवान माना गया है। यदि मन की विषयों में आसक्ति न रहे तो इंद्रियाँ और विषय ये दोनों साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है, बुद्धि के द्वारा विचार करके मन को राग द्वेषरहित बनाकर अपने वश में कर लेना चाहिए एवं बुद्धि से भी श्रेष्ठ इनका स्वामी महान आत्मा है।

यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।। (कठोपनिषद 1/3/13)

इस मंत्र में मन की प्रथम विभक्ति मनसी का प्रयोग हुआ है। इस मंत्र में बताया गया है कि मन में वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को अन्य विषयों से हटाकर विलीन करें तथा अपने मन को ज्ञानस्वरुप बुद्धि में विलीन करें; और जब मन और चिंतन पर नियंत्रण हो जाए, जब यहाँ तक दृढ़ अभ्यास हो जाए तब उस ज्ञानस्वरूप बुद्धि को आत्मा में विलीन करें। अर्थात् ऐसी स्थिति में आ जाएँ जहाँ आत्मतत्व के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। इसके बाद अपने आप को दृढ़ निश्चय के साथ परब्रह्म परमेश्वर में विलीन करें।

कठोपनिषद के द्वितीय अध्याय के प्रथम वल्ली में मन मन विषयक प्रकरण:

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।

मृत्यों: स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।। (कठोपनिषद 2/1/11)

इस मंत्र में मन की तृतीया विभक्ति मनसा शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है मन से ही। अर्थात् इस जगत में कुछ भी परमात्मा से भिन्न नहीं है और यह शुद्ध मन से ही जानना चाहिए। एकमात्र परमात्मा ही परिपूर्ण है जो यहाँ अनेक भेद देखता है वह मनुष्य बार-बार जन्म मरण को प्राप्त होता है।

कठोपनिषद के द्वितीय अध्याय के तृतीय वल्ली में मन मन विषयक प्रकरण:

इन्द्रियेभ्य: परं मनो मनस: सत्त्वमुत्तमम्।

सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्।। (कठोपनिषद 2/3/7)

इस मंत्र में मन शब्द का वर्णन दो बार हुआ है। जहाँ मन इंद्रियों से उत्कृष्ट है, मन से सत्व अर्थात् बुद्धि उत्कृष्ट है, बुद्धि से महत् तत्व बढ़कर है और महत् तत्व से अव्यक्त प्रकृति उत्तम है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कच्श्रनैनम्।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।। (कठोपनिषद 2/3/9)

इस मंत्र में मनसा शब्द मन की तृतीया विभक्ति के रूप में प्रयोग किया गया है जहाँ पर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को कोई भी मनुष्य प्रत्यक्ष विषय के रूप में नहीं देख सकता बल्कि जो मन से निर्मल हृदय और बुद्धि के द्वारा उनका चिंतन करते रहता है, वह परमेश्वर को जान लेता है। मन, इंद्रियों से जो अनुभव आते हैं उनका संग्रह करता है, बुद्धि

ISSN: 2321-0443

उनको जोड़ती है और हृदय में उसका बोध होता है, जो इस तरह इसको जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं अर्थात् परमानंदस्वरूप बन जाते हैं।

यदा पच्ञावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु: परमां गतिम्।। (कठोपनिषद 2/3/10)

इस मंत्र में मन की तृतीया विभक्ति मनसा का प्रयोग किया गया है। इस मंत्र में बताया गया है कि जब मन के साथ-साथ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि को भी परमात्मा के अतिरिक्त किसी वस्तु का ज्ञान नहीं रहता अर्थात् बुद्धि विचलित नहीं होती उस स्थिति को योगी परमगति कहते हैं। मनुष्यों को परमगति तब तक प्राप्त नहीं हो सकती, जब तक मन संकल्प-विकल्प करता रहेगा।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते।। (कठोपनिषद 2/3/12)

कठोपनिषद के इस मंत्र में बताया गया है कि न मन से न वाणी आदि कर्मेंद्रिय से न नेत्रों आदि ज्ञानेंद्रिय से परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं परंतु इसे प्राप्त करने की तीव्र इच्छा वालों को वह अवश्य ही मिलता है। मन से केवल उसका कितना भी मनन किया तो भी वह अधूरा ही रहेगा। इसी प्रकार इंद्रियों से कितना भी वर्णन किया, तो भी वह अपूर्ण ही रहेगा क्योंकि वह उसे बहुत बड़ा है। मन इंद्रियों सबका मिलाकर इकट्ठा किया जो अनुभव है वह उसका ज्ञान है, ऐसे धर्म विश्वास के साथ उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

कठोपनिषद में मन का स्वरुप:

मन के संबंध में कठोपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीयवल्ली, द्वितीय अध्याय के प्रथम व तृतीयवल्ली में उद्धृत संदर्भों के आधार पर मन का स्वरूप स्पष्ट होता है। प्रथम अध्याय के तृतीयवल्ली में मंत्र संख्या 3 से 9 तक के मन्त्रों में मन का जो वर्णन मिलता है, उसके अर्थ पर विचार करें तो यहाँ पर रथ और रथी के माध्यम से इसे समझाया गया है कि जीवात्मा मानव शरीर रूपी सुंदर सर्वसंपन्न रथ, इंद्रियाँ बलवान घोड़े, तथा बुद्धि सारथी है, जो इस प्रकार शरीर रूपी रथ को चलाती है तथा मन को लगाम के रूप में माना है; जैसे घोड़े लगाम से नियंत्रित होकर चलते हैं, उसी प्रकार इंद्रियाँ मन से नियंत्रित होकर अपने विषय में प्रवृत्त होती हैं। यदि हम समग्रता से मन संबंधी सभी मन्त्रों पर विचार करें तो मन, इंद्रियों और विषयों से बलवान व श्रेष्ठ है। यदि मन की विषयों में आसक्ति न रहे तो इन्द्रिय और विषय ये दोनों साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते। शुद्ध मन से ही परमात्मा को जाना जा सकता है। कठोपनिषद में शुद्ध मन से तात्पर्य है जब मन में किसी प्रकार का कोई पाप-पुण्य, स्वार्थ-परमार्थ, बुरा-भला की भावना लेश मात्र भी नहीं रह जाती है, जब मन एक कोरा दर्पण हो जाता है जिसमें कोई विचार, प्रतिमा, प्रतिबिम्ब, छाया नहीं रहती, उपनिषद के अनुसार ऐसे मन के द्वारा ईश्वर को जाना जा सकता है। साथ ही मन को वश में करके इंद्रियों को विपरीत मार्ग से हटाकर भगवतप्राप्ति में लगाने की बात भी कही गई है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार मन उत्तम, प्रसन्न, स्वाधीन और संयमशील होना चाहिए तथा विषयों को अपने अधीन रखना चाहिए, सब इंद्रियों से जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उनका संग्रह मन करता है। वामन शिवराम आप्टे की संस्कृत-हिंदी शब्दकोश में भी मन की सार्थकता उसकी स्थिरता में बतायी गई है।

निष्कर्ष:

आमतौर यह माना जाता है कि मनस या मन धारणा, सोच, निर्णय, स्मृति आदि की संज्ञानात्मक क्षमताओं का एक साधन है, जो जागरुकता, संगठन, पहचान, व्याख्या, निर्णय लेने की स्थिति की ओर ले जाता है। मानव जीवन में मन इच्छा, सुख-दुःख, बुद्धि, विचार आदि शब्दों से जुड़ा हुआ है। यह इंद्रियों के समान ही कार्य करता है। मन का कार्य उन सभी प्रतिमाओं को संग्रहित करना है, जो हम अपने अनुभवों और अपने गतिविधियों से प्राप्त करते हैं। हमारी सभी गतिविधियां मन पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं। ये क्रियाएँ ज्ञानेंद्रियों की सहायता से संपन्न होती हैं। मानव का मन सामान्य तौर पर स्थिर नहीं होता है। वह चंचल बना रहता है और कई बार मन की इसी चंचलता के कारण लोग गलत दिशा में भी आगे बढ़ने लगते हैं। यदि कोई अपने शरीर, मन और भावनाओं को नियंत्रित करने में सक्षम है, जो लगातार हमें भटकाने के लिए प्रेरित करते हैं और हमारे नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं तो वह अपने समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

यह उपनिषद अनियंत्रित मन, संयमित मन, अचेतन और सचेतन की अवधारणाओं पर जोर देता है। दूसरे शब्दों में मानव मन घोड़े की तरह है यह कुछ ही सेकंड में एक विषय से दूसरे विषय की ओर बढ़ जाता है। इसलिए एकाग्रता आसान नहीं है। मन, शरीर की गतिविधियों को नियंत्रित करता है और व्यक्ति को विविध कार्यों में संलग्न करता है। जैसा कि पूर्वोक्त चर्चा में शरीर की तुलना एक रथ से की गयी है और बुद्धि की तुलना सारथी से की गयी है और यह समझाया गया है कि मन को बनाये रखने वाली इन्द्रियों को नियंत्रित करके, व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँच सकता है। सबसे महत्वपूर्ण विषय यह है कि ज्ञान या आत्म तत्व के साधक का मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण अवश्य ही होना चाहिए। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में मन का संदर्भ विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति रुचि, एकाग्रता, स्थिरता आदि को बढ़ाने से संबंधित है। विद्यार्थी अपने इंद्रियों पर नियंत्रण करके संयम के साथ शिक्षा के पथ पर आगे बढ़ते हैं। विद्यार्थी चंचल स्वाभाव के होते हैं जिससे उनका मन किसी एक विषय पर केन्द्रित नहीं हो पाता है, क्योंकि वे एक विषय से दूसरे विषय की ओर अलग-अलग दिशाओं में भटकते रहते हैं। इसलिए किसी विषय के प्रति बच्चों में एकाग्रता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उनकी धारणा और ध्यान की शक्ति को बढ़ाया जाए जिसके लिए योग, मनन और अभ्यास की आवश्यकता है।

कठोपनिषद में यम-नचिकेता के रूप में गुरु-शिष्य के मध्य आत्मीय संबंध का वर्णन मिलता है। जहाँ गुरु, शिष्य को मार्ग दिखाने वाला, बोध कराने वाला, सत्य बताने वाला एवं प्रेरणा प्रदान करने वाला है एवं शिष्य में जिज्ञासा, गहन एकाग्रता, सीखने हेतु अभिप्रेरणा और अल्पनिद्रा का अभ्यास आदि गुण देखने को मिलता है।

आधुनिक जीवन द्वंद्व और कलहपूर्ण है। इसमें मन के अन्दर द्वंद्व की स्थिति चलती रहती है। इन सबके बीच व्यक्ति को इतनी भ्रान्ति हो जाती है कि समझ ही नहीं आता कि क्या करे और क्या न करे। मन को स्थिर एवं शांत करने के लिये महान विचारों का मनन करे। मन को प्रशिक्षित करना अत्यंत आवश्यक कार्य है। मन की एकाग्रता से ही हम साधारण से साधारण परिस्थिति में क्रिया-कलापों को बेहतर ढंग से संपादित कर सकते हैं। अपने मन को एकाग्र कर हम कठोपनिषद के प्रसिद्ध वाक्य 'उठो! जागो! और श्रेष्ठत्व प्राप्त करो!' के माध्यम से अपने जीवन की अनुभूति बदल सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. ईशादि नौ उपनिषद् (सम्वत् 2076). गीता प्रेस. गोरखपुर।
2. सातवलेकर, एस. डी. (1953). कठोपनिषद्, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
3. आप्टे,वी.एस., संस्कृत-हिंदी कोश. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ). (सम्वत् 2078). गीता प्रेस. गोरखपुर।
5. चिद्भावानद, एस. (1969). भगवद्गीता. श्री रामकृष्ण तपोवनम।
6. राजवी, के .के. (2009). यजुर्वेदीय उपनिषद कठोपनिषद में तत्व निरूपण [अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध]. महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.)।
7. जयप्रकाश ,बी. (2013). कंसेप्ट ऑफ़ माइंड इन द प्रिंसिपल उपनिषदस् [अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध]. महात्मा गाँधी यूनिवर्सिटी कोट्टयम ,केरल।
8. नारायणन ,जी.के. (2018). कंसेप्ट ऑफ़ माइंड इन द मेजर उपनिषदस् [अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध].श्री शंकराचार्य यूनिवर्सिटी ऑफ़ संस्कृत, कालडी।

50

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: उन्नयन, संवर्धन तथा रोजगार सर्जन के विशेष सन्दर्भ में

डॉ अजिता सिंह तिवारी
सहायक आचार्य, शिक्षक शिक्षा विभाग, बरेली कॉलेज,बरेली कॉलेज, बरेली

भारतीय संस्कृति उच्च मानवीय मूल्यों एवं वैज्ञानिक परंपराओं से भरी हुई है। भारतीय ज्ञानपरंपरा के मुख्य तत्व वेद और उपनिषद हैं, जो जीवन के उद्देश्य, ब्रह्मांड के सिद्धांतों एवं नीति आदि के विषय में जानकारी देते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की मुख्य विशेषताएं एकात्मता, विविधता का सम्मान एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। यह जीवन के सभी पक्षों को जोड़ती है, विभिन्न मतों का सम्मान करती हैएवं आत्मज्ञान की ओर ले जाती है। इसके उत्थान के लिए समग्र दृष्टिकोण, आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ समन्वय, भारतीय भाषाओं का संवर्धन, सृजनात्मकता, नवप्रवर्तन, तथा नैतिकता से परिपूर्ण शिक्षाऔर शोध के लिए सुदृढ़ ढांचे की आवश्यकता है।भारतीय ज्ञान परंपरा रोजगार सृजन में भी महत्वपूर्ण है। यह व्यावासिक शिक्षा, कौशल विकास, आधुनिक एवं पारंपरिक उद्योगों का समन्वय, योग और आयुर्वेद जैसे क्षेत्रों में नए रोजगार का अवसर प्रदान करती है। परन्तु कतिपय कारणों से हम इस विषद ज्ञान भण्डार को भूल गए जिसे ध्यान में रखकर भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का निर्माण किया गया।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का लक्ष्य भारतीय ज्ञान एवं विज्ञान की धरोहर शिक्षा में समाहित कर इसका उपयोग कर भारतीय शिक्षा प्रणाली को नवीन आकार दे कर गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण करना है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक असमानता, शिक्षकों की कमी, मूल्य आधारित शिक्षा की कमी, शहरी-ग्रामीण विभाजन, पारंपरिक पाठ्यक्रम की समस्याएं और भ्रष्टाचार जैसी चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सुधारों की योजना भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में बनाई गई है, जिसमें तकनीकी और डिजिटल शिक्षा का विस्तार, व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास, मूल्य और नैतिक शिक्षा का समावेश, ग्रामीण शिक्षा में सुधार और समान अवसरों का सृजन शामिल है।इस नीति का उद्देश्य छात्रों की अद्वितीय क्षमताओं को पहचानना, उनका समग्र विकास करना, और भारत को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है। इस दिशा में सभी स्तरों पर सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है, ताकि शिक्षा प्रणाली प्रभावी हो सके। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय ज्ञान परंपरा एवं भारतीय संस्कृति के आलोक मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के तहत शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता एवं तीन वर्षों की शिक्षा नीति यात्रा पर केन्द्रित है।

प्राचीन काल की भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करने वाली रही है। पुराणों में ज्ञान कोअप्रतिम माना गया है। भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी अदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहां कई देशो के शिक्षार्थी ज्ञान अर्जन के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय ज्ञानविज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है। संस्कृत भाषा में ज्ञान विज्ञान की

महतीश्रृखला है जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए कुतुहल का विषय ही है। आज जहां एक ओर आधुनिक विज्ञान सम्मुन्नत अवस्थिति में दिखायी दे रहा है वहीं दूसरी ओर इसके दोष एवं नाकारात्मक प्रभाव भी दिखई दे रहे हैं।विज्ञान की प्रगति हर युग की आवश्यकता है किन्तु इसमें दूरदर्शिता एवं मानव कल्याण का भाव सर्वोपरि होनाचाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक एवं उपनिषद काल में थी, वह बौद्ध और जैन काल में भी रही यह विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से स्पष्ट परिलक्षित होता है। लेकिन इसका लोप विगत 200 से 300 वर्षों में हुआ है। (परिहार, सावित्री एवं चौहान प्रभा, 2024, पृ. 123) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इसे उचित रूप में प्रतिबिम्बित करने की आवश्यकता को समझा है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा:

प्राचीन काल से ही हमारा राष्ट्र उच्च मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं वाला रहा है, भारत की संस्कृति इस प्रकार की रही है कि भारत ने समस्त विश्व को कभी अलग-अलग देशों के रुप में स्वीकार ही नहीं किया। निम्नवर्णित श्लोक भी इस ओर ही इंगित करता है-

"अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

(महोपनिषद, अध्याय4, श्लोक71)

महोपनिषद के इस सिद्धांत के आधार पर भारत की संस्कृति समस्त विश्व को एक परिवार मानने की रही है। भारतीय हिन्दू विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: प्राचीन ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक शिक्षा विषय पर वेबिनार में कहा गया कि पाश्चात्य सभ्यता की आपाधापी एवं अंधानुकरण में हम गलती से समझने लगे कि यह सभ्यता भौतिकवाद पर टिकी है, ना कि ज्ञान और आध्यात्म पर। **भारतीय ज्ञान परंपरा कहीं विस्मर्त हो गई लगती है यद्यपि यही भारत की उन्नति, समृद्धि एवं विकास का आधार है। भारतीय ज्ञान परंपरा**से तात्पर्य है भारत की प्राचीन और समृद्ध ज्ञान प्रणाली, जो सहस्त्रों वर्षों से भारतीय समाज, संस्कृति एवं जीवनशैली का अभिन्न अंग रही है। यह परंपरा न केवल तात्कालिक ज्ञान, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी वैचारिक धारा, दर्शन, विज्ञान, गणित, कला, संगीत, चिकित्सा, योग और सामाजिक नीतियों का भी समावेश करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के मुख्य अवयव:

- **वेद एवं उपनिषद**: भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार वेद, उपनिषद, एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों पर आधारित है। वेदों में ब्रह्म, संसार की रचना, जीवन के उद्देश्य, एवं ब्रह्मांड के सिद्धांतों के विषय में गहन जानकारी निहित है। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, एवं ब्रह्म के बीच के संबंध को समझाने का गूढ़ प्रयास किया गया है।

- **दर्शनशास्त्र**: भारतीय दर्शन शास्त्र में जीवन, ब्रह्मांड, एवं आत्मा के विषय में गहन विचार किए गए हैं। यहां विभिन्न **योग दर्शन**, **न्याय दर्शन**, **सांख्य दर्शन**, **वेदांत**, **मीमांसा** तथा **वैशेषिक**की परंपराएं हैं, जो जीवन के उद्देश्य, कर्म, एवं मोक्ष पर विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

- **योग एवं आयुर्वेद**: भारतीय ज्ञान परंपरा में**योग**एवं**आयुर्वेद**को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। योग का उद्देश्य मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक शांति प्राप्त करना है, जबकि आयुर्वेद जीवन को संतुलित एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का संग्रह है।

- **गणित एवं खगोलशास्त्र**: प्राचीन भारत में गणित एवं खगोलशास्त्र काअत्यधिक योगदान रहा है। भारतीय गणितज्ञों ने **शून्य** का आविष्कार किया, **पाई (π)** के मान को समझा, एवं **अल्गोरिदम** जैसी अवधारणाओं को विकसित किया। इसके अलावा, प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्रियों ने ग्रहों, नक्षत्रों, एवं उनकी गति की सटीक गणना की थी।

- **साहित्य एवं कला**: भारतीय साहित्य, जैसे कि**महाभारत**, **रामायण**, **पुराण**, एवं**काव्यशास्त्र**, ज्ञान एवं नैतिक शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा हैं। भारतीय कला, संगीत, नृत्य, एवं थिएटर भी इस परंपरा का हिस्सा हैं, जो सांस्कृतिक एवं मानसिक संतुलन बनाए रखने में मदद करती हैं।

- **सामाजिक संगठन एवं नीतियां**: भारतीय ज्ञान परंपरा में**धर्म**, **न्याय**, एवं**राजनीति**के सिद्धांतों पर भी विचार किया गया है।**मनुस्मृति**, **अर्थशास्त्र** (चाणक्य कृत), एवं अन्य ग्रंथों में समाज की संरचना, नीति, एवं शासन की प्रणाली के बारे में गहरी समझ प्रदान की गई है।

- **सामाजिक समरसता एवं अहिंसा**: भारतीय परंपरा में अहिंसा, सत्य, एवं समरसता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। महान भारतीय नेताओं ने इन सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया एवं समाज में शांति एवं एकता स्थापित करने का बीड़ा उठाया ।

ऋग्वेद की ऋचाओं में कहा गया है कि 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' *(ऋग्वेद,1-89-1)*

अर्थात सात्विक विचार प्रत्येक दिशा से आने दो (विश्व सनातन सम्मेलन 2022)। स्वयं को किसी वस्तु से वंचित न करो, अच्छी बातों को ग्रहण करो, तभी कल्याण होगा। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की आवश्यकता को आज समस्त विश्व अनुभव कर रहा है। आवश्यकता है कि आज भारतीय ज्ञान परंपरा पर विस्तृत विचारमंथन किया जाय जिससे इसकी महत्ता का उपयोग विश्व के सर्वांगीण विकास हेतु किया जा सके जो मानव कल्याण की भावना से ओतप्रोत होने के साथ ही वैज्ञानिक विधियों से परिपूर्ण हो तथा रोजगार सृजन के स्वानुभूत अवसर प्रदान कर सके जिसमे व्यक्ति केवल नौकरी लेने वाला न बनकर नौकरी देनेवाला या स्वरोजगार के कौशल से परिपूर्ण हो।भारतीय ज्ञान परम्परा की अनेकानेक विशेषताएं है जिनमे से मुख्य निम्न हैं:

- **एकात्मता**: भारतीय ज्ञान परंपरा में जीवन के सभी पहलुओं को एक-दूसरे से जुड़ा हुआ माना गया है। यह शिक्षा, धर्म, कला, विज्ञान, एवं समाज के विभिन्न पहलुओं को आपस में जोड़कर देखने की दिशा में प्रेरित करती है। अर्थात समग्रता की और प्रेरित करती है।

- **विविधता का सम्मान**: भारतीय ज्ञान परंपरा में विभिन्न मतों एवं मार्गों का सम्मान किया गया है। उदाहरण के लिए, विभिन्न दार्शनिक संप्रदाय एक ही विषय पर अलग-अलग दृष्टिकोण रखते हैं, लेकिन इनकी वैधता को स्वीकार किया जाता है।

- **आध्यात्मिक दृष्टिकोण**: भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य न केवल भौतिक सुख की प्राप्ति है, बल्कि आत्मज्ञान एवं मोक्ष की ओर भी उन्मुख करना भी है।

इस प्रकार , भारतीय ज्ञान परंपराएक समग्र एवं समृद्ध परंपरा है, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष को गहराई से समझने की दिशा में प्रेरित करती है। यह सिर्फ तात्कालिक ज्ञान का संग्रह नहीं है, बल्कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं, आध्यात्मिक उन्नति, एवं सामाजिक विकास को भी महत्व देती है। इस परंपरा से भारतीय समाज एवं संस्कृति को कई पीढ़ियों तक समृद्धि एवं संतुलन मिला है, एवं यह आज भी शिक्षा, विज्ञान, कला एवं समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रासंगिक है।

रोज़गार सृजन हेतु भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका:

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक धरोहर नहीं है, बल्कि इसमें रोजगार सृजन के लिए महत्वपूर्ण विचार, कौशल एवं उन्नत पद्धतियाँ भी निहित हैं।भारतीय ज्ञान परंपरा एवं रोजगार सृजन निम्न प्रकार सम्बद्ध है:

1. **व्यावासिक शिक्षा एवं कौशल विकास**: भारतीय ज्ञान परंपरा में**कौशल विकास** एवं **व्यावासिक शिक्षा** का महत्व सदा से रहा है। प्राचीन भारत में **गुरुकुल** एवं **आचार्य**के माध्यम से कौशल आधारित शिक्षा दी जाती थी, जिसमें शिल्प, कृषि, चिकित्सा, वास्तुकला एवं व्यापार जैसे क्षेत्रों का गहरा ज्ञान होता था। इसी प्रकार, आज भी भारतीय ज्ञान परंपरा में **वोकेशनल ट्रेनिंग** एवं **कौशल उन्नति** की ओर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है ताकि युवा रोजगार के लिए तैयार हो सकें।

2. **आधुनिक एवं पारंपरिक उद्योगों का समन्वय**: भारतीय ज्ञान परंपरा में पारंपरिक**शिल्प**, **कला**, **कृषि** एवं **व्यापार** जैसे उद्योगों की समृद्ध परंपरा रही है। इन उद्योगों में नए तकनीकी एवं प्रबंधकीय कौशल जोड़कर, इनका पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, **हस्तशिल्प** एवं **लोक कला** को वैश्विक बाजार में प्रस्तुत करने के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म एवं मार्केटिंग रणनीतियों का प्रयोग, जिससे नए रोजगार सृजित हो।

3. **योग, आयुर्वेद, एवं वैकल्पिक चिकित्सा क्षेत्र**: भारतीय ज्ञान परंपरा में**योग**, **आयुर्वेद**, एवं**वैकल्पिक चिकित्सा**का महत्वपूर्ण स्थान है। आज के समय में, इन प्राचीन पद्धतियों को विश्वभर में अधिक स्वीकार्यता मिल रही है। इसके माध्यम से **स्वास्थ्य एवं फिटनेस उद्योग**में रोजगार के नए अवसर पैदा हो सकते हैं।**योग प्रशिक्षक**, **आयुर्वेद चिकित्सक**, एवं**स्वास्थ्य सलाहकार**के रूप में नए रोजगार सृजित किए जा सकते हैं।

4. **सामाजिक एवं पर्यावरणीय नेतृत्व**: भारतीय ज्ञान परंपरा में**सतत विकास**, **पर्यावरण संरक्षण**एवं**समाज सेवा**पर जोर दिया गया है। इसमें**नैतिक शिक्षा** एवं **धार्मिक कर्तव्यों** को रोजगार के अवसरों के रूप में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, **सतत कृषि**, **वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों** जैसे **सौर ऊर्जा** एवं **जल प्रबंधन** में कार्य कर रोजगार सृजन किया जा सकता है।

5. **शैक्षिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर**: भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े **धार्मिक ग्रंथ**, **दर्शन**, **संस्कृत** एवं **कला**के विषयों में **शिक्षक** एवं **शोधकर्ता**के रूप में नए रोजगार के अवसर बन सकते हैं। **संस्कृत**एवं अन्य भारतीय भाषाओं के जानकारों के लिए विशेष विद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में नौकरियों का सृजन किया जा सकता है।

6. **सांस्कृतिक एवं पर्यटन उद्योग**: भारतीय सांस्कृतिक धरोहर एवं ज्ञान परंपरा, जैसे**धार्मिक स्थल**, **हस्तशिल्प**, एवं **लोक कला** की वैश्विक पहचान को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन उद्योग में रोजगार सृजन की बड़ी संभावना है।**सांस्कृतिक पर्यटक गाइड**, **संग्रहालय संचालक**, एवं **स्थानीय हस्तशिल्प उत्पादकों**को रोजगार देने के अवसर उपलब्ध हो सकते हैं।

इसप्रकार भारतीय ज्ञान परंपरान केवल सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है, बल्कि रोजगार सृजन के लिए भी अत्यधिक संभावनाएँ प्रदान करती है। पारंपरिक कौशल, सांस्कृतिक धरोहर, आयुर्वेद, योग, एवं शिल्प जैसे क्षेत्रों में रोजगार सृजन की अपार संभावनाएँ हैं।**नई पीढ़ी** को **भारतीय ज्ञान परंपरा** से जोड़कर, **सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति** की दिशा में सकारात्मक कदम उठाए जा सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता पर बल देते हुए कोठारी आयोग ने स्पष्ट किया कि "यदि राष्ट्रीय प्रगति को तीव्र बनाना है तो एक सबल] सुनिश्चित एवं सुविचारित शिक्षा नीति की आवश्यकता है।" (गुरुपंच, कुबेर सिंह एवं चन्द्राकर, राजु, 2024, पृ 138)। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 कहती है कि दुनिया के विभिन्न विकसित देशों के अनुभवों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपनी भाषा, संस्कृतिएवं परम्पराओं में सुशिक्षित होने से हानि नहीं बल्कि शैक्षिक, सामाजिक एवं तकनीकी उन्नति के लिए लाभ ही मिला है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं पुनर्गठन का प्रस्ताव करती है ताकि इसका इक्कीसवीं सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों के साथ मेल तो बिठाया ही जा सके, साथ ही इसे प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत की नींव पर समृद्ध भी बनाया जा सके। इसी संदर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भारत के सभी छात्र-छात्राओं द्वारा अच्छे, सफल, मौलिक सोच वाले, परिस्थिति अनुकूल एवं रचनाशील व्यक्ति बनने के लिए जिन मुख्य विषयों, कौशलों व क्षमताओं को आवश्यक माना है उसमें 'भारत का ज्ञान' एक मुख्य विषय है। राष्टीय शिक्षा नीति-2020, 'भारत के ज्ञान' को परिभाषित करते हुए कहती है कि ''भारत के ज्ञान' में प्राचीन भारत से प्राप्त ज्ञान एवं आधुनिक**

भारत एवंइसकी सफलताओं एवं चुनोतियों में इसके योगदान के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के संबंध में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं का एक स्पष्ट भाव शामिल होगा।' (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ. 24)।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020जैसी पहल भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनः सशक्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020मेंभारतीय ज्ञान परंपराको एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह नीति भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नया रूप देने एवं इसे भारत की सांस्कृतिक एवं बौद्धिक धरोहर से जोड़ने का प्रयास करती है। इसका उद्देश्य शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा को समाहित करना है ताकि यह समग्र, समावेशी एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मजबूत हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख पक्ष:

1. परंपरागत ज्ञान प्रणालियों का समावेश: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय परंपराओं, दर्शन, साहित्य, कला एवं विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान प्रणालियों को शिक्षा में समाहित करने की वकालत करती है। यह नीति सुझाव देती है कि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भारतीय ज्ञान को समाहित किया जाए, ताकि विद्यार्थियों को भारतीय सांस्कृतिक एवं बौद्धिक धरोहर से जुड़ा अनुभव प्राप्त हो।

2. प्राचीन भारतीय ज्ञान का पुनरुद्धार: इस नीति में संस्कृत एवं अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं के महत्व को बढ़ावा देने की बात की गई है। इन भाषाओं के माध्यम से भारतीय साहित्य, दर्शन, विज्ञान, एवं कला के प्राचीन ग्रंथों एवं साहित्य को पुनः जीवित किया जाएगा, ताकि वे आज के समय में प्रासंगिक एवं उपयोगी बन सकें।

3. भारतीय भाषाओं का प्रचार-प्रसार: नीति के अंतर्गत भारतीय भाषाओं का महत्व बढ़ाने पर जोर दिया गया है। यह नीति विद्यार्थियों को भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से क्षेत्रीय एवं प्राचीन भाषाओं, को सिखाने के लिए प्रेरित करती है, ताकि भारतीय भाषाओं का संरक्षण हो सके एवं सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा मिल सके।

4. भारतीय परंपराओं से नैतिक एवं मूल्य आधारित शिक्षा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय परंपराओं एवं संस्कृतियों से जुड़े नैतिक एवं आचार-व्यवहार के सिद्धांतों को पाठ्यक्रमों में शामिल करने का सुझाव दिया गया है। इसमेंधर्म, अहिंसा, सत्याग्रहएवंसर्वोदयजैसे मूल्य शामिल हैं, जो भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं।

5. भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर आधारित पाठ्यक्रम विकास: नीति में यह भी कहा गया है कि पाठ्यक्रमों का पुनर्निर्माण किया जाए, जिसमें भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला एवं पारंपरिक विज्ञान जैसे आयुर्वेद, योग, वास्तु शास्त्र, एवं अन्य ज्ञान प्रणालियों को समाहित किया जाए। यह भारतीय संस्कृति के प्रति विद्यार्थियों में गर्व एवं समझ पैदा करेगा।

6. भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर शोध को बढ़ावा: इस नीति में भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर शोध को बढ़ावा देने के लिए शोध केंद्रों की स्थापना का भी प्रस्ताव किया गया है। इन केंद्रों में भारतीय विज्ञान, गणित, कला एवं संस्कृति के पारंपरिक ज्ञान पर गहन अध्ययन एवं शोध किया जाएगा।

7. अंतरविषयक शिक्षा का प्रोत्साहन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अंतरविषयक शिक्षा को बढ़ावा देने की बात कही गई है। इसमें पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के साथ जोड़ने का प्रस्ताव है, ताकि विद्यार्थियों को व्यापक एवं समग्र दृष्टिकोण प्राप्त हो सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा के ढांचे में समाहित करना है ताकि विद्यार्थी न केवल आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें, बल्कि वे भारतीय संस्कृति, दर्शन, एवं विज्ञान के महत्व को भी समझ सकें। यह नीति शिक्षा के क्षेत्र में समग्र विकास, सांस्कृतिक संवर्धन एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।समग्र रूप से, भारतीय ज्ञान परंपराकोराष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष महत्व दिया गया है, ताकि शिक्षा प्रणाली भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं पारंपरिक ज्ञान के साथ मेल खा सके एवं यह विद्यार्थियों के समग्र एवं सशक्त विकास में मदद कर सके।

भारतीय शिक्षा की चुनौतियाँ

1. गुणवत्ता में असमानता: भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता का अंतर बहुत व्यापक है। सरकारी स्कूलों एवं निजी स्कूलों के बीच में भी बड़ा अंतर है, जहां कुछ स्कूल अत्याधुनिक सुविधाओं के साथ शिक्षा प्रदान करते हैं, वहीं अन्य स्कूलों में बुनियादी ढांचा भी नहीं है। यह असमानता शिक्षा के अवसरों में भेदभाव का कारण बनती है।

2. शिक्षकों की कमी एवं प्रशिक्षण: भारत में योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की भारी कमी है। शिक्षक शिक्षा प्रणाली का एक अहम हिस्सा होते हैं, लेकिन उनकी कम योग्यता एवं अपर्याप्त प्रशिक्षण के कारण शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

3. मूल्य आधारित शिक्षा का अभाव: भारतीय शिक्षा प्रणाली में मुख्य रूप से शैक्षिक ज्ञान पर ध्यान दिया जाता है, जबकि जीवन के लिए महत्वपूर्ण नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को समाहित करने में कमी है। विद्यार्थियों को केवल किताबों तक सीमित रखा जाता है, जिससे उनके व्यक्तित्व का समग्र विकास नहीं हो पाता।

4. शहरी-ग्रामीण विभाजन: शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर काफी अलग है। शहरी क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता बेहतर है, जबकि ग्रामीण इलाकों में संसाधनों की कमी एवं असमर्थता के कारण शिक्षा का स्तर बहुत खराब होता है।

5. पारंपरिक पाठ्यक्रम एवं रोजगार की ओर उन्मुख नहीं होना: पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में छात्रों को विषय विशेष पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया जाता है, लेकिन उन्हें कौशल विकास, तकनीकी ज्ञान एवं रोजगार आधारित शिक्षा की कमी होती है। यह शिक्षा एवं रोजगार के बीच एक बड़ा अंतर उत्पन्न करता है।

6. भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक समस्याएँ: भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रशासनिक स्तर पर भी कई समस्याएँ हैं, जैसे भ्रष्टाचार, संसाधनों का दुरुपयोग एवं सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का ठीक से पालन न होना। ये समस्याएँ शिक्षा के सुधार में बड़ी बाधाएँ उत्पन्न करती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का कार्यान्वयन एवं भारतीय शिक्षा का भविष्य:

इस नीति के माध्यम से शिक्षा को अधिक समग्र, समावेशी, एवं छात्रों के कौशल विकास की ओर उन्मुख किये जाने हेतु प्रस्ताव है। इसमें प्रारंभिक शिक्षा, भारतीय भाषाओं का प्रचार, मल्टीडिसिप्लिनरी शिक्षा, एवं इंटरनेट एवं तकनीकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

1. तकनीकी शिक्षा एवं डिजिटल शिक्षा का विस्तार: राष्ट्रीय शिक्षा तकनीक फोरम (एनईटीएफ) की स्थापना की जाएगी ताकि तकनीक के इंडक्शन, तैनाती और उपयोग के संबंध में निर्णय लेने की सुविधा मिले। यह फोरम केंद्र और राज्यसरकारों को तकनीक संबंधी पहल से जुडी प्रमाण आधारित सलाह देगा। (पी आर एस लेजिसलेटिव रिसर्च, 2020) भविष्य में शिक्षा में तकनीकी एवं डिजिटल साधनोंका अत्यधिक उपयोग होगा। ऑनलाइन शिक्षा, ई-लर्निंग, मोबाइल लर्निंग, एवं वर्चुअल क्लासरूम जैसे डिजिटल माध्यमों का व्यापक विस्तार होगा, जिससे शिक्षा को अधिक सुलभ एवं लचीला बनाया जाएगा। कोविड काल ने डिजिटल शिक्षा की महत्ता को पहले ही स्पष्ट कर दिया है तथा आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस के जीवन में बढ़ते उपयोग ने डिजिटल शिक्षा को नितांत आवश्यक बना दिया है।

2. व्यावसायिक शिक्षा एवं कौशल विकास: भारतीय शिक्षा प्रणाली में कौशल विकास एवं व्यावसायिक शिक्षाको एक प्रमुख स्थान मिलेगा। यह विद्यार्थियों को रोजगार के लिए तैयार करेगा एवं उन्हें अपनी पसंद के अनुसार रोजगार-उन्मुख शिक्षा प्रदान करेगा। इसके तहत वोकैशनल ट्रेनिंग, इंटर्नशिप, एवं कौशल प्रमाणन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

3. मूल्य एवं नैतिक शिक्षा का समावेश: शिक्षा में मूल्य आधारित शिक्षाका समावेश किया जा रहा है, जो विद्यार्थियों को नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जागरूक बनाएगा। यह उनके समग्र विकास में मदद करेगा एवं उन्हें समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाएगा।

4. ग्रामीण शिक्षा में सुधार: सरकार की योजनाओं एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए कई कदम उठाए जा रहे है।नए स्कूलों का निर्माण, आध्यापकों का प्रशिक्षण, एवं शिक्षा का डिजिटलीकरण जैसे उपाय ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर को सुधारने का प्रयास कर रहे है।

5. मल्टीडिसिप्लिनरी एवं अंतरविभागीय शिक्षा: भविष्य में शिक्षा प्रणाली अधिक मल्टीडिसिप्लिनरी एवं इंटरडिसिप्लिनरी होगी, जो छात्रों को विभिन्न विषयों में एक साथ अध्ययन करने का अवसर प्रदान कर रही है, नीति मानती है इससे उनका समग्र विकास होगा एवं उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त होगा। हलाकि इसके द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व पर वास्तव में पड़ने वाले प्रभावों पर शोध की आवश्यकता है।

6. समान अवसरों का सृजन: शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसरोंके लिए प्रयास किए जाने हेतु कार्य किया जा रहा है। विशेष रूप से न्यूनतम संसाधन वाले छात्रोंको बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए योजनाएँ बनाई जा रही है, ताकि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिल सकें।

संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का उपयोग करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य भारतीय लोकाचार पर आधारित उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करके भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति में बदलना है। नीति में कई प्रमुख पहलुओं पर जोर दिया गया है, जिनमें हैं:छात्रों की अद्वितीय क्षमताओं को पहचानना एवं उनका पोषण करना; छात्रों का समग्र विकास; बहुविषयक शिक्षा; संकल्पनात्मक समझ; रचनात्मकता; महत्वपूर्ण सोच; नवाचार।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत में सभी बोर्डों में व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा में एकीकृत करने पर केंद्रित है। इसका लक्ष्य 2025 तक कम से कम 50% स्कूली एवं उच्च शिक्षा के छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा तक पहुँच प्रदान करना है, जिसमें उद्योग संबंधों एवं मांग-आधारित पाठ्यक्रमों पर ज़ोर दिया गया है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 माध्यमिक विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा तक व्यावसायिक शिक्षा को एकीकृत करती है, यह इस बात पर बल देती है। की प्रत्येक बच्चा कम से कम एक व्यवसाय सीखे एवं श्रम की गरिमा पर जोर दिया जाए कौशल विकास मंत्रालय द्वारा कौशल विकास हेतु कौशल विकास मिशन इसे अमली जमा पहनाने का प्रयास हो रहा है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020विशेषज्ञों के सहयोग से उद्योग जगत की उभरती जरूरतों कोपूरा करने के लिए पाठ्यक्रम को नया रूप देती है। यह प्रशिक्षुता एवं इंटर्नशिप पर जोर देती है, शिक्षा एवं उद्योग के बीच सेतु का कार्य करती है, एवं व्यावहारिक अनुभव के लिए साझेदारी को बढ़ावा देती है , जिससे छात्रों की रोजगार क्षमता बढ़ सके। नीति पूर्व शिक्षा को मान्य करने के महत्व को पहचानती है, जिससे मौजूदा कौशल वाले व्यक्तियों को औपचारिक प्रमाणपत्र प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके। इससे अनौपचारिक या गैर-पारंपरिक कौशल वाले लोगों को लाभ होता है, जिससे उन्हें अपनी विशेषज्ञता बढ़ाने एवं मान्यता प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 व्यावसायिक शिक्षा में व्यावहारिक प्रशिक्षण का समर्थन करने के लिए बुनियादी ढांचे को उन्नत करने पर जोर देती है, जिससे उद्योग मानकों के अनुरूप उच्च गुणवत्ता वाले सीखने के अनुभव सुनिश्चित होते हैं। (टीसीएस आईओएन मार्केटिंग टीम, 2024) यह छात्र विकास एवं व्यावहारिक कौशल अधिग्रहण का समर्थन करने के लिए व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण को भी प्राथमिकता देता है, जो शैक्षणिक तरीकों, उद्योग ज्ञान एवं प्रौद्योगिकी एकीकरण पर ध्यान केंद्रित करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान-विज्ञान की प्रतीक है, जहाँ शिक्षण एवं अधिगम, लोक एवं परलोक, कर्म एवं धर्म का अद्भुत समन्वय है। शिक्षा एवं संस्कृति के मध्य भारतीय समाज के विकास हेतु परम आवश्यक है की शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञानार्जन न होकर सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करना हो। तब ही हम एक संपूर्ण समाज एवं प्रगतिशील समाज की संकल्पना को सार्थक कर पाएंगे।राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सुदूर अतीत से चली आ रही ज्ञान की आवयविक अखण्डता के अनुरूप अंतरानुशासनिक अध्ययन एवं अनुसंधान पर बल देती है। बहुविषयक शिक्षा से व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यापक होता है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 नवाचारों को प्रोत्साहित करने के अवसर जुटा रही है। यह नीति भारतीय भाषाओं, कला एवंसंस्कृति को बढ़ावा देने पर विशेष जोर देती है एवं शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रमों को एकीकृत करते हुए भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रवाह में इस असंतुलन को दूर करने का प्रयास करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सार्थक क्रियान्वयन के लिए जरूरी है कि पाठ्यचर्या में भारतीय ज्ञान प्रणाली का समावेश हो।भारतीय शिक्षा प्रणाली को भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में भविष्य में सुधारने एवं उसे अधिक समग्र, समावेशी एवं रोजगारोन्मुख बनाने के लिए अनेक प्रयास उठाए जा रहे हैं।डिजिटल शिक्षा, कौशल विकास, एवंमूल्य आधारित शिक्षा आदि के माध्यम से भारतीय शिक्षा व्यवस्था को बेहतर एवं अधिक प्रभावी एवं रोजगारोन्मुख बनाने की दिशा में निरंतर कार्य हो रहा है। यह सुनिश्चित करेगा

कि भारत की आने वाली पीढ़ियाँ शिक्षा के मामले में वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकें। जब शिक्षा प्रणाली इस लक्ष्य की ओर केन्द्रित होगी तभी भारत न केवल आर्थिक एवं तकनीकी रूप से बल्कि संस्कृतिक नैतिक एवं व्यावसायिक रूप से भी एक सशक्त राष्ट्र बन सकेगा। परन्तु इसके कुशल कार्यान्वयन हेतु केंद्र, राज्यों, केंद्र शासित प्रदेशों, उच्च शिक्षण संस्थानों, नियामक एजेंसियों / नियामक निकायों एवं अन्य सभी संबंधित हितधारकों के सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है वही इसके भविष्य की दिशा को स्पष्ट एवं सक्षम आकार प्रदान करेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लगभा तीन वर्षों में भारत में शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। हालांकि, पूरी नीति के प्रभावी क्रियान्वयन एवं अपेक्षित परिणाम द्रष्टिगत होने हेतु अधिक समय की आवशयकता है, परन्तु इन तीन वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर कार्य आरम्भ हो चुका है- यथा भारतीय ज्ञान परम्परा क्या है एवं नवीन शिक्षा नीति इससे क्या अपेक्षाए रखती है इसे स्पष्ट रूप से शिक्षा जगत से जुड़े सभी स्तरों के व्यक्तियों को समझाए जाने की परम आवश्यकता है जिस पर बहुत अधिक कार्य हो रहा है एवं इस हेतु शिक्षा मंत्रालय एवं विभिन्न शैक्षिक एजेंसियों द्वारा ओरिएंटेशन एवं सेंसिटाइजेशन कार्यक्रम चलाये जा रहे है। आने वाले वर्षों में इसके प्रभाव एवं सुधार एवंअधिक स्पष्ट द्रष्टिगत होंगे।कुछ सरकारी पहल एवं योजनाएंक्रियान्वयित भी की गई है यथा राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के तहत विभिन्न योजनाएं जिनके अंतर्गत स्मार्टक्लासरूम एवं स्कूल-निर्माण योजनाएं आती है तथा अन्य कार्यक्रम आरम्भ किए गए हैं। सरकारी विद्यालयों को भी डिजिटल रूप से सशक्त बनाने हेतु प्रयास हो रहे है, हिंदी एवं मातृभाषा की स्वीकार्यता को बढ़ाये जाने की नितांत आवश्यकता है पाठ्यगत एवं पाठेत्तर गतिविधियों के उचित समन्वयन तथा संस्कृत भाषा की स्वीकार्यता आदि जैसे मुद्दे चुनौती पूर्ण है।विषद वैज्ञानिक एवं समृद्ध भारतीय ज्ञान परंपरा की लोगो के मध्य स्वीकार्यता बढ़ाने एवं मैकाले की शिक्षा पद्धति की गहरी फैली जड़ो को समाप्त होने में अभी समय लगेगावस्तुतः अभी लम्बा रास्ता तय होना बाकी है।

संदर्भ सूची

1. परिहार, सावित्री एवं चौहान प्रभा (2024). प्राचीन ज्ञान परंपरा और इतिहास. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एनहांस्ड रिसर्च इन एजुकेशनल डेवलपमेंट (IJERED) ISSN: 2320-8708, Vol. 12 Issue 1, Jan.-Feb., 2024, Impact Factor: 8.376 Page | 123https://erpublications.com/uploaded_files/download/_nrlNq.pdf
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep_update/NEP_final_HI_0.pdf
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 (2020) रिपोर्ट का सारांश. पी आर एस लेजिसलेटिव रिसर्च. https://prsindia.org/files/policy/policy_committee_reports/Hindi%20Committee%20Report%20Summary%20-%20National%20Education%20Policy%202020_0.pdf
4. गुरुपंच, कुबेर सिंह एवं चन्द्राकर, राजु (2024). भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. International Journal of Reviews and Research in Social Sciences. 12(2):137-9. doi: 10.52711/2454-2687.2024.00023https://ijrrssonline.in/Issues.aspx?VID=12&IID=2

5. टीसीएस आईओएन मार्केटिंग टीम (2024). एनईपी 2020 एवं व्यावसायिक शिक्षा: भारत के भावी कार्यबल में बदलाव. टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज लिमिटेड https://www.tcsion.com/blog/NEP-2020-and-Vocational-Education-Transforming-Indias-Future-Workforce/

7. भारतीय हिन्दू विश्वविद्यालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: प्राचीन ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक शिक्षा https://rajbhawan.rajasthan.gov.in/content/dam/rajbhawan/pdf/speech/2020/September/speech%2022.%209%20.%202020%20(2).pdf
8. https://www.education.gov.in/nep/about-nep
9. विश्व सनातन सम्मेलन (2022). सनातन धर्म के मार्ग पर चलें, अपने इतिहास को जानें, सनातन परंपरा एवं संस्कृति को अंगीकृत कर स्वयं को गौरान्वित करें. सनातन धर्म https://sanatanmission.com/tag/mahopnishad/
10. https://vikramuniv.ac.in/files/Information/Final_Hindi.pdf

51

वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में आरक्षण नीति का उद्भव: एक समग्र विश्लेषण

श्वेता

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. रजनी रंजन सिंह

आचार्य, शिक्षा विभाग, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत विविधताओं से परिपूर्ण एक सांस्कृतिक राष्ट्र है। भारत में आरक्षण अथवा आरक्षण नीति की संकल्पना की शुरुआत औपनिवेशिक शासनकाल से देखने को मिलती है। भारत का बड़ा भू-भाग सदियों तक विदेशी ताकतों के अधीन रहा और इस राजनैतिक गुलामी व भारतीय समाज के अनवरत संघर्ष में उलझे होने के कारण सामाजिक समरसता व भारतीय संस्कृति की स्वाभाविक समावेशिता की शक्ति दुष्प्रभावित हुई| मुख्य रूप से औपनिवेशिक ताकतों में सल्तनत, मुग़ल एवं ब्रिटिश सामंतवादी तंत्र ने भारतीय समाज में जातिगत व धर्मगत विद्वेष, छुआ-छूत, शोषण जैसी अन्य कुरीतियों, प्रथाओं एवं शब्दाडंबरों इत्यादि के माध्यम से भारतीय समाज के ताने-बाने को खंडित कर दुष्प्रभावित किया। फलतः समाज में आर्थिक व सांस्कृतिक रूप से विषमता उत्पन्न हुई एवं समाज का एक बड़ा वर्ग सीमान्त व हाशिये के समाज के रूप में परिवर्तित हो गया। ब्रिटिश काल में तुष्टीकरण की नीति के तहत एक सतही तौर पर हाशिये के समूहों के लोगों के लिए सामाजिक न्याय एवं समान अधिकारों की नींव रखने हेतु आरक्षण के विषय पर चर्चा की शुरुआत की गयी। इस संदर्भ में, ब्रिटिश सरकार ने समाज में व्याप्त असमानता, अन्यायपूर्ण कुरीतियों, प्रथाओं इत्यादि को दूर करने के लिए सकारात्मक क़दम उठाया। इस सुधार कार्यों से जटिल सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त ऐतिहासिक शोषण एवं बुराई के विरुद्ध सकारात्मक कदम का निर्णय कर समान अधिकारों की चेतना को जन्म दिया। जिससे कि हाशिया पर स्थित समूहों[2] को समान अवसर एवं समान अधिकार प्रदान किए जा

[2] भारत में आरक्षण एक जटिल उपकरण है जो ऐतिहासिक अन्यायों को दूर करने और विभिन्न हाशिये पर खड़े समुदायों के सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाया गया है। जाति आधारित आरक्षण में 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' के लिए प्रावधान शामिल हैं, जो संविधान (1950) में सदियों से चली आ रही सामाजिक बहिष्करण और भेदभाव से लड़ने के लिए स्थापित किए गए थे। 'मंडल आयोग' (1990) की सिफारिशों के आधार पर 'अन्य पिछड़ा वर्ग' के लिए आरक्षण का दायरा बढ़ाया गया।

2019 में **'आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग'** का आरक्षण सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से लागू किया गया। 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन (1992) के माध्यम से **महिलाओं** के लिए स्थानीय शासन निकायों और शैक्षिक संस्थानों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए लिंग आधारित आरक्षण अनिवार्य किया

सके। यह शोध पत्र भारत में आरक्षण नीति के शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक प्रकृति, क़ानूनी आधार और वर्तमान परिस्थितियों में हाशिया पर स्थित समूहों की चुनौतियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ, यह भारत एवं अन्य देशों के साथ एक समान प्रकार की नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन का सामाजिक न्याय की गारंटी के लिए वैश्विक निहितार्थ पेश करता है।

शोध उद्देश्य एवं विधि

यह आलेख वस्तुतः गुणात्मक शोध विधि पर आधारित है, जिसमें प्रमुख रूप से ऐतिहासिक अध्ययन और तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है। सभी प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों जैसे कि - ऐतिहासिक साहित्यों, क़ानूनी दस्तावेजों, सरकारी प्रतिवेदनों और अकादमिक पत्रिकाओं इत्यादि से तथ्यों को एकत्रित किया गया है। इसमें भारत में आरक्षण नीति के संदर्भ में विधायी और न्यायिक घटनाक्रमों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक अध्ययन कर यह समझने का प्रयास किया गया है, कि किस प्रकार की समान नीतियाँ अन्य राष्ट्रों में शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में क्रियान्वित की जाती है? अत: यह लेख पूर्व में प्रकाशित शोधों का आम लोगों पर प्रभाव और क्रियान्वित प्रभावशाली नीतियों की आलोचनाओं एवं चुनौतियों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है।

भारत में आरक्षण नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में आरक्षण के प्रारंभ की दास्तान ब्रिटिश शासनकाल के दौरान हुई। जब औपनिवेशिक सरकार ने भारतीय समाज को बांटने एवं तोड़ने वाली गहरी सामाजिक असमानताओं को दूर करने की कोशिश की। सर्वप्रथम सन् 1882 में हंटर आयोग के द्वारा औपचारिक रूप से हाशिया पर स्थित समूहों के लिए सकारात्मक क़दम उठाने का विचार प्रस्तावित किया गया था। यह प्रभावशाली कदम विलियम हंटर एवं ज्योतिबा फूले जैसे सुधारकों से प्रेरित था। यह प्रस्ताव पिछड़ी जातियों द्वारा सामना किए जा रहे, गंभीर भेदभाव के प्रति एक प्रभावशाली कदम उठाना था और इसका उद्देश्य हाशिया पर स्थित समूहों के लिए शिक्षा को अधिक सुलभ बनाना था (देशपांडे, 2013)। सन् 1933 में, ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैकडोनाल्ड ने 'सांप्रदायिक पुरस्कार' पेश किया। जिसमें औपचारिक रूप से विधायी निकायों में विभिन्न धार्मिक व सामाजिक समुदायों जैसे दलितों (पिछड़े वर्ग के रूप में) आदि के लिए सीटें आरक्षित की गई (गैलेंटर, 1984)।

गया। **'नि:शक्त जन अधिकार अधिनियम' (2016)** के तहत विकलांग व्यक्तियों के लिए नौकरियों और शिक्षा में अवसर आरक्षित किए गए हैं, ताकि समावेशिता को बढ़ावा दिया जा सके।

धार्मिक आधार पर आरक्षण सीधे निर्दिष्ट नहीं है, लेकिन कुछ राज्यों में पिछड़ी मुस्लिम समुदायों को समर्थन प्रदान किया जाता है। पूर्वोतर राज्यों में जातीय आधार पर विशेष रूप से जनजातीय समुदायों के लिए आरक्षण का महत्व है। 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व संवैधानिक रूप से सुनिश्चित किया गया है, ताकि उनकी विधायी भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके।

भारत की स्वतंत्रता के उपरांत भी आरक्षण नीति का अत्यंत विस्तार हुआ। भारत में आरक्षण नीति जाति पर आधारित है। सन् 1950 में भारतीय संविधान में **अनुच्छेद 15(4)** [3]**और 16(4)**[4] के अनुसार सकारात्मक क़दम की क़ानूनी रूपरेखा प्रस्तुत की गई । जिसमें शैक्षिक संस्थानों और सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया (आस्टिन, 1999)। संविधान के प्रमुख निर्माता डॉ॰ बी॰ आर॰ अंबेडकर ने यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, कि ऐतिहासिक रूप से उत्पीड़ित समुदायों का उत्थान इन प्रावधानों से हो सके। वहीं संविधान के **अनुच्छेद 340**[5] के तहत स्थापित मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की पहचान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें यह भी कहा गया कि अन्य पिछड़ा वर्ग को भी विशेष प्रावधानों की आवश्यकता है (मंडल, 1980)। सन् 1991 में मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू किया गया। सरकारी नौकरियों में 27% कोटा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए सुनिश्चित किया गया। यह भारतीय सामाजिक न्यायिक प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ (जैफरलॉट, 2003)।

भारत में आरक्षण नीति का उद्भव

भारत में आरक्षण नीति का उद्भव गहरी सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय के निरंतर प्रयासों को दर्शाता है। प्रारंभ में ऐतिहासिक अन्याय को ठीक करने के लिए एक अस्थायी उपाय के रूप में इस नीति का शुभारंभ किया गया था। यह नीति पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण रूप से विकसित हुई है। औपनिवेशिक काल में आरक्षण

---

[3] अनुच्छेद 15(4):

"इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्ही वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।"

[4] अनुच्छेद 16(4): "इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियां या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।"

[5] अनुच्छेद 340

1."राष्ट्रपति भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किए जाने चाहिए उनके बारे में और उसे प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किए जाने चाहिए और जिन शर्तों के अधीन में अनुदान किए जाने चाहिए उनके बारे में सिफारिश करने के लिए, आदेश द्वारा, एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझें और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परीनिश्चित की जाएगी।"

2. "इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किए जाएंगे और जिसमें ऐसी सिफारिशें की जाएगी जिन्हें आयोग उचित समझे।"

3. "राष्ट्रपति इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति, उसे पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद के प्रत्यक्ष सदन के समक्ष रखवाएगा।"

नीति की जड़े खोजीं जा सकती हैं। ब्रिटिश सरकार ने भारत के जटिल सामाजिक पदानुक्रम को सुव्यवस्थित संचालन के लिए न केवल उपाय पेश किए हैं वरन् हाशिया पर स्थित समूहों के द्वारा अनुभव किए गए गंभीर नुक़सान को स्वीकार करने के लिए भी सहयोग किया। फिर सन् 1882 में हण्टर आयोग द्वारा प्रारंभिक जाति आधारित सकारात्मक कार्यवाही की अवधारणा विलियम हंट और ज्योतिबा फूले जैसे प्रभावशाली सुधारकों से प्रेरित थी, जिसने भविष्य की नीतियों की नींव रखी (चंद्रा और कुमार, 2023)। सन् 1882 में, हंटर आयोग के द्वारा औपचारिक रूप से हाशिया पर स्थित समूहों के लिए जाति आधारित सकारात्मक कदम के रूप में प्रारंभिक अवधारणा ने भविष्य की नीतियों की नींव रखी, जो की विलियम हंटर और ज्योतिबा फुले जैसे सुधारकों से प्रभावित थी। सन् 1933 में, ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैकडोनाल्ड ने एक सांप्रदायिक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें औपचारिक रूप से दलितों सहित विभिन्न धार्मिक और सामाजिक समुदायों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षण की शुरुआत की गई।

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व आरक्षण नीति का अत्यंत विस्तार हुआ है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के माध्यम से आरक्षण के लिए एक क़ानूनी ढांचा प्रदान किया गया। जिसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सरकारी सेवाओं में सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया। इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 340 के अनुसार, मंडल आयोग ने अन्य पिछड़े वर्ग की पहचान करने और उनके लिए सेवाओं में 27% आरक्षण की सिफ़ारिश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह सिफ़ारिश सन् 1991 में राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल के बीच लागू की गई थी (चंद्रा और कुमार 2023)। यह विस्तार भारत की सामाजिक न्यायिक नीति में एक प्रमुख मील का पत्थर साबित हुआ।

सन् 1992 में, आरक्षण नीति के उद्भव में एक ऐतिहासिक चरण इन्द्रा सहानी मामले के साथ आया। जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27% आरक्षण को बरकरार रखा। लेकिन कुल आरक्षण पर 50% की सीमा लगा दी। न्यायालय ने 'क्रीमीलेयर'[6] की अवधारणा भी प्रस्तुत की, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि आरक्षण का लाभ

---

[6] 'क्रीमी लेयर' भारतीय आरक्षण नीति में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका उद्देश्य अन्य पिछड़ा वर्ग के भीतर आर्थिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण करना है। यह उन व्यक्तियों और परिवारों पर लागू होती है जो सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं, लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत होती है कि उन्हें आरक्षण के लाभ की आवश्यकता नहीं होती।

सरकार द्वारा तय किए गए आर्थिक मापदंडों के अनुसार, अगर किसी अन्य पिछड़ा वर्ग के परिवार की वार्षिक आय एक निश्चित सीमा से अधिक होती है, तो उन्हें 'क्रीमी लेयर' में रखा जाता है। यह सीमा समय-समय पर संशोधित की जाती है ताकि आरक्षण का लाभ वास्तव में वंचित वर्गों तक पहुंच सके। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आरक्षण का फायदा केवल उन लोगों को मिले जो वास्तव में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हैं।

यह अवधारणा आरक्षण नीति के दुरुपयोग को रोकने में भी सहायक है। अगर किसी अन्य पिछड़ा वर्ग के परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी बेहतर हो चुकी है कि वे सामान्य श्रेणी के लोगों की तरह संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं, तो उन्हें 'क्रीमी लेयर' मानते हुए आरक्षण से बाहर कर दिया जाता है। इस प्रकार, 'क्रीमी लेयर' आरक्षण नीति के प्रभावी कार्यान्वयन में संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे इसका लाभ सही जरूरतमंदों तक पहुंच सके।

उन लोगों तक पहुँचे, जिन्हें इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। विशेष रूप से पहली पीढ़ी जो सरकारी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए इच्छुक है (देशपांडे, 2013)।

वर्तमान समय में भी आरक्षण नीति में संशोधन जारी है। जो सन् 2019 में, जाति आधारित आरक्षण की माँग से परे जाकर समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए 10% आरक्षण की शुरुआत के साथ एक महत्वपूर्ण बदलाव लाया गया (भारत सरकार, 2019)। इस निर्णय ने पारंपरिक जाति-आधारित आरक्षण प्रणाली से प्रस्तान का संकेत दिया और आर्थिक असमानताओं को संबोधित करने के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को भी रेखांकित किया। एक अस्थायी विकल्प के रूप में कल्पना किए जाने के बावजूद, आरक्षण नीति समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं की चुनौतियों का सामना करते हुए आज भी विद्यमान् है (जैफरलॉट, 2020)। आरक्षण नीति का विस्तार भारत की जनता के समक्ष पूर्ण रूप से समानता प्राप्त करने की दिशा में निरंतर प्रयासों को दर्शाता है (कुमार, 2021)।

भारत की आरक्षण नीति के उद्भव की तुलना एक नदी से की जा सकती है, जिसने के साथ समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप अपना रास्ता बदल लिया है। प्रारम्भ में, नीति का उद्देश्य केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विरुद्ध हुए ऐतिहासिक अन्याय के ख़िलाफ़ ध्यान केंद्रित करना था। परंतु बाद में, मंडल आयोग की सिफ़ारिश के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग को शामिल करने के लिए नीति का विस्तार किया गया है (मंडल आयोग, 1980)। फिर सन् 1992 में, सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप से आरक्षण को 50% तक कर दिया गया। इस प्रकार, सकारात्मक क़दमों एवं योग्यता के बीच संतुलन बिठाने का प्रयास किया गया (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 1992)। वहीं सन् 2019 में, आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए 10% आरक्षण की शुरूआत ने नीति के क्षेत्र को और विस्तृत कर दिया। जिससे सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिए चल रहे प्रयासों को उजागर किया (भारत सरकार, 2019)।

वैश्विक स्तर पर आरक्षण नीति का उद्भव

वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों में आरक्षण नीति के उद्भव एवं क्रियान्वयन ने ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने और सामाजिक असमानता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह नीतियां हालांकि दायरे और अनुप्रयोग में भिन्न है, परंतु एक समान लक्ष्य साझा करती हैं। जिसका उद्देश्य हाशिया पर स्थित समुदायों के लिए समावेशिता और न्याय संगत प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देना था (देशपांडे, 2013)।

सन् 1960 के दशक में **संयुक्त राज्य अमेरिका** में, सकारात्मक क़दम की अवधारणा एक व्यापक नागरिक अधिकार आंदोलन के रूप में उभरी। इस नीति का उद्देश्य नस्लीय भेदभाव का मुक़ाबला करना और शैक्षणिक संस्थानों एवं कार्यस्थलों के भीतर विविधता को बढ़ावा देना था (एंडरसन, 2004)। नागरिक अधिकार अधिनियम, 1964 और कार्यकारी आदेश 11,246 जैसे प्रमुख विधायी उपाय, यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण थे कि अल्पसंख्यकों विशेष रूप से अफ़्रीकी-अमेरिकियों को समान अवसर प्रदान किए जाएं (यू० एस० सामान रोज़गार अवसर आयोग, 2001)। उपरोक्त क़दमों से उन प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करने के लिए एक रूपरेखा तैयार की गई। जो युगों से चली आ रही ग़ुलाम और अलगाव का शिकार बनी हुई थी (काट्ज़नेलसन, 2005)।

सन् 1994 में, **दक्षिण अफ़्रीका** के अंतर्गत रंगभेद की नीति की समाप्ति ने देश के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया। नई लोकतांत्रिक सरकार ने काले बहुसंख्यकों के बहिष्कार और हाशिया पर स्थित समूहों पर जाने के निवारण के लिए सकारात्मक कदम का उपाय पेश किया (सीकिंग और नैट्स, 2005)। सन् 1998 का रोज़गार समानता अधिनियम एक महत्वपूर्ण विधायी उपाय था, जिसका उद्देश्य रोज़गार में समान अवसर और निष्पक्ष व्यवहार को बढ़ावा देना था (दक्षिण अफ़्रीकी सरकार, 1998)। यह उपाय ऐतिहासिक रूप से वंचित दक्षिण अफ़्रीकी लोगों को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था और समाज में एकीकृत करने के लिए आवश्यक था (एडम, 2000)।

वही **ब्राज़ील** का दृष्टिकोण सकारात्मक क़दमों के संदर्भ में विशेष रूप से शिक्षा और सरकारी रोज़गार के क्षेत्र में, नस्लीय और सामाजिक - आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयास था। विश्वविद्यालयों और सरकारी पदों में देश की प्रतिबद्धता कोटा की शुरुआत अफ़्रीकी-ब्राज़ीलवासियों एंव अन्य हाशिया पर स्थित समूहों के लिए व्यापक पहुँच तथा प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करती है (टेलस, 2004)। यह उपाय सामाजिक न्याय और समावेशन को बढ़ावा देने के लिए ब्राज़ील के द्वारा किए जा रहे प्रयासों को दर्शाते हैं (हटन, 2004)।

यूरोप में फ़्रान्स और यूनाइटेड किंगडम जैसे देशों ने अमेरिका की तुलना में अधिक संयमित सकारात्मक उपायों को अपनाया है। बहरहाल, शैक्षिक और रोज़गार क्षेत्रों में विविधता और समावेशिता को बढ़ाने के उद्देश्य से लक्षित कार्यक्रम कम प्रतिनिधित्व वाले समुदायों के लिए सामाजिक और आर्थिक बाधाओं को ख़त्म करने के लिए चल रहे प्रयासों को उजागर करते हैं (ब्लीच, 2003; मोडूड, 2005)।

वैश्विक स्तर पर आरक्षण नीति के उद्भव से ऐतिहासिक अन्यायों को दूर करने और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने की साझा प्रतिबद्धता का पता चलता है। हालाँकि यह सभी नीतियाँ क्रियान्वयन के स्तर पर भिन्न-भिन्न प्रकार से लागू की गई। परंतु समाज में गहरी असमानताओं से पूर्ण समानता प्राप्त करने की सार्वभौमिक चुनौती को उजागर करती है (सौवेल, 2004)।

परिचर्चा

भारत और वैश्विक स्तर पर आरक्षण नीति का उद्भव और कार्यान्वियन, सामाजिक समानता एवं समान अधिकारों को प्राप्त करने के लिए चल रहे संघर्षों को उजागर करता है। जबकि इन नीतियों ने हाशिया पर रहने वाले समुदायों के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किए हैं। उन्होंने निष्पक्षता, योग्यता और सकारात्मक क़दमों का दीर्घकालिक प्रभाव के बारे में चिंतन मनन आरंभ कर दिया (साहू, 2009; साहू 2021)। भारत में आरक्षण नीति की सराहना और आलोचना दोनों ही की गई है। समर्थकों का तर्क है, कि यह ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों के उत्थान और प्रमुख क्षेत्रों में उनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए यह एक आवश्यक उपकरण है (साहू, 2009)। वही आलोचकों का तर्क हैं, कि यह नीति जाति के आधार पर विभाजन को बढ़ावा देती है और योग्यता आधारित चयन को कमज़ोर कर देती है (साहू, 2021)। 'क्रीमीलेयर' अवधारणा की शुरुआत, जो ओबीसी श्रेणी के भीतर अधिक आर्थिक रूप से उन्नत व्यक्तियों को आरक्षण प्राप्त करने से बाहर रखती है, और आर्थिक मापदंडों पर ध्यान केंद्रित करती है। हांलांकि यह उपाय इन चिंताओं को दूर करने और यह सुनिश्चित करने के प्रयासों को दर्शाता है, कि आरक्षण का लाभ उन लोगों तक पहुँचे जिनको वास्तविक में इसकी अधिक आवश्यकता है (साहू 2009; साहू 2021)।

इसी प्रकार, वैश्विक स्तर पर भी सकारात्मक क़दमों को कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सकारात्मक क़दम कई कानूनी चुनौतियों का विषय रही है। वहीं आलोचकों का तर्क है, कि यह विपरीत भेदभाव का गठन करती है (एंडरसन, 2020)। इन चुनौतियों के बावजूद, नीति ने शैक्षणिक संस्थानों और कार्यस्थलों में विविधता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेष रूप से नस्लीय असमानता को दूर करने में (स्मिथ, 2019)। दक्षिण अफ्रीका में, काले बहुसंख्यकों को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था में एकीकृत करने में सकारात्मक क़दमों की सफलता महत्वपूर्ण रही है। हालाँकि नीति को आर्थिक असमानता को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करने के लिए कठोर आलोचना का भी सामना करना पड़ा है (मिसिमांग, 2018)। इसी प्रकार, ब्राज़ील में कोटा की शुरुआत से हाशिया पर स्थित समूहों के लिए शिक्षा और रोज़गार तक पहुँच में सुधार हुआ है। लेकिन सामाजिक समावेश सामंजस्य पर नीति के दीर्घकालिक प्रभाव के बारे में सवाल विद्यमान् है (सिल्वा, 2001)।

भारत और वैश्विक स्तर पर आरक्षण नीति का उद्भव ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने की जटिलताओं को रेखांकित करता है। इन नीतियों में सकारात्मक क़दमों की आवश्यकताओं को योग्यता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के साथ संतुलित करना चाहिए (देशपांडे, 2022)। जैसे-जैसे देश इन नीतियों को परिष्कृत करना जारी रखते हैं। वही यह सुनिश्चित करना चुनौती बनी रहती है, कि वह असमानता के नए रूपों को बनाए रखें बिना सामाजिक समानता को प्रभावी ढंग से बढ़ावा दें (कुमार, 2023)।

सारांश और निहितार्थ

वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे आरक्षण नीति के लिए संघर्ष की दास्तान सामाजिक न्याय, समानता एवं अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रमाण है, कि आरक्षण नीति जैसे उपायों ने कल्याणकारी राज्य में हाशिया पर स्थित समूहों को समतामूलक अवसर प्रदान किए हैं। जिससे ऐतिहासिक गलतियों को दूर करने में उचित सकारात्मक क़दमों से सुधार करने में सहायता प्राप्त हो। यह शोध इस तथ्य को भी उजागर करता है, कि समाज में गहरी असमानताओं से पूर्ण समानता प्राप्त करने की जटिलताओं को कैसे रेखांकित किया जा सकता हैं।

भारत में आरक्षण नीति का उद्भव औपनिवेशिक शासन काल में लाये गए सकरात्मक उपायों में देखने को मिलता है। जिसने एक व्यापक प्रणाली विकसित करने और कल्याणकारी राज्य को आकार दिया। इसमें सकारात्मक कदम के साथ वैश्विक अनुभव देखने को मिलते हैं। जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील इत्यादि देशों ने सामाजिक समानता के लिए विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों से कदम उठाए। समय के साथ-साथ प्रत्येक देश इन नीतियों को परिष्कृत करना जारी रखता है और ऐसे सकारात्मक उपाय जो योग्यता और सामाजिक बंधुत्व के सिद्धांत पर आधारित हैं उनको बढ़ावा देता है। प्रत्येक राष्ट्र को सकारात्मक कदमों की आवश्यकता को संतुलित करने की चुनौती का सामना करना पड़ता हैं। यह कहना गलत नहीं होगा, कि अनेकों चुनौतियों के बावजूद समानता की ओर यात्रा जारी है और आरक्षण नीति विवादों के बीच भी एक महत्वपूर्ण उपकरण बनी हुई है। सफलताओं और चुनौतियों दोनों से सीखकर, समाज एक ऐसे भविष्य की ओर बढ़ना जारी रख सकता है, जहाँ सभी व्यक्तियों को शिक्षा के माध्यम से अपनी पूरी क्षमता एवं संपूर्ण विकास करने का अवसर प्राप्त हो।

संदर्भ सूची

1. एडम, एच. (2000). द पालिटिक्स ऑफ रिड्रेस साउथ अफ्रीकन स्टाइल एफर्मेटिव एक्शन. *जर्नल ऑफ़ मॉडर्न अफ़्रीकन स्टडीज़*, 38(3), 451-470
2. एंडरसन, ई. (2020). *द इंपरेटिव ऑफ इंटीग्रेशन*. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस
3. एंडरसन, टी.एच. (2004). *द परस्यूट ऑफ फेयरनेस: ए हिस्ट्री ऑफ़ एफर्मेटिव एक्शन*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
4. ऑस्टिन, जी. (1999). *वर्किंग ए डेमोक्रेटिक कांस्टीट्यूशन: द इंडियन एक्सपीरियंस*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
5. ब्लीच, ई. (2003). *रेस पॉलिटिक्स इन ब्रिटेन और फ्रांस: आइडियास और पॉलिसी मेकिंग सींस द 1960*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
6. चंद्रा, एम., और कुमार, पी. (2023). रिजर्वेशन पॉलिसी इन इंडिया: स्कोप, डेवलपमेंट, हिस्ट्री एंड एंप्लॉयमेंट राइट्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स लॉ रिव्यू*, 2(4), 1-58 https://humanrightlawreview.in/wp-content/uploads/2023/07/Reservation-Policy-in-India-Scope-Development-History-and-Employment-Rights.pdf
7. देशपांडे, ए. (2013). एफर्मेटिव एक्शन इन इंडिया. *भारतीय संविधान की ऑक्सफोर्ड हैंडबुक*
8. देशपांडे, ए. (2022). एफर्मेटिव एक्शन इन इंडिया. *जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स*, 36(2), 45-68
9. देशपांडे, एस. (2013). *कंटेंपरेरी इंडिया: ए सोशियोलॉजिकल व्यू*. पेंगुइन बुक्स
10. देशपांडे, एस. (2013). एक्सक्लूसिव इनिक्वालिटीज: मेरिट, कास्ट, एंड डिस्क्रिमिनेशन इन इंडियन हायर एजुकेशन. *इकोनामिक एंड पॉलीटिकल वीकली*, 48(20), 52-59
11. गैलेंटर, एम. (1984). *कंपटिंग इक्वालिटीज: लॉ एंड द बैकवर्ड क्लासेस इन इंडिया*. कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस
12. भारत सरकार. (2019). द कॉन्स्टिट्यूशन एक्ट (103वॉं अमेंडमेंट) 2019. मिनिस्ट्री ऑफ़ लॉ एंड जस्टिस
13. जैफ्रेलॉट, सी. (2003). *इंडिया'एस साइलेंट रिवॉल्यूशन: द राइज ऑफ़ द लोअर कॉस्ट इन नॉर्थ इंडिया*. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस
14. जैफ्रेलॉट, सी. (2020). *इंडिया'एस साइलेंट रिवॉल्यूशन: द राइज ऑफ़ द लोअर कॉस्ट इन नॉर्थ इंडिया* (द्वितीय संस्करण). कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस
15. कैटज़लसन, आई. (2005). *व्हेन एफर्मेटिव एक्शन वास व्हाइट: एन अनटोल्ड हिस्ट्री ऑफ़ रेसियल इनिक्वालिटी इन 20th सेंचुरी अमेरिका*. डब्ल्यू.डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी
16. कुमार, ए. (2021). *रिजर्वेशन पॉलिसी इन इंडिया: डाइमेंशंस एंड इश्यूज*. सेज प्रकाशन
17. कुमार, आर. (2023). रिजर्वेशन पॉलिसीज एंड सोशल इक्विटी इन इंडिया. *ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस*
18. मंडल, बी.पी. (1980). *रिपोर्ट ऑफ़ द बैकवर्ड क्लासेस कमिशन*. भारत सरकार
19. मंडल आयोग. (1980). *रिपोर्ट ऑफ़ द बैकवर्ड क्लासेस कमिशन*. भारत सरकार

20. मसिमंग, एस. (2018). एफर्मेटिव एक्शन इन साउथ अफ्रीका: सक्सेसेस एंड चैलेंजिस. *साउथ अफ्रीकन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स*, 86(3), 289-310.
21. साहू, एन. (2009). रिजर्वेशन पॉलिसी एंड इट्स इंप्लीमेंटेशन एक्रॉस डोमैंस इन इंडिया. ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन. https://www.orfonline.org/research/reservation-policy-and-its-implementation-across-domains-in-india/
22. साहू, एस. (2021). रिजर्वेशन सिस्टम इंडिया एंड एब्रॉड इस रिजर्वेशन इस स्टाइल नीडेड? लॉयर्स क्लब इंडिया. https://www.lawyersclubindia.com/articles/reservation-system-india-and-abroad-is-reservation-still-needed-14200.asp
23. सीकिंग्स, जे., और नैट्रास, एन. (2005). *क्लास, रेस एंड इनिक्वालिटी इन साउथ अफ्रीका*. येल यूनिवर्सिटी प्रेस
24. सिल्वा, एम. (2021). कोटॉस इन ब्राज़ील: ए पथ टू इक्वलिटी? *लैटिन अमेरिकन रिसर्च रिव्यू*. 56(1), 112-130।
25. स्मिथ, जे. (2019). रेसियल डिस्पद्रिटीज एण्ड एफर्मेटिव एक्शन इन द यूनाइटेड स्टेट्स. *हार्वर्ड लॉ रिव्यू*, 132(4), 987-1023
26. सोवेल, टी. (2004). *एफर्मेटिव एक्शन अराउंड द वर्ल्ड: एन अंपयारिकल स्टडी*. येल यूनिवर्सिटी प्रेस.
27. साउथ अफ्रीकन गवर्नमेंट. (1998). अपॉइंटमेंट इक्विटी एक्ट, नंबर 55 ऑफ 1998. https://www.gov.za/documents/employment-equity-act
28. सुप्रीम कोर्ट ऑफ़ इंडिया. (1992). इंदिरा साहनी एंड अदर वर्सिज यूनियन ऑफ़ इंडिया. AIR 1993 SC 477
29. टेल्स, ई. ई. (2004). *रेस इन अनादर अमेरिका: द साइनिफिकेंस ऑफ़ स्किन कलर इन ब्राज़ील*. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस
30. यू.एस. इक्वल एंप्लॉयमेंट ऑपच्युरुनिटी कमिश्नर. (2021) टाइटल VII ऑफ़ द सिविल राइट्स एक्ट ऑफ़ 1964. https://www.eeoc.gov/statutes/title-vii-civil-rights-act-1964

52

भारत में अल्पसंख्यकों के अधिकार: एक संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. शशि भूषण सिंह
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोहम्मद वसीम अहमद
सहायक आचार्य , राजनीति विज्ञान विभाग, सत्यवती कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत का संविधान एक समावेशी संविधान है, जो "विविधता में एकता" की अवधारणा को साकार करता है। इसके अंतर्गत अल्पसंख्यकों को समान नागरिकता और अवसर का अधिकार तो दिया ही गया है, साथ ही उनके सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्थाएँ भी की गई हैं।

यद्यपि संविधान में 'अल्पसंख्यक' शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन संविधान की धारा 29 और 30 में सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की बात करते हुए इस शब्द का प्रयोग हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार, "भारत के नागरिकों के किसी वर्ग को, जिसकी अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।" यह अनुच्छेद स्पष्ट करता है कि कोई भी नागरिक समूह, चाहे वह धार्मिक, भाषाई या सांस्कृतिक आधार पर अलग हो, अपनी पहचान बनाए रखने का हक रखता है। वहीं अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने और उन्हें संचालित करने का अधिकार दिया गया है। इसका सीधा उद्देश्य यह है कि वे अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं को शिक्षा के माध्यम से भावी पीढ़ी तक पहुंचा सकें।

इसी प्रकार अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित अधिकार प्रदान किए गए हैं। इनमें प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म को मानने, उसका पालन करने और प्रचार करने का अधिकार दिया गया है। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी उपासना पद्धति को अपनाने या न अपनाने के लिए स्वतंत्र है। इन अनुच्छेदों का उद्देश्य पंथ निरपेक्षता की भावना को बनाए रखना है, जिससे राज्य किसी विशेष धर्म का पक्ष न ले और हर धर्म के अनुयायियों को समान अवसर और सम्मान मिल सके। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 के तहत केंद्र सरकार ने मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, पारसी (ज़ोरास्टियन) और जैन धर्म के अनुयायियों को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्यता दी है।

अल्पसंख्यक अधिकारों की उत्पत्ति: यह एक ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास प्रक्रिया का परिणाम है। यह अधिकार विभिन्न धार्मिक, भाषाई, जातीय और सांस्कृतिक समूहों की पहचान, अस्तित्व और स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से विकसित हुए हैं। 16वीं और 17वीं शताब्दी में यूरोप में धार्मिक युद्धों ने इस विचार को जन्म दिया कि अल्पसंख्यकों की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करना आवश्यक है। 1648 की "वेस्टफेलिया की शांति समझौता" संधि में धार्मिक सहिष्णुता को एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया। यह संधि उस समय के यूरोपीय देशों में धार्मिक अल्पसंख्यकों की रक्षा की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम थी। 18वीं शताब्दी

में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान "मानव और नागरिक अधिकारों की उद्घोषणा" (1789) ने समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की अवधारणाओं को स्थापित किया। हालाँकि इसमें विशेष रूप से अल्पसंख्यक अधिकारों का उल्लेख नहीं था, परंतु इसने मानवाधिकारों की सामान्य आधारशिला रखी। इससे यह समझ विकसित हुई कि समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार मिलने चाहिए।

इसके पश्चात बनाए गये ऑस्ट्रियाई संवैधानिक कानून (1867) के अनुच्छेद-19 में यह स्वीकार किया गया है कि जातीय अल्पसंख्यकों को अपनी राष्ट्रीयता एवं भाषाओं को बनाए रखने तथा विकसित करने का पूर्ण अधिकार है। वहीं हंगरी के अधिनियम XLIV, 1868 और स्विस परिसंघ के संविधान, 1874 में भी इसी तरह के प्रावधान किए गए हैं।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद शांति संधियों के प्रावधानों में अल्पसंख्यकों की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया गया। एक ओर मित्र एवं संबद्ध शक्तियों और दूसरी ओर पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, ग्रीस व यूगोस्लाविया के बीच हुई पाँच संधियों में अल्पसंख्यक सुरक्षा को संहिताबद्ध किया गया। ऑस्ट्रिया, बुल्गारिया, हंगरी एवं तुर्की के साथ शांति संधियों में अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए गए, जबकि अल्बानिया, फिनलैंड व इराक ने घोषणा की कि वे अपने अल्पसंख्यकों की रक्षा करेंगे।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई। इसके अंतर्गत यूरोप के कुछ देशों ने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए संधियाँ कीं। यह पहला संगठित अंतरराष्ट्रीय प्रयास था, जिसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों को कानूनी संरक्षण प्रदान करने की बात कही गई। द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के बाद 1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई। 1948 में "मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा" ने सभी व्यक्तियों को समान अधिकार दिए जाने की बात कही। इसके बाद 1992 में संयुक्त राष्ट्र ने "राष्ट्रीय और जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों पर घोषणा" को स्वीकार किया, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक विशेष दस्तावेज़ बन गया।

इसी प्रकार भारत में, अल्पसंख्यक अधिकारों की उत्पत्ति एक दीर्घकालिक अनुभवों का परिणाम है। भारत में, स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों को विशेष संरक्षण प्रदान किया। अनुच्छेद 29 और 30 में सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार दिए गए हैं, जबकि अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता सुनिश्चित की गई है।

भारत में अल्पसंख्यकों के अधिकार: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: भारत एक ऐसा देश है जहाँ प्राचीन काल से ही विविध धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों का सहअस्तित्व रहा है। वैदिक युग में भी अनेक दर्शन और मतों का सह-अस्तित्व था जैसे चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन। समय के साथ जब इस्लाम, ईसाई और पारसी धर्म भारत में आए, तो उन्होंने भारतीय संस्कृति में अपना स्थान बनाया। यद्यपि मध्यकालीन भारत में कई बार धार्मिक टकराव हुए, फिर भी भारत की मूल संस्कृति ने सहिष्णुता और बहुलता को बढ़ावा दिया।

ब्रिटिश शासन के दौरान "फूट डालो और राज करो" की नीति ने धार्मिक विभाजन को गहरा किया। 1857 के विद्रोह के बाद से ही अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम भेद को राजनीतिक स्वरूप देना शुरू किया। इसी प्रक्रिया में 1909 का मॉर्ले

मिंटो सुधार और 1932 का संप्रदायगत निर्वाचक मंडल आया, जिसने अलग-अलग धार्मिक समुदायों के लिए अलग प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया।

1947 में देश के विभाजन ने धार्मिक आधार पर विभाजन का कटु अनुभव दिया। पाकिस्तान के गठन और भारत में बड़ी संख्या में मुस्लिमों के रहने की स्थिति ने भारत में अल्पसंख्यक अधिकारों की आवश्यकता को और भी गंभीर बना दिया। यहीं से भारत के संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र होगा, जहाँ किसी धर्म को राज्य धर्म नहीं माना जाएगा और सभी धर्मों को समान संरक्षण मिलेगा। संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि भारतीय संविधान सभी धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों को समुचित अधिकार और संरक्षण प्रदान करे।

अल्पसंख्यक की परिभाषा: भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक शब्द की स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है। हालांकि, संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारों के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 30(1) कहता है कि "सभी अल्पसंख्यकों को, चाहे वे धर्म या भाषा पर आधारित हों, अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने और उनका प्रबंधन करने का अधिकार है। इसका अर्थ है कि भारत में अल्पसंख्यक दो आधारों पर हो सकते हैं:

1. धार्मिक अल्पसंख्यक
2. भाषाई अल्पसंख्यक

भारत सरकार ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 के तहत राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की। इस आयोग को यह अधिकार है कि वह केंद्र सरकार को यह सुझाव दे सके कि किन समुदायों को अल्पसंख्यक घोषित किया जाए। वर्तमान में केंद्र सरकार द्वारा जिन धार्मिक समुदायों को अल्पसंख्यक घोषित किया गया है, वे हैं: मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी। इन समुदायों को 2005 में भारत सरकार द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यक के रूप में अधिसूचित किया गया।

राज्यवार निर्धारण की बहस: भारत में अल्पसंख्यकों का निर्धारण धार्मिक आधार पर केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। हालाँकि, भाषाई अल्पसंख्यकों का निर्धारण राज्य स्तर पर होता है। समय-समय पर यह मांग उठती रही है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों का निर्धारण भी राज्यवार किया जाए ताकि अधिक न्यायसंगत व्यवस्था बन सके। क्यूंकि भारत के कुछ राज्यों में, जो समुदाय राष्ट्रीय स्तर पर बहुसंख्यक हैं, वे वहाँ अल्पसंख्यक हो सकते हैं इसी प्रकार जो राष्ट्रीय स्तर पर बहुसंख्यक हैं वो राज्यों में अल्पसंख्यक हो सकते हैं । उदाहरण के लिए, भारत के छह राज्यों और तीन केंद्रशासित प्रदेशों में हिंदू 'अल्पसंख्यक' हैं, लेकिन वे कथित तौर पर अल्पसंख्यकों के लिये बनाई गई योजनाओं का लाभ उठाने में सक्षम नहीं थे। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, लक्षद्वीप (2.5%), मिज़ोरम (2.75%), नगालैंड (8.75%), मेघालय (11.53%), जम्मू-कश्मीर (28.44%), अरुणाचल प्रदेश (29%), मणिपुर (31.39%) और पंजाब (38.40%) में हिंदू अल्पसंख्यक बन गए हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में सुप्रीम कोर्ट में याचिकाएँ दायर की गईं, जिनमें यह माँग की गई कि अल्पसंख्यक निर्धारण राज्य स्तर पर किया जाए, न कि केवल राष्ट्रीय स्तर पर। सुप्रीम कोर्ट ने इस मुद्दे पर विचार करते हुए कहा कि राज्यवार

अल्पसंख्यक निर्धारण पर स्पष्ट नीति की आवश्यकता है, और यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह एक संतुलित व्यवस्था बनाए।

इसी प्रकार टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन (2002) मामले में सर्वोच्च न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की पीठ ने अल्पसंख्यक संस्थानों के मानक के सवाल को अनुत्तरित छोड़ दिया था। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (2024) मामले से संबंधित ऐतिहासिक निर्णय में कुछ मानक निर्धारित किए हैं-

- पहल करने वाला व्यक्ति अल्पसंख्यक समुदाय से होना चाहिए।
- उसका आशय मुख्यत: अल्पसंख्यक समुदाय के लिए एक संस्थान स्थापित करना होना चाहिए और अन्य विचारणीय कारकों में धन का संग्रह, भूमि प्राप्त करना, भवनों का निर्माण एवं सरकारी मंजूरी होंगे।
- यह आवश्यक नहीं है कि स्थापित संस्थान का प्रशासन अल्पसंख्यकों के पास ही निहित हो।
- अनुच्छेद 30(2) में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि राज्य सहायता देते समय अल्पसंख्यक संस्थानों के साथ भेदभाव नहीं कर सकता है।

साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह माना है कि अल्पसंख्यकों द्वारा अपने संस्थानों का कुप्रशासन करने पर सरकार कुप्रशासन के खिलाफ, शिक्षण के उचित मानकों को बनाए रखने और संस्थानों की उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए उचित नियम बना सकती है। जिसका प्रमुख उदाहरण सेंट जेवियर्स (1974) वाद है जिसमे सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रबंधन के अनन्य अधिकार की आड़ में संस्थान सामान्य पैटर्न का पालन करने से इनकार नहीं कर सकते हैं।

संविधान सभा में अल्पसंख्यक के प्रश्न पर बहस: संविधान सभा में अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर हुई बहस ने यह सुनिश्चित किया कि भारतीय गणराज्य सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करेगा। यह बहस भारतीय संविधान की समावेशिता, सहिष्णुता और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। संविधान निर्माताओं ने दूरदर्शिता के साथ यह व्यवस्था की कि अल्पसंख्यकों को अधिकार दिए जाएँ, लेकिन साथ ही एकता और अखंडता को बनाए रखा जाए।

संविधान निर्माताओं ने अल्पसंख्यकों की जरूरतों के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई। पंडित जी. बी. पंत ने मौलिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर एक सलाहकार समिति स्थापित करने का प्रस्ताव पेश किया। सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता वाली समिति ने अल्पसंख्यक अधिकारों के मुद्दे की जांच की और तदनुसार संविधान में अनुच्छेद 25 से 30 को अधिनियमित किया गया। इन अनुच्छेदों में अंतर्निहित तर्क यह है कि भारत जैसे विविधता युक्त देश में व्यक्तिवादी सार्वभौमिक अधिकार बहुत उपयोगी नहीं हैं और हमें बहुसंस्कृतिवाद एवं अल्पसंख्यकों के अधिकारों के आधार पर चर्चा की आवश्यकता है जो समकालीन राजनीतिक सिद्धांत को चिह्नित करते हैं।

संविधान सभा ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समावेशी भारत का निर्माण तभी संभव है जब अल्पसंख्यकों को पर्याप्त सुरक्षा और अधिकार दिए जाएँ। मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध, और अन्य छोटे समुदायों की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की आवश्यकता को गंभीरता से समझा गया।

डॉ. भीमराव अंबेडकर, जो संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष थे, उन्होंने कहा कि संविधान को सभी नागरिकों को समान अधिकार देना चाहिए, लेकिन अल्पसंख्यकों को उनकी विशिष्ट पहचान बनाए रखने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि भारत का भविष्य तभी सुरक्षित रहेगा जब बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करेगा। उन्होंने अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा देने का समर्थन किया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने जोर दिया कि अल्पसंख्यकों को समान अवसर मिलने चाहिए, लेकिन साथ ही राष्ट्रीय एकता सर्वोपरि होनी चाहिए।

इसी प्रकार संविधान सभा में अल्पसंख्यकों को राजनीतिक आरक्षण (पृथक निर्वाचिका) देने के प्रश्न पर तीखी बहस हुई। कुछ सदस्य, विशेषकर मुस्लिम प्रतिनिधि, चाहते थे कि अल्पसंख्यकों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली मिले, लेकिन गाँधी जी और अन्य नेताओं का मानना था कि इससे विभाजन की भावना बढ़ेगी। अंततः पृथक निर्वाचिका की माँग अस्वीकार की गई, परंतु अल्पसंख्यकों को सांस्कृतिक, धार्मिक और शैक्षणिक अधिकार देने पर सहमति बनी।

इन बहसों के परिणामस्वरूप संविधान में अनुच्छेद 25–28, धार्मिक स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 29–30, सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार, जिसमें अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा अपनी शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार दिया गया, अस्तित्व में आए।

अल्पसंख्यक अधिकारों के पीछे तर्क:

भारत की आज़ादी और विभाजन की पृष्ठभूमि में अल्पसंख्यकों की स्थिति अत्यंत संवेदनशील रही है। विभाजन के समय धार्मिक समुदायों के बीच भय, असुरक्षा और अविश्वास का माहौल था। ऐसे में यह आवश्यक हो गया था कि नए भारत में अल्पसंख्यकों को आश्वस्त किया जाए कि वे सुरक्षित हैं, और उन्हें उनकी धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक पहचान को बनाए रखने का पूरा अधिकार होगा। यह ऐतिहासिक अनुभव अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार देने का एक महत्वपूर्ण तर्क बना। भारतीय संविधान का आधार समानता और सामाजिक न्याय है। लेकिन समानता का अर्थ यह नहीं है कि सभी के साथ एक जैसा व्यवहार हो, बल्कि इसका अर्थ है कि हर व्यक्ति को उसकी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार अवसर और संरक्षण मिले। अल्पसंख्यक समुदायों की संख्या कम होने के कारण उनके अधिकारों, संस्कृति और संस्थानों के संरक्षण की विशेष आवश्यकता होती है। सकारात्मक भेदभाव या संविधानिक संरक्षण इसी सिद्धांत पर आधारित है।

भारत एक बहुलतावादी समाज है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ, धर्म और परंपराएँ सह-अस्तित्व में हैं। अल्पसंख्यकों को उनके धर्म, भाषा और संस्कृति को बनाए रखने की स्वतंत्रता देना इस बहुलतावाद को सशक्त करता है। यदि अल्पसंख्यकों को यह स्वतंत्रता नहीं दी जाए, तो उनकी पहचान धीरे-धीरे विलुप्त हो सकती है, जो भारतीय समाज की विविधता को कमजोर करेगा। किसी भी लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें सभी वर्गों की भागीदारी हो। अल्पसंख्यकों को केवल संरक्षण देना पर्याप्त नहीं, बल्कि उन्हें राजनीतिक, शैक्षणिक और सामाजिक क्षेत्रों में भागीदारी का अवसर भी मिलना चाहिए। अल्पसंख्यक अधिकार इस भागीदारी को सुनिश्चित करने का माध्यम हैं। अल्पसंख्यकों को उनके अधिकार देना केवल एक संवैधानिक या कानूनी पहल नहीं है, बल्कि

यह राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सौहार्द की दिशा में भी एक बड़ा कदम है। जब अल्पसंख्यकों को भरोसा होता है कि राज्य उनकी रक्षा करेगा, तो वे भी राष्ट्र की मुख्यधारा में जुड़ने को प्रेरित होते हैं।

"सबका साथ, सबका विकास" भारत सरकार का एक प्रमुख नीति वाक्य है, जिसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में पहली बार प्रस्तुत किया। इसका अर्थ है, सभी नागरिकों को साथ लेकर चलना और समग्र विकास सुनिश्चित करना, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र या वर्ग से संबंधित हों। इस दर्शन का विस्तार बाद में "सबका विश्वास" और "सबका प्रयास" तक किया गया, जो दर्शाता है कि विकास की प्रक्रिया में हर व्यक्ति की भागीदारी और विश्वास आवश्यक है। भारत के संविधान में अल्पसंख्यकों को विभिन्न अधिकार दिए गए हैं, लेकिन इन अधिकारों को वास्तविकता में बदलने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाएँ चलाई जा रही हैं। इन योजनाओं के माध्यम से "सबका साथ, सबका विकास" के सिद्धांत को मूर्त रूप देने का प्रयास हो रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य है, सभी वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से समान अवसर देना। वंचित और हाशिए पर पड़े समुदायों को मुख्यधारा से जोड़ना। अल्पसंख्यकों को सम्मानजनक जीवन जीने के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराना। यह नीति विशेष रूप से अल्पसंख्यकों के सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभा रही है।

अल्पसंख्यक कल्याण हेतु प्रमुख योजनाएँ: भारत सरकार के अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय के तहत कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं जो "सबका साथ, सबका विकास" के उद्देश्य को आगे बढ़ाती हैं:

(क) शिक्षा क्षेत्र की योजनाएँ:

1. प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति: आर्थिक रूप से कमजोर अल्पसंख्यक छात्रों को शिक्षा जारी रखने हेतु वित्तीय सहायता।
2. मेरिट-कम-मीन्स स्कॉलरशिप: व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति।
3. पढ़ो परदेश योजना: विदेश में उच्च शिक्षा के लिए अल्पसंख्यक छात्रों को ऋण सब्सिडी।
4. मदरसों का आधुनिकीकरण: पारंपरिक धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ गणित, विज्ञान और कंप्यूटर शिक्षा को बढ़ावा देना।

(ख) कौशल विकास और रोजगार योजनाएँ:

1. सीखो और कमाओ योजना: 14–35 वर्ष आयु वर्ग के अल्पसंख्यक युवाओं को व्यवसायिक प्रशिक्षण।
2. नई मंज़िल: औपचारिक शिक्षा से बाहर युवाओं को स्किल ट्रेनिंग और शिक्षा दोनों।
3. नई रोशनी योजना: अल्पसंख्यक महिलाओं में नेतृत्व विकास, आत्मविश्वास और सामाजिक जागरूकता का प्रसार।

(ग) क्षेत्रीय विकास:

1. प्रधानमंत्री जन विकास कार्यक्रम : अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे (स्कूल, अस्पताल, सड़क) का विकास।
2. सद्भाव मंडप और कौशल केंद्र: सांस्कृतिक मेलजोल और रोजगार प्रशिक्षण के लिए सामुदायिक केंद्रों की स्थापना।

(घ) वित्तीय सहायता और उद्यमिता:

1. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम : कम ब्याज दरों पर स्वरोज़गार के लिए ऋण सुविधा।
2. स्वयं सहायता समूह : विशेष रूप से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने हेतु सहायता।

"सबका विश्वास" एक पहल है जो यह सुनिश्चित करती है कि अल्पसंख्यक समुदायों को न केवल योजनाओं का लाभ मिले, बल्कि वे भारत की विकास यात्रा में विश्वास और आत्मसम्मान के साथ भाग लें। यह पहल विशेष रूप से यह संदेश देती है कि विकास प्रक्रिया में कोई भी समुदाय उपेक्षित न रह जाए।

इस प्रकार भारत में अल्पसंख्यक अधिकारों के पीछे केवल संवैधानिक ज़रूरत नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक तर्क भी हैं। इन अधिकारों का उद्देश्य न केवल अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करना है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र, विविधता और एकता को सुदृढ़ बनाना भी है। भारतीय संविधान में विविधता का संरक्षण अल्पसंख्यक अधिकारों के लिए विशेषता है। वास्तव में अनुच्छेद 14-18 (समानता), 19 (वाक् स्वतंत्रता) और 25 (धर्म की स्वतंत्रता) के तहत व्यक्तिगत अधिकार भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के लिए हमारे संविधान निर्माताओं को पर्याप्त नहीं लगे। इसलिए अनुच्छेद 29 के तहत इनका विशेष रूप से उल्लेख किया गया। अनुच्छेद 30 के तहत धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की संस्थाएँ स्थापित करने और उनका प्रशासन करने की अनुमति है ताकि इन संस्थाओं में अल्पसंख्यकों की संस्कृति के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाया जा सके।

सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी (1974) वाद में सर्वोच्च न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ ने निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान करने का उद्देश्य बहुसंख्यकों एवं अल्पसंख्यकों के बीच समानता सुनिश्चित करना है। केशवानंद भारती (1973) वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 30 के तहत प्राप्त अधिकारों को मूल ढांचे का हिस्सा माना गया था जिसे संसद भी संविधान संशोधन के माध्यम से नहीं बदल सकती है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 350A में मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देने तथा अनुच्छेद 350B में भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान है। अल्पसंख्यकों की समस्याओं से निपटने के लिए एक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और एक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान आयोग भी है।

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की जो व्यवस्थाएँ की गई हैं, वे केवल अधिकारों की गारंटी नहीं देतीं, बल्कि एक समावेशी, समतामूलक और पंथनिरपेक्ष राष्ट्र की दिशा में एक प्रतिबद्ध प्रयास का परिचायक हैं। यह प्रयास काफी हद तक सफल रहा है क्यूँ कि, समाज, राज्य और नागरिक तीनों ही स्तर पर इस संवैधानिक मूल भावना को आत्मसात किया गया है।

संदर्भ सूची

1. पी.आर.एस.विधायी अनुसंधान: *भारत में अल्पसंख्यक अधिकार और नीतियाँ* https://prsindia.org
2. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार संधि (ICCPR) – अल्पसंख्यकों के संरक्षण से संबंधित प्रावधान।
3. भारत का विधि आयोग (Law Commission of India) की रिपोर्टें (विभिन्न विषयों पर)। https://lawcommissionofindia.nic.in
4. भारत सरकार, अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, *वार्षिक रिपोर्ट* (विभिन्न वर्ष) https://minorityaffairs.gov.in
5. सच्चर समिति रिपोर्ट (2006)। *भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति की रिपोर्ट*, भारत सरकार
6. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (NCM) https://ncm.nic.in
7. भारत का संविधान (1950). विशेष रूप से अनुच्छेद 25 से 30 तक (धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार)
8. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) की वार्षिक रिपोर्ट https://nhrc.nic.in
9. बसु, डी.डी. (2017). *भारतीय संविधान की भूमिका*. लेक्सिसनेक्सिस
10. सर्वाइ, एच.एम. (2013). *भारतीय संविधान का विधिक विश्लेषण*. यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग
11. ऑस्टिन, ग्रानविल (2003). *भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
12. शर्मा, बृज किशोर (2020). *भारतीय संविधान का परिचय*. पीएचआई लर्निंग
13. अंसारी, इकबाल ए. (2007). *भारत में अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकार और सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा*. साप्ताहिक पत्रिका: आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक (EPW).
14. पाशा, ए.के. (2012). *भारत में अल्पसंख्यकों का सशक्तिकरण: संवैधानिक प्रावधान और नीतिगत पहल*. भारतीय लोक प्रशासन पत्रिका.

©भारत सरकार
Governemtn of India

Digital India
Power To Empower

ISSN :2321-0443
USG Care Listed Journal

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) पश्चिमी खंड-VII, रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1
नई दिल्ली-110066
दूरभाष: +91-11-20867172
वेबसाइट : https://cstt.education.gov.in
https://shabd.education.gov.in

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICALTERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
West Block-VII, Ramakrishnapuram, Sector-1 New Delhi-110066
Telephone: +91-11-20867172
Website: https://cstt.education.gov.in https://shabd.education.gov.in